कल्याण की प्राप्ति के उद्देश्य से आधे क्षण तक ही इस श्रीमद्भागवत कथा रूपी अतुलनीय अमृत का आपलोग पान कर लें, निन्दित कथाओं से युक्त कुमार्ग में आप सभी व्यर्थ में ही क्यों भटक रहे हैं ? इस कथा के कानों में पड़ने मात्र से ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, इस विषय में तो परीक्षित् ही साक्षी हैं ॥१००॥

रसः प्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा। कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत्।।१०१।।

अन्वय:— रसप्रवाह संस्थेन श्रीशुकेन (इयम्) कथा ईरिता येन कण्ठे सम्बध्यते स वैकुण्ठप्रभु: भवेत् ।।१०१।। अनुवाद— श्रीशुकदेवजी ने प्रेमरस के प्रवाह में स्थित होकर इस कथा को कहा है । जो इस कथा को अपने गले में धारण कर लेता है वह वैकुण्ठ का स्वामी हो जाता है ।।१०१।।

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य । जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित्पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्यसारम् ॥१०२॥

अन्वयः सपिद शास्त्रपुञ्जं विलोक्य मया सर्वसिद्धान्तसिद्धम् परमगुह्यम् इति ते निगदितम् जगित शुककथातः निर्मलम् किञ्चित् नास्ति, परसुखहेतोः द्वादशस्कन्थसारम् पिब ।।१०२।।

अनुवाद अभी-अभी शास्त्र समूह का अवलोकन करके अत्यन्त गोपनीय सभी सिद्धान्तों के सारभूत अर्थ को आपको मैंने बतलाया है। संसार में शुकशास्त्र से अधिक पवित्र दूसरा कुछ भी नहीं है। अतएव आप परम सुख की प्राप्ति के लिए इस द्वादश स्कन्ध वाले श्रीमद्भागवत कथा के सारभूत रस का पान करें।।१०२।।

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे । तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यात्र हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥१०३॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— यः एताम् नियततया भक्त्या शृणोति यश्च एनाम् शुद्ध वैष्णवाग्रे कथयति तौ सम्यक् विधिकरणात् यथार्थ्यात् फलं लभेते भुवने किमपि हि असाध्यम् न ।।१०३।।

अनुवाद जो पुरुष नियम पूर्वक इस कथा को भक्तिपूर्वक सुनता है और जो इस कथा को शुद्ध श्रीवैष्णव के समक्ष इस कथा को सुनाता है, वे दोनों अच्छी तरह से विधि का पालन करने के कारण इस कथा के यथार्थ फल को प्राप्त करते हैं। उन दोनों को त्रैलोक्य में कुछ भी असाध्य नहीं होता ।।१०३।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य के प्रसङ्ग में श्रवणविधिवर्णन नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

THE RESERVE OF THE PARTY OF THE



ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।। श्रीगोपालकृष्णाय नमः ।।

ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ।

प्रथम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्मन्ति यत्सूरयः । तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

अन्वयः — अस्य यतो जन्मादि अन्वयात् इतरतश्च यः अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् यः हृदा आदिकवये ब्रह्म तेने, यत् सूरयः मुह्मन्ति तेजोवरिमृदां विनिमये यथा त्रिसर्गः अमृषा स्वेन धाम्ना सदानिरस्तकुहकं परं सत्यं धीमिहि ॥१॥

अनुवाद — जिनसे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हाते हैं, जो सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत और असत् पदार्थों से पृथक् हैं वे जड़ नहीं चेतन हैं वे परतंत्र नहीं स्वयंप्रकाश हैं। वे ही ब्रह्मा को भी अपने सङ्कल्प मात्र से वेदों का ज्ञान प्रदान किये। जिन परंब्रह्म के विषय में विज्ञ पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। जैसे तेजोमय सूर्य रिश्मयों में जल का भ्रम हो जाता है, जल में स्थल का भ्रम होता है, उसी तरह उन परंब्रह्म में त्रिगुणात्मिका जाग्रत स्वप्न सुष्टित रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी सत्य के तरह प्रतीत होती है स्वयंप्रकाश वे ब्रह्म माया और माया के कार्यों से पूर्णरूप से मुक्त हैं।।१।।

भावार्थदीपिका

हृदये संवित्तं वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि । यस्याऽऽस्ते नृसिंहमहं परं धाम जगद्धाम नमाम । श्रीकृष्णाख्यं विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् परस्परनुतिप्रियौ ।।३।। सर्वसिद्धिविधायिनौ । वन्दे परस्परात्मानौ माधवोमाधवावीशौ पौर्वापर्यानुसारतः । श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं प्रतन्यते ।।४।। संप्रदायानुरोधेन तत्र परमाणुर्वे यत्र क्षीरवारिधे: । किं मज्जति क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं तमहं वन्दे मूकं करोति वाचालं पङ्गं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा परमानन्दमाधवम् ।।६।। श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्करः सज्जिनः स्कन्धैर्द्वादशभिस्तततः प्रविलसद्भक्त्यालबालोदयः । द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभे वर्वर्ति सर्वोपरि ॥७॥

अथ नानापुराणशास्त्रप्रबन्धैश्चित्तप्रसत्तिमलभमानस्तत्र तत्रापिरतुष्यत्रारदोपदेशतः श्रीमद्भगवद्गुणानुवर्णनप्रधानं भागवतशास्त्रं प्रारिप्सुर्वेदव्यासस्तत्प्रत्यूहनिवृत्त्यादिसिद्धये तत्प्रतिपाद्यपरदेवतानुस्मरलक्षणं मङ्गलमाचरति-जन्माद्यस्येति । परं परमेश्वरं धीमहि। ध्यायतेर्लिङि छन्दसम् । ध्यायेमेत्यर्थः । बहुवचनं शिष्याभिप्रायम् । तमेव स्वरूपतटस्थलक्षणाभ्यामुपलक्षयति । यत्र स्वरूपलक्षणं सत्यमिति । सत्यत्वे हेतुः – यत्र यस्मिन्ब्रह्मणि त्रयाणां मायागुणानां तमोरजः सत्त्वानां सर्गो भूतेन्द्रियदेवतारूपोऽमृषा सत्यः । यत्सत्यतया मिथ्यासर्गोऽपि सत्यवत्प्रतीयते तं परं सत्यमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः – तेजोवारिमृदां यथा विनिमय इति । विनिमयो व्यत्ययोऽन्यस्मिन्नन्यावभासः । स यथाऽधिष्ठानसत्तया सद्वत्प्रतीयत इत्यर्थः । तत्र तेजिस वारिबुद्धिर्मरीचितोये प्रसिद्धा । मृदि काचादौ वारिबुद्धिर्वारिणि च काचादिबुद्धिरित्यादि यथायथम्ह्यम् ।

यद्वा तस्यैव परमार्थसत्यत्वप्रतिपादनाय तदितरस्य मिथ्यात्वमुक्तम् । यत्र मृषैवायं त्रिसर्गो न वस्तुतः सिन्निति । यत्रेत्यनेन प्रतीतमुपाधिसंबन्धं वारयित । स्वेनैव धाम्ना महसा निरस्तं कुहकं कपटं मायालक्षणं यस्मिस्तम् । तटस्थलक्षणमाह- जन्मादीति। अस्य विश्वस्य जन्मस्थितिभङ्गा यतो भवन्ति तं धीमहीति । तत्र हेतुः अन्वयादितरतश्च । अर्थेष्वाकाशादिकार्येषु परमेश्वरस्य सद्रूपेणान्वयादकार्येभ्यश्च खपुष्पादिभ्यस्तद्व्यितरेकात् ।

यद्वा अन्वयशब्देनानुवृत्तिः, इतरशब्देन व्यवृत्तिः । अनुवृत्वात्सद्रूपं ब्रह्म कारणं मृत्सुवर्णादिवत् । व्यावृत्तत्वाद्विश्चं कार्यं घटकुण्डलादिवदित्यर्थः ।

यद्वा सावयवत्वादन्वयव्यतिरेकाभ्यां यदस्य जन्मादि तद्यतो भवतीति संबन्धः ।

तथ च श्रुतिः – 'यतो वा इमानि भूतिन जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।।' इत्याद्या। स्मृतिश्च- 'यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे । यस्मिश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।।' इत्याद्या।

तर्हि किं प्रधानं जगत्कारणत्वाद्ध्येयमभिप्रेतं नेत्याह । अभिज्ञो यस्तम् । 'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति । स इमाँल्लेकनसृजत' इत श्रुते: । 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' इति न्यायाच्च ।

तर्हि किं जीवो ध्येयः स्यान्नेत्याह । स्वराट् स्वेनैव राजते यस्तम् । स्वतः सिद्धज्ञानिमत्यर्थः ।

तर्हि किं ब्रह्मा ध्येय: 'हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।' इति श्रुते: । नेत्याह- तेन इति। आदिकवये ब्रह्मणेऽपि ब्रह्म वेदं यस्तेने प्रकाशितवान् । 'यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वे यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये' इति श्रुते: ।

ननु ब्रह्मणोऽन्यतो वेदाध्ययनमप्रसिद्धम् । सत्यम्, तत्तु हृदा मनसैव तेने विस्तृतवान् । स्वेन बुद्धवृत्तिप्रवर्तकत्वेन गायत्र्यर्थो दर्शित: ।

वक्ष्यति हि- प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि । स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ।।' इति ।

ननु ब्रह्मा स्वयमेव सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन वेदमुपलभतां नेत्याह । यद्यस्मिन्ब्रह्मणि सूरयोऽपि मुह्यन्तीति । तस्माद्ब्रह्मणोऽपि पराधीनज्ञानत्वात्स्वतः सिद्धज्ञानः परमेश्वर एव जगत्कारणम् । अतएव सत्योऽसतः सत्ताप्रदत्वाच्च परमार्थसत्यः सर्वज्ञत्वेन च निरस्तकुहकस्तम् ।

धीमहीति गायत्र्या प्रारम्भेण च गायत्र्याख्यब्रह्मविद्यारूपमेतत्पुराणिमिति दर्शितम् । यथोक्तं मत्स्यपुराणे पुराणदानप्रस्तावे-'यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतिमध्यते । । लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमिसंहसमन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् । । अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

पुरााणानतरे च-

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो द्वादशस्कन्थसंमितः। हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।। गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ।

पद्मपुराणेऽम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः -

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।। इति । अतएव भागवतं नामान्यदित्यपि न शङ्कनीयम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

वागीशा ॰ इत्यादि - जिनके मुख में वागीशा (सरस्वती) का निवास है, वक्ष: स्थल में लक्ष्मीजी का निवास है तथा जिनके हृदय में ज्ञान का निवास है उन नृसिंह भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥१॥ विश्वसर्ग० इत्यादि-सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और उसका संहार आदि नव लक्षणों से लक्षित तथा सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय स्वरूप परंप्राप्य भगवान् श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।। **माधवो० इत्यादि-** लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और उमाधव (शङ्करजी) ये दोनों ही सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले हैं । वे दोनों परस्पर में एक दूसरे की आत्मा हैं तथा उन दोनों को परस्पर में प्रणाम करना प्रिय है । ऐसे लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और शङ्करजी दोनों की मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥ सम्प्रदाय इति- सम्प्रदाय के अनुसार तथा पौर्वापर्य भाव के अनुसार इस श्रीमद्भागवत पुराण की भावार्थदीपिका नामक टीका का मैं विस्तार करता हूँ ॥४॥ क्वाहम् इत्यादि - कहाँ तो मेरी मन्द बुद्धि तथा कहाँ तो श्रीमद्भागवत रूपी क्षीरससागर का मन्थन, दोनों में किसी भी प्रकार का तारतम्य नहीं है, फिर भी जिस तरह क्षीरससागर में मन्दराचल पर्वत भी डूब जाता है, उसमें परमाणु की कौन सी बात है ? उसका तो पता भी नहीं चल सकेगा । इस श्लोक में श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत को क्षीरसागर के समान बतलाकर उसका अर्थ निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ अपनी बुद्धि को असमर्थ बतलाया हैं ।।५।। मूकम्॰ इत्यादि- जिनकी कृपा गूङ्गे को भी वाचाल बना देती है और लङ्गङ्गें से पर्वत को पार करवा देती है मैं उन परमानन्द स्वरूप भगवान् लक्ष्मीपित की वन्दना करता हूँ ॥६॥ श्रीमद् इत्यादि - श्रीमद्भागवत रूपी कल्पवृक्ष की उत्पत्ति ओङ्कार से ही हुयी है। यह बारह स्कन्ध रूपी बड़ी शाआओं से युक्त है तथा भक्ति रूपी आलबल (थाला) में इसकी उत्पत्ति हुयाँ है । यह तीन सौ बत्तीस अध्यायों से सुशोभित हो रहा है । वे अध्यायू ही इसकी छोटी शाखायें हैं । इसके अठारह हजार श्लोक रूपी पत्ते हैं जो सभी अभिप्रेत कामनाओं को पूर्ण करसे वाले हैं । इस तरह से अत्यन्त सुलभ यह महापुराण सभी पुराणों से श्रेष्ठ हैं ॥७॥

अथ० इत्यादि- अनेक पुराण शास्त्रों के प्रणयन के द्वारा चित्त की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकने के कारण असन्तुष्ट महर्षि बादरायण ने नारदजी के उपदेश को प्राप्त करके श्रीभगवान् के गुणों का जिसमें प्रधान रूप से वर्णन किया गया है ऐसे भागवत शास्त्र को प्रारम्भ करने की इच्छा से, उसकी रचना में सम्भावित विघ्नों के विनाश के लिए, इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य परादेवता का स्मरण रूपी मङ्गलाचरण जन्माद्यस्य० इत्यादि श्लोक से महर्षि व्यास करते हैं। परम् शब्द परमेश्वर का बोधक है, उन परमेश्वर का हम, धीमहि अर्थात् ध्यान करते हैं। ध्यै-चिन्तायाम् धातु का लिङ्लकार में छान्दस रूप धीमहि पद है। इसका अर्थ है ध्यायेम = हम सभी ध्यान करें। शिष्यों के बहुत्व के अभिप्राय से महर्षि बादरायण बहुवचनान्त प्रयोग करते हैं। तमेव० इत्यादि उन परमेश्वर का इस श्लोक में स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण बतलाया गया हैं।

तत्र स्वरूप • परमेश्वर का स्वरूप लक्षण सत्यम् है । परमेश्वर के सत्यत्व में कारण है उस परंब्रह्म में ही माया के सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुणों के कार्य पञ्च महाभूतों, इन्द्रयों और इन्द्रियों के अधिष्ठात देवताओं की सृष्टि अमृषा = सत्य है । उनकी सत्यता के ही कारण मिथ्या भी सृष्टि सत्य प्रतीत होती है । अत्र दृष्टान्त इत्यादि इस विषय में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए कहते है- तेजोविरमृदाम् • इत्यादि जैसे तेज जल और पृथिवी का परस्पर में होने वाले विनिमय के समान एक वस्तु में दूसरे वस्तु की होने वाली प्रतीति ही विनिमय शब्द वाच्य है । वह अधिष्ठान की सत्यता के कारण सत्य के समान प्रतीत होता है । तत्रतेजिस • तेज में (गर्मी के दिनों में चिलिचिलाती हुयी धूप में) जल की प्रतीति प्रसिद्ध है । इसी को मृगमरीचिका कहते हैं । उसी तरह मिट्टी तथा काच आदि में जल की बुद्धि होती है तथा जल में भी काच इत्यादि का भी भ्रम होता है । इसी तरह दूसरे प्रकार के होने वाले भ्रमों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए ।

यहा • इत्यादि - अथवा उस परमेश्वर को परमार्थ सत्य प्रतिपादित करने के लिए उससे भिन्न सभी वस्तुओं के मिथ्यात्व को बतलाया गया है । उस परंब्रह्म में यह जगत् की सृष्टि मिथ्या ही है । वह सत्य नहीं है । यत्र इस पद के द्वारा प्रतीत होने वाले उपाधि के सम्बन्ध का निषेध किया गया है । उस परम्ब्रह्म के अपने ही तेज से माया रूपी कपट का उनसे सम्बन्ध नहीं होता है । परंब्रह्म के तटस्थ लक्षण को बतलाते हुए महर्षि जन्मादि • इत्यादि कहते है । अर्थात् जिस परंब्रह्म से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय = संहार होते हैं उस परंब्रह्म का हम ध्यान करते है । इसके हेतु को बतलाते हुए कहते हैं अन्वयात् इतरतश्च । क्योंकि आकाश आदि कार्यों में परंब्रह्म का सत् रूप से अन्वय (सम्बन्ध) है और कार्यव्यतिरिक्त आकाश पुष्प आदि में परंब्रह्म का व्यतिरेक (सम्बन्ध) का अभाव है ।

यहा० इत्यादि- अथवा अन्वय शब्द से अनुवृत्ति (अनुगत प्रतीति) की तथा इतर = शब्द के द्वारा व्यावृति (नहीं रहने) को बतलाया गया है। सभी कार्य पदार्थों में अनुवृत्त (सद्रूप से वर्तमान) होने के कारण सत् स्वरूप ब्रह्म जगत् के कारण हैं। मिट्टी और सुवर्ण के समान। अर्थात् जैसे घट तथा मणिक आदि में अनुवृत्त होने वाली मिट्टी घट तथा मणिक आदि का कारण है। उसी तरह हार आदि में सुवर्ण की चूिक अनुगत प्रतीति होती है अतएव हार इत्यादि का कारण सुवर्ण है। उसी तरह सभी आकाशादि कार्यों में अनुगत ब्रह्म सभी कार्य पदार्थों का कारण है। व्यवृत्तत्वात्० इत्यादि- ब्रह्म में इन सबों की व्यावृत्ति होने के कारण सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का कार्य है। घट तथा कुण्डल के समान।

यद्वासावयवत्वात् इत्यादि - समस्त घट पटादि कार्य सावयव हैं अतएव वे ब्रह्म के कार्य हैं और निरवयव ब्रह्म इन समस्त कार्यों के कारण है। इस जगत् की जिससे जन्मादि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते है, वह ब्रह्म है इस तरह से इन सबों का अन्वय वयितरेक के द्वारा जगत् का ब्रह्मकार्यत्व सिद्ध होता है।

तथा च श्रुति:- श्रुति भी कहती है- यतो वा इमानि० इत्यादि- अर्थात् जिससे ये सारे भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए भूत जिसके द्वारा रक्षित होते है, और प्रलय काल की बेला आने पर जिसमें लीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है।

स्मृतिश्च च यतः सर्वाणि० इत्यादि- स्मृति भी कहती है- युग का प्रारम्भ होने पर जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और प्रलय काल के आने पर जिसमें वे लीन हो जाते हैं। यह स्मृति भी जगत् के ब्रह्मकार्यत्व का प्रतिपादन करती है।

तर्हिकिम्- अब प्रश्न उठता है कि यहाँ जगत् के कारण रूप से प्रधान (प्रकृति) के ध्यान का विधान किया क्या है ? तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि प्रकृति जड़ा है वह सृष्टि से पहले ईक्षण रूप सङ्कल्प नहीं कर सकती है । सङ्कल्प करना चेतना का कार्य है । श्रुति कहती है—

स ईक्षत लोकानुसृजा इति । स इमान् लोकानसृजत ।।

अर्थात् उस कारण तत्त्व ने ईक्षण रूप सङ्कल्प किया कि मैं लोकों की सृष्टि करूँ और उसने अपने सङ्कल्प मात्र से जगत् की सृष्टि कर दी। किञ्च प्रकृति के जगत् कारणत्व का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं— **ईक्षतेर्ना** शब्दम् अर्थात् प्रकृति को जगत् का कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि श्रुति ईक्षण पृर्वक सृष्टि को बतलाती है और प्रकृति के जगत् कारणत्व में कोई शब्द भी प्रमाण नहीं है।

तर्हि कि जीवोध्येय: इत्यादि- इस पर दूसरे दार्शनिक कहते हैं कि क्या जीव ही जगत् के कारण रूप से ध्येय है। क्योंकि वह तो ज्ञाता है। अतएव जगत् की सृष्टि करने का सङ्कल्प कर सकता है; तो इसके उत्तर में अन्थकार कहते हैं- नेत्याह स्वाराट् अर्थात् जगत् का जो कारण है वह अभिज्ञ होते हुए स्वराट् भी है। स्वराट् शब्द की व्युत्पत्ति है स्वेनैव राजते यस्तम् जो अपने से ही प्रकाशित होता है, वह स्वराट् है अर्थात् उसे स्वतः सिद्ध ज्ञान वाला होना चाहिए। जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा द्वारा प्रदत्त है। अतएव वह स्वराट् नहीं हो सकता है। स्वराट् शब्द का अर्थ स्वत्रंत भी होता है किन्तु जीवात्मा स्वतंत्र नहीं अपितु परमात्मा के परतन्त्र है, अतएव वह ध्येय नहीं हो सकता है।

तर्हि किं ब्रह्मा ध्येय:- तो फिर क्या यहाँ पर जगत् के कारण रूप से ब्रह्माजी को ध्येय बतलाया गया है ? श्रुति भी कहती है—

'हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।'

अर्थात् सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ही थे। वे सम्पूर्ण भूतसमूह के पित थे। अतएव ब्रह्माजी को ही जगत् के कारण के रूप में ध्येय यह माना जाय क्या ? तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि महर्षि कहते हैं- तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये। अर्थात् जिस जगत् के कारण ने आदि किव ब्रह्माजी के लिए वेदों को प्रकाशित किया। दूसरी श्रुति भी कहती हैं –

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोत् तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये ।।

अर्थात् जिस जगत् के कारण भूत परंब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सृष्टि करते हैं और जिस परमात्मा ने ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान किया उन आत्मबुद्धि प्रकाश स्वरूप देवता की मुमुक्षु मै शरणागित करता हूँ । इससे पता चलता है कि जगत् के कारण ब्रह्माजी नहीं है ।

ननु॰ इत्यादि- अब प्रश्न उठता है कि ब्रह्माजी दूसरे से भिन्न से वेदों का अध्ययन किए यह अर्थ प्रसिद्ध नहीं है। तो इसके उत्तर में महर्षि बादरायण कहते हैं हृदा अर्थात् परंब्रह्म ने अपने मानसिक सङ्कल्प के ही द्वारा ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान कर दिया। वे स्वयं ही बुद्धि की वृत्ति के प्रवर्तक है। अतएव उन्होंने ब्रह्माजी के लिए गायत्री के अर्थ को प्रकाशित कर दिया।

वक्ष्यित हि॰ इत्यादि- आगे चलकर महर्षि बादरायण स्वयं कहेंगे भी 'प्रचोदिता॰' इत्यादि अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सद्ब्रह्म विषयक ज्ञान का प्रकाश करने के लिए जिन परं ब्रह्म के द्वारा प्रेरित सरस्वती, ब्रह्माजी के हृदय में स्वरूपत: आविर्भूत हो गयीं उन अज्ञान विनाशक ऋषियों में अग्रगण्य परंब्रह्म मुझ पर प्रसन्न हो जायँ।

ननु ब्रह्मा सुप्तप्रबुद्ध इत्यादि- अर्थात् यदि यह मान लिया जाय कि जिस तरह सोने से पहले रहने वाले समस्त ज्ञानों को जीव स्वापकाल में भूल जाता है और फिर जगने के पश्चात् स्वयम् उन ज्ञानों को प्राप्त कर लेता है, उसी तरह ब्रह्माजी भी प्रलयकाल से पहले विद्यमान ज्ञान को प्रलयकाल में सो जाने के कारण भूल जाते हैं और जगने के पश्चात् वे अपने पूर्वकल्प में विद्यमान ज्ञान को स्वयं प्राप्त कर लेते हैं, तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। जिस ब्रह्म के विषय में दिव्य ज्ञान सम्पन्न दिव्य सूरिजनों को भी भ्रम हो जाता है। और ब्रह्माजी तो पराधीन ज्ञान वाले हैं; अतएव स्वतः सिद्धज्ञान सम्पन्न परमेश्वर ही जगत् के कारण हैं। फलतः वे सत्य हैं। असत् पदार्थों को भी सत्ता प्रदान करने के कारण परमेश्वर परमार्थ सत्य हैं, वे सर्वज्ञ हैं अतएव उनके साथ माया का सम्बन्ध नहीं हो पाता है। ऐसे परमेश्वर का हम ध्यान करते है।

धीमहीति-धीमहि गायत्री मन्त्र का पद है उस गायत्री के द्वारा ही इस श्रीमद्भागवत पुराण का प्रारम्भ किया

गया है। इससे स्पष्ट सूचित किया गया है कि यह पुराण गायत्री नामक ब्रह्म विद्या स्वरूप है। मत्स्य पुराण के पुराण दान के प्रकरण में कहा भी गया है—

यत्राधिकृत्य गायत्री वण्येते धर्म विस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतिमध्यते । । लिखित्वा तच्च यो दद्यात् हेमसिंह समन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् । । अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्तितम् ।

अर्थात् जिसमें गायत्री को ही आधार बनाकर धर्म का वर्णन किया गया है, तथा जो वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त है, उसे ही भागवत कहा जाता है। उसको लिखकर सुवर्ण निर्मित सिंह के साथ भाद्रपदमास की पूर्णिमा तिथि को जो दान देता है, वह परम पद को प्राप्त करता है। उस पुराण में अठारह हजार श्लोक बतलाये गये हैं। दूसरे पुराण में भी कहा गया है—

प्रन्थोष्टादश सहस्रो द्वादशस्कन्य सम्मितः हयग्रीव ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा । गायत्र्या च समारम्भः तद् वै भागवतं विदुः ।

जो ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकों वाला है तथा जिसमें बारह स्कन्ध है । तथा जिसका गायत्री के धीमहि पदसे प्रारम्भ किया गया है उसी को भागवत कहा गया है । **पद्मपुराणे ० इत्यादि -** पद्मपुराण में भी राजा अम्बरीष से महर्षि गौतम ने कहा है-

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।।

अर्थात् हे अम्बरीष शुकदेवजी के द्वारा उपदिष्ट श्रीमद्भागवत का नित्य ही श्रवण करो । यदि तुम अपने संसार चक्र का नाश चाहते हो तो अपने मुख से भी भागवत को पढो । अतएव जो लोग यह कहते हैं कि भागवत नामक इससे भिन्न देवी भागवत को ही भागवत कहा जाता है उनकी वह शङ्का ठीक नहीं है ॥१॥

धर्मं प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् । श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥२॥

अन्वयः— अत्र परमो धर्मः प्रोज्झितकैतवः, अत्र वेद्यं वास्तवं वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् कृतिभिः शुश्रुषुभिः अत्र हरिः सद्यः हृद्यवरुध्यते रचित परैः किं वा ?।।२।।

अनुवाद महामुनि व्यासजी द्वारा रचित इस श्रीमद्भागवत महापुराण में मोक्ष पर्यन्त फल की कामना से रिहत श्रेष्ठधर्म का प्रतिपादन किया गया है। इसमें शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों द्वारा जानने योग्य तीनों संतापों के विनाशक और कल्याणप्रद वास्तव वस्तु परमात्मा का निरूपण किया गया है। उस पुराण को सुनने की इच्छा वाले महापुरुषों के हृदय में शीघ्र ही परमात्मा विराजमान हो जाते हैं, अतएव दूसरे शास्त्रों से क्या लाभ हैं ?॥२॥

भावार्थदीपिका

इदानीं श्रोतृप्रवर्तनाय श्रीभागवतस्य काण्डत्रयविषयेभ्यः सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठ्यं दर्शयति- धर्म इति । अत्र श्रीमित सुन्दरे भागवते परमो धर्मो निरूप्यते । परमत्वे हेतुः- प्रकर्षेणोज्झितं कैतवं फलाभिसन्धिलक्षणं कपटं यस्मिन्सः ।

प्रशब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः । केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यत इति अधिकारितोऽपि धर्मस्य परमत्वमाह। निर्मत्सराणां परोत्कर्षासहनं मत्सरः, तद्रहितानाम् । सतां भूतानुकम्पिनाम् । एवं कर्मकाण्डविषयेभ्यः शास्त्रेभ्यः श्रैष्ठयमुक्तम्।

ज्ञानकाण्डविषयेभ्योऽपि श्रेष्ठ्यमाह- वेद्यमिति । वास्तवं परमार्थभूतं वस्तु वेद्यं नतु वैशैषिकाणामिव द्रव्य गुणादिरूपम्। यद्वा वास्तवशब्देन वस्तुनोंऽशो जीवः, वस्तुनः शक्तिर्माया, वस्तुनः कार्य जगच्च, तत्सर्वं वस्त्वेव न ततः पृथगिति वेद्यम् । अयत्नेनैव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः । ततः किमत आह । शिवदं परमसुखदम् । किंच आध्यात्मिकादितापत्रयोन्मूलनं च । ज्ञानकाण्डविषयेभ्यः श्रैष्ठयं दर्शितम् । कर्तृतोऽपि श्रैष्ठयमाह । महामुनिः श्रीनारायणस्तेन प्रथमं संक्षेपतः कृते ।

देवताकाण्डिवषयगतं श्रैष्ठ्यमाह – किं वेति । परै: शास्त्रैस्तदुक्तसाधनैर्वेश्वरो हृदि किं वा सद्य एवावरुध्यते स्थिरीक्रियते। वा शब्द: कटाक्षे । किंतु विलम्बेन कथंचिदेव । अत्र तु शुश्रृषुभिः श्रोतुमिच्छद्भिरेव तत्क्षणादेवावरुध्यते । इदमेव तिर्हि किमिति सर्वे न शृण्विन्त तत्राह – कृतिभिरिति । श्रवणेच्छा तु पुण्यैर्विना नोत्पद्यत इत्यर्थः । तस्मादत्र काण्डत्रयार्थस्यापि यथावत्प्रतिपादनादिदमेव सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो नित्यमेतदेव श्रोतव्यमिति भावः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि बादरायण श्रीमद्भागवत के श्रवण में लोगों को प्रवृत्त करने के लिए तीनों काण्डों कर्मकाण्ड, दैवतकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के विषयों तथा सभी शास्त्रों से श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन धर्म: प्रोज्झितकैतव: इत्यादि श्लोक से करते हैं। अत्र श्रीमति० इत्यादि इस सुन्दर श्रीमद्भगावत पुराण में श्रेष्ठ धर्म का निरूपण किया जा रहा है। उस धर्म की श्रेष्ठता इसलिए है कि यह धर्म उज्झित कैतव है। अर्थात् इसमें फलाभिसन्धि रूप कपट का पूर्णरूप से परित्याग कर दिया गया है। अतएव निष्काम धर्म होने के कारण यह श्रेष्ठ धर्म है।

प्रोज्झित पद में प्र उपसर्ग के द्वारा बतलाया गया है कि इस पुराण में मोक्ष की प्राप्ति रूपी फल का भी परित्याग कर दिया गया है। इस महापुराण में केवल ईश्वराराधन रूपी धर्म का निरूपण किया गया है। अतएव अधिकारी की दृष्टि से भी इस धर्म की श्रेष्ठता बतलायी गयी है। निर्मत्सराणां सताम् के द्वारा यह कहा गया है कि यह धर्म मत्सर रहित जीवों पर कृपा करने वाले महापुरुषों का धर्म है। दूसरे के होने वाले उत्कर्ष को देखकर जलने को मत्सर कहते हैं। यह धर्म मत्सर रहित महापुरुषों का है। इस तरह से महर्षि ने कर्मकाण्ड विषयक शास्त्रों से भागवत धर्म की श्रेष्ठता को बतलाया है।

ज्ञानकाण्डविषये- भागवत धर्म ज्ञानकाण्ड के विषयों से भी श्रेष्ठ है, इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए महर्षि बादरायण कहते हैं- वेद्यम्० इत्यादि अर्थात् इसमें वास्तव अर्थात् परमार्थ वस्तु को ही वेद्य बतलाया गया है, न कि वैशेषिकों के समान द्रव्य गुण आदि को । यद्वा० इत्यादि- अथवा वास्तव शब्द से वस्तुभूत परंब्रह्म के अंश जीव, वस्तुभूत ब्रह्म की शक्ति माया, ब्रह्म के कार्य जगत् ये सभी वस्तु स्वरूप हैं, वस्तुभूत परंब्रह्म से अलग नहीं है । इस तरह से जानना चाहिए । अतएव इस श्रीमद्भागवत के माध्यम से आसानी से ये सब जाने जा सकते हैं । यदि कहें कि इससे क्या हुआ तो महर्षि कहते हैं शिवदम् अर्थात् यह धर्म परम सुख को प्रदान करने वाला है तथा तापत्रयोनमूलनम् अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संसार के इन तीनों सन्तापों को विनष्ट करने वाला है । इस तरह से महर्षि बादरायण ने भागवत प्रोक्त धर्म को ज्ञान काण्ड के विषयों से श्रेष्ठता भी प्रतिपादित की है । महामुनि शब्द से श्रीनारायण ही कहे गये हैं उन्होंने पहले इसका संक्षेप में निर्माण किया था और व्यासजी ने उसका विस्तार किया ।

देवताकाण्डविषय० इत्यादि दैवत काण्ड विषयक शास्त्रों के विषयों से इसकी श्रेष्ठता बतलाते हुए महर्षि व्यास ने कहा किं वा० इत्यादि अर्थात् दूसरे शास्त्रों और उनमें बतलाये गये साधनों से क्या ईश्वर सद्य: हृदय में स्थिर हो जा सकते हैं ? अर्थात कभी नहीं हो सकते । वा शब्द के द्वारा व्यासजी ने कटाक्ष किया है । उन शास्त्रों से तो बहुत देर से और बड़ी मुश्किल से ईश्वर हृदय में प्रवेश करते हैं । इस श्रीमद्भागवत शास्त्र को सुनने के ईश्वक लोगों द्वारा तो तत्क्षण ही ईश्वर हृदय में स्थापित कर लिए जाते हैं ।

इदमेव तहीं इत्यादि- तो फिर प्रश्न उठता है कि सभी लोग इस श्रीमद्भागवत का ही श्रवण क्यों नहीं करते हैं ? तो इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि पुण्यों के बिना श्रवणेच्छा होती ही नहीं हैं । अतएव पुण्यवान् पुरुषों को ही इसको सुनने की इच्छा होती है । इस तरह तीनों काण्डों के अर्थों का इसमें यथार्थ रूप से प्रतिपादन किए जाने के कारण यह श्रीमद्भागवत शास्त्र ही सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है । फलत: सदा इसका ही श्रवण करना चाहिए ॥२॥

निगमकल्पतरोर्गिलतं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् । पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

अन्वयः— हे भुवि भावुकाः निगमकल्पतरोः गलितं शुकमुखादमृत द्रवसंयुतम् फलम् भागवतं रसम् आलयं महुः पिबत ॥३॥

अनुवाद हे भूलोक में विद्यमान रस के मर्म को जानने वाले भक्तजन, वेदरूपी कल्प वृक्ष के पके हुए तथा शुकदेवजी रूपी तोते के मुख से जिसका संयोग हो गया है, ऐसे अमृत के समान अत्यन्त आस्वद्य रस से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत रूपी फल के रस का आपलोग आजीवन बार-बार पान करें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तु न केवलं सर्वशास्त्रभ्यः श्रेष्ठत्वादस्य श्रवणं विधीयते, अपितु सर्वशास्त्रफलरूपिमदम्, अतः परमादरेण सेव्यिमत्याह- निगमेति । निगमो वेदः स एव कल्पतरः सर्वपुरुषार्थोपायत्वात्तस्य फलं भागवतं नाम । तत्तु वैकुण्ठगतं नारदेनानीय मह्यं दत्तम् । मया च शुकस्य मुखे निहितम् । तच्च तन्मुखाद्भवि गलितं शिष्यप्रशिष्यादिरूपपल्लवपरम्परया शनैरखण्डमेवावतीणं नतूच्चिनपातेन स्फुटितिमत्यर्थः ।

एतच्च भविष्यदपि भूतवित्रिर्दिष्टम् । अनागताख्यानेनैवास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तेः । अत एवामृतरूपेण द्रवेण संयुतम् । लोके हि शुकमुखस्पृष्टं फलममृतिमव स्वादु भवतीति प्रसिद्धम् । अत्र शुको मुनिः । अमृतं परमानन्दः स एव द्रवो रसः । 'रसो वै सः' 'रस् होवायं लब्ध्वानन्दी भवति' इति श्रुतेः । अतो हे रिसका रसज्ञास्तत्रापि भावुका हे रसिविषेषभावनाचतुराः । अहो भुवि गलितिमित्यलभ्यलाभोक्तिः । इदं भागवतं नाम फलं मुहुः पिबत ।

ननु त्वगष्ट्यादिकं विहाय फलाद्रसः पीयते कथं फलमेव पातव्यं तत्राह । रसं रसरूपम् । अतस्त्वगष्ट्यादेर्हेयांशस्या-भावात्फलमेव कृत्स्नं पिबत । अत्र च रसतादात्म्यविवक्षया रसवत्त्वस्याविविक्षतत्त्वाद्गुणवचनेऽपि रसशब्दे मतुपः प्राप्त्यभावात्तेन विनैव रसं फलिमिति सामानाधिकरण्यम् । तत्र फलिमत्युक्ते पानासंभवो हेयांशप्रसिक्तश्च भवेदिति तित्रवृत्त्यर्थं रसिमत्युक्तं रसिमत्युक्तेऽपि गलितस्य रसस्य पातुमशक्यत्वात्फलिमिति द्रष्टव्यम् । न च भागवतामृतपानं मोक्षेऽपि त्याज्यिमत्याह । आलयं लयो मोक्षः । अभिविधावाकारः । लयमिभव्याप्य । नहीदं स्वर्गादिसुखवन्मुक्तैरूपेक्ष्यते किं तु सेव्यत एव । वक्ष्यति हि-

आत्मारामाश्च मुनयो निर्प्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्बन्यहैतुर्की भक्तिमित्थंभूतगुणो हरि: ।।

इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि व्यास बतलाते हैं कि इसके श्रवण का विधान केवल इसलिए नहीं किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है, अपितु इसलिए किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों का फल है। अतएव इसका सेवन अत्यन्त आदर पूर्वक करना चाहिए। इसी बात को वे निगम इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। निगम शब्द से वेद को कहा जाता है वहीं कल्पतरु है, क्योंकि वह कल्पतरु के ही समान सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है। उस वेद नामक वृक्ष के फल का नाम भागवत है। तत्तु इत्यादि- उस भागवत रूपी फल को वैकुण्ठ से लोकर नारदजी ने मुझे प्रदान किया है। मैंने भी उसको शुक के मुख में डाल दिया। वह फल शुक के मुख से पृथिवी पर गिर पड़ा शिष्य प्रशिष्य रूपी पल्लवं की परम्परा से पृथिवी पर धीरे से गिर पड़ा। अतएव फटा नहीं; अपितु अखण्ड ही रहा क्योंकि वह ऊपर से नहीं गिरा था।

एतच्च ॰ इत्यादि - यह शिष्य परम्परा पृथिवी पर उस फल का गिरना भविष्यत् कालिक हैं। श्रीमद्भागवत प्रणयन काल में तो वह फल पृथिवी पर आया ही नहीं था; किन्तु सर्वज्ञ होने के कारण उसका महर्षि ने भूतकाल के समान निर्देश किया है; क्योंकि अनागत काल में ही इस शास्त्र की प्रवृत्ति हुयी। शुकदेव रूपी तोते के मुख से इसका संयोग होने के कारण यह अमृत के समान अत्यन्त आस्वाद्य रस से भर गया है। लोके हि संसार में भी प्रसिद्ध है कि जिस फल को तोता अपने मुख से छू लेता है वह अमृत के समान स्वादिष्ट हो जाता है। यहाँ शुकदेवजी को ही तोता कहा गया है। अमृत शब्द से परमानन्द को कहा गया है। वह परमानन्द ही इस भागवत रूपी फल का रस है।

रसौ वै० इत्यादि- श्रुति भी कहती है कि परंब्रह्म रस के समान परमानन्द स्वरूप हैं। 'रसं होवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' उस रस स्वरूप परंब्रह्म को प्राप्त करके जीव आनन्द युक्त हो जाता है। अतो हे० इत्यादि- हे रस विशेष के ज्ञाता रसज्ञ पुरुषों यह पृथिवी पर गिरा हुआ भागवत रूपी फल अलभ्य लाभ है। अतएव इस भागवत नामक फल का आपलोग बार-बार पान करें।

ननु० इत्यादि- यदि कहा जाय कि छिलका तथा गुठली इत्यादि को हटा कर ही फल के रस का पान किया जाता है फल का पान कैसे किया जा सकता हैं ? इसीलिए व्यासजी ने कहा — रसम् अर्थात् यह फल रस स्वरूप है। इसमें छिलका तथा गुठली का अभाव है अतएव सम्पूर्ण फल को ही पीजिए। अत्र च रसतादात्म्य० इत्यादि यहाँ पर रस से अभेद की विवक्षा के ही कारण तथा रसवत्व की विवक्षा का अभाव होने के कारण, गुण के वाचक भी रस शब्द में मतुप् प्रत्यय की प्राप्त का अभाव होने के कारण मतुप् के बिना ही रस का फल के साथ सामानाधिकरण्य है। यदि फल शब्द का ही प्रयोग होता तो उसका पान करना सम्भव नहीं होता तथा त्याज्यांश की भी प्रसक्ति होती। उसकी निवृत्ति के लिए रस शब्द का प्रयोग किया गया है। रस ही यदि कहा जाता तो फिर पृथिवी पर गिरे हुए रस का पान करना सम्भव नहीं था। इसीलिए महर्षि ने फल कहा है। रस स्वरूप यह फल है। इस भागवत रूपी अमृत का पान मुक्तावस्था में भी ज्याज्य नहीं है। इसी अर्थ का बोध कराने के लिए आलयम् पद का प्रयोग किया गया है। लय मोक्ष का वाचक है। अपितु अभिविधावाकारः इस सूक्ति के अनुसार इसका पान तब तक किया जाता है जब तक मुक्ति बनी रहे। जिस तरह मुक्तजीव स्वर्गादि सुख की उपेक्षा कर देते हैं उसी तरह से भागवत रस का वे उपेक्षा नहीं करके सेवन करते रहते हैं महर्षि व्यास आगे चलकर स्वयं कहेंगे भी—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्जन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरि: ।।

अर्थात् आत्माराम (अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले) मुनिजन, श्रीभगवान् के विषय में निर्यन्थ होते हैं। वे सभी कामनाओं से रहित होकर श्रीभगवान् की भिक्त किया करते हैं, क्योंकि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं।।३।। नैमिशोऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः । सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ।।४।।

अन्वयः -- अनिमिषक्षेत्रे नैमिषे शौनकादायः ऋषयः स्वर्गाय लोकाय सहस्रसमम् सत्रम् आसत ॥४॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के क्षेत्र नैमिषारण्य में एक बार ऋषिगण स्वर्ग (वैकुण्ठ लोक) की प्राप्ति की इच्छा से एक हजार वर्षों में पूरा होने वाले याग का अनुष्ठान कर रहे थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमनेन श्लोकत्रयेण विशिष्टदेवतानुस्मरणपूर्वकं प्रारिप्सितस्य शास्त्रस्य विषयप्रयोजनादिवैशिष्ट्येन सुखसेव्यत्वेन च श्रोतृनिभमुखीकृत्य शास्त्रमारभते- नैमिश इति । ब्रह्मणा विसृष्टस्य मनोमयस्य चक्रस्य नेमिः शीर्यते कुण्ठीभवति यत्र तन्नेमिशं, नेमिशमेव नैमिशम् । तथा च वायवीये-

विसुज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं स देशस्तपसः शुभः।। इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम्। प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ।। तेऽपि हृष्टतमा विप्राः प्रणम्य जगतां नेमिर्व्यशीर्यत ।। प्रभुम् । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपुजितम् ।

इति ।

नैमिष इति पाठे वराहपुराणोक्तं द्रष्टव्यम् । तथाहि गौरमुखमृषिं प्रति भगवद्वाक्यम् –

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा । उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम् ।। अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम् । भविष्यति यथार्थं वै ब्राह्मणानां विशेषकम्।।

इति । अनिमिषः श्रीविष्णुः अलुप्तदृष्टित्वात् । तस्य क्षेत्रे । तथा चात्रैव शौनकादिवचनं 'क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम्' इति । स्वः स्वर्गे गीयत इति स्वर्गायो हरिः, स एव लोको भक्तानां निवासस्थानं तस्मै । तत्प्राप्तय इत्यर्थः । सहस्रं समाः संवत्सरा अनुष्ठानकालो यस्य तत्सत्रं सत्रसंज्ञकं कर्मीद्दिश्य आसत उपविविशुः । यद्वा आसताऽकुर्वतेत्यर्थः । आलभेत निर्वपित उपयन्तीत्यादिवत्प्रत्ययोच्चारणमात्रार्थत्वेनाऽऽस्तेर्धात्वर्थस्याविविधतत्वात् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से तीन श्लोकों द्वारा विशिष्ट देवता परंब्रह्म के स्मरण पूर्वक जिसको प्रारम्भ करना अभिप्रेत है उस शास्त्र का विषय तथा प्रयोजन आदि से विशिष्ट तथा जिसका सेवन सुखपूर्वक किया जा सकता है उस शास्त्र के प्रति श्रोताओं को अभिमुख करके महर्षि व्यास प्रारम्भ नैमिशे इत्यादि श्लोक से करते हुए कहते हैं। ब्रह्मणा इत्यादि- ब्रह्माजी के द्वारा छोड़े गये मनोमय चक्र का नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाता है, अर्थात् कुण्ठित हो जाता है, उस स्थान को नेमिश कहते है। नेमिश शब्द से स्वार्थ में प्रत्यय होकर नैमिश शब्द व्युत्पन्न होता है। तथा चि इत्यादि- वायु पुराण में कहा भी गया है। मैंने इस मनोमय चक्र की सृष्टि की है, उसको मैं छोड़ रहा हूँ। इसकी नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाय वह स्थान तपस्या की दृष्टि से शुभ है। यह कहकर सूर्य के समान देदीप्यमान मनोमय चक्र की सृष्टि करके तथा महान् देवता श्रीभगवान् को नमस्कार करके ब्रह्माजी ने उसे छोड़ा। वे सभी ऋषिगण भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगत् के स्वामी ब्रह्माजी को प्रणाम करके उस चक्र के पीछे गये और जहाँ पर वह नेमि (चक्र) गिर पड़ा वही मुनिजनों के द्वारा पूजित नैमिश नामक वन विख्यात हो गया।

नैमिष इति पाठे० इत्यादि- नैमिष इस पाठ के विषय में वराहपुराण में कहे गये निम्नांकित श्लोकों को देखना चाहिए। तथाहि० इत्यादि- वे श्लोक है गौरमुख मुनि के प्रति श्रीभगवान् का वाक्य है एवम्० इत्यादि- इस तरह से करके श्रीवराह भगवान् ने गौरमुख नामक मुनि से कहा मैंने चक्र के द्वारा दानवों की सेना को इस वन में मार दिया है अतएव वन का यथार्थ नाम नैमिष होगा यह ब्राह्मणों के लिए विशेष फल प्रदान करने वाला होगा।

अनिमिष इति- अनिमिष शब्द श्रीभगवान् विष्णु का नाम है क्योंकि उनकी दृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है। उन भगवान् विष्णु के क्षेत्र में ऋषिगण उस सत्र को कर रहे थे। इसीलिए इस श्रीमद्भागवत में ही शौनक आदि महर्षियों ने कहा है- 'क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम्।' उस भगवान् विष्णु के क्षेत्र में हमलोग इस दीर्घ कालिक सत्र करने के लिए बैठे हैं।

स्वर्गाय शब्द भगवान् विष्णु का बोधक है इस अर्थ को बतलाते हुए श्रीधरस्वामी कहते हैं स्व: स्वर्गे गीयते इति स्वर्गाय: । अर्थात् स्वर्गलोक में जिनका गायन किया जाता है वे भगवान् विष्णु ही स्वर्गाय हैं । उनका ही लोक भक्तों का निवास स्थान है उस भगवान् विष्णु की प्राप्ति के लिए यह स्वर्गाय पद का अर्थ है ।

सहस्रसममासत० इस पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए वे कहते हैं- सहस्रं समाः संवत्सराः अनुष्ठनकालो यस्य तत् सत्रसंज्ञकं कर्मोद्दिश्य आसते = उपविविशुः' अर्थात् एक हजार वर्ष जिसके अनुष्ठान का समय है उस सत्र संज्ञक कर्म को करने के लिए वे ऋषि बैठा गये।

अथवा आसत शब्द का अर्थ है किए । आलंभैत, निर्वपित उपयन्ति इत्यादि पदों के समान प्रत्यय का उच्चारण मात्र ही अर्थ होने के कारण आस धातु का अर्थ आसत पद में विवक्षित हीं है ॥४॥

त एका तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः । संत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥५॥

अन्वयः ते तु एकदा प्रातर्हुतहुताग्नयः मुनयः सत्कृतुम् आसीनम् सूतम् इदम् आदरात् पप्रच्छु ।।५।।

अनुवाद— एक दिव वे ऋषिगण प्रात:काल अग्निहोत्र आदि कृत्यों से निवृत्त होकर बैठे हुए सूतजी का पूजन किए और उनसे आदर पूर्वक पूछे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सायंकाले हुता एव हुता अग्रयो यैस्ते । यद्वा हूयत इति हुतं दध्यादि तेन हुता अग्रयो यैस्ते । यद्वा प्रात:काले हुता एव हुता अग्रयो यैस्ते । अनेन नित्यनैमित्तिकहोमसाकल्यं दर्शितम् । इदं वक्ष्यमाणमादरात्पप्रच्छु: ।।५।।

भाव प्रकाशिका

सायंकाल ही जिस अग्नि में जिन लोग ने होम कर दिया था वे ऋषिगण हुताग्नि शब्द वाच्य हैं। यहा० इत्यादि- अथवा जिन का होम किया जाता है उन दिध इत्यादि से जिन लोगों ने होम कर दिया था। अथवा प्रात:काल ही जिन लोगों ने अग्नि में होम कर दिया था उन ऋषियों ने। इस तरह से हुताग्नयः पद के द्वारा नित्य तथा नैमित्तिक आदि सभी होमों को सूचित किया गया है। जिन बातों को आगे कहा जाना है उन बातों को आदर पूर्वक ऋषियों ने सूतजी से पूछा।।५।।

ऋषय ऊचु:

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ । आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥६॥

अन्वयः— हे अनघ ! त्वया खलु सेतिहासानि पुराणानिः यानि उत धर्मशास्त्राणि तानि अपि अधीतानि आख्यातानि अपि ।।६।।

ऋषियों ने कहा

अनुवाद हे निष्पाप सूतजी ! आपने इतिहासों के साथ सभी पुराणों को तथा जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उन सबों की व्याख्या भी की है ।

भावार्थ दीपिका

विविदिषितानर्थान्प्रष्टुं सूतस्य सर्वशास्त्रज्ञानातिशयमाहु:- त्वयेति त्रिभि: श्लोकै: । इतिहासो महाभारतादिस्तत्सिहतानि। न केवलमधीतानि अपित्वाख्यातान्यपि व्याख्यातानि च । उत अपि यानि धर्मशास्त्राणि तान्यपि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जिन अर्थों को जानना अभिप्रेत है उन अर्थों को पूछने के लिए सूतजी के सभी शास्त्रों के ज्ञानों के आतिशय्य

को उनलोगों ने त्वया खलु॰ इत्यादि तीन श्लोकों से कहा है। इतिहास शब्दसे महाभारत, रामायण इत्यादि को कहा गया है। उन इतिहासों के साथ पुराणों का आपने अध्ययन किया है। केवल आपने अध्ययन ही नहीं किया है, अपितु उन सबों की व्याख्या भी आपने की है, यह आख्यातान्यिप पद का अर्थ है। धर्मशास्त्राणि यान्युत इसका अर्थ है कि केवल इतिहासों और पुराणों का ही नहीं अपितु जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों की भी आपने व्याख्या की है।।६।।

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः। अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥७॥ वेत्य त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुत्रहात्। ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥८॥

अन्वयः— वेदविदाम् श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः अन्ये च मुनयः परावरिवदः यानि विदुः हे सूत त्वम् तदनुग्रहात् तत् सर्वं वेत्थ । स्निग्धस्य शिष्यस्य उत गुरवः गुह्यम् अपि ब्रूयुः ।।७–८।।

अनुवाद — वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् बादरायण ने तथा दूसरे जो पर तत्त्व एवं अवर तत्त्व के ज्ञाता हैं उन मुनियों ने, जिन विषयों को जाना है, उन सभी ज्ञानों को आप वास्तविक रूप से जानते हैं, क्योंकि गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यों को गुप्त से गुप्त भी अर्थों को बता दिया करते हैं ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

किंच यानीत्यादि । विदां विदुषां मध्ये श्रेष्ठो व्यासो यानि वेद । परावरे सगुणनिर्गुणे ब्रह्मणी विदन्तीति तथा ।।७।। वेत्थ जानासि । सौम्य हे साघो । तेषामनुग्रहात् । तत्त्वतो ज्ञाने हेतुमाह ब्रूयुरिति । स्निग्धस्य प्रेमवत: उत एव । गुह्यं रहस्यमपि ब्रूयुरेव ।।८।।

भावप्रकाशिका

किञ्च इत्यादि- विदाम् पद का अर्थ है विद्वानों में, अर्थात् महर्षि बादरायण वेद के विद्वानों में श्रेष्ठ हैं। वे जिन अर्थों को जानते हैं। परावरविदः पद के पर शब्द से निर्गुण ब्रह्म और अवर शब्द से सगुण ब्रह्म को कहा गया है। उन दोनों प्रकार के ब्रह्म को जानने वालों को परावरविद् कहा गया है। वेत्थ पद का अर्थ है आप जानते हैं। सौम्य पद का अर्थ है हे साधु पुरुष ! उन सभी ऋषियों की कृपा से आप जानते हैं। ऋषियों द्वारा किए जाने वाले अनुग्रह के कारण ब्रयु इत्यादि के द्वारा कहा गया है। यह स्निग्ध पद का अर्थ है प्रेमी, उत्त शब्द एवार्थक है। गृह्मपि का अर्थ है अत्यन्त गोपनीय भी अर्थ को बतला ही देते हैं। 19-८।।

तत्र तत्राञ्चसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् । पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥

अन्वयः— हे आयुष्मन् तत्र-तत्र अञ्जसा पुंसाम् एकान्ततः श्रेयः यद्विनिश्चितम् तत् नः शंसितुम् अर्हसि ।।९।। अनुवाद— हे आयुष्मन् ! उन सभी शास्त्रों में संसारी जीवों के लिए नियमतः कल्याणकारी रूप से आप जो निश्चित किए हों उसको आप हमलोगों को बतलायें ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अञ्जसा ग्रन्थार्जवेन । एकान्ततः श्रेयोऽव्यभिचारि श्रेयः साधनम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

मूल के **अञ्चसा** पद का अर्थ है ग्रन्थानुसार सरलता पूर्वक । **एकान्ततः** पद का अर्थ है नियमतः कल्याण का साधन ॥९॥

टिप्पणी— इस अध्याय में सूतजी के प्रति शौनकादि महर्षियों ने छह प्रश्नों को किया है जीवों का नियमतः

कल्याणकारी साधन क्या है ? अवतारों का प्रयोजन क्या हैं ? अवतारों के कर्म क्या हैं ? किस अवतार की कथा कैसी है ? कृष्णावतार के चरित का वर्णन और भगवान् के अपने लोक में चले जाने पर धर्म किसके शरण में गया ? कहा भी गया है—

पुंसामेकान्ततः श्रेयश्चावतारप्रयोजनम् । तस्य कर्माण्यपि तथा चावतार कथा अपि ।। कृष्णवतार चरितं, धर्मः कं शरणं गतः।

उन प्रश्नों में से पुसामेकान्ततः श्रेयः से लेकर येनात्मा सम्प्रसीदित पर्यन्त पहला प्रश्न वर्णित हैं। प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः । मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपहुताः ॥१०॥

अन्वयः— हे सभ्य ! अस्मिन् कलौ युगे, जनाः प्रायेण अल्पायुषः मन्दाः सुमन्दमतयः मन्दभाग्या, उपद्वृताः ॥१०॥ अनुवाद— हे साधो ! इस कलियुग में लोग प्रायः अल्पआयु वाले, कल्याण के साधनों का अनुष्ठान करने में आलसी, मन्दबुद्धि वाले, और अनेक प्रकर के उपद्रवों से ग्रस्त रहते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अन्येऽपि बहुना कालेन बहुशास्त्रश्रवणादिभिर्विनिश्चिन्वन्तु नेत्याहु:- प्रायेणेति । हे सभ्य साघो, अस्मिन्युगे कलावल्पायुषो जनास्तत्रापि मन्दा अलसास्तत्रापि सुमन्दमतयस्तत्रापि मन्दभाग्या विघ्नाकुलास्तत्राप्युपद्गुता रोगादिभि: ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि दूसरे लोग भी बहुत समय में और अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके कल्याण के साधन का निश्चय कर लें तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि महर्षियों ने कहा- प्रायेण इत्यादि- हे सभ्य = हे साधो ! इस किलयुग में लोग अल्पायु हो गये हैं। उस पर भी वे मन्द अर्थात् आलसी हो गये हैं। यही नहीं वे मन्दबुद्धि वाले तथा मन्दभाग्य वाले हो गये हैं। साथ-ही-साथ वे रोग आदि के कारण सदा उपद्रव ग्रस्त बने रहते हैं।।१०।।

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः। अतः साघोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्धधानानां येनात्मा संप्रसीदति ॥११॥

अन्वयः— (शास्त्रणि च) भूरीणि, भूरिकर्माणिः विभागशः श्रोतव्यानि, अतः हे साधो ! अत्र यत्सारम् तत् मनीषया समुद्धृत्य श्रद्धानानां ब्रूहि, येनात्मा संप्रसीदित ।।११।।

अनुवाद — वे शास्त्र भी अनेक हैं, उनमें अनेक प्रकार के कर्मों का साधन रूप से वर्णन है। यहीं नहीं वे इतने बड़े हैं कि उनका विभाग करके ही श्रवण किया जा सकता है। अतएव हे साधो ! आप अपनी बुद्धि के अनुसार उनके सार भाग को हमलोगों को बतलायें। हम सभी श्रद्धालु हैं। जिससे की हमारे अन्त:करण की शुद्धि हो सके उसको आप हमलोगों को बतलाएँ।

भावार्थदीपिका

न च बहुशास्त्रश्रवणेऽपि तावतैव फलसिद्धिरित्याहुः- भूरीणीति । भूरीणि कर्माण्यनुष्टेयानि येषु तानि । समुद्धृत्य यथावदुद्धृत्य । येनोद्धृतवचनेनात्मा बुद्धिः संप्रसीदित सम्यगुपशाम्यित ।।११।।

भाव प्रकाशिका

केवल अनेक शास्त्रों के श्रवण मात्र से ही कल्याणकारी साधन का निश्चय हो जाय तो ऐसी भी बात नहीं है। इस बात को बतलाते हुए ऋषिगण कहते हैं- भूरीणि० इत्यादि- उन शास्त्रों में आत्मकल्याण के साधन रूप से अनेक अनुष्ठेय कर्म बतलाये गये हैं। मूल के समुद्धृत्य पद का अर्थ है ज्यों के त्यों उन शास्त्रों से निकाल कर, हमें बतलायें। जिस उपदिष्ट वचन के द्वारा हमलोगों का अन्तः करण अच्छी तरह से निर्मल हो जाय ॥११॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतांपतिः। देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥

अन्वयः— हे सूत ! ते भद्रम्, सात्त्वतां पितः भगवान्, देवक्याम् वसुदेवस्य, यस्य चिकीर्षया जातः तत् त्वं जानासि ।।१२।।

अनुवाद हे सूतजी आपका कल्याण हो, आप यह भी जानते हैं कि यदुवंशियों के स्वामी श्रीभगवान् किस कार्य को करने के लिए माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरं- सूत जानासीरित पञ्चभिः । भद्रं त इत्यौत्सुक्येनाशीर्वादः । (विस्तरेणाशीर्वादवचनेन विष्णुकथाविधातो भवतीति संग्रहेणोक्तम् । तथाहि 'सा हानिस्तन्महिच्छद्रं स मोहः स च विभ्रमः । यन्मुहूर्त क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत् ।' इति) भगावान्निरितशयैश्वर्यादिगुणः । सात्त्वतां सच्छब्देन सत्त्वमूर्तिभंगवान्स उपास्यतया विद्यते येषामिति सत्त्वन्तो भक्ताः । स्वार्थेऽण् राक्षसवायसादिवत् । तस्य चाश्रवणमार्षम् । तदेवं सत्वन्त इति भवति । तेषां पितः पालकः । यस्यार्थिवशेषस्य चिकीर्षया वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यां जातः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सूतजानासि इत्यादि पाँच श्लोकों से श्रीभगवान् के अवतारों के प्रयोजन के विषय में प्रश्न किया गया है। भद्रम् पद के द्वारा महर्षियों ने उत्सुकता वशात् सूतजी को आशीर्वाद दिया है। यदि वे विस्तार से (सूतजी) को आशीर्वाद देने लगते तो भगवान् विष्णु की कथा को आगे बढ़ाने में बाधा होती अतएव भद्रम् (आपका कल्याण हो) इस पद के द्वारा अत्यन्त संक्षेप में उन लोगों ने आशीर्वाद दिया है। तथा हि॰ इत्यादि- कहा भी गया है—

सा हानि स्तन्महच्छिद्रं स मोह सा च विभ्रमः । यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्तयेत् ।।

अर्थात् जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण में भगवान् वासुदेव का चिन्तन न किया जाय वही जीवन की सबसे बड़ी हानि है । जीवन का सबसे बड़ा विघ्न है, वह जीवन का मोह है और वही जीवन का सबसे बड़ा विकार है ।

भगवान् इत्यादि श्रीभगवान् निःसीम ऐश्वर्य और निःसीम कल्याण गुणों से सम्पन्न हैं । सात्वताम् पद के सत् से सत्त्वमूर्ति भगवान् कहे गये हैं । वे भगवान् ही जिनके उपास्य है वे सत्त्वन्त पद वाच्य भक्त हैं । जिस तरह राक्षस वायस आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय करके इन शब्दों की सिद्धि हुयी हैं उसी तरह सत्त्वन्त पद बना है । वैदिक प्रयोग होने के कारण उसका अण् श्रवण नहीं होता है । उनके पालक होने के कारण भगवान् सात्वताम् पित हैं । जिस कार्य विशेष को करने के लिए भगवान् माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए उसे आप जानते हैं ॥१२॥

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् । यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥

अन्वयः— हे अङ्ग शुश्रूषमाणानां तत् अनुवर्णितुम् अर्हीस । यस्य अवतारः भूतानां क्षेमाय च भवाय च भवित ।।१३।। अनुवाद— हे तात ! उसे हम सुनना चाहते हैं, अतएव उसे आप हमलोगों को सुनायें; क्योंकि श्रीभगवान् का अवतार जीवों के कल्याण के लिए तथा उनकी प्रेममयी समृद्धि के लिए होता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे सूत, तन्नोऽनुवर्णयितुमर्हिस । सामान्यतस्तावद्यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय पालनाय । भवाय समृद्धये ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

हे सूतजी ! उसे आप हमलोगों को सुनायें, क्योंकि सामान्यतः श्रीभगवान् के अवतार जीवों के क्षेम अर्थात् पालन और समृद्धि के लिए होते हैं ॥१३॥

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् । ततः सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम् ॥१४॥

अन्वयः चोराम् संसृतिम् आपन्नः नरः विवशः सन् यन्नाम गृणन् ततः सद्यः विमुच्येत । यत् स्वयं भयम् विभेति ।।१४।। अनुवाद इस भयङ्कर सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ भी जीव यदि विवश भी होकर श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह शीघ्र ही उस विपत्ति से मुक्त हो जाता है; क्योंकि भगवान् से तो भय भी भयभीत रहता हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्प्रभावमनुवर्णयंतस्तद्यशः श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति- आपन्न इति त्रिभिः । संसृतिमापन्नः प्राप्तः । विवशोऽपि गृणन्। ततः संसृते । अत्र हेतुः- यद्यतो नाम्रो भयमपि स्वयमेव बिभेति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

तत् प्रभावम् इत्यादि - श्रीभगवान् के प्रभाव का वर्णन करते हुए ऋषियों ने श्रीभगवान् के यश को सुनने की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए आपन्नः इत्यादि तीन श्लोकों से कहा - संसृतिमापन्नः पद का अर्थ है सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ । विवशोऽपि गृणन् का अर्थ है विवश हो कर भी यदि भगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो उसी के कारण वह सृष्टि चक्र से छूट जाता है । उसका कारण है कि श्रीभगवान् के नाम से तो भय स्वयम् भयभीत रहता है ॥१४॥

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः । सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥१५॥

अन्वयः हे सूत ! यत्पादसंश्रयाः प्रशमायनाः मुनयः उपस्पृष्टाः सद्यः पुनन्ति, स्वर्धुन्यापः तु अनुसेवया ।।१५।। अनुवाद हे सूतजी ! जिन श्रीभगवान् के चरणों के शरण में रहने वाले परम शान्त मुनिजन स्पर्श कर लेने मात्र से शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं और गङ्गाजी का जल तो दीर्घकाल तक सेवन करने से पवित्र बनाता हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य पादः संश्रयो येषामत एव प्रशमोऽयनं वर्त्म आश्रयो वा येषां ते मुनय उपस्पृष्टाः सिन्निधिमात्रेण सेविताः सद्यः पुनन्ति । स्वर्धुनी गङ्गा आपस्तु तत्पादान्निःसृता नतु तत्रैव तिष्ठन्त्यतस्तत्संबन्धेनैव पुनन्त्योऽप्यनुसेवया पुनन्ति नतु सद्य इति मुनीनामुत्कर्षोक्तिः ।।१५१।

भाव प्रकाशिका

किञ्च इत्यादि - श्रीभगवान् के चरण कमल ही जिन लोगों का आश्रय है वे मुनि प्रशमायन हैं। अत्यधिक शान्ति सम्पन्न हैं। प्रशमायन अर्थात् शान्तिमय जिनका अर्थ है, उन मुनि जनों की सिन्नध में रहकर उनका सेवन करने मात्र से ही वे मुनिजन शीघ्र ही पिवत्र बना देते हैं। गङ्गाजी का जल तो श्रीभगवान् के चरणों से निकला है। वह जल श्रीभगवान् के चरणों में ही नहीं रहता है अतएव गङ्गाजी का जल श्रीभगवान् के चरणों का सम्बन्ध होने के कारण पिवत्र बनाने का काम करता है। किञ्च गङ्गाजी का जल तब पिवत्र बनता है जब कि उसका सेवन दीर्घकाल तक किया जाय। वह शीघ्र पिवत्र नहीं बनाता है इसतरह से गङ्गाजी के जल की अपेक्षा मुनियों की उत्कृष्टता बतलायी गयी है।।१५॥

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः । शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥

अन्वयः— तस्य भगवतः को वा शुद्धिकामः पुण्य श्लोकेङ्घ कर्मणः तस्य भगवतः कलिमलापहम् यशः न शृणुयात् ॥१६॥

अनुवाद अपनी आत्मशुद्धि चाहने वाला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो जिनकी लीलओं का पुण्यात्मा पुरुष गायन किया करते हैं उन श्रीभगवान् के यश को नहीं सुनना चाहेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यश्लोकैरीड्यानि स्तव्यानि कर्माणि यस्य तस्य यशः । कलिमलापहं संसारदुःखोपशमनम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

पुण्यश्लोकै **इत्यादि** - पुण्यात्मा पुरुषों के द्वारा जिनके कर्म स्तुति करने योग्य हैं उन श्रीभगवान के यश को कौन नहीं सुनना चाहेगा ? क्योंकि श्रीभगवान् का यश तो कलिकाल के मल स्वरूप दु:खों को विनष्ट कर देने वाला है ॥१६॥

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः । ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥१७॥

अन्वयः — लीलया कला दधतः तस्य उदाराणि कर्माणि सूरिभिः परिगीतानि तानि श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ।।१७।।

अनुवाद जो भगवान् लीला से ही अवतारों को धारण करते हैं उनके उदार कर्मों का गायन नारदादि देवर्षियों ने विस्तार से किया है। उसको आप श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें।।१७।।

भावार्थ दीपिका

प्राश्नन्तरं- तस्येति । उदाराणि महन्ति विश्वसृष्ट्यादीनि । सूरिभिर्नारदादिभिः । कला ब्रह्मरुद्रादिमूर्तीः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

तस्य इत्यादि- इस श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कर्म के विषय में मुनियों ने प्रश्न किया है । उदाराणि पद के द्वारा भगवान् के विश्वसृष्टि इत्यादि महान् कर्मों को कहा गया है । सूरि शब्द से नारद आदि महर्षियों को कहा गया है । कला शब्द के द्वारा श्रीभगवान् की ब्रह्मारुद्र आदि मूर्तियों को कहा गया है । अर्थात् ब्रह्मा रुद्र आदि भी श्रीभगवान् की मूर्ति विशेष हैं ॥१७॥

अथाख्याहि हरेर्घीमन्नवतारकथाः शुभाः । लीला विद्यतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥

अन्वयः— हे धीमन् अथ आत्ममायया स्वैरम् लीलाविदधतः ईश्वरस्य हरेः शुभाः अवतारकथाः आख्याहि ।।१८।। अनुवाद हे महाबुद्धिमान् सूतजी इसके पश्चात् अपनी योगमाया से अपनी इच्छा के अनुसार लीला करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि के अवतार की कथा का आप वर्णन करें ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अथेति प्रश्नान्तरे । अवतारकथाः स्थित्यर्थमेव तत्तदवसरे ये मत्स्याद्यवतारास्तदीयाः कथाः स्वैरं लीलाः कुर्वतः । श्रीकृष्णावतारप्रयोजनप्रश्नेनैव तच्चरितप्रश्नोऽपि जात एवेति ज्ञातव्यम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे प्रश्न के पश्चात् चौथे प्रश्न में अवतार की कथा को सूचित करने के लिए मूल में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है। अवतारकथा: इत्यादि- अवतारों की कथा जगत् की स्थिति के ही लिए श्रीभगवान् भिन्न- भिन्न अवसरों पर मत्स्य आदि अवतारों को धारण करते हैं। विभिन्न अवतारों में भगवान् जो अपनी इच्छा के

अनुसार लीला करते हैं, उन सबों का आप वर्णन करें। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों के प्रयोजन विषयक प्रश्न के ही द्वारा उन अवतारों के चरित के विषय में प्रश्न हो गया यह जानना चाहिए।।१८।।

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे । यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥

अन्वयः वयं तु उत्तमश्लोक विक्रमे न वितृप्यामः । यत् शृण्वताम् रसज्ञानाम् पदे-पदे स्वादु स्वादु ।।१९।। अनुवाद हमलोगों को पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से तृप्ति नहीं होती है; क्योंकि जो रसों के ज्ञाता होते हैं उन लोगों को श्रीभगवान् की लीलाओं में प्रत्येक पद में नये-नये रसास्वाद की अनुभूति होती है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अत्यौत्सुक्येन पुनरिप तच्चिरितान्येव श्रोतुमिच्छतस्तत्रात्मनस्तृप्त्यभावमावेदयन्ति– वयं त्विति । योगयागादिषु तृप्ताः स्म । उद्गच्छिति तमो यस्मात्स उत्तमस्तथाभूतः श्लोको यस्य तस्य विक्रमे तु विशेषेण न तृप्यामोऽलिमिति न मन्यामहे । तत्र हेतुः– यिद्वक्रमं शृण्वताम् । यद्वा अन्ये तृप्यन्तु नाम वयं तु नेति तु शब्दस्यान्वयः । अयमर्थः– त्रेघा ह्यलंबुद्धिर्भवित उदरादिभरणेन वा, रसाज्ञानेन वा, स्वादुविशेषाभावाद्वा । तत्र शृण्वतामित्यनेन श्रोत्रस्याकाशत्वादभरणिमत्युक्तम् । रसज्ञानािमत्यनेन चाज्ञानतः पशुवनृप्तिर्निराकृता । इक्षुभक्षणवद्रसान्तराभावेन तृप्तिं निराकरोति । पदेपदे प्रतिक्षणं स्वादुतोऽपि स्वादु ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अत्यौत्सुक्येन ॰ इत्यादि — अत्यधिक उत्सुकता होने के कारण पुनः श्रीभगवान् के चिरतों को सुनने की इच्छा करते हुए ऋषिगण अपनी आत्मा की तृप्ति के अभाव को ही निवेदित करते हुए वयम् तु ॰ इत्यादि — श्लोक को कहते हैं । हमलोग योग तथा याग इत्यादि के विषय में तो तृप्त हो गये हैं । उत्तमश्लोक पद की व्युत्पित्त बतलाते हुए कहते हैं । जिसमें से अज्ञान स्वरूप अन्धकार निकल गया है उसे उत्तमाः कहते हैं । इस तरह का जिसका श्लोक अर्थात् यश है उसे उत्तमश्लोक कहते हैं । ऐसे उत्तमश्लोक श्रीभगवान् ही हैं । उन श्रीभगवान् के विक्रम अर्थात् लीलाओं के विषय में हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है । अर्थात् हम शौनकादिकों के हृदय में ऐसा कभी नहीं होता है कि हमलोगों ने श्रीभगवान् की लीलाओं को बहुत सुन लिया अब उन सबों को सुनना अनावश्यक है । उस तृप्ति के अभाव का कारण बतलाते हुए कहते हैं — यद् विक्रमं शृण्वताम् ० इत्यादि । श्लोक में प्रयुक्त तु शब्द का यह भी अभिप्राय हो सकता है कि दूसरे लोग भले ही तृप्त हों किन्तु हमलोगों को तृप्ति नहीं होती है ।

अथमर्थ: इत्यादि- कहने का अभिप्राय यह है कि अलम् बुद्धि तीन प्रकार से होती है— १. पेट इत्यादि के भर जाने पर अलम् बुद्धि होती है । २. रस का ज्ञान नहीं होने पर अलम् बुद्धि होती है और ३. जानने योग्य वस्तु में स्वादुत्व विशेष का अभाव होने पर भी अलम् बुद्धि होती है ।

तत्र शृण्वताम् इस पद के द्वारा यह भी अर्थ सूचित होता है कि आकाश विशेष को ही श्रोत्र शब्द से अभिहित किया जाता है। जिस तरह आकाश कभी भरता नहीं है उसी तरह श्रीभगवान् के यशों का श्रवण करने से हमलोगों के कान भरते नहीं है। अतृप्त ही रह जाते हैं। रसज्ञानाम् पद के ज्ञानाभाव के कारण होने वाली पशु की वृत्ति का निषेध किया गया है। इश्व भक्षणवत् इत्यादि— जैसे ईख चूसने वाले को चूकि एक ही रस की प्राप्ति होती है उसमें दूसरे रस की प्राप्ति नहीं होती है अतएव ईख चूसने वाले को तो तृप्ति हो जाती है किन्तु श्रीभगवान् की प्रत्येक लीलाओं में नये-नये ही रस की अनुभूति होती है। अतएव प्रत्येक लीलाएँ प्रतिक्षण नये-नये ही रस से युक्त प्रतीत होती हैं अतएव उन सबों का श्रवण करने से तृप्ति नहीं होती है। ॥१९॥

कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः । अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥२०॥

अन्वयः गूढः कपटमानुषः भगवान् केशवः, रामेण सह अतिमर्त्यानि वीर्याणि कृतवान् किल ।।२०।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण अपने को छिपाये हुए थे अतएव वे मनुष्य के समान प्रतीत होते थे । किन्तु वे बलरामजी के साथ मिलकर उन्होंने ऐसी लीलाएँ भी की जिन सबों को कोई मनुष्य नहीं कर सकता है ॥२०॥

भावार्थ:दीपिका

अतः श्रीकृष्णचरितानि कथयेत्याशयेनाहुः- कृतवानिति । अतिमर्त्यानि मर्त्यानितक्रान्तानि गोवर्धनोद्धरणादीनि । मनुष्येष्वसंभावितानीत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

चूिक भगवान् श्रीकृष्ण के चिरत अत्यन्त स्वादिष्ट हैं अतएव आप भगवान् श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का वर्णन करें। इस बात को शौनकादि महर्षियों ने सूतजी से कृतवान् इत्यादि श्लोक से कहा है अतिमर्त्यानि पद का अर्थ है जिसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता है जैसे गोवर्धन पर्वत को धारण करना इत्यादि। ऐसे कर्म मनुष्यों के लिए असंभावित हैं।।२०।।

त्वं नः संदर्शितो घात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् । कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णघार इवार्णवम् ॥२२॥

अन्वयः— पुंसां सत्त्वहरं दुस्तरं कलिं निस्तितीर्षतां नः दुस्तरम् अर्णवं निस्तिीर्षतां कृते कर्णधार इव त्वं नः धात्रा संदर्शितः ।।२२।।

अनुवाद यह किलयुग मनुष्यों के अन्त:करण की पवित्रता और शक्ति को विनष्ट कर देने वाला है अतएव इसको पार कर पाना हमलोगों के लिए कठिन है। जैसे दुस्तर समुद्र को पार करने की इच्छा वालों के लिए कोई कर्णधार मिल जाय उसी तरहसे ब्रह्माजी ने आपसे हमलोगों को मिला दिया है। अब आपके मुख से श्रीहरि की कथा को सुनते-सुनते हमलोग इसको आसानी से पार कर लेंगे।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अस्मिश्च समये त्वद्दर्शनमीश्वरेणैव संपादितमित्यभिनन्दन्ति – त्विमिति । कलिं संसारं निस्तर्तुमिच्छताम् । अर्णवं तितीर्षतां कर्णधारो नाविक इव ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस समय तो आपका दर्शन श्रीभगवान् ने ही काराया है। इस तरह से सूतजी के दर्शन की प्रशंसा करते हुए ऋषिगण त्वम् इत्यादि श्लोक को कहते हैं। इस कलिरूपी संसार को पार करने की इच्छा वाले हमलोगों के लिए आप समुद्र पार करने की इच्छा वालों को कर्णधार अर्थात् नाविक के समान मिल गये हैं।।२२।।

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि । स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ ू

अन्वयः— धर्मवर्मणि ब्रह्मण्ये योगेश्वरे कृष्णे स्वां काष्ठाम् उपेते अधुना धर्मः कं शरणं गतः ।।२३।।

अनुवाद धर्म रक्षक, ब्राह्मणों के भक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के, अपने धाम में पधार जाने पर धर्म ने किसकी शरण ली है ?॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के नैमिषोपाख्यान के अन्तर्गत पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पुनः प्रश्नान्तरं- ब्रूहीति । धर्मस्य वर्मणि कवचवद्रक्षके । स्वां काष्ठां मर्यादाम् । स्वस्वरूपमित्यर्थः । अस्य चोत्तरं कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह इत्ययं श्लोकः ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने फिर प्रश्न किया है **ब्रूहि इत्यादि** धर्मवर्मवर्मिण इस पद का अर्थ है कि जिस तरह कवच कवचधारी की रक्षा करता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करते हैं। स्वां काष्ठाम् का अर्थ है अपनी मर्यादा को प्राप्त कर लेने पर अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर । इस छठे प्रश्न का उत्तर तीसरे अध्याय के कृष्णे स्वधामोपगते० इत्यादि ४३-४४ श्लोकों के द्वारा दिया गया हैं।।२३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।



दूसरा अध्याय

भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य

व्यास उवाच

इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः । प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १॥

अन्वयः इति विप्राणाम् सम्प्रश्नसंहष्टः रौमहर्षणिः तेषां वचः प्रतिपूज्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

महर्षि व्यास ने कहा

अनुवाद— इस तरह से उन ब्राह्मणों के द्वारा किए गये प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर रोमहर्षण नामक सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमेऽध्याये षट् प्रश्ना मुनिभिः कृता । द्वितीये तूत्तरं सूतश्चतुर्णामाह तेष्वथ ।।१।। विप्राणां इत्येवंभूतैः सम्यक् प्रश्नैः सम्यग् हृष्टो रोमहर्षणस्य पुत्र उग्नश्वास्तेषां वचः प्रतिपूज्य सत्कृत्य प्रवक्तुमुपचक्रमे उपक्रान्तवान् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पहले अध्याय में मुनियों ने छह प्रश्नों को किया है। उनमें से चार (शास्त्रों के सार, श्रीभगवान् के पराक्रम, श्रीभगवान् द्वारा अवतारों में किए जाने वाले कर्म तथा पालन) विषयक प्रश्नों का उत्तर इस दूसरे अध्याय में सूतजी ने दिया है। विप्राणाम् इत्यादि शौनकादि ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से अच्छी तरह से किए गये प्रश्नों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए रोमहर्षण सूत के पुत्र उप्रश्रवा सूत ने उन ब्राह्मणों के प्रश्नों का समादर करके उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥१॥

सूत उवाच

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव । पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥२॥ अन्वयः— अनुपेतम् अपेतकृत्यं यं प्रव्रजन्तम् विरहकातरः द्वैपायनः पुत्रेति आजुहाव । तन्मयतया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिम् आ नतोऽस्मि ।।२।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद जिस समय शुकदेवजी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं सम्पन्न हो पाया था, तथा जिनको वैदिक कर्मों को करने का अवसर भी नहीं आया था, उनको संन्यास ग्रहण करने के उद्देश्य से अकेले वन में जाते हुए देखकर विरह से व्याकुल व्यासजी पुत्र ! पुत्र ! कहकर पुकारने लगे । उस समय शुकदेवजी के अपने भीतर व्याप्त होने के कारण उनकी ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया, उन सभी जीवों के हृदय में निवास करने वाले श्रीशुकदेव मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवचनस्योपक्रमो नाम गुरुदेवतानमस्कार इति । तमाह- यिमिति त्रिभिः । तत्र स्वगुरोः शुकस्यैश्वर्यं तच्चिरितेनैव द्योतयत्राह- यिमिति । यं प्रव्रजन्तं संन्यस्य गच्छन्तम् । अनुपेतं मामुपनयस्वेत्युपनयनार्थमाचार्यमनुपसत्रम् । यद्वा केनाप्यनुपेतमननुगतम्। एकािकनिमत्यर्थः । तत्र हेतुः- अपेतकृत्यं कृत्यशून्यं कर्ममार्गेऽप्रवर्तमानं नैष्ठिकत्वात् । द्वैपायनो व्यासो विरहात्कातरो भीतः सन् पुत्र ३ इति प्लुतेनाजुहावाहूतवान् । दूरादाह्वाने प्लुते सत्यिप सिन्धरार्षः । तदा तन्मयतया शुकरूपतया तरवोऽभिनेदुः प्रत्युत्तरमुक्तवन्तः । पितुः स्नेहानुबन्धपरिहाराय यो वृक्षरूपेणोत्तरं दत्तवािनत्यर्थः । तं मुनिमानतोऽस्मि। तन्मयत्वोपपादनाय विशेषणम् । सर्वभूतानां हन्मनः अयते योगबलेन प्रविशतीित सर्वभूतहृदयस्तम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

उस समय अपने भीतर शुकदेवजी के व्याप्त होने के कारण शुकदेव रूप से वृक्षों ने शुकदेवजी की ओर से व्यासजी को उत्तर दिया। अर्थात् पिता के स्नेह रूपी बन्धन को दूर करने के लिए शुकदेवजी ने वृक्षरूप से उनको उत्तर दिया। उन तत्त्व मनन परायण शुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ। शुकदेवजी के तन्मयत्व का प्रतिपादन करने के लिए सर्वभूतहृदयम् यह विशेषण दिया गया है। योग के बल से सभी भूतों के मन में प्रवेश कर जाने वाला होने के कारण शुकदेवजी को सर्वभूत हृदयम् कहा गया है।।२।।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमिततितीर्षतां तमोऽन्यम् । संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥३॥

अन्वयः यः स्वानुभावम् अखिलश्रुतिसारम्, अन्धं तमः अतितितीर्षताम् संसारिणाम् करुणया एकम् अध्यात्मदीपम् पुराणगुह्मम्, आह तम् मुनीनाम् गुरुम् व्याससूनुम् उपयामि ।।३।।

अनुवाद जिन शुकदेवजी ने भगवत् स्वरूप का अनुभव कराने वाले, सम्पूर्ण श्रुतियों के सार स्वरूप, घोर अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण इस संसार को पार करना चाहने वाले संसारी जीवों पर कृपा करके अद्भुत दीपक के समान इस श्रीमद्भागवत नामक रहस्यमय पुराण का वर्णन किया उन मुनियों के भी गुरु श्रीशुकदेवजी की मैं शरणागित करता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृपालुतां दर्शयत्राह— य इति । अन्धं गाढं तमः संसाराख्यमिततर्तुमिच्छताम् । पुराणानां मध्ये गुह्यं गोप्यम् । तत्र हेतुत्वेन चत्वारि विशेषणानि स्वो निजोऽसाधारणोऽनुभावः प्रभावो यस्य तत्स्वानुभावम् । अखिलश्रुतीनां सारम् । एकमिद्वतीयम्। अनुपमित्यर्थः । आत्मानं कार्यकारणसंघातमिधकृत्य वर्तमानमात्मतत्त्वमध्यात्मं तस्य दीपं साक्षात्प्रकाशकम् । उपयामि शरणं व्रजामि ।।३।।

भाव प्रकाशिका

तत्कृपालुताम् इत्यादि - श्रीशुकदेवजी की कृपालुता का वर्णन यः स्वानुभाव इत्यादि श्लोक से करते हैं । यह संसार अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण है । संसार में पड़े हुए जो संसारी जीव इससे बाहर निकलना चाहते हैं, उन संसारी जीवों पर कृपा करके शुकदेवजी ने इस पुराण का वर्णन किया है । पुराणगुह्यम् पद का अर्थ है कि यह पुराण सभी पुराणों में अत्यन्त गोपनीय है । इस पुराण की गोपनीयता का प्रकाशन चार विशेषणों से होता है । इस पुराण का अपना असाधारण प्रभाव है, अतएव यह स्वानुभाव है । सम्पूर्ण श्रुतियों का सार स्वरूप होना यह इस पुराण की दूसरी विशेषता है । इस पुराण के समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है । अतएव यह एक अर्थात् अद्वितीय है । अध्यात्मदीपम् का अर्थ है कार्य कारण समूह को अपना आश्रय बनाकर रहने वाली आत्मा को अध्यात्म कहते हैं । उस आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के कारण यह पुराण अध्यात्मदीप है। उपयामि पद का अर्थ है मैं शरणागित करता हूँ ॥३॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥४॥

अन्वयः— नारायणं, नरोत्तमं नरम्, सरस्वतीं देवीं, व्यासं चैव नमस्कृत्य ततः जयमुदीरयेत् ।।४।।

अनुवाद— मनुष्यों में श्रेष्ठ अवतार नर-नारायण को, सरस्वती देवी को तथा व्यासजी को नमस्कार करने के पश्चात् संसार तथा अन्त:करण पर विजय कराने वाले इस श्रीमद्भागवत नामक ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

जयत्यनेन संसारमिति जयो ग्रन्थस्तमुदीरयेदिति स्वयं तथोदीरयन्नन्यान्पौराणिकानुपशिक्षयित ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस ग्रन्थ का अध्ययन करके मनुष्य संसार पर तथा अपने अन्त:करण पर विजय प्राप्त कर सकता है। अतएव इस ग्रन्थ का नाम जय है। इसका उच्चारण कैसे करना चाहिए इस बात की शिक्षा सूतजी स्वयम् इस ग्रन्थ का उच्चारण करके दूसरे पौराणिकों को देते हैं।।४।।

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् । यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥५॥

अन्वयः मृनयः भवद्भिः यत् लोकमङ्गलम्, कृष्णसंप्रश्नः कृतः तदहं साधुपृष्टः, येन आत्मा सम्प्रसीदित ।।५।। अनुवाद हे मुनियों ! आपलोगों ने जो संसार का मङ्गल करने वाले भगवान् कृष्ण के विषय में प्रश्न किया है, वह आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे आत्मा (अन्तःकरण) पवित्र होता है ।।५।।

भावार्थदीपिका

तेषां वचः प्रतिपूज्येति यदुक्तं तत्प्रतिपूजनं करोति । हे मुनयः ! साधु यथा भवति तथाऽहं पृष्टः । यतो लोकानां मङ्गलमेतत् । यद्यतः कृष्णविषयः संप्रश्नः कृतः । सर्वशास्त्रार्थसारोद्धारप्रश्नस्यापि कृष्णे पर्यवसानादेवमुक्तम् ।।५।।

भावप्रकाशिका

इससे पहले प्रथम श्लोक में तेषां वचः प्रतिपूज्यः यह जो कहा है उसके अनुसार मुनियों की वाणी का समादर करते हुए सूतजी कहते हैं, हे मुनियों ! आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया हैं । क्योंकि यह तो संसारी जीवों के लिए मङ्गलमय है । आप लोगों ने यह प्रश्न श्रीकृष्ण के विषय में किया है । सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ के प्रकाशन से संबद्ध भी प्रश्न का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है यह सूतजी ने मुनियों से कहा ॥५॥ स वै पुंसां परो धर्मों यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदित ॥६॥ अन्वयः पुंसां स वै परमो धर्मः यतः अधोक्षजे अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिः भवति यया आत्मा सम्प्रसीदित ॥६॥

अनुवाद— मनुष्यों के लिए वही परम धर्म (सर्वश्रेष्ठ) धर्म है । जिससे श्रीभगवान् में निरन्तर बनी रहने वाली निष्काम भक्ति हो । जिस भक्ति से आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र यत्प्रथमं पृष्टं सर्वशास्त्रसारमैकान्तिकं श्रेयो ब्रूहिति तत्रोत्तरम् । स वै पुंसामिति । अयमर्थः- धर्मो द्विविधः । प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च । तत्र यः स्वर्गाद्यर्थः प्रवृत्तिलक्षणः सोऽपरः । यतस्तु धर्माच्छ्वणादरादिलक्षणा भक्तिर्भवित स परो धर्मः स एवैकान्तिकं श्रेय इति । कथंभूता । अहैतुकी हेतुः फलानुसन्धानं तद्रहिता । अप्रतिहता विघ्नैरनिभभूता ।।६।।

भाव प्रकाशिका

शौनकादि मुनियों ने सर्वप्रथम यह जो पूछा है कि आप सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ को बतलाइये उसी का उत्तर सूतजी ने सस वै पुंसाम् इत्यादि श्लोक से दिया है। कहने का अभिप्राय है कि धर्म दो प्रकार का होता है प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण। जो धर्म स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं वह प्रवृत्ति रूप अपर धर्म है। जो श्रीभगवान के चिरत के श्रवण तथा समादर आदि भिक्त स्वरूप धर्म होता है, वह पर धर्म है। वही मनुष्यों के लिए ऐकान्तिक कल्याण है। अब प्रश्न होता है कि वह भिक्त कैसी हो? तो उसका उत्तर है अहैतुकी अर्थात् फल विशेष की इच्छा से रहित हो। वह विध्नों के द्वारा अभिभूत भी नहीं होती हो।।६।। वासुदेवे भगवित भिक्तियोगः प्रयोजितः। जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ।।७।।

अन्वयः भगवित वासुदेवे प्रयोजित: भक्तियोग: अशु यद् ज्ञानं वैराग्यं च जनयित तदहैतुकम् ।।७।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव में जो भिक्त की जाती है, वह शीघ्र ही जिस ज्ञान तथा वैराग्य को उत्पन्न करती है, वह निष्काम होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इत्यादिश्रुतिभ्यो धर्मस्य ज्ञानाङ्गत्वं प्रसिद्धं तत्कुतो भक्तिहेतुत्वमुच्यते । सत्यम् तत्तु भक्तिद्वारेणेत्याह- वासुदेव इति । अहैतुकं शुष्कतर्काद्यगोचरमौपनिषदमित्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न उठता है कि 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।' अर्थात् ज्ञानी पुरुष वेदवाक्य के आलोक में यज्ञ, दान, तपस्या तथा उपवास के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं । इस तरह की श्रुतियों से स्पष्ट है कि धर्म ज्ञान का अङ्ग है, अतएवं उसको भिक्त को उत्पन्न करने वाला कैसे कहा जा सकता है ? तो उसका उत्तर है कि आपको बात पूर्ण सत्य नहीं है । ज्ञान भिक्त के द्वारा ही उत्पन्न होता है, इस बात को वासुदेवे इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है । अहैतुकम् कहकर यह बतलाया गया है वह ज्ञान शुष्क तर्क का विषय नहीं है। अतएव वह उपनिषद् प्रतिपाद्य ज्ञान है ॥७॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः । नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥८॥

अन्वयः— पुंसां स्वनुष्टितः यः धर्मः यदि विष्वक्सेनकथासु रतिं न उत्पादयति तदा केवलम् श्रम एव ।।८।।

अनुवाद— मनुष्यों के द्वारा अच्छी तरह से अनुष्ठित धर्म यदि श्रीभगवान् की कथा में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है, तो उस धर्म का अनुष्ठान केवल श्रम है, उससे कोई भी लाभ नहीं है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

व्यतिरेकमाह- धर्म इति । यो धर्म इति प्रसिद्धः स यदि विष्वक्सेनस्य कथासु रतिं नोत्पादयेत्तर्हि स्वनुष्ठितोऽपि सत्रयं

श्रमो ज्ञेयः । ननु मोक्षार्थस्यापि धर्मस्य श्रमत्वमस्त्येवात आह । केवलम् । विफलः श्रम इत्यर्थः । नन्वस्ति तत्रापि स्वर्गादिफलिमत्याशङ्क्र्यैवकारेण निराकरोति । क्षयिष्णुत्वात्र तत्फलिमत्यर्थः । ननु 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादिश्रुतेनं तत्फलस्य क्षयिष्णुत्विमत्याशङ्क्र्य हि शब्देन साधयित । 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति तर्कानुगृहीतया श्रुत्या क्षयिष्णुत्वप्रतिपादनात् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त धर्म के विपरीत बतलाते हुए सूतजी धर्म • इत्यादि श्लोक को कहते हैं । जो धर्म रूप से प्रसिद्ध है वह यदि श्रीभगवान् की कथाओं में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है तो अच्छी तरह से अनुष्ठान किए जाने पर भी उसको केवल श्रम ही जानना चाहिए । ननु मोक्षार्थस्थापि • इत्यादि - अब प्रश्न होता है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी जिस धर्म का अनुष्ठान किया जाता है, वह भी तो श्रमरूप ही है । अतएव सूतजी ने केवल शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् वह श्रम व्यर्थ है । नन्विस्त • इत्यादि - यदि यह कहें कि उसका भी फल स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति है ही तो इस शङ्का का निराकरण एव शब्द के द्वारा किया गया है । अर्थात् स्वर्गादि की प्राप्ति क्षयिष्णु है अतएव वह फल कोई फल नहीं है । ननु अक्षय्यम् • इत्यादि — यदि यह कहा जाय कि सकाम कर्मों का भी फल अक्षय होता है । श्रुति कहती हैं — अक्षय्यं ह वै चातुर्मासस्य याजिन: सुकृतं भवित । अर्थात् चातुर्मास्य आदि सकाम कर्मों का फल भी अक्षय होता है । इस तरह की श्रुतियाँ सकाम कर्मों का फल अक्षय बतलाती हैं । अतएव स्वर्गादि फल क्षयिष्णु नहीं है । तो स्वर्गादि फलों की क्षयिष्णुता की सिद्धि हि पद के द्वारा की गयी है ।

तद् यथेह कर्मचितो लोक: क्षीयत एवमेवामूत्र पुण्यचितो लोक: क्षीयते । अर्थात् जिस तरह कर्मों से अर्जित लौकिक वस्तु क्षीण होती हैं उसी तरह पुण्यकर्मों के द्वारा अर्जित पारलौकिक स्वर्गीद लोक भी क्षयिष्णु होते हैं, यह तर्कानुगृहीत श्रुति भी पुण्यार्जित स्वर्गीद की क्षयिष्णुता बतलाती हैं ॥८॥

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते । नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लक्षाय हि स्मृत: ॥९॥

अन्वयः आपवर्गस्य हि धर्मस्य अर्थः अर्थाय न उपकल्पते धर्मैकान्तस्य अर्थस्य कामोलाभाय निह स्मृतः ॥९॥ अनुवाद मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले धर्म का प्रयोजन धन की प्राप्ति नहीं है अर्थ केवल धर्म के लिए है भोग विलास उसका फल नहीं माना गया है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं हरिभक्तिद्वारा तदितरवैराग्यात्मज्ञानपर्यन्तः परो धर्म इत्युक्तम् । अन्ये तु मन्यन्ते । धर्मस्यार्थः फलं, तस्य च कामः फलं, तस्य चेन्द्रियप्रीतिः, तत्प्रीतेश्च पुनरिप धर्मार्थोदिपरम्परेति । यथाहुः- 'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते' इत्यादि । तित्रराकारोति- धर्मस्येति द्वाभ्याम् । आपवर्ग्यस्योक्तन्यायेनापवर्गपर्यन्तस्य धर्मस्यार्थाय फलत्वायार्थो नोपकल्पते योग्यो न भवति तथार्थस्याप्येवंभूतधर्माव्यभिचारिणः कामो लाभाय फलत्वाय निह स्मृतो मुनिभिः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उस सकाम कर्म रूप धर्म से भिन्न धर्म श्रीहरि की भक्ति के द्वारा संसार से वैराग्य तथा आत्मज्ञान पर्यन्त होता है। वहीं परम धर्म है। अन्ये तु० इत्यादि— दूसरे लोग तो मानते हैं कि धर्मानुष्ठान का फल अर्थ की प्राप्ति है, और अर्थ का फल काम की प्राप्ति है। काम प्राप्ति का फल इन्द्रियों का सन्तुष्ट होना है और इन्द्रियों की सन्तुष्टि का फल पुन: धर्म अर्थ आदि की प्राप्ति है। यथाहु: इत्यादि— जैसा कि उनलोगों ने कहा ही है धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, उस अर्थ का सेवन (उपयोग) क्यों नहीं किया जाय। इत्यादि। उन लोगों के कथन का निराकरण धर्मस्य० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा किया गया है।।१।।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता । जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभि: ॥१०॥

अन्वयः कामस्य लाभः इन्द्रिय प्रीतिः न अपितु यावता जीवेत् इह जीवस्य लाभः तत्त्वजिज्ञासा इह कर्मीभः स्वर्गीदि प्राप्ति न ।१९०।।

अनुवाद— भोग विलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है, अपितु भोग उतना ही करे जितने से जीवन चल जाय । जीवन का फल तत्त्व जिज्ञासा है कर्मी द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति नहीं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

कामस्य च विषयभोगस्येन्द्रियप्रीतिर्लाभः फलं न भवति किंतु यावता जीवेत तावानेव कामस्य लाभः । जीवनपयाप्ति एव कामः सेव्य इत्यर्थः । जीवस्य जीवनस्य च पुनः कर्मानुष्ठानद्वारा कर्मभियं इह प्रसिद्धः सोऽर्थो न भवति किंतु तत्त्विज्ञासैवेति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

विषयोपभोग रूपी काम का फल इन्द्रियों की सन्तुष्टि नहीं है । किन्तु जितने से जीवन चल जाय उतने ही विषयों का उपभोग करना चाहिए । अर्थात् जितना जीवन जीने के लिए पर्याप्त हो उतना ही विषयोपभोग करे । जीवों के जीवन का फल कर्मानुष्ठान द्वारा स्वर्गादि फलों की प्राप्ति नहीं है अपितु जीवन का उद्देश्य तत्त्वजिज्ञासा है ॥१०॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मोति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥

अन्बयः — यञ्जानम् अद्वयम् तदेव तत्त्वम् इति तत्त्वविदः वदन्ति । तदेव तैः तैः वादिभिः ब्रह्म इति, परमात्मा इति भगवान् इति शब्धते ।।११।।

अनुवाद— जिस ज्ञान को तत्त्वज्ञ पुरुष ज्ञाता ज्ञेय आदि भेदों से रहित अखण्ड या अद्वय कहते हैं उसी ज्ञान को कोई वादी ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है और कोई भगवान् कहता है।।११।।

भावार्थं दीपिका

ननु च तत्त्विज्ञासा नाम धर्मिजज्ञासैव धर्म एव हि तत्त्विमिति केचित्तत्राह । तत्त्विवदस्तु तदेव तत्त्वं वदन्ति । किं तत् । यज्ञानं नाम । अद्वयमिति क्षणिकविज्ञानपक्षं व्यावर्तयति । ननु तत्त्वविदोऽपि विगीतवचना एव । मैवम् । तस्यैव तत्त्वस्य नामान्तरैरिध्यनादित्याह । औपनिषदैर्ब्रह्मोति, हैरण्यगर्भै: परमात्मेति, सात्वतैर्भगवानित्यिभियोयते ।।११।।

भाव प्रकाशिका

मु० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि धर्म के विषय में होने वाली जिज्ञासा को तत्त्वजिज्ञासा कहते हैं अतएव धर्म ही तत्त्व है, यह कुछ विचारक कहते हैं । तो इसके उत्तर में कहते हैं — तत्त्वों के ज्ञाता पुरुष तो तत् शब्द बाच्य को ही तत्त्व कहते हैं । तो प्रश्न है कि तत् शब्द के द्वारा किसको कहा जाता है । तो इसका उत्तर है कि ज्ञान को ही तत् शब्द से कहा जाता है । उसी को कुछ लोग अद्वय अखण्ड या अद्वितीय कहते हैं । यह कहकर श्रिणिक विज्ञानात्मवादी बौदों के मत का खण्डन किया गया है ।

ननुतस्विद्योऽपि० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि तस्वों के भी द्वारा कहे गये वचनों के विषय में विवाद है तो इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है। उस तस्व को ही भिन्न-भिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है। औपनिषद मतावलम्बी उसको ब्रह्म शब्द से कहते हैं। ब्रह्ममतावलम्बी उसी को परमात्मा कहते हैं और वैष्णव जन उसी को भगवान् शब्द से अभिहित करते हैं।।११।।

तच्छ्रह्धाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया । पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥१२॥

अन्वयः श्रद्धाना मुनयः ज्ञानवैराग्ययुक्तया श्रुतगृहीतया भक्त्या तत् आत्मानं च आत्मिन पश्यन्ति ।।१२।। अनुवाद श्रद्धा सम्पन्न मुनिजन भागवत के सुनने से प्राप्त ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्ति के द्वारा उस

परमतत्त्वस्वरूप परमात्मा का अपने हृदय में ही साक्षात्कार करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तच्च तत्त्वं सपरिकरया भक्त्यैव प्राप्यत इत्याह । तच्चेत्यन्वयः । ज्ञानवैराग्ययुक्तयेत्यत्र ज्ञानं परोक्षम् । तच्च तत्त्वमात्मनि क्षेत्रज्ञे पश्यन्ति । किं तत् । आत्मानं परमात्मानम् । श्रुतेन वेदान्तादिश्रवणेन गृहीतया प्राप्तयेति भक्तेर्दाढर्यमुक्तम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उस परमात्मतत्त्व की प्राप्ति ज्ञान तथा वैराग्य रूपी परिकरों से युक्त ही भक्ति के द्वारा होती है, इस बात को बतलाते हुए तच्च० इत्यादि श्लोक को कहा गया है। ज्ञानवैराग्ययुक्तया० इस पद में जो ज्ञान परोक्ष है उसी तत्व को क्षेत्रज्ञ जीवात्मा में देखते हैं। यदि कहें कि वह क्या है तो इसका उत्तर है कि वही परमात्म तत्त्व है। अर्थात् वेदान्त आदि के श्रवण से जिस भिक्त की प्राप्ति होती है उसके द्वारा उस तत्त्व का साक्षात्कार होता है। इस तरह से यहाँ पर भिक्त की सुदृढता बतलायी गयी है। कहने का अभिप्राय है कि वेदान्तों तथा श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का श्रवण करने से भिक्त सुदृढ हो जाती है। उसी भिक्त के द्वारा परमात्म तत्त्व का अपने हृदय में मुनिजन साक्षात्कार करते हैं।।१२।।

अतः पुंधिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः । स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥१३॥

अन्वयः अतः हे द्विजश्रेष्ठाः पुम्भिः वर्णाश्रमविभागशः स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरितोषणम् ।।१३।।

अनुवाद— अतएव हे शौनक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों मनुष्यों द्वारा अपने वर्णों तथा आश्रमों के लिए शास्त्रों द्वारा विहित धर्मों का विभागपूर्वक अनुष्ठित धर्म की पूर्णरूप से सिद्धि इसी में है कि भगवान् प्रसन्न हो जायेँ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

धर्मस्य फलं भक्तिर्नार्थकामादिकमितीममर्थमुपपाद्योपसंहरति- अत इति । हे द्विजश्रेष्ठाः । हरितोषणं हरेराराधनम् । संसिद्धिः फलम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

धर्म का फल भक्ति है अर्थ काम इत्यादि की प्राप्ति नहीं; इस अर्थ का उपसंहार करते हुए सूतजी कहते हैं— अत: इति हे द्विजों में श्रेष्ठ शौनक आदि महर्षियों ! हरितोषण का अर्थ श्रीहरि की आराधना है । संसद्धि अर्थात् फल ।।१३।।

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१४॥

अन्वयः — तस्मात् एकेन मनसा नित्यदा सात्त्वतां पतिः भगवान् श्रोतव्यः कीर्तितव्यः ध्येयः पूज्यश्च ।।१४।।

अनुवाद अतएव एकाग्रमन से नित्य मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजन करना चाहिए ॥१४॥

भावार्थं दीपिका

यस्माच्च भक्तिहीनो धर्मः केवलं श्रम एव तस्माद्धक्तिप्रधान एव धर्मीऽनुष्ठेय इत्याह- तस्मादिति। एकेनैकाग्रेण मनसा।।१४।।

भाव प्रकाशिका

चृकि भक्ति से रहित धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है अतएव भक्ति प्रधान ही धर्म का अनुष्ठान

करना चाहिए। इस बात को **तस्मात् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। **एकेन मनसा** पद का अर्थ एकाग्रमन से है ॥१४॥

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् । छिन्दिन्त कोविदास्तय को न कुर्यात्कथारितम् ॥१५॥

अन्वयः यद् अनुध्या असिना युक्ताः कोविदाः कर्म ग्रन्थिनिबन्धनम् छिन्दन्ति तस्य कथा रितम् को न कुर्यात्।।१५।। अनुवाद जिस श्रीहरि के ध्यान रूपी तलवार से ज्ञानी पुरुष कर्म की ग्रन्थि रूपी अहङ्कार के बन्धन को काट डालते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन पुरुष प्रेम नहीं करेगा ?।।१५।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिरहितो धर्मः केवलं श्रम एवति प्रपञ्चितम् । इदानीं तु भक्तेर्मुक्तिफलत्वं प्रपञ्चयति- यदिति यस्यानुध्या अनुध्यानं सैवासिः खड्गस्तेन युक्ता विवेकिनो ग्रन्थिमहङ्कारं निबध्नाति यत्कर्म तिच्छन्दिन्त तस्य कथायां रतिं को न कुर्यात् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भिक्त रिहत धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है इस अर्थ का विस्तार के साथ वर्णन किया जा चुका है। इदानीम्० इत्यादि अब इस अर्थ का विस्तार यत्० इत्यादि श्लोक से करते हैं कि भिक्त का फल मुक्ति की प्राप्ति ही है। यदनुष्यासिना पद का विग्रह है यद् अनुष्या सैव असि: तेन । अर्थात् जिन श्रीहरि का ध्यान ही तलवार है उस ध्यान रूपी तलवार के द्वारा विवेकी पुरुष अहङ्कार रूपी ग्रन्थि को काट डालते हैं। वह अहङ्कार ही मनुष्य को कर्म के बन्धन में बाँधने का काम करता है, उसको काट डालने का काम करते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन प्रेम नहीं करेगा ?।।१५॥

शुश्रुषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः । स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥१६॥

अन्वयः हे विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् महत् सेवया श्रद्धानस्य शुश्रूषोः वासुदेव कथा रुचिः स्यात् ।।१६।।

अनुवाद हे विप्रो ! पवित्र तीर्थों का सेवन करने से निष्पाप पुरुष महापुरुषों की सेवा करता है । उससे उसकी उस धर्म में श्रद्धा होती है । श्रद्धा सम्पन्न व्यक्ति में भगवत् कथा को सुनने की इच्छा उत्पन्न होती है । उसके पश्चात् उस शुश्रूषु पुरुष की श्रीहरि की कथा में रुचि उत्पन्न होती है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

ननु सत्यमेव कर्मनिर्मूलनी हरिकथारितस्तथापि तस्यां रुचिर्नोत्पद्यते किं कुर्मस्तत्राह- शुश्रूषोरिति । पुण्यतिर्थनिषेवणान्निष्पापस्य महत्सेवा स्यात्, तया च तद्धर्मश्रद्धा, ततः श्रवणेच्छा, ततो रुचिः स्यादित्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

ननु॰ इत्यादि यदि कोई यह कहे कि यह सत्य है कि श्रीहरि की कथा कर्मों का नाश करती है, किन्तु श्रीहरि की कथा में प्रेम ही नहीं उत्पन्न होता है, उसके लिए क्या किया जाय ? इस पर सूतजी ने शृष्यो: इत्यादि श्लोक से कहा है कि पुण्यतीर्थों का सेवन करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। उसके कारण वह महापुरुषों की सेवा करता है। उस सेवा के द्वारा उसकी सर्वश्रेष्ठ धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनन्तर उसमें श्रीहरि की कथा को सुनने की इच्छा होती है। तदनन्तर श्रीहरि की कथा में उस शृश्रृष्ठ पुरुष का प्रेम उत्पन्न हो जाता है।।१६।।

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः । हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विघुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥

अन्वयः— पुण्यश्रवणकीर्तनः सताम्सुहृत् कृष्णः स्वकथां शृण्वताम् हृद्यन्तः स्थितः हि अभद्राणि विधुनोति ।।१७।। अनुवाद— जिनके यश तथा कीर्तन ये दोनों पवित्र हैं ऐसे सज्जन पुरुषों (सन्तों) के सुहृत् भगवान श्रीकृष्ण

अपनी कथा सुनने वाले मनुष्यों के हृदय में स्थित रहकर उनके जो काम इत्यादि की वासनायें हैं उन सबों को विनष्ट कर देते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च शृण्वतामिति । पुण्ये श्रवणकीर्तने यस्य सः । सतां सुहृद्धितकारी । हृदि यान्यभद्राणि कामादिवासनास्तानि । अन्तस्थो हृदयस्थः सन् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ततश्च इत्यादि - उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कथा सुनने वालों के जिनका श्रवण और कीर्तन पवित्र हैं ऐसे श्रीभगवान् सन्त महापुरुषों के सुहत अर्थात् कल्याणकारी है। वे उन लोगों के हृदय में विद्यमान कामादिवासना रूपी जो दोष हैं उन सबों को उन लोगों के हृदय में ही रहकर विनष्ट कर देने का काम करते हैं ॥१७॥

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया । भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥

अन्वयः अभद्रेषु नष्टप्रायेषु नित्यं भागवतसेवया उत्तमश्लोके भगवति नैष्ठिकी भक्तिः भवति ।।१८।।

अनुवाद जब सभी काम वासना आदि दोषों के प्रायः विनष्ट हो जाने पर भगवद् भक्तों का श्रीमद्भागवत का नित्य ही सेवन करने से उत्तम यश वाले श्रीभगवान् में निश्चल भक्ति होती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च नष्टप्रायेष्विति । सर्वाभद्रनाशस्य ज्ञानोत्तरकालत्वात्प्रायग्रहणम् । भागवतानां भागवतशास्त्रस्य वा सेवया । नैष्ठिकी निश्चला विक्षेपकाभावात् भक्तिः भवति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् हृदय की कामादि वासनाएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं। यहाँ पर प्रायः शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि सभी वासनाएँ तो ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् ही होती है। भागवतों की सेवा को भी भागवत सेवा कहते हैं तथा श्रीमद्भागवत की भी सेवा को भागवत सेवा कहते हैं। नैष्ठिकी भक्ति का अर्थ है निश्चल भक्ति; क्योंकि कामादि वासनाओं का नाश हो जाने से भक्ति में विशेषता उत्पन्न करने वाला कोई नहीं रह जाता है।।१८॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये। चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदित ।।१९॥

अन्वयः— तदा ये रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च एतैः अनाविद्धं चेतः सत्त्वे स्थितम् प्रसीदित ।।१९।।

अनुवाद — उस समय रजोगुण तथा तमोगुण से जन्य जो काम तथा लोभ इत्यादि की भावनाएँ हैं उनके नष्ट हो जाने से जब इन सबों से चित्त दूषित नहीं होता है तब वह सत्त्वगुण में स्थित होकर पवित्र एवं निर्मल हो जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

रजश्च तमश्च ये च तत्प्रभवा भावाः कामादयः एतैरनाविद्धमनभिभूतम् । प्रसीदत्युपशाम्यति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

रजोगुण एवं तमोगुण और उनसे उत्पन्न काम इत्यादि की भावना इन सबों से जब चित्त अभिभूत नहीं होता है तो वह प्रसन्न हो जाता है । प्रसीदित का अर्थ है शान्त हो जाता है ।।१९।।

एवंप्रसन्नमनसो भगवद्भभक्तियोगतः । भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥

अन्वयः एवं भगवद्भक्ति योगतः मुक्तसङ्गस्य प्रसन्न मनसः भगवत्तत्त्वविज्ञानं जायते ।।२०।।

अनुवाद— इस तरह प्रेममयी भक्ति के कारण जब संसार की सारी आसक्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं तो भक्त का मन प्रसन्न हो जाता है और उसके हृदय में भगवत् तत्त्व का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्भक्तियोगतः प्रसन्नमनसोऽत एव मुक्तसङ्गस्य ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की भक्ति करने के कारण जिसका मन प्रसन्न हो गया है उसके फलस्वरूप संसार की आसक्ति से रहित पुरुष का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

भिद्यते हृदयप्रन्थिशिष्ठद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥

अन्वयः --- आत्मिन ईश्वरे दृष्टे एव हृदयग्रन्थिः भिद्यते, सर्वसंशयाः छिद्यन्ते अस्य कर्माणि क्षीयन्ते च ।।२१।।

अनुवाद हदय में आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह विनष्ट हो जाते हैं और कर्मों के बन्धन क्षीण हो जाते हैं तथा अपने आप आत्मा प्रसन्न हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञानफलमाह- भिद्यत इति । हृदयमेव ग्रन्थिश्चिज्ज्डग्रथनरूपोऽहङ्कारः । अतएव सर्वे संशया असंभावनादिरूपाः । कर्माण्यनारब्धफलानि । आत्मनि स्वरूपभूते ईश्वरे दृष्टे साक्षात्कृते सित । एवकारेण विज्ञानानन्तरमेवेति दर्शयित ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

भिद्यते • इत्यादि - श्लोक के द्वारा सूतजी विज्ञान का फल बतलाते हैं । हृदय ही ग्रन्थि है अर्थात् ज्ञान स्वरूप आत्मा और जड़ की ग्रन्थिरूप अहङ्कार है । ग्रन्थि के टूट जाने के ही कारण असंभावनादि रूप सभी संदेह विनष्ट हो जाते हैं तथा जिन कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ नहीं हुआ है वे क्षीण हो जाते हैं । हृदय में ही स्वरूपभूत ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है । एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् ही हृदय की ग्रन्थि का भेदन होता है ॥२१॥

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा । वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥

अन्वयः— अतः कवयः वै नित्यम् भगवित वासुदेवे आत्मप्रसादनीम् भक्तिं परमया मुदा कुर्वन्ति ।।२२।।

अनुवाद— इसीलिए ज्ञानी पुरुष भगवान् वासुदेव की आत्मप्रसाद को प्रदान करने वाली प्रेमाभक्ति को सदा बड़े ही आनन्द पूर्वक करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र च सदाचारं दर्शयत्रुपसंहरति- अत इति । आत्मनः प्रसादनीं मनःशोधनीम् । वासुदेवे भक्तिं कुर्वन्तीति भजनीयविशेषो दर्शितः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

विज्ञान के विषय में सत् पुरुषों के आचरण का निरूपण अतौ वै० इत्यादि श्लोक के द्वारा किया गया है। आत्मप्रसादनीम् का अर्थ है मन को शुद्ध बनाने वाली। भगवान् वासुदेव की नित्य निरन्तर भिक्त करते हैं इस कथन के द्वारा भजनीय विशेष को बतलाया गया है। अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भजन के योग्य भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं इस बात को बतलाया गया है।।२२।।

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते । स्थित्यादये हरिविरिश्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥

अन्वयः सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः एकः (एव) परः पुरुषः अस्य स्थित्यादये इह हरिविरिश्चि हरेति संज्ञाः धत्ते । तत्र नृणां श्रेयांसि खलु सत्त्वतनोः (हरेः एव) स्युः ॥२३॥

अनुवाद— सत्त्व रजस् एवं तमस् ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। इन तीनों से युक्त एक ही परम पुरुष इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के लिए विष्णु, ब्रह्मा, शिव इन तीन नामों को धारण करते हैं, किन्तु मनुष्यों का कल्याण तो सत्त्वप्रधान श्रीहरि से ही होता है।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवोपपादियतुं ब्रह्मादीनां त्रयाणामेकात्मकत्वेऽपि वासुदेवस्याधिक्यमाह- सत्त्विमिति । इह यद्यष्येक एव परः पुमानस्य विश्वस्य स्थित्यादये स्थितिसृष्टिप्रलयार्थे हरिविरिञ्चिहरेतिसंज्ञाः केवलं भिन्ना धत्ते । हरिविरिञ्चिहरा इति वक्तव्ये सन्धिरार्षः । तत्र तेषां मध्ये श्रेयांसि शुभफलानि सत्त्वतनोर्वासुदेवादेव स्युः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करने के लिए ब्रह्मा आदि के एकात्मक होने पर भी वासुदेव रूप की श्रेष्ठता को सत्त्वम् इत्यादि श्लोक बतलाते हैं। यद्यपि परम पुरुष एक ही हैं किन्तु इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिए विष्णु, ब्रह्मा और शिव की अलग-अलग नाम मात्र को वे धारण करते हैं। यद्यपि यहाँ पर हिरिविरिश्चिहरा: ही कहना चाहिए। क्योंकि हिरश्च विरिश्चिश्च हरश्च इस विग्रह में हिरिविरिश्चिहरा: यही रूप बनता है फिर भी आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ सन्धि कर दी गयी है। तत्र इत्यादि- इन तीनों में शुभ फलों की प्राप्ति तो सत्त्व प्रधान भगवान् वासुदेव से ही होती है। १२३।।

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः । तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२४॥

अन्वयः— यथा पार्थिवात् दारुणः धूमः तस्मात्त्रयीमयः अग्निः तथा तमसः तु रजः तस्मात् सत्त्वम् यद्ब्रह्म दर्शनम् ।।२४।।

अनुवाद— जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले काष्ठ से उत्पन्न धूम श्रेष्ठ है और उससे उत्पन्न होने वाली अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि वेदोक्त यागादि के द्वारा वह सद्गति प्रदान करने वाली है, उसी तरह तमोगुण से रजोगुण श्रेष्ठ है और उससे सत्त्वगुण श्रेष्ठ है क्योंकि वह भगवद् दर्शन कराने वाला है।

भावार्थ दीपिका

उपाधिवैशिष्ट्येन फलवैशिष्ट्यं सदृष्टान्तमाह । पार्थिवात्स्वतःप्रवृत्तिप्रकाशरिहताद्दारुणः काष्ठात्सकाशाद्भृमः प्रवृत्तिस्वभावस्त्रयीमयो वेदोक्तकर्मप्रचुरः । ईषत्कर्मप्रत्यासत्तेः । तस्मादप्यग्निस्त्रयीमयः । साक्षात्कर्मसाधनत्वात्। एवं तमसः सकाशाद्रजो ब्रह्मदर्शनं ब्रह्मप्रकाशकम् । तुशब्देन लयात्मकात्तमसः सकाशाद्रजसः सोपाधिकज्ञानहेतुत्वेन किंचिद्ब्रह्म-दर्शनप्रत्यासित्तमात्रमुक्तं, नतु सर्वथा तत्प्रकाशकत्वं विक्षेपकत्वात् । यत्सत्त्वं तत्साक्षाद्ब्रह्मदर्शनम् । अतस्तद्रुणोपाधीनां ब्रह्मादीनामिष् यथोत्तरं वैशिष्ट्यमिति भावः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

उपाधि की भिन्नता से फल की भिन्नता हो जाती है। इस बात को दृष्टान्त पूर्वक **पार्थिवात्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले स्वतः प्रवृत्ति एवं प्रकाश से रहित काष्ठ से प्रवृत्ति स्वभाव वाला धूम उत्पन्न होता है, वह ऋग्यजुः सामवेद प्रोक्त कर्मप्रचुर होता है। उससे थोड़े से कर्म की प्रत्यासित्त होती है। उस धूम से त्रयी स्वरूप अग्नि की उत्पत्ति है। क्योंकि वह कर्मों का साक्षात् साधन है। इसी तरह तमस् से रजोगुण उत्पन्न होता है और उससे ब्रह्म का प्रकाश करने वाले सत्त्वगुण की उत्पत्ति होती है। मूल के तु शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि लय स्वरूप तमोगुण से रजोगुण की उत्पत्ति होती है। वह ज्ञान का सोपाधिक कारण है। उसके द्वारा अल्पमात्रा में ब्रह्म दर्शन की प्रत्यासित्त बतलायी गयी है। रजोगुण ब्रह्म का पूर्ण रूप से प्रकाशक नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मज्ञान का विक्षेपक है जो सत्त्वगुण है वह साक्षात् ब्रह्म का प्रकाशक है। अतएव उन गुण रूपी उपाधियों से जो ब्रह्मा आदि युक्त होते हैं उनमें उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य है।

कहने का अभिप्रय है कि प्रलय स्वरूप तमोगुण में ब्रह्मज्ञान का लेश भी नहीं होता है। उसके बाद कर्म स्वभाव वाले रजोगुण में शुद्ध ब्रह्मज्ञान की आशङ्का होती है, क्योंकि रजोगुण के विक्षेपक होने के कारण उससे सर्वदा ब्रह्म का प्रकाश नहीं होता है और प्रकाश स्वभाव वाले सत्त्वगुण में तो ब्रह्म का साक्षात् प्रकाश उसी तरह से होता है जिस तरह अग्नि में साक्षात् प्रकाश होता है।।२४।।

भेजिरे मुनयोऽथाप्रे भगवन्तमधोक्षजम् । सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥२५॥

अन्वयः मुनयः अग्रे क्षेमाय विशुद्धं सत्त्वं भगवन्तम् भेजिरे अथ ये इह तान् अनु ते क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।। अनुवाद प्राचीन युगों में मुनिगण कल्याण प्राप्त करने के लिए विशुद्ध सत्त्व स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना किया करते थे और जो लोग उन मुनियों का ही इस लोक में अनुगमन करते हैं वे लोग भी कल्याण को प्राप्त करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वासुदेवभक्तौ पूर्वाचारं प्रमाणयति- भेजिर इति । अथातो हेतोरग्रे पुराविशुद्धं सत्त्वं सत्त्वमूर्ति भगवन्तमधोक्षजम् । अतो ये ताननुवर्तन्ते त इह संसारे क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव की भिक्त पूर्वक किए गये ऋषियों के आचरण को ही प्रमाणित करते हुए सूतजी कहते हैं— भेजिरे इत्यादि इसीलिए प्राचीन काल में मुनिगण सत्त्वमूर्ति भगवान अधोक्षज विष्णु की आराधना करते थे। अतएव जो कल्याणकामी पुरुष उन मुनियों का अनुसरण करते हैं वे कल्याणभाजन होते हैं ॥२५॥

मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ । नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥२६॥

अन्वयः— अथ शान्ता अनसूयवः मुमुक्षवः घोररूपान् भूतपतीन् हित्वा शान्ताः नारायणकलाः भजन्ति ।।२६।। अनुवाद— जो लोग इस संसार सागर से पार जाना चाहते हैं वे मुमुक्षु पुरुष किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं, किन्तु वे घोर रूप वाले भूतों के स्वामी भैरव, पितृगण अथवा प्रजेशों इत्यादि का परित्याग करके भगवान्

विष्णु और उनकी कला स्वरूप श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि का ही भजन करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वन्यानिप केचिद्भजन्तो दृश्यन्त । सत्यम् । मुमुक्षवस्त्वन्यात्र भजन्ति किंतु सकामा एवेत्याह– मुमुक्षव इति द्वाभ्याम्। भूतपतीनिति पितृप्रजेशादीनामुपलक्षणम् । अनसूयवो देवतान्तरानिन्दकाः सन्तः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि कुछ लोग तो भगवान् विष्णु को छोड़कर दूसरे ही देवताओं का भजन करते हैं यह लोक में देखा जाता है; तो यह बात तो ठीक; है किन्तु जो मुमुक्षु पुरुष होते हैं वे दूसरे देवता की नहीं बल्कि भगवान् नारायण की ही आराधना करते हैं। उन देवताओं की आराधना करने वाले लोग कामना विशेष से उनकी

आराधना करते हैं । इस बात को **मुमुक्षुव: इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । **भूतपतीन्० यह पद** पितरों तथा प्रजापतियों का भी उपलक्षण है । वे मुमुक्षु पुरुष अनसूयु होते हैं अर्थात् किसी दूसरे की निन्दा नहीं करते हैं ॥२६॥

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै । पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्यैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥२७॥

अन्वयः - श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः रजस्तमः प्रकृतयः पितृभृतप्रजेशादीन् भजन्ति, ते वै समशीलाः ।।२७।।

अनुवाद— धन, ऐश्वर्य और सन्तान चाहने वाले रजोगुणी और तमोगुणी प्रकृति वाले लोग भूतों, प्रेतों और प्रजापतियों की आराधना करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव भूतों आदि से मिलता जुलता है।

भावार्थ दीपिका

रजस्तमसी प्रकृतिः स्वभावो येषां ते । अतएव पितृभूतादिभिः समं शीलं येषाम् । श्रिया सहैश्वर्यं प्रजाश्चेप्सन्तीति तथा ते ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

रजस्तमः प्रकृतयः पद का अर्थ है कि जिन लोगों का स्वभाव ही रजोगुण तथा तमोगुणमय है । अतः रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति वाले होने के कारण उनका स्वभाव पितरों तथा भूतों आदि के ही समान होता है। वे धन के साथ-साथ ऐश्वर्य और सन्तान को भी चाहते हैं ।।२७।।

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः । वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८॥

अन्वयः— वेदाः वासुदेव पराः मखाः वासुदेव पराः, योगाः वासुदेवपराः क्रियाः वासुदेव पराः ।।२८।।

अनुवाद— सभी वेद भगवान् श्रीकृष्ण का ही प्रतिपादन करते हैं, सभी यज्ञों के द्वारा भगवान् वासुदेव की ही आराधना की जाती है। सभी योग भगवान् श्रीकृष्ण की ही प्राप्ति के लिए किए जाते है और सभी क्रियाओं का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मोक्षप्रदत्वाद्वासुदेवो भजनीय इत्युक्तं सर्वशास्त्रतात्पर्यगोचरत्वादपीत्याह द्वाभ्याम् । वासुदेव एव परस्तात्पर्यगोचरो येषां ते । ननुः वेदा मखपरा दृश्यन्त इत्याशङ्क्य तेऽपि तदाराधनार्थत्वात्तत्परा एवेत्युक्तम् । योगा योगशास्त्राणि । तेषामप्यासन-प्राणायामादिक्रियापरत्वमाशङ्क्य तासामपि तत्प्राप्त्युपायत्वात्तत्परत्वमुक्तम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव ही मोक्ष को प्रदान करते हैं, अतएव उनका ही भजन करना चाहिए इस बात का प्रतिपादन किया जा चुका है अब आगे के दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि चूकि सभी शास्त्रों का तात्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है, अतएव भी उनका ही भजन करना चाहिए। वासुदेव एव० इत्यादि सभी वेदों का तत्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है। ननुवेदा० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि वेद तो यज्ञों का भी प्रतिपादन करते हैं। इस तरह की शङ्का करके कहते हैं कि यज्ञ भी भगवान् वासुदेव के आराधन स्वरूप ही होते हैं, अतएव उन सबों के तात्पर्य के विषय भगवान् वासुदेव ही हैं। योगाः शब्द से योगशास्त्र को कहा गया है। यदि कोई कहे कि योग तो आसन, प्राणायाम आदि का ही प्रतिपादन करते हैं, अतएव वे भगवान वासुदेव के प्रतिपादक नहीं हैं तो इस शङ्का का उत्तर है कि आसन आदि क्रियाएँ भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के उपाय हैं, और वे क्रिया रूप हैं अतएव उनको वासुदेव परक कहा जाता है।।२८।।

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः । वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥

अन्वयः -- ज्ञानं वासुदेवपरम्, तपः वासुदेवपरम्, धर्मः वासुदेवपरः गतिः वासुदेवपरा ।।२९।।

अनुवाद ज्ञान से भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, तपस्या भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के लिए ही की जाती है, धर्मों का अनुष्ठान भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता के लिए किया जाता है और सभी गतियों का पर्यवासन भगवान् वासुदेव में ही होता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानं ज्ञानशास्त्रम् । ननु च तज्ज्ञानपरमेवेत्याशङ्क्य ज्ञानस्यापि तत्परत्वमुक्तम् । तपोऽत्र ज्ञानम् । धर्मो धर्मशास्त्रं दानव्रतादिविषयम् । ननु तत्स्वर्गपरिमत्याशङ्कय गम्यत इति गतिः स्वर्गादिफलं सापि तदानन्दांशरूपत्वात्तत्परैवेत्युक्तम् । यद्वा वेदा इत्यनेनैव तन्मूलत्वात्सर्वाण्यपि वासुदेवपराणीत्युक्तम् । तत्र ननु तेषां मखयोगिक्रयादिनानार्थपरत्वात्र तदेकपरत्विमत्याशङ्कय मखादीनामपि तत्परत्विमत्युक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

मूल में ज्ञान शब्द से ज्ञानशास्त्र को कहा गया है। उस ज्ञानशास्त्र का तात्पर्य ज्ञान के ही प्रतिपादन में है ऐसी आशंका करके कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा चूिक भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, अतएव ज्ञानशास्त्र के प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव ही हैं। मूल का तप शब्द ज्ञान का बोधक है। धर्मशब्द धर्मशास्त्र का बोधक है। वह दान तथा व्रत का ही प्रतिपादन करता है, अतएव वे धर्मशास्त्र स्वर्ग की प्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन करते हैं। इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं कि स्वर्गादि रूपी फल की गतियाँ भी उन भगवान् वासुदेव के आनन्दांश रूप होने के कारण वे भी भगवान् वासुदेव परक ही हैं।

यद्वा वेदा इत्यनेनैव० इत्यादि अर्थात् ज्ञान, तप, मख और गितयाँ सबके सब वेदमूलक होने के कारण वे सबके सब वेद प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव परक हैं। यदि कहें कि वेद तो मख, योग क्रिया इत्यादि अनेक विषयों का प्रतिपादन करते हैं अतएव उन सबों के द्वारा केवल भगवान् वासुदेव का प्रतिपादन नहीं माना जा सकता है। इस तरह की आशङ्का करके यज्ञादि को भगवान् वासुदेव का ही प्रतिपादक बतलाया गया है ॥२९॥

स एवेदं ससर्जात्रे भगवानात्ममायया । सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥

अन्वयः— स एव असौ अगुणः विभुः भगवान् गुणमय्या सदसद्रूपया आत्ममायया अग्रे इदं ससर्ज ।।३०।। अनुवाद— शास्त्रों में प्रख्यात गुणों से रहित, तथा व्यापक भगवान् सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से युक्त अपनी माया के द्वारा सृष्टि के पूर्व इस जगत् की सृष्टि किए ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

ननु जगत्सर्गतत्प्रवेशनियमनादिविलासयुक्ते वस्तुनि सर्वशास्त्रसमन्वयो दृश्यते कथं वासुदेवपरत्वं सर्वस्य तत्राह- स एवेति चतुर्भि: । एतैरेव श्लोकैस्तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहीति प्रश्नस्योत्तरमुक्तम् । सदसद्रूपया कार्यकारणात्मिकया । अगुणश्चेत्यन्वय:। स्वतो निर्गुणोऽपि सन्नित्यर्थ: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सभी शास्त्रों का समन्वय जगत् की सृष्टि तथा उसमें प्रवेश करके उसका नियमन करने वाले परंज्रह्म में ही देखा जाता है, अतएव उन सबों को वासुदेव परक कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? तो उसका उत्तर स एव इत्यदि चार श्लोकों से दिया गया है।

एतैरेव० इत्यादि- इन्हीं चार श्लोकों के द्वारा उन श्रीभगवान् के महान कर्मों का आप वर्णन करें इस प्रश्न का उत्तर भी दिया गया है । **सदसदूपया** पद का अर्थ है कार्य कारण स्वरूप माया के द्वारा **अगुणश्च** को अर्थ है स्वाभाविक रूप से निर्गुण ॥३०॥

तया विलिसतेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव । अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥३१॥

अन्वयः— एषु गुणेषु तया विलसितेषु अन्तःप्रविष्टः विज्ञानेन विजृम्भितः अपि गुणवान् इव आभाति ।।३१।।

अनुवाद— उस माया के विलास स्वरूप इन सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक गुणों में प्रविष्ट होने के कारण स्वभावत: विज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी श्रीभगवान् उन गुणों से युक्त के समान प्रतीत होते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

भगवतो जगत्कारणत्वमुक्तम् । प्रेवशनियमनलक्षणां लीलामाह- तयेति । विलसितेषूद्भूतेषु गुणेष्वाकाशादिष्वन्तः प्रविष्टः सन् गुणवानिव मदधीना एते गुणा इत्यभिमानवानिव नतु वस्तुतस्तथा । यतो विज्ञानेन चिच्छक्त्या विजृम्भितोऽत्यूर्जितः।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के जगत् कारणत्व को बतलाया जा चुका है अब इस श्लोक में श्रीभगवान् के सभी वस्तुओं के भीतर प्रवेश करके उनके नियमन लीला को बतलाया जा रहा है। तयाविलासितेषु पद का अर्थ है कि उस माया से ही उत्पन्न गुणों से जन्य आकाश आदि के भीतर प्रवेश करके गुणवान् के समान प्रतीत होते हैं। अर्थात् ये सभी गुण मेरे ही अधीन हैं, इस तरह के अभिमान से युक्त के समान प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं हैं; क्योंकि भगवान् तो विज्ञान से विजृम्भित हैं, अर्थात् चित् शक्ति के द्वारा अत्यन्त ऊर्जा सम्पन्न हैं ?॥३१॥

यथा ह्यविहतो विह्नर्दारुष्वेक: स्वयोनिषु । नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥

अन्वयः— यथाहिस्वयोनिषु दारुषु अवहितः एकः अग्निः नाना इव आभाति तथा विश्वात्मा पुमान् भूतेषु नानेव आभाति ।।३२।।

अनुवाद जिस तरह अपने अभिव्यञ्जक काष्ठों में लगायी गयी एक ही अग्नि, काष्ठों की अनेकता के कारण अनेक के समान प्रतीत होती है, उसी तरह सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप परमात्मा के सभी भूतों में प्रविष्ट होने के कारण अनेक के तरह प्रतीत होते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बहुरूपत्वलीलामाह- यथेति । स्वयोनिषु स्वाभिव्यञ्जकेषु अवहितो निहितः । विश्वात्मा पुमान्परमेश्वरः । भूतेषु प्राणिषु अन्तर्यामिणोऽपि प्रतियोनिनानात्वेन नानात्विमवोच्यते । क्षेत्रज्ञरूपेण वा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यथा इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा की बहुरूपत्व लीला को बतलाया गया है। स्वयोनिषु पद का अर्थ है अपने अभिव्यञ्जक, अवहित अर्थात् लगायी गयी विश्वात्मापुमान् का अर्थ है परमेश्वर अर्थात् भूतेषु पद का अर्थ प्राणियों में अन्तर्यामी होने पर भी परमात्मा अनेक योनियों में अनेक के समान कहे जाते हैं। अथवा वे क्षेत्रज्ञ (जीव) रूप से अनेक प्रतीत होते हैं।।३२।।

असौ गुणमयैभविभूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः । स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्के भूतेषु तहुणान् ॥३३॥

अन्वयः असौ भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मिभः गुणमयैः भावैः स्वनिर्मितेषु भूतेषु निर्विष्टः सन् तद्गुणान् भुंक्ते ।।३३।। अनुवाद भगवान् ही भूत सूक्ष्म (तन्मात्राएँ) इन्द्रियाँ तथा अन्तः करण आदि गुणों के कार्यभूत भावों के

द्वारा अपने ही निर्मित अनेक प्रकार की योनियों में प्रवेश करके तत्-तत् योनियों के अनुरूप विषयों का भोग करते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भोगरूपां लीलामाह- असाविति । असौ हरिर्भूतसूक्ष्माणि चेन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि चात्मा मनश्च तै: स्वयं निर्मितेषु भूतेषु चतुर्विधेष्विति भोगे स्वातन्त्र्यं द्योत्यते । तद्गुणांस्तत्तदनुरूपान्विषयानिच्छया भुङ्के भोजयतीति णिजर्थो वा ज्ञेय: । भुङ्के पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । 'भुजोऽनवने' इति स्मरणात् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

असौ इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की भोग स्वरूपिणी लीला को बतलाया जा रहा है। असौ o इत्यादि श्रीहरि ही भूतसूक्ष्मों अर्थात् पञ्चतन्मात्राओं, श्रोत्र आदि इन्द्रियों तथा मन आदि के द्वारा निर्मित चारो प्रकार के देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर जीवों में प्रवेश करके भोगों को भोगने में स्वतंत्र के समान प्रतीत होते हैं। तद्गुणान् भुङ्के का अर्थ है उन चारो प्रकार की योनियों के अनुसार उनके विषयों का भोग करते हैं या भोग कराते हैं। यहाँ णिच् प्रत्ययान्त अर्थ समझना चाहिए। अर्थात् जीवों को उन विषयों का भोग करने के लिए प्रेरित करते हैं। अथवा भुङ्के पद का अर्थ पालन करते हैं भी हो सकता है। किन्तु ऐसी स्थिति में आत्मनेपद का प्रयोग आर्ष समझना चाहिए। अन्यथा भुजोऽनवने इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार परस्मै पद का प्रयोग होना चाहिए।।३३॥

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः । लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः लीलावतारानुरतः लोक भावनः एष वै, देवर्तियङ्नरादिषु सत्त्वेन लोकान् भावयति ।

अनुवाद जगत् की रचना करने वाले देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर आदि योनियों में प्रवेश करके लीलावतारों को ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् ही सत्त्वगुण के द्वारा जीवों का पालन करते हैं ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं 'सूत जानासि' इति प्रश्नस्योत्तरमाह । भावयित पालयित । एतत्तु सर्वावतारसाधारणं प्रयोजनम् । विशेषतः कृष्णावतारस्य कुन्तीस्तुतौ वक्ष्यते । लोकभावनो लोककर्ता । देवादिषु ये लीलावतारास्तेष्वनुरतोऽनुरक्तः ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाख्यटीकायां द्वितीयोऽध्याय: ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा सूत जानासि' इत्यादि श्लोक से पूछे गये प्रश्न का उत्तर सूतजी दे रहे हैं। भावयित पद का अर्थ पालन करते हैं। जगत् का पालन करना श्रीभगवान् के सभी अवतारों का समान रूप से प्रयोजन है। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का विशेष प्रयोजन सूतजी कुन्ती की स्तुति में बतलायेंगे। लोकभावनः पद का अर्थ है लोकों का निर्माण करने वाले देवताओं आदि में प्रवेश करके जो श्रीभगवान् के लीलावतार होते हैं, उन सबों को ग्रहण करने में श्रीभगवान् लगे रहते हैं।।३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के द्वितीय अध्याय की भार्वार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।

तीसरा अध्याय

भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः । संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥

अन्वयः— आदौ लोकसिसृक्षया भगवान् महदादिभि: पौरुषंरूपं जगृहे तस्मात् षोडशकलं सम्भूतम् ।।१।।
श्रीसृतजी ने कहा

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् ने महदादिकों से पुरुष रूप धारण कर लिया और उनमें दश इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ उत्पन्न हो गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अवतारकथाप्रश्ने तृतीये तूत्तराभिधा । पुरुषाद्यवतारोक्त्या तत्तच्चारित्रर्णनैः ।।१।। यदुक्तं 'अथाख्याहि हरेर्धीमत्रवतारकथाः शुभाः' इति तहुत्तरत्वेनावताराननुक्रमिष्यन्प्रथमं पुरुषावतारमाह- जगृह इति पञ्चभिः । महदादिभिर्महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैः संभूतं सुनिष्यत्रम् । एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश कला अंशा यस्मिन् । यद्यपि भगवद्विग्रहो नैवं भूतस्तथापि विराड्जीवान्तर्यामिणो भगवतो विराड्रूपेणोपासनार्थमेवमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने जो अवतार कथा के विषय में प्रश्न किया था। उसका उत्तर इस तीसरे अध्याय में पुरुष आदि अवतारों को बतलाकर तथा उन अवतारों के चरित्र वर्णन के द्वारा दिया गया है।

यदुक्तम् इत्यादि मुनियों ने यह जो कहा है कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप श्रीभगवान् के अवतारों की शुभ कथाओं को बतलायें उसके उत्तर रूप से अवतारों के वर्णन का प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने प्रथम पुरुष अवतार को जगृहे इत्यादि पाँच श्लोक के द्वारा बतलाया है । महदादिभिः पद का अर्थ है महान् अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राओं से उस पुरुष में ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन) तथा पाँच महाभूत ये सोलह कलायें अंश रूप से उत्पन्न हो गयीं ।

यद्यपि॰ इत्यादि— यद्यपि श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह इस प्रकार का नहीं है फिर भी जीवों के अन्तर्यामी भगवान् का विराट् रूप से इस प्रकार का वर्णन उपासना के लिए किया गया है, यह जानना चाहिए ॥१॥

यस्याम्भिस शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिह्नदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥

अन्वयः अम्भिसिशयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः यस्य नाभिहृदाम्बुजात् विश्वसृजाम् पतिः ब्रह्मा आसीत् ।।२।।

अनुवाद — कारण जल में शयन करके योगिनिद्रा का विस्तार करने वाले जिन श्रीभगवान् के नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल से प्रजापितयों के स्वामी ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवानित्यपेक्षायां तं विशिनष्टि । यस्याम्भिस एकार्णवे शयानस्य विश्रान्तस्य । तत्र च योगः समाधिस्तद्रूपां निद्रां विस्तारयतो नाभिरेव हृदस्तिस्मन्यदम्बुजं तस्मात्सकाशाद्ब्रह्मासीदभूत्पाद्मे कल्पे । स पौरुषं रूपं जगृहे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे भगवान् कौन हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उन श्रीभगवान् का निरूपण करते हुए कहते हैं । एकार्णव के जल में शयन करने वाले तथा समाधि रूपी निद्रा का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् की नाभि ही (हृद) है । उस हृद में उत्पन्न कमल से पाद्मकल्प में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । उन श्रीभगवान् ने ही पौरुष रूप को धारण किया ॥२॥

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः । तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

अन्वयः यस्यावयव संस्थानैः लोकविस्तरः किल्पतः । तद् वै भगवतः रूपम् विशुद्धम् सत्त्वमूर्जितम् ।।३।। अनुवाद जिन श्रीभगवान् के अङ्गों के संस्थानों से जगत् के विस्तार की कल्पना हुयी श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है तथा रजोगूण एवं तमोगुण से अमिश्रित शुद्धसत्त्व सम्पन्न है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कीदृशं रूपं तदाह- यस्येति । ननु कीदृशो विग्रहस्तस्य योऽम्भसि शेते स्म तदाह । तत्तस्य भगवतो रूपं तु विशुद्धं रजआदिगुणान्तरेणासंभित्रमत एवोर्जितं निरतिशयं सत्त्वम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का वह रूप किस प्रकार का है ? इस बात को यस्य ० इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । ननु ० इत्यादि प्रश्न है कि श्रीभगवान् का वह रूप कैसा है, जो एकार्णव के जल में सोया था ? उसी को बतलाते हुए कहते है श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है । वह रजोगुण तथा तमोगुण के मिश्रण से रहित होने के कारण शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न हैं ॥३॥

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्धुतम् । सहस्रमूर्घश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥

अन्वयः— योगिनः अदभ्रचक्षुषा अदोरूपम् पश्यन्ति यत् । सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्, सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकम् सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत् वर्तते ।।४।।

अनुवाद— योगिजन अपनी दिव्य दृष्टि से श्रीभगवान् के उस रूप का दर्शन करते हैं। श्रीभगवान् का वह अद्भुत रूप हजारों पैरों, हजारों जङ्घाओं, हजारों भुजाओं तथा हजारों मुखों से युक्त है। उसमें हजारो शिर, हजारों कान, हजारों नेत्र तथा हजारों नाक हैं। वह हजारों मुकुट, हजारों प्रकार के वस्त्र तथा हजारों कुण्डलों से सुशोभित है।।४।।

भावार्थ दीपिका

एतच्च योगिनां प्रत्यक्षमित्याह- पश्यन्तीति । अद्भ्रमनल्पं ज्ञानात्मकं यच्चक्षुस्तेन । सहस्रमपरिमितानि यानि पादादीनि तैरद्भुतम् । सहस्रं मूर्धादयो यस्मिस्तत् । सहस्रं यानि मौल्यादीनि तैरुल्ल्सच्छोभमानम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के इस पौरुष रूप का साक्षात्कार योगिजन किया करते है । योगियों का वह नेत्र दिव्य है । उससे वे उस रूप को देखते हैं । वह रूप अपरिमित्त पैरों आदि के कारण अद्भुत है । उसमें हजारों शिर इत्यादि हैं, और उनके जो हजारों मुकुट इत्यादि हैं उन सबों से वह सुशोभित है ।।४।।

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् । यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्गनरादयः ॥५॥

अन्वयः एतत् नानावताराणां निधानम् अव्ययम् बीजम् यस्य अंशांशेन देवतिर्यङ् नरादयः सृज्यन्ते ।।५।।

अनुवाद श्रीभगवान् का यह रूप अनेक अवतारों का अक्षय कोश है तथा यह कभी भी विकृत नहीं होने वाला अवतारों का बीज है। श्रीभगवान् के इस रूप के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश से देवताओं, पशु-पिक्षयों, मनुष्यों तथा स्थावरों आदि की सृष्टि होती है।।५।।

एतत्तु कूटस्थं न त्वन्यावतारवदाविर्भावितरोभावविदत्याह- एतदिति । एतदादि नारायणरूपम् । निधीयतेऽस्मिन्निति निधानम् । कार्यावसाने प्रवेशस्थानिमत्यर्थः । बीजमुद्गमस्थानम् । बीजत्वेऽपि नान्यबीजतुल्यं किंत्वव्ययम् । न केवलमवताराणामेव बीजं किंतु सर्वप्राणिनामपीत्याह । यस्यांशो ब्रह्मा तस्यांशो मरीच्यादिस्तेन ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का यह रूप कूटस्थ है। अर्थात् वह सदैव एक समान बना रहता है। दूसरे अवतारों के समान इसका न तो आविर्भाव होता है और न तिरोभाव होता है। इसी बात को एतत् इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है। यही आदि रूप है और यही भगवान् का नारायण रूप है। कोश के वाचक निधान शब्द की व्युत्पत्ति निधीयते अस्मिन् है। अर्थात् जिसमें रखा जाय उसे निधान कहते है। जब अवतारों का कार्य समाप्त हो जाता है तो वे अवतार इसी रूप में प्रवेश कर जाते हैं। बीज कहकर बतलाया गया है कि यह अवतारों का बीज अर्थात् उद्गम स्थान है। बीज होने पर भी यह दूसरे बीजों से भिन्न इसिलए है कि इसमें कभी भी कोई विकार नहीं आता है। न केवलम् इत्यादि- यह केवल अवतारों का ही बीज नहीं है अपितु यह समस्त प्राणियों का भी बीज है। ब्रह्माजी उनके अंश हैं और ब्रह्माजी के अंश मरीचि आदि हैं। यही अंशांश शब्द का अर्थ है। श्रीभगवान् के उस अंशाश से ही सभी देव तिर्यक् तथा स्थावरादि प्राणियों की उत्पत्ति होती है।।।।।

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः । चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥६॥

अन्वयः— स एव देवः प्रथमं कौमारं सर्गम् आस्थितः ब्रह्मा दुश्चरं अखण्डितम् ब्रह्मचर्यं चचार ।।६।।

अनुवाद— उन्हीं श्रीभगवान् ने प्रथम कौमार सर्ग में रहकर सनक, सनन्दन सनातन और सनत् कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत का पालन रूप कठोर तपस्या किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

सनत्कुमाराद्यवतारं तच्चिरित्रं चाह- स एवेति । कौमार आर्ष: प्राजापत्यो मानव इत्यादीनि सर्गविशेषनामानि । यः पौरुषं रूपं जगृहे स एव देव: कौमाराख्यं सर्गमास्थित: सन् ब्रह्मा ब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचर्यं चचार । प्रथमद्वितीयादिशब्दा निर्देशमात्रापेक्षया ।।६।।

भाव प्रकाशिका

स एव० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रथम सनत्कुमार नामक आद्यवतार का तथा उनके चिरत्र का वर्णन किया गया है। कौमार, आर्ष, प्राजापत्य मानव इत्यादि भिन्न-भिन्न सृष्टियों के नाम हैं। यः पौरुषम्० इत्यादि- जिन श्रीभगवान् ने पौरुष रूप का धारण किया था वे ही कौमार सर्ग में स्थित रहकर ब्राह्मण होकर, अखण्ड ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन किए। प्रथम, द्वितीय इत्यादि केवल निर्देश का प्रतिपादन करने वाले शब्द हैं।।६।।

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् । उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥

अन्वयः - अस्य भवाय यज्ञेशः रसातलगतां महीम् उद्धरिष्यन् द्वितीयं सौकरं वपुः उपादत्त ॥७॥

अनुवाद— इस जगत् का कल्याण करने के लिए यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् रसातल में गयी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए दूसरे अवतार में अपना सूकर का रूप बना लिए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

वराहावतारमाह- द्वितीयमिति । अस्य विश्वस्य भवायोद्भवाय महीमुद्धरिष्यत्रिति कर्मीक्तिः एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म चोक्तमित्यनुसंधेयम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

द्वितीयं तु॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वराहावतार का वर्णन किया गया है। इस जगत् की उत्पत्ति के लिए पृथिवी का उद्धार करने की इच्छा से भगवान् ने वराहावतार धारण किया। इसके द्वारा वराहावतार के कर्म का वर्णन किया गया है। इस तरह से श्रीभगवान् के सभी अवतारों तथा उनके कर्मों का वर्णन किया गया है। इस बत का अनुसन्धान करना चाहिए।।।।।

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः । तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥८॥

अन्वयः - तृतीयम् ऋषिसर्गः च सः देवर्षित्वमुपेत्य सात्त्वतं तन्त्रम् आचष्टे यतः कर्मणां नैष्कर्म्यम् भवति ।।८।। अनुवाद - तीसरी ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् देवर्षि नारद होकर सात्त्वत तन्त्र (नारद पञ्चरात्र) का उपदेश

दिये जिसमें कि यह बतलाया गया है कि कर्मों से कर्म का बन्धन किस तरह से नहीं होता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

नारदावतारमाह- तृतीयमिति । ऋषिसर्गमुपेत्य । तत्र च देवर्षित्वमुपेत्येत्यर्थः । सात्वतं वैष्णवं तत्रं पञ्चरात्रागममाचष्टोक्तवान्। यतस्तन्त्रात् । निर्गतं कर्मत्वं बन्धहेतुत्वं येभ्यस्तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम् । कर्मणामेव मोचकत्वं यतो भवति तदाचष्टेत्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

तृतीयम् इत्यादि श्लोक के द्वारा नारदावतार का वर्णन किया गया है। तीसरे ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् नारद के रूप में अवतीर्ण हो गये। इस सृष्टि में सात्वत तन्त्र अर्थात् वैष्णव तन्त्र पाञ्चरात्रागम का उपदेश दिए। उस तन्त्र के अनुसर अनुष्ठान करने पर कर्मों का कर्मत्व नहीं रह जाता है। अर्थात् वे बन्धन कारक नहीं होते है। निर्गतं कर्मत्वं बन्ध हेतुत्वं येथ्यः तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम् यह नैष्कर्म्य शब्द का विग्रह है। अर्थात् इस तन्त्र में जिन कर्मों का उपदेश किया गया है, उन कर्मों के द्वारा ही संसार के बन्धन से मुक्ति हो जाती है।।८।।

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी । भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥९॥

अन्वयः - तुर्ये धर्मकला सर्गे नरनारायणौ ऋषी भूत्वा आत्मोपशमोपेतं दुश्चरं तपः अकरोत् ।।९।।

अनुवाद— चौथी सृष्टि में धर्म की पत्नी कलादेवी के गर्भ से नर नारायण नामक दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् इन्द्रियों के संयम रूपी कठोर तपस्या किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह- तुर्ये इति । तुर्ये चतुर्थेऽवतारे । धर्मस्य कला अंशः । भार्येत्यर्थः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेः । तस्याः सर्गे । ऋषी भूत्वेत्येकावतारत्वं दर्शयति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

तुर्ये० इत्यादि- श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के नर-नारायणवतार का वर्णन किया गया है। यह भगवान् का चौथा अवतार है। धर्म कला शब्द धर्म की पत्नी का बोधक है। यहाँ कला शब्द पत्नी का बोधक है। श्रुति भी कहती है अधों वा एष आत्मनो यत्पत्नी अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा भाग होती है। धर्म की पत्नी के गर्भ से श्रीभगवान् नर-नारायण इन दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण हुए। अतएव नर और नारायण दोनों मिलकर श्रीभगवान् का एक ही अवतार है।।९।।

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् । प्रोवााचासुरये सांख्यं तत्त्वव्रामविनिर्णयम् ॥१०॥

अन्वयः पञ्चमः किपलो नाम सिद्धेशः आसुरये कालिवप्लुतम् त्त्वग्रामिवनिर्णयम् सांख्यं आसुरये प्रोवाच ।।१०।। अनुवाद

पाँचवे सर्ग में भगवान् सिद्धों के स्वामी किपल के रूप में अवतीर्ण होकर समय की विपरीतता के कारण लुप्त हुए तथा तत्त्व समूह का निर्णय रूप सांख्य दर्शन का उपदेश आसुरि नामक ब्राह्मण को दिये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

कपिलावतारमाह- पञ्चम इति । आसुरये तन्नाम्ने ब्राह्मणाय । तत्त्वानां ग्रामस्य सङ्घस्य विनिर्णयो यस्मिन् शास्त्रे तत्सांख्यम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

पञ्चमः इत्यादि श्लोक के द्वारा पाञ्चवें किपल अवतार का वर्णन किया गया है। आसुरि नामक ब्राह्मण को इस अवतार में भगवान् ने सांख्य दर्शन का उपदेश दिया। तत्त्वग्राम विनिर्णयम् का अर्थ है जिसमें तत्त्वों के ग्राम अर्थात् समूह का निर्णय किया गया है, वह शास्त्र सांख्य शास्त्र है।।१०।।

षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया । आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥११॥

अन्वयः अनसूयया वृतः षष्ठम् अत्रेः अपत्यत्वं प्राप्तः अलर्काय प्रह्लादादिभ्यः आन्वीक्षिकीम् ऊचिवान् ।।११।। अनुवाद अनसूया के द्वारा वरदान माँगे जाने पर षष्ठ अवतार में महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय हुए और उन्होंने अलर्क तथा प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

दत्तात्रेयावतारमाह- षष्ठमिति । अत्रेरपत्यत्वं तेनैव वृतः सन् प्राप्तः 'अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टः' इति वक्ष्यमाणत्वात्। कथं प्राप्तः । अनसूयया मत्सदृशापत्यमिषेण मामेवापत्यं वृतवानिति दोषदृष्टिमकुर्वित्रत्यर्थः । आन्वीक्षिकीमात्मविद्याम् । प्रह्लादादिभ्यश्च । आदिपदाद्यदुहैहयाद्या गृह्यन्ते ।।११।।

भाव प्रकाशिका

षष्ठम् इत्यादि श्लोक के द्वारा दत्तात्रेय अवतार का वर्णन किया जा रहा है। भगवान् स्वयं अत्रि महर्षि के अपत्य रूप से अनसूया के द्वारा वृत्त थे, और वे उनके पुत्र हो गये। इसी बात को दूसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय के चतुर्थ श्लोक में कहा भी जायेगा कि अत्रेरपत्यमिकांक्षत आह तुष्ट अर्थात् अत्रि महर्षि के पुत्र के रूप में वरदान माँगे जाने पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा। उसी के फलस्वरूप वे उनके पुत्र हुए। भगवान् ने अनसूया के द्वारा माँगे जाने वाले वरदान में किसी भी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं किया और जान लिया कि अनसूया ने मेरे सदृश पुत्र का वरदान माँगने के बहाने मुझको ही माँगा है। आत्मविद्या को ही अन्वीक्षिकी विद्या कहते है। उसका उपदेश उन्होंने प्रह्लाद आदि को दिया। आदि शब्द से हैहय तथा यदु आदि को समझना चाहिए।।११।।

ततः सप्तम आकृत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥१२॥

अन्वयः— ततः सप्तमे रुचेः आकृत्यां यज्ञः अभ्यजायत । सः यामाद्यैः सुरगणैः सह स्वायम्भुवम् मन्वन्तरम् अपात् ।।१२।।

अनुवाद - उसके पश्चात् सातवें अवतार में भगवान् रुचि प्रजापित के पुत्र आकूती देवी के गर्भ से यज्ञ के रूप में अवतीर्ण हुए और याम आदि देवताआं के साथ उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की ॥१२॥

यज्ञावतारमाह- तत इति । स यज्ञो यामाद्यैः स्वस्यैव पुत्रा यामा नाम देवास्तदाद्यैः सह स्वायंभुवं मन्वन्तरं पालितवान्। तदा स्वयमिन्द्रोऽभूदित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा यज्ञावतार का वर्णन किया गया है । वे यज्ञ भगवान् अपने ही याम नामक पुत्रों के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर का पालन (रक्षा) किए उस समय वे स्वयम् इन्द्र बन गये ।।१२।।

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः । दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥१३॥

अन्वयः अष्टमे उरुक्रमः नाभेः मेरु देव्यां सर्वाश्रम नमस्कृतम् धीराणां वर्त्म दर्शयन् जातः ।।१३।।

अनुवाद आठवें अवतार में श्रीभगवान् सभी आश्रमियों के द्वारा वन्दनीय परमहंसों के मार्ग का उपदेश करने की इच्छा से मेरुदेवी के गर्भ से महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह- अष्टम इति । सर्वाश्रमनमस्कृतमन्त्याश्रमं पारमहंस्यं वर्त्म धीराणां दर्शयत्राभेराग्रीध्रपुत्रादृषभो जातः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अष्टमे॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा ऋषभावतार का वर्णन किया गया है । सभी आश्रमियों के द्वारा अन्तिम परमहंसों के मार्ग का उपदेश देने की इच्छा से महाराज आग्नीध्र के पुत्र महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ॥१३॥

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः । दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥१४॥

अन्वयः— हे विप्राः ऋषिभिः याचितः सः नवमं पार्थिवं वपुः भेजे । सः इमाम् ओषधीः दुग्धे । तेन अयम् (अवतारः) उशत्तमः ॥१४॥

अनुवाद— हे विप्रों ऋषियों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वे भगवान् नवें अवतार में महाराज पृथु का शरीर धारण करके गोरूप धारिणी पृथिवी से सभी औषिधयों का दोहन किये। अतएव यह अवतार अत्यन्त मनोहर था।।१४।।

भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह- ऋषिभिरिति । पार्थिवं वपुः राजदेहं पृथुरूपम् । पाठान्तरे पृथोरिदं पार्थवम् । औषधीरित्युपलक्षणम्। इमां पृथ्वीं सर्वाणि वस्तूनि दुग्ध अदुग्ध । अडागमाभावस्त्वार्षः । हे विप्राः, तेन पृथिवीदोहनेन सोऽयमवतार उशत्तमः कमनीयतमः । 'वश कान्तौ' इत्यस्मात् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिभ: इत्यादि श्लोक के द्वारा पृथु अवतार का वर्णन किया गया है। पार्थिवं वपुः का अर्थ है कि राजा पृथु के शरीर को धारण किए। पार्थवम् भी पाठान्तर है। पार्थवम् की व्युत्पत्ति पृथोरिदम् पार्थवम् है। अर्थात् उन्होंने पृथु का शरीर धारण किया है। औषधि पद सभी वस्तुओं का उपलक्षण है। इस पृथिवी से सभी वस्तुओं को दूहा। आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ पर अट् का आगम नहीं हुआ है। हे विप्रो ! पृथ्वी का दोहन करने के कारण यह अवतार अत्यन्त मनोहर है। वश् कान्तौ धातु से उशत्तम शब्द व्युत्पन्न हुआ है।।१४॥

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुदोषधिसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

अन्वयः चाक्षुषोदिध संप्लवे सः मात्स्यं रूपं जगृहे । महीमय्याम् नावि वैवस्तं मनुमारोप्य अपात् ।।१५।। अनुवाद चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र का सम्पलव होने पर वे भगवान् मत्स्यावतार धारण किए और पृथिवीमयी नौका पर वैवस्वत मनु को बैठाकर उनकी रक्षा किए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

मत्स्यावतारमाह- रूपिमिति । चाक्षुषमन्वन्तरे य उदधीनां संप्लवः संश्लेषस्तस्मिन् । यद्यपि मन्वन्तरावसाने प्रलयो नास्ति तथापि केनचित्कौतुकेन सत्यव्रताय माया प्रदर्शिता यथाऽकाण्डे मार्कण्डेयायेति द्रष्टव्यम् । महीमय्यां नावि, नौकारूपायां मह्यामित्यर्थः । अपाद्रक्षितवान् । वैवस्वतमिति भाविनी संज्ञा ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

रूपम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है। चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्रों का संप्लव (प्रलय) नहीं हुआ था किन्तु कौतुक वशात् श्रीभगवान् ने राजा सत्यव्रत को माया प्रदर्शित किया। यह उसी तरह से हुआ जिस तरह बिना अवसर के ही भगवान् ने मार्कण्डेय को अपनी माया से प्रलय का दर्शन कराया। उस समय पृथिवी नौका बन गयी। अपात् शब्द का अर्थ है रक्षा किया। वैवस्वत मनु उसके पश्चात् हुए ॥१५॥

सुरासुराणामुद्धिं मथ्नतां मन्दराचलम् । दध्ने कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥

अन्वयः— एकादशे विभु: सुरासुराणां उदिधं मध्नताम् एकादशे कमठरूपेण मन्दराचलम् पृष्ठे दध्ने ।।१६।।
अनुवाद— जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र का मंथन कर रहे थे उस समय वे ग्यारहवें अवतार में कमठ (कच्छप) का रूप धारण करके अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किए ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

कूर्मावतारमाह । कमठ: कूर्मस्तद्रूपेणैकादशेऽवतारे विभुर्दध्रे दधार ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

सुरासुराणाम् इत्यादि श्लोक के द्वारा कच्छपावतार का वर्णन किया गया है । ग्यारहवें अवतार में जगद् में व्यापक श्रीभगवान् ने कमठ रूप को धारण किया ॥१६॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च । अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥१७॥

अन्वयः - द्वादशमं धान्वन्तरम् त्रयोदशमम् मोहिन्या स्त्रिया अन्यान् मोहयन् सुरान् अपाययत् ।।१७।।

अनुवाद — बारहवें धन्वन्तरि अवतार धारण करके तथा तेरहवें अवतार में मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके असुरों को मोहित करके श्रीभगवान् ने देवताओं को अमृत पिलाया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

धन्वन्तर्यवतारमाह । धान्वन्तरि धन्वन्तरिरूपम् । द्वादशमादिप्रयोगस्त्वार्षः । त्रयोदशममेव रूपं तच्चरितेन सह दर्शयति । अपाययदित्यत्र सुधामित्यध्याहारः । मोहिन्या स्त्रिया तद्रूपेणान्यानसुरान्मोहयन् । धन्वन्तरिरूपेणामृतमानीय मोहिन्याऽपाययदित्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

धान्वतरम्॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा धन्वन्तरि अवतार और मोहिनी अवतार का वर्णन किया गया है। धान्वन्तर शब्द के द्वारा धन्वन्तरि रूप को कहा गया है। द्वादशम आदि शब्दों का आर्ष प्रयोग है। तेरहवें रूप का वर्णन उस रूप के द्वारा किए गये चरित के साथ दिखाया गया है। अपाययत् पद के साथ सुधाम् पद का अध्याहार करना चाहिए। मोहिनी स्त्री के रूप के द्वारा असुरों को मोहित करके धन्वन्तरि रूप से अमृत को लाकर मोहिनी रूप से देवताओं को भगवान् ने अमृत पिलाया ॥१७॥

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रदैत्येन्द्रमूर्जितम् । ददार करजैर्वक्ष्स्येरकां कटकृद्यथा ॥१८॥

अन्वय: चतुर्दशम् नारसिंहं (रूपं) विभ्रत् उर्जितम् दैत्येन्द्रम् वक्षसि एरकाम् कटकृत् यथा करजै: ददार ।।१८।। अनुवाद चौदहवां नरसिंह रूप धारण करके भगवान् महाबलवान् दैत्यों के राजा हिरण्यकशिप के वक्ष:स्थल को अपने नखीं से उसी तरह से चीर दिये जिस तरह चटाई बनाने वाला सींक को अपने नखीं से चीर देता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

नृसिंहावतारमाह । नारसिंहं रूपं विभ्रत् । एरकां निर्ग्रन्थि तृणम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

चतुर्दशं इत्यादि श्लोक के द्वारा नरसिंहावतार का वर्णन किया गया है। नरसिंह रूप धारण करके । एरका गांठ रहित तृण विशेष (सींक) को कहते हैं ॥१८॥

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः । पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टम् ॥१९॥

अन्वयः— पञ्चदशं वामनकं (रूपं) कृत्वा त्रिविष्टपम् प्रत्यादित्सुः प्रदत्रयं याचमानः बलेः अध्वरम् अगात् ।।१९।। अनुवाद— पन्द्रहवाँ वामन रूप धारण करके बलि से स्वर्ग लोक को ले लेने की इच्छा से श्रीभगवान् बलि से तीन डग पृथिवी की याचना करने के लिए उसके यज्ञ में गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

वामनावतारमाह- पञ्चदशमिति । दुष्टानां मदं वामयतीति वामनकं रूपम् । हस्वं वा । प्रत्यादित्सुस्तस्मादाच्छिद्य ग्रहीतुमिच्छु: ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

पञ्चदशम् इत्यादि श्लोक के द्वारा वामनावतार का वर्णन किया गया है। दुष्टों के मद को दूर करने वाले वामन रूप को धारण किए भगवान्। अथवा छोटा रूप धारण किए। प्रत्यादित्सुः पद का अर्थ है बलि से छिनकर ले लेने के इच्छुक ॥१९॥

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२०॥

अन्वयः बोडशमे अवतारे ब्रह्मद्रुहः नृपान् पश्यन् कृपितः महीम् त्रिःसप्तकृत्वः निःक्षत्राम् अकरोत् ।।२०।। अनुवाद सोलहवें परशुरामावतार में ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं को देखकर क्रुद्ध हुए भगवान् इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना दिए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह- अवतार इति । त्रिस्त्रिगुणं यथा भवति तथा सप्तकृत्वः सप्तवारानेकविंशतिवारानित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अवतारे॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा परशुरामावतार का वर्णन किया गया है । त्रिःसप्तकृत्वः का अर्थ हैं इक्कीस बार ॥२०॥

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् । चक्ने वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२१॥

अन्वयः -- ततः सप्तदशे पराशरात् सत्यवत्यां जातः अल्पमेधसः पुंसः दृष्ट्वा वेदतरोः शाखाः चक्रे ।।२१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् सत्रहवें अवतार में सत्यवती माता के गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्होंने वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— व्यासावतारमाह— तत इति । अल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञान्युंसो दृष्ट्वा तदनुग्रहार्थं शाखाश्चके ।।२१।। भाव प्रकाशिका— ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा व्यासावतार का वर्णन किया गया है । अल्पमेधसः इत्यादि— अल्पबुद्धि वाले पुरुषों को देखकर व्यासजी ने एक ही वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग उन मनुष्यों पर कृपा करने के लिए किया ।।२१।।

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया । समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥

अन्वयः अतः परम् सुरकार्यचिकीर्षया नरदेवत्वमापत्रः समुद्रनिग्रहादीनि विर्याणि चक्रे ।।२२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अठारहवें अवतार में श्रीभगवान् देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से राजा के रूप में रामावतार ग्रहण करके सेतुबन्धन तथा रावणवध इत्यादि वीरतापूर्ण लीलाओं को किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

रामावतारमाह- नरेति । नरदेवत्वं राघवरूपेण प्राप्तः सन् । अतः परमष्टादशे ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

नरदेवत्वम् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीरामावतार का वर्णन किया गया है । श्रीराम रूप से राजा का शरीर धारण करके अठारहवें अवतार में समुद्र बन्ध तथा रावण वध का कार्य किए ॥२२॥

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी । रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥

अन्वयः एकोनविंशे, विंशतिमे भगवान् वृष्णिषु रामकृष्णौ इति जन्मनी प्राप्य भुवोभारम् अहरत् ।।२३।।

अनुवाद— उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में भगवान् यदुवंश में बलराम एवं श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेकर पृथिवी के भार को हल्का किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

रामकृष्णावतारमाह- एकोनेति विंशतितम इति वक्तव्ये तकारलोपश्छन्दोनुरोधेन । रामकृष्णावित्येवं नामनी जन्मनी प्राप्य ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

एकोनविंशे इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के बलराम और श्रीकृष्णावतार का वर्णन किया गया है। यद्यपि विंशतितमे कहना चाहिए अतएव छन्दोभंग से बचने के लिए विंशतिमे यह प्रयोग किया गया हैं। यहाँ पर तकार का लोप छन्द शास्त्र के अनुसार हो गया है। राम और कृष्ण इन दो नामों से जन्म लिया भगवान् ने ॥२३॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् । बुद्धो नाम्नाऽजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥२४॥

अन्वयः— ततः कलौ युगे सम्प्रवृत्ते सुरद्विषाम् मोहाय कीकटेषु अजन सुतः बुद्धो नाम्ना भविष्यति ।।२४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् किलयुग के आ जने पर श्रीभगवान् देव द्रोहियों को मोहित करने के लिए मगध प्रदेश में अजन के पुत्र बुद्ध के नाम से अवतीर्ण होंगे ॥२४॥

बुद्धावतारमाह- तत इति । अजनस्य सुत: । 'जिनसुत' इति पाठे जिनोऽपि स एव । कीकटेषु मध्ये गयाप्रदेशे ।।२४।।
भाव प्रकाशिका

ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा बुद्धावतार का वर्णन किया गया है। अजनसुतः अर्थात् अजन नामक राजा के पुत्र जहाँ जिनसुतः पाठ है, वहाँ भी वही अर्थ है। अजन का ही नाम जिन है। गया प्रदेश को ही कीकट प्रदेश कहते हैं। वहीं पर भगवान् का बुद्धावतार होगा ॥२४॥

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु । जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥

अन्वय:— अथ युगसन्ध्यायाम् दस्युप्रायेषु राजसु असौ जगत्पितः विष्णयशसः किल्किनाम्ना भविष्यिति ।।२५।। अनुवाद उसके पश्चात् किलयुग के संध्याकाल में जब राजागण प्रायः लुटेरे हो जायेंगे उस समय वे जगत् के स्वामी विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के किल्कि नामक पुत्र के रूप में अवतीर्ण होंगे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

कल्क्यवतारमाह- अथेति । युगसन्ध्यायाम् । कलेरन्ते विष्णुयशसो ब्राह्मणात्सकाशाज्जनिता जनिष्यते ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अथासौ० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कल्की अवतार का वर्णन किया गया है । युगसन्ध्यायाम् का अर्थ कलियुग के अन्त में भगवान् विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे ।।२५।।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिघेर्द्विजाः । यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥२६॥

अन्वयः— हे द्विजाः यथा अविदासिनः सरसः सहस्रशः कुल्याः स्युः तथा सत्त्विनधेः हरेः असंख्येयाः अवताराः स्युः ॥२६॥

अनुवाद हे शौनक आदि महर्षियों ! जिस तरह अगाध सरोवर से हजारों नालियाँ निकलती हैं, उसी तरह सत्त्वनिधि श्रीहरि के असंख्य अवतार होते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्तसर्वसंग्रहार्थमाह- अवतारा इति । असङ्ख्योयत्वे दृष्टान्तः- यथेति । अविदासिन उपक्षयशून्यात् । 'दसु उपक्षये' इत्यस्मात् । सरसः सकाशात्कुल्याः क्षुद्रप्रवाहाः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जिन अवतारों का वर्णन नहीं किया जा सका उन सबों का संग्रह करने के लिए **अवतारा० इत्यादि** श्लोक कहा गया है। भगवान् के अवतारों की असंख्येयता का दृष्टान्त उस अक्षय सरोवर से दिया गया है जिससे हजारों छोटी-छोटी नालियाँ निकलती हैं। विदासी पद दसु उपक्षये धातु से व्युत्पन्न है और पयुदास नञ् करके अविदासी पद व्युत्पन्न हुआ है।।२६॥

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः । कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥

अन्वयः स प्रजापतयः ऋषयः मनवः तथा महौजसः मनुपुत्रा सर्वे हरेरेव कलाः ।।२७।।

अनुवाद— सभी प्रजापितगण, ऋषिगण, मनुगण तथा महाओजस्वी मनुओं के पुत्रगण ये सबके सब श्रीहरि के अंश हैं ॥२७॥

विभूतीराह- ऋषय इति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ऋषयः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की विभूतियों को बतलाया गया है ॥२७॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् । इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥२८॥

अन्वयः— एते पुंसः अंशकलाः कृष्णस्तु स्वयं भगवान् इन्द्रारिव्याकुलं लोकं युगे-युगे मृडयन्ति ।।२८।।

अनुवाद— ये सभी अवतार श्रीभगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान ही है । दैत्यों के उत्पातों से व्याकुल जगत् को ये सभी अवतार सुखी बनाने का काम करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र विशेषमाह एते चेति । पुंसः परमेश्वरस्य केचिदंशाः केचित्कलाविभूतयश्च । तत्र मत्स्यादीनामवतारत्वेन सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्त्वेऽपि यथोपयोगमेव ज्ञानक्रियाशक्त्याविष्करणम् । कुमारनारदादिष्वाधिकारिकेषु यथोपयोगमंशकलावेशः। तत्र कुमारादिषु ज्ञानावेशः । पृथ्वादिषु शक्त्यावेशः । कृष्णस्तु भगवान्साक्षात्रारायण एव । आविष्कृतसर्वशक्तित्वात् । सर्वेषां प्रयोजनमाह । इन्द्रारयो दैत्यास्तैर्व्याकुलमुपद्रुतं लोकं मृडयन्ति सुखिनं कुर्वन्ति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

एते च० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के अवतार विशेष को बतलाया गया है। पुंस: इत्यादि इन सभी अवतारों में से कुछ अवतार परमेश्वर के अंश हैं और कुछ अवतार कला तथा विभूति रूप हैं। उनमें भी मत्स्य इत्यादि भी भगवान् के अवतार हैं अतएव उन अवतारों में भी सर्वज्ञत्व तथा शक्तिमत्त्व रहता है। िकन्तु उन अवतारों में उपयोग के अनुकूल ही ज्ञान, क्रिया तथा शक्ति आविर्भूत होते हैं। कुमारावतार, नारदाावतार आदि अधिकारियों में उपयोगानुकूल ही अंशों तथा कलाओं का आवेश होता है। कुमार आदि में ज्ञान का आवेश था। पृथु आदि में भगवान् की शक्ति का आवेश था। भगवान् कृष्ण तो साक्षात् नारायण ही हैं। क्योंकि इनमें श्रीभगवान् की सारी शक्तियाँ आविर्भूत हैं। इन सभी अवतारों का प्रयोजन यही है कि जब जगत् इन्द्र के शत्रु दैत्यों के द्वारा उपद्रव ग्रस्त होने के कारण व्याकुल हो जाता है तो ये अवतार समय-समय से जगत् को सुखी बनाने का काम करते हैं। १२८।।

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः । सायंप्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखप्रामाद्विमुच्यते ॥२९॥

अन्वयः— यः नरः भगवतः एतत् गुह्यं जन्म प्रयतः सायं प्रातः भक्त्या गृणन् भवेत् सः दुःखग्रामात् विमुच्यते ।।२९।। अनुवाद— जो मनुष्य श्रीभगवान् के इन गोपनीय जन्मों की कथा को नियम पूर्वक भक्ति से भरकर सायंकाल एवं प्रातःकाल पढ़ते हैं वे सभी दुःखों से छूट जाते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एतत्कीर्तनफलमाह- जन्मेति । गुह्यमितरहस्यं जन्म । प्रयतः शुचिः; सन् । दुःखग्रामात्संसारात् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इन अवतारों के कीर्तन का फल जन्म० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है। श्रीभगवान् के ये जन्म अत्यन्त रहस्यमय हैं। प्रयतः का अर्थ है पवित्रता पूर्वक अर्थात् एकाग्रमन से दुःखग्रामात् विमुच्यते का अर्थ है संसार से मुक्त हो जाता हैं।।२९।।

एतद्रूपं भगवतो हारूपस्य चिदात्मनः । मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥

अन्वयः - एतद्रूपम् अरूपस्य चिदात्मनः हि भगवतः मायागुणैः महददिभिः आत्मानि विरचितम् ।।३०।।

अनुवाद — जीवों का यह जो स्थूल शरीर है, रूपादि रहित तथा ज्ञान स्वरूप परमात्मा की माया के गुण महत् तत्त्व आदि से परमात्मा में ही कल्पित हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विमुच्यत इति यदुक्तं तत्र कथं देहद्वयसंबन्धे सित तिद्वमुक्तिरित्याशङ्क्य देहद्वयसंबन्धस्य भगवन्मायोत्थाविद्याविलसितत्वादेत— च्छ्रवणादिजनितविद्यया तित्रवृत्तिरुपपद्यत इत्याशयेनाह- एतदिति पञ्चिभः । अरूपस्य चिदेकरसस्यात्मनो जीवस्यैत्स्थूलं रूपं शरीरं भगवतो या माया तस्य गुणैर्महदादिरूपैर्विरचितम् । क्व आत्मिन । आत्मस्थाने शरीरं कृतिमत्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उनतीसवे श्लोक में जो विमुच्यते कहा गया है उसके विषय में प्रश्न उठता है कि दो देहों का सम्बन्ध रहने पर उसकी कैसे मुक्ति हो सकती है ? इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं, दो देहों का सम्बन्ध श्रीभगवान् की माया से उत्पन्न अविद्या का विलास रूप होने के कारण इन अवतारों के श्रवण जन्य विद्या के द्वारा निवृत्ति हो जाने में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों की मुक्ति हो जाती है। इसी अर्थ का प्रतिपादन एतत् इत्यादि पाँच श्लोकों से किया गया है । अरूपस्य चिदात्मनः इन दो पदों का अर्थ है कि जीवात्मा रूप रहित तथा ज्ञानमात्र स्वरूप है । उसी का यह स्थूल रूप शरीर है । यह भगवान् की माया के जो महत् इत्यादि गुण हैं उन सबों से विरचित है । अर्थात् आत्मा के स्थान में शरीर निर्मित हैं ॥३०॥ यथा नभिस मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले । एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥

अन्वयः— यथा अबुद्धिभिः मेघौघः नभिस, पार्थिवः रेणुः वा अनिले आरोपयन्ति एवम् अबुद्धिभिः द्रष्टरि आत्मनि आतानि दृश्यत्वम् आरोपितम् ॥३१॥

अनुवाद जिस तरह अज्ञानी लोग वायु के ऊपर रहने वाले मेघ समूह का आकश में अरोप करते हैं, उसी तरह अज्ञानी पुरुष द्रष्टा आत्मा में दृश्यत्व का आरोप करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कथिमत्यपेक्षायां स्वरूपावरणेन तदध्यासत इति सदृष्टान्तमाह- यथेति । यथा वाय्वाश्रितो मेघौघो नभस्याकाशेऽबुद्धिभरज्ञैरारोपित: । यथा वा पार्थिवो रेणुस्तद्गतं घूसरत्वद्यनिले । एवं द्रष्टर्यात्मिन दृश्यत्वं दृश्यत्वादिधर्मकं शरीरमारोपितमित्यर्थ: ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि आत्मा में शरीर का अरोप कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा के स्वरूप के अज्ञान के द्वारा आवृत हो जाने के कारण उसमें शरीर का आरोप हो जाता है। इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक बतलाते हैं। यथावाय्वाध्रित: इत्यादि जैसे वायु के आधार पर रहने वाले मेघ के समूह का आरोप अज्ञानी पुरुष आकाश में करते हैं। अथवा जैसे पृथिवी की धूल और धूल में रहने वाले धूसरत्व का आरोप अज्ञानी जन वायु में करते हैं, उसी तरह से अज्ञानीपुरुष द्रष्टा आत्मा में, दृश्यत्वादि धर्म से युक्त शरीर का आरोप करते हैं। ।३१।।

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् । अदृष्टाश्रुतमवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥३२॥

अन्वयः अतः परं यत् अव्यक्तम्, अव्यूढगुणव्यूहितम् अदृष्टग्श्रुतवस्तुत्वात् स जीवः यत् पुनर्भवः ।।३२।।

अनुवाद जो इस स्थूल शरीर से भिन्न है, जो अपरिणत हाथ पैर आदि गुणों से निर्मित है तथा आकार विशेष से रहित होने के कारण अव्यक्त (सूक्ष्म) है। वह किसी दृष्ट अथवा श्रुत पदार्थ के समान नहीं होने के कारण अदृष्टाश्रुत वस्तु है वहीं जीव है। उसी का बार-बार जन्म होता है।।३२।।

भावार्थ दीपिका

किंच अतः स्थूलाद्रूपात्परमन्यदिप रूपमारोपितिमित्यनुषङ्गः । कथंभूतं तत् । यदव्यक्तं सूक्ष्मम् । तत्र हेतुः- अव्यूढगुणव्यूहितम् । व्यूहः करचरणादिपरिणामः । तथा अव्यूढा अपरिणता ये गुणास्तैर्व्यूहितं रिचतम् आकारिवशेषरिहतत्वादव्यक्तमित्यर्थः । एतदेव कुतस्तत्राह । अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् । यच्चाकारिवशेषवद्वस्तु तदस्मदादिवदृश्यते। श्रूयते वा इन्द्रादिवत् । इदं तु न तथा । तिर्हं तस्य सत्त्वे किं प्रमाणं तत्राह । स जीवो जीवोपाधिः 'जीवो जीवेन निर्मुक्तो' 'जीवो जीवं विहाय' इत्यादौ जीवोपाधौ लिङ्गदेहे जीवशब्दप्रयोगात् । जीवोपाधितया कल्प्यत इत्यर्थः । ननु स्थूलमेव भोगायतनत्वाज्जीवस्योपाधिरस्तु किमन्यकल्पनयेत्यत आह । यद्यस्मात्सूक्ष्मात्पुनर्भवः पुनर्जन्म । उत्क्रान्तिगत्यागतीनां तेन विनाऽसंभवादिति भावः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में जीव का निरूपण किया गया है इस स्थूल शरीर से भिन्न इसके भीतर रहने वाला जो लिङ्ग शरीर है वही आरोपित है। वह अरोपित शरीर कैसा है ? तो इसका उत्तर है, वह अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म है। उसके सूक्ष्म होने का हेतु है अव्यूढगुणव्यूहितम्। हाथ पैर आदि के परिणाम को व्यूह कहते है। जो अपरिणत गुण हैं। उन सबों से वह रचित है। फलत: आकार विशेष से रहित होने के कारण वह अव्यक्त है। प्रश्न है कि वह अव्यक्त कैसे है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है क्योंकि वह अदृष्टाश्रुत वस्तु है। अर्थात् हमलोग जिन वस्तुओं को देखते अथवा सुनते हैं वे वस्तुएँ इन्द्रादि के समान आकार विशेष से युक्त होती हैं किन्तु यह जो सूक्ष्म शरीर है वह आकार विशेष से रहित है अतएव अदृष्टाश्रुत है।

तिह तस्य • इत्यादि - तो प्रश्न होता है कि उस शरीर के सद्भाव में क्या प्रमाण है तो इसका उत्तर देते हैं— उसका उत्तर है कि वहीं जीव है । अर्थात् जीवोपाधि है । इसीलिए जीवो जीवेन निर्मुक्तः अर्थात् जीव-जीव (लिङ्ग शरीर) से मुक्त हो गया । इसी तरह यह भी प्रयोग होता है जीवो जीवं विहाय अर्थात् जीव जीव को (लिङ्ग शरीर को) छोड़कर । ऐसे प्रयोगों में जीवोपाधि जो लिङ्ग शरीर है उसी के अर्थ में जीव शब्द का प्रयोग देखा जाता है । उस लिङ्गशरीर की ही जीवोपाधि रूप से कल्पना की जाती है ।

ननुस्थूलमेव० इत्यादि- प्रश्न होता है कि भोगों का आश्रय तो स्थूल शरीर है, क्योंकि उसी शरीर में रहकर जीव सुख-दु:ख इत्यादि भोगों को भोगता है। अतएव उसी को जीवोपाधिमान लेना चाहिए, उससे भिन्न सूक्ष्मशरीर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है? तो इसके उत्तर में कहा गया है- यत्पुनर्भव: क्योंकि उसके सूक्ष्म होने के ही कारण पुनर्जन्म होता है अर्थात् बार-बार जन्म होता है। यदि उस सूक्ष्म जीवोपाधि को नहीं स्वीकार किया जाय तो उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् इस सूत्र का समन्वय नहीं हो सकता है। इस सूत्र में जीव के शरीर से निकलने, तत् तत् लोकों में जाने और फिर विभिन्न लोकों से आने वाला बतलाया गया है। यदि वह सूक्ष्म हो तो यह सम्भव नहीं हो पायेगा ॥३२॥

यत्रेमे सदसदूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा । अविद्ययात्मिन कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥३३॥

अन्वयः इमे सदसद्रूपे आत्मन अविद्यया अरोपिते यत्र एव संविदा प्रतिषिद्धे तद्ब्रह्म दर्शनम् ।।३३।।

अनुवाद स्थूल और सूक्ष्म ये दोनों शरीर आत्मा में अविद्या के द्वारा आरोपित हैं। जब आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से इन दोनों शरीरों का आरोप दूर हो जाता है, तब ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ॥३३॥

तदेवमुपाधिद्वयमुक्त्वा तदपवादेन जीवस्य ब्रह्मतामाह- यत्रेति । यत्र यदा इमे स्थूलसूक्ष्मे रूपे स्वसंविदा श्रवणमननादिभक्त्या स्वरूपसम्यग्ज्ञानेन प्रतिषिद्धे भवतः । ज्ञानेन प्रतिषेधार्हत्वे तमेव हेतुमाह । अविद्ययात्मिन कृते कल्पिते इति हेतोः । तद्ब्रह्म। तदा जीवो ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः । कथंभूतम् । दर्शनं ज्ञानैकस्वरूपम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से दो उपाधियों का वर्णन करके उन दोनों उपाधियों का बाध हो जाने पर जीव ब्रह्म हो जाता है, इस बात को बतलाने के लिए यत्रेमे॰ इत्यादि श्लोक को कहा गया है। अत्र अर्थात् जिस समय ये स्थूल और सूक्ष्म रूप वाली दोनों उपाधियाँ, स्वसंविदा अर्थात् श्रवण मनन इत्यादि भक्ति के द्वारा स्वरूप का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाने के कारण प्रतिषिद्ध हो जाती हैं अर्थात् दूर हो जाती है। ये दोनों उपाधियाँ ज्ञान के द्वारा आत्मा में किल्पत हैं। किल्पत होने के ही कारण मिथ्या हैं और मिथ्या वस्तु का ज्ञान से बाध हो ही जाता है। इन दोनों उपाधियों का बाध हो जाना ही ब्रह्मदर्शन है। अर्थात् उस समय जीव ब्रह्म ही हो जाता है। वह दर्शन ज्ञानमात्र स्वरूप है।।३३॥

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मित: । संपन्न एवेति विदुर्मिहिम्नि स्वे महीयते ॥३४॥

अन्वयः— यदि वैशारदी देवी एषा माया उपरता तदा सम्पन्नः स्वमहिम्नि महीयते एव इति विदुः ।।३४।।

अनुवाद जब यह ईश्वर की संसार चक्र से क्रीडा करने वाली यह माया निवृत्त हो जाती है, तो वहीं माया विद्यारूप से परिणत हो जाती है और इस सम्पूर्ण अविद्या के विनष्ट हो जाने के कारण जीव ब्रह्म स्वरूप होकर अपनी महिमा में ही विराजित हो जाता है यह ज्ञानी पुरुष जानते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि भगवन्मायायाः संमृतिकारणभूताया विद्यमानत्वात्कथं ब्रह्मता तत्राह- यदीति । यदीत्यसंदेहे संदेहवचनम् 'यदि वेदाः प्रमाणं स्युः' इतिवत् । वैशारदी विशारदः सर्वज्ञ ईश्वरस्तदीया देवी संसारचक्रेण क्रीडन्ती एषा माया यद्युपरता भवित। किमित्युपरता भवेत्तत्राह । मितिर्विद्या । अयं भाव:- यावदेषाऽविद्यात्मनाऽऽवरणविक्षेपौ करोति तावन्नोपरमित । यदा तु सैव विद्यारूपेण पारिणता तदा सदसद्रूपं जीवोपाधिं दग्ध्वा निरिन्धनाग्निवत्स्वयमेवोपरमेदिति । तदा संपन्नो ब्रह्मस्वरूपं प्राप्त एवेति विदुस्तत्त्वज्ञाः किमतः । यद्येवं स्वे मिहिम्नि परमानन्दस्वरूपे महीयते पूज्यते विराजत इत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यह प्रश्न होता है कि दोनों उपाधियों के बाधित हो जाने पर भी माया तो बनी ही रहती है ऐसी स्थिति में मोक्ष का होना कैसे सम्भव है ? क्योंकि संसार का कारण तो वह माया ही है । तो इसका उत्तर यदि इत्यादि श्लोक से दिया गया है । विना सन्देह के जहाँ पर संदेह व्यक्त किया जाता है, वहाँ यदि शब्द का प्रयोग होता है । जैसे यदि वेदाः प्रमाणं स्यु:।' इस वाक्य में यदि शब्द से प्रामाणिक भी वेदों के विषय में यदि शब्द से संदेह व्यक्त किया गया है ।

वैशारदी॰ इत्यादि विशारद शब्द वाच्य सर्वज्ञ ईश्वर हैं माया उनकी है; अतएव माया वैशारदी है। वह देवी है अर्थात् संसार चक्र से क्रीडा करती है। जब वह माया उपरत हो जाती है अर्थात् क्रीडा करना बन्द कर देती है तो वहीं माया मित अर्थात् विद्या स्वरूपिणी हो जाती है। और वह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर रूपी उपाधि को विनष्ट करके उसी तरह से विनष्ट हो जाती है जिस तरह से अग्नि सम्पूर्ण इन्धनों को जलाकर नष्ट हो जाती है। उस समय जीव सम्पन्न हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और ऐसा हो जाने पर वह अपने ब्रह्मस्वरूप में विराजमान हो जाता है।।३४।।

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च । वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्यतेः ॥३५॥

अन्वयः अकर्तुः अजनस्य हत्पतेः एवं कवयः जन्मानि, कर्माणि च वेदगुह्यानि वर्णयन्ति ।।३५।।

अनुवाद अजन्मा और अकर्ता इदयेश्वर परमात्मा के वास्तव में जन्म और कर्म नहीं होते हैं फिर भी तत्त्वज्ञ पुरुष उसके जन्मों और कर्मों का वर्णन वेदों के रहस्य रूप से करते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यथा जीवस्य जन्मादि माया एवमीश्वरस्यापि जन्मादि मायेत्याह- एविमिति । अकर्तुः कर्माणि । अजनस्य जन्मानि द्वत्पतेरन्तर्यामिणः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह जीवों के जन्म आदि माया जन्य हैं उसी तरह ईश्वर के भी जन्मादि माया मात्र है। इसी अर्थ का प्रतिपादन एवम्॰ इत्यादि श्लोक से किया गया है। अकर्ता भी ईश्वर के कर्म और अजन्मा ईश्वर के जन्म माया रूप हैं हत्पते: अर्थात् अन्तर्यामी परमेश्वर के ॥३५॥

स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् । भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥

अन्वयः— स वा अमोघलीलः इदं विश्वम् सृजति, अवति, अत्ति किन्तु अस्मिन् न सज्जते । भूतेषु च अन्तर्हितः षड्गुणेशः षाड्वर्गिकं जिघ्रति किन्तु स्वतंत्रः सः न सज्जते ।।३६।।

अनुवाद ईश्वर की लीला अमोघ है। वे इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर वे इसका संहार कर देते हैं, िकन्तु वे जगत् से आसक्त नहीं होते हैं। क्योंिक इन कार्यों को करने में वे स्वतन्त्र हैं। वे सभी भूतों के अन्तर्यामी रूप से रहकर मन सिंहत छह इन्द्रियों के विषयों को उनसे दूर रहकर उसी तरह से ग्रहण करते है। वे छहो इन्द्रियों के स्वामी हैं उनके विषयों से वे अनासक्त रहते हैं।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि जीवादीश्वरस्य को विशेषः स्वातन्त्र्यमेव विशेष इत्याह- सा वा इति । षाड्वर्गिकमिन्द्रियषड्वर्गविषयं जिघ्नति दूरादेव गन्धवदृह्णाति न तु सज्जत इत्यर्थः । कुतः । षड्गुणेशः षडिन्द्रियनियन्ता ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि जीव और ईश्वर दोनों के जन्मादि माया से होते हैं तो फिर जीव और ईश्वर में क्या भेद है ? तो इसके उत्तर में ईश्वर की स्वतन्त्रता को ही विशेष रूप से बतलाते हुए स वा॰ इत्यादि श्लोक को कहते हैं । षाड्विगिकं शब्द से इन्द्रियों के षड्वर्ग विषयों को बतलाया गया है । वे अन्तर्यामी षड्वर्ग विषयों को गन्ध के समान दूर से ही ग्रहण करते हैं किन्तु वे उन विषयों में आसक्त नहीं होते हैं; क्योंकि वे षड्गुणेश हैं अर्थात् इन्द्रियों के नियामक हैं ॥३६॥

न चास्य कश्चित्रिपुणेन घातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः । नामानि रूपाणि नमोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥

अन्वयः कश्चित् कुमनीष अज्ञः जन्तुः निपुणेन मनोवचोभिः नामानि रूपाणि च नटचर्यामिव सन्तन्वतः अस्य धातुः कतीः न अवैति ।।३७।।

अनुवाद कोई भी कुबुद्धि युक्त अज्ञानी मनुष्य अपनी तर्क की कुशलता के द्वारा मन से रूपों (शरीरों) तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करने वाले इस परमेश्वर की लीलाओं को नहीं जान सकता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु किमीश्वरस्य सृष्ट्यादिकर्मीभर्विषयभोगैर्वा तत्राह- न चेति । धातुर्जगद्विधातुरीश्वरस्य ऊतीर्लीलाः कुमनीषः कुबुद्धिर्निपुणेन तर्कादिकौशलेन नावैति न जानाति । मनसा रूपाणि वचसा नामानि संतन्वतः सम्यग्विस्तारयतः । वचोभिरिति बहुत्वं श्रुत्यभिप्रायेण। मनोवचोभिः सहेति वा ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि ईश्वर को सृष्टि आदि कर्मों को करने से अथवा विषयों के भोग से क्या प्रयोजन है ? तो इसका उत्तर न चास्य • इत्यादि श्लोक से दिया गया है । जगत् के निर्माता ईश्वर की कती: अर्थात् लीला को कुमनीष: कुबुद्धि मनुष्य तर्क इत्यादि की कुशलता के द्वारा नहीं जान सकता है । मनसा • इत्यादि वे अपने मन से ही रूपों का तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करते हैं । वचोभि: में बहुवचनान्त प्रयोग 'यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह' इस श्रुति के अभिप्राय से किया गया है । अथवा मन एवं वाणियों के साथ ॥३७॥

स वेद घातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः । योऽमायया सन्ततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥३८॥

अन्वयः यः अमायया सन्ततया अनुवृत्या तत्पादसरोजगन्धम् भजेत सः दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः परस्य धातुः पदवीम् वेद ।।३८।।

अनुवाद जो निष्कपट भाव से बिना किसी कामना के ही निरन्तर सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमलों की सुगन्धि का सेवन करता है वही नि:सीम पराक्रम सम्पन्न चक्रधारी श्रीभगवान् के स्वरूप को जान पाता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

भक्तस्तु कथंचिज्जनातीत्याह- स वेदेति । अमाययाऽकुटिलभावेन । सन्ततया निरन्तरया । अनुवृत्त्या आनुकूल्येन भजेत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला को किसी प्रकार से भक्त ही जान पाता है। इस अर्थ का प्रतिपादन स वेद॰ इत्यादि एलोक के द्वारा किया गया है। अमायया इत्यादि जो अकुटिलभाव से निरन्तर अनुवृत्ति अर्थात् सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण रूपी कमलों के पराग का सदा अनुकूल रूप से सेवन करता है वही श्रीभगवान् की पदवी अर्थात् स्वरूप को जान पाता है।।३८॥

अथेह धन्या भगवन्त इत्यं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे । कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥३९॥

अन्वयः— अथ इह भगवन्तः धन्याः यत् अखिललोकनाथे वासुदेवे इत्थम् सर्वात्मकम् आत्मभावं कुर्वन्ति । यत्र भूयः उग्रः परिवर्तभावः न ॥३९॥ अनुवाद अतएव आपलोग कृतार्थ हैं क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् में ऐकान्तिक मनोभाव को लगाते हैं। उसके करने पर मनुष्यों के जन्म मरण आदि का चक्र समाप्त हो जाता है।।३९।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिमार्गे प्रवृत्तानृषीनिभनन्दित- अथेति । यतो भक्त एव भगवत्तत्त्वं जानित । अथ अतो भगवन्तः सर्वज्ञा भवन्तो धन्याः कृतार्थाः । कुतः । यद्यस्मादित्थं प्रश्नैर्वासुदेव आत्मभावं मनोवृत्तिं कुर्वन्ति । सर्वात्मकमैकान्तिकम् । यत्र यस्मिन्भावे सिति भूयः उग्रो गर्भवासादिदुःखरूपः परिवर्तो जन्मरणाद्यावर्तो न भवित ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति मार्ग में प्रवृत्त शौनकादि ऋषियों का अभिनन्दन करते हुए सूतजी अथेह० इत्यादि श्लोक को कहते हैं। चूिक भक्त ही भगवत् तत्त्व को जानते हैं अतएव सर्वज्ञ आपलोग धन्य अर्थात् कृतार्थ हैं। क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा भगवान्; वासुदेव में ऐकान्तिक आत्मभाव (मनोवृत्ति) करते हैं। उस भाव के हो जाने पर पुनः गर्भवास आदि दु:खरूप जन्म-मरण इत्यादि का चक्र समाप्त हो जाता है।।३९॥

इद भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥

अन्वयः— भगवान् ऋषिः ब्रह्मसम्मित्तम् उत्तमश्लोकचरितं इदं भागवतं नाम पुराणम् चकार ।।४०।।

अनुवाद— ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि व्यास ने सम्पूर्ण वेद के समान तथा उत्तम श्लोक श्रीभगवान् के चिरत से युक्त इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण की रचना की है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

सूत किमेतच्छास्त्रमपूर्व कथयसि तत्राह । ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम् । उत्तमश्लोकस्य चरितं यस्मिस्तत् । ऋषिर्व्यासः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियों के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आप कोई अपूर्व (नवीन) शास्त्र कह रहे हैं क्या ? तो इसके उत्तर में कहते हैं— अथेह० इत्यादि- ब्रह्म संमितम् अर्थात् सम्पूर्ण वेद के समान । जिसमें उत्तम श्लोक श्रीभगवान् का चरित है वह उत्तम श्लोक चरित है । ऋषि शब्द महर्षि व्यास का वाचक है ॥४०॥

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् । तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥

अन्वयः— तत् लोकस्य नि:श्रेयसाय धन्यं, महत् स्वस्त्यनं इदम् आत्मवताम् वरम् सुतम् ग्राहयामास ।।४१।।

अनुवाद— संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने उस धन्य (सर्वश्रेष्ठ) अत्यन्त मङ्गलमय इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण को आत्मज्ञों में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजी को उन्होंने पढ़ाया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तत्सम्प्रदाय प्रवृत्तिमाह सुतम् शुकम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण के सम्प्रदाय के प्रारम्भ को **निःश्रयेसाय० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । सुतम् पद से शुकदेवजी को कहा गया है ॥४१॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धतम् । स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

अन्वयः सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् । स तु महाराजं परीक्षितम् संश्रावयामास ।।४२।।

अनुवाद इस ग्रन्थ में सभी वेदों तथा इतिहासों के सारभाग को निकालकर रख दिया गया है। वे शुकदेवजी इस पुराण को महाराज परीक्षित को सुनाये ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण में सम्पूर्ण वेदों तथा इतिहासों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अर्थों का सन्निवेश किया गया है । इस पुराण को श्रीशुकदेवजी ने सर्वप्रथम राजा परीक्षित् को सुनाया ॥४२॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः। तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेभूरितेजसः॥४३॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुप्रहात्। सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामित॥४४॥

अन्वयः— हे विप्राः ! गङ्गायां प्रायोपविष्टम् परमर्षिभिः परीतम् तत्र भूरितेजसः विप्रर्षेः कीर्तयतः तत्र निविष्टं तदनुग्रहात् अहम् तत्र अध्यगमं सोऽहम् यथा अधीतं यथामित वः श्रावियध्यामि ।।४३-४४।।

अनुवाद है विप्रों गङ्गा के तट में मरण काल पर्यन्त के लिए उपवास करके बैठे हुए तथा परमर्षियों के द्वारा घिरे हुए राजा परीक्षित् को जब विप्रर्षि (शुकदेवजी) श्रीमद्भागवत सुना रहे थे उस समय वहाँ पर बैठे हुए मैंने उसको उनकी कृपा से ही सुना, अतएव मैने जैसा पढ़ा है उसको अपनी बुद्धि के अनुसर आपलोगों को सुनाऊँगा ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

प्रायेण मृत्युपर्यन्तानाशकेनोपविष्टमिति परमवैराग्योक्तिः । हे विप्राः । विप्रर्षेः सकाशात् ।।४३।। अध्यगमं ज्ञातवानिस्म। तत्र कीर्तयतस्तत्र निविष्ट इति चान्वयभेदात्तत्रपदावृत्तिरदोषः । यथाऽधीतं नतु स्वमितविलसितम् । तत्रापि यथामित स्वमत्यनुसारेण। संक्षेपतः कथितं विस्तरतः श्रावियष्यामि ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

गङ्गा तट में मृत्यु काल पर्यन्त उपवास करने के लिए बैठे हुए यह प्रायोपविष्टम् पद का अर्थ है। यह कहकर राजा परीक्षित् के परम वैराग्य को सूचित किया गया है। हे विप्रों शुकदेवजी की सिन्निधि में मैंने इस श्रीमद्भागवत शास्त्र का अध्ययन किया। यदि कोई कहे कि तत्र कीर्तयतः तथा तत्र निविष्टः इस वाक्य में दो बार तत्र पद का सिन्नवेश किए जाने के कारण पुनरावृत्ति नामक दोष है तो ऐसी बात इसलिए नहीं है कि दोनों तत्र पदों का अन्वय अलग-अलग है। फलतः उक्त दोष का अभाव है। यथाधीतम् कहकर सूतजी ने यह बतलाया है कि जैसा मैने अध्ययन किया है, वैसा ही मैं सुनाऊँगा न कि अपनी बुद्धि से कल्पना करके सुनाऊँगा। यथामित का अभिप्राय है कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सुनाऊँगा। जो संक्षेप में कहा गया है। उसको विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा।।४३-४४॥

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष पुराणाकोऽधुनोदितः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— कृष्णे धर्मज्ञानादिभिः सह स्वधामोपगते कलौ नष्टदृशाम् अधुना पुराणार्कः उदितः ।।४५।।

अनुवाद जब भगवान् श्रीकृष्ण धर्म तथा ज्ञान आदि के साथ अपने धाम में चले गये, उसके पश्चात् किलयुग में जो लोग अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हो रहे है, उनके लिए ज्ञान के प्रकाशक पुराण रूपी सूर्य का उदय हुआ है ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्थे भार्वाथदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्याय: ।।३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।३।।

नोट— श्रीमद्भागवत के गीताप्रेस संस्करण में कली नष्टदृशाम् । श्लोक के पश्चात् अहं चाध्यगमम इत्यादि श्लोक मुद्रित है ।



चौथा अध्याय

महर्षि व्यास का असन्तोष

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसित्रिणाम् । वृद्धः कुलपितः सूतं वहृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥ अन्वयः— दीर्घसित्रिणाम् मुनीनां वृद्धः कुलपितः वहवृचः शौनकः इति ब्रुवाणं सूतं संस्तूय अब्रवीत् ॥१॥

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— दीर्घ कालीन सत्र में सम्मिलित हुए मुनियों में विद्यावयोवृद्ध, कुलपित ऋग्वेदी शौनक महर्षि ने उपर्युक्त बातों को कहने वाले सूतजी की प्रशंसा करके कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तुर्ये भागवतारम्भकारणत्वे वर्ण्यते । व्यासस्यापरितोषस्तु तपःप्रवचनादिभिः ।।१।। इत्येवं प्रसन्नतया श्रावियष्यामीति ब्रुवाणम् । मुनीनां बहूना मध्ये एकेन वक्तव्ये यो वृद्धो वृद्धेष्विप बहुषु यः कुलपितर्गणमुख्यस्तेष्विप बहुषु यो बहुचः ऋग्वेदी तेन वक्तव्यम् । अत एवंभूतत्वाच्छौनकोऽब्रवीत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में तपस्या तथा प्रवचन आदि के द्वारा होने वाले असन्तोष को इस श्रीमद्भागवत पुराण के प्रारम्भ के कारण रूप से वर्णन किया गया है। यह इस अध्याय का सारांश है।

इत्येवम् इत्यादि - इस तरह से मैं सुनाऊँगा, इस बात को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा यह कहने वाले सूतजी को । मुनीनाम् इत्यादि नियम है कि यदि बहुत मुनि हों तो उनमें से किसी एक वृद्ध को बोलना चाहिए । अनेक वृद्धों में भी जो कुलपित (सबों में मुख्य) हो और उन सबों में भी जो ऋग्वेदी हो उसको बोलना चाहिए । अतएव इन सभी गुणों से युक्त शौनक महर्षि ने कहा ॥१॥

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥२॥

अन्वयः— हे महाभाग सूत ! हे सूत ! हे वदतां वर ! भागवतीम् यां पुण्यां कथां भगवान् शुक: प्राह तां नो वद ।।२।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग सूतजी जिस पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को शुकदेवजी ने कहा था उसी कथा को आप हमलोगों को सुनाइये ॥२॥

यत् यां कथामाह ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यत् शब्द के द्वारा कहा गया है कि जिस कथा को शुकदेवजी ने सुनाया था ।।२।।

कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना । कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥३॥

अन्वयः इयं कथा कस्मिन् युगे, कस्मिन् स्थाने केन हेतुना प्रवृत्ता, केन संचोदितः कृष्णः मुनिः संहितां कृतवान् ।।३।। अनुवाद यह कथा किस युग में ? किस स्थान पर हुयी । तथा किस कारण से किसके द्वारा प्रेरित होकर कृष्णद्वैपायन मुनि ने इस पारमहंस्य संहिता का निर्माण किया ?।।३।।

भावार्थ दीपिका

कस्मिन्वा स्थाने । केन हेतुनेति महाभारतादिधर्मशास्त्राणि कृतवतः पुनरेतत्संहिताकरणे किं कारणिमत्यर्थः । कुत इति सार्वविभक्तिकस्तिसः । केन प्रवर्तित इत्यर्थः । कृष्णो व्यासः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यह कथा किस स्थान पर हुयी ? महाभारत आदि धर्मशास्त्रों का प्रणयन कर लेने के पश्चात् इस संहिता के निर्माण का कारण क्या था ? **कुत:** पद में सार्वविभक्तिक तिसल् प्रत्यय हुआ है । अर्थात् किसके द्वारा प्रेरित होकर महर्षि व्यास ने इसका प्रणयन किया ॥३॥

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः । एकान्तमितरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥४॥

अन्वयः— तस्य पुत्रो महायोगी, समदृक् निर्विकल्पकः, एकान्तमितः उन्निद्रः गूढ मूढ इव इयते ।।४।।

अनुवाद महर्षि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी महायोगी हैं।, वे समदर्शी, भेदभाव से रहित, एकमात्र श्रीभगवान् के चिन्तन में लीन रहने वाले, तथा संसार रूपी निद्रा से जगे हुए हैं वे छिपे हुए रहने के कारण मूढ (अज्ञानी) के समान प्रतीत होते हैं।।४।।

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं 'स तु संश्रावयामास' इति तच्छुकस्य व्याख्यानादिकं कथं घटितिमिति प्रष्टुं तस्यासङ्गोदासीनतामाह द्वाभ्याम्— तस्येति । समदृक् समं ब्रह्म पश्यित । अतो निर्विकल्पकः । स्वार्थे कः । निरस्तभेदः । किंच एकस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्यास्तथाभूता मितर्यस्य सः । यत् उन्निद्रो मायाशयनादुद्धुद्धः 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागिति संयमी' इति स्मृतेः । अतएव गूढोऽप्रकटः। मृढ इव प्रतीयते ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा जा चुका है कि व्यासजी ने उसे शुकदेवजी को पढ़ाया। ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है ? कि यह शुकदेवजी का व्याख्यान है। उसी को पूछने के लिए शुकदेवजी की आसिक्त रहित उदासीनता को तस्य इत्यादि दो श्लोकों को कहा गया है। जो एक समान ब्रह्म को देखे उसको समदर्शी कहते हैं। अतएव वे निर्विकल्पक अर्थात् भेदभाव से रहित हैं। निर्विकल्पक में स्वार्थ में क प्रत्यय हुआ है। निर्विकल्पक का अर्थ है भेद रहित। एकिस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्याः तथा भूता मितः यह एकान्तमित शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है। इसका अर्थ है जिसकी एक ही परमात्मा में मित लगी रहती है। क्योंकि वे उन्निद्र हैं अर्थात् मायारूपी निद्रा से जगे हुए हैं भगवद् गीता में कहा भी गया है या निशा इत्यादि अर्थात् जो माया सभी संसारियों के लिए रात्रि के

समान अज्ञान रूपी अन्धकारमयी है, उसमें ज्ञानीपुरुष जगता रहता है । शुकदेवजी तो स्वयम् अपने को छिपाये रहते हैं फलत: वे अज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं ॥४॥

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् । तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥५॥

अन्वयः आत्मजम् अनुयान्तम् अनग्नमपि ऋषिं दृष्ट्वा देव्यः ह्रिया परिदधुः सुतस्य न इति तत् चित्रं वीक्ष्य मुनौ पृच्छति, जगदुः यत् तव स्त्रीपुंभिदा अस्ति, विविक्तदृष्टेः सुतस्य तु न ॥५॥

अनुवाद संन्यास के लिए वन में जाते हुए अपने पुत्र के पीछे व्यासजी जा रहे थे, उस समय वस्त्र धारण किए हुए भी महर्षि व्यास को देखकर स्त्रियों ने लज्जा के कारण वस्त्र को धारण कर लिया, किन्तु उनके पुत्र श्रीशुकदेवजी को देखकर उन सबों ने वस्त्र नहीं धारण किया। इस विचित्र बात को देखकर जब व्यासजी ने उसका कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है, किन्तु आपके पुत्र शुकदेवजी की दृष्टि तो शुद्ध है, उनको स्त्री और पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान नहीं है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

निर्विकल्पकत्वं प्रपञ्चयित- दृष्ट्वेति । आत्मजं शुकं प्रव्रजन्तमनुगच्छन्तमृषिं व्यासमनग्नमि दृष्ट्वा जले क्रीडन्त्यो देव्योऽप्सरसो ह्रिया लज्जया परिदधुर्वस्त्रपरिधानं कृतवत्यः । अनग्रमपीत्यनेनार्थात्तत्सुतो नग्न इत्युक्तम् । नग्नस्य पुरतो गच्छतः सुतस्य तु ह्रिया न परिदधुः । तच्चित्रं वीक्ष्य । इयं स्त्री अयं पुमानिति भिदा भेदस्तवास्ति । विविक्ता पूता दृष्टिर्यस्य ।।५।।

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी की निर्विकल्पकता की व्याख्या करते हुए शौनक महर्षि दृष्टवा इत्यादि श्लोक को कहते हैं। संन्यास ग्रहणार्थ वन में जाते हुए अपने पुत्र शुकदेवजी के पीछे जाते हुए महर्षि व्यास को अनग्न भी देखकर जल में क्रीडा करती हुयी अप्सराओं ने लज्जा के कारण वस्त्रों को धारण कर लिया । अनग्नमि के अपि शब्द के द्वारा ज्ञात होता है कि उनके पुत्र शुकदेवजी नग्न थे । उन नग्न शुकदेवजी को सामने से जाते हुए देखकर अप्सराओं ने वस्त्र नहीं धारण किया । इस विचित्रता को देखकर व्यासजी ने उसका जब कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है और आपके पुत्र तो विविक्त दृष्टि हैं उनकी दृष्टि पवित्र है । अतएव उनको इस भेद का ज्ञान नहीं है ॥५॥

कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजाङ्गलान् । उन्मत्तमूकजडवद्विचरनाजसाह्वये ॥६॥

अन्वयः कुरुजाङ्गलान् सम्प्राप्तः गजसाह्वये उन्मत्तमूकजडवत् विचरन् सः पौरैः कथमालक्षितः ?।।६।।

अनुवाद— कुरुजाङ्गल प्रदेश में जाकर हस्तिनापुर में पागल गूङ्गे तथा जड के समान विचरण करते हुए उनको नगर वासियों ने कैसे पहचाना ?।।६।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतोऽसौ कथमालक्षितो ज्ञातः । कुरवो जाङ्गलाश्च देशविशेषास्तान्संप्राप्तः प्रथमं ततो गजसाह्वये विचरन् । गजेन सहित आह्वयो नाम यस्य तस्मिन्हस्तिनापुरे । हस्ती नाम राजा तेन निर्मितत्वात् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के शुकदेवजी कैसे पहचान लिए गये ? कुरु तथा जाङ्गल नाम के देश विशेष है । वहाँ जाकर उसके पश्चात् गजसाह्नय (हस्तिनापुर में) विचरण करते हुए । गज के साथ जिसका नाम लिया जाता है, वह हस्तिनापुर है । उसका निर्माण चूकि हस्ती नामक राजा ने कराया था अतएव उसका नाम हस्तिनापुर है ॥६॥

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह । संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥७॥

अन्वयः हे तात ! कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेः मुनिना सह संवादः समभूत् यत्र एषा सात्त्वती श्रुतिः ।।७।। अनुवाद किञ्च पाण्डव नन्दन राजर्षि परीक्षित् का किस प्रकार मनन चिन्तन परायण शुकदेवजी का संवाद हुआ, जहाँ यह भागवती संहिता कही गयी ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतेन मुनिना सह । यत्र संवादे एषा सात्वती भागवती श्रुतिः संहिता ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के मुनि शुकदेवजी के साथ जिस संवाद में यह भागवती श्रुति की संहिता कही गयी ॥७॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहसेधिनाम् । अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वस्तदाश्रमम् ॥८॥

अन्वय:— महाभागः सः तु गृहमेधिनाम् गृहेषु तदाश्रमम् तीर्थीकुर्वन् गोदोहनमात्रं हि अवेक्षते ।।८।।

अनुवाद महाभाग शुकदेवजी तो गृहस्थों के द्वार पर उनके आश्रम को पवित्र बनाने के लिए उतने ही देर तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दूही जा सकती हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एतद्याख्यानं बहुकालवस्थानापेक्षम्, तस्य त्वेकत्रावस्थानं दुर्लभिमित्याह- स इति । गोदोहनमात्रं कालं प्रतीक्षते, तदिप न भिक्षार्थं, किंतु तेषामाश्रमं गृहं तीर्थीकुर्वन्यवित्रीकुर्वंस्तस्मादेवंभूतोऽत्र वक्तेत्याश्चर्यम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इस ग्रन्थ का प्रवचन करने के लिए तो अत्यधिक समय की अपेक्षा होती है, उतनी देर तक उनका कहीं एक स्थान पर रुकना असम्भव है। इस अर्थ का प्रतिपादन स तु॰ इत्यादि श्लोक से किया गया है। गोदोहोनमात्रम्॰ इत्यादि वे तो गृहस्थों के द्वार पर उतने ही समय तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दुह ली जाय। वह भी वे भिक्षा प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु वे गृहस्थों के गृह को पवित्र बनाने के लिए रुकते हैं। अतएव ऐसे इस पुराण के वक्ता हैं यह तो आश्चर्य की बात है।।८।।

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् । तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥

अन्वयः— हे सूत ! अभिमन्युसुतं भागवतोत्तमं प्राहुः तस्य महाश्चर्यं जन्म कर्माणि च नः गृणीहि ।।९।।

अनुवाद हे सूतजी ! अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् को तो उत्तम भगवद्भक्त कहा गया है; उनके आश्चर्यमय जन्म और कर्मों को भी आप हमलोगों को सुनायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

श्रोतुस्तु चरितमतीवाश्चर्यमतः कथयेत्याह- अभिमन्युसुतिमिति पश्चभिः । गृणीहि कथय ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण के श्रोता राजा परीक्षित् का भी चिरत अत्यन्त आश्चर्यमय है । अतएव उसें भी आप सुनायें इस बात को अभिमन्युसुतम् इत्यादि पाँच श्लोकों से कहा गया है । गृणीहि का अर्थ है कि कहें ॥९॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः । प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥ अन्वयः— पाण्डूनाम् मानवर्धनः सम्राट् सः अधिराट्श्रियम् अनादृत्य कस्य वा हेतोः गङ्गायाम् प्रायोपविष्टः?॥१०॥

अनुवाद— महाराज पाण्डु के वंश का सम्मान बढ़ाने वाले वे सम्राट् थे। वे साम्राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके किस कारण से मृत्युकाल पर्यन्त अनशन का व्रत लेकर गङ्गा के तट पर बैठे थे।।१०॥

भावार्थ दीपिका

सम्राट् चक्रवर्ती । वेति वितर्के । कस्य वा हेतोः कस्मात्कारणात् । अधिराट्श्रियं अघिराजां श्रियं संपदमनादृत्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

चक्रवर्ती राजा को सम्राट् कहते हैं। वा शब्द का वितर्क के अर्थ में प्रयोग किया गया है। वे किस कारण से राजाओं के भी राजा की सम्पत्ति का अनादर करके यह अधिराट्श्रियम् अनादृत्य का अर्थ है।।१०।।

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः । कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्त्रष्टुमहो सहासुभिः ॥११॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! शत्रवः ह आत्मनः शिवाय धनानि आनीय यत् पादनिकेतम् नमन्ति अहो स युवा वीरः असुभिः सह दुस्त्यजां श्रियम् कथम् ऐषत ।।११।।

अनुवाद हे सूतजी ! शतुगण अपने आत्मकल्याण के लिए धन लाकर जिनकी चरणचौकी को नमस्कार करते थे । यह आश्चर्य की बात है कि वे युवा वीर अपने प्राणों के साथ जिसको त्यागना कठिन है उस लक्ष्मी को क्यों त्यागने की इच्छा किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यस्य पादिनकेतं चरणपीठम् । ह स्फुटम् । धनान्यानीय शत्रवो नमन्ति । अङ्ग हे सूत । युवा तरुण एव ऐषत ऐच्छत्। अत्रार्षमात्मनेपदम् । असुभि: प्राणै: सह ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जिनकी चरणचौकी को यह **पादिनकेतम्** पद का अर्थ है। ह यह अव्यय प्रसिद्धि का द्योतक है। शत्रुगण धनों को लाकर नमस्कार करते थे। अङ्ग यह सूतजी का सम्बोधन है। **युवैषत** का अर्थ है कि युवा अवस्था में ही चाहे। ऐषत में आत्मने पद आर्ष प्रयोग होने के कारण है। सहासुभि: पद का अर्थ है प्राणों के साथ ॥११॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः । जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥

अन्वयः— ये उत्तमश्लोकपरायणा जनाः लोकस्य शिवाय, भवाय, भूतये जीवन्ति नात्मार्थम् । असौ पराश्रयम् कलेवरम् कुतः निर्विद्य मुमोच ।।१२।।

अनुवाद जिन लोगों का जीवन श्रीभगवान् के आश्रित होता है वे लोग जगत् का कल्याण अभ्युदय और समृद्धि के लिए जीवित रहते हैं। उसमें उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता है। उनका शरीर तो परार्थ होता है, ऐसे राजा परीक्षित् किस कारण से विरक्त होकर उसे त्यागना चाहे ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विरक्तस्य किं धनादिभिरिति चेत्तत्राह- शिवायेति । लोकस्य शिवाय सुखाय भवाय समृद्ध्यै भूतये ऐश्वर्याय च ते जीवन्ति न त्वात्मार्थम् । एवं सत्यसौ राजा निर्विद्य विरज्यापि परेषामाश्रयं कलेवरं कुतो हेतोर्मुमोच । न हि परोपजीवनं स्वयं त्यक्तुयुचितमित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि विरक्त पुरुष को धन इत्यादि से क्या प्रयोजन है ? तो इसके उत्तर में शिवाय • इत्यादि

श्लोक कहा गया है। अर्थात् ऐसे लोगों का जीवन जगत् के शिवाय अर्थात् सुख के लिए, भवाय अर्थात् समृद्धि के लिए और भूतये अर्थात् ऐश्वर्य के लिए होता है। अपने लिए नहीं होता। ऐसे राजा संसार से विरक्त होकर भी दूसरों के आश्रयभूत शरीर को क्यों त्यागना चाहे ? दूसरों के आश्रय भूत वस्तु का स्वयं त्याग देना तो उचित नहीं है।।१२।।

तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन । मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥१३॥

अन्वयः छान्दसात् अन्यत्र वाचां विषये त्वाम् अहम् स्नातं मन्ये । इह यत् किंचन पृष्टः तत्सर्वं नः समाचक्ष्व ।।१३।। अनुवाद वेदवाणी को छोड़कर अन्य शास्त्रों में मैं आपको पारंगत मानता हूँ । अतएव मैंने जो कुछ भी आपसे पूछा है, उन सभी विषयों को हमलोगों को सुनाइये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

यत्किंचन पृष्टोऽसि तत्सर्वं नोऽस्मभ्यं समाचक्ष्व । यद्यस्माद्वाचां विषये गिरां गोचरेऽर्थे स्नातं पारंगतं त्वां मन्ये । छान्दसादन्यत्र वैदिकव्यतिरेकेण । अत्रैवर्णिकत्वात् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जो कुछ भी मैंने पूछा है उन सभी विषयों को आप हमलोगों को सुनाइये। क्योंकि शास्त्रों के विषय में आपको मैं पारंगत मानता हूँ। **छान्दसादन्यत्र** का अर्थ है वैदिक विषयों को छोड़कर। ऐसा इसलिए कि आप त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) से भिन्न शूद्र वर्ण के हैं। और शूद्रों का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं है। फलत: आप वेद को छोड़कर अन्य शास्त्रों में पारंगत हैं।।१३।।

सूत उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये । जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥

अन्वयः - तृतीये युगपर्यये द्वापरे समनुप्राप्ते पराशरात् वासव्यां योगी हरे: कलया जात: ।।१४।।

अनुवाद इस चतुर्युगी के तीसरे युग द्वापर युग के आ जाने पर उपरिचर वसु के वीर्य से उत्पन्न वसुकन्या सत्यवती के गर्भ से पराशर महर्षि के पुत्र योगी व्यासजी उत्पन्न हुए । वे श्रीहरि के कलावतार थे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

कस्मिन्युग इत्यादिप्रश्नानां व्यासजन्मकथनपूर्वकमुत्तरमाह- द्वापर इति । द्वापरे समनुप्राप्ते । कदेत्यपेक्षायामाह । तृतीये युगस्य पर्यये परिवर्ते । वासव्यामुपरिचरस्य वसोवींर्याज्जतायां सत्यवत्यां योगी ज्ञानी व्यासो जात: ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

किस युग में श्रीमद्भागवत की कथा प्रारम्भ हुयी इत्यादि जो महर्षि शौनक के प्रश्न हैं उन सबों का उत्तर व्यासजी के जन्म वर्णन पूर्वक द्वापरे इत्यादि श्लोक से सूतजी ने दिया है। द्वापर युग के आ जाने पर यह कब कथा हुयी इस प्रश्न का उत्तर है। तीसरे युग द्वापर के आ जाने पर, उपित्वर वसु के वीर्य से उत्पन्न सत्यवती के गर्भ से ज्ञानी व्यासजी का जन्म हुआ। यहाँ योगी शब्द का अर्थ ज्ञानी है।।१४।।

स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः । विविक्त एव आसीन उदिते रविमण्डले ॥१५॥

अन्वयः कदाचित् सः सरस्वत्याः शुचिः जलं स्पृश्य रिवमण्डले उदिते विविक्ते एव आसीन आसीत् ।।१५।। अनुवाद एक बार वे सरस्वती नदी के पिवत्र जल में स्नान आदि करके सूर्योदय हो जाने पर एकान्त में महर्षि व्यास अकेले बैठे थे ।।१५।।

जलमुपस्पृश्य जले स्नानादिकं कृत्वेत्यर्थः । आसीनो वभूवेति शेषः । विविक्ते देश इत्यादि चित्तैकाग्र्यार्थमुक्तम् । अनेनैव वदरिकाश्रमस्थानं सूचितम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जलमुपस्पृश्य का अर्थ है जल में स्नान आदि करके बैठे हुए थे। एकान्त स्थान में इत्यादि चित्त की एकाग्रता को सूचित करने के लिए कहा गया है। इसके द्वारा यह सूचित होता है कि वह बदिरकाश्रम का स्थान था।।१५॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा। युगधर्मव्यितकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥१६॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिहासं च तत्कृतम्। अश्रद्दधानान्निसत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥१७॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्यमुनिर्दिव्येन चक्षुषा। सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक्॥१८॥

अन्वयः परावरज्ञः स अमोघदृक् ऋषिः युगे-युगे भुवि प्राप्तं अव्यक्तरंहसा कालेन, युगधर्मव्यितकरं, च तत्कृतम् भौतिकानां भावानां च शक्तिह्रासं, अश्रद्धधानान्, निःसत्त्वान्, दुर्मेधान्, ह्रिसतायुषः जनान् वीक्ष्य मुनिः दिव्येन चक्षुषा सर्ववर्णाश्रमाणां यत् हितम् तद् दध्यौ ।।१६-१८।।

अनुवाद अतीत एवं अनागत को जानने वाले वे ऋषि प्रत्येक युग में पृथिवी पर होने वाले वर्णाश्रम धर्मों के सांकर्य तथा कालकृत भौतिक पदार्थों के शक्ति के ह्रास को एवं श्रद्धारहित, धैर्यरहित मन्दमित वाले लोगों जिनकी आयु का ह्रास हो गया है ऐसे लोगों को देखकर तथा दौर्भाग्यग्रस्त लोगों को देखकर, अमोघदृष्टि वाले वे महर्षि सभी वर्णों के हितों का अपनी दिव्यदृष्टि से ध्यान किए ।।१६-१८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र च स ऋषिर्युगधर्मव्यतिकरादिकं वीक्ष्य सर्ववर्णाश्रमाणां यद्धितं तद्दध्याविति तृतीयेनान्वयः । परावरज्ञोतीतानागतिवत्। अव्यक्तं रंहो वेगो यस्य तेन कालेन युगधर्माणां व्यतिकरं सङ्करं प्राप्तं वीक्ष्य । तथा भुवि युगे युगे । भौतिकानां भावानां शरीरादीनाम् । तत्कृतं कालकृतम् निःसत्त्वान्धैर्यशून्यान् । दुर्मेधान्मन्दमतीन् ।।१६-१८।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर वे ऋषि युगधर्मव्यितकरादिकम् अर्थात् युगधर्मों का सांकर्य देखकर, सभी वर्णों और आश्रमों के कल्याणकारी विषय का ध्यान किये। परावरज्ञ: अर्थात् अतीत तथा अनागत को जानने वाले। कालेनाव्यक्तरंहसा अर्थात् जिसके वेग को नहीं जाना जा सकता है ऐसे काल के द्वारा युगधर्मों के सांकर्य को देखकर जो पृथिवी पर प्रत्येक युग में होता है तथा शरीर आदि की शक्ति को कालकृत हास धैर्यशून्य एवं मन्दमित वाले लोगों को देखकर ॥१६-१८॥

चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् । व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

अन्वयः वैदिकं चातुर्होत्रं प्रजानां शुद्धं कर्म इति वीक्ष्य एवं वेदम् यज्ञसन्तत्यै चतुविघं व्यदघात् ।।१९।।

अनुवाद वेदों में वर्णित चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों द्वारा सम्पादित किया जाने वाला) कर्म (अग्निष्टोम आदि कर्म) लोगों को शुद्ध कर देता है। यह विचार करके यज्ञों का विस्तार करने के लिए एक ही वेद का उन्होंने चार भागों में विभाग कर दिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च होत्रोपलक्षिताश्चत्वार ऋत्विजश्चतुर्होतारस्तैरनुष्ठेयं कर्म चातुर्होत्रम् । शुद्धं शुद्धिकरम् । यज्ञसन्तत्यै यज्ञानामविच्छेदाय ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव होत्र शब्द के द्वारा उपलक्षित होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा ही चार होता है। उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले कर्म को चातुर्होत्र कहा जाता है। शुद्धं शब्द का अर्थ शुद्धि करने वाला है। यज्ञसन्तत्यै का अर्थ है यज्ञों के निरन्तर होते रहने के लिए ॥१९॥

ऋग्यजुःसमामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः । इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

अन्वयः --- ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याः चत्वारः वेदा उद्भृताः च इतिहासपुराणं पञ्चमो वेद उच्यते ।।२०।।

अनुवाद— उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों को अलग-अलग किया और इतिहास पुराणों को पाँचवाँ वेद कहते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

चातुर्विध्यमेवाह- ऋगिति । उद्भृताः पृथक्कृताः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

ऋग् इत्यादि श्लोक के द्वारा वेदों के चार भेदों को बतलाया गया है । उद्धृता: शब्द का अर्थ है, पृथक् किया ॥२०॥

तत्रग्वेंदघरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः । वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥२१॥

अन्वयः तत्र ऋग्वेदघरः पैलः, जैमिनिः कविः, सामगः, यजुषाम् उतएक एव निष्णातः वैशम्पायनः ।।२१।।

अनुवाद— उनमें से ऋग्वेद के ज्ञाता पैल हुए, सामवेद के विद्वान् जैमिनि महर्षि हुए और यजुर्वेद के निष्णात स्नातक वैशम्पायन हुए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका- नहीं है ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उन वेदों में तीन वेदों के ज्ञाताओं का नाम इस श्लोक में बतलाया गया है। उन चारो वेदों में से ऋग्वेद के ज्ञाता महर्षि पैल हुए, सामवेद के विद्वान महर्षि जैमिनि हुए और यजुर्वेद के ज्ञाता वैशम्पायन महर्षि हुए। ये सभी महर्षि व्यास के ही शिष्य हैं ॥२१॥

अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः । इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ।।२२।।

अन्वयः अथर्वाङ्गिरसां दारुणः समन्तु मुनिः आसीत्, इतिहासपुराणानां च ज्ञाता मे पिता रोमहर्षणः आसीत् ।।२२।। अनुवाद अथर्ववेद के ज्ञाता दरुण महर्षि के पुत्र सुमन्तु मुनि थे और इतिहास पुराणों के ज्ञाता मेरे पिता रोमहर्षण सूत हुए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

दारुणः क्रूरः अथर्वोक्ताभिचारादिप्रवृत्तेः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सुमन्त मुनि को दारुण इसलिए कह गया है कि वे अथर्ववेद के ज्ञाता बतलाये गये क्रूर कर्मों में प्रवृत्त थे। साथ ही वे दरुण मुनि के पुत्र भी थे।।२२।।

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा । शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥२३॥

अन्वयः— ते एते ऋषयः स्वं स्वं वेदम् अनेकघा व्यस्यन् । शिष्यैः प्रशिष्यैः तच्छिष्यैः ते वेदाः शाखिनः अभवन् ।।२३।।

अनुवाद— उन सभी ऋषियों ने अपने-अपने वेदों को अनेक प्रकार से विभक्त किया । फलतः शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्यों के द्वारा वे वेद अनेक शाखाओं वाले हो गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

व्यस्यन्विभक्तवन्तः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मूल के व्यस्यन् शब्द का अर्थ विभाजित किया है ॥२३॥

त एव वेदा दुर्में धैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा । एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥

अन्वयः त एव वेदाः यथा दुर्मेधैः पुरुषै धार्यन्ते एवं कृपणवत्सलः भगवान् व्यासः चकार ।।२४।।

अनुवाद— उन वेदों को कमबुद्धि वाले लोग जैसे धारण कर सकें वैसा ही, कम बुद्धि वाले लोगों पर कृपा करने वाले महर्षि भगवान् व्यास ने बना दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

वेदविभागप्रयोजनमाह- त एवेति । ये पूर्वमितमेधाविभिर्धार्यन्ते स्म त एव ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

त एव इत्यादि श्लोक के द्वारा वेदों के विभाग का प्रयोजन बतलाया गया है। जिन वेदों को अत्यन्त मेधावी पुरुष धारण करते थे उन वेदों को ही यहाँ त एव के द्वारा कहा गया है।।२४।।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥२५॥

अन्वयः— कर्मश्रेयसि मूढानां स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयीश्रुतिगोचरा न (भवति इति) तेषाम् इह एवं श्रेयः भवेत् इति मुनिना कृपया भारतम् आख्यानं कृतम् ।।२५।।

अनुवाद — कल्याणकारी कर्मों के करने के प्रकार के विषय में अज्ञानी, वेदों के श्रवण के अनिधकारी स्त्रियों, शूद्रों तथा पिततिद्वजों को इसी से कल्याण हो जाय इस तरह सोचकर महर्षि व्यास ने महाभारत नामक इतिहास का प्रणयन किया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किंच स्त्रीशूद्रेति । द्विजबन्धवस्त्रैवर्णिकेष्वधमास्तेषाम् । कर्मरूपे श्रेय:- साधने एवं भवेदनेनैव प्रकारेण भवतु । इति अतएव तेषां कृपया भारताख्यानं मुनिना कृतम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

स्त्री शूद्र इत्यादि श्लोक के द्वारा महाभारत के प्रणयन का प्रयोजन बतलाया गया है। त्रैवर्णिकों में जो पितत होते हैं उन लोगों का द्विजबन्धु कहते हैं। उन सबों का कर्मश्रेयिसमूढानां का अर्थ है कि वे कर्म रूपी कल्याण के साधन के विषय में यह कर्म ऐसे होना चाहिए इस बात को नहीं जानते हैं। अतएव उन स्त्री, शूद्र तथा द्विजबान्धवों पर कृपा करके महर्षि व्यास ने महाभारत का प्रणयन किया ॥२५॥

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयिस द्विजाः । सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्भृदयं ततः ॥२६॥ अन्वयः— हे द्विजाः एवं सदा भूतानां श्रेयिस प्रवृतस्य सर्वात्मकेनापि ततः यदा हृदयं न अतुष्यत् ॥२६॥ अनुवाद हे द्विजों इस प्रकार से सदा जीवों का कल्याण करने में ही लगे रहने वाले महर्षि व्यास का उस सर्वात्मक कर्म के द्वारा भी जब हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एवमनेन प्रकारेण । भूतानां श्रेयिस हिते । सर्वात्मकेनापि कर्मणा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सबों का कल्याण करने के लिए कर्मों को करते रहने पर भी व्यासजी का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ ॥२६॥

नातिप्रसीदबृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ । वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२७॥

अन्वयः -- नातिप्रसीदद्भयः शुचौ सरस्वत्याः तटे विविक्तस्थः सः धर्मवित् विर्तकयन् इदं प्रोवाच ।।२७।।

अनुवाद — व्यासजी का हृदय मन बहुत अधिक प्रसन्न नहीं था, वे धर्मज्ञ सरस्वती नदी के पवित्र तट पर एकान्त में बैठे हुए विचार करके कहे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

न अतिप्रसीदत् हृदयं यस्य सः । चित्ताप्रसत्तौ हेतुं वितर्कयन्निदमुवाच स्वगतम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इन सभी लोकोपकारी कार्यों के करने पर भी व्यासजी का मन खिन्न ही था उनका मन पूर्णरूप से प्रसन्न नहीं था अपने मन की अप्रसन्नता के कारण के विषय में विचार करते हुए वे अपने मन में ही कहने लगे ॥२७॥ घृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्रयः । मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥

अन्वयः धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि, गुरवः अग्नयः सम्मानिताः निर्व्यलीकेन च अनुशासनं गृहीतम् ।।२८।।
अनुवाद मैंने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों, गुरुजनों तथा अग्नियों का सम्मान किया और निष्कपट
भाव से उनकी आज्ञाओं का पालन किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

निर्व्यलीकेन निष्कपटबुद्ध्या मानिताः पूजिताः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

मैंने निष्कपट बुद्धि से सबों की पूजा की है। फिर भी मेरा मन प्रसन्न क्यों नहीं है? इस तरह से महर्षि व्यास मन-ही-मन सोच रहे थे।।२८॥

भारतव्यपदेशेन ह्यामायार्थश्च दर्शितः । दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूदादिभिरप्युत ।।२९।।

अन्वयः— भारतव्यपदेशेने हि आम्नायार्थः च दर्शितः । यत्र उत स्त्रीशूद्राभिः धर्मादि दृश्यते ।।२९।।

अनुवाद महाभारत के व्याज से मैंने वेदों के अर्थों को स्पष्ट कर दिया है और उसके माध्यम से स्त्री शूद्र आदि भी अपने धर्म को जान लेते हैं ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

चूिक स्त्री शूद्र इत्यादि तो वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते हैं । उन लोगों के ही कल्याण के लिए मैंने महाभारत की रचना की है और उसके माध्यम से वे लोग अपने धर्म को जान भी लेते हैं । फिर भी न जान क्यों मैं असन्तुष्ट ही हूँ ॥२९॥

अथापि बत मे देह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः । असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥

अन्वयः— मे दैह्यः आत्मा विभुः अथापि बत आत्मना असंपन्नः ब्रह्मवर्चिस असत्तम इव आभाति ।।३०।।

अनुवाद— मेरे शरीर के भीतर रहने वाली आत्मा व्यापक है फिर भी वह अपने रूप से ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होने पर भी असम्पन्न अर्थात् तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

दैह्यः; देहे भव आत्मा जीवो वस्तुतो विभुः परिपूर्ण एव । आत्मना स्वेन रूपेणासंपन्नस्तादात्म्यमप्राप्त इवाभाति । ब्रह्मवर्चसं वेदश्रवणाध्यापनोत्कर्षजं तेजस्तत्र साधवो ब्रह्मवर्चस्यास्तेषु सत्तमोऽतिश्रेष्ठोऽपि । यद्वा न केवलसंपन्न इवाभाति प्रत्युत ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मवर्चसवानप्यसत्तम इवाभाति । पाठान्तरे कमनीयतमोऽपीति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

देह के भीतर रहने वाली आत्मा ही दैह्य आत्मा है। वह आत्मा वास्तविक रूप से परिपूर्ण है। फिर भी वह अपने स्वरूप से तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती है। वेदों के श्रवण तथा अध्यापन जन्य उत्कर्ष के कारण तेज से सम्पन्न पुरुषों को ब्रह्मवर्चस्य कहते है। उन सबों में मैं सत्तम अर्थात् श्रेष्ठ भी हूँ। अथवा केवल असम्पन्न (तादात्म्याप्राप्त) अपितु ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न होने पर भी असत्तम अश्रेष्ठ के समान प्रतीत होता हूँ। उशत्तमः यह पाठान्तर के अनुसार कमनीयतमः भी अर्थ होगा ॥३०॥

किंवा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः । प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥

अन्वयः किंवा परमहंसानां प्रियाः भागवताः धर्माः मया प्रायेण न निरूपिताः ते एव हि अच्युतप्रियाः ।।३१।। अनुवाद अथवा इसका यह कारण है कि मैंने अब तक परमहंसों के प्रिय भागवत धर्मों को प्रायः नहीं निरूपीत किया है और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को प्रिय हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

असंपत्तौ हेतुं स्वयमेवाशङ्कते- किंवेति । प्रायेण भूयस्त्वेन । हि यस्मात्त एव धर्मा अच्युतस्य प्रिया: ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी आशंका करते हैं कि मेरे असंतोष का यह कारण है क्या कि मैंने अब तक प्राय: भागवत धर्मों का वर्णन नहीं किया है ? भागवत धर्म ही परमहंसों को प्रिय हैं और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को भी प्रिय हैं । इसीलिए मेरी आत्मा असंतुष्ट के समान प्रतीत होती है ॥३१॥

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः । कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥

अन्वयः एवं आत्मानं खिलम् मन्यमानस्य खिद्यतः तस्य कृष्णस्य प्रागुदाहृतम् आश्रमं नारदः अभ्यगात् ।।३२।। अनुवाद इस तरह से आत्मा को अपूर्ण मानकर खिन्न होने वाले उन कृष्णद्वैपायन महर्षि के पूर्वोक्त आश्रम में नारदजी आ गये ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

खिलं न्यूनम् । खिद्यतः खेदं प्राप्नुवतः । कृष्णस्य व्यासस्य । प्रागुदाहृतं सरस्वतीतीरस्थम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

खिल शब्द का अर्थ न्यून है । खिद्यतः अर्थात् खिन्न । कृष्णस्य अर्थात् व्यासजी को, अर्थात् जिस समय व्यासजी अपने आप में अपने को अपूर्ण मानकर खिन्न हो रहे थे उसी समय उनके सरस्वती नदी के तट पर विद्यमान आश्रम में नारदजी आ गये ॥३२॥

तमिश्रज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— तम् आगतम् अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय सुरपूजितम् नारदम् विधिवत् पूजयामास ।।३३।। अनुवाद— नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए देवताओं से पूजित नारदजी की उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तं नारदमागतमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय विधिवत्पूजयामास । सुरपूजितमिति ब्रह्मलोकादागतमित्यर्थः ।।३३।। इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

नारदर्जी को आये हुए जॉनकर व्यासजी उनको देखकर सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए उनकी सर्विधि पूजा किए ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।



पाँचवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमासीनं उपासीनं बृहच्छ्वाः । देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥

अन्वयः— अथ बृहच्छ्रवाः वीणापाणिः सुखमासीनः देवर्षिः स्मयन्निव उपासीनं विपर्षि प्राह ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद - उसके पश्चात् परमयशस्वी वीणा हाथ में धारण किए हुए तथा सुखपूर्वक बैठे हुए देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुए के समान अपने सन्निकट में बैठे हुए व्यासजी से पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे सर्वधर्मेभ्यो हरिकोर्तनगौरवम् । व्यासचित्तप्रसादाय नारदेनोपदिश्यते ।।१।। उप समीपे आसीनम् विप्रर्षि व्यासम् बृहच्छ्रवा महायशा स्मयन्नीषद्हसन्निवेत्येनेन मुखप्रसत्तिद्योत्यते । यद्वा इवेत्यनिधकारार्थम् । अहोमहानिपमुद्धति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में व्यासजी के चित्त की प्रसन्नता के लिए नारदजी ने हरिकीर्तन का महत्त्व बतलाया है ॥१॥ उपासीनम् पद का अर्थ है सिन्नकट में बैठे हुए विप्रिष्ठ शब्द से व्यासजी को कहा गया है । वृहच्छ्रवाः का अर्थे महायशस्वी है । अल्प हास को स्मय कहते हैं । इसी को मुसकाना भी कहते है । स्मयन्निव पद के द्वारा नारदजी के मुख की प्रसन्नता द्योतित की गयी है ।

अथवा **इव** पद के द्वारा यह द्योतित किया गया है कि व्यासजी यद्यपि मोह के अधिकारी नहीं है फिर भी मोह कर रहे हैं । नारदजी ने सोचा कि ये इतने महान् होकर भी मोहित हो रहे हैं । यही सोच कर वे मुस्कुराये ॥१॥

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग भवतः किच्चिदात्मना । परितुष्यित शारीर आत्मा मानस एव वा ॥२॥

अन्वयः हे महाभाग पाराशर्य भवतः शारीरः आत्मा वा मानसः एव कच्चित् आत्मना परितुष्यित ।।२।।

अनुवाद— आपका शरीराभिमानी आत्मा तथा मन अभिमानी आत्मा अपने कर्म और चिन्तन से प्रसन्न हैं क्या?॥२॥

भावार्थ दीपिका

शारीरः शरीराभिमान्यात्मात्मना तेन शरीरेण किच्चित्कं परितुष्यति । मानस आत्मा मनोभिमानी तेन मनसा परितुष्यति। किच्चन्नो वा ।।२।।

भाव प्रकाशिका

शरीर में रहने वाली शरीराभिमानी आत्मा अपने उस शरीर संतुष्ट है क्या ? तथा मन अभिमानी आत्मा मन से आप प्रसन्न हैं या नहीं ?॥२॥

जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्धुतम् । कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥३॥

अन्वयः— ते जिज्ञासितम् अपि सुसम्पन्नम् यः त्वम् सर्वार्थपरिबृंहितम् भारतम् कृतवान् ।।३।।

अनुवाद— आपकी जिज्ञासा तो अच्छी तरह से पूर्ण हो गयी होगी ? क्योंकि आपने सभी अर्थों से परिपूर्ण अद्भुत महाभारत की रचना की है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ते जिज्ञासितं ज्ञातुमिष्टं धर्मादि यत्तत्सर्वं सुसंपन्नं सम्यक् ज्ञातम् । अपिशब्दादनुष्ठितं चेत्यर्थः । 'अयि' इति पाठे संबोधनम् । सुसंपन्नत्वे हेतुः- महदद्भुतिमत्यादि । सर्वैरथैंधर्मादिभिः परिबृंहितं परिपूर्णम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

आपको जो धर्म आदि जानना अभिप्रेत है, वह सब कुछ आप को ज्ञात हो गया होगा। सुसम्पन्नमिप शब्द के अपि शब्द के द्वारा यह भी बोधित होता है कि आपने उसका अनुष्ठान कर लिया होगा। अिय यह पाठ जहाँ पर है वहाँ पर अयि शब्द सम्बुद्धिपद होगा। सुसम्पन्नता का हेतु है महदद्धुतम् इत्यादि। अर्थात् यह भारत ग्रन्थ रूप से महान् और अर्थ की दृष्टि से अद्भुत है। यही महदद्धुतम् का अभिप्राय है। यह भारत ग्रन्थ धर्म आदि से परिपूर्ण है।।३।।

जिज्ञासितमधीतं च ब्रह्म यत्तत्सनातनम् । अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥४॥

अन्वयः यत् सनातनं ब्रह्म तत् च जिज्ञासितम् अधीतञ्च । अथापि हे प्रभो ! अकृतार्थ इव आत्मानम् (कथं) शोचिस ?।।४।।

अनुवाद जो सनातन ब्रह्म है उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है और उनको आपने जान भी लिया है, फिर हे प्रभो ! आप अकृतार्थ पुरुष के समान अपनी आत्मा के विषय में क्यों शोक कर रहे हैं ?॥४॥

किंच यत् सनातनं नित्यं परं ब्रह्म तच्च त्वया जिज्ञासितं विचारितमधीतमधिगतं प्राप्तं चेत्यर्थः । अथापि शोचिस तिकमर्थमिति शेषः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जो सनातन परंब्रह्म हैं उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है । तथा अधीतम् अर्थात् उस परंब्रह्म को आपने प्राप्त भी कर लिया है, फिर भी आप शोक कर रहे हैं इसका कारण क्या हैं ?॥४॥

व्यास उवाच

अस्त्येव मे सर्विमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे । तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वात्मभवमभूतम् ॥५॥

अन्वयः— इदं सर्वं त्वया उक्तम् मे अस्त्येव तथापि मे आत्मा न परितुष्यते । हे (नारद) तन्मूलं अव्यक्तम् आत्मभवात्मभूतम् अगाधबोधं त्वा पृच्छामहे ॥५॥

व्यासजी ने कहा

अनुवाद आपने जो कुछ कहा वह सब कुछ मैंने कर लिया है फिर भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट नहीं है। हे नारदजी उसका कारण क्या है इसें मैं नहीं जानता हूँ। इसे मैं आपसे ही पूछता हूँ क्योंकि आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं और आपका ज्ञान अगाध है।।५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मा शारीरो मानसश्च । तन्मूलं तस्यापरितोषस्य कारणम् । अव्यक्तमस्फुटम् । हे नारद ! त्वा त्वां पृच्छाम । आत्मभवो ब्रह्मा तस्यात्मनो देहादुद्भूतस्तम् । अत एवागाधोऽतिगम्भीरो बोधो यस्य तं त्वाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ आत्मा शब्द से शरीराभिमानी तथा मन अभिमानी दोनों प्रकार की आत्माएँ अभिप्रेत हैं। तन्मूलम् अव्यक्तम् का अर्थ है कि उस असन्तोष का कारण क्या है? इसका पता मुझको नहीं चल रहा है। हे नारदजी! इस असन्तोष का कारण मैं आपसे इसलिए पूछ रहा हूँ कि आप ब्रह्माजी के पुत्र है। यहाँ पर आत्मभाव शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है। उनसे उत्पन्न होने के कारण नारदजी आत्मभवात्मभूत हैं और उनका ज्ञान अगाध है।।५।।

स वै भवान्वेद समस्तगृह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः । परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥६॥

अन्वयः— स वै भवान् समस्तगुह्यम् वेद । यत् पुराणः पुरुषः उपासितः । सः परावरेशः गुणैरसङ्गः विश्वं सृजति अवित अति च ॥६॥

अनुवाद हे नारदजी ! आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं, क्योंकि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है । जो परमात्मा प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् से असम्पृक्त ही रहकर अपने मानसिक सङ्कल्प मात्र से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, सृष्ट जगत् की रक्षा और प्रलय काल के आने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं ॥६॥

भावार्थदीपिका

अगाधबोधतां प्रपञ्चयन्नाह- स वा इति द्वाभ्याम् । सर्वगुह्यज्ञान हेतु:- यद्यस्मात्पुराण: पुरुष उपासितस्त्वया । कथंभूत:। परावरेश: कार्यकारणनियन्ता । मनसैव सङ्कल्पमात्रेण गुणै: कृत्वा विश्वं सृजतीत्यादि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

स वै भवान् इत्यादि दो श्लोकों से नारदजी की अगाधबोधता का विस्तार करते हुए व्यासजी कहते हैं कि आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं उसका कारण यह है कि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है। वे परमात्मा परावरेश हैं अर्थात् सम्पूर्ण कार्य कारण तत्त्वों के नियामक हैं। और वे अपने सङ्कल्प मात्र से इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं।।६।।

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी । परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥

अन्वय:— अर्क इव त्रिलोकीम् पर्यटन् आत्मसाक्षी । परावरे ब्रह्मणि धर्मतः व्रतैश्च स्नातस्य मे न्यूनं अलं विचक्ष्व ॥७॥ अनुवाद सूर्य के समान त्रैलोक्य में विचरण करने वाले आप योग के बल से सबों के भीतर प्रवेश करके वायु के समान सञ्चरण करने वाले हैं आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति को जानने वाले हैं । अतएव योग के द्वारा परं ब्रह्म तथा वेदब्रत के द्वारा अवखह्म (शब्द ब्रह्म) में निष्णात हैं मुझमें यह जो अपूर्णता है उसके कारण का आप विचार करें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

किंच त्वं त्रिलोकीं पर्यटन्नर्क इव सर्वदर्शी । योगबलेन प्राणवायुरिव सर्वप्राणिनामन्तश्चरः सन्नात्मसाक्षी बुद्धवृत्तिज्ञः। अतः परे ब्रह्मणि धर्मतो योगेन निष्णातस्य । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन— 'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।' इति । अवरे च ब्रह्मणि वेदाख्ये व्रतैः स्वाध्यायनियमैर्निष्णातस्य मेऽलमत्यर्थं यन्नयूनं तद्विचक्ष्व वितर्कय ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आप त्रैलोक्य में पर्यटन करते रहते हैं । अतएव जिस तरह त्रैलोक्य में पर्यटन करते हुए सूर्य सबकुछ देखते हैं उसी तरह से आप भी सर्वदर्शी हैं । आप अपने योग के बल से सभी प्राणियों के अन्त:करण में प्रवेश करके सम्पूर्ण शरीर में सञ्चरण करने वाले वायु के समान सञ्चरण करते हैं । फलत: आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति के ज्ञाता हैं । मैं भी धर्मत: अर्थात् योग बल के द्वारा परंब्रह्म के विषय में तथा वेद व्रत के द्वारा शब्द ब्रह्म के विषय में निष्णात् हूँ ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है **इज्याचार इत्यादि** यज्ञ, सदाचार, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान तथा वेदाध्ययन इन कर्मों का परम धर्म यही है कि वे योग के द्वारा आत्मदर्शन करें। फिर भी मुझमें बहुत अधिक न्यूनता है, उसके कारण का आप विचार करें।।७।।

नारद उवाच

भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् । येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥

अन्वयः भवता भगवतः अमलं यशः अनुदित प्रायम् । येन असौ न तुष्यते तद् दर्शनम् खिलम् एव मन्ये ।।८।। अनुवाद आपने श्रीभगवान् के निर्मल यश का वर्णन प्रायः नहीं किया । जिसके द्वारा परमात्मा सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उस दर्शन को मैं अपूर्ण ही मानता हूँ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुदितप्रायमनुक्तप्रायम् । अमलं भगवद्यशो विना येनैव धर्मादिज्ञानेनासौ भगवात्र तुष्येत तदेव दर्शनं ज्ञानं खिलं न्यूनं मन्येऽहम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अनुदितप्रायम् का अर्थ है अवर्णित प्राय । भगवान् के निर्मल यश से भिन्न जिन धर्म आदि के ज्ञान से भगवान् को सन्तोष नहीं होता है, वही ज्ञान खिल अर्थात् अधूरा होता है ऐसा मैं मानता हूँ ।।८।।
यथा अमिदियश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः । न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ।।९।।

अन्वयः— हे मुनिवर्य भवता यथा धर्मादयश्चार्था अनुकीर्तिताः तथा वासुदेवस्य महिमा निह अनुवर्णिताः ।।९।। अनुवाद — आपने जिस तरह से धर्म आदि पुरुषार्थीं का वर्णन किया है, उस तरह भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ननु भगवद्यश एव तत्र तत्रानुवर्णितं तत्राह- यथेति । चशब्दाद्धर्मीदिसाधनानि च । तथा धर्मादिवत्प्राधान्येन वासुदेवस्य महिमा न ह्युक्त इत्यर्थ: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि महाभारत आदि ग्रन्थों में श्रीभगवान् के यश का ही वर्णन किया गया है। तो इस पर यथा० आदि श्लोक कहते हैं। धर्मादयश्च का च शब्द धर्म आदि के साधनों को भी बतलाता है। अर्थात् आपने जिस तह से धर्म और धर्म के साधनों का वर्णन किया है उन धर्मादि के ही समान प्रधान रूप से भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन आपने नहीं किया हैं।।९।।

न यद्वचिश्चत्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥१०॥

अन्वयः — यद् वचः चित्रपदं जगत् पवित्रं हरेः यशः कर्हिचित् न प्रगृणीत् तदवायसं तीर्थम् उशन्ति । यत्र उशिक्क्षयाः मानसाः हंसाः न निरमन्ति ।।१०।।

अनुवाद रस, अलङ्कार आदि से अलंकृत पदों से युक्त जिस वाणी के द्वारा श्रीहरि के जगत् को पवित्र बना देने वाली महिमा का वर्णन नहीं किया जाता है उस वाणी को तो परमहंस जन उस अपवित्र स्थान के समान मानते हैं; जहाँ पर कौओं के लिए उच्छिष्ट फेंका जाता है। मानसरोवर के कमल वन में बिहार करने वाले हंसों के समान सत्त्वप्रधान मन में रमण करने वाले यतिजन उसमें कभी भी रमण नहीं करते हैं।।१०।।

भावार्थ दीपिका

वासुदेवव्यतिरिक्तान्यविषयज्ञानवदेवान्यविषयं वाक्चातुर्यं च खिलमेवेत्याह- नेति । चित्रपदमिप यद्वचो हरेर्यशो न प्रगृणीत तद्वायसं तीर्थं काकतुल्यानां कामिनां रितस्थानमुशन्ति मन्यन्ते । कुतः । मानसाः सत्त्वप्रधाने मनिस वर्तमाना हंसा यतयो यत्र न निरमन्ति किहिंचिदिप नितरां न रमन्ते । उशिक्क्षया उशिक् कमनीयं ब्रह्म क्षयो निवासो येषां ते । यथा प्रसिद्धा हंसा मानसे सरिस चरन्तः कमनीयपद्मखण्डनिवासास्त्यक्तविचित्रात्रादियुक्तेऽप्युच्छिष्टगर्ते काकक्रीडास्थाने न निरमन्ति इति श्लेषः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव से भिन्न ज्ञान के ही समान अन्य विषयक वाणी की निपुणता भी अपूर्ण ही होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन न यहचिश्चत्रपदम्० इत्यादि श्लोक से किया जा रहा है। चित्रपदमिण इत्यादि रसालङ्कार आदि से अलंकृत भी जो वाणी श्रीहरि के यश का वर्णन नहीं करती है, वह वाणी वायस तीर्थ है। अर्थात् कौओं के समान कामी पुरुषों के ही लिए रमणीय मानी जाती है। क्योंकि सत्त्व प्रधान अपने मन में रमण करने वाले जो परमहंस यतिजन हैं। वे कमनीय ब्रह्म में निवास करते हैं और वे उस वाणी को उसी तरह से रमणीय नहीं मानते है जैसे मान सरोवर में सञ्चरण करने वाले तथा कमनीय कमल वन में निवास करने वाले हंस अपने निवास स्थान को त्यागकर, अनेक प्रकार के उच्छिष्ट अन्नों को डालने के स्थान वाले गढ़े में कभी भी रमण नहीं करते हैं।

इस श्लोक में परमहंस पक्ष में **मानस** शब्द सत्त्व प्रधान मन का, **हंस** शब्द परमहंस का और **उशिक्क्षय** शब्द कमनीय ब्रह्म रूपी निवास स्थान का बोधक है। और हंस अर्थ में **मानस** शब्द मानसरोवर का, **हंस** शब्द हंस का और **उशिक्क्षया:** शब्द कमनीय कमलवन रूपी निवास स्थान का बोधक है।

उशिक्क्षयाः पद की व्युत्पत्ति भी अर्थ भेद के कारण दो प्रकार की है। उशिक् अर्थात् कमनीयं ब्रह्म क्षयः; निवासो येषां ते, यह परमहंस पक्ष में व्युत्पत्ति है और उशिक् कमनीयं कमलवनं क्षयः निवासो येषां की यह हंस पक्ष में व्युत्पत्ति है। इस तरह इस श्लोक में श्लेषालङ्कार हैं।।१०॥

तद्वाग्विसर्गो जनताघविष्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥

अन्वयः— अबद्धवती अपि यस्मिन् प्रतिश्लोकम् अनन्तस्य यशोऽङ्कितानि नामानि तद् वाग्विसर्गः जनताघविप्लवः यत् साधवः शृण्वन्ति, गायन्ति, गृणन्ति च।।११।।

अनुवाद इसके विपरीत जो वाणी अप शब्द से युक्त होने के कारण सुन्दर रचना से युक्त भी नहीं है तथा जिसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान के यश को सूचित करने वाले नामों का सिन्नवेश होता है, वह वाणी जन समूह के पापों को प्राण्य कर देने वाली होती है। क्योंकि साधुजन उसी को सुनते हैं गाते हैं और उसी का उच्चारण भी करते हैं।।११।।

भावार्थ दीपिका

विनापि पदचातुर्यं भगवद्यशःप्रधानं वचः पवित्रमित्याह- तदिति । तद्वाग्विसर्गः स चासौ वाग्विसर्गो वाचः प्रयोगः जनानां समूहो जनता तस्या अघं विप्लावयित नाशयतीति तथा सः । यस्मिन्वाग्विसर्गे अबद्धवत्यप्यपशब्दादियुक्तेऽपि प्रतिश्लोकमनन्तस्य यशसाङ्कितानि नामानि भवन्ति । तत्र हेतुः- यद्यानि नामानि साधवो महान्तो वक्तिरे सिति शृण्वन्ति । श्रोतिरे सिति गृणन्ति । अन्यदा तु स्वयमेव गायन्ति कीर्तयन्ति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जिसमें रस, भाव तथा अलङ्कारों के सिन्नवेश रूपी पद का चातुर्य नहीं रहता है किन्तु जिसमें भगवान् के यश की ही प्रधानता होती है वह वाणी पिवत्र होती है, इसी अर्थ का प्रतिपादन तद्विग्वसर्गः इत्यादि श्लोक से किया गया है। 'स चाऽसौ वाग्विसर्गः' इस व्युत्पित्त के अनुसार तद्वाग्विसर्गः शब्द का अर्थ उस वाणी का प्रयोग है। जनानां समूहो जनता इस व्युत्पित्त के अनुसार जनता शब्द जन समूह का बोधक है। उस वाणी का प्रयोग जन समूह के पापों का प्रणाशक होता है। जो वाणी का प्रयोग अपशब्द आदि से युक्त होने पर भी उसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान् के यश के बोधक उनके नामों का सिन्नवेश रहता है। उसका कारण यह है कि सन्त महापुरुष उस वाणी के प्रयोग को किसी वक्ता के रहने पर सुनते है। तथा श्रोताओं के रहने पर उसी वाणी को सुनाते हैं और किसी के भी नहीं रहने पर वे उसका स्वयं गायन और कीर्तन करते हैं।।११॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् । कुतः पुनः शश्चदभद्रमीश्चरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥ अन्वयः— अच्युतभाववर्जितम्, निरञ्जनम्, नैष्कर्म्यम् अपि ज्ञानम् अलं न शोभते । शश्चत् अभद्रम्, किंच अकारणम् अपि यत् ईश्वरे न अर्पितं तत् पुनः कुतः शोभेत ।।१२।।

अनुवाद— निरञ्जन अर्थात् उपाधियों का निवर्तक होने के कारण निर्मल तथा मोक्ष' की प्राप्ति के साधन भूत भी कर्म जो भगवान् की भिक्त की भावना से रहित होता है वह अत्यन्त सुशोभित नहीं होता है। जो साधन तथा सिद्धि दोनों ही दशाओं में अमङ्गलमय होता है, वह काम्यकर्म अथवा जिसको भगवान् को नहीं समर्पित किया गया है, वह निष्कामकर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिहीनं कर्म शून्यमेवेति कैमुत्यन्यायेन दर्शयित- नैष्कर्म्यमिति । निष्कर्म ब्रह्म तदेकाकारत्वात्रिष्कर्मतारूपं नैष्कर्म्यम्। अञ्यतेऽनेनत्यञ्जनमुपाधिस्तित्रवर्तकं निरञ्जनम् । एवंभूतमिप ज्ञानमच्युते भावो भिक्तस्तद्वर्जितं चेदलमत्यर्थ न शोभते । सम्यगापरोक्ष्याय न कल्पत इत्यर्थः तदा शश्वत्साधनकाले फलकाले चाभद्रं दुःखरूपं यत्काम्यं कर्म यदप्यकारणमकाम्यं तच्चेति चकारस्यान्वयः। तदिप कर्म ईश्वरे नार्पितं चेत्कुतः पुनः शोभेत बिहर्मुखत्वेन सत्त्वशोधकत्वाभावात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति की भावना से रिहत कर्म शून्यस्वरूप (व्यर्थ) ही होता हे, इस अर्थ का प्रतिपादन कैमूत्य न्याय से नैष्कर्म्यीम इत्यादि श्लोक से बतलाया जा रहा है। ब्रह्म निष्कर्म है; क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति कर्मों की निवृत्ति के द्वारा ही होती है। उस ब्रह्म के समान आकार वाला होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं। निष्कर्म अर्थात् मोक्ष का साधन होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं। निष्कर्मण: मोक्सस्य साधनं नैष्कर्म्य यह नैष्कर्म्य शब्द की व्युत्पत्ति है। उपाधि के निवर्तक ज्ञान को निरञ्जन ज्ञान कहते है। निरञ्जन का अर्थ है निर्मल। अज्यते अनेन इस व्युत्पत्ति के अनुसार अञ्जन शब्द उपाधि का बोधक है, और उसको दूर करने वाले ज्ञान को निरञ्जन कहते हैं।

इस प्रकार का भी ज्ञान यदि श्रीभगवान् की भिक्त से रहित है, तो वह ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं सुशोभित होता है। अर्थात् उसके द्वारा परम तत्त्व का अच्छी तरह से साक्षात्कार नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में जो साधनकाल तथा सिद्धिकाल दोनों ही स्थितियों में दुःख रूप होने के कारण अमङ्गलमय ही है, वह काम्य कर्म, तथा निष्कामकर्म भी यदि ईश्वर को नहीं समर्पित किया गया है तो वह कैसे सुशोभित हो सकता है ? क्योंकि वह बिहर्मुख होने के कारण अन्तःकरण को शुद्ध नहीं बना सकता है ॥१२॥

अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो घृतव्रतः । उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥१३॥

अन्वयः— अथो, महाभाग भवान् अमोधदृक् शुचिश्रवाः, सत्यरतः, धृतव्रतः । तत् अखिलबन्धमुक्तये, उरुक्रमस्य विचेष्टिम् समाधिना अनुस्मर ॥१३॥

अनुवाद— अतएव हे महाभाग व्यासजी, आपकी दृष्टि अमोघ हैं, आपका यश पवित्र हैं, आप सदा सत्य भाषण करते हैं तथा आप दृढव्रत हैं। अतएव आप सम्पूर्ण जीवों की मुक्ति के लिए समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण कीजिये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं भक्तिशून्यानि ज्ञानवाक्चातुर्यकर्मकौशलानि व्यर्थान्येव यतः, अतो हरेश्चरितमेवानुवर्णयेत्याह । अथो यतः कारणात् । अमोघा यथार्था दृक् धीर्यस्य, शुचि शुद्धं श्रवो यशो यस्य, सत्ये रतः, धृतानि व्रतानि येन स भवानेवं महागुणस्तावत्। अत उरुक्रमस्य विविधं चेष्टितं लीलां समाधिना चित्तैकाग्र्येणाखिलस्य बन्धमुक्तये हे महाभाग्यनिधे, त्वमनुस्मर, स्मृत्वा च वर्णयेत्यर्थः । एतच्च वाक्यान्तरमिति मध्यमपुरुषप्रयोगो नानुपपत्रः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया है कि भिक्त से रहित ज्ञान वाणी की निपुणता तथा कर्मों की कुशलता ये सब-के-सब व्यर्थ हैं। अतएव आप श्रीभगवान् के चिरत का ही वर्णन करें इस अर्थ का प्रतिपादन अथी • इत्यादि श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। अतएव हे महाभाग व्यासजी! आप अमोधदृष्टि वाले हैं। अमोधा दृष्टिः यस्य सः यह अमोधदृक् पद की व्युत्पित्त है। आप शुचिश्रवाः अर्थात् आपका यश पवित्र है। शुचि शुद्धं, श्रवः यशो यस्य सः यह शुचिश्रवाः शब्द की व्युत्पित्त है। आप सत्य वक्ता है एवं आप दृढव्रत है। आप अपने व्रतों का पालन करते हैं। इन सभी गुणों से सम्पन्न आप चित्त की एकाग्रता रूपी समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की विविध प्रकार की चेष्टाओं का स्मरण सभी जीवों के संसार के बन्धन से मुक्ति के लिए करें और स्मरण करके उसका वर्णन करें।

यदि कोई यह कहे कि भवान् इस कर्तृ पद के अनुसार स्मरतु यह क्रियापद का प्रयोग किया जाना चाहिए फलत: स्मर इस मध्यम पुरुष की क्रिया पद का प्रयोग कैसे ? तो इसका उत्तर है कि इस श्लोक का उत्तराई दूसरा वाक्य है अतएव इसमें स्मर पद का प्रयोग अनुपन्न नहीं है ॥१३॥

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः । न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥१४॥

अन्वयः— ततः पृथग्दृशः अन्यथा यत् किञ्चन विवक्षतः तत् कृत रूपनामभिः दुःस्थिता मितः वाताहतनौरिव कुचत्रित् क्वापि आस्पदम् न लभेत ।।१४।।

अनुवाद जो मनुष्य श्रीभगवान् की लीला के अतिरिक्त और कुछ कहने की इच्छा करता हैं वह उस इच्छा के द्वारा ही निर्मित अनेक नामों और रूपों के चक्र में फँस जाता है। उसकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है वह कभी भी तथा कही भी उसी तरह से स्थिर नहीं हो पाती है जिस तरह वायु के द्वारा प्रेरित नौका कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती है। १४।।

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषान्तरमाह- तत इति । तत उरुक्रमचेष्टितात्पृथग्दृशोऽत एवान्यथा प्रकारान्तरेण यित्किचिदर्थान्तरं विवक्षतस्तया विवक्षया कृतैः स्फुरितै रूपैर्नामभिश्च वक्तव्यत्वेनोपस्थितैर्दुःस्थिताऽनवस्थिता सती मितः कदाचित्क्वापि विषये आस्पदं स्थानं न लभेत, वातेनाऽऽहता आघूर्णिता नौरिव । तदुक्तं गीतासु— 'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।' इत्यादि ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला से भिन्न बातों का वर्णन करने पर होने वाले दूसरे दोषों का वर्णन ततोऽन्यथा। इत्यादि श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। उरुक्रम श्रीभगवान् का नाम है, क्योंकि उन्होंने त्रिविक्रमावतार में अपना डेग बढ़ाकर एक ही डेग में पृथिवी के ऊपर के सभी लोकों को नाप लिया था। उरवःक्रमाः यस्य सः यह उरुक्रम शब्द का विग्रह है। उन श्रीभगवान् की लीला से भिन्न बातों का जो दूसरे प्रकार से वर्णन करने की इच्छा करते हैं, उनकी उस इच्छा के ही कारण उत्पन्न अनेक नामों और रूपों से वर्णनीय रूप से उपस्थित विषय के कारण उन लोगों की बुद्धि दुःस्थित अर्थात् चञ्चल हो जाती है। फलतः वह बुद्धि किसी भी विषय में स्थिर नहीं हो पाती

है। यह उसी तरह से कभी भी तथा किसी भी विषय में स्थिर नहीं होती है जैसे वायु के चक्रवात में फँसी हुयी नौका कहीं भी अपने रुकने योग्य स्थान को नहीं प्राप्त कर पाती है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी हैं— व्यवसायात्मिकाबुद्धि इत्यादि अर्थात् जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका होती है उन लोगों के वर्णनीय विषय एक मात्र परमात्मा ही हैं और जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका नहीं है, उन लोगों की वह बुद्धि अनेक विषयिणी होती है तथा उसकी अनन्त शाखायें हो जाती हैं ।।१४।।

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः । यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥

अन्वयः स्वभावरक्तस्य धर्मकृते जुगुप्सितम् अनुशासतः तव अयं महान् व्यतिक्रमः यद्वाक्यतः धर्म इति स्थितः इतरः जनः तस्य निवारणं न मन्यते ।

अनुवाद स्वभाव से ही सकाम कर्मों में अनुराग रखने वाले लोगों को आपने महाभारतादि के व्याज से उन कर्मों को करने का जो उपदेश दे दिया है, वह महान् अन्याय है; क्योंकि उन वाक्यों को ही पशु हिंसादि निन्दित कर्मों को धर्म मानने वाले लोग, उन कर्मों का निषेध करने वाले वाक्यों को ठीक नहीं मानते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं हरियशो विना भारतादिषु कृतं धर्मादिवर्णनमिकंचित्करिमत्युक्तम् । प्रत्युत विरुद्धमेव जातिमत्याह – जुगुप्सितिमिति जुगुप्सितं निन्द्यं काम्यकर्मादि तत्र स्वभावत एव रक्तस्य अनुरागिणः पुरुषस्य धर्मकृते धर्मार्थमनुशासतः प्रेरयतस्तव महानयं व्यतिक्रमोऽन्यायः । कृत इत्यत आह । यस्य वाक्यतोऽयमेव मुख्यो धर्म इति स्थिर इतरः प्राकृतो जनः । तस्य काम्यकर्मादेरन्येन तत्त्वज्ञेन क्रियमाणं निवारणं स्वयमेव वा त्वया क्रियमाणम् । यद्वा 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इत्यादिश्रुत्या क्रियमाणं निवारणं यथार्थमेतिदिति न मन्यते, किंतु प्रवृत्तिमार्गानिधकृतिवषयं तदिति कल्पयति । तदुक्तं मतान्तरोपन्यासे मट्टैः 'तत्रैवं शक्यते वक्तुं येऽन्धपङ्ग्वादयो नराः । गृहस्थत्वं न शक्ष्यन्ति कर्तुं तेषामयं विधिः ।। नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं वा परिव्राजकतापि वा । तैरवश्यं ग्रहीतव्या तेनादावेतदुच्यते ।। इत्यादि ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीहरि के यश से रहित महाभारत आदि में जो धर्मों का वर्णन किया गया है वह केवल व्यर्थ ही नहीं है, अपितु वह विरुद्ध भी है, इस अर्थ का प्रतिपादन, जुगुप्सितम् इत्यादि श्लोक से किया गया है। जुगुप्सित का अर्थ है निन्दित, इस प्रकार के जो काम्यकर्म हैं उन कर्मों को करने में संसारी जीव स्वाभाविक रूप से लगा रहता है। उनको आपने धार्मिक रूप से करने की प्रेरणा की है, यह आपका बहुत बड़ा व्यतिक्रम (अन्याय) है।

कृत: इत्यादि- इसका कारण यह है कि उसी को मुख्य धर्म मानने वाले संसारी मनुष्यों को उन काम्य कर्म आदि से भिन्न तत्त्वज्ञान के द्वारा यदि कोई दूसरा अथवा स्वयं आप ही निषेध करें तो उस निषेध को वे संसारी जीव उचित नहीं मानते हैं। श्रुति स्वयं कहती है- न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु: अर्थात् काम्य कर्मों, या सन्तानों, या धन से किसी ने मुक्ति नहीं प्राप्त की अपितु ज्ञानी पुरुष इन सबों के त्याग के ही द्वारा मुक्ति की प्राप्ति किये। किन्तु काम्य कर्मों का निषेध करने वाली इस श्रुति को लोग नहीं मानते हैं।

इन वाक्यों को सुनकर वे कहते हैं कि यह जो काम्य कर्मों का निषेध वाक्य है, वह उन्हीं लोगों के लिए है जो लोग प्रवृत्ति मार्ग के अधिकारी नहीं है। मतान्तर का उपन्यास करते हुए कुमारिल भट्ट ने कहा भी है उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि जो लोग लङ्गड़े तथा अन्धे है जो गाहस्थ्य का पालन करने में असमर्थ हैं उन लोगों के ही लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य तथा संन्यास का विधान किया गया है । अतएव उन लोगों को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन अवश्य करना चाहिए । इसीलिए इसको सर्व प्रथम कहा गया है । इत्यादि ॥१५॥

विचक्षणोऽस्यार्हित वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् । प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो ॥१६॥

अन्वयः— अनन्तपारस्य अस्य विभोः विचक्षणः निवृत्तितः एव सुखम् वेदितुम् अर्हति हे विभो ! अनात्मनः गुणैः प्रवर्तमानस्य ततः भवान् चेष्टितं दर्शय ।।१६।।

अनुवाद— देश और काल की सीमा से रहित इस सर्व व्यापक परमात्मा के निर्विकल्प सुखात्मक स्वरूप को कोई विचक्षण निपुण व्यक्ति ही जान सकता है। जो अनात्मज्ञ देहाभिमानी हैं वे परमात्मा के उस सुखात्मक स्वरूप को नहीं जान सकते हैं क्योंकि वे प्रकृति के गुणों से प्रेरित होते हैं। उन्हीं जीवों के कल्याण के लिए आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें।।१६।।

भावार्थ दीपिका

ननु यद्येवं प्रवृत्तिमार्गो निन्द्यते सर्विक्रयानिवृत्त्यास्य विभोः सुखं निर्विकल्पकसुखात्मकं स्वरूपं वेदितुं ज्ञातुमहित न पुनरिवचक्षणः प्रवृत्ति स्वभावः । विभुत्वे हेतुः – न अन्तः कालतः, पारं च देशतो यस्य तस्य विभोश्चेष्टितम् । ततः कारणात् हे विभो, अनात्मनो देहाद्यभिमानिनोऽत एवं गुणैः सत्त्वादिभिः प्रवर्तमानस्य जनस्य दर्शय भवानिति । त्विमत्यर्थः । पाठान्तरे हे भवान्निति संबोधनम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता है कि यदि इस प्रकार से प्रवृत्ति मार्ग की निन्दा की जाती है और निवृत्ति मार्ग में सभी कर्मों के त्याग से ही परमात्मा से सुख स्वरूप अनुभूति हो सकती है, तो फिर श्रीभगवान् के यश का कीर्तन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में विचक्षण: इत्यादि श्लोक कहते हैं । कोई निपुण व्यक्ति ही सभी कर्मों के परित्याग से ही परमात्मा के सुखात्मक निर्विकल्पक स्वरूप को जान सकता है । जो विचक्षण नहीं है वह परमात्मा के उस स्वरूप को नहीं जान सकता है क्योंकि वह तो स्वभाव से ही प्रवृत्ति मार्गानुयायी होता है ।

विभुत्वे इत्यादि- परमात्मा के विभुत्व का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि वे अनन्तपार हैं, अर्थात् वे देश और काल की सीमा से परे हैं। अर्थात् वे सभी देशों और सभी कालों में व्यापक हैं। उन परमात्मा की लीलाओं का वर्णन उन आत्मज्ञ देहाद्यमिमानी जीवों, जो प्रकृति के गुणों सत्त्व रजस् आदिओं के द्वारा प्रवृत्त होते हैं, उन जीवों के कल्याण के लिए ही आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें। पाठान्तर होने पर भवन् यह सबोधन होगा।।१६।।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि । यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थआप्तोऽभजतां स्वधर्मत: ॥१७॥

अन्वयः अथ स्वधर्मं त्यक्त्वा हरेः चरणाम्बुजं भजन् यदि ततः अपक्वः पतेत् अमुष्य यत्र क्व वा अभद्रमभूत्किम्। स्वधर्मतः अभजताम् कः वा अर्थः आप्तः ।।१७।।

अनुवाद अपने वर्णाश्रम का त्याग करके श्रीहरि के चरण कमलों की सेवा करने वाले की भक्ति का परिपाक हुए बिना उससे पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो भी उसका कही अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । किश्च जो लोग अपने धर्म का पालन करने में लगे रहते हैं, भगवान् का भजन नहीं करते हैं वे ही लोग क्या प्राप्त कर लेते हैं ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्काम्यधर्मादेरनर्थहेतुत्वात्तं विहाय हरेलींलैव वर्णनीयेत्युक्तम् । इदानीं तु नित्यनैमित्तिकस्वधर्मनिष्ठामप्यनादृत्य केवलं हिरिभिक्तिरेवोपदेष्टव्येत्याशयेनाह- त्यक्त्वेति । ननु स्वधर्मत्यागेन भजन् भिक्तपिरिपाकेन यदि कृतार्थीं भवेत्तदा न काचिच्चिन्ता, यदि पुनरपक्व एव म्रियेत ततो भ्रश्येद्वा तदा स्वधर्मत्यागिनिमित्तोऽनर्थः स्यादित्याशङ्क्र्याह । ततो भजनात्कथंचित्पतेद्धश्येन्म्रियेत वा यदि तदापि भिक्तरिसकस्य कर्मानिधकारन्नानर्थशङ्का । अङ्गीकृत्याप्याह । वाशब्दः कटाक्षे । यत्र क्व वा नीचयोनावप्यमुष्य भिक्तरिसकस्याभद्रमभूत्किम् । नाभूदेवेत्यर्थः भिक्तवासनासद्भावादिति भावः । अभजिद्धस्तु केवलं स्वधर्मतः को वा अर्थ आप्तः । अभजितामिति षष्ठी तु संबन्धमात्रविवक्षया ।।१७।।

भावप्रकाशिका

इस तरह से काम्य कर्म आदि चूिक अनर्थ के साधन हैं अतएव उसको छोड़कर श्रीहरि की लीला का ही वर्णन करना चाहिए यह कहा जा चुका है। अब त्यक्त्वा॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि नित्य नैमित्तिक आदि अपने धर्म की निष्ठा का भी परित्याग करके श्रीहरि की भी भक्ति का ही उपदेश करना चाहिए।

ननु स्वधर्म त्यागेन० इत्यादि अब प्रश्न होता है कि अपने धर्म का परित्याग करके जो श्रीहरि की भिक्त करता है, उसकी भिक्त का यदि परिपाक हो जाता है तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है; किन्तु परिपक्व हुए बिना ही उसके बीच में ही वह मर जाता है, अथवा उससे श्रष्ट हो जाता है तब तो स्वधर्म त्यगजन्य अनर्थ होगा ही इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं यदि वह भिक्त से श्रष्ट हो जाता है अथवा वह बीच में ही मर जाता है तो भी जो भिक्त रिसक होता है उसका कर्म करने का अधिकार ही नहीं होता है; अतएव उसके अनर्थ की शङ्का नहीं की जा सकती है । अङ्गीकृत्याप्याह उसको स्वीकार करके भी कहते हैं यत्र क्ववा० इत्यादि नीच योनि में भी उस भिक्तरिसक का अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । क्योंकि उस व्यक्ति में भिक्त की वासना का सद्भाव बना रहता है । अभजदिस्तु० इत्यादि- जो लोग भगवद् भिक्त नहीं करते हैं, उन लोगों को अपने धर्म मात्र के पालन से ही क्या प्राप्त हो जाता है ? अभजताम् पद में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभिक्त हुयी है ॥१७॥

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः । तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥१८॥

अन्वयः— कोविदः तस्यैव हेतोः प्रयतेत यत् उपरि अधः भ्रमताम् न लभ्येत । तत् अन्यतः सुखं तु गम्भीरंहसा कालेन सर्वत्र लभ्यते ॥१८॥

अनुवाद — विज्ञ पुरुष को चाहिए वह उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करे जो सुख ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर पर्यन्त की योनियों में भ्रमण करने वाले जीवों को नहीं प्राप्त होता है। उससे भिन्न सुख तो गम्भीर वेग वाले काल के द्वारा सर्वत्र उसी तरह अपने आप मिलता रहता है जिस तरह दु:ख की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वधर्ममात्रादिष 'कर्मणा पितृलोकः' इति श्रुतेः पितृलोकप्राप्तिफलमस्त्येव तत्राह- तस्यैवेति । तस्यैव हेतोस्तदर्थं यत्नं कुर्यात् । यत् उपिर ब्रह्मपर्यन्तमधः स्थावरपर्यन्तं च भ्रमद्भिजीवैर्न लभ्यते । षष्ठी तु पूर्ववत् । तत्तु विषयसुखमन्यत एव प्राचीनकर्मणा सर्वत्र नरकादाविष लभ्यते दुःखवत् । यथा दुःखं प्रयत्नं विनापि लभ्यते तद्वत् । तदुक्तम् 'अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् । सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ।' इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि वर्णाश्रम धर्मों के भी पालन से **कर्मणा पितृलोक:** श्रुति के अनुसार पितृलोक की प्राप्ति होती ही है तो इसके उत्तर में **तस्यैव हेतो:** इत्यादि श्लोक को पढ़ते हैं। अर्थात् उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए जो ब्रह्मलोक से लेकर नीचे के स्थावर पर्यन्त में भ्रमण करने वाले जीवों को न प्राप्त हो सके। यहाँ भी सम्बन्ध सामान्य की ही विवक्षा में षष्ठी विभक्ति है। विषय जन्य सुख की प्राप्ति तो पूर्व कर्मों के अनुसार नरक आदि में भी उसी तरह प्राप्त होते हैं जिस तरह दुःखों की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है। कहा भी गया हैं— जिस तरह से शरीरधारियों को बिना चाहे भी दुःख की प्राप्ति होती रहती है उसी तरह सुखों की भी प्राप्ति होती रहती है। इस लोक में दैन्य की अधिकता होती हैं। ११८।।

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् । स्मरन्मुकुन्दांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥१९॥

अन्वयः हे अङ्ग, मुकुन्दसेवीजनः जातु कथंचन अन्यवद् संसृतिं न व्रजेत् मुकुन्दांधयुपगूहनं पुनः स्मरन् । विहातुं न इछेत् यतः रसग्रहः ॥१९॥

अनुवाद हे व्यासजी ! श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी प्रकार निन्दित योनि में भी चला जाता है तो वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममृत्युमय संसार चक्र में नहीं पड़ता है क्योंकि फिर श्रीभगवान् के चरणों का आलिङ्गन स्मरण करके वह उसे छोड़ना नहीं चाहता है क्योंकि उसे श्रीभगवान् के चरणों का रस प्राप्त हो चुका रहता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं यत्र क्व वाऽभद्रमभूदिति तदुपपादयित- न वा इति । मुकुन्दसेवी जनो जातु कदाचित्कथंचन कुयोनिगतोऽपि संसृतिं नाव्रजेन्नाविशेत् । अङ्गरहो । अन्यवत्केवलकर्मनिष्ठविदिति वैधर्म्ये दृष्टान्तः । कुत इत्यत आह । मुकुन्दाङ्घ्रेरुपगूहनमालिङ्गनं पुनः स्मरिन्वहातुं नेच्छेत् । यतोऽयं जनो रसग्रहः रसेन रसनीयेन गृह्यते वशीक्रियते । यद्वा रसे रसनीये ग्रह आग्रहो यस्य । तदुक्तं भगवता- यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन । पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।।' इति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

सत्रहवें श्लोक में 'यत्र क्ववा भद्रमभूत्' अर्थात् भगवद् भक्त का कहीं भी अमङ्गल होता है क्या ? यह जो कहा गया है उसी का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । न वै जनः इत्यादि श्रीभगवान् भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं; अतएव उनका एक नाम मुकुन्द है । मुं च कुं च ददातीति यह मुकुन्द शब्द की व्युत्पत्ति है । भगवान् मुकुन्द की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी तरह कुयोनि में भी चला जाता है तो भी वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममरणमय संसारचक्र में नहीं पड़ता है । अन्यवत् पद के द्वारा वैधर्म्य में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है ।

कुत इत्यादि यदि कहें कि ऐसा क्यों होता है तो इसके उत्तर में कहते हैं क्योंकि वह उस योनि में भी जाकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के आलिङ्गन का स्मरण करता है और उसको छोड़ना नहीं चाहता है ऐसा इसलिए होता है कि उसके पहले श्रीभगवान् के चरणों की सेवा जन्य आनन्द का अनुभव उसे हो चुका है। श्रीभगवान् के अनवद्य चरणों के वश में वह हो चुका रहता है। अथवा उसका श्रीभगवान् के सेवनीय चरणों में आग्रह बना रहता है।

तदुक्तम् ॰ इत्यादि भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी है वह पुनः मुक्ति की प्राप्ति करने का प्रयास करता है । अपने पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण वह विवश होकर भक्ति के मार्ग में आ जाता है ॥१९॥

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थानिनरोघसंभवाः । तिक् स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥

अन्वयः— यतः जगत्स्थाननिरोधसंभवाः । इदं विश्वं भगवान् इव इतरः च तद्धि भवान् स्वयं वेद । तथापि भवतः वै प्रादेशमात्रं प्रदर्शितः ।।२०।।

अनुवाद — जिन भगवान् से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं वे भगवान् ही यह विश्व हैं, फिर भी वे इस जगत् से भिन्न हैं, इस बात को आप स्वयं जानते हैं, मैंने तो आपको केवल दिशा निर्देश मात्र किया है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवल्लीलां प्राधान्येन वर्णयेत्युक्तं, तत्र को भगवान् काश्च तस्य लीला इत्यपेक्षायामाह । इदं विश्वं भगवानेव। स त्वस्माद्विश्वस्मादितरः । ईश्वरात्प्रपञ्चो न पृथगीश्वरस्तु प्रपञ्चात्पृथगित्यर्थः । तत्र हेतुः – यतो भगवतो हेतोर्जगतः स्थित्यादयो भवन्ति । अनेनैव लीला अपि दर्शिताः । यद्वा इदं विश्वं भगवान् । इतर इव यः स जीवोऽपि भगवान् । चेतनाचेतनः प्रपञ्चस्तद्व्यतिरेकेण नास्ति स एवैकस्तत्त्वमित्यर्थः । हिशब्देन सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादिप्रमाणं सूचितम् । तद्धि स्वयमेव भवान्वेद । प्रादेशमात्रमेकदेशमात्रं 'आचार्यवान्युक्षो वेद' इत्यादिश्वत्यर्थसंपादनाय प्रदर्शितम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से नारदजी ने व्यासजी को बतलाया कि आप श्रीभगवान् की लीला का ही प्रधान रूप से वर्णन करें। अब प्रश्न होता है कि भगवान् कौन हैं? और उनकी लीला क्या है? इसके उत्तर में इदं हि विश्वम् इत्यादि श्लोक कहा गया है। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् ही हैं। मूल के इव शब्द का ही अर्थ भगवानेव का एव है। वे भगवान् तो इस सम्पूर्ण जगत् से भिन्न ही हैं। यह प्रपञ्च ईश्वर से अलग नहीं है किन्तु ईश्वर प्रपञ्च से भिन्न हैं।

तत्र हेतु: इत्यादि ईश्वर के जगत् से भिन्न होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है क्योंकि श्रीभगवान् ही जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते हैं। इसी कथन के द्वारा श्रीभगवान् की लीला भी बतला दी गयी है। अर्थात् जगत् की सृष्टि, पालन और उसका संहार ये सब श्रीभगवान् की लीलायें है। यद्वा इत्यादि अथवा इसका यह भी अर्थ है कि यह विश्व भगवन् ही है और उनसे भिन्न यह जो जीव है, वह भी भगवान् है। यह चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च श्रीभगवान् से पृथक् नहीं है। एक मात्र तत्त्व श्रीभगवान् ही है। तिद्ध के हि शब्द के द्वारा इस कथन में सर्व खिल्वदं ब्रह्म अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। इस प्रमाण को सूचित किया गया है।

तिब इत्यादि- इन सारी बात को आप स्वयं जानते हैं मैंने तो उसके देश को बतलाकर दिशा निर्देश मात्र किया है। उसका एक मात्र उद्देश्य है कि आचार्यवान् पुरुषो वेद इस श्रुति के अर्थ की पूर्ति होती है। श्रुति का अर्थ है कि आचार्य के माध्यम से ही पुरुष शास्त्रीय तत्त्व को जान पाता है।।२०।।

त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् । अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥

अन्वयः— हे अमोघदृक्त्वम् आत्मा आत्मानं परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् अजम् जगतः शिवाय प्रजातम् अवेहि तत् महानुभावाभ्युदयम् अधिगण्यताम् ।।२१।।

अनुवाद— हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न व्यास जी ! आप अपने को परम पुरुष परमात्मा की कला, अजन्मा, तथा जगत् का कल्याण करने के लिए उत्पन्न जानें । अतएव महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीभगवान् की अधिकाधिक लीलाओं का आप वर्णन करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

न च तवाचार्यापेक्षा ईश्वरावतारत्वादित्याह- त्विमिति । हे अमोघदृक्, त्वमात्मना स्वयमात्मानमजमेव सन्तं जगतः शिवाय प्रजातमवेहि । कुतः परस्य पुंसः कलामंशभूतम् । तत्तस्मान्महानुभावस्य हरे रभ्युदयः पराक्रमः अधि अधिकं गण्यतां निरूप्यताम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

न च० इत्यादि व्यासजी ! आपको आचार्य की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप तो स्वयं ईश्वर के अवतार हैं । इस बात को नारदजी ने त्वम् इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा है । हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न । आप अपने को स्वयम् ही अजन्मा तथा जगत् का कल्याण करने के लिए आविर्भूत जानें । क्योंकि आप परम पुरुष परमात्मा के अंश हैं । अतएव आप महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीहरि के पराक्रमों का आधिकाधिक रूप से निरूपण करें ॥२१॥

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः । अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥

अन्वयः— कविभिः पुंसः तपसः, श्रुतस्य वास्विष्टस्य, सूक्तस्य यज्ञ दतयोः इदमेव अविच्युतः अर्थः निरूपितः यत् उत्तमश्लोकगुणानुकीर्तनम् ।।२२।।

अनुवाद — विद्वानों ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य की तपस्या वेदाध्ययन, अच्छी तरह से किये गये यज्ञ, तथा स्वाध्याय ज्ञान और दान का यही नित्य फल है कि श्रीभगवान् की लीलाओं तथा गुणों का वर्णन किया जाय ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अनेनैव तपआदि सर्वं तव सफलं स्यादित्याह- इदं हीति । श्रुतादयो भावे निष्ठाः । इदमेव हि तपःश्रवणादेरिवच्युतो नित्योऽर्थः फलम् । किं तत् । उत्तमश्लोकस्य गुणानुवर्णनमिति यत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा ही करने से आपके तप आदि सबके सब सफल हो सकते हैं इस बात को नारदजी ने **इदं हि इत्यादि** श्लोक से कहा है। **श्रुत इत्यादि** में भाव के अर्थ निष्ठा 'क्त' प्रत्यय हुआ है। वेदाध्ययन तथा तपस्या आदि का नित्य फल यही है कि उत्तमश्लोक श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन किया जाय ॥२२॥

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् । निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥२३॥

अन्वयः— मुने अहं तु पुरा अतीतभवे वेदवादिनाम् कस्याश्चन दास्याः अभवम् । बालक एव प्रावृषि निर्विविक्षताम् योगिनां शुश्रूषणे निरूपितः ।।२३।।

अनुवाद हे मुने ! मैं तो पूर्व कल्प में पूर्व जन्म में वेदवादी ब्राह्मणों की किसी दासी का पुत्र था। बाल्यावस्था में विद्यमान भी मैं वर्षा ऋतु में एक स्थान पर निवास करने वाले उन योगियों की सेवा में नियुक्त कर दिया गया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गतो हरिकथाश्रवणादिफलं स्ववृत्तान्तेन प्रपञ्चयित- अहमिति । अहं पुरा पूर्वकल्पेऽतीतभवे पूर्वजन्मिन वेदवादिनां दास्याः सकाशादभवं जातोऽस्मि । निरूपितो नियुक्तः । क्व । योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि वर्षोपलक्षिते चातुर्मास्ये । निर्विविक्षतां निवेशमेकत्र वासं कर्तुमिच्छताम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सत्सङ्ग के द्वारा श्रीहरि की कथा सुनने को मिलना रूपी फल नारदजी अपने वृत्तान्त के द्वारा बतला रहे हैं। अहम् इत्यादि मैं पूर्व कल्प में पूर्वजन्म में वेदवादी (वैदिक ब्राह्मणों) की किसी दासी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था। निरूपितः पद का अर्थ नियुक्त कर दिया गया है। अर्थात् बाल्यावस्था में ही वर्षा ऋतु से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य में एकत्र निवास करने के इच्छुक उन योगियों की सेवा में लगा दिया गया ॥२३॥

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि । चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥

अन्वयः— अपेताखिलचापले, दान्ते, अधृतक्रीडनके, अनुवर्तिनि, शुश्रृषमाणे अल्पमाषिणि मयि अर्भके, यद्यपि तुल्यदर्शनाः तथापि कृपां चक्रुः ।।२४।।

अनुवाद बालसुलभ सभी प्रकार की चपलताओं से रहित, जितेन्द्रिय, खिलौनों से नहीं खेलने वाले, आजा का पालन करने वाले, सेवा करने वाले तथा अल्प बोलने वाले मुझ बालक पर यद्यपि वे समदर्शी थे फिर भी कृपा किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अपेतानि गतान्यखिलानि चापलानि यस्मात्तस्मिन् । दान्ते नियतेन्द्रिये । अधृतक्रीडनके त्यक्तक्रीडासाधने। अनुवर्तिन्यनुकृले ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

सभी प्रकार की चपलताओं से रहित यह अपेतिखलचापले पद का अर्थ है। दान्ते शब्द जितेन्द्रिय का बोधक है। अर्थात् जितेन्द्रिय मुझ पर। अधृतकीऽनके। अर्थात् खिलौनों से नहीं खेलने वाले। अनुवर्तिनि अर्थात् अनुकूल रहने वाले। ये सभी बालक नारदजी की विशेषताएँ हैं। अर्थात् नारदजी बचपन में इन सभी गुणों से सम्पन्न थे। १२४।।

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुझे तदपास्तकिल्विषः । एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ।।२५।।

अन्वयः -- द्विजै: अनुमोदित: उच्छिष्टलेपान् सकृत् भुजेस्म एवं अपास्तकिल्विष: एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस: तद्धर्मे एव आत्मरुचि: प्रजायते स्म ॥२५॥

अनुवाद जन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके मैं उनके उच्छिष्ट पात्रों में लगे हुए अन्न को एक बार खा लेता वा उससे मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये। इस तरह उनकी सेवा करने वाले मेरा अन्त:करण शुद्ध हो गया और मेरी रुचि परमात्मभजन रूपी उनके ही धर्म में हो गयी।।२५॥

भावार्थ दीपिका

उच्छिष्टस्य लेपान्यात्रलग्नांस्तैर्द्विजैरनुज्ञातः सन् भुञ्जे स्म । तेन भोजनेनापास्तिकिल्विषो जातोऽस्मि । तेषां धर्मे परमेश्वरभजने एवात्मनो मनसो रुचिः प्रजायते स्म इत्यनुषङ्गः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उन ब्राह्मणों की आज़ा पाकर उनके उच्छिष्ट पात्रों में जो अत्र लगा रहता था, उसको मैं एक बार खा लेता या। उस अत्र के खाने से मेरे सारे पाप दूर हो गये और मेरी रुचि ब्राह्मणों के भजन रूपी धर्म में हो गयी।।२५॥

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुत्रहेणाशृणवं मनोहराः । ताः श्रन्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्गुचिः ॥२६॥

अन्वयः हे अङ्ग तत्र अन्वहम् कृष्णकथाः प्रगायताम् अनुग्रहेण मनोहराः ताः श्रद्धया अनुपदं विशृण्वतः मम प्रियश्रवसि रुचिः अभवत् ।।२६।।

अनुवाद हे व्यासजी ! वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का गायन करने वाले उन महात्माओं की कृपा से मनोहर उन भगवल्लीलाओं के प्रत्येक पदों को श्रद्धा पूर्वक ध्यान पूर्वक सुनने वाले मेरी प्रियकीर्ति श्रीभगवान् में स्वाभविक रूप से रुचि हो गयी ॥२६॥

भावार्थदीपिका

अशृणवं श्रुतवानस्मि । मे श्रद्धया ममैव स्वतःसिद्धया नत्वन्येन बलाज्जनितया । अतो ममेत्यस्यापौनरुक्त्यम् । अनुपदं प्रतिपदम् । प्रियं श्रवो यशो यस्य तस्मिन् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

मूल के अशृणवम् पद का अर्थ मैं सुनता था मे श्रद्धया का अर्थ है मेरी स्वाभाविक श्रद्धा के कारण जो किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित होकर नहीं। अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि 'मे' तथा 'मम' इन दोनों पदों का प्रयोग होने से इस श्लोक में पुनरुक्त दोष है। अनुपदम् का अर्थ है प्रत्येक पद को प्रियंश्रवो यश: यस्य तस्मिन् यह प्रियश्रविस पद का विग्रह है अर्थात् जिन श्रीभगवान् को यश प्रिय है उन श्रीभगवान् में ॥२६॥

तस्मिस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम । ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

अन्वयः— हे महामुने ! तदा तस्मिन् लब्ध रुचे: प्रियश्रवसि मे अस्खिला मित: अभवत् । यया अहम् एतत् सदसत् ब्रह्मणि मिय स्वमायया कल्पितं पश्ये ।।२७।।

अनुवाद हे महामुने व्यासजी ! उस समय मेरी रुचि श्रीभगवान् में हो गयी थी । उसके फल स्वरूप मेरी बुद्धि श्रीभगवान् में सुदृढ हो गयी । उसके कारण इस जगत् प्रपञ्च से भिन्न ब्रह्मस्वरूप मुझमें यह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर मेरी ही माया (अविद्या) के द्वारा अपने में किल्पत रूप से देखने लग गया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रियं श्रवो यस्य तस्मिन्भगवित लब्धरुचेर्ममास्खलिताऽप्रतिहता मितरभविदत्यनुषङ्गः । यया मत्या परे प्रपञ्चातीते ब्रह्मरूपे मिय सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं चैतच्छरीरं स्वमायया स्वाविद्यया कल्पितं नतु वस्तुतोऽस्तीति तत्क्षणमेव पश्यिम ।।२७।।

भावप्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् को लीलाएँ प्रिय हैं, उनमें मेरी अस्खिलिता अप्रतिहत (सुदृढ) बुद्धि हो गयी। उस बुद्धि के कारण मैं इस प्रपञ्च से ऊपर उठ गया। इस प्रकार के ब्रह्म स्वरूप मुझमें ही यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर किल्पत है इस प्रकार मैंने उसी क्षण जान लिया। किल्पत है यह कहकर बतलाया गया है कि ये दोनों प्रकार के शरीर मिथ्या हैं वास्तविक नहीं हैं ॥२७॥

इत्यं शरत्प्रावृषिकावृत् हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् । संकीर्त्यमानं मुनिभिमेहात्मभिर्मिक्तः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा ॥२८॥

अन्वयः - इत्यं शरत्प्रावृषिकौ ऋतू अनुसवम् महात्मिभः मुनिभिः संकीर्त्यमानम् अमलं यशः शृण्वतः मे आत्मरजस्तमोऽप हा भक्तिः प्रवृत्ता ।।२८।। अनुवाद इस तरह वर्षा तथा शरत् इन दोनों ऋतुओं में तीनों कालों में महात्मा मुनियों के द्वारा कीर्तन किए जाने वाले श्रीहरि के निर्मल यश को सुनने के कारण मुझमें रजोगुण तथा तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति उत्पन्न हो गयीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एवं शुद्धे त्वंपदार्थे ज्ञाते देहादिकृतविक्षेपनिवृत्तेस्तत्कारणभूतरजस्तमोनिवर्तिका दृढा भक्तिर्जातेत्याह- इत्थमिति । हरेर्यशः अनुसवं त्रिकालम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह तत्त्वमिस वाक्यगत त्वं पदार्थ का ज्ञान हो जाने पर देहादि के द्वारा होने वाले विक्षेपों (विघ्नों) का नाश हो गया। उसके कारण रजोगुण और तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति का मुझमें उदय हो गया। १८।। तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः। श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च । १९।। ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम्। अन्ववोचनामिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः । १३०।।

अन्वयः— एवम् अनुरक्तस्य, प्रश्रितस्य, हतैनसः श्रद्दधानस्य, दान्तस्य, अनुचरस्य च बालस्य मे दीनवत्सलाः ते गमिष्यन्तः कृपया तत् गुह्यतमं ज्ञानम् अन्ववोचन् यत् साक्षात् भगवता उदितम् ।।२९-३०।।

अनुवाद इस तरह उन मुनियों से प्रेम करने वाले, विनयी, निष्पाप, श्रद्धा सम्पन्न, जितेन्द्रिय तथा उनकी सेवा करने वाले मुझको जाने की इच्छा वाले तथा दीनों पर वात्सल्य प्रदर्शित करने वाले उन मुनियों ने मुझ बालक को उस रहस्यमय ज्ञान का उपदेश दे दिया जिस ज्ञान को स्वयम् श्रीभगवान् ने कहा है ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

तस्येति । तस्य ज्ञानशुद्धत्वंपदार्थस्य दृढभक्तिमतो मे । प्रश्रितस्य विनीतस्य ।।२९।। गुह्यतममिति । साधनभूतधर्मतत्त्वज्ञानं गुह्यम् । तत्साध्यं विविक्तात्मज्ञानं गुह्यतरम् । तत्प्राप्येश्वरज्ञानं गुह्यतमम् । भगवतोदितं भागवतं शास्त्रमन्ववोचन्नुपदिष्टवन्त: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

चूिक ज्ञान के द्वारा मेरा त्वं पदार्थ अर्थात् अन्तःकरणाविच्छित्र चैतन्य शुद्ध हो गया था । अतएव सुदृढ भिक्त सम्पन्न तथा विनीत मुझको मुनियों ने गुह्यतम ज्ञान का उपदेश दे दिया । साधनभूत धर्मतत्त्व का ज्ञान गुह्य है । उसके द्वारा साध्यभूत ऐकान्तिक आत्मज्ञान गुह्यतर है एवं उस ज्ञान के द्वारा प्राप्य ईश्वर का ज्ञान गुह्यतम है। भगवतोदितम् का अर्थ है भागवत शास्त्र का उपदेश कर दिया ॥२९-३०॥

येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः । मायानुभावमिवदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥३१॥

अन्वयः— येन एव अहं वेधसः भगवतो वासुदेवस्य मायानुभावं अविदम् येन तत् पदं गच्छन्ति ।।३१।।

अनुवाद— उसी ज्ञान से मैंने जगत् के कर्ता भगवान् श्रीकृष्ण की माया के प्रभाव को जान सका उसी ज्ञान से लोग परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदेव ज्ञानं पूर्वोक्तत्वंपदार्थज्ञानाद्विवेकेन दर्शयति- येनैवेति । अविदं ज्ञातवानहम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त त्वम् पदार्थ के ज्ञान जन्य विवेक के द्वारा ही मैं अविदम् श्रीभगवान् की माया के प्रभाव को जान सका ॥३१॥

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् । यदीश्वरे भगवित कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् यत् ईश्वरे ब्रह्मणि भगवित भावितम् कर्म एतत् तापत्रयचिकित्सितम् ॥३२॥

अनुवाद हे व्यासजी सम्पूर्ण जगत् के नियामक सम्पूर्ण जगत् में व्यापाः श्रीभगवान् को अपने समस्त कर्मों को समर्पित कर देना ही संसार के आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के दूर करने की दवा है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तत्साधनधर्मरहस्यं च सूचितमित्याह- एतदिति । तापत्रयस्याध्यात्मिकादेश्चिकित्सितं भेषजं निवर्तकम् । सत्त्वशोधकमिति यावत् । किं तत् । भगवित भावितं समर्पितं यत्कर्म तत् । कथंभूते भगवित । ईश्वरे सर्वनियन्तरि । एवमिप च ब्रह्मण्यप्रच्युतपूर्णरूपे ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

एतत् इत्यादि इस श्लोक के द्वारा उसके साधन भूत धर्म के रहस्य को सूचित किया गया है। संसार में प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के संतापों को दूर करने वाली वहीं औषि है अर्थात् वहीं अन्त:करण को शुद्ध करने वाला है। अब प्रश्न उठता है कि वह क्या है तो इसका उत्तर है अपने समस्त कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर देना ही वह साधन है। वे ही श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर अर्थात् नियामक हैं तथा ब्रह्म हैं। अर्थात् पूर्ण ब्रह्म हैं उनके स्वरूप में कभी भी कोई भी विकार नहीं आता है।।३२।।

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत । तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥

अन्वयः— हे सुव्रत येन भूतानां यश्च आमये जायन्ते तदेव हि चिकित्सितम् आमयं द्रव्यं न पुनाति किम् ॥३३॥ अनुवाद— हे सुन्दर व्रत वाले व्यासजी जिस पदार्थ के सेवन से मनुष्यों को रोग उत्पन्न हो जाता है उसी द्रव्य का यदि चिकित्सा विधि से सेवन किया जाय तो वह उस रोग को दूर नहीं कर देता है क्या ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु संसारहेतोः कर्मणः कथं तापत्रयनिवर्तकत्वम् । साम्रगीभेदेन घटत इति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । य आमयो रोगो येन घृतादिना जायते तदेव केवलमामयकारणभूतं द्रव्यं तमामयं न पुनाति । न निवर्तयतीत्यर्थः । किंतु चिकित्सितं द्रव्यान्तरैर्भावितं सत्पुनात्येव यथा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कर्म तो संसार के बन्धन का साधन है वह संसार के सन्तापत्रय का विनाशक कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि सामग्रीभेद के कारण ऐसा होता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है । जिन घृत आदि का सेवन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे अकेले घृत आदि का सेवन रोग का कारण होते हैं वे उस रोग को दूर नहीं कर सकते हैं । किन्तु वह जब चिकित्सा विधि से दूसरे द्रव्यों से मिश्रित कर दिया जाता है तो वही उस रोग को जैसे दूर कर देता है, उसी तरह संसार का कारणभूत कर्म श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने पर संसार के बन्धन को दूर कर देने का काम करता है ॥३३॥

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः । त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥३४॥

अन्वयः एवं नृणां सर्वे क्रियायोगाः संसृति हेतवः ते एव परे किल्पताः आत्मविनाशाय कल्पन्ते ।।३४।।

अनुवाद— ऐसे तो मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले सभी कर्म संसार के बन्धन के कारण बनते हैं। किन्तु परमात्मा को समर्पित कर दिए जाने पर वे ही कर्मीं की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं।

भावार्थ दीपिका

तथा आत्मविनाशाय कर्मनिवृत्तये कल्पन्ते समर्था भवन्ति । परे ईश्वरे कल्पिता अर्पिताः सन्तः । अत्र च प्रथमं महत्सेवा, ततश्च तत्कृपा, ततस्तद्धर्मश्रद्धा, ततो भगवत्कथाश्रवणं, ततो भगवित रितः, तया च देहद्वयविवेकात्मज्ञानं, ततो दृढा भक्तिः, ततो भगवत्तत्त्वज्ञानं, ततस्तत्कृपया सर्वज्ञत्वादिभगवद्गुणाविर्भाव इति क्रमो दर्शितः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ईश्वर को समर्पित कर दिए जाने वाले कर्म ही कर्मों की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं। यहाँ पर यह क्रम बतलाया गया है कि पहले महापुरुषों की सेवा होती है, उसके पश्चात् महापुरुषों की कृपा प्राप्त होती है। उसके पश्चात् महापुरुषों के कर्मों में श्रद्धा होती है, उसके पश्चात् भगवत् कथा सुनने को मिलती है, उसके पश्चात् श्रीभगवान् में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, इस प्रेम के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के देहों के भेदज्ञानजन्य आत्मज्ञान होता है उसके पश्चात् भिक्त सुदृढ हो जाती है। उसके पश्चात् भगवत् तत्त्व का ज्ञान होता है। उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कृपा से भगवद् गुणों का आविर्भाव होता है।।३४॥

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् । ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥३५॥

अन्वयः— अत्र यत् भगवत् परितोषणम् कर्म क्रियते तदधीनं यत् ज्ञानं तत् भक्तियोगसमन्वितम् भवति ।।३५।। अनुवाद — इस लोक में श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले जिन कर्मों को किया जाता है उसके द्वारा जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह भक्तियोग से युक्त होता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

ननु च ज्ञानेनाज्ञानप्राप्तकर्मनाशस्तच्च ज्ञानं भक्तियोगाद्भवति कथं कर्मणा कर्मनाशः स्यात्तत्राह- यदत्रेति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान जन्य कर्म का नाश होता है। वह ज्ञान भक्ति योग के द्वारा उत्पन्न होता, किन्तु कर्मों के द्वारा कर्म का नाश कैसे होता है? इसके उत्तर में यदत्र इत्यादि श्लोक कहा गया है। अर्थात् इस कर्म भूमि में कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने के कारण श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाला जो कर्म पुरुषों के द्वारा किया जाता है, जो भक्ति योग से युक्त ज्ञान होता है वह उस कर्म के अधीन ही होता है। श्रीभगवान् को अर्पित किए गये कर्म के द्वारा भगवद्भिक्त युक्त ज्ञान उत्पन्न होता है। और कर्म निवर्तक भिक्त के साथ ज्ञान के उत्पादन द्वारा कर्मों का नाश हो जाता है। ३५।।

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् । गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥३६॥

अन्वय: यत्र असकृत् भगवत् शिक्षया कर्माणि कुर्वाणा कृष्णस्य गुण नामानि, गृणन्ति कृष्णंच अनुस्मरन्ति ।।३६।। अनुवाद जब मनुष्य बार-बार श्रीभगवान् सम्बन्धी शिक्षा के द्वारा कर्मी को करते हैं तो वे श्रीभगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

भगवदर्पणेन क्रियमाणं कर्म भक्तियोगं जनयतीति सदाचारेण दर्शयति । यत्र यदा भगवतः शिक्षया कर्माणि भवन्ति श्रीकृष्णस्य गुणनामानि गृणन्त्यनुस्मरन्ति च कृष्णमित्यर्थः । इयं च भगविच्छया 'यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।' इति ।।३६।।

भावप्रकाशिका

श्रीभगवान् को अर्पण करने के लिए जो कर्म किया जाता है वह कर्म भक्तियोग को उत्पन्न करता है इस अर्थ का प्रतिपादन सदाचार के द्वारा बतलाते हैं। जब मनुष्य श्रीभगवान् की शिक्षा के द्वारा कर्मों को करते हैं तब वे भगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं भगवान् की शिक्षा यह है कि—

यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्य मदर्पणम् ।। (भगवद् गीता) अर्थात् हे अर्जुन ! तुम जो करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो वह सबकुछ मुझको अर्पित कर दो ॥३६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥३७॥ इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् । यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान्॥३८॥

अन्वयः— भगवते वासुदेवाय तुभ्यं नमः, धीमहि । प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय सङ्कर्ष्णाय च नमः इति मूर्त्यभिधानेन, अमूर्तिकम् मन्त्रमूर्तिं यज्ञपुरुषं यः यजते स सम्यग् दर्शनः ।।३७-३८।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, हम आपको नमस्कार करते हैं, हम आपका ध्यान करते हैं। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को भी नमस्कार है। इस तरह से जो पुरुष मूर्तिवाचक मन्त्र के द्वारा मूर्ति व्यतिरिक्त मूर्तिशून्य यज्ञपुरुष भगवान् का पूजन करता है उसी का ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

कीर्तनस्मरणरूपभक्तिहेतुत्वमुक्तं, ज्ञानहेतुत्वमाह द्वाभ्याम्- नम इति । नमो धीमहि मनसा नमनं कुर्वीमहि ।।३७।। अमूर्तिकं मन्त्रोक्तव्यतिरिक्तमूर्तिशून्यम् । यजते पूजयित स पुमान्सम्यग्दर्शनो भवति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

कीर्तन तथा स्मरण रूप भक्ति के हेतुत्व का प्रतिपादन किया जा चुका है अब ज्ञान के हेतुत्व का प्रतिपादन नमो भगवते तुभ्यम्० इत्यादि दो श्लोकों द्वारा किया जा रहा है। नमो धीमहि का अर्थ है मन से हम आपको नमस्कार करते हैं। अमूर्तिकम् का अर्थ है मन्त्रोक्त मूर्ति से भिन्न मूर्ति से रहित यजते अर्थात् पूजा करता है। उसी मनुष्य का ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है यह सम्यग्दर्शनः का अर्थ है। यद्यपि श्रीभगवान् की कोई भी प्राकृत मूर्ति नहीं है किन्तु मूर्ति के वाचक मन्त्र के द्वारा मन्त्र के ध्यान में बतलाये गये मूर्ति का मन्त्र पढ़ने से वह मूर्ति अविभूत हो जाती है। इस तरह से यज्ञपुरुष भगवान् की आराधना करने वाले व्यक्ति का ही ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है।।३७-३८।।

इमं स्विनगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् । अदान्मे ज्ञानमैश्चर्यं स्विस्मिन्भावं च केशवः ॥३९॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् इमं मदनुष्ठितम् स्विनगमम् अवेत्य केशवः मे ज्ञानम् ऐश्वर्यं स्विस्मिन् भक्तिं च अदात् ॥३९॥ अनुवाद— हे ब्रह्मन मेरे द्वारा अपने उपदेश का पालन किया गया जानकर प्रसन्न हुए भगवान् केशव ने मुझको ज्ञान, ऐश्वर्य और अपने में मुझको भिक्त प्रदान किया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

एवं कृतवित मिय हरि: स्वसदृशं ज्ञानादिकं दत्त्वानित्याह । इमं स्विनगमं स्वोपदेशं मदनुष्ठितं मयानुष्ठितमवेत्य ज्ञात्वा। भावं च प्रीतिं च ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मेरे द्वारा श्रीभगवान् के उपदेश का पालन किए जाने पर श्रीभगवान् ने अपने सदृश ही मुझको ज्ञान इत्यादि प्रदान किया । **इमं स्वनिगममवेत्य** का अर्थ है मेरे द्वारा अपने उपदेश का अनुष्ठान जानकर भाव शब्द प्रीति का बोधक है ॥३९॥

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् । प्रख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां यत्क्लोशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

अन्वयः— हे अदभ्रश्रुत त्वमपि विभोः विश्रुतम् आख्याहि येन विदां बुभुत्सितं समाप्यते यत् दुःखैः मुहुरर्दितात्मनाम् क्लेश निर्वाणम् उशन्ति, अन्यथा न ॥४०॥

अनुवाद है पूर्णज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें जिन लीलाओं के जान लेने पर विद्वान् की जानने की इच्छा पूरी हो जाती है तथा जिन लोगों को दुखों ने बार-बार रौंद डाला है उनके दु:खों को दूर करने वाला उसी को लोग मानते है । उसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं हैं ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के पाँचवें अध्याय का शिव्रप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वमप्येवं कुर्वित्याह- त्विमिति । अदभ्रमनल्पं श्रुतं यस्य हे अदभ्रश्रुत, विभोर्विश्रुतं यशः प्रख्याहि कथय । येन विश्रुतेन बुद्धेन विदां विदुषां बुभुत्सितं बोद्धुमिच्छा समाप्यते । यद्यतो दुःखैः पीडितानां क्लेशशान्तिं प्रकारान्तरेण न मन्यन्ते ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

आप भी मेरे ही समान श्रीभगवान् को अपने सभी कर्मों को समर्पित कर दें। इस बात को त्वमप्यदभ्रश्नुत ॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है। अदभ्रमलं श्रुतं यस्य तत्सम्बुद्धौ यह अदभ्रश्रुत पद का विग्रह है। अर्थात् हे पूर्ण ज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी व्यापक श्रीभगवान् के विख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें। श्रीभगवान् के यश का ज्ञान हो जाने पर विद्वानों (ज्ञानियों) की जिज्ञासा शान्त हो जाती है। तथा बार-बार दु:खों से पीड़ित प्राणियों के दु:खों की शान्ति का साधन श्रीभगवान् की लीलाओं का ज्ञान ही माना जाता है अन्य प्रकार से दु:खों की शान्ति नहीं मानी जाती हैं।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।५।।



छठा अध्याय

नारदजी के पूर्व चरित्र का अवशिष्ट भाग

सूत उवाच

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च । भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्ठ्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

अन्वयः देवर्षे: एवं जन्म कर्म च निशम्य सत्यवती सुतः भगवान् व्यासः तं भूयः पप्रच्छ ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— देवर्षि नारद के जन्म और कर्म को इस प्रकार से सुनकर माता सत्यवती के पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न व्यासर्ज ने नारदजी से पुन: पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

व्यासस्य प्रत्ययार्थं च षष्ठे प्राग्जन्मसंभवम् । स्वभाग्यं नारदः प्राह कृष्णसंकथनोद्भवम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी को विश्वास दिलाने के लिए नारदजीने छठे अध्याय में पूर्वजन्म में भगवान् श्रीकृष्ण की कथा से उत्पन्न अपने भाग्य का वर्णन किया है ॥१॥

व्यास उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्ट्टभिस्तव । वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥

अन्वयः— तव विज्ञानादेष्ट्रभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमानः भवान् ततः किम् अकरोत् ।।२।।

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— आपको ज्ञानोपदेश करने वाले महात्माओं के चले जाने पर बाल्यावस्था में रहने वाले आप ने उसके पश्चात् क्या किया ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

स्वयमपि तथा चिकीर्षुर्गुरूपदेशानन्तरभावि तच्चरितं पृच्छति- भिक्षुभिरिति । विप्रवसिते दूरदेशगमने कृते सित । विज्ञानस्यादेष्ट्टभिरूपदेशकर्तृभिः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

व्यासजी नारदजी के ही समान आचरण करने की इच्छा से गुरुओं के उपदेश के पश्चात् नारदजी ने जो किया उनके उस चरित को व्यासजी ने भिश्चभिः इत्यादि श्लोक से पूछा अर्थात् विज्ञान का उपदेश करने वाले मुनियों के विप्रवसिते अर्थात् दूर देश में चले जाने पर ॥२॥

स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः । कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः हे स्वायम्भुव ते परं वयः कया वृत्त्या वर्तितम् । काले प्राप्ते च इदं कलेवरम् कथम् उदस्राक्षीः ।।३।। अनुवाद हे ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी, आपकी शेष आयु किस प्रकार से व्यतीत हुयी तथा मृत्यृ का समय आ जाने पर आपने इस दासीपुत्र का शरीर किस प्रकार से त्यागा ।।३।।

भावार्थ दीपिका

परं वय उत्तरमायुः । ते त्वया वर्तितं नीतम् । इदिमिति दासीपुत्रभूतं कलेवरमुदस्राक्षीरुत्पृष्टवानिस ।।३।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं के चले जाने के बाद बची हुय आयु को आपने कैसे बिताया । और मृत्यु काल के आने पर दासीपुत्र रूपी शरीर को आपने कैसे त्यागा ?॥३॥

प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम । न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥

अन्वयः एषकालः सर्विनिराकृतिः । हे सुरसत्तम एष प्राक्कल्प विषयां ते स्मृतिं कथं न व्यवधात् ।।४।।

अनुवाद— यह काल सबों को विनष्ट कर देने वाला है। हे देवश्रेष्ठ नारदजी पूर्वकल्प की बातों को याद रखने वाली आपकी स्मृति को यह काल कैसे विनष्ट नहीं किया ? व्यवधात में अट् का आगम आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एष कल्पान्तलक्षणः कालस्ते स्मृति कथं न व्यवधान्न खण्डितवान् । अडागमाभावस्त्वार्षः । हि यत एष निराकृतिरपलापो यस्मात्सः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कल्प का अन्त होने पर भी काल ने आपकी स्मृति को किस कारण से नहीं विनष्ट कर सका ? व्यवधात् में अट् के आगम का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ॥४॥

नारद उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्ट्भिर्मम । वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ।।५।।

अन्वयः मम विज्ञानादेष्ट्रभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमान एतत् अकार्षम् ।।५।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद मुझको ज्ञानोपदेश करने वाले सन्तों के चले जाने पर बाल्यावस्था में विद्यमान मैंने यह किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अकारषं कृतवानहम् । रेफषकारयो विश्लेषश्छन्दोऽनुरोधेन ।।५।।

भाव प्रकाशिका

छन्दो भङ्ग से बचने के लिए अकारषम् इस पद में रकार और षकार का विलेष हो गया है । अन्यथा अकार्षम् यह पद होना चाहिए । अकार्षम् का अर्थ है मैंने किया ॥५॥

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी । मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥६॥

अन्वय:— मे जननी एकात्मजा योषित् मूढा, किङ्करी च, अनन्यगतौ आत्मजे मिय स्नेहानुबन्धनम् चक्रे ।।६।। अनुवाद— मैं अपनी माता का इकलौता पुत्र था । मेरी माँ एक तो स्त्री थी, दूसरे मूढ (अज्ञानी) थी और तींसरे दासी थी मेरा भी कोई दूसरा सहारा नहीं था अतएव वह अपने पुत्र प्रेम में ही मुझको को बाँध रखा था।।६।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्कंचित्कालं तत्रैव मातृस्नेहयन्त्रितो न्यवसमित्याह त्रिभिः । एक एवाहमात्मजो यस्याः सा । योषिदिति मूढेति च स्नेहानुबन्धे हेतुः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

माता के ही स्नेह पाश में बन्धा हुआ मैंने कुछ समय तक वहीं निवास किया इस बात को नारदजी ने

तीन श्लोकों द्वारा बतलाया । जिसका केवल मैं ही पुत्र था यह एकात्मजा पद का अर्थ है । मुझमें उसके स्नेहानुबन्धन का कारण यह था कि वह मूढ स्त्री थी ।।६।।

साऽस्वतन्त्रा न कल्पासीद्योगक्षेमं ममेच्छती । ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥

अन्वयः अस्वतन्त्रा सा मम योगक्षेमम् इच्छती कल्पा न आसीत् दारुमयी योषा यथा लोक: ईशस्य हि वशे ।।७।। अनुवाद वह मेरे योगक्षेम का निर्वाह करना चाहकर भी परतन्त्र होने के कारण नहीं कर पाती थी। जिस तरह कठपुतली नचाने वाले की इच्छा के अनुसार कठपुतली नाचती है, उसी प्रकार यह जगत् परमात्मा की इच्छा के ही अधीन है।।७।।

भावार्थ दीपिका

किंकरीत्यस्यार्थं प्रपञ्चयति- सेति । अस्वतत्रा सा । अतो न कल्पा न समर्था आसीत् । दारुमयी योषेत्यतिपारवश्ये दृष्टान्त: ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अपनी माता के किंकरित्व को ही विस्तार से **साऽस्वतंत्रा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। वह परतन्त्र होने के कारण मेरे योगक्षेम का निर्वाह करने में असमर्थ थी। पारतन्त्र्य में कठपुतली को दृष्टान्त रूप से उपन्यस्त किया गया है।।७।।

अहं च तद्ब्रह्मकुलं ऊषिवांस्तदवेक्षया । दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥

अन्वयः अहं च तत् अवेक्षया तद् ब्रह्मकुले उषिवान् । तदा अहम् दिग्देशकालाव्युत्पन्नः पञ्चहायनः बालक आसम् ।।८।। अनुवाद में भी अपनी माता के स्नेह पाश की समाप्ति की प्रतीक्षा करता हुआ उस ब्राह्मण परिवार में ही रह रहा था । उस समय देश तथा काल से अपरिचित मैं पाँच वर्ष का बालक था ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सा स्नेहं चक्रेऽहं च दिगादिष्वनिभज्ञोऽतस्तत्रैव न्यवसिमत्याह । अहं च तस्मिन्ब्रह्मकुले तस्या मातुः स्नेहानुबन्धस्यावेक्षया । कदा विरमेदिति प्रतीक्षयेत्यर्थः । ऊषिवान्वासं कृतवान् । पञ्चहायनः पञ्चवर्षः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

मेरी माँ मुझसे इस प्रकार से प्रेम करती थी और मैं भी दिग् देश और काल से अपरिचित था अतएव उस ब्राह्मण परिवार में ही रहने लगा । इस बात को अहं च० इत्यादि श्लोक से कहा गया है । मैं भी उस ब्राह्मण के परिवार में अपनी माता के स्नेह के बन्धन के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते हुए रहने लगा । उस समय मेरी अवस्था पाँच वर्ष की थीं । पञ्चहायन: पद क अर्थ पाँच वर्ष का है ॥८॥

एकदा निर्गतां गेहादुहन्तीं निशि गां पथि । सपींऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥९॥

अन्वयः एकदा गां दुहन्तीं निशि गेहात् निर्गताम् पिथ पदा स्पृष्टः कालचोदितः कृपणां तां अदशत् ॥९॥ अनुवाद एक दिन गौ दूहने के लिए रात में जब घर से बाहर गयी थी उस समय पैर से छू जाने के कारण काल के द्वारा प्रेरित सर्प ने उसे काट लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

गेहान्निर्गतां गां दुहन्तीम् हेतौ शतृप्रत्ययः । दोग्धुं निर्गतामित्यर्थः । पदा पादेनास्पृष्ट ईषदाक्रान्तः अदशदखादत् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

गौ दूहने के लिए घर से निकली हुयी उसको पैर से छू जाने के कारण सर्प ने काट लिया । **दुहन्तीम्** में हेतु के अर्थ में शतृ प्रत्यय हुआ है । अतएव इसका अर्थ दूहने के लिए है ।।९।।

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः । अनुत्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥११॥

अन्वयः— तदा तदहम् भक्तानां शमम् अभीप्सतः ईशस्य अनुग्रहं मन्यमानः उत्तरां दिशम् प्रातिष्ठम् ।।११।।

अनुवाद - उस समय उस माता की मृत्यु को भक्तों पर कृपा करने वाले श्रीभगवान् की कृपा मानकर मैं उत्तर दिशा में चल पड़ा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तन्मातुर्मरणं भक्तानां शं कल्याणमभीप्सत ईशस्यानुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं प्रस्थितोऽस्मि ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

माता की उस मृत्यु को भक्तों का कल्याण करने की इच्छा वाले श्रीभगवान् की कृपा मानने वाले मैंने उत्तर दिशा में प्रस्थान किया ॥१०॥

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् । खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च।।११॥ वित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् । जलाशयान् शिवजलन्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥ वित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भमरित्रयः । नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् । घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम्॥१४॥

अन्वयः— तत्र स्फीतान् जनपदान्, पुरग्रामब्रजाकरान् खेटखर्वट वाटीश्च वनानि, उपवनानि च, चित्रधातुविचित्राद्रीन् इभभुग्नभुजद्रुमान् शिवजलान् जलाशयान् चित्रस्वनैः पत्ररथैः विभ्रद्भ्रमरिश्रयः सुरसेविताः निलनीः एक एव अतियातः अहम्, नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचक गह्नरम् व्यालोलूकशिवाजिरम् प्रतिभयाकारं, घोरं महत् विपिनम् अद्राक्षम् ।।११-१४।।

अनुवाद जाते हुए मैंने मार्ग में समृद्ध देशों, नगरों, ग्रामों गोशालाओं, खेटों (कृषकों के ग्रामों) खर्वटों (पर्वत की तराई) में वसे ग्रामों, वाटिकाओं, उद्यानों, उपवनों, रङ्गविरङ्गे धातुओं से युक्त होने के कारण मनोहर पर्वतों, जिनकी शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षों, सुन्दर जल से भरे जलाशयों, देवताओं द्वारा सेवन किए जाने योग्य कमलों से मनोहर ध्विन करने वाले पिक्षयों तथा मँडराने वाले भौरों की शोभा से युक्त सरोवरों को अकेले पार करके मैंने नरकट, बाँस सेठा, कुश तथा कीचक से भरे हुए एवं सर्प, उल्लू तथा स्यार से भरे हुए अत्यन्त भयङ्कर एक महान् वन को देखा ॥११-१४॥

भावार्थ दीपिका

स्फीतान् जनपदादीनितयातः सन् महिद्विपिनमद्राक्षिमिति चतुर्थेनान्वयः । जनपदादिषु नानागुणदोषयुक्तेषु समदृष्टिः सन्गतोऽहिमिति तात्पर्यार्थः । स्फीतान्समृद्धान् । जनपदान्देशान् । तत्र तस्यां दिशि । पुरग्रामव्रजाकरान् । तत्र पुराणि राजधान्यः। ग्रामा भृगुप्रोक्ताः- 'विप्राश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते । स तु ग्राम इति प्रोक्तः शृद्राणां वास एव च।।' इति व्रजा गोकुलानि । आकरा रत्नाद्युत्पत्तिस्थानानि तान् । खेटाः कर्षकग्रामाः । खर्वटा गिरितटग्रामाः, भृगुप्रोक्ता वा एकतो यत्र तु ग्रामो नगरे चैकतः स्थितम् । मिश्रं तु खर्वटं नाम नदीगिरिसमाश्रयम् ।। इति वाट्यः पूगपुष्पादीनां वाटिकास्ताः। वनानि स्वतः सिद्धवृक्षाणां समूहाः । उपवनानि रोपितवृक्षाणां समूहाः । तानि च ।।११।। चित्रैर्धातुभिः स्वर्णरजताद्यैर्विचित्रानद्रींश्च। इभैर्मग्रा मुजाः शाखा येषां ते द्रुमायेषु तान् । शिवानि भद्राणि जलानि येषां तान् । निलनीः सरसीः ।।१२।। चित्राः स्वना येषां तैः पत्ररथैः पक्षिमिस्तत्रादप्रबुद्धैरित्यर्थः । विश्वमद्धिर्भनरैः श्रीः शोभा यासां ता निलनीरितियातोऽतिक्रम्य गतः सन्महिद्विपिनं

वनमद्राक्षम् । कीदृशम् । नलवेणुशराणां स्तम्बैः कुशैः कीचकैश्च गह्वरं दुर्गमम् । तत्र वेणुजातय एव विपुलान्तरालगर्भाः कीचकाः ।।१३।। घोरं दुःसहम् । प्रतिभयाकारं भयङ्कररूपम् । व्यालादीनामजिरं क्रीडास्थानम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

स्फीतान् इत्यादि- समृद्ध जनपदों (देशों) आदि को पार करके मैंने एक बहुत बड़े वन को देखा। इस तरह से इस श्लोक के चतुर्थ चौदहवें श्लोक से इसका अन्वय है। अर्थात् अनेक प्रकार के दोषों तथा गुणों से युक्त जनपदों में समान दृष्टि रखने वाला मैं जा रहा था। स्फीतान् जनपदान् अर्थात् समृद्ध देशों को मैंने उस दिशा में देखा। नगरों अर्थात् राजधानियों, ग्रामों, गो समूहों तथा रत्नों के उत्पत्ति स्थानों को देखते हुए।

ग्राम शब्द को निरूपित करते हुए महर्षि भृगु ने कहा है— 'विप्रश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते । स तु ग्राम इति प्रोक्तः ।' जहाँ पर ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों के भृत्य रहते हैं, उस स्थान को ग्राम शब्द से अभिहित किया जाता है । खेट अर्थात् कृषकों के ग्राम, खर्वट अर्थात् पर्वत की तराई में वसे ग्राम । महर्षि भृगु ने कहा भी है—

एकतो यत्र तु ग्रामो नगरं चैकतः स्थितम् । मिश्रं तु खर्वटं नाम नदी गिरिसमाश्रयम् ।।

जिसके एक भाग में ग्राम हो और दूसरे भाग में नगर हों इन दोनों से मिश्रित तथा नदी तथा पर्वत के किनारे वसे हुए ग्राम को खर्वट कहते हैं। सुपारी तथा पुष्पों आदि की वाटिका को वाटी कहते हैं। स्वाभाविक रूप से उत्पन्न वृक्षों के समूह को वन कहते हैं। रोपे गये वृक्षों के समूह को उपवन कहते हैं। उन सबों को देखते हुए अनेक प्रकार के सुवर्ण रजत आदि धातुओं से अद्भुत बने पर्वतों को जिन वृक्षों की शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षों को सुन्दर स्वच्छ जलों से परिपूर्ण जलाशयों को, अनेक प्रकार की बोली बोलने वाले पिक्षयों तथा मँडराते हुए भ्रमरों की शोभा से युक्त कमलों वाले सरोवरों को पार करके जाते हुए मैंने नरकट, बाँस सेठा कुश तथा कीचक से भरे हुए सर्प, उल्लू तथा स्थारों के क्रीडा स्थान रूप प्रतिभयङ्कर (मूर्तिमान भय स्वरूप) बहुत बड़े वन को अकेले जाते हुए मैंने देखा ॥११-१४॥

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृद्परीतो बुभुक्षितः । स्नात्वा पीत्वा हृदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः॥१५॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः । आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम्॥१६॥

अन्वयः— परिश्रान्तेन्द्रियात्मा, तृट्प्ररीतः बुभुक्षितः नद्या हूदे स्नात्वा पीत्वा उपस्पृष्टः गतश्रमः अहं तस्मिन् निर्मनुजे अरण्ये पिप्पलोपस्थे आश्रितः आत्मना आत्मस्थं यथाश्रुतम् आत्मानम् अचिन्तयम् ।।१५-१६।।

अनुवाद— मेरी इन्द्रियाँ और शरीर थक गये थे, मुझे भूख तथा प्यास लगी थी; अतएव नदी के हूद में मैंने स्नान करके पानी पिया और मेरी थकान दूर हो गयी उस मनुष्य रहित वन में पिप्पल के नीचे बैठा हुआ मैंने मन से हृदय में विद्यमान परमात्मा का रूप जैसा सुना था उसीविधि से ध्यान किया ॥१५-१६॥

भावार्थ दीपिका

परिश्रान्तानीन्द्रियाण्यात्मा देहश्च यस्य । तृषा परीतो व्याप्तः । उपस्पृष्ट आचान्तः ।।१५।। पिप्पलोपस्थे अश्वत्थमूले। आश्रित उपविष्टः । आत्मना बुद्ध्या मनसा वा । आत्मस्थं हृदिस्थम् । आत्मानं परमात्मानम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

परिश्रान्तानि इन्द्रियाणि आत्मा देहश्च यस्य यह परिश्रान्तेन्द्रियात्मा पद का विग्रह है। अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ और मन थक गये थे तथा भूखा एवं प्यासा हुआ मैं उपस्पृष्टः अर्थात् आचमन करके, पिप्पलोपस्थे अर्थात् पिप्पल की जड़ में, आश्रितः बैठा हुआ मैं आत्मना अर्थात् मन अथवा बुद्धि के द्वारा आत्मस्थ हृदय में विद्यमान परमात्मा का मैंने ध्यान किया ॥१५-१६॥

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा । औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७॥

अन्वयः— भवानिर्जितचेतसा चरणाम्भोजं ध्यायतः औत्कण्ठयाश्रु कलाक्षस्य में हृदि हृदिः शनैः आसीत् ।।१७।। अनुवाद— भिक्तभाव से भरे हुए चित्त में मैंने जब श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान किया उस समय श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा के कारण मेरे नेत्रों में आँसू भर गया था, और धीरे-धीरे श्रीहरि मेरे हृदय में प्रकट हो गये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

भावेन भक्त्या निर्जितं वशीकृतं यच्चेतस्तेन । औत्कण्ठ्येनाश्रुकलायुक्ते अक्षिणी यस्य ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

भावेन भक्त्या निर्जितं यच्चेतः तेन यह भाव निर्जित चेतसा पद का विग्रह है और इस का अर्थ है भिक्ति के अधीन हुए अन्तः करण के द्वारा औत्कण्ठ्याश्रकल्पाक्षस्य पद का विग्रह है औत्कण्ठ्येन अश्रु कलायुक्ते अक्षिणी यस्य अर्थात् परमात्म दर्शन की उत्कण्ठा के कारण जिसके नेत्रों में आँसू भर गया था ऐसे नारदजी ने परमात्मा का ध्यान किया ॥१७॥

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः । आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥

अन्वयः हे मुने ! प्रेमातिभर निभिन्न पुलकाङ्गः अतिनिर्वृतः आनन्दसम्पल्वे लीनः अहं उभयम् न अपश्यम् ।।१८।। अनुवाद हे व्यासजी ! प्रेमातिशय्य के कारण मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया, मैं तो कृतार्थ हो गया और आनन्द के महाप्रवाह में मग्न मैं आत्मा और परमात्मा को नहीं देख सका ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

प्रेम्णोऽतिभरेण निर्भित्रपुलकान्यङ्गानि यस्य । आनन्दानां संप्लवे महापूरे परमानन्दे । उभयमात्मानं परं च ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रेमातिभरिनिर्भित्रपुलकाङ्गः पद का अर्थ है प्रेमातिशय्य के कारण जिसके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था । इस पद का विग्रह है प्रेम्णः अतिभरेण निर्भित्रपुलकानि अङ्गानि यस्य । इस प्रकार का मैं आनन्द के महाप्रवाह में मग्न हो गया था और कृतार्थ हो गया । फलतः उस समय मैं आत्मा तथा परमात्मा दोनों को नहीं देख सका ॥१८॥

रूपं भगवतो यत्तन्मनः कान्तं शुचापहम् । अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याहुर्मना इव ॥१९॥

अन्वयः— भगवतः यत् मनः कान्तं शुचापहम् रूपं तत् अपश्यन् अहम् वैकलव्याद् दुर्मना इव सहसा उत्तस्थे ।।१९।। अनुवाद— श्रीभगवान् का जो मनोज्ञ तथा शोक को विनष्ट करने वाला रूप था उसको नहीं देखने के कारण मैं व्याकुल हो गया और उदास के समान अचानक मेरा ध्यान भङ्ग हो गया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

मनसः कान्तमभीष्टम् । शुचा शोकस्तामपहन्तीति तथा तत् । उत्तस्थे व्युत्थितोऽस्मि ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मनः कान्तम् का अर्थ मन को प्रिय लगने वाला । शुचापहम् का अर्थ है शोक को विनष्ट करने वाला उत्तस्ये का अर्थ है मैं समाधि से उठ गया । अर्थात् समाधि काल में श्रीभगवान् का जो मनोहर रूप या उसके दिखना बन्द होते ही मैं व्याकुल हो गया और उदास होने के कारण मेरी समाधि टूट गयी ॥१९॥

दिदृक्षुस्तदऽहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि । वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

अन्वयः तत् भूयः दिदृक्षुः मनः हृदि प्रणिधाय अवितृप्तः वीक्षमाण अपि न अपश्यम् आतुरः इव अभवम् ।।२०।। अनुवाद श्रीभगवान् के उस रूप को पुनः देखने के इच्छुक अतृप्त मैंने मन को हृदय में स्थिर करके देखने की कोशिश की किन्तु उस रूप को पुनः मैं नहीं देख सका फलतः मैं बेचैन सा हो गया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

हृदि मनः प्रणिधाय स्थिरीकृत्यावितृप्तोऽहमातुर इवाभवमिति शेषः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस रूप को मैं पुनः देखना चाहा और उसके लिए हृदय में मन को स्थिर करके देखने की कोशिश भी किया; किन्तु श्रीभगवान् के उस रूप का पुनः दर्शन नहीं हुआ। फलतः मैं अतृप्त ही रह गया और उसके कारण मैं बेचैन सा हो गया।।२०।।

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् । गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥

अन्वयः एवम् विजने यतन्तम् गिराम् अगोचरः (ईश्वरः) गम्भीरश्लक्षणया वाचा शुचः प्रशमयन् इव माम् आह ।।२१।। अनुवाद इस तरह से निर्जन वन में प्रयास करते हुए मुझको वाणी के अविषयभूत ईश्वर ने गम्भीर तथा मधुर वाणी से मानो मेरे शोक को शान्त करते हुए कहा ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

गिरामगोचरः संवेदनस्य विषयभूत ईश्वरः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

मैं उस निर्जन वन में श्रीभगवान् के रूप का पुन: दर्शन करने का प्रयास कर रहा था उसी समय मुझको आकाशवाणी के माध्यम से मेरे शोक को शान्त करते हुए के समान ईश्वर ने गम्भीर और मधुर वाणी से कहा। ईश्वर को गिराम् अगोचर इसलिए कहा गया है कि ईश्वर का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है। उनको तो ज्ञान के ही माध्यम से जाना जा सकता है। १२१।।

हन्तास्मिन् जन्मनि भवान्मा मा द्रष्टुमिहार्हति । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥

अन्वयः हन्त, अस्मिन् जन्मानि इह भवान् मा मा द्रष्टुमहीति । अविपक्वकषायाणाम् कुयोगिनाम् अहं दुर्दर्शः ।।२२।। अनुवाद नारदजी आप इस जन्म में मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं, जिनके काम आदि की वासनायें विनष्ट नहीं हुयी हैं उन अनिष्पन्न योग वाले योगियों के लिए मैं दुर्दर्श हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हन्तेति सानुकम्पसंबोधने । मा इति माम् । द्रष्टुं नार्हति । यतः न विपक्वा दग्धाः कषाया मलाः कामादयो येषां तेषां कुयोगिनामनिष्पन्नयोगानाम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

हन्त इस अव्यय पद का प्रयोग अनुकम्पा पूर्वक संबोधन करने के अर्थ में होता है। अर्थात् इस जन्म में तुम मेरा दर्शन इसलिए नहीं कर सकते हो कि जिन योगियों के काम आदि रूपी कषाय अन्त:करण के मल दूर नहीं हुए हैं जिनका योग परिपूर्ण नहीं हुआ है ऐसे योगी कुयोगी हैं। और कुयोगी मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं। तुम्हारी भी ये वासनाएँ दूर नहीं है, अतएव तुम कुयोगी हो। फलत: तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते हो। कुयोगिनाम् पद का कु शब्द निन्दार्थक नहीं है, अपितु ईषदर्थक है । अर्थात् जिन लोगों ने अल्प मात्रा में योग किया है, वे कुयोगी हैं ॥२२॥

सकृद्यदर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ । मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्जति हृच्छयान् ॥२३॥

अन्वय:— हे अनघ ते यत् सकृत् रूपं दर्शित तत् एतत् कामाय । मत्कामः साधुः सर्वान् हुच्छयान् मुञ्चिति ।।२३।। अनुवाद— हे निष्पाप नारद ! मैंने जो तुमको अपना एक बार रूप दिखया वह इसलिए कि तुम्हारा मुझमें अनुराग हो । मुझको देखने की इच्छा वाले पुरुष के हृदय के सारे दोष धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

कुतस्तर्हि दृष्टोऽसि तत्राह । सकृद्दर्शितं मयेति यदेतत्कामाय मय्यनुरागाय । त्वत्कामेन किमित्यत आह । मत्काम: पुमान् । हृच्छयान्कामान् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि आप कुयोगियों को दर्शन नहीं देते हैं तो फिर आपने मुझे दर्शन कैसे दिया? तो इसका उत्तर है सकृहिंशितम् एक बार मैंने अपना रूप इसलिए दिखाया कि उससे तुम्हारा मुझमें प्रेम बढ़े। यदि कहो कि आपके प्रेम बढ़ने से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि मुझसे प्रेम करने वाले साधु पुरुष के हृदय की सारी कामनाएँ धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं ॥२३॥

सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मिय दृढा मितः । हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामिस ॥२४॥

अन्वयः— अदीर्घया सत्सेवयापि ते मित मिय दृढा संजाता अतएव अवद्यं इमं लोकं हित्वा मत् जनताम् गन्ता असि ॥२४॥

अनुवाद— यद्यपि तुमने दीर्घ काल तक महापुरुषों की सेवा नहीं की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें स्थिर हो गयी है। अतएव तुम इस निन्दित शरीर को त्यागकर मेरा पार्षद बन जाओंगे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अदीर्घयापि सतां सेवया । अवद्यं निन्द्यम् । इमं लोकं देहं हित्वा । मज्जनतां मत्पार्षदतां गन्तासि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रायः दीर्घकाल तक महापुरुषों की सेवा करने पर ही मनुष्यों की उनकी कृपा से मुझमें सुदृढ बुद्धि होती हैं, किन्तु तुमने तो अल्प काल तक ही महापुरुषों की सेवा की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें सुदृढ हो गयी। उसके फल स्वरूप तुम अपने इस दासीपुत्र रूप निन्दित शरीर का परित्याग करके मेरे पार्षद हो जाने वाले हो ॥२४॥

मितर्मिय निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् । प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥

अन्वयः मिय निबद्धा इयं मित किहींचित् न विपद्येत । प्रजासर्गनिरोधेऽपि मदनुग्रहात स्मृतिश्च भवेत् ।।२५।। अनुवाद मुझको प्राप्त करने का जो तुम्हारा सुदृढ निश्चय है वह कभी भी नहीं टूटेगा और मेरी कृपा के कारण प्रलयकाल हो जाने पर भी तुम्हे मेरी स्मृति बनी रहेगी ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

प्रजानां सर्गे सृष्टौ निरोधे संहारेऽपि । प्रजासर्गस्य निरोध इति वा ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

प्रजा सर्गानिरोधेऽपि का अर्थ है सृष्टि का संहार हो जाने पर भी अथवा प्रजाओं की सृष्टि रुक जाने पर भी ।

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने नारदजी को आशीर्वाद दिया है कि प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हारा जो मुझको प्राप्त करने का सुदृढ निश्चय है वह नहीं टूटेगा। तथा प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी।।२५।।

एतावदुवन्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् । अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विद्धेऽनुकम्पितः ॥२६॥

अन्वयः - नभोलिङ्गम् महद्भूतम् अलिङ्गम् ईश्वरम् एतावदुक्त्वा उपरराम अनुकम्पितः अहं च महतां महीयसे तस्मै शीर्ष्णा अवनामं विदधे ।।२६।।

अनुवाद— आकाश के समान अव्यक्त सबों के नियामक ईश्वर इतना ही कहकर चुप हो गये और उन परमात्मा की कृपा प्राप्त मैंने महान् से भी महान् ईश्वर को शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत् प्रसिद्धं महद्भूतम् । 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' इत्यादिश्रुतेः । कीदृशम् । ईश्वरं सर्वनियन्तृ। नभिस लिङ्गं मूर्तिर्यस्य तत्रभोलिङ्गम् । सित्रहितमि न लिङ्गयत इत्यलिङ्गं तस्मै अदृष्टाय भगवतेऽवनामं प्रणामं विदधे कृतवानहम् । तेनानुकम्पितः सन् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

महद्भूतम् यह परमात्मा के नाम का प्रथमा एक वचन का रूप है। श्रीभगवान् का महत् नाम है इसमें प्रमाण अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितामेतद् यदृग्वेदः' इत्यादि श्रुति है। इस श्रुति में भगवान् के ही लिए महतोभूतस्य का प्रयोग किया गया है। श्रुति का अर्थ है इस महत्भूत परमात्मा के ऋग्वेद आदि वेद निःश्वास हैं। अर्थात् जिस तरह से श्वास लेने के लिए किसी प्रयास को नहीं करना पड़ता है, उसी तरह परमात्मा के प्रयास के बिना ही वेद उत्पन्न हो गये। महतो भूतस्य यहाँ जो सन्धि नहीं हुयी है उसका कारण है कि यह आर्ष प्रयोग है। अन्यथा महद्भूतस्य यह प्रयोग होता। वे परमात्मा ईश्वर अर्थात् सबों के नियामक हैं। नमो लिङ्गम् का अर्थ है हार्दाकाश में उस परमात्मा की लिङ्ग मूर्ति है। यहाँ नभस शब्द हार्दाकाश का और लिङ्ग शब्द मूर्ति का बोधक है। अलिङ्गम् कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा हार्दाकाश में रहने के कारण अत्यन्त सन्निकट हैं किन्तु दिखायी नहीं पड़ते हैं। उन नहीं दिखायी पड़ने वाले परमात्मा को मैनें प्रणाम किया। मैंने परमात्मा को प्रणाम इसलिए किया मैंने परमात्मा की कृपा प्राप्त कर ली थी।।२६।।

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् । गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥२७॥

अन्वयः— हतत्रपः अनन्तस्य गुह्यानि, भद्राणि कृतानि नामानि पठन् स्मरन् च विमदः विमत्सरः तुष्टमनाः गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् गां पर्यटन् आसम् इति शेषः ।।२७।।

अनुवाद— उसी समय से लज्जा का परित्याग करके अनन्त परमात्मा के मङ्गलमय नामों को पढ़ते हुए तथा श्रीभगवान् को स्मरण करते हुए मद तथा मत्सर से रहित मैं सभी प्रकार के स्पृहाओं से रहित होकर पृथिवी पर पर्यटन करने लगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तस्य नामानि पठन्ननवरतं गृणन् हतत्रपस्त्यक्तलज्जो विमत्सरो जातोऽस्मि इति शेष: ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के नामों को निरन्तर पढ़ते रहने के कारण मेरा सबों से द्वेष समाप्त हो गया और मैं लज्जा का परित्याग करके सदा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने लगा ।।२७।।

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः । कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ॥२८॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् एवं कृष्णमतेः असक्तस्य अमलात्मनः मम, काले तिडत सौदािमनी यथा कालः प्रादुरभूत् ।।२८।। अनुवाद इस प्रकार कृष्ण परायण, आसिक्त रहित, तथा शुद्ध अन्तः करण वाले मेरा आचानक मृत्यु काल आ जाने पर उसी तरह मृत्यु हो गयी जैसे अचानक बिजली चमक जाती है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

काले स्वावसरे कालो मृत्युः प्रादुरभूदाविर्बभूव । अकस्मात्प्रादुर्भावे दृष्टान्तः – तिङिदिवेति । सौदामनीति विशेषणं स्फुटत्वप्रदर्शनार्थम् । तथा हि सुदामामाला तत्र भवा सौदामनी मालाकारेत्यर्थः । यद्वा सुदामानामा कश्चित्स्फटिकपर्वतः । ततः 'तेनैकदिक्' इति सूत्रेणाण् । स्फिटिकादिमयपर्वतप्रन्ते भवा हि विद्युदितस्फुटा भवित तद्वदित्यर्थः । यद्वा तिङिदित्यन्तिके इत्यर्थः 'तिङिदित्यन्तिकवधयोः' इति नैरुक्तस्मरणात् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

हे व्यासजी समय आने पर मेरी मृत्यु अचानक हो गयी। मृत्यु के अकमस्मात् होने का उदाहरण तिहत् सौदामनी यथा कहकर दिया गया है। तिहत् का सौदामनी विशेषण उसके स्पष्ट प्रकाश को सूचित करने के लिए प्रयुक्त है। सुदामा माला को कहते है। उससे उत्पन्न होने के कारण सौदामनी कहा गया है। अर्थात् बिजली जैसे माला के आकार की चमकती है उसी तरह। अथवा सुदामा नामक एक स्फिटिक का पर्वत है। सुदामा शब्द से तेनैकिदिक् सूत्र से अण् प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में सौदामनी पद व्युत्पन्न है। स्फिटिकादिमय पर्वत के सिन्नकट में बिजली अत्यधिक चमकती है। यहाँ पर तिहत शब्द सिन्नकट के अर्थ में प्रयुक्त है। निरुक्त में कहा गया भी गया है। 'तिहिदित्यन्तिकवधयोः' अर्थात् तिहत शब्द का प्रयोग सिन्नकट तथा वध के अर्थ में होता हैं।।२८॥

प्रयुज्यमाने मिय तां शुद्धां भागवतीं तनुम् । आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥२९॥

अन्वयः तां शुद्धां भागवतीं तनुम् मिय प्रयुज्यमाने आरब्धकर्म निर्वाणः पाञ्चभौतिकः न्यपतत् ।।२९।।

अनुवाद जिस समय श्रीभगवान् मुझे भगवत् पार्षद का शुद्ध शरीर प्रदान कर रहे थे उस समय प्रारब्ध कर्म के समाप्त हो जाने के कारण मेरा यह पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

प्रयुज्यमाने मिय तामिति । अयमर्थः - 'हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मञ्जनतामिस' इति या भागवती भगवत्पार्षदरूपा शुद्धा सत्त्वमयी तनुः प्रतिश्रुता तां प्रति भगवता मिय प्रयुज्यमाने नीयमाने आरब्धं यत्कर्म तित्रवीणं समाप्तं यस्य, आरब्धकर्मणो निर्वाणमेव निर्वाणं यस्येति वा । स पञ्चभूतात्मको देहो न्यपतत् । अनेन पार्षदतनूनामकर्मारब्धत्वं शुद्धत्वं नित्यत्विमत्यादि सूचितं भवति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

'प्रयुज्याने मिय ताम्' इस श्लोक का अर्थ यह है कि श्रीभगवान् ने यह जो कहा था कि इस निन्दित शरीर का त्याग करके मेरा पार्षद बनोगे, इस प्रतिज्ञा के अनुसार पार्षद स्वरूप शुद्ध सात्त्विक शरीर को जब श्रीभगवान् मुझे दे रहे थे उस समय मेरा जो प्रारब्ध कर्म था उसकी निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो गयी और मेरा पाञ्चभौतिक शरीर विनष्ट हो गया । इस कथन से यह अर्थ सूचित हो गया कि पार्षदों का शरीर कर्मारब्ध नहीं होता है । वह शुद्ध सात्त्विक तथा नित्य शरीर होता है ॥२९॥

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः । शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥

अन्वयः कल्पान्ते उदन्वतः अम्भसि शयाने शिशयिषोः विभोः अन्तः अनुप्राणं अन्तः विविशे ।।३०।।

अनुवाद कल्प के अन्त में जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव के जल में शयन करते हैं उस समय उनके हृदय में शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी जब इस सम्पूर्ण जगत् को समेट कर प्रवेश करने लगे उस समय मैं भी उनके श्वास के साथ उनके हृदय में प्रवेश कर गया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

इदं त्रैलोक्यमादायोपसंह्रत्योदन्वत एकार्णवस्याम्भिस शयाने श्रीनारायणे शिशयिषोः शयनं कर्तुमिच्छोर्वि-भोर्ब्रह्मणोऽन्तर्मध्यमनुप्राणं निःश्वासेन सह विविशे प्रविष्टोऽहम् । 'ततोऽवतीर्यं विश्वात्मा देहमाविश्य चिक्रणः। अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना ।।' इति कौर्मोक्तेः । 'स्वायनेऽम्भिसि' इति पाठे स्वायने स्वस्यायने आश्रयेऽम्भिस शिशियिषोर्ब्रह्मण इति श्रीनारायणणेनाभेदविलक्षयोक्तमित्यवगन्तव्यम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

एकार्णव के समय में जब भगवान् नारायण शयन करते हैं उस समय त्रैलोक्य को समेट कर श्रीभगवान् के भीतर शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी उनमें प्रवेश करने लगे उस समय उनके नि:श्वास के साथ मैं भी श्रीभगवान् में प्रवेश कर गया । कूर्म पुराण में कहा भी गया है ततोऽवतीर्य इत्यादि अर्थात् उस समय अवतीर्ण होकर ब्रह्मजी चक्रधारी भगवान् के शारीर में प्रवेश करके भगवान् विष्णु के साथ एकात्मकता को प्राप्त करके वैष्णवी निद्रा में सो गये । जहाँ पर स्वायनेऽम्भिस यह पाठ है वहाँ पर अपने आश्रय जल में ब्रह्माजी के यह अर्थ होगा। भगवान् नारायण से अभेद को बतलाने की इच्छा से ऐसा कहा गया है, यह समझना चाहिए ॥३०॥

सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः । मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जित्ररे ॥३१॥

अन्वयः सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थाय इदं सिसृक्षृत: प्राणेभ्य: मरीरीचिमिश्रा: ऋषय: अहं च जिज्ञरे ।।३१।।

अनुवाद— एक हजार युग बीत जाने के पश्चात् जब ब्रह्मजी जगे तो उन्होंने जगत् की सृष्टि की; उस समय उनके प्राणों से मरीचि आदि ऋषिगण और मैं भी प्रकट हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेभ्य इन्द्रियेभ्यः अहं मरीचिमिश्रास्तन्मुख्या ऋषयश्च जिज्ञरे ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी पूरे एक हजार चतुर्युगी पर्यन्त सोते रहे उसके पश्चात् जब वे जगे उस समय उनकी सृष्टि करने की इच्छा हुयी । उसी समय उनके प्राणों अर्थात् इन्द्रियों से मरीचि जिनमें प्रधान थे वे सभी ऋषिगण उत्पन्न हो गये ।।३१।।

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्रहन्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥

अन्वयः— महाविष्णोः अनुग्रहात् क्वचित् अविघात गतिः अस्कन्दित व्रतः अहम् त्रीन् लोकान् अन्तर्बहिश्च पर्येमि ।।३२।।

अनुवाद भगवान् महाविष्णु की कृपा प्राप्त होने के कारण अप्रतिहत गति वाला मैं तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला मैं तीनों लोकों के भीतर तथा उससे बाहर वैकुण्ठ आदि लोकों में भ्रमण करता रहता हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— ये कर्मिणस्ते बहिर्न यान्ति । ये तपआदिभिर्ब्रह्मलोकं गतास्तेऽन्तर्न यान्ति । अहं तु महाविष्णोरनुग्रहादखण्डितब्रह्मदेवेनेश्वरेण दत्ताम् । स्वराः 'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवतपञ्चमा' इति सप्त एव ब्रह्म, ब्रह्माभिव्यञ्जकत्वात् । तेन विभूषिताम् । स्वतः सिद्धसप्तस्वरामित्यर्थः मूर्च्छियत्वा मूर्च्छनालापवतीं कृत्वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा है कि मैं भ्रमण करता रहता हूँ किन्तु उस भ्रमण का उद्देश्य क्या है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की आज्ञा से संसार के जीवों का कल्याण करने के लिए भ्रमण करता रहता हूँ। यह चार श्लोकों से नारदजी ने कहा है। देवेन दत्ताम् यह देवदत्ताम् पद का विग्रह है। यहाँ देव शब्द ईश्वर का वाचक है। अर्थात् ईश्वर के द्वारा प्रदत्त जो स्वर ब्रह्म से विभूषित है, निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम धैवत तथा पञ्चम ये सात स्वर ब्रह्माभिव्यञ्जक हैं, उन सबों से विभूषित अर्थात् स्वाभाविक रूप से सात स्वरों से सिद्ध इस वीणा को मूर्छना के आलाप से युक्त करके मैं भ्रमण करता हूँ ॥३३॥

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः । आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥

अन्वयः— स्ववीर्याणि प्रगायतः तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूत इव मे चेतसि शीघ्रं दर्शनं याति ।।३४।।

अनुवाद जब उन श्रीभगवान् की लीलाओं का मैं गान करता हूँ उस समय तीर्थपाद तथा प्रियश्रवा श्रीभगवान् मेरे अन्त:करण में प्रवेश करके मुझे शीघ्र ही दर्शन दे देते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

स्वप्रयोजनमाह- प्रगायत इति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अपने लीला गायन का प्रयोजन बतलाते हुए नारदजी ने कहा कि मैं श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन करते रहता हूँ। श्रीभगवान् को तीर्थपाद इसलिए कहा गया है कि उनके चरण कमल तीर्थों के समान अत्यन्त पवित्र हैं और सबों को पवित्र बनाने का काम करते हैं। उनको अपनी लीलाये अत्यन्त प्रिय है। उनको सुनकर श्रीभगवान् नारदजी के अन्त:करण में प्रवेश करके शीघ्र ही उनको दर्शन देने लगते हैं।।३४।।

एतब्ह्यातुरिचत्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः । भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥३५॥

अन्वयः मुहुः मात्रा स्पर्शेच्छया आतुरचितानाम् एतद्धि हरिचर्यानुवर्णनम् भवसिन्धु प्लवः दृष्टः ।।३५।।

अनुवाद — बार-बार विषयोपभोग की इच्छा से जिनका मन चञ्चल बना रहता है उन लागों को इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीहरि की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान हैं यह मेरा अपना अनुभव हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

परप्रयोजनमाह- एतद्धीति । मात्रा विषयास्तेषां स्पर्शा भोगास्तेषामिच्छया आतुराणि चित्तानि येषां तेषां हरिचर्यानुवर्णनं यदेतदेव भवसिन्धौ प्लवः पोतः । न केवलं श्रुतिप्रामाण्येन किंत्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां दृष्ट एवेत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की लीलाओं के गायन से सिद्ध होने वाले दूसरों के प्रयोजन को नारदजी ने एतिन्द इत्यादि एलोक से कहा है। बार-बार विषयों का भोग करने की इच्छा से जिन लोगों का चित्त व्याकुल बना रहता है, उन लोगों के इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान है। इस अर्थ की सिद्धि केवल श्रुति प्रमाण के ही द्वारा नहीं होती है; अपितु अन्वय व्यतिरेक के द्वारा भी इस अर्थ की सिद्धि होती है।।३५॥

यमादिभियोंगपथैः कामलोभहतो मुहुः । मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माऽद्धा न शाम्यति ॥३६॥

अन्वयः मुहु कामलोभहतः आत्मा मुकुन्दसेवया शाम्यित तथा यमादिभिः योगपथैः न शाम्यित ।।३६।। अनुवाद बार-बार काम लोभ आदि से संतप्त आत्मा जिस तरह से श्रीभगवान् की सेवा से शान्त होती है उस तरह से यम नियम आदि योग के द्वारा नहीं शान्त होती है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवेत्युक्तमवधारणमनुभवेन द्रढयति– यमादिभिरिति । यमादिभिस्तथा न शाम्यति । यद्वन्मुकुन्दसेवयाऽद्धा साक्षादात्मा मनः शाम्यति । कथंचिन्मुकुन्दसेवामात्रेण शाम्यति किं पुनस्तद्रुणवर्णनेनेति भावः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

एतदेव इत्यादि श्लोक के द्वारा कहे गये निश्चय का अनुभव के द्वारा सुदृढ करते हुए यमादिभि: इत्यादि श्लोक से कहते हैं। यमादि योगरूपी साधनों के द्वारा आत्मा को उतनी शान्ति नहीं मिलती है। जितनी शान्ति श्रीभगवान् की किसी तरह भी की गयी सेवा से होती है। श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने पर तो क्या कहना है ?।।३६।।

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ । जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥३७॥

अन्वयः— हे अनघ ! अहं त्वया यत् पृष्टः तदिदं भवतः आत्मतोषणं मे जन्म कर्मरहस्यम् सर्वं आख्यताम् ।।३७।। अनुवाद— आपने मुझसे जो कुछ पूछा था उन आपकी आत्मा को सन्तोष दिलाने वाले अपने जन्म तथा कर्मी के सम्पूर्ण रहस्यों का मैंने वर्णन कर दिया ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

भवतो मनःपरितोषकं चाख्यातम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

आपने मुझसे मेरे जन्म तथा रहस्यों के विषय में प्रश्न किया था। उन सारी बातों का वर्णन मैंने आपके मन के सन्तोष के लिए किया है ॥३७॥

सूत उवाच

एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् । आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥३८॥

अन्वयः— एवं सम्भाष्य वासवीसुतम् आमन्त्र्य यादृच्छिकः मुनिः भगवान् नारदः वीणां रणयन् ययौ ।।३८।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से सारी बातें कहकर सत्यवती के पुत्र व्यासजी से विदा लेकर अपना कोई भी सङ्कल्प तथा प्रयोजन नहीं होने के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न नारद मुनि वीणा बजाते हुए चले गये ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आमन्त्र्यानुज्ञाप्य । यादृच्छिक: स्वप्रयोजनसङ्कल्पशून्य: ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी से उपर्युक्त सारी बातों को करके नारदजी व्यासजी से विदा माँगे और बीणा बजाते हुए वे स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने के लिए चल पड़े ॥३८॥

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः । गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्याय: ॥६॥

अन्वय:— अहो अयं देवर्षि: धन्य: यत् तन्त्र्या शार्ङ्गधन्वनः कीर्ति गायन् माद्यन् आतुरं जगत् रमयित ।।३९।। अनुवाद— अरे ये देवर्षि धन्य हैं, क्योंकि वीणा बजाकर श्रीभगवान् के यश को गाते हुए आनन्द मग्न होते हैं और इस सन्ताप सन्तप्त जगत् को आनंदित करते हैं ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के व्यासनारदसंवाद के अन्तर्गत छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

हरिकथागायकनारदभाग्यं श्लाघते- अहो इति । माद्यन् हष्यन् । तन्त्र्या वीणया ।।३९।। इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्याय: ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की कथा का गान करने वाले नारदजी की प्रशंसा करते हुए अहो इत्यादि श्लोक को कहा गया है। हृष्यन् पद का अर्थ है प्रसन्न होते हैं। तन्त्र्या का अर्थ है वीणा के द्वारा इस श्लोक में सूतजी नारदजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि नारदजी धन्य हैं, क्योंकि वे वीणा बजा-बजाकर श्रीभगवान् की लीलाओं को गाते हैं और आनन्दित होते हैं और संताप-संतप्त इस जगत् को भी आनन्दित करते हैं। 13 ९ 11

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य की भावार्थ दीपिका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।६।।



सातवाँ अध्याय

अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का वध तथा अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन शौनक उवाच

निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः । श्रुतवांस्तदिभप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥१॥

अन्वयः— हे सूत ! भगवान् बादरायणः तदिभिप्रेतं श्रुतवान् ततः नारदे निर्गते स विभुः किम् अकरोत् ।।१।।
शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद हे सूतजी ! भगवान् बादरायण ने नारदजी के अभिप्राय को सुना, उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो फिर व्यासजी ने क्या किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

अथ भागवतश्रोतुर्जन्म वक्तुं परीक्षितः । सुप्तबालवधाद्द्रौणेर्दण्डः सप्तम उच्यते ।।१।। तस्य नारदस्याभिप्रेतं श्रुतवान् सन् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् इस सातवें अध्याय में भागवत के श्रोता महाराज परीक्षित् के जन्म और कर्म को बतलाने

के लिए सोए हुए द्रौपदी के बालकों का वध करने वाले अश्वत्थामा को अर्जुन द्वारा दिण्डत किए जाने का वर्णन किया जा रहा है। उपर्युक्त प्रकार से व्यासजी ने नारदजी के अभिप्राय को जान लिया और उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो व्यासजी ने क्या किया ? यह शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा ॥१॥

सूत उवाच

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे । शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां पश्चिमे तटे ऋषीणां सत्रवर्धनः शम्याप्रास इति आश्रमः प्रोक्तः ।।२।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्मनदी सरस्वती के पश्चिम तट पर शम्याप्रास नामक आश्रम है। वहाँ ऋषियों का सत्र निरन्तर चलता रहता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मनद्यां ब्रह्मदैवत्यायां ब्राह्मणैराश्रितायां च । सत्रं कर्म वर्धयतीति तथा ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सरस्वती नदी के अधिष्ठातृ देवता ब्रह्माजी हैं । उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है । वहीं पर शम्याप्रास नामक एक आश्रम है । उस आश्रम में सत्रकर्म (यज्ञकर्म) चलता ही रहता है ॥२॥

तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीषण्डमण्डिते । आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥

अन्वयः— बदरीषण्डमण्डिते स्वे आश्रमे अपः उपस्पृश्य आसीनः व्यासः स्वयम् मनः प्रणिदध्यौ ।।३।।

अनुवाद— बेर के वन से अलंकृत अपने उसी आश्रम में जल का आचमन करके अपने आश्रम में बैठे हुए व्यासजी ने स्वयं अपने मन को समाहित किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते । मनः प्रणिदध्यौ स्थिरीचकार । समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् इति नारदोपदिष्टं ध्यानं कृतवानित्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उस शम्याप्रास आश्रम में ही व्यासजी का आश्रम था। वह बेर के पेड़ों के समूह से अलंकृत था। नारदजी के चले जाने के पश्चात् व्यासजी ने जल का अचमन किया फिर बैठ कर उन्होंने अपने मन को स्थिर किया और नारदजी ने यह जो कहा था कि समाधि के द्वारा आप श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण करें। उसी के अनुसार उन्होंने ध्यान किया। बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते यह बदरीषण्ड मण्डित पद का विग्रह हैं।।३।।

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले । अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदुपाश्रयाम् ॥४॥

अन्वयः— भक्तियोगेन अमले मनसि सम्यक् प्रणिहिते पूर्वं पुरुषं तदुपाश्रयां मायां च अपश्यत् ।।४।।

अनुवाद— भक्तियोग के द्वारा निर्मल मन के स्थिर हो जाने पर व्यासजी ने आदि पुरुष परमात्मा और उनके अधीन रहने वाली माया को देखा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रणिहिते निश्चले । अत्र हेतु:- भक्तियोगेनामले । पूर्व प्रथमं पुरुषमीश्वरमपश्यत् । **पूर्णम्** इति वा पाठ: । तदुपाश्रयामीश्वराश्रयां तदधीनां मायां चापश्यत् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जब व्यासजी ने ध्यान किया उस समय भिक्त की भावना के कारण उनका मन निर्मल हो गया था और उनका मन पूर्ण रूप से एकाग्र हो गया। उसके फलस्वरूप व्यासजी ने पहले आदि पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार किया और उसके साथ ही श्रीभगवान् के अधीन रहने वाली माया का भी साक्षात्कार किया। व्यासजी का मन पूर्ण रूप से निश्चल इसलिए हो गया कि उनका मन भिक्तयोग के कारण निर्मल हो गया था।।४।।

यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥५॥

अन्वय:— यया, सम्मोहितो जीव: परोऽपि आत्मानं त्रिगुणात्मकम् मनुते तत्कृतम् अनर्थं च अभिपद्यते ।।५।। अनुवाद— उस माया से ही मोहित होने के कारण तीनों गुणों से रहित होने पर भी जीव अपने को त्रिगुणात्मक मान लेता है और उसके कारण होने वाले अनर्थों को भी भोगता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ईशमायाकृतां च जीवानां संसृतिमपश्यदित्याह- ययेति । यया संमोहितः स्वरूपावरणेन विक्षिप्तः परोऽपि गुणत्रयाद्यतिरिक्तोऽपि तत्कृतं त्रिगुणत्वाभिमानकृतमनर्थं च कर्तृत्वादिकं प्राप्नोति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी ने परमात्म की माया से निर्मित सृष्टि को देखा, इस बात को यया इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है। माया अपनी आवरण शक्ति के द्वारा जीवों को मोहित कर देती है। उसका स्वरूप ढँक जाता है। और फिर वह जगत् का विस्तार करती है। जीव यद्यपि माया से परे है। फिर भी वह माया से मोहित होने के कारण अपने में त्रिगुणात्मकत्व का अभिमान कर लेता है। फलत: वह अपने में कर्तृत्व आदि को प्राप्त कर लेता है।।५।।

अनर्थोपशमं साक्षाद्धक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥६॥

अन्वय:— अजानतो लोकस्य अनर्थोपशमं अधोक्षजे साक्षात् भक्तियोगम् विद्वान् सात्त्वतसंहिताम् चक्रे ।।६।। अनुवाद— अज्ञानी संसार के अनर्थों को शान्त करने का साधन श्रीभगवान् में की जाने वाली भक्ति है, इस बात को जानने वाले व्यासजी ने इस सात्वतसंहिता श्रीमद्भागवत की रचना की ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अनर्थमुपशमयित योऽघोक्षजे साक्षाद्धित्तयोगस्तं चापश्यत् । एतत्सर्व स्वयं दृष्ट्वा एवमजानतो लोकस्यार्थे सात्वसंहितां श्रीभागवताख्यां चक्रे । तदनेन श्लोकत्रयेण भागवतार्थः संक्षेपतो दर्शितः । एतदुक्तं भवित- विद्याशक्त्या मायानियन्ता नित्याविर्भूतपरमानन्दस्वरूपः सर्वज्ञः सर्वशिक्तरीश्वरस्तन्मायया संमोहितस्तिरोभूतस्वरूपस्तिद्वपरीतधर्मा जीवस्तस्य चेश्वरभक्त्या लब्धज्ञानेन मोक्ष इति तदुक्तं विष्णुस्वामिना 'ह्लादिन्या संविदाशिलष्टः सिच्चदानन्द ईश्वरः । स्वाविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः।।' तथा 'स ईशो यद्वशे माया स जीवो यस्तयार्दितः । स्वाविर्भूतपरानन्दः स्वाविर्भूतसुदुःखभूः। स्वावृत्रश्वविपर्यासभवभेदजभीशुचः । यन्मायया जुषन्नास्ते तिममं नृहिरं नुमः ।।' इत्यादि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् में की गयी भिक्त अनर्थ का नाश कर देती है उस भिक्त का भी व्यासजी ने साक्षात्कार किया। इन सारी बातों को स्वयं देखकर तथा इस बात को नहीं जानने वाले संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत नाम की सात्वत-संहिता का निर्माण किया इस तरह इन तीन श्लोकों द्वारा श्रीमद्भागवत के अर्थ का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

एतदुक्तं भवति- कहने का अभिप्राय है कि नित्य ही आविर्भूत स्वरूप वाले परमानन्द स्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर

विद्या शक्ति के द्वारा माया का नियमन करते हैं। परमात्मा की माया से जिसका स्वरूप तिरोहित हो जाता है, ईश्वर के विपरीत धर्म वाला जीव इस ईश्वर की भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

तदुक्तं विष्णुस्वामिना॰ इत्यादि विष्णु स्वामी ने कहा भी है ह्लादिन्या॰ इत्यादि अर्थात् ईश्वर सिच्चिदानन्द स्वरूप (विशिष्ट) हैं और सम्पूर्ण क्लेश समूह के आश्रयभूत जीव अपनी ही अविद्या (अज्ञान) से तिरोहित स्वरूप वाला है। और यह भी कहा गया है कि जिसके अधीन माया रहती है वही ईश्वर है तथा जो माया के द्वारा मोहित किया जाता है, वही जीव है। ईश्वर का अपना परमानन्द आविर्भूत रहता है और जीव अपने में आविर्भूत सुख-दु:ख का आश्रय होता है। अपनी दृष्टि जन्य विपर्यास के कारण ही संसार में प्रतीत होने वाले भेद तज्जन्य भय तथा शोक होते है। यन्मायया॰ जिस परमात्मा की माया का जीव प्रेम पूर्वक सेवन करता है उन भगवान् नृसिंह को हम नमस्कार करते हैं ॥६॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे । भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥

अन्वयः - यस्यां श्रूयमाणायां वै पुसः परमपुरुषे कृष्णे शोकमोहभयापहा भक्तिः उत्पद्यते ।।७।।

अनुवाद— उस भागवत संहिता का श्रवण कर लेने पर निश्चित रूप से मनुष्य की परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में ऐसी भक्ति उत्पन्न हो जाती है जो शोक-मोह तथा भय को विनष्ट करने वाली होती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

संहिताया अनर्थोपशामकत्वं दर्शयति- यस्यामिति । यस्यां वै श्रूयमाणायामेव, किं पुनः श्रुतायामित्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यस्यां वै० इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि श्रीमद्भागवत नामक संहिता सभी अनर्थों को विनष्ट कर देती है । यस्यां वैश्रूयमाणायाम् के द्वारा यह बतलाया गया है कि जब श्रीमद्भागवत संहिता सुनते समय ही अनर्थों को विनष्ट कर देती है तो फिर सुन लेने पर क्या कहना है ?॥७॥

स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् । शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥

अन्वयः सः मुनिः भागवतीम् संहितां कृत्वा च निवृत्तिनिरतं आत्मजम् शुकम् अनुक्रम्य अध्यापयामास ॥८॥

अनुवाद — वे महर्षि व्यास भागवती संहिता का निर्माण करके निवृत्ति मार्ग को अपनाये हुए अपने पुत्र शुकदेवजी को संशोधित करके पढ़ाये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्रम्य शोधयित्वा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अनुकम्य का अर्थ है शोधित करके ॥८॥

शौनक उवाच

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः । कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥

अन्वयः— स वै मुनिः निवृत्ति निरतः सर्वत्रोपेक्षकः आत्मारामः कस्य वा (हेतोः) एताम् बृहतीं (संहिताम्) समभ्यसत् ।।९।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— वे शुकदेव मुनि तो निवृत्ति परायण, सभी वस्तुओं में उपेक्षा बुद्धि रखने वाले तथा अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले थे फिर वे किसलिए इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किये ?॥९॥

भावार्थ दीपिका । अन्य अन्य अन्य के देश अन्य

कस्य वा हेतो: । बृहतीं वितताम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कस्य वा के पश्चात् हेतोः पद का अध्याहार करना चाहिए । बृहतीम् पद का अर्थ है विस्तृत अर्थात् शुकदेवजी जब आत्माराम थे निवृत्ति मार्ग के पथिक थे तथा सर्वत्र उपेक्षा बुद्धि रखते थे फिर उनको इस विस्तृत संहिता का अध्ययन करने की कौन सी आवश्कता पड़ी ?॥९॥

सूत उवाच

आत्मारामाश्च मुनयो निर्प्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥१०॥

अन्वय: आत्मारामा निर्ग्रन्था अपि मुनय ऊरुक्रमे अहैतुकीं भक्तिं कुर्वन्ति हरिः इत्थंभूतगुणः ।।१०।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद आत्मा में ही रमण करने वाले तथा जिनके अज्ञान की गाँठ खुल गयी है ऐसे ज्ञानी पुरुष श्रीभगवान् की बिना किसी प्रयोजन के ही भक्ति करते हैं, क्योंकि श्रीहरि के गुण ही ऐसे हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

निर्ग्रन्थाः ग्रन्थेभ्यो निर्गताः । तदुक्तं गीतासु- यदा ते मोहकिललं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।' इति । यद्वा ग्रन्थिरेव ग्रन्थः (निवृत्तः क्रोधाहंकाररूपो ग्रन्थिर्येषां ते) निवृत्तहृदयग्रन्थय इत्यर्थः । ननु मुक्तानां कि भक्त्येत्यादिसर्वाक्षेपपरिहारार्थमाह- इत्यंभूतगुण इति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

निर्ग्रन्थाः शब्द अर्थ है कि जो अहङ्कार की ग्रन्थियों से रहित हैं। श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् ने स्वयं भी कहा है यदा ते इत्यादि अर्थात् जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ को पार कर जायेगी तब ही तुम संसार सागर को पार कर पाओगे। अथवा ग्रन्थि ही ग्रन्थ है। अर्थात् जिनके हृदय की ग्रन्थियाँ समाप्त हो चुकी हैं। ऐसे भी ज्ञानी पुरुष भगवान् की भिक्त करते हैं। ननु मुक्तानाम् अर्थात् जो ज्ञानी-पुरुष जीवन मुक्त हो चुके हैं, उन लोगों को भिक्त से क्या लाभ है? इस तरह के सभी आक्षेपों के परिहार के लिए कहा गया है कि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं कि वे मुक्तों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।।१०।।

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः । अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥

अन्वयः हरेर्गुणाक्षिप्तमितः नित्यं विष्णुजनप्रियः भगवान् बादरायणिः महदाख्यानम् अध्यगात् ।।११।।

अनुवाद श्रीहरि के गुणों से आकृष्टबुद्धि वाले तथा सदा भगवान् के भक्तों से प्रेम करने वाले, महाज्ञानी महर्षि बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु भक्तिं कुर्वन्तु नाम, एतच्छास्नाभ्यासे शुकस्य किं कारणिमत्यत आह- हरेरिति । अध्यगादधीतवान् । विष्णुजनाः प्रिया यस्येति । व्याख्यानादिप्रसङ्गेन तत्सङ्गतिकाम इति भावः । एतेन तस्य पुत्रो महायोगी इत्यादिना शुकस्य व्याख्याने प्रवृत्तिः कथमिति यत्पृष्टं तस्योत्तरमुक्तम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि मुक्त जीव भी भगवान् की भिक्त करते हैं तो ठीक है उसका कारण क्या हैं ? तो इसके उत्तर में **हरेर्गुणाक्षिप्त** इत्यादि श्लोक कहते है । अध्यगात् पद का अर्थ है अध्ययन किया । विष्णुजन-प्रिय: का विग्रह है। विष्णुजनाः प्रियाः यस्य । अर्थात् व्याख्यान आदि के प्रसङ्ग में भागवतों की सङ्गित की कामना होने के कारण उन्होंने इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किया। इस कथन के द्वारा शौनक महर्षि ने यह जो पूछा था कि उनके पुत्र महायोगी शुकदेवजी की प्रवचन करने में प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर दिया गया।।११।। परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥

अन्वयः अथ राजर्षेः परीक्षितः जन्म कर्म विलायनम् पाडुपुत्राणां संस्थां कृष्णकथोदयं च वक्ष्ये ।।१२।।
अनुवाद हे शौनक जी ! मैं राजर्षि राजा परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा मुक्ति, पाण्डवों के स्वर्गारोहण
तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं के प्रारम्भ का वर्णन करूँगा ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यदन्यत्पृष्टं परीक्षितः प्रायोपवेशन श्रवणं कथमिति 'तस्य जन्म महाश्चर्यम्' इत्यादिना तस्योत्तरं वक्तुमाह- परीक्षित इति । विलायनं मुक्तिं मृत्युं वा । संस्थां महाप्रस्थानम् । श्रीकृष्णकथानामुदयो यथा भवति तथा ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यह जो पूछा गया था कि राजा परीक्षित मारण काल पर्यन्त उपवास का व्रत लेकर क्यों बैठे थे, उन्होंने भागवत संहिता श्रवण कैसे किया, उनके रहस्यमय जन्म और कर्म रूपी महा आश्चर्य का वर्णन करें इत्यादि का उत्तर देने के लिए परीक्षितोऽथ इत्यादि श्लोक कहा गया है। विलायन शब्द से मुक्ति अथवा मोक्ष को कहा गया है। संस्था से महाप्रस्थान को कहा गया है। और इन सबों से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का उदय कैसे होता है? उसको हम बतलायेंगे ॥१२॥

यदा मृघे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु । वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥ भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि । उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥१४॥

अन्वयः— यदा मृधे कौरवसृञ्जयानाम् वीरगितं गतेषु, अथो वृकोदराविद्ध गदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे, भर्तुः प्रियं स्म इति पश्यन् द्रौणिः स्वपतां कृष्णा-सुतानां शिरांसि उपाहरत् तत् तस्य विप्रियमेव तत् जुगुप्सितं कर्म सर्वे विगर्हयन्ति ।।१३-१४।।

अनुवाद जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेना के अनेक वीरों की युद्ध में मृत्यु हो गयी थी उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से घृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जंघाएँ टूट चुकी थीं उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिर को काटकर दुर्योधन को दिखाया, वह दुर्योधन को अप्रिय ही लगा क्योंकि ऐसे निन्दित कार्य की सबलोग निन्दा ही करते हैं ।।१३-१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र परीक्षितो जन्म निरूपियष्यत्रादौ तावद्गर्भस्थ एवाश्वत्थाम्रो ब्रह्मास्रात्कृष्णेन रक्षित इति वक्तुं कथां प्रस्तौति- यदेत्यादिना। यदा द्रौणिरश्वत्थामा कृष्णासुतानां द्रौपदीपुत्राणां शिरांस्युपाहरत्तदा तन्माताऽरुदत्तां च सान्त्वयन्किरीटमाल्यर्जुन आहेति तृतीयेनान्वय:। किमिति बालानां शिरास्यानीतवानित्यपेक्षायामाह । मृधे युद्धे । यद्यपि पाण्डवा अपि कौरवा एव तथापि सृञ्जयवंशजो धृष्टद्युम्नः सेनापितरिति सृञ्जयानामित्युक्तम् । वीरगितं स्वर्गम् । अथो अनन्तरम् । वृकोदरेणाविद्धायाः क्षिप्ताया गदाया अभिमर्शेनाभिघातेन भग्नावुरुदण्डौ यस्य तथाभूते घृतराष्ट्रपुत्रे दुर्योधने सित ।।१३।। भर्तुर्दुर्योधनस्य । स्मेति वितर्के । इत्येवं प्रियं स्यादिति पश्यन्। तस्य तद्विप्रियमेवेति वाक्यान्तरम् । विप्रियत्वे हेतुः जुगुप्सितमिति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

परीक्षित् के जन्म का निरूपण करने की इच्छा से सर्वप्रथम गर्भ में ही विद्यमान परीक्षित् की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा भगवान् श्रीकृष्ण ने की इस कथा को बतलाने के लिए यदा मृथे इत्यादि श्लोक को कहा गया है । जब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों का शिर काट दिया । उस समय उन सबों की रोती हुयी माता द्रैपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा मैं अश्वत्थामा का शिर काटकर लाऊँगा । किमिति इत्यादि प्रश्न है कि अश्वत्थामा पुत्रों का शिर क्यों काटकर दुर्योधन के पास लाया ? इस प्रकार की आशङ्का होने पर कहा यदा मृथे इत्यादि मृथे का अर्थ है युद्ध में । यद्यपि पाण्डव भी कुरुवंशीय ही थे फिर भी पाण्डवों की सेना के सेनापित सृज्य वंशीय घृष्टचुम्न थे इसीलिए पाण्डवों को सृज्ञयानाम् कहा गया है । वीरगित गतेषु का अर्थ है स्वर्ग में चले गये थे । उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जङ्घायें टूट गयी थीं । उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिरों को काटकर दुर्योधन के समक्ष लाया । वह दुर्योधन को बुरा ही प्रतीत हुआ । बुरा लगने का कारण था कि उसने यह निन्दित कार्य किया था ।

श्लोक के अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है। **वृकोदराविद्धगदाभिमर्श भग्नोरुदण्डे** पद का विग्रह इस प्रकार हैं। वृकोदरेण भीमेन, अविधायाः क्षिप्तायाः गदायाः अभिमर्शेन अभिघातेन भाग्नौ उरूदण्डौ यस्य । चौदहवें श्लोक में प्रयुक्त स्म अव्यय वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है।।१३-१४।।

माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना । तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥१५॥

अन्वयः— तदा शिशूनां सुतानां निधनं निशम्य घोरं परितप्यमाना वाष्पकलाकुलाक्षी माता अरुदत् तां सान्त्वयन् किरीटमाली आह ।।१५।।

अनुवाद— अपने पुत्रों की मृत्यु को सुनकर अत्यन्त सन्तप्त होती हुयी उन सबों की माता द्रौपदी की आँखों में आँसू भर गये थे और वह रोने लगी। द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

घोरं दुःसहं यथा भवति । वाष्पस्य कलाभिर्विन्दुभिराकुले अक्षिणी यस्याः । किरीटस्यैकत्वेऽपि तदग्राणां बहुत्वात्किरीटमालीत्युक्तम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पुत्रों की मृत्यु द्रौपदी के लिए असह्य थी इस अर्थ को सूचित करने के लिए **घोरम्** पद का प्रयोग किया गया है। वाष्पस्य कलाभि: विन्दुभि: आकुले अक्षिणी यस्याः सा यह वाष्पकलाकुलाक्षी पद का विग्रह है किरीट के एक होने पर भी उसके अग्रभाग अनेक थे अतएव अर्जुन किरीटमाली हैं।।१५॥

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्बह्यबन्धोः शिर आततायिनः । गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्घपुत्रा ॥१६॥

अन्वयः— भद्रे ! ते शुचः तदा प्रमृजामि यदा आततायिनः ब्रह्मबन्धोः शिरः गाण्डीवमुक्तैः विशिखैः उपाहरे दग्ध पुत्रा त्वम् यत् आक्रम्य स्नास्यिस ।।१६।।

अनुवाद कल्याणि ! तुम्हारे शोक का अपनोदन मैं तब करूँगा जब कि उस आततायी ब्राह्मणाधम के

शिर को गाण्डीव धनुष से छोड़े गये बाणों से काटकर लाऊँगा और पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात् तुम उस शिर पर पैर रखकर स्नान करोगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि । प्रमृजामि परिमार्जयामि । यद्यदा ब्रह्मबन्धोर्ब्राह्मणाधमस्य आततायिन इति 'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ।' इति स्मरणादत्राततायी शस्त्रपाणिस्तेन च पुत्रहन्तृत्वं लक्ष्यते। गाण्डीवाद्भनुषो मुक्तैर्विशिखैर्बाणैरुपाहरे त्वत्समीपमानयामि । यच्छिर आक्राम्यासनं विधाय । दग्धपुत्रा सती ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

शुच शब्द से शोकजन्य आंसुओं को कहा गया है। प्रमृजामि का अर्थ है दूर करूँगा। यत् शब्द यदा का बोधक है। ब्रह्म बन्धु का अर्थ है अधम ब्राह्मण। आततायियों का निरूपण करते हुए कहा गया है। अग्निदो गरदश्चेव इत्यादि अर्थात् दूसरों के घर में आग लगाने वाले, दूसरे को विष खिलाकर मार डालने वाले, दूसरों पर प्रहार करने के लिए सदा हाथ में शस्त्र धारण किए रहने वाले, दूसरों के धन को चुराने वाले, दूसरे के खेत का अपहरण करने वाले तथा दूसरों की पत्नी को छीन लेने वाले ये छहो आततायी है। यहाँ पर आततायी शब्द से हाथ में शस्त्र धारण करके पुत्रों को मारने के कारण अश्वत्थामा को आततायी कहा गया है। गाण्डीवाद् धनुषो इत्यादि गाण्डीव धनुष से छोड़ गये बाणों से अश्वत्थामा के शिर को काटकर तुम्हारे पास लाऊँगा और उस पर तुम अपने पैरों को रखकर अपने पुत्रों को जलाने के पश्चात् स्नान करोगी ॥१६॥

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः । अन्वाद्रवद्दंशित उप्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥१७॥

अन्वयः— इति वल्गुविचित्रजल्पै प्रियां सान्त्वयित्वा अच्युतिमत्रसूतः दंशितः उग्रधन्वा किपध्वजः रथेन गुरुपुत्रं अन्वाद्रवद् ।।१७।।

अनुवाद इस तरह की मनोहर तथा विचित्र बातों से प्रिय पत्नी द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करके जिनके मित्र तथा सारिथ भगवान् श्रीकृष्ण हीं है ऐसे कवच बाँधे हुए तथा भयङ्कर धनुष धारण किए हुए अर्जुन ने रथ के द्वारा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा का पीछा किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वल्गवो रम्या विचित्रा जल्पा भाषणानि तै: । सोऽर्जुन: । अच्युत एव मित्रं सूतश्च यस्य । दंशितो बद्धकवच: । उग्रं धनुश्चापं यस्य । कपिर्हनुमान् ध्वजे यस्य स: । गुरो: पुत्रं रथेनान्वाद्रवदन्वधावत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुनने उपर्युक्त प्रकार के मनोज्ञ तथा अब्दुत बातों से अपनी पत्नी द्रौपदी को सान्त्वाना प्रदान की और भगवान् श्रीकृष्ण रूपी मित्र और सारिथ वाले अर्जुन ने कवच बाँधकर तथा भयङ्कर धनुष धारण करके रथ पर सवार होकर अश्वत्थामा का पीछा किया।

वल्गुविचित्रजल्पैः का विग्रह वल्गवः रम्याः विचित्रा जल्पा भाषणानि तैः है । अच्युतमित्रसूतः पद का विग्रह अच्युत एव मित्रम् सूतश्च यस्य है । अर्जुन को किपध्वज इस लिए कहा जाता है कि अर्जुन के ध्वज पर हनुमानजी सदा विराजमान रहते थे । 'उग्नं' धनुर्यस्य सः यह उग्रधन्वा पद का विग्रह है ॥१७॥

> तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्रमना रथेन । पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्या यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥१८॥

अन्वयः रथेन आपतन्तं तं दूरात् विलक्ष्य उद्विग्नमनाः स कुमारहा, रुद्रभयाद् को यथा यावद्गमं उर्व्यां पराद्रवत्।।१८।। अनुवाद रथ से पीछा करने वाले अर्जुन को दूर से ही देखकर भयभीत तथा बच्चों को मारने वाले अश्वत्थामा अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा से रुद्र के भय से भागने वाले ब्रह्माजी के समान पृथिवी पर उतने दूर तक भागा जितना वह भाग सकता था ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आपतन्तमाधावन्तम् । स द्रौणिः । कुमारहा बालघाती । उद्विग्रमनाः कम्पितहृदयः । प्राणपरीप्सुः प्राणान् लब्धुमिच्छुर्न तु कीर्तिम् । यावद्गमं यावद्गन्तुं शक्यं तावदुर्व्यां पराद्रवदपलायत । को ब्रह्मा मृगो भूत्वा सुतां जब्धुमुद्यतः सन् रुद्रस्य भयाद्यथा पलायते स्म । 'अर्क' इति पाठे वामनपुराणकथा सूचिता । तथा हि विद्युन्माली नाम कश्चिद्राक्षसो माहेश्वरस्तस्मै रुद्रेण सौवर्ण विमानं दत्तम्, ततोऽसावर्कस्य पृष्ठतो भ्राम्यन्विमानदीप्त्या रात्रिं विलोपितवान्, ततोऽर्केण निजतेजोभिर्द्रावियत्वा तद्विमानं पातितम्, तच्छुत्वा कुपिते रुद्रे भयादर्कः पराद्रवत्, ततो रुद्रस्य क्रूरदृष्ट्या दन्दद्यमानः पतन्वाराणस्यां पतितो लोलार्कनाम्ना विद्यात इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

पीछा करते हुए अर्जुन को दूर से ही देखकर द्रोणाचार्य का पुत्र जो बालघाती था वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता था, अपनी कीर्ति की नहीं जितना दूर तक वह भाग सकता था उतने दूर तक भागा।

रुद्रभयात् कः का अर्थ है कि ब्रह्मा जब मृग का रूप धारण करके अपनी पुत्री के साथ ही सङ्गम करने के लिए तैयार हो गये थे उस समय क्रुद्ध रुद्र को देखकर भाग चले । जहाँ पर रुद्रभयाद् यथार्कः यह पाठ है तो उसके द्वारा वामन पुराणकी निम्नाङ्कित कथा सूचत होती है ।

विद्युन्माली नामक एक राक्षस था वह रुद्र का भक्त था। प्रसन्न होकर शिवजी ने उसको सोने का रथ प्रदान किया। उसके पश्चात् सूर्य के पीछे भ्रमण करते हुए उसने रात्रि को ही विलुप्त कर दिया। यह देखकर सूर्य ने अपने तेज से उसके विमान को द्रव बनाकर गिरा दिया। रुद्र ने जब सुना कि उस विमान को सूर्य ने गिरा दिया है तो वे कुपित हो गये। रुद्र के कुपित हो जाने पर भयभीत होकर सूर्य भाग चले। उस रुद्र की क्रोधभरी दृष्टि से देखे जाने के कारण जलते हुए सूर्य वाराणसी में जाकर गिर पड़े उसी समय से वे लोलार्क के नाम से विख्यात हो गये।।१८।।

यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेन आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥१९॥

अन्वयः यदा श्रान्तविजनम् आत्मानम् अशरणम् ऐच्छत तदा द्विजात्मजः ब्रह्मशिरः अस्त्रं आत्मत्राणम् मेने ।।१९।। अनुवाद जब उसने देखा कि हमारे अश्व थक गये हैं अतएव अब हमारा रक्षक कोई नहीं तो अश्वत्थामा ने अपना रक्षक ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र को ही माना ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अशरणं रक्षकरिहतम् । ननु पलायनमेव रक्षकमस्ति, न, तस्यापि कुण्ठितत्वादित्याह । श्रान्ता वाजिनो यस्य तम् । ब्रह्मशिरोऽस्त्रं ब्रह्मास्त्रम् । द्विजात्मज इत्यदीर्घदर्शितामाह ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जब अश्वत्थामा ने देखा कि मेरे रथ के घोड़े थक गये है अब मेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता है तब उसने सोच लिया कि अब मेरी रक्षा ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र से ही हो सकती है। यदि कोई कहे कि वह भाग करके ही अपनी जान बचा सकता था तो इसका उत्तर है कि उसके घोड़े थक गये थे वे चल नहीं पाते थे। ब्रह्मशिर: ब्रह्मास्त्र का ही वाचक है अश्वत्थामा के लिए द्विजात्मज शब्द के प्रयोग के द्वारा उसकी अदीर्घदर्शिता को सूचित किया गया है ।।१९।।

अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः । अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥

अन्वयः अथ प्राणकृछ् उपस्थिते सः उपसंहारम् अजानन् सिललम् उपदृश्य समाहितः सन् तत् संदधे ।।२०।। अनुवाद उसके पश्चात् प्राण सङ्कट उपस्थित हो जाने पर अश्वत्थामा यद्यपि ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी उसने जल का आचमन करके उसका प्रयोग कर दिया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तद्ब्रह्मास्त्रम् । समाहितः कृतध्यानः । उपसंहारमजानतोऽपि संधाने हेतुः- प्राणकृच्छ्र इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी प्राणसङ्कट उपस्थित होने के कारण ध्यान करके उसने उसका प्रयोग कर दिया ॥२०॥

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् । प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥२१॥

अन्वयः— ततः प्रादुष्कृतं सर्वतोदिशम् प्रचण्डं तेजः अभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदम् अभिप्रेक्ष्य जिष्णुः विष्णुम् उवाच।।२१।। अनुवाद— उस अस्त्र से सभी दिशाओं में फैलने वाले प्रचण्ड तेज को देखकर तथा उससे प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ततोऽस्त्रात् सर्वतोदिशं प्रादुष्कृतं तेजोऽभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदं चाभिप्रेक्ष्य ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उस अस्त्र से चारो तरफ फैलने वाले भयङ्कर तेज को देखकर तथा उसके कारण प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने उसके विषय में भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा ॥२१॥

अर्जुन उवाच

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर । त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥

अन्वयः हे भक्तानामभयङ्कर महाभाग कृष्ण संस्तेः दह्यमानानाम् एकः त्वम् अपवर्गः असि ।।२२।।

अनुवाद— हे भक्तों को अभय बनाने वाले महाभाग कृष्ण संसारचक्र में जलने वालों के संसार संताप को केवल आप ही विनाशक है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं विज्ञापयितुं प्रथमं स्तौति– कृष्णेति चतुर्भिः । संसृतेर्हेतोर्दह्यमानानां तस्या अपवर्गोऽपवर्जयिता । नाशक इत्यर्थः।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रस्तुत तेज के विषय में बतलाने के लिए चार श्लोकों के द्वारा अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशसां करते हैं। अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा संसारचक्र में संतप्त जीवों के संताप को दूर करने वाले एक मात्र आप ही हैं।।२२।।

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादिश्चरः प्रकृतेः परः । मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥

अन्वयः त्वम् साक्षात् ईश्वरः प्रकृतेः परः आद्यः पुरुषः चित् शक्त्या मायां व्युदस्य कैवाल्ये आत्मिन स्थितः ।।२३।। अनुवाद आप साक्षात् ईश्वर हैं, प्रकृति से परे परम पुरुष हैं तथा इस जगत् के कारणभूत पुरुष हैं। यद्यपि आप कारण पुरुष हैं फिर भी सदा निर्विकार रहते हैं आप अपनी चित् शक्ति के द्वारा माया को दूर करके कैवल्य रूप आत्मा में स्थित रहते हैं।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यतस्त्वमीश्वरः साक्षात् कुतः यतः प्रकृतेः परः पुरुषः । तत्कुतः । यत आद्यः कारणम् । कारणत्वेऽप्यविकारितामाह। मायां व्युदस्याभिभूय कैवल्यरूपे आत्मन्येव स्थित इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि आप साक्षात् ईश्वर हैं, अतएव सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं, क्योंकि आप प्रकृति से परे परम पुरुष हैं अतएव आप जगत् के आदि कारण हैं।

श्रीभगवान् जगत् के कारण होने पर भी निर्विकार ही रहते हैं इस बात को कहते हुए अर्जुन ने कहा कि आप माया को अभिभूत करके कैवल्य स्वरूप अपनी आत्मा में ही स्थित हैं ।।२३।।

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः । विघत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२४॥

अन्वयः— स एव भगवान् मायामोहितचेतसः जीवलोकस्य स्वेन वीर्येण धर्मादि लक्षणं श्रेयः विधत्से ।।२४।। अनुवाद— माया को अभिभूत करके अपनी आत्मा में स्थित ही आप माया से मोहित जीव समूह के द्वारा स्थित होकर अपने प्रभाव के द्वारा धर्मादि रूप कल्याण प्रदान करते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

त्रिवर्गदातापि त्वमेवेत्याह- स इति । यस्त्वं मायामभिभूय स्थितः स एव मायाभिभूतस्य जनस्य धर्मादिफलमुपासितः सन्विधत्से । वीर्येण प्रभावेण ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा कि हे भगवन् आप ही जीवों को धर्म, अर्थ तथा काम इस त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं। जो आप माया को अभिभूत करके स्थित हैं वे ही आप मायाभिभूत जीवों की उपासना से प्रसन्न होकर उन सबों को अपने प्रभाव से धर्माद रूप त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं, यही इस श्लोक का अभिप्राय हैं।।२४।।

तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया । स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥

अन्वयः अयं च त अवतारः भुवः भारिजहीर्षया, अनन्यभावानां स्वानां च असकृत् अनुध्यानाय ।।२५।। अनुवाद आपका यह अवतार पृथिवी का भार उतारने के लिए तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके बार-बार ध्यान करने के लिए हुआ है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तथा चानेनावतारेण तव साधुपक्षपातो लक्ष्यत इत्याह- तथेति । किं भूभारहरणं मदिच्छामात्रेण न भवति तत्राह । स्वानां ज्ञातीनामनुष्यानाय च तथानन्यभावानामेकान्तभक्तानां च ।।२५।।

तथायम्० इत्यादि श्लोक से अर्जुन ने कहा कि इस अवतार के द्वारा आपका सज्जनों के प्रति पक्षपात लिक्षित होता है। यदि भगवान् कहें कि पृथिवी के भार का अपहार मेरी इच्छा मात्र से नहीं हो सकता है क्या कि उसके लिए मेरा यह अवतार हुआ है, तो इसके उत्तर में अर्जुन ने कहा बन्धु बान्धवों तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके ध्यान के लिए आपका अवतार हुआ है।।२५॥

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् । सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥२६॥

अन्वयः हे देवदेव । इदं किंस्वित् कुतो वा एति इति अहम् न वेद्यि सर्वतोमुखम् परमदारुणं तेजः आयाति ।।२६।। अनुवाद मुझे इस बात का पता नहीं चलता है कि यह क्या है ? तथा कहाँ से आ रहा है चारो ओर फैलता हुआ अत्यन्त भयङ्कर तेज आ रहा है ।।२६॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रस्तुतं विज्ञापयति- किमिति । किमात्मकिमदं कुतो वा आयातीति । स्विद्वितर्के ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से भगवान् की स्तुति करके अर्जुन ने प्रस्तुत बात बतलायी कि यह क्या है और कहाँ से आ रहा है ? स्वित् अव्यय का प्रयोग वितर्क के अर्थ में हुआ हैं ॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् । नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥२७॥

अन्वयः प्राणवाधे उपस्थिते इदं द्रोणपुत्रस्य प्रदर्शितं, ब्राह्मं अस्त्रं वेत्य असौ संहारं न वेद ।।२७।।

अनुवाद— प्राण सङ्कट उपस्थित होने के कारण द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा प्रयुक्त इसे तुम ब्रह्मास्त्र समझो । अश्वत्थामा इसको लौटाना नहीं जानता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

इदं द्रोणापुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रम् । तेन च प्राणबाधे प्राप्ते प्रदर्शितं केवलम् । न तत्प्रयोगे कुशल इत्यर्थः । यतोऽसावुपसंहारं न वेद । एतच्च त्वं तु वेत्थ जानासि ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इसको तुम ब्रह्मास्त्र जानो । प्राणसङ्कट उपस्थित होने पर उसने इसका केवल प्रदर्शन किया है । इसके प्रयोग में अश्वत्थामा कुशल नहीं है क्योंकि वह इसका उपसंहार नहीं जानता है । तुम तो इसके उपसंहार को जानते हो ॥२७॥

नह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् । जहास्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥२८॥

अन्वयः अस्य प्रत्यवकर्शनं किंचिदन्यतमं अस्त्रं न त्वम् अस्त्रज्ञः असि, अस्त्रतेजसा हि उनद्भम् अस्त्रतेजः जिह ।।२८।। अनुवाद किसी भी दूसरे अस्त्र में इसको क्षीण करने की शक्ति नहीं है । तुम तो अस्त्रज्ञ हो, अतएव ब्रह्मास्त्र के ही तेज से इसके उत्कट तेज को नष्ट कर दो ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यवकर्शनं कृशत्वकरम् । निवर्तकमित्यर्थः । अतस्तदस्त्रतेज उन्नद्धमुत्कटं ब्रह्मास्त्रतेजसैव जिह घातय । त्वत्प्रयुक्तं चास्त्रं तदुपसंहृत्य स्वयमुपशाम्येत् । यतस्त्वमस्त्रज्ञोऽसि ॥२८॥

भगवान् ने कहा कि इस अस्न के तेज को क्षीण करने वाला कोई भी दूसरा अस्न नहीं है। तुम तो शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता ही अतएव ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इसका जो भयङ्कर तेज है उसको तुम शान्त कर दो ॥२८॥ सूत उवाच

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा । स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥

अन्वयः— भगवता प्रोक्तं श्रुत्वा परवीरहा फाल्गुन अपः स्पृष्ट्वा तं परिक्रम्य ब्राह्माय ब्राह्मं संदधे ।।२९।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन ने जल का आचमन किया और भगवान् श्रीकृष्ण की परिक्रमा की तथा उस ब्रह्मास्त्र को निवर्तित करने के लिए ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

परे शत्रवस्त एव वीरास्तान्हन्तीति तथाविधः फाल्गुनोऽर्जुनोऽपः स्पृष्ट्वाचम्य तं श्रीकृष्णं परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । ब्राह्माय ब्रह्मास्त्रं निवर्तयितुम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर अर्जुन जल का अचमन करके भगवान् की परिक्रमा किए और अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को लौटाने के ही लिए उसे विनष्ट करने के लिए नहीं, ब्रह्मास्त्र का अनुसंधान किये ।।२९।। संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते । आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कविह्नवत् ।।३०॥

अन्वयः उभयोः शरसंवृते तेजसी अन्योन्यम् संहत्य रोदसीखं च आवृत्य अर्कविह्नवत् ववृधाते ।।३०।।
अनुवाद बाणों से वेष्टित दोनों ब्रह्मास्त्रों का तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर सूर्य तथा संवर्तकाग्नि के समान तेज आकाश और अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर फैल गया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

ततश्चोभयोर्ब्रह्मास्त्रयोस्तेजसी शरैः संवृते संवेष्टिते परस्परं मिलित्वा ववृधाते अवर्धेताम् । किं कृत्वा । रोदसी द्यावापृथिव्यौ खमन्तरिक्षं चावृत्य । यथा प्रलये सङ्कर्षणमुखाग्निरुपरिस्थितोऽर्कश्च संहत्य वर्धेते तद्वत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वारा ब्रह्मास्र का संधान कर दिए जाने के पश्चात् दोनों ब्रह्मास्त्रों का बाणों से वेष्टित तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर इतना बढ़ा कि वह भूलोक से लेकर स्वर्गलोक पर्यन्त व्याप्त हो गया । जैसे प्रलयकाल में सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि और सूर्य का तेज दोनों बढ़ते हैं उसी तरह से वे दोनों तेज बढ़े ॥३०॥ दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् । दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥

अन्वयः निर्म त्रीन् लोकान् प्रदहन् तयोः महत् तेजः दृष्ट्वा तु दह्यमानाः सर्वाः प्रजाः, सांवर्तकम् अमंसत् ।।३१।। अनुवाद तीनों लोकों के। जला देने वाली अर्जुन तथा अश्वत्थामा दोनों के अस्त्रों की महान अग्नि को देखकर जलती हुयी सी सारी प्रजाओं ने समझ लिया कि यह प्रलयाग्नि है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तयोद्रौँणिफाल्गुनयोः । तेन दह्यमानाः सांवर्तकः प्रलयाग्निममंसत मेनिरे ।।३१।।

अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों के ब्रह्मास्त्र जब एक दूसरे से टकराये तो उन दोनों से आविर्भूत तेज तीनों लोकों को जलाने लगा । उससे जलती हुयी प्रजाओं ने समझा, कि लगता है कि यह प्रलय कालीन अग्नि हैं ॥३१॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् । मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥३२॥

अन्वयः तम् प्रजोपप्लवम् लोकव्यतिकरं च आलक्ष्य अर्जुनः वासुदेवस्य मतं द्वयम् संजहार ।।३२।।

अनुवाद— उस अग्नि के कारण प्रजाओं तथा लोकों का नाश देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमित प्राप्त करके उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

लोकानां व्यतिकरं व्यत्ययं नाशमित्यर्थः । वासुदेवस्य मतं चालक्ष्य ब्रह्मास्त्रद्वयमुपसंहृतवान् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

श्लोक का व्यतिकर शब्द नाश का बोधक है। अर्जुन ने देखा कि इन दोनों ब्रह्मास्त्रों के तेज से संसार संतप्त हो रहा है। ऐसे तो लोगों का नाश हो जायेगा। उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् को भी यही अभिमत है। उन्होंने उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया।।३२।।

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् । बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥३३॥

अन्वयः— ततः तरसा दारुणं गौतमी सुतम् आसाद्य आमर्षताम्राक्ष रशनया पशुं यथा बबन्ध ।।३३।।

अनुवाद उसके पश्चात् वेग पूर्वक भयङ्कर कर्म करने वाले गौतमी देवी के पुत्र अश्वत्थामा को पकड़कर क्रोध से लाल आँखें किए हुए अर्जुन ने यज्ञ पशु के समान उसे रस्सी से बाँध लिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

गौतमवंशजा गौतमी कृपी तस्याः सुतम् । अमर्षेण कोपेन ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । निष्कृपत्वे दृष्टान्तः – पशुं यथेति। तस्य बन्धनं धर्म इत्यत्र दृष्टान्तः – यथा याज्ञिकः पशुमिति । रशनया रज्वा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा की माता का नाम कृपी था; किन्तु गौतम वंश में उत्पन्न होने के कारण उनको गौतमी कहा गया है। दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लेने के पश्चात् अर्जुन वेग पूर्वक अश्वत्थामा के पास पहुँच गये और अश्वत्थामा को पकड़कर उन्होंने उसको उसी तरह से बाँध दिया, जिस तरह से यज्ञ पशु को बाँध दिया जाता है। **पशुं रशनया यथा** कहकर यह सूचित किया गया है कि जिस तरह यज्ञपशु को बाँधना धर्म है, उसी तरह निन्दित कर्म करने वाले अश्वत्थामा को भी बाँध देना धर्म ही है।।३३।।

शिबिराय निनीषन्तं रज्ज्वा वद्भवा रिपुं बलात् । प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥

अन्वयः— बलात् रिपुं रज्ज्वा बद्ध्वा शिविराय निनीषन्तं प्रकुपित अम्बुजेक्षणः भगवान् प्राह ।।३४।।

अनुवाद— शत्रु को बल पूर्वक रस्सी से बाँधकर शिविर में लाने के इच्छुक अर्जुन को कमल के समान मनोहर नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोध करके कहा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

शोकरोषादियुक्तस्याप्यर्जुनस्य धर्मनिष्ठाख्यापनाय श्रीकृष्णवाक्यम् । तदाह षड्भिः शिबिराय राजनिवेशाय नेतुमिच्छन्तम्। प्रकुपित इवेति ।।३४।।

यद्यपि अर्जुन शोक तथा क्रोध दोनों से युक्त थे फिर भी अर्जुन की धर्मनिष्ठता को बोधित करने के लिए भगवान् ने उनसे कहा भगवान् के वाक्यों कि छह श्लोकों में कहा गया है। जहाँ पर राजाओं का निवास होता है, उसे शिविर कहते हैं। प्रकुपित इव कहकर श्रीधरस्वामी कहते हैं कि श्रीभगवान् कुपित नहीं थे फिर भी कुपित के समान कहे ॥३४॥

मैनं पार्थार्हिस त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जिह । योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥३५॥

अन्वयः यः असौ निशि सुप्तान् अनागसः बालकान् अवधीत् एनं त्रातुं न अर्हसि इमं ब्रह्मबन्धुम् जिह ।।३५।। अनुवाद अर्जुन इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है अतएव आप इसको बचाएँ मत, अपितु इसका आप वध कर दें ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अनागसो निरपराधान् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने अर्जुन से कहा कि इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है । यह अधम ब्राह्मण है इसको आप बचाइये नहीं इसका वध कर दीजिये ॥३५॥

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥

अन्वयः मत्तम् प्रमत्तम्, उन्मत्तम्, सुप्तम्, बालम्, स्त्रियम्, जडम्, प्रपन्नम्, विरथम् भीतम् रिपुम् धर्मवित् न हन्ति ।।३६।। अनुवाद मद्य का सेवन करने से मत्त, असावधान तथा ग्रह या बात इत्यादि के कारण पागल हुए, सोए हुए, बालक, स्त्री, उद्योग रहित, शरणागत, जिसका स्थ टूट गया हो तथा भयभीत शत्रु का धर्मज्ञ पुरुष वध नहीं करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

रिपोरिप सुप्तस्य बालस्य च वधो न धर्म इत्यन्यार्थैर्दर्शयति- मत्तमिति । मत्तं मद्यादिना । प्रमत्तमनविहतम् । उन्मत्तं ग्रहवातादिना । जडमनुद्यमम् प्रपन्नं शरणागतम् । विरथं भग्नरथम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

शत्रु का भी बालक यदि सोया हो तो उसका वध करना धर्म नहीं पाप है। इस बात को श्रीभगवान् अन्य अर्थों को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं। धर्मज्ञ पुरुष इन दश प्रकार के शत्रुओं को निहं मारते हैं— १. मत्त (जो मद्यापन करके मत्त हो गया हो), २. प्रमत्त, (असावधान), ३. उन्मत्त (ग्रह अथवा वात इत्यादि के कारण पागल हो गया हो), ४. सुप्त (सोये हुए), ५. बालम् (बालक), ६. स्त्री, ७. जड, ८. प्रपन्न (शरणागत), ९. विरथ (जिसका स्थ टूट गया हो), १०. भयभीत ॥३६॥

स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥३७॥

अन्वयः— य: अघृण: खल: परप्राणै: स्वप्राणान् पुष्णाति तस्य हि श्रेय: तद्वध: यद् दोषात् पुमान् अध: याति ।।३७।। अनुवाद— जो क्रूर और दुष्ट दूसरे को मार करके अपने प्राणों की रक्षा करता है उसका इसी में कल्याण है कि उसका वध कर दिया जाय । अन्यथा उस पाप के कारण वह मनुष्य नरक में जाता हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तद्वधो दण्डरूपस्तस्यैव श्रेयः पुरुषार्थः । यद्यतो दण्डप्रायश्चित्तरहिताद्दोषात्स पुमानधो यातीति । तथा च स्मरन्ति-'राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । विधूतकल्मषा यान्ति स्वर्गं सुकृतिनो यथा ।।' इति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा का जो दण्ड रूप से तुम वघ करोगे उससे उसका ही कल्याण होगा, क्योंकि दण्ड रूपी प्रायश्चित्त से रिहत दोष के कारण पापी मनुष्य नरक में जाता है। स्मृतियों में कहा भी गया है राजिभर्धृतदण्डस्तु॰ इत्यादि अर्थात् पाप करने वाले मनुष्य को जब राजा दण्ड दे देता है, तो उस दण्ड के कारण वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है और वह पुण्यवानों के समान स्वर्ग में जाता है ॥३७॥

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम । आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥३८॥

अन्वयः— मम शृण्वतः भवता प्रतिश्रुतं यत् हे मानिनि यः ते पुत्रहा तस्य शिर आहरिष्ये ।।३८।।

अनुवाद— मेरे सामने आपने द्रौपदी के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि हे मानिनि ! जिसने तुम्हारे पुत्रों को मारा है मैं उसका शिर काटकर लाऊँगा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं।

तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबन्धुहा । भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥३९॥

अन्वय: हे वीर असौ आततायी आत्मबन्धुहा कुलपांसनः पापः भर्तुश्च विप्रियं कृतवान् तद असौ वध्यताम्।।३९।। अनुवाद हे वीर ! यह अततायी अपने बान्धवों को मारने वाला तथा अपने वंश को विनष्ट करने वाला है । यही नहीं यह अपने स्वामी दुर्योधन के भी विरुद्ध कार्य किया है, अतएव उसको मार दो ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं।

सूत उवाच

एवं परीक्षता धर्मं पार्थ: कृष्णेन चोदित: । नैच्छन्द्रन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥४०॥

अन्वयः— एवं धर्मं परीक्षता कृष्णेन चोदितः महान् पार्थः यद्यपि आत्महनं तं गुरुसुतं हन्तुं नैच्छत् ।।४०।। अनुवाद— इस तरह से अर्जुन के धर्म की परीक्षा लेने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्ररित किया फिर भी महान् अर्जुन अपने पुत्रों को मारने वाले अपने गुरु अश्वत्थामा के पुत्र को नही मारना चाहें ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि चोदितस्तथापि हन्तुं नैच्छत् आत्महनं पुत्रहन्तारमपि । यतो महान् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि भगवान् ने अर्जुन को प्रेरित किया कि अर्जुन अश्वत्थामा का वध कर दें किन्तु अर्जुन अश्वत्थामा का वध नहीं करना चाहे, क्योंकि अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का पुत्र था । और महान् होने के कारण अर्जुन का हृदय विशाल था ॥४०॥

अथोपेत्य स्विशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः । न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ॥४१॥

अन्वयः अथ स्वशिबिरम् उपेत्य गोविन्दिप्रयसारिथः अर्जुनः हतान् आत्मजान् शोचन्त्यै प्रियायै तं न्यवेदयत्।।४१।। अनुवाद उसके पश्चात् अपने शिबिर में आकर, भगवान् गोविन्द जिनके प्रिय सारिथ थे, वे अर्जुन अपने मारे गये पुत्रों के विषय में शोक करने वाली द्रौपदी को अश्वत्थामा को निवेदित कर दिये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

गोविन्द: प्रियः सारथिर्यस्य स: । आत्मजान् शोचन्त्यै ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के भगवान् प्रियतम थे और उनके सारथि का भी काम किये अतएव अर्जुन को गोविन्दप्रिय सारथि: कहा गया है। जिस समय द्रौपदी अपने पुत्रों के विषय में शोक कर रही थी उसी समय वे अश्वत्थामा को द्रौपदी को सौंप दिए ॥४१॥

तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन । निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥४२॥

अन्वयः— तथा आहृतम् पशुवत् पाशबद्धं कर्मुजुगुप्सितेन, अवाङ्मुखम् अपकृतं गुरोः सुतम् निरीक्ष्य वामस्वभावा कृष्णा कृपया ननाम च ॥४२॥

अनुवाद इस तरह अपमान पूर्वक लाये गये, पशु के समान पाश में बाँधे गये, निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए अपकारी तथा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी का हृदय कृपा से भर गया और उसने अश्वत्थामा को प्रणाम किया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तथा परिभवेनाहृतमानीतम् । कर्मणो जुगुप्सितेन दोषेणावाङ्मुखमधोवदनम् । अपकृतमपकारिणम् । कृपया निरीक्ष्य। वामः शोभनः स्वभावो यस्याः सा ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

अनादर पूर्वक लाये गये अश्वत्थामा को दौपद्री ने देखा । अश्वत्थामा उस समय निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए थे अपकारी भी अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी ने उनको प्रणाम किया ॥४२॥ उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती । मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

अन्वयः अस्य बन्धनानयनं असहन्ती च उवाच मुच्यतां मुच्यताम् एष ब्राह्मणो नितरां गुरु: ।।४३।।

अनुवाद— अश्वत्थामा को बान्धकर लाने को नहीं सह सकने के कारण द्रौपदी ने कहा इनको खोल दीजिए खोल दीजिए ये ब्राह्मण हैं ब्राह्मण सबों के गुरु होते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननाम चोवाच चेति चकाराभ्यां संभ्रमः सूचितः । बन्धनेनाऽऽनयनमसहमाना ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

नानाम च उवाच च इन दो चकारों के द्वारा द्रौपदी की शीघ्रता को सूचित किया गया, वह अश्वत्थामा को बाँधकर लाये जाने को नहीं बर्दास्त कर पा रही थीं। उसने शीघ्रता से कहा कि ये ब्रह्मण हैं ब्राह्मण सबों का गुरु होता है। इनको आप शीघ्र ही बन्धनमुक्त कर दीजिए।।४३।।

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः । अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥४४॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते । तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी॥४५॥

अन्वयः— यद्नुग्रहात् सरहस्यः सविसर्गोपसंयमः धनुर्वेदः अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितः स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते तस्यात्मनोऽधं पत्नी कृपी न अन्वगात् वीरसूः आस्ते ।।४४-४५।। अनुवाद जिनकी कृपा से आपने गोप्यमन्त्रों के साथ अस्त्र प्रयोगों तथा उपसंहार के साथ धनुवेंद तथा अस्त्र समूह की शिक्षा प्राप्त की है। वे द्रोणाचार्य आपने पुत्र के रूप में ये विद्यमान हैं। उनके शरीर के आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं। वे द्रोणाचार्य के साथ अपना शरीर त्याग नहीं की क्योंकि वे वीर पुत्र की माता हैं।।४४-४५।।

भावार्थ दीपिका

सरहस्यो गोप्यमन्त्रसिहतः । विसर्गोऽस्त्रप्रयोगः उपसंयमः ताभ्यां सिहतोऽस्त्रसमूहश्च ।।४४।। किंच तस्य द्रोणस्यात्मा देहस्तस्यार्धं कृपी आस्ते । अर्धत्वे हेतुः - पत्नी । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी ' इति श्रुतेः । जायापती अग्निमादधीयातां ' इति श्रुतेरुभयोरेकाकारत्वावगमाच्च । ननु भर्तिर मृते सा कथं जीवित तत्राह- नान्वगाद्भर्तारम् । यतो वीरसूः पुत्रवती ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने कहा कि आपने जिन दोणाचार्य की कृपा प्राप्त करके गोप्यमन्त्रों वाले अस्त्रों के प्रयोग तथा उन अस्त्रों के उपसंहार के साथ धनुर्वेद तथा अस्त्रसमूह की शिक्षा प्राप्त की है वे ही द्रोणाचार्य अपने पुत्र के रूप में विद्यमान हैं। उन भगवान् द्रोणाचार्य के शरीर का आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं। श्रुति भी कहती हैं- अर्बों वा एष आत्मनो यत्पत्नीं अर्थात् पत्नी पित के शरीर का आधाभाग होती है। जयापती अग्निमादधीयाताम्। पत्नी तथा पित दोनों मिलकर अग्न्याधान करें। इस श्रुति के द्वारा दोनों की एकाकारता सूचित होती हैं। प्रश्न है कि पित के मर जाने पर कृपी कैसे जीवित हैं तो इसका उत्तर है कि वे वीर पुत्र की माता हैं। ।४४-४५॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिगीरवं कुलम्। वृजिनं नाहित प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः।।४६॥

अन्वयः हे धर्मज्ञ महाभाग तत् कुलम् भवद्भिः गौरवम् । तत् अभीक्ष्णशः पूज्यं वन्द्यं वृजिनं प्राप्तुं नार्हित ।।४६।। अनुवाद हे धर्मज्ञ महाभाग ! उनका वंश आपलोगों के द्वारा गौरव प्राप्त है । अतएव सदा पूज्य तथा वन्दनीय उस कुल को आप दुःख नहीं दे सकते हैं ।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्गौरवं गुरो: कुलं भवद्भि: कर्तृभिर्वृजिनं दु:खं प्राप्तुं नार्हित । किंतु पूज्यं वन्द्यं च ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव गौरव प्राप्त गुरु के वंश को आप दुःखी न बनायें क्योंकि वह वंश तो सदा पूजनीय एवं वन्दनीय है ॥४६॥

मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता । यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥४७॥

अन्वयः— यथा मृतवत्सा आर्ता अश्रुमुखी अहं मुहुरोदिमि तथा अस्य पितदेवता जननी गौतमी मारोदीत् ।।४७।।
अनुवाद— जिस तरह पुत्रों के मर जाने के कारण आर्त बनी हुयी तथा आँसुओं भरे मुख वाली मैं बार-बार रो रही हूँ उसी तरह पितव्रता इनकी माता गौतम वंशोद्भूत कृपी न रोएँ ।।४७।।

भावार्थ दीर्पिका

मृतवत्सा मृतपुत्रा ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

मूल का मृतवत्सा पद का अर्थ है जिसके पुत्र मर गये हैं ॥४७॥

यै: कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मिः । तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥

अन्वयः - यैः अकृतात्मिभः राजन्यैः ब्रह्मकुलं कोपितम् तत्कुलम् शुचार्पितम् ब्रह्मकुलम् सानुबन्धं आशु प्रदहित ।।४८।। अनुवाद - जो अनात्मज्ञ क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंश को क्रुद्ध बना देते हैं उनके सपरिवार वंश को ब्राह्मणों का शोकसंतप्त वंश शीघ्र ही भस्म कर देता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह- यैरिति । तेषां राजन्यानां कुलं कर्म । कथंभूतम् । सानुबन्धं सपरिवारम् । शुचा शोकेनार्पितं व्याप्तं च । ब्रह्मकुलं कर्तृ । प्रदहति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के वंश को कुपित बनाने पर अनात्मज्ञ क्षत्रियों के वंश को ब्राह्मण का शोक सन्तप्त वंश भस्म कर देता है इस भस्म क्रिया में अनात्मज्ञ क्षत्रियों का वंश कर्म है और शोक सन्तप्त ब्राह्मणों का वंश कर्ता है ॥४८॥

सूत उवाच धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् । राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥

अन्वयः हे द्विजाः धर्म्यं, न्यायं, सकरुणं, निर्व्यलीकं समंमहत् वचः श्रुत्वा राजा धर्मसुतः; प्रत्यनंदत् ।।४९।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद हे शौनकादि ऋषियों द्रौपदी के धर्म युक्त, न्यायानुकूल करुणाभरी, निष्कपट, तथासमता पूर्ण होने के कारण महत्त्व पूर्ण वाणी को सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने उसका अभिनन्दन किया ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

धर्म्यमित्यादयो वचसः षड्गुणाः पूर्वश्लोकषट्के द्रष्टव्याः । तत्र धर्म्ये धर्मादनपेतं मुच्यतां मुच्यतामिति । न्याय्यं न्यायादनपेतं सरहस्यं इत्यादि । सकरुणं तस्यात्मनोऽर्धमिति । निर्व्यलीकं तद्धर्मज्ञेति । समं मारोदीदिति। दुःखसाम्योक्तेः । महत् यैः कोपितमिति निष्ठुरोक्त्या हितोपदेशात् । एवं भूतं राज्ञ्या वचो हे द्विजाः, राजा प्रत्यनन्ददनुमोदितवान् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी की वाणी के धर्म्य इत्यादि छह गुण बतलाये गये है वे सभी गुण इससे पहले के छह श्लोकों से सूचित है। धर्म्य का अर्थ है धर्मयुक्त । वह मुच्यताम् मुच्यताम् इत्यादि श्लोक में है। न्याय्यम् का अर्थ है न्यायानुकूल यह गुण सरहस्यो धनुर्वेदः इत्यादि श्लोक से स्पष्ट है। तस्यात्मनोर्द्धम इत्यादि से द्रौपदी की वाणी की करुणा युक्तता सूचित होती है। उस वाणी की कपट रहिततता तद् धर्मज्ञ इत्यादि श्लोक से स्पष्ट है। मारोदित् इत्यादि श्लोक से समता युक्त वाणी प्रतीत होती है। क्योंकि इस श्लोक में दुःख की समता बतलायी गयी है। द्रौपदी की वाणी की श्रेष्ठता यै: कोपितम् इत्यादि निष्ठुर वाणी से ज्ञात होती है। इस श्लोक में द्रौपदी ने कल्याण का उपदेश किया है।

इस प्रकार की द्रौपदी की वाणी का महाराज युधिष्ठिर ने अनुमोदन किया ॥४९॥

नकुलः सहदेवश्च ययुधानो धनंजयः । भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥

अन्वयः— नकुलः सहदेवः युयुघानः धनंजयः भगवान् देवकीपुत्रः ये च तत्र अन्ये तथा याश्च योषितः तत्र आसन् ते सर्वे द्रौपद्याः वचसः समर्थनम् आकार्षुः ॥५०॥

अनुवाद नकुल, सहदेव, युयुधान, अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण तथा वहाँ पर विद्यमान जो दूसरे लोग थे वे सब तथा वहाँ जो स्त्रियाँ थीं वे भी द्रौपदी की बात का समर्थन कीं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

नकुलादयश्च प्रत्यनन्दन । ययुधानः सात्यिकः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

नकुल इत्यादि जो थे उन लोगों ने तथा सात्यिक ने भी द्रौपदी का समर्थन किया । सात्यिक का ही नाम युयुधान है ।।५०।।

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः । न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ॥५१॥

अन्वयः— तत्र अमर्षितः भीमः आह यः सुप्तान् शशून् न भर्तुः न आत्मनः च अर्थे अपितु वृथा अहन् तस्य वध एव श्रेयान् स्मृतः ।।५१।।

अनुवाद— वहाँ पर क्रुद्ध हुए भीम ने कहा कि जिसने न तो अपने स्वामी के लिए और न अपने लिए बिल्क व्यर्थ ही सोये हुए बालकों को मारा है, उसका तो वध ही कल्याणकारी कहा गया है।।५१।।

भावार्थ दीपिका

तस्य तथाविधस्य द्रौणेर्वध एव श्रेष्ठः । अन्यथाऽस्य नरकपातप्रसङ्गात् । तदाह- न भर्तुरिति । अहन् जघान ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

भीम ने कहा कि यह पापी है, अतएव इस तरह का पाप करने वाले का तो वध करना ही श्रेष्ठ है। यदि इसका वध नहीं किया गया तो फिर यह नरकगामी होगा ॥५१॥

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः । आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥५२॥

अन्वयः— भीमगदितं, द्रौपाद्यश्च निशम्य चतुर्भुजः सख्युः वदनं आलोक्य हसन्निव इदम् आह ।।५२।।

अनुवाद— भीम की तथा द्रौपदी की दोनों की बातों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपने मित्र अर्जुन के मुख को देखकर हँसते हुए के समान यह कहे ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्भुजोक्तेरयं भाव:- भीमे तं हन्तुं प्रवृत्ते द्रौपद्यां च सहसा तन्निवारणे प्रवृत्तायामुभयो: संवरणायाविष्कृतचतुर्भुज इति। संदिहानस्य सख्युर्जुनस्य ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को चतुर्भुज कहने का अभिप्राय यह है कि भीम जब उसको मारने लग जायेंगे। और द्रौपदी उनको रोकने लग जायेगी तो दोनों को रोकने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना चतुर्भुज रूप बना लिया। उस समय संदेह में पड़े हुए अर्जुन के मुख को देखकर भगवान् मुस्कुराते हुए कहे।।५२।।

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः । मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्मनुशासनम् ॥५३॥

अन्वयः — ब्रह्मबन्धुः न हन्तव्यः आततायी वधार्हणः मयैव उभयम् आम्नातम् त्वम् अनुशासनम् परिपाहि ॥५३॥ अनुवाद — अधम भी ब्राह्मणको नहीं मारना चाहिए, और आतातायी का वध कर ही देना चाहिए, इन दोनों बातों को मैने शास्त्र में कहा है, अतएव तुम मेरी आज्ञा का पालन करो ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

वधार्हणो वधार्हः । मयैव शास्त्रकृता ब्राह्मणो न हत्तव्यः 'तथा 'आततायिनमायान्तमिप वेदान्तपारगम् । जिघांसन्तं जिघांसीयात्र तेन ब्रह्महा भवेत् ।।' इति च वदता । तदुभयमप्यनुशासनं परिपालय ।।५३।।

वधार्हण शब्द का अर्थ है वध कर देने योग्य श्रीभगवान् ने कहा कि शास्त्रों का निर्माता मैं ही हूँ शास्त्रों में मैंने कहा है कि **ब्राह्मणों न हन्तव्यः** ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए। तथा मैंने यह भी कहा है अप्ततायिनम् **इत्यादि** यदि वेदान्त शास्त्र में पारंगत भी कोई आततायी मारने की इच्छा से आ रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए। उसको मारने से ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगता है। अतएव मेरी इन दोनों आज्ञाओं का तुम पालन करो।।५३॥

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् । प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥५४॥

अन्वय: प्रियाम् सान्त्वयता त्वया यत् प्रतिश्रुतं तत् सत्यं कुरु । भीमसेनस्य, पाञ्चाल्या, मह्ममेव च प्रियं कुरु । ।५४।। अनुवाद अपनी प्रिया द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो भीमसेन, द्रौपदी और मेरा भी प्रिय कार्य करो ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

तव च प्रतिज्ञां पूरयेत्याह- कुर्विति । प्रियां सान्त्वयता त्वया यत्प्रतिश्रुतं हननं तच्च सत्यं कुरु प्रियं च कुरु । मह्यं मम । तत्र वधे भीमस्य प्रियं भवति । अवधे द्रौपद्या: । द्वये श्रीकृष्णस्य ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

कुरुप्रतिश्रुतम् इत्यादि वाक्य से भगवान् ने कहा तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो । द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो अश्वत्थामा के वध की प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो और द्रौपदी का प्रिय कार्य भी करो और मेरा भी प्रिय करो । मारने पर भीम का प्रिय होता है । नहीं मारने पर द्रौपदी का प्रिय होता है । दोनों में कोई भी होने से श्रीकृष्ण का प्रिय होता है ॥५४॥

सूत उवाच

अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना । मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥

अन्वयः हरे: हार्दम् सहसा आज्ञाया अर्जुन; असिना द्विजस्य मूर्धजम् सह मूर्धन्यां मणिं जहार ।।५५।।

अनुवाद— अर्जुन ने श्रीभगवान् के हृदय की बात सहसा जान ली और तलवार से बालों के साथ अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को निकाल लिया ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

हार्दमभिप्रायमाज्ञाय ज्ञात्वा । न ह्यशक्यमुभयं विदध्यादतोऽस्यायमभिप्राय इति ज्ञात्वेत्यर्थः असिना खड्गेन । मूर्धन्यं मूर्धनि जातम् । सहमूर्धजं सकेशम् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने श्रीभगवान् के हार्दिक अभिप्राय को जान लिया। एक ही समय में वध और अवध दोनों तो किया नहीं जा सकता है। अतएव इनका यही अभिप्राय है इस बात को जानकर तलवार से अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को बालों के साथ उन्होंने उतार लिया।।५५।।

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् । तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६॥

अन्वयः रशनाबद्धं, बालहत्याहतप्रभम्, तेजसा मणिना हीनं विमुच्य शिबिरात् निरयापयत् ।।५६।।

अनुवाद— रस्सी से बँधे हुए, बालकों की हत्या करने के कारण जिसकी कान्ति समाप्त हो गयी थी तेज से रहित तथा मणि से रहित अश्वत्थामा को खोलकर अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

मणिना च हीनम् । निरयापयन्नि: सारितवान् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

बालहत्या के कारण अश्वत्थामा का तेज समाप्त हो गया था ओर वह मणि से भी हीन हो गया था इस तरह के अश्वत्थामा को अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ॥५६॥

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा । एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥५७॥

अन्वयः— वपनं दविणादानं, तथा स्थानात् निर्यापणं एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधः अन्यः दैहिकः न ।।५७।।

अनुवाद - शिर मूंड़ देना, धन छिन लेना और स्थान से निकाल देना अधम ब्राह्मणों का यही वध है, शारीरिक वध नहीं ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अनेन श्रीकृष्णोक्तं सर्वं संपादितमित्याह- वपनमिति ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

वपनम् इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रोक्त सारे कार्यों को किया ॥५७॥

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया । स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चकुर्निर्हरणादिकम् ॥५८॥ इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवा कृष्णया सह मृतानां स्वानां निर्हरणादिकम् यत् कृत्यम् तत् चक्रः ॥५८॥ अनुवाद— पुत्रों के शोक से आतुर बने हुए सभी पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ अपने मरे हुए लोगों की

दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया को किया ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के अश्वत्थामा निग्रह नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

निर्हरणं दाहार्थं नयनम् ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

जलाने के लिए लाये जाने को निर्हरण कहा गया है।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।७।।



आठवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा गर्भस्थ परीक्षित् की रक्षा कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और महाराज युधिष्ठिर का शोक

सूत उवाच

अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् । दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥१॥

अन्वयः अथ सम्परेतानां, उदकमिच्छताम् स्वानाम् उदकं दातुं स्त्रियः पुरस्कृत्य सकृष्णा स्त्रियः गङ्गायां ययुः ॥१॥ अनुवाद उसके पश्चात् सभी पाण्डव मरे हुए तथा जल चाहने वाले स्वजनों का तर्पण करने के लिए स्त्रियों को आगे करके भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गङ्गाजी में गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे कुपितद्रौणेरस्त्राद्रक्षा परीक्षितः । श्रीकृष्णेन स्तुतिः कुन्त्या राज्ञः शोकश्च कीर्त्यते ।।१।। ते पाण्डवाः संपरेतानां मृतानां गङ्गायामुदकं दातुं सकृष्णाः श्रीकृष्णेन सिहताः । स्त्रियः स्त्रीः पुरस्कृत्याग्रतः कृत्वा । तस्मिन्कार्ये स्त्रीपुरःसरत्विधानात् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में अश्वत्थामा के अस्त्र से परीक्षित् की भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षा, कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा महाराज युधिष्ठिर के शोक का वर्णन है ।।१।। वे पाण्डव मरे हुओं केा जलदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के साथ तथा स्त्रियों को आगे करके गङ्गाजी में गये। तर्पण करने में स्त्रियों को आगे करके जाने का शास्त्र विधान करता है ।।१।।

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः । आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥

अन्वयः ते सर्वे जलं निनीय पुनः भृशं विलप्य हरिपादाब्जरजःपूतसरित्जले पुनः आप्लुताः ।।२।।

अनुवाद— उन लोगों ने जलदान करके, उसके पश्चात् मरे लोगों के गुणों का स्मरण करके बहुत विलाप किया पुन: श्रीहरि के चरण कमल की धूलि से पवित्र जलवाली गङ्गा नदी में उन लोगों ने स्नान किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

निनीय दत्त्वा । हरिपादाब्जरजोभिः पूता या सरिद्रङ्गा तस्या जले । पुनर्ग्रहणादादाविप स्नाता इति गम्यते ।।२।।

भाव प्रकाशिका

निनीय पद का अर्थ है देकर । श्रीहरि के चरण कमलों से पवित्र जो गङ्गा नदी उसके जल में । पुन: शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि उन लोगों ने स्नान करके ही जलदान किया और अन्त में भी स्नान किया। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी पाण्डवों ने गङ्गा नदी में पहले स्नान किया, उसके बाद जलदान किया और उसके पश्चात् पुन: स्नान किया ॥२॥

तत्रासीनं कुरुपतिं घृतराष्ट्रं सहानुजम्। गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माघवः ॥३॥ सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धून् शुचार्पितान्। भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥४॥

अन्वयः— तत्र आसीनं सहानुजम् कुरुपतिं, धृतराष्ट्रम, पुत्रशोकार्तां गान्धारीं, पृथां, कृष्णां च हतबन्धून सुचार्पितान् भूतेषु कालस्य अप्रतिक्रियाम् दर्शयन् मुनिभिः सहमाधवः सान्त्वयामास ।।३-४।। अनुवाद वहाँ गङ्गातट में बैठे हुए अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र तथा पुत्रों के शोक से संतप्त गान्धारी, कुन्तीं तथा द्रौपदी को जो मारे गये अपने बान्धवों के शोक से संतप्त थे उन सभी लोगों को मुनियों के साथ भगवान् ने यह बतलाते हुए सान्त्वना प्रदान किया कि सभी प्राणियों के विषयों में होने वाली काल की गित को कोई नहीं रोक सकता है। सभी प्राणी काल के अधीन हैं। १३-४।।

भावार्थ दीपिका

कुरुपतिं युधिष्ठिरम् । सहानुजं भीमादिभिः सहितम् । (पुत्रशोकार्तामिति तिसृणां विशेषणम्) ।।३।। मुनिभिः सहितः।।४।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे श्लोक में **सहानुजं कुरुपतिं** शब्द से भीमादि के साथ युधिष्ठिर को कहा गया है। पुत्र शोकार्ताम् पद गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी इन तीनों का विशेषण है। कहने का अभिप्राय है कि जलदान और स्नान करने के पश्चात् गङ्गातट पर ही बैठकर अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र और पुत्रों के शोक से सन्तप्त गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी ये तीनों स्त्रियाँ अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण शोक सन्तप्त हो गयीं। उन सबों को धौम्य आदि मुनियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने समझाया कि संसार के सभी जीव काल के अधीन हैं। काल को कोई भी रोक नहीं सकता है इस संसार के सभी प्राणियों की मृत्यु होनी ही है। ३-४।।

साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वराज्त्यं कितवैर्हृतम् । घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥५॥ याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः । तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥६॥

अन्वयः— कितवैः हृतम् अजातशत्रोः स्वं राज्यं साधियत्वा कचस्पर्शक्षतायुषः असतो राज्ञः घातियत्वा, त्रिभिः उत्तमकल्पकैः अश्वमेधैः तं याजियत्वा शतमन्योरिव तत् पावनं यशः दिक्षुः आतनोत् ॥५-६॥

अनुवाद— धूर्त दुयोंधन आदि के द्वारा छल से छिन लिए गये; अजातशत्रु युधिष्ठिर के राज्य को उन्हें दिलाकर, द्रौपदी के बालों का स्पर्श करने के कारण जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी ऐसे दुष्ट राजाओं का वध कराकर, उत्तम सामग्रियों से युक्त युधिष्ठिर के तीन अश्वमेध यज्ञों को कराकर, इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर के यश को भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी दिशाओं में फैला दिया ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

कितवैधूर्तैर्दूर्योधनादिभिः । द्रौपद्याः कचग्रहणादिना क्षतं नष्टमायुर्येषां तान् ।।५।। याजयित्वेत्यादिभाविकथासंक्षेपः । शतमन्योः शतक्रतोरिव ।।६।।

भाव प्रकाशिका

धूर्त दुर्योधन आदि ने महाराज युधिष्ठिर के राज्य को छल पूर्वक छिन लिया था, उनके उस राज्य को भगवान् ने दिलाया । तदर्थ द्रौपदी के केशों का स्पर्श करने के कारण जिन राजाओं की आयु क्षीण हो गयी थी उन पापी राजाओं का श्रीभगवान् ने वध करवा दिया । उसके पश्चात् भगवान् ने महाराज युधिष्ठिर से उत्तम सामग्रियों द्वारा तीन अश्वमेध यागों को कराया । उसके द्वारा श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर के यश को दशो दिशाओं में उसी तरह फैला दिया जिस तरह सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले इन्द्र का यश सभी दिशाओं में फैला हुआ है ॥५-६॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः । द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥७॥ गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः । उपलेभेऽभिघावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥८॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! पाण्डुपुत्रांश्च आमान्त्र्य द्वैपायनादिभिः विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः शैनेयोद्धवसंयुतः द्वारकां गन्तुं कृतमितः रथमास्थितः भगवान् भयविह्वलाम् अभिधावन्तीम् उत्तराम् उपलेभे ॥७-८॥

अनुवाद हे ब्रह्मन् ! पाण्डवों से विदा लेकर, द्वैपायन आदि पूजित ब्राह्मणों के द्वारा पूजित सात्यिक तथा उद्धव के साथ द्वारका जाने के लिए रथ पर बैठे हुए श्रीभगवान् ने देखा कि भय से व्याकुल उत्तरा सामने से दौड़ती हुयी आ रही है ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

शैनेयः शिनेर्नपा सात्यिकस्तेन चोद्धवेन च संयुतः ।।७।। रथमास्थितः सन्नुत्तरां परीक्षिन्मातरम् । भयेन विह्वलां व्याकुलाम् । अभिमुखं धावन्तीमुपलेभे ददर्श ।।८।।

भाव प्रकाशिका— शिनि के नाती सात्यिक को शैनेय कहा गया है। श्रीभगवान् द्वारका जाने के लिए पाण्डवों से आज्ञा माँगे। उसके पश्चात् जिन व्यास आदि महर्षियों की भगवान् ने पूजा की थी वे महर्षि गण भी श्रीभगवान् का बहुत सत्कार किये। उसके पश्चात् वे सात्यिक तथा उद्धवजी के साथ रथ पर बैठ गये। उसी समय भगवान् ने देखा कि उत्तरा दौड़ती हुयी चली आ रही है। वह अत्यन्त भयभीत भी थी। 10-८।।

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते । नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥

अन्वयः हे महायोगिन्, देवदेव, जगत्पते ! मां पाहि पाहि त्वदन्यम् अभयं न पश्ये, यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥ अनुवाद हे महायोगिन् ! हे देवाधिदेव ! हे जगत् के स्वामिन् आप मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये। आपसे भिन्न कोई भी मेरा रक्षक नहीं है यहाँ तो सब एक दूसरे की मृत्यु के कारण हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

उत्तरा श्रीकृष्णं प्रार्थयते- पाहि पाहीति द्वाभ्याम् । अन्यस्तु प्रार्थनायोग्यो नास्तीत्याह । त्वत् त्वत्तोऽन्यमभयं भयरहितं न पश्यामि । यत्र लोके परस्परमन्योन्यं मृत्युर्भवति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना करती हुयी उत्तरा ने कहा— हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें । वह अत्यन्त घबरा गयी थी अतएव दोबार कही कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये । इस समय कोई दूसरा प्राथनीय नहीं है । आपसे भिन्न कोई भी भय रहित नहीं है । अतएव आप ही मुझे अभय प्रदान कर सकते हैं । इस लोक में तो सभी एक-दूसरे की मृत्यु के कारण बने हुए हैं ॥९॥

अभिद्रवित मामीश शरस्तप्तायसो विभो । कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥

अन्वयः— हे विभो ! हे ईश ! तप्तायसः शरः माम् अभिद्रवित । मां कामो दहतु मे गर्भं मा निपात्यताम् ।।१०।। अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् में व्यापक ! हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर आ रहा है । यह मुझको भले ही जला डाले, किन्तु यह मेरे गर्भ को न गिराये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रस्तुतं भयमावेदयति । अभिद्रवत्यभिमुखमायाति । तप्तमायस लोहमयं शल्यं यस्य सः । अतिकार्पण्येनाह-काममिति । कामं यथेच्छम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपस्थित भय को बतलाती हुयी उत्तरा ने कहा यह जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर दौड़ता हुआ आ रहा है। उसने अत्यन्त विह्वल होकर कहा कि यह बाण मुझे भले ही जला दे किन्तु यह मेरे गर्भ को न विनष्ट करे।।१०।। सूत उवाच

उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः । अपाण्डविमदं कर्तुं द्रौणेरस्नमबुध्यत ॥११॥

अन्वयः तस्याः वचः उपधार्य भक्तवत्सलः भगवान् इदं अपाण्डवं कर्तुम् द्रौणे अस्त्रम् अबुध्यत ।।११।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद उत्तरा की बातों को सुनकर भक्त वत्सल भगवान् ने यह जान लिया कि इस संसार को पाण्डवों से रहित बनाने के लिए यह अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

पराभवेनातिकुपितस्य द्रौणेरपाण्डवं पाण्डवशून्यमिदं विश्वं कर्तु प्रवृत्तं ब्रह्मास्त्रमबुध्यत ।।११।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तो भक्तवत्सल हैं । उन्होंने उत्तरा की वाणी को सुना और जान लिया कि पराभाव के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हुए अश्वत्थामा का यह ब्रह्मास्त्र है । अश्वत्थामा ने इस विश्व को पाण्डव शून्य बना देने के लिए इसका प्रयोग किया है ॥११॥

तहोंवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् । आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥

अन्वयः— हे मुनिश्रेष्ठ तर्हि एव पाण्डवाः आत्मनोऽभिमुखान् दीप्तान् पञ्च सायकान् अभिलक्ष्य अथ अस्त्राणि उपाददुः ।।१२।।

अनुवाद— हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी समय पाण्डवों ने भी अपने सामने देदीप्यमान पाञ्च बाणों को आते हुए देखकर अपने अपने अस्त्रों को उठा लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अतएव बहुमुखं तदागतमित्याह- तहींवेति । तहींव तदानीमेव ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

वह ब्रह्मास्त्र अनेक बाणों के रूप में आया इस बात को तहींव इत्यादि श्लोक से कहा गया है। तहींव का अर्थ है उसी समय। एक ही ब्रह्मास्त्र छह रूप में आया था। एक रूप से वह उत्तरा के सामने से आ रहा था और पाँच रूपों में वह पाञ्च पाण्डवों के सामने बाण के रूप में आ रहा था। आते हुए उन बाणों को देखकर उसका प्रतिकार करने के लिए पाण्डवों ने अपना-अपना अस्त्र उठा लिया।।१२।।

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् । सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यघाद्विभुः ॥१३॥

अन्वयः - अनन्यविषयात्मनाम् तेषां तत् व्यसनं वीक्ष्य विभुः स्वास्त्रेण सुदर्शनेन स्वानां रक्षां व्यधात् ।।१३।।

अनुवाद - श्रीभगवान् में ही निष्ठा करने वाले पाण्डवों की उस दुष्परिहर विपत्ति को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त पाण्डवों की रक्षा अपने अस्त्र सुदर्शन चक्र से की ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मास्त्रस्यास्त्रान्तरैरनिवर्त्यत्वात्तदुष्परिहरं व्यसनं वीक्ष्य । अनन्यविषय आत्मा येषाम् । स्वैकनिष्ठानामित्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने देखा कि ब्रह्मास्त्र का किसी दूसरे अस्त्र से निवारण नहीं किया जा सकता है, अतएव यह तो पाण्डवों पर भयङ्कर विपत्ति है। पाण्डव मेरे भक्त हैं। उन पाण्डवों की रक्षा श्रीभगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र नामक अस्त्र के प्रयोग से की ॥१३॥

अन्तःस्यः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः । स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥१४॥

अन्वयः— सर्वभूतानाम् आत्मा योगेश्वरः हरिः अन्तस्थः सन् स्वमायया वैराट्याः गर्भं कुरुतन्तवे आवृणोत् ।।१४।। अनुवाद— श्रीभगवान् तो सभी जीवों की आत्मा हैं ये योगेश्वर श्रीहरि कुरुवंश को चलाने के लिए विराट् की पुत्री उत्तरा के भीतर स्थित रहकर उसके गर्भ को अपनी माया से ढँक दिए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

वैराट्या उत्तराया अन्तःस्थः सन् गर्भमावृतवान् । तत्र हेतुः- यत आत्मान्तर्यामी । योगेश्वर इति बहिःस्थस्यापि प्रवेशघटनार्थमुक्तम् । कुरूणां तन्तवे सन्तानाय । पाण्डवानामपि कुरुवंशजत्वादेवमुक्तम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् उत्तरा के भी हृदय में विद्यमान थे अतएव उन्होंने उत्तरा के गर्भ को ही माया से ढँक दिया। उसका कारण यह था कि श्रीभगवान् तो अन्तर्यामी हैं, योगेश्वर हैं अतएव वे बाहर भी रहकर भीतर प्रवेश करके इन सभी कार्यों को करने में समर्थ हैं। कुरुतन्तवे पद का अर्थ है कुरुवंशियों की सन्ताान के लिए यह सारा कार्य भगवान् ने किया, चूकि पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं अतएव कुरुतन्तवे कहा गया है।।१४॥

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् । वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भगूद्वह ॥१५॥

अन्वयः हे भृगूद्वह ! यद्यपि ब्रह्मशिरः अस्त्रं तु अमोघम्, अप्रतिक्रियं च किन्तु वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यत्।।१५।। अनुवाद हे भृगुवंशीय शौनकजी यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता है; किन्तु वह भगवान् श्रीकृष्ण के तेज के समक्ष आकर विल्कुल शान्त हो गया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अमोघमप्रतिक्रियं च । समशाम्यत् संशान्तमासीत् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मास्त्र एक ऐसा अस्त्र है जो कभी भी विफल नहीं होता है और उसका निवारण करने वाला कोई दूसरा अस्त्र भी नहीं है; किन्तु श्रीभगवान के तेज के सामने वह तेज बिल्कुल शान्त हो गया; क्योंकि श्रीभगवान् का तेज तो सभी तेजों से श्रेष्ठ है। उसके सामने सभी तेज शान्त हो जाते हैं।।१५।।

मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते । य इदं मायया देव्या सृजत्यवित हन्त्यजः ॥१६॥

अन्वयः सर्वाश्चर्यमये अच्युते, एतत् आश्चर्यं मा मंस्थाः । यः अजः इदं जगत् सृजित, अवित हिन्त च ।।१६।। अनुवाद सर्वाश्चर्यमय भगवान् अच्युत हैं, अतएव उनके द्वारा किए गये इस कार्य को आश्चर्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे अजन्मा भी होकर इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं रक्षा करते है और प्रलय काल के आ जाने पर इसका संहार कर देते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एतद्ब्रह्मास्त्रशमनमाश्चर्य मामंस्था न मन्यस्व । इदं जगत् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि शौनकजी भगवान् के तेज के समक्ष ब्रह्मास्त्र जो शान्त हो गया उसे आप आश्चर्य न मानें। भगवान् तो सभी आश्चर्यों से युक्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं जो चाहें कर सकते हैं। उनके लिए कुछ भी आश्चर्य नहीं है।।१६।।

प्रथम स्कन्ध

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया । प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥१७॥

अन्वयः प्रयाणाभिमुखं कृष्णम् वीक्ष्य ब्रह्मतेजो विनिर्मुक्तैः कृष्णया च सह सती पृथा इदमाह ।।१७।।

अनुवाद - द्वारका जाने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण से ब्रह्मास्त्र के तेज से मुक्त हुए अपने पुत्रों तथा द्रौपदी के साथ सती पृथा ने कहा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णया सह ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

मूल के कृष्णया पद के पश्चात् सह पद का अध्याहार करना चाहिए । कुन्ती ने देखा कि मेरे पुत्र ब्रह्मास्त्र के तेज से जिनकी कृपा से बचे हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए तैयार हैं । अतएव सती साध्वी कुन्ती ने अपने पुत्रों और द्रौपदी के साथ इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥१७॥

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् । अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बिहरवस्थितम् ॥१८॥

अन्वयः - आद्यं पुरुषं प्रकृतेः परम, ईश्वरं, अलक्ष्यं, सर्वभूतानाम्, अन्तः बहिः अवस्थितम् त्वा नमस्ये ।।१८।।

कुन्तीदेवी ने कहा

अनुवाद हे आदि पुरुष आपको नमस्कार करती हूँ। आप प्रकृति से ऊपर हैं तथा प्रकृति के भी नियामक हैं। सभी भूतों के भीतर और बाहर आप अवस्थित हैं फिर भी आपको कोई जान नहीं पाता है। ऐसे आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

त्वा त्वां नमस्ये नमस्करोमि । ननु कनिष्ठं मां कथं नमस्करोषि तत्राह । आद्यं पुरुषम् । कुतः । प्रकृतेः परम् । तत्कुतः। ईश्वरं प्रकृतेरपि नियन्तारम् । अतएव सर्वभूतानामन्तर्बिहश्च पूर्णत्वेनावस्थितम् । तथाप्यलक्ष्यम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने कहा हे भगवन् आपको मैं नमस्कार करती हूँ। यदि आप कहें कि मैं तो छोटा हूँ और आप मुझसे बड़ी हैं फिर भी क्यों नमस्कार कर रही हैं। उसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा आप आदि पुरुष है, क्योंकि आप प्रकृति से भी परे हैं। यदि आप पूछे कि यह कैसे तो इसका उत्तर है कि आप प्रकृति के भी नियन्ता हैं। अतएव आप सभी भूतों के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्याप्त होकर भी उस प्रकार का प्रतीत नहीं होते हैं। १८।।

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् । न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥१९॥

अन्वयः अहम् अज्ञा, माया जविनकाच्छत्रम्, अधोक्षजम् अव्ययं नाट्यधरः नटः यथा मूढदृशा न लक्ष्यसे ।।१९।। अनुवाद मैं तो अज्ञानी हूँ आपकी भिक्त करना नहीं जानती हूँ और आप अपनी माया रूपी जविनका (पर्दा) से अपने को ढँके रहते हैं । मनुष्य जो कुछ भी इन्द्रियों के द्वारा जानता है, उसके मूल में (अधः) आप ही विद्यमान रहते हैं । आप सर्वदा सभी अवस्थाओं में निर्विकार बने रहते हैं । आप अज्ञानी जीवों द्वारा उसी तरह से नहीं जाने जाते हैं जैसे नाटक करने वाले नट को अज्ञानी जीव नहीं पहचान पाते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतु:- मायैव जननिका तिरस्करिणी तया आच्छत्रं प्रतिच्छत्रम् । अतोऽहमज्ञा भक्तियोगानभिज्ञा केवलं नमस्यामि। अधः अक्षजमिन्द्रियजं ज्ञानं यस्मात्तम् । अव्ययमपरिच्छित्रम् । तत्प्रपञ्चः मूढदृशा देहाभिमानिना पुंसा त्वं न लक्ष्यसे ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने भगवान् को अलक्ष्य बतलाया । अलक्ष्य होने का कारण बतलाते हुए कहा कि आप अपनी माया रूपी पर्दें से अपने को छिपाये रहते हैं । अतएव मैं भिक्त को नहीं जानने के कारण अज्ञा हूँ । केवल आपको नमस्कार करती हूँ । आप तो अधोक्षज हैं । अर्थात् मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी जानता है, उसके मूल में आप बने रहते हैं आप अव्यय अर्थात् अपरिच्छिन्न हैं । यही कारण है कि इस तरह से देहाभिमानी पुरुष आपको नहीं जान पाते हैं ।।१९॥

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् । भक्तियोगविद्यानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥२०॥

अन्वयः— परमहंसानाम् मुनीनाम्, अमलात्मनाम् अपि तथा अतः भक्तियोग विधानार्थं (त्वाम् वयम्) स्त्रियः हि कथं पश्येम ।।२०।।

अनुवाद जो आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से सम्पन्न हैं जो सदा तत्वों का मनन करते हैं। तथा रागद्वेष आदि दोषों से रहित होने के कारण जो निर्मल अन्त:करण वाले हैं ऐसे परमहंसों के लिए भी आप उसी तरह अलक्ष्य हैं ऐसे आपकी भक्तियोग करने के लिए हम स्त्रियाँ आपको कैसे जानें।।२०।।

भावार्थ दीपिका

किंच परमहंसानामात्मानात्मविवेकिनां ततो मुनीनां मननशीलानामिप ततश्चामलात्मनां निवृत्तरागादीनामिप तथा तेन निजमहिम्ना न लक्ष्यसे, अतो भक्तियोगं विधातुं त्वां वयं स्त्रियः कथं हि पश्येम । यद्वा परमहंसादीनामिप भक्तियोगविधानार्थं त्वां आत्मारामाणामप्यचिन्त्यनिजगुणैराकृष्य भक्तियोगं विधातुं कारियतुमवतीर्णमित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

जो परमंहंस पुरुष हैं, वे आत्मा क्या है ? तथा अनात्मा क्या है ? इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं। जो सदा तत्त्वों का ही चिन्तन किया करते हैं तथा रागद्वेष आदि अन्त:करण के दोषों से रहित जिनका अन्त:करण है; ऐसे निर्मल अन्त:करण वाले पुरुषों के लिए भी आप अलक्ष्य ही हैं। ऐसे आपकी भक्ति करने में असमर्थ हम स्त्रियाँ आपको कैसे जान सकती हैं ? अथवा जो परमहंस इत्यादि हैं उनमें भक्तियोग का विधान करने के लिए आप अपने अचिन्त्य गुणों के द्वारा उन लोगों को भी आकृष्ट करके उनके द्वारा भी भक्तियोग कराने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं।।२०।।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च । नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥२१॥

अन्वयः कृष्णाय, वासुदेवाय, देवकीनन्दनाय, नन्दगोपकुमारायगोविन्दाय च नमो नम: ।।२१।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, वसुदेवजी के पुत्र तथा सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, देवकी माता को आनन्दित करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, नन्दगोप के कुमार भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है तथा भगवान् गोविन्द को नमस्कार है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानभक्त्योरशक्यत्वमुक्त्वा पुनः केवलं नमस्करोति- कृष्णायेति द्वाध्याम् ।।२१।।

कुन्ती देवी ने स्त्रियों के लिए ज्ञान योग तथा भक्तियोग को करना अशक्य बतलाकर पुनः भगवान् श्रीकृष्ण को कृष्णाय**ः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा केवल नमस्कार किया हैं ॥२१॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने । नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२२॥

अन्वयः पङ्काजनाभाय नमः, पङ्काजमालिने नमः, पङ्काजनेत्राय नमः पङ्काजाङ्घ्रये नमस्ते ।।२२।।

अनुवाद जिनकी नाभि से ब्रह्माजी का जन्म स्थान कमल उत्पन्न है ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल की माला धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर नेत्र वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है तथा कमल के समान कोमल चरणों वाले आप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पङ्कजं नाभौ यस्य । पङ्कजानां मालास्ति यस्य । पङ्कजवत्प्रसन्ने नेत्रे यस्य । पङ्कजाङ्कितावङ्घ्री यस्य तस्मै ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जिनकी नाभि में कमल है ऐसे भगवान् को नमस्कार है, जिनकी माला कमलों की है, ऐसे भगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर जिनके दोनों नेत्र हैं ऐसे भगवान् को नमस्कार है तथा जिनके चरणों में कमल का चिह्न बना हुआ है ऐसे आप श्रीभगवान् को नमस्कार हैं ॥२२॥

> यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता । विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥२३॥ विषान्महाग्ने: पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः । मृद्ये मृद्येऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चाऽऽस्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥

अन्वयः हे हृषीकेश यथा खलेन कंसेन रुद्धा चिरं शुचार्पिता देवकी विमोचिता हे विभो अहं च सहात्मजा त्वयैव नाथेन विपद्गणात् मुहु:विमोचिता । विषात्, महाग्नेः, पुरुषाद दर्शनात् असत् सभायाः वनवासकृछ्तः मृधे मृधे अनेकमहारथास्त्रतः, द्रौण्यस्त्रतः च हे हरे अभिरक्षिताः च आस्म ।।२३-२४।।

अनुवाद हे हषीकेश ! जिस तरह दुष्ट कंस के द्वारा कैद की गयी तथा दीर्घकाल से शोकग्रस्त देवकीजी की आपने रक्षा की थी उसी प्रकार पुत्रों के साथ आपने मेरी भी रक्षा विपत्तियों से बार-बार की है । विष से, लाक्षागृह की अग्नि से, हिडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, दुष्ट दुर्योधन आदि की द्यूत सभा में तथा वनवास कालीन विपत्ति से, अनेक बार के युद्धों में महारिथयों के महास्त्रों से तथा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से आपने हम सबों की रक्षा की है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृतोपकाराननुस्मरति– यथेति द्वाभ्याम् । अयमर्थः– मातृतोऽपि मय्यधिका तव प्रीतिः । तथा हि, हे हृषीकेश, यथा देवकी कंसेन रुद्धा त्वया विमोचिता, अहं च तथैव किं विमोचितेति काक्वा महान्विशेष उक्तः । तं दर्शयित– सातिचिरं रुद्धा सती तस्मादेव सकृद्धिमोचिता तथा शुचार्पिता च सतीं न च तस्याः पुत्रा रिक्षताः । अस्ति चान्यो नाथस्तस्याः । अहं तु विपद्गणात्तत्रापि मुहुः शीघ्रं च सात्मजा च त्वयैव च नाथेनेति ।।२३।। विपद्गणमेव दर्शयित । विषाद्भीमस्य विषमोदकदानात्। महाग्नेर्जतुगृहदाहात्। पुरुषादा हिडिम्बादयो राक्षसास्तेषां दर्शनात् । असत्सभाया द्यृतस्थानात् । अभितो रिक्षता आस्म अभवाम ।।२४।।

श्रीभगवान् के द्वारा किए गये उपकारों को यथा इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा कुन्ती देवी स्मरण करती हैं । कहने का अभिप्राय है कि आपका अपनी माता से भी मुझ पर अधिक स्नेह हैं वह इस प्रकार से है कि हे हृषीं केश ! जिस तरह कंस के द्वारा कैद की गयी देवकी को आपने कैद से मुक्त किया किन्तु में भी क्या उसी तरह से मुक्त हुयी हूँ ? मुझको तो आपने बार-बार विपत्तियों से बचाया है । उसीको वे बतलाती हैं । देवकी तो दीर्घकाल से केद की गयी थीं और दीर्घकाल से शोक सन्तप्त थीं उनको आपने एक ही बार मुक्त किया । आपने देवकी के पुत्रों की भी रक्षा नहीं की । उसका कारण यह था कि देवकी के दूसरे रक्षक वसुदेवजी हैं । मेरी तो बार-बार तथा शीघ्र ही आपने रक्षा की क्योंकि मेरे नाथ तो आप ही हैं ॥२३॥

उन विपत्तियों को वे बतलाती हैं विषमय मिष्ठात्र खाने पर आपने भीम की रक्षा की; लाक्षागृह में जली हुयी भयङ्कर अग्नि से, हीडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, आपने रक्षा की । दुर्योधन आदि दुष्टों के द्यूत स्थान से भी आपने रक्षा की । इस तरह हम आपके द्वारा बार-बार रिक्षत हैं ॥२४॥

विपदः सन्तु नः शश्चत्तत्र तत्र जगहुरो । भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।२५।।

अन्वयः हे जगद्भुरो ! नः तत्र-तत्र शश्वत् विपदः एव सन्तु यत् अपुनर्भव दर्शनम् भवतः दर्शनम् ।।२५।।

अनुवाद— हे जगद्गुरो हमलोगों पर बार-बार सदा विपत्तियाँ ही आती रहें, क्योंकि उससे आपका दर्शन होता है । और आपके दर्शन से संसार चक्र से मुक्ति मिल जाती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यत् यासु विपत्सु । कीदृशं दर्शनम् । नास्ति पुनरिप भवदर्शनं यस्मात् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों पर सदा विपत्तियाँ इसलिए आती रहें कि उन विपत्तियों में आपका दर्शन होता है और वह दर्शन ऐसा है कि उससे फिर इस संसार का दर्शन नहीं होता । अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्र रूपी इस संसार से मुक्ति मिल जाती हैं ॥२५॥

जन्मैश्चर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् । नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामिकंचनगोचरम् ॥२६॥

अन्वयः जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिः एधमानमदः पुमान् अकिंचन गोचरम् त्वाम् वै अभिधातुं न अर्हति ।।२६।।

अनुवाद सद्वंश में जन्म, एश्वर्य, ज्ञान तथा श्री से जिसका मद बढ़ता है वह पुरुष तो आपका नाम भी नहीं ले सकता है, क्योंकि आप अकिञ्चन पुरुषों को ही दर्शन देते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

संपदस्तु श्रेय: परिपन्थिन्य इत्याह- जन्म सत्कुले । जन्मादिभिरेधमानो मदो यस्य सः । अभिधातुं श्रीकृष्णगोविन्देति वक्तुमपि । अकिंचनानां गोचरं विषयभूतम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

सम्पत्तियाँ तो मुक्ति की विरोधिनी हैं इस बात को जन्मैश्चर्य इत्यादि श्लोक से कहा गया है। सद्वंश में जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा धन सम्पत्ति से तो मनुष्य का मद ही बढ़ता है। इन सबों से जिस व्यक्ति का मद (अहङ्कार) बढ़ जाता है वह व्यक्ति तो श्रीभगवान् के कृष्ण गोविन्द इत्यादि नामों का भी उच्चारण नहीं कर सकता है। क्योंकि आप तो अकिञ्चन जीवों के विषय हैं। अकिञ्चन शब्द का अर्थ है जिसके पास इन जन्मादिकों में

से कुछ भी नहीं है। अकिश्चन शब्द का दूसरा अर्थ है कि जो मनुष्य आपसे भिन्न किसी भी वस्तु को परमार्थ नहीं मानता है, ऐसे जो आपके ऐकान्तिक भक्त हैं, वह भी अकिश्चन हैं। ऐसे अकिश्चन भक्तों को ही आप दर्शन देते हैं।।२६।।

नमोऽकिञ्चनिवत्ताय निवृत्तगुणवृत्तये । आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥

अन्वयः अकिंचन वित्ताय, निवृत्तगुणवृत्तये, आत्मारामाय, शान्ताय कैवल्यपतये नमः ।।२७।।

अनुवाद अिकञ्चन पुरुषों के परम धन स्वरूप आपको नमस्कार है, माया के गुणों के संस्पर्श से भी रिहत आपको नमस्कार है, अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले आपको नमस्कार है, परमशान्त स्वरूप आपको नमस्कार है तथा कैवल्य (मोक्ष) को प्रदान करने वाले आप को नमस्कार हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमनोरथपूरणाय पुनः प्रणमित । अकिंचना भक्ता एव वित्तं सर्वस्वं यस्य तस्मै । ततः किम् । निवृत्ता गुणवृत्तयो धर्मार्थकामविषया यस्मात्तस्मै । तत्कुतः । आत्मारामाय । तत्कुतः । शान्ताय रागादिरहिताय । किंच कैवल्यपतये कैवल्यं दातुं समर्थाय ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपने मनोरथ की पूर्ति करने के लिए कुन्ती पुनः श्रीभगवान् को प्रणाम करती हैं अिकंचन भक्त ही जिन श्रीभगवान् के सर्वस्व हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है। जिनके श्रीभगवान् से धर्म, जो सत्त्वादि गुणों के फल हैं धर्म, अर्थ, काम, वे सदैव जिनसे दूर रहा करते हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है। अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। रागादि से रहित होने के कारण परम शान्त श्रीभगवान् को नमस्कार है, किञ्च कैवल्य रूपी मोक्ष प्रदान करने में समर्थ श्रीभगवान् को नमस्कार है। अिकञ्चनिताय पद में समान्यतः षष्ठी तत्पुरुष समास करके अिकञ्चन के परम धन स्वरूप अर्थ किया जाता है। किन्तुश्रीधरस्वामी अिकंचन वित्ताय पद में कर्मधारय समास करके कहते हैं- अिकञ्चना भक्ता एवं वित्तं यस्य तस्मै। अर्थात् अिकंचन भक्त ही श्रीभगवान् के परम धन हैं। यह अर्थ बड़ा ही मनोहर है।।२७॥

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् । समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥

अन्वयः— अहं त्वां कालम् ईशानम्, अनादिनिधनं, विभुम् सर्वत्र समं चरन्तम् भूतानां यन्मिथः किलः ।।२८।। अनुवाद— मैं आपको काल स्वरूप, सबों के नियामक, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य, व्यापक तथा सर्वत्र समान रूप से संचरण करने वाला मानती हूँ । कारण भूत आपके ही कारण संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में स्वतः कलह हो रहा है । आपमें किसी भी प्रकार का वैषम्य नहीं है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु देवकीपुत्रं मां कथमेवं स्तौषि तत्राह । मन्थे त्वां कालं नतु देवकीपुत्रम् । तत्र हेतव:- ईशानं नियन्तारम् । अनादिनिधनमाद्यन्तशून्यम् । विभुं प्रभुम् । समं यथा भवति तथा सर्वत्र चरन्तम् । ननु पार्थसारथे: कथं मम साम्यं तत्राह। यद्यतस्त्वत्तो निमित्तभूताद्भूतानामेव मिथ: किल: कलहो भवित नतु स्वतस्त्विय वैषम्यम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो देवकी का पुत्र हूँ। तुम मेरी इस तरह से स्तुति क्यों कर रही हों तो इस पर कुन्ती देवी कहती हैं- मन्ये त्वाम् इत्यादि मैं तो आपको काल स्वरूप मानती हूँ केवल देवकी पुत्र नहीं मानती। ऐसा इसिलए कि आप सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य हैं, आप सबों के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक हैं, तथा समान रूप से सर्वत्र संचरण करने वाला मानती हूँ।

यदि आप कहें कि मैं तो अर्जुन का सारिथ हूँ आप मुझमें साम्य कैसे कह सकती हैं ? तो इस पर कुन्ती कहती हैं **यत भूतानां मिथः किलः ।** आपके ही लिए इस संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में कलह हो रहा है । अतएव आपमें वैषम्य का लेश भी नहीं है ॥२८॥

न वेद कश्चिद्धगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् । न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मितर्नृणाम् ॥२९॥

अन्वयः— हे भगवन् ! नृणां विडम्बनम् ईहमानस्य भवतः चिकीर्षितं कश्चित् न वेद, यस्य तव कश्चित् दियतः नास्ति किहिंचित् द्वेष्यः न च अस्ति । यस्मिन् त्विय नृणाम् मितः विषमा ।।२९।।

अनुवाद हे भगवन् ! मनुष्यों के समान लीला करना चाहने वाले आप क्या करना चाहते हैं, इस बात को कोई भी नहीं जानता है । आपका न तो कोई प्रिय है और न तो कोई द्वेष्य है । आपके विषय में मनुष्यों की ही बुद्धि विषमतामयी है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ननु निग्रहानुग्रहरूपं मिय प्रसिद्धं वैषम्यमत आह- न वेदेति । नृणां विडम्बनमनुकरणमीहमानस्य कुर्वतः । यस्मिस्त्विय विषमा मितरनुग्रहनिग्रहरूपा भवति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी विषमता के विषय में तो प्रसिद्ध हैं कि मैं किसी पर कृपा करता हूँ और किसी का निग्रह करता हूँ। तो इस पर कुन्ती देवी ने कहा न वेद इत्यादि । आप तो मनुष्यों का अनुकरण करना चाहते हैं और उसके अनुसार लीलाएँ करते भी है, किन्तु आप क्या करना चाहते हैं यह कोई भी नहीं जानता है। आपको न तो कोई प्रिय है और न तो अप्रिय, मनुष्य ही आपके विषय में निग्रह तथा अनुग्रह रूपी विषम बुद्धि करते हैं। १९॥

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः । तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३०॥

अन्वय:— हे विश्वात्मन् ते अजस्य जन्म, अकर्तुः कर्म यत् तिर्यङ्नृ षिषु यादः सु यत् जन्म तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥३०॥ अनुवाद— हे विश्वात्मन् ! आजन्मा होकर जो आप जन्म लेते है और अकर्ता होकर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं एवं तिर्यकों में, मनुष्यों में, ऋषियों एवं जलचरों में जो जन्म लेते हैं वह आपकी लीला ही हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ते अजस्य जन्म । अकर्तुः कर्म । तिर्यक्षु वराहादिरूपेण । नृषु रामादिरूपेण । ऋषिषु वामनादिरूपेण । यादःसु मत्स्यादिरूपेण ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप यद्यपि अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं अकर्ता हैं फिर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं। आप तिर्यक् योनि में वराह आदि रूप से जन्म लेते हैं, मनुष्यों में श्रीराम आदि रूप से, ऋषियों में वामन आदि रूप से तथा जलचरों में मत्स्य कूर्म आदि रूप से जो कर्म करते हैं वह अत्यन्त आश्चर्यमय आपकी लीला ही है ॥३०॥

गोप्याददे त्विय कृतागिस दाम तावद्या ते दशाश्रुकिललाञ्चनसंभ्रमाक्षम् । वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयित भीरिप यद्विभेति ॥३१॥

अन्वयः— कृतागिस त्विय तावद् गोपी दाम आददे अश्रुकिललाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य ते या दश सा मां विमोहयित यत् भीरिप विभेति ।।३१।। अनुवाद आपने जब दहीं का भाण्ड फोड़ दिया था उस अपराध के कारण गोपी (यशोदाजी) ने अपने हाथ में आपको बाँधने के लिए रस्सी ले लिया था उस समय रोने के कारण आँसुओं से मिलकर आपके आँखों का अञ्जन आपके पूरे मुख पर फैल गया था। उस मुख को आप भयभीत हुए से नीचे करके खड़े थे, आपकी वह दशा मुझको मोहित करती है। क्योंकि आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है।।३१।।

भावार्थ दीपिका

नरविडम्बनमत्याश्चर्यमित्याह- गोपीति । गोपी यशोदा त्विय कृतागिस दिधभाण्डस्फोटनं कृतवित यावद्दाम रज्जुमाददे जग्राह तावत्तत्क्षणमेव या ते दशावस्था सा मां विमोहयित । किंभूतस्य । अश्रुभिः किललं व्यामिश्रमञ्जनं ययोस्ते च ते संभ्रमेण व्याकुले अक्षिणी यस्मिंस्तद्वक्त्रं निनीयाधः कृत्वा ताडियष्यतीति भयस्य भावनया स्थितस्य । यद्यतस्त्वत्तो भीरिप स्वयं बिभेति तस्य ते दशा ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् द्वारा मनुष्यों का अनुकरण करना अत्याश्चर्यमय है, इस बात को बतलाती हुए कुन्ती देवी कहती हैं गोप्याददे इत्यादि। आपने जब दिध का मटका फोड़ दिया था उस अपराध के कारण यशोदाजी ने आपको बाँध देने के लिए अपने हाथ में रस्सी उठा लिया। उस समय आप की जो दशा हुयी उसको सोचकर मुझे भी मोह होता है। उस समय रोने के कारण आपकी आँखों का अञ्जन आंसू से मिलकर मुख पर फैल गया था। ऐसे मुख को आप नीचे करके भयभीत से खड़े हो गये थे। आपको भय था कि माँ मुझको मारेगी। आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है, आपकी वह दशा सोचकर मुझे भी मोह होता है।।३१।।

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये । यदोः प्रियस्यान्ववाय मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

अन्वयः केचित् त्वम् यदोः प्रियस्य अन्ववाये मलयस्य चन्दनम् इव पुण्य श्लोकस्य कीर्तये जातम् अजम् आहुः ॥३२॥ अनुवाद कुछ लोगों ने यह कहा है कि यदु के प्रियवंश में पुण्य कीर्ति महाराज युधिष्ठिर की कीर्ति को फैलाने के लिए अजन्मा भी आप उसी तरह से जन्म लिए हैं जिस तरह मलयाचल की कीर्ति के लिए उस पर चन्दन का वृक्ष उत्पन्न होता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अतएव जगन्मोहनतया दुर्ज्ञेयत्वात्तव जन्मादि बहुधा वर्णयन्तीत्याह- केचिदिति चतुर्भि: । पुण्यश्लोकस्य युधिष्ठिरस्य कीर्तये । यदोरेव कीर्तय इति वा । मलयस्य कीर्तये वंशे वा चन्दनं यथा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आपका जन्म आदि जगत् को मोहित कर देने वाला है अतएव उसके दुर्ज़ेय होने के कारण विचारक पुरुष उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। इस बात को कुन्ती देवी ने केचित् इत्यादि चार श्लोकों में कहा है। पुण्य श्लोकस्य कीर्तये का अर्थ महाराज् युधिष्ठिर की कीर्ति को बढ़ाने के लिए है। यदि पुण्यश्लोकस्य पद को यदो: का विशेषण मान लिया जाय तो अर्थ होगा कि पवित्र कीर्ति वाले यदु की कीर्ति को फैलाने के लिए शेष अर्थ अनुवाद के ही समान हैं। 13 २।।

अपरे वासुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् । अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥

अन्वयः— अपरे (कथयन्ति यत् पूर्वजन्मिन) वसुदेवदेवकीभ्यां (सुतपा पृष्टिनरूपेण) याचितः अजः त्वम्, अस्य, क्षेमाय सुरद्विषां वधाय च अभ्यगात् ॥३३॥

अनुवाद दूसरे लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ही पूर्वजन्म में सुतपा और पृष्टिन के रूप

में आपसे पुत्र होने का वरदान माँगा था अतएव आप वसुदेवजी के पुत्र के रूप में देवकीजी के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तथा वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यामज एव त्वमभ्यगात् । पुत्रत्विमिति शेषः प्रथमपुरुषस्त्वार्षः । अर्भत्विमिति पाठः सुगमः । ताभ्यामेव पूर्वं सुतपःपृश्चिरूपाभ्यां याचितः सन् । अस्य जगतः क्षेमाय ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने कहा कि दूसरे तरह कि लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ने पूर्व जन्म में सुतपा और पृष्टिन के रूप में तपस्या किया था और आपसे पुत्र होने का वर माँगा था। उसी के फल स्वरूप आप वसुदेव की पत्नी देवकीजी के गर्भ से अजन्मा भी होकर जन्म लिए। आपके जन्म का प्रयोजन इस जगत् का कल्याण और देव शत्रुओं का वध है। अभ्यगात् यह प्रथम पुरुष का प्रयोग आर्षप्रयोग होने के कारण है, अन्यथा अभ्यगाः यह पद होता।।३३।।

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ । सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥३४॥

अन्वयः— अन्ये उदधौ भूरिभारेण सीदन्त्याः नौरिव भूरि भारेण सीदन्त्याः भुवः भारावतरणाय आत्मभुवा अर्थितः जातः ।।३४।।

अनुवाद दूसरे लोग कहते हैं कि समुद्र में अत्यधिक भार के कारण डगमगाने वाली नौका के समान, दैत्यों के अत्यधिक पापों के भार से पीडित पृथिवी के भार को उतारने के लिए ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर आप अवतार ग्रहण किए हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मभुवेति ब्रह्मप्रार्थनस्य प्राधान्यविवक्षया ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे लोगों के अनुसार आपके इस अवतार का प्रधान कारण है ब्रह्माजी की प्रार्थना ।।३४।।

भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः । श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥

अन्वयः केचन अस्मिन् भवे, अविद्याकामकर्मभिः क्लिश्यमानानां श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन् जातः इति ।।३५।। अनुवाद दूसरे लोगों का कहना है कि इस संसार में अज्ञान, कामना तथा कर्मों के कारण पीड़ित लोगों द्वारा सुनने तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने की इच्छा से आपने यह अवतार ग्रहण किया है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

मतान्तरम् । परमानन्दस्वरूपाज्ञानमविद्या ततो देहाद्यभिमानात्कामस्ततः कर्माणि तैः क्लिश्यमानानां तन्निवृत्तये श्रवणाद्यर्हाणि कर्माणि करिष्यन् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे मतों को उपन्यस्त करती हुयी कुन्ती देवी कहती हैं कि कुछ लोगों के अनुसार परमानन्द स्वरूप विषयक अज्ञान से मोहित जीवों के हृदय में कामना उत्पन्न होती है, उसके पश्चात् वे उस कामना के अनुसार कर्मों को करते हैं। इस तरह अज्ञान कामना तथा कर्म इन तीनों के द्वारा वे जीव इस संसार में क्लेश का अनुभव करते हैं। उन जीवों के कल्याण के लिए, उन लोगों द्वारा सुनने योग्य तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने के लिए ही आपने इस अवतार को ग्रहण किया है।।३५।।

शृण्वन्ति गायान्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः । त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

अन्वयः जनाः तव इहितं अभीक्ष्णशः शृणविन्त, गायिन्त, गृणिन्त, स्मरिन्त, नन्दिन्त त एव तावकं पदाम्बुजम् अचिरेण पश्यिन्त भवप्रवाहोपरमं च कुर्विन्त ।।३६।।

अनुवाद आपके भक्तजन आपकी इन लीलाओं को बार-बार सुनते हैं, गाते हैं, उच्चारण करते हैं, स्मरण करते हैं तथा आनन्दित होते हैं । वे ही भक्तजन आपके चरण कमलों का शीघ्र ही साक्षात्कार कर लेते हैं और इस जन्म मरण के प्रवाह रूप संसारचक्र को अवरुद्ध कर देते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अस्य पक्षस्य सिद्धान्ततामभिप्रेत्य श्रवणादिफलमाह- शृण्वन्तीति । नन्दन्त्यन्यैः कीर्त्यमानमभिनन्दन्ति । ये जनाः । ईहितं चरितम् । तावकं त्वदीयं पदाम्बुजं त एव पश्यन्त्येव, अचिरेणैवेति च सर्वत्रावधारणम् । कीदृशम् । भवप्रवाहस्य जन्मपरम्पराया उपरमो यस्मिस्तत् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के पक्ष को ही सिद्धान्त रूप से मानकर कुन्तीदेवी श्रीभगवान् की लीलाओं के श्रवण आदि के फल को बतलाती हैं। नन्दिन्त का अर्थ है कि दूसरों द्वारा आपकी लीलाओं का कीर्तन किए जाने पर उसका अनुमोदन करते हैं। इहित शब्द चिरत का बोधक है। जो भक्तजन आपके चरण कमलों का साक्षात्कार करते हैं। यहाँ सर्वत्र एव इस अवधारणार्थक पद का अन्वय करना चाहिए। वे भक्त शिघ्र ही साक्षात्कार करते हैं। उसके कर लेने पर उनके इस जन्मपरम्परा का विराम हो जाता है।।३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहासिस स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः । येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥

अन्वयः— हे स्वकृतेहित प्रभो ! सुहृदः अनुजीविनः नः अपि अद्य जिहासिस स्वित् । राजसु योजितांहसाम् येषां नः भवतः पदाम्बुजात् अन्यत् परायणं न ।।३७।।

अनुवाद अपने लोगों के लिए अपेक्षित कार्यों को करने वाले हे प्रभो ! आपके सम्बन्धी तथा अनुजीवी हमलोगों को आज आप छोड़ना चाहते हैं क्या ? पृथिवी के अन्य राजाओं को हमलोगों ने तो दु:खी ही बनाया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं । ऐसे हमलोगों का आश्रय आपके चरण कमलों से भिन्न कोई नहीं है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तवास्मत्परित्यागोऽनुचित इत्याशयेनाह- अपीति चतुर्भि: । हे प्रभो , सुहृदोऽतिस्निग्धाननुजीविनश्च नोऽद्यापि स्वित् किंस्वित्त्वं जिहासिस । येषामस्माकमन्यत्परायणं नैवास्ति । तत्कुत: । राजसु योजितमंहो दु:खं यैस्तेषाम् । स्वानां कृतमीहितमपेक्षितं येन तस्य संबोधनम् । विसर्गान्तपाठे त्वंपदिवशेषणम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अब कुन्ती देवी बतलाती हैं कि इस समय हमलोगों को छोड़ना अनुचित है। इस बात को वे अध्यद्य **इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा बतलाती हैं। वे कहती हैं कि हे प्रभो! हमलोग आपके अत्यन्त स्निग्ध अनुचर हैं। आप तो अपने लोगों के लिए उनके अपेक्षित कर्मों को करते ही हैं। क्या आप हमलोगों को छोड़ देना चाहते हैं? आपके अतिरिक्त हमलोगों का कोई दूसरा आश्रय नहीं हैं। हमलोगों ने पृथिवी को दूसरे राजाओं को दुःख ही दिया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं। यदि स्वकृतेहितः पाठ होगा तो वह त्वम् पद का विशेषण हो जायेगा।

योजितांहसाम् का योजितम् अंहः दुखम् यै ते तेषाम् यह विग्रह है । स्वकृतेहित का विग्रह स्वानां कृतम् इहितम् अपेक्षितं येन तत् संबुद्धौ है ॥३७॥

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः । भवतोऽदर्शनं यहि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥

अन्वयः— ईशितुः विना हृषीकाणाम् इव यर्हि भवतः अदर्शनः तर्हि यदुभिः सह पाण्डवा वयम् नामरूपाभ्याम् के ?।।३८।।

अनुवाद— जिस तरह आत्मा के बिना इन्द्रियों की सत्ता समाप्त हो जाती है, उसी तरह जब आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो यादवों और हम पाण्डवों के नाम और रूप की सत्ता कैसे रह पायेगी ?।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तव बन्धवो यदवाः पुत्राश्च पाण्डवाः शूरा समर्थाश्च तिकं कार्पण्यं भाषसेऽत आह- के वयिमिति । यिर्हि भवतोऽदर्शनं यदा त्वमस्मात्र पश्यिस तदा नामरूपाभ्यां नाम्ना विख्यात्या रूपेण समृद्धया च यदुभिः सिहताः पाण्डवा नाम के वयं न केऽिप। अतितुच्छा इत्यर्थः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशितुर्जीवस्यादर्शने यथा न किंचित्राम च रूपं च तद्वत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम्हारे बान्धव यदुवंशी हैं और तुम्हारे पुत्र पाण्डव वीर और समर्थ भी हैं ऐसी स्थिति में तुम इतनी दीनतापूर्ण बातें क्यों कहती हो ? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा के वयम् इत्यादि जब आप हमलोगों को नहीं देखेंगे तो ऐसी स्थिति में नाम मात्र से व्याप्त तथा रूप से समृद्ध सभी यादव और पाण्डवों की क्या स्थिति होगी ? कुछ भी नहीं । यह उसी तरह से हो जायेगा जिस तरह से आत्मा के शरीर से निकल जाने पर न तो इन्द्रियों का नाम रह जाता है और न रूप रह जाता है ॥३८॥

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधरः । त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥३९॥

अन्वयः— हे गदाधर ! स्वलक्षणिवलिक्षतै: त्वत् पदै अङ्किता इयं यथा भाति तत्र इयं न शोभिष्यते ।।३९।।

अनुवाद हे गदाधर ! आपके विलक्षण चरण चिह्नों से अङ्कित यह कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि जिस तरह इस समय सुशोभित होती है, वह आपके यहाँ से चले जाने पर इस तरह से नहीं सुशोभित होगी ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

किंच । यथेदानीमियमस्मत्पाल्या भूमि: स्वैरसाधारणैर्वज्राङ्कुशादिभिर्लक्षणैर्विलक्षितैश्चि– ह्नितैस्त्वत्पदैरङ्किता सती भाति। तत्र तदा त्विय निर्गते सति न शोभिष्यते ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से हमलोगों के द्वारा पालन की जाने वाली कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि अपने असाधारण वज्र अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित आपके चरणों से अङ्कित होने के कारण सुशोभित होती है, आपके चले जाने पर यह उस तरह से सुशोभित नहीं होगी ॥३९॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः । वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥४०॥

अन्वयः— तव वीक्षितैः एव इमे सुपक्वौषधि वीरुधः स्वृद्धा इमे जनपदाः वनाद्रिनद्युदन्वन्तः एधन्ते ।।४०।। अनुवाद— आपके देखने मात्र से ही पकी हुयी फसलों तथा लताओं और वृक्षों से अच्छी तरह से समृद्ध ये जनपद तथा वन, पर्वत, नदी तथा समृद्र भी समृद्ध हो रहे हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अपि च इमे जनपदा देशाः स्वृद्धाः सुसमृद्धाः सन्तः ।।४०।।

आपके देखने से ही ये जनपद भी समृद्ध हैं ॥४०॥

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे । स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥

अन्वय:— अथ हे विश्वेश ! विश्वात्मन् । विश्वमूर्ते मे स्वकेषु पाण्डुषु वृष्णिषु च दृढं इमं स्नेह पाशम् छिन्धि ।।४१।। अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ! हे सम्पूर्ण जगत् शरीरक भगवन्! आप मेरे जो अपने पाण्डव एवं यदुवंशी हैं उनमें लगी हुयी मेरी ममता का जो बन्धन है, उसे आप काट दें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गमने पाण्डवानामकुशलमगमने च यादवानामित्युभयतो व्याकुलचित्ता सती तेषु स्नेहिनवृत्तिं प्रार्थयते- अथेति । विश्वेशेत्यादिसंबोधनानि स्नेहपाशच्छेदे सामर्थ्यख्यापनाय । दृढं सन्तम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चले जाने पर पाण्डवों के अकुशल को और नहीं जाने पर यदुवंशियों के अकुशल को सोचकर कुन्ती देवी का चित्त व्याकुल हो गया; अतएव वे भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि मेरा पाण्डवों एवं यादवों में स्नेह का जो बन्धन हैं, उसको आप दूर कर दें। कुन्ती देवी ने श्रीभगवान् को विश्वात्मन् इत्यादि सम्बोधनों से श्रीभगवान् के स्नेह पाश के बन्धन के काटने के सामर्थ्य को बोधित करने के लिए उनको संबोधित किया है। क्योंकि उनका पाण्डवों एवं यादवों में अत्यधिक स्नेह हैं।।४१।।

त्विय मेऽनन्यविषया मितर्मधुपतेऽसकृत् । रितमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौधमुदन्वित ॥४२॥

अन्वयः हे मधुपते ! उदन्वित गङ्गीघ इव मे त्विय अनन्यविषया मितः असकृत् रितम् उद्वहतात् ॥४२॥ अनुवाद जिस तरह गङ्गाजी की धारा निरन्तर समुद्र में ही गिरती है, उसी तरह अन्य सारे विषयों को त्यागकर मेरी बुद्ध सदा आप में ही प्रेम करें ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह- त्वयीति । अनम्यविषया सती मे मितः रितमुद्धहतात् । अनविच्छन्नां प्रीतिं करोत्वित्यर्थः । ओघं पूरम् । यथा गङ्गा प्रतिबन्धं न गणयत्येवं मितरिप विघ्नान्मा गणयित्विति भावः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि पाण्डवों और यादवों में रहने वाले प्रेम के बधन को काट देने से तुमको क्या मिलेगा? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी कहती हैं त्विय मे० इत्यादि जिस तरह से गङ्गा का अविरल प्रावाह निरन्तर समुद्र में हीं गिरता है, उसी तरह से हमारी भी अनन्य विषयिणी बुद्धि आपसे निरन्तर प्रेम करती रहे। जिस तरह गङ्गा का प्रवाह किसी विध्न की परवाह नहीं करता है उसी तरह से मेरी भी बुद्धि विध्नों की परवाह किए बिना निरन्तर आप में ही लगी रहे। अर।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णयृषभाविनध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य । गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥

अन्वयः— हे कृष्णसख श्रीकृष्ण वृष्णिऋषभ, अविनधुग राजन्यवंशदहन, अनपवर्गवीर्य, गोविन्द, गोद्विज सुरार्ति हरावतार, योगेश्वर, अखिलगुरो भगवान् ते नमः ।।४३।।

अनुवाद— हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ ! हे पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं

के बंश को जला देने वाले, भगवन् ! आपका पराक्रम कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आपका यह अवतार गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए हुआ है । हे योगेश्वर, हे चराचर के गुरु भगवन् आपको नमस्कार है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

एवमभ्यर्थ्य पुनः प्रणमति । हे श्रीकृष्ण, ते नमः उपकाराननुस्मरन्ती बहुधा संबोधयति । कृष्णसखार्जुनस्य सखे । वृष्णीनामृष्य श्रेष्ठ । अवन्यै भूम्यै दुद्वान्ति ये राजन्यास्तेषां वंशस्य दहन । एवमप्यनपवर्गवीर्याक्षीणप्रभाव । गोविन्द प्राप्तकामधेन्वैश्वर्यं गोद्विजसुराणामार्तिहरोऽवतारो यस्येति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से प्रार्थना करके कुन्ती देवी श्रीभगवान् के उपकारों का स्मरण करती हुयी श्रीभगवान् को नमस्कार की तथा उनको अनेक संबोधनों से सबोधित करती हैं- वे कहती हैं हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! आप वृष्णिवंशियों में श्रेष्ठ हैं । पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं के वंश को भस्म कर देने वाले आप अग्नि के समान हैं । ऐसा होने पर भी आप अनपवर्गवीर्थ हैं । अर्थात् आपका प्रभाव कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आप कामधेनु के समान ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । क्योंकि आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण हैं । आपका यह अवतार गौओं ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने वाला है । अविनिधुग्राजन्यवंशदहन इस पद का विग्रह इस प्रकार है अवन्य भूम्य दुशन्त ये राजन्या: तेषा वंशस्य दहन ॥४३॥

सूत उवाच

पृथ्यवेत्वं कलपदैः परिणूताखिलोदयः । मन्दं जहसा वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥४४॥

अन्बयः - पृथया इत्यं कलपदैः परिणूताखिलोदयः वैकुण्ठः मायया मोहयन्निव मन्दं जहास ।।४४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह कुन्ती देवी द्वारा मनोहर पदों से स्तुति किए गये सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मुस्कुराने लगे ॥४४॥

भावार्च दीपिका

कलानि मधुराणि पदानि येषु तैर्वाक्यैः परिणृतः स्तुतोऽखिल उदयो महिमा यस्य सः । णु स्तुतावित्यस्मात् । परिणुतेति वक्तव्ये दीर्घरक्व-दोनुरोधेन । मन्दमीषत् । तस्य हास एव माया । वक्ष्यति हि हासो जनोन्मादकरी च माया इति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मधुर पदों से युक्त वाक्यों से कुन्ती देवी द्वारा स्तृति किए गये तथा सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मन्द-मन्द मुस्काने लगे। श्रीभगवान्की हँसी ही माया है। कहेंगे भी 'हासो जनोन्मादकरी च माया' अर्थात् श्रीभगवान् की हँसी मनुष्यों को उन्मत्त बना देने वाली माया है। परिपूर्वक 'णुस्तृती' धातु से परिणृत पद ब्युत्पन्न होता है किन्तु छन्द की दृष्टि से यहाँ पर परिणृत में दीर्घ उकार किया गया है।।४४॥ तां बाढिमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्यम् । स्वियश्च स्वपुरं यास्यन्त्रेम्णा राज्ञा निवारित: ॥४५॥

अन्वय:— ताम् बाढम् इत्युपामन्त्र्य गजसाह्रयम् प्रविश्य, स्त्रियह्र उपामन्त्र्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा प्रेम्णा निवारित: ।।४५।। अनुवाद— भगवान् ने कहा ठीक है आपका मुझमें प्रेम होगा । उसके पश्चात् हस्तिनापुर में प्रवेश करके सुभद्रा द्रौपदी आदि स्त्रियों से विदा लेकर जब भगवान् अपनी नगरी द्वारका जाना चाहते थे, उस समय महाराज युधिखिर ने उनको जाने से प्रेम पूर्वक रोक लिया ॥४५॥

भावार्घ दीपिका

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिरिति यत्प्रार्थितं तद्वाद्धमित्यङ्गीकृत्य रथस्थानाद्रजसाह्वयमागस्य प**श्वातां चान्याश्च सुभद्राप्रमुखाः** स्त्रिय उपामञ्यानुज्ञाप्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा युधिष्ठिरेण प्रेम्णाऽत्रैव किंबित्कालं निवसेति संप्रार्थ्य निवारितः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने यह प्रार्थना किया था कि आपमें मेरी अनन्य विषयिणी बुद्धि बनी रहे तो उसके विषय में भगवान ने कहा कि ठीक है। उस रथ स्थान से हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पश्चात् वे कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि स्थियों से विदा लेकर अपनी द्वारकापुरी में जाने की इच्छा वाले श्लीभगवान् को महाराज युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक प्रार्थना किया कि यहाँ ही कुछ दिन रहें और उन्होने श्लीभगवान् को जाने से रोक लिया ॥४५॥

व्यासाद्येरीश्वरेहाज्ञै: कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ॥४६॥

अन्वय:— ईश्वरेहाजै: व्यासाद्यै: अद्भुतकर्मणा कृष्णेन इतिहासै: प्रबोधितेऽपि राजा शुचार्पित: न अबुष्यत ।।४६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियो द्वारा तथा अद्भुत कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् के द्वारा इतिहासों के माध्यमों से सान्त्वना प्रदान करने पर भी अपने बन्धु बान्धवों के शोक से सन्तप्त राजा युधिष्ठिर को सान्त्वना नहीं प्राप्त हुयी ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अध भीष्मनिर्याणोत्सवं वक्तुमुपोद्धातकथां प्रस्तैति । व्यासाद्यैः प्रबोधितोऽपि शुचा व्याप्तः सन्नाबुध्यत विवेकं न प्राप। कृतः ईश्वरेहाया अज्ञैः । स्वभक्तभीष्मनिर्याणमहोत्सवाय राज्ञा सह कुरुक्षेत्रं गन्तव्यं तत्र तन्मुखेनैवायं प्रबोधनीय इतीश्वराभिप्रायःकार्यद्वयविधायकस्तमजानद्भिरित्यर्थः । श्लोकृष्णेनापि प्रबोधितो नाबुध्यत् । अत्र हेतुः- अद्भुतकर्मणेति । यथा कुरुपाण्डवसंधानार्थं गतोऽपि यथोचितमेव वदन्नपि विग्रहमेव दढीकृतवानेवमत्रापि प्रबोधयन्नबोधमेव दृढीचकारेत्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् भीष्म के परधाम गमनोत्सव का वर्णन करने के लिए उपोद्धात कथा को व्यासाद्यैः इत्यादि शलोक से उपन्यस्त किया गया है। राजा युधिष्ठिर शोक सन्तप्त थे। उनको अपने मारे गये बान्धवों के विषय में शोक था। उन ईश्वर की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियों ने भी उन्हें समझाया। ईश्वर की इच्छा थी कि अपने भक्त भीष्म के परधाम गमनमहोत्सव को देखने के लिए राजा युधिष्ठिर के साथ कुरुक्षेत्र चलना चाहिए और वहीं पर उनके ही मुख से युधिष्ठिर को प्रबोधित करवाना चाहिये। इन दो विषयों से सम्बद्ध था श्रीभगवान् का अभिप्राय, किन्तु व्यास आदि महर्षि भगवान् के इस अभिप्राय को नहीं जानते थे। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भी समझाये जाने पर वे सन्तुष्ट नहीं हुए। इसका कारण यह था कि भगवान् तो अद्भुत कर्मों को करने वाले हैं। जैसे कौरवों और पाण्डवों की सन्धि कराने के लिए गये हुए वे उसके अनुकूल बातों को करके भी श्रीभगवान् ने युद्ध को ही सुदृढ बना दिया, उसी तरह से राजा को समझाते हुए श्रीभगवान् ने राजा के अबोध को ही सुदृढ कर दिया।।४६॥

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् । प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥

अन्वयः हे विप्राः प्राकृतेन आत्मना स्नेहमोहवशं गतः, राजा धर्मसुतः सुहृदांवधम् चिन्तयन् आह ।।४७।।

अनुवाद है शौनकादि महर्षियों अपने अविवेक प्राप्त चित्त के द्वारा मरे हुओं के प्रति स्नेह होने के कारण और जीवितों के प्रति मोहग्रस्त होने के कारण धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने संबन्धियों के विषय में शोक करते हुए कहे ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अबोधमेव प्रपञ्चयति- आहेति षड्भिः । प्राकृतेनाविवेकव्याप्तेनात्मना चित्तेन । हे विप्राः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर के अविवेक का ही आह० इत्यादि छह श्लोकों से विस्तार से सूतजी वर्णन करते हैं। मूल के प्राकृतेनात्मना पद का विग्रह है, प्राकृतेन अविवेकव्याप्तेन आत्मना । अर्थात् अविवेक ग्रस्त चित्त के द्वारा ॥४७॥

अहो मे पश्यताज्ञानं हदि रूढं दुरात्मनः । पारक्यस्यैव देहस्य वह्नयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥४८॥

अन्वय: अहो मे दुरात्मन: हृदि रूढं अज्ञानं पश्यत, पारक्यस्यैव देहस्य कृते मे बह्वय: अक्षौहिणी: हता: ।।४८।। अनुवाद मुझ दुरात्मा के हृदय में रूढ अज्ञान को तो देखों कि कुत्ते तथा शृङ्गाल के भोजन भूत इस शरीर के लिए मेरी कई अक्षैहिणी सेना मार दी गयी ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

पारक्यस्य श्वशृगालाद्याहारस्य देहस्यार्थे । मे मया । अक्षौहिणीरक्षौहिण्यः । अक्षौहिणीप्रमाणं तु व्यासेनोक्तम् - 'अक्षौहिणी प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः । संख्यागणनतत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ।। शतान्युपि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्तिः । गजानां च प्रसंख्यानमेतदेव प्रकीर्तितम् । ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामिप पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चैव हि । पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्चानां शतानि च । दशोत्तराणि षद् प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः । एतामक्षौहिणीं प्राहुर्यथाविदह संख्यया ।' इति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यह शरीर पारक्य है अर्थात् कुत्तों और स्यारों का भोजन स्वरूप है, इसी शरीर के लिए मैंने अपनी अनेक अक्षौहिणी सेना को मरवा दिया। अक्षौहिणी सेना के प्रमाण को बतलाते हुए महर्षि व्यास ने महाभारत में कहा है श्रेष्ठ ब्राह्मणों अक्षौहिणी सेना की संख्या और प्रमाण के विषय में संख्या तत्त्व को जानने वालों ने कहा है कि उसमें इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ होते हैं तथा इतने ही हाथी होते हैं। उसमें एक लाख नब्बे हजार तीन सौ पचास मनुष्य तथा संख्या तत्त्व को जानने वाले लोगों ने उसमें अश्वों की संख्या पैंसठ हजार छह सौ दश बतलायी है। इस तरह से अक्षौहिणी सेना की संख्या ठीक-ठीक बतलायी गयी हैं।।४८।।

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः । न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९॥

अन्वयः— बाल-द्विज-सुहन्मित्र-पितृभ्रातृगुरुद्वहः मे अयुतायुतैः अपि वर्षैः निरयात् मोक्षः न स्यात् ।।४९।। अनुवाद— बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र चाचा तथा गुरु से द्रोह करने वाले मेरी नरक से करोड़ों वर्षों में भी मुक्ति नहीं हो सकती है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

सुहृद: संबन्धिन: । मित्राणि सखाय: । पितर: पितृव्या: ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर कह रहे हैं कि मैंने बालकों, ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, मित्रों तथा चाचाओं एवं द्रोणाचार्य इत्यादि गुरुओं से इस युद्ध के माध्यम से द्रोह किया है। अतएव इसके फलस्वरूप मुझे करोड़ों वर्षों में भी नरक से मुक्ति नहीं मिलेगी ॥४९॥

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥

अन्वयः - प्रजाभर्तुः राज्ञः धर्मयुद्धे द्विषाम् वधः एनः न इति शासनं वचः मे बोधाय न कल्पते ।।५०।।

अनुवाद - प्रजाओं के स्वामी राजा के द्वारा धर्मयुद्ध में शत्रुओं का मारा जाना पापकारक नहीं होता है, यह शास्त्रीय वाक्य मुझे संतुष्ट नहीं कर पाता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

स्मृत्याद्यनुशासनाद्धर्मयुद्धे न दोष इति चेत्तत्राह- नैनो राज्ञ इति । द्विषां वध एनः पापं न भवतीति यच्छासनं शिक्षारूपं वचः कुतो न कल्पते । यतस्तद्वचः प्रजाभर्तुरेव । अयं भावः । स्वप्रजानामन्यतो बाधे प्रसक्ते तद्वधोऽनुज्ञातः दुर्योधनेन तु प्रजायां पाल्यमानायां मया केवलं राज्यलोभेन हतत्वात्पापमेवेदमिति ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहा जाय कि स्मृतियों की वाणी है कि धर्मयुद्ध करने में पाप नहीं होता है तो इसके उत्तर में नैनो राज्ञ: इत्यादि श्लोक कहा गया है। यदि कहें कि धर्मयुद्ध में शत्रुओं को मारना पाप कारक नहीं होता है यह जो उपदेशात्मक वाक्य है उसे आप क्यों नहीं मानते हैं तो इसका उत्तर है कि वह वाक्य प्रजा के स्वामी के लिए है। कहने का अभिप्राय है कि अपनी प्रजा के दूसरे द्वारा वाधित होने पर उसका वध करने के लिए शास्त्र आज्ञा देता है। दुर्योधन के द्वारा ही प्रजापालन किया जा रहा था, मैंने तो केवल राज्य के लोभ से इन सबों को मारा अतएव यह तो पाप ही है।।५०।।

स्त्रीणं मन्द्रतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः । कर्मिभर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥

अन्वय:— इइ य: असौ मद्हतबन्धूनां स्त्रीणां द्रोह: उत्थित: तत् गृहमेधीयै: कर्मिभ: अहं व्यपोहितुं कल्पो न ॥५१॥ अनुवाद— इस युद्ध में जिनके बान्धव मार दिए गये हैं ऐसी स्त्रियों का जो द्रोह रूपी पाप मैंने किया है उसको मैं गृहस्थोचित यज्ञ यागादि कर्मों के द्वारा दूर नहीं कर सकता हूँ ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

किंच ! युद्धे पुंसां बधो भवतु नाम धर्मः स्त्रीणां तु मया हता बन्धवो यासां तासां योऽसौ द्रोहोऽनुिद्दृष्टोऽप्युित्यतस्तं व्यपोहितुमपाकर्तुं कल्पः समर्थो नाहम् । गृहमेधीयैर्गृहाश्रमविहितैः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात है कि मान लें कि युद्ध में पुरुषों का वध धर्म हैं किन्तु जिन स्त्रियों के बान्धवों को मैंने मार दिया है, उन सबों का जो अवर्णित द्रोह हुआ है, उसको तो मैं इन गृहस्थाश्रमोचित विहित यज्ञादि के द्वारा दूर नहीं ही कर सकता हूँ ॥५१॥

यथा पङ्कोन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् । भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्षुमर्हति ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्याय: ॥८॥

अन्वयः — यथा पङ्केन पङ्काम्भः (स्वच्छीकर्तं न शक्यते) सुरया वा सुराकृतम् तथैव यज्ञैः एकां भूतहत्याम् मार्ष्टुम् न अर्हति ॥५२॥

अनुवाद जिस तरह कीचड़ से गन्दे जल को स्वच्छ नहीं किया जा सकता है, अथवा मदिरा से मदिरा

की अपवित्रता को दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह हिंसा बहुल अश्वमेधादि यज्ञों के द्वारा एक भी प्राणी की हत्या का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता है ॥५२॥

इस तरह से श्रीमद्भागावत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा युधिष्ठिर के संताप का वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु'सर्व पाप्पानं तरित तरित ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेद' इति श्रुतेः पापमश्वमेधेन नश्येदेवेत्याशङ्क्य अविवेकिवजृम्भितं हेतुवादमाश्रित्य निराकरोति- यथेति । यथा घनपङ्केन पङ्काभ्भो न मृज्यते, यथा वा सुरालेशकृतमपावित्र्यं वह्वया सुरया न मृज्यते तथैव भूतहत्यामेकां प्रमादतो जातां बुद्धिपूर्विहंसाप्रायैर्यज्ञैर्माष्टुं शोधियतुं नार्हतीति ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।। भाव प्रकाशिका

सर्व पाप्पानम् इत्यादि श्रुति कहती है कि अश्वमेध यज्ञ करने वाला मनुष्य सभी पापों तथा ब्रह्महत्या जन्य पापों को भी नष्ट कर देता है, जो इस तरह से जानता है। इस श्रुति के अनुसार अश्वमेध याग करने से मनुष्य पापों को विनष्ट कर देता है, इस तरह की शङ्का करके युधिष्ठिर तर्क को अपनाकर उसका खण्डन करते हुए कहते हैं— जिस तरह कीचड़ से गदले पानी को साफ नहीं किया जा सकता है अथवा थोड़ी सी भी मदिरा जन्य अपवित्रता को बहुत अधिक मदिरा के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह प्रमादवशात् एक भी प्राणी की की गयी हत्या का प्रायश्चित्त इन बुद्धि पूर्वक किए जाने वाले हिंसा बहुल यज्ञों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। १५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।



नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर आदि का भीष्म के पास जाना तथा श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए भीष्मजी का प्राणत्याग करना सूत उवाच

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया । ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥ अन्वयः— इति प्रजाद्रोहात् भीतः ततः सर्वधर्मविवित्सया, विनशनं प्रागात्, यत्र देवव्रतः अपतत् ॥१॥ सूतजी ने कहा

अनुवाद इस तरह से प्रजाद्रोह से भयभीत महाराज युधिष्ठिर सभी धर्मों को जानने के लिए कुरुक्षेत्र गये जहाँ पर भीष्मजी शरशय्या पर पड़े थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिराय भीष्मेण सर्वधर्मनिरूपणम् । कृष्णस्तुतिश्च मुक्तिश्च नवमे तस्य वर्ण्यते । यदर्थं तस्याविवेकः श्रीकृष्णेन संवर्धितस्तद्दर्शयति- इतीति । सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया। विनशनं कुरुक्षेत्रम् । देवव्रतो भीष्मः ।।१।।

नवें अध्याय में भीष्मजी द्वारा युधिष्ठिर को सभी धर्मों का उपदेश तथा उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति एवं उनकी मुक्ति का वर्णन किया गया है ॥१॥

यदर्थिमत्यादि— भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस कार्य को करने के लिए राजा युधिष्ठिर के अविवेक को बढ़ाया उसी को इति भीतः इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है सर्वधर्मिविवित्सया पद का विग्रह है सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया । अर्थात् सभी धर्मों को जानने की इच्छा से विनशन कुरुक्षेत्र का नाम है । भीष्मजी का एक नाम देवव्रत है ॥१॥

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्चैः स्वर्णभूषितैः । अन्वगच्छन् थैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥२॥

अन्वयः हे विप्राः तदा सदश्वैः स्वर्णभूषितैः रथैः ते सर्वे भातरः तथा व्यासधौम्यादयः अन्वगच्छन् ।।२।। अनुवाद हे शौनकादि विप्रों ! उस समय अच्छे घोड़ों से युक्त तथा स्वर्ण जटित रथों पर सवार होकर वे सभी भाई गये तथा व्यास धौम्य इत्यादि विप्रों ने भी राजा युधिष्ठिर का अनुगमन किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सन्तः श्रेष्ठा अश्वा सेषु तै रथैः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

जिनमें श्रेष्ठ अश्व जुते थे ऐसे रथों से ॥२॥

भगवानिप विप्रर्षे रथेन सधनंजयः । स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥३॥

अन्वयः - विप्रर्षे ! सधनञ्जयः भगवानापि रथेन अन्वगच्छत् तैः स नृपः गुह्यकैः कुबेर इव व्यरोचत् ।।३।।

अनुवाद हे विप्रषें शौनकजी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ से उनके साथ गये। इन सबों से राजा युधिष्ठिर यक्षों द्वारा अनुगमन किए जाते हुए कुबेर के समान सुशोभित हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३।।

भाव प्रकाशिका— भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ रथ से राजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे गये। उससे राजा युधिष्ठिर की उसी तरह शोभा हो रही थी जिस तरह गुह्यकों (यक्षों) द्वारा अनुगमन किये जाने वाले कुबेर की शोभा होती है ॥३॥

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतिमवामरम् । प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥

अन्वयः— दिवश्च्युतम् अमरम् इव भूमौ निपतितं भीष्मं दृष्ट्वा चक्रिणा सह सानुगाः पाण्डवाः प्रणेमुः ।।४।।

अनुवाद— स्वर्ग से गिरे हुए देवता के समान पृथिवी पर पड़े हुए भीष्म को देखकर अनुचरों से युक्त पाण्डवों ने भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उनको प्रणाम किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सानुगाः परिवारसहिताः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मूल के सानुगाः पद का अर्थ परिवार के साथ है ॥४॥

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम । राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥५॥ अन्वयः— तत्र हे सत्तम ! भरतपुङ्गवम् द्रष्टुं सर्वे ब्रह्मर्षयः देवर्षयः च राजर्षयः च आसन् ॥५॥ अनुवाद हे महर्षियों में श्रेष्ठ शौनकजी उसी समय भरतवंशियों में श्रेष्ठ भीष्मजी को देखने के लिए वहाँ पर सभी ब्रह्मर्षि, सभी देवर्षि तथा सभी राजर्षि गण भी आ गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा । तत्रासन् । तत्क्षणमेवागता इत्यर्थः । भरतपुङ्गवं भीष्मम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में दो बार तत्र् शब्द का प्रयोग हुआ है। उसमें प्रथम तत्र शब्द का अर्थ है उसी क्षण और दूसरे तत्र शब्द का अर्थ है वहाँ पर, भरतपुङ्गव शब्द से भीष्मजी को कहा गया है।।५।।

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः । बृहदश्चो भरद्वाजः सिशष्यो रेणुकासुतः ॥६॥ विसष्ठ इन्द्रप्रमदिस्त्रतो गृत्समदोऽसितः । कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽ थ सुदर्शनः ॥७॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः । शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥८॥

अन्वयः पर्वतः, नारदः, धौम्यः, भगवान् बादरायणः, बृहदश्वः, भरद्वाजः, सिशष्यः रेणुकासुतः, वसिष्ठः, इन्द्रप्रमदः त्रितः, गृत्समदः, असितः, कक्षीवान्, गौतमः, अत्रिः, कौशिकः अथ सुदर्शनः, अन्येच अमलाः ब्रह्मरातादयः मुनयः कश्यपाङ्गिरसादयः आजग्मुः ॥६-८॥

अनुवाद हे शौनकजी पर्वत, नारद, धौम्य भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, अपने शिष्यों के साथ परशुरामजी, विसष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन, दूसरे भी शुद्धहृदय वाले शुकदेवजी इत्यादि महर्षिगण, कश्यप महर्षि तथा आङ्गरस महर्षि के पुत्र बृहस्पित आदि वहाँ आयें ।।६-८।।

भावार्थ दीपिका

रेणुकासुतः परशुरामः ब्रह्मरातः शुकः । आङ्गिरसो बृहस्पतिः ।।६-८।।

भाव प्रकाशिका

रेणुकासुत परशुरामजी का नाम है । ब्रह्मरात शुकदेवजी का नाम है । और आङ्गिरस बृहस्पति का नाम है क्योंकि वे आङ्गिरा महर्षि के पुत्र हैं ।।६-८।।

तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः । पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥९।

अन्वयः समेतान्तान् महाभागान् उपलभ्य देशकालविभागवित् वसूत्तमः उपलभ्य पूजयामास ।।९।।

अनुवाद— आये हुए उन सभी महाभागों का जानकार वसुओं में श्रेष्ठ भीष्मजी उन सबों की पूजा किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

वसूत्तमो भीष्म: । देशकालविभागविदित्युत्थातुमशक्यत्वाच्छयान एव मनसा वाचा च पूजयामासेत्यभिप्राय: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

वसूत्तम शब्द से भीष्मजी को कहा गया है। देश तथा काल के विभाग को जानने वाले भीष्मजी उठने में असमर्थ थे, अतएव सोये-सोये ही मन तथा वाणी से उनलोगों की पूजा किए ॥९॥

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् । हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥१०॥

अन्वयः— माययोपात्तविग्रहम् हृदिस्थं जगदीश्वरम् आसीनं कृष्णं च तत्प्रभावज्ञः पूजयामास ।।१०।।

अनुवाद माया के द्वारा शरीर धारण किए हुए, हृदय में विद्यमान जगत् के स्वामी सामने विद्यमान भगवान् श्रीकृष्ण की भी उन्होंने मन से पूजा की ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

हृदिस्थं सन्तं पुरतश्चासीनं पूजयामास ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

हृदय में विद्यमान तथा सामने बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण की उन्होंने मन ही मन पूजा की ॥१०॥ पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् । अभ्याचष्टानुरागास्त्रैरन्थीभूतेन चक्षुषा ॥११॥

अन्वयः प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्, उपासीनान् पाण्डुपुत्रान् अनुराग्रास्नैः अन्धीभूतेन चक्षुषा अभ्यचष्ट ॥११॥ अनुवाद नम्रता एवं प्रेम पूर्वक सन्निकट में बैठे हुए पाण्डुपुत्रों को प्रेमाश्रुओं से भरे नेत्रों से देखकर उन्होंने कहा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उपासीनान् समीपे उपविष्टान् । प्रश्रयो विनयः प्रेम स्नेहस्ताभ्यां सङ्गतानुपसन्नान् । पाठान्तरे ताभ्यामवनतान् । अभ्याचष्टाभ्यभाषत् । अनुरागास्नैः स्नेहाश्रुभिरन्धीभूतेन चक्षुषोपलक्षितः । ददर्शेति वा ।।११।।

भाव प्रकाशिका

सभी पाण्डव भीष्मजी के सिन्नकट में विनय एवं नम्रता पूर्वक बैठे थे, उन सबों को देखकर भीष्मजी की आँखों में प्रेमाश्रुभर गया । उन्होंने पाण्डवों से कहा अभ्याचष्ट का अर्थ देखा भी होगा ॥११॥

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः । जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥

अन्वयः अहो कष्टम्, अहो अन्याय्यम् यत् धर्मनन्दना यूयं विप्रधर्माच्युताश्रयाः क्लिष्टं जीवितुं नार्हर्थ ।।१२।। अनुवाद यह अत्यन्त निन्दित तथा महा अन्याय की बात है की आप लोग धर्मपुत्र हैं । ब्रह्मण, धर्मं और भगवान् अच्युत के आश्रित हैं । आपलोग कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं थे ।।१२।।

भावार्थदीपिका

अभिभाषणमाह अहो इत्येकादशभिः । हे धर्मनन्दनाः, क्लिष्टं यथा भवत्येवं जीवितुं नार्हथ यूयमिति यदेतदहो कष्टं जुगुप्सितम् । अहो अन्याय्यं चैतत् । यतो यूयं विप्रा धर्मीऽच्युतश्चाश्रयो येषां ते ।।१२।।

भावप्रकाशिका

भीष्मजी ने जो कहा उसको **अहोकष्टम्॰ इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है। भीष्मजी ने कहा कि तुमलोग धर्मपुत्र हो, कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं हो, किन्तु कष्ट भोगना पड़ा यह अत्यन्त निन्दित है। तथा यह अत्यन्त अन्यायमय है। क्योंकि आपलोगों के आश्रय तो ब्राह्मण, धर्म और भगवान् श्रीकृष्ण थे।

यद्यपि युधिष्ठिर ही धर्मपुत्र थे, फिर भी सभी पाण्डवों को धर्मपुत्र कहने का अभिप्राय है कि पाण्डवों में युधिष्ठिर ही प्रधान थे और उन्हीं के अनुसार सभी पाण्डव रहते थे ।।१२।।

संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा बधूः । युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहूः ॥१३॥

अन्वयः अतिरथे पाण्डौ संस्थिते तोकवती बालप्रजा वधूः पृथा युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् मुहुः प्राप्ता ।।१३।। अनुवाद अतिरथी पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर उस समय तुमलोग बहुत छोटे थे । बाल प्रजाओं वाली बधू कुन्ती तुमलोगों के कारण बार-बार बहुत अधिक कष्टों को भोगी ।।१३।।

किंच संस्थिते मृते । बालाः प्रजाः पुत्रा यस्याः सा । वधूश्चेति दैन्यं प्रदर्शितम् । तोकान्यपत्यानि तद्वती । अपत्यैः सह क्लेशान्प्राप्तेत्यर्थः ।।१३।।

भावप्रकाशिका

महाराज पाण्डु अतिरथ वीर थे उनकी मृत्यु हो जाने पर चूिक तुम लोग बहुत छोटे थे । इन छोटे बच्चों वाली वधू कुन्ती ने बार-बार तुमलोगों के साथ ही बहुत अधिक कष्ट भोगा ।।१३।।

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् । सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४॥

अन्वयः भवतां यत् अप्रियं तत् सर्वं कालकृतम् मन्ये, धनावलिः वायोः इव यद्वशे सपालः लोकः ।।१४।।

अनुवाद— मैं मानता हूँ कि आपलोगों को जो कष्ट भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत ही है । जिस काल के अधीन लोकपालों सहित यह सारा जगत् उसी तरह रहता है जिस तरह वायु के अधीन मेघ समूह रहता है ।।१४।।

भावार्थदीपिका

कालकृतत्वेन शोकं वारयति-सर्वमिति द्वाभ्याम् । भवतामि । यद्वशे यस्य वशवर्ती ।।१४।।

भावप्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि आपलोगों को जो कष्टों को भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत है। उसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं है। काल सबको अपने वश में रखता है। काल के ही अधीन सभी लोकपाल रहा करते है। इसका उदाहरण उन्होंने बतलाया जिस तरह वायु जिधर चाहती है उसी तरफ मेघ समूह को उड़ा ले जाती हैं।।१४॥

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः । कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५॥

अन्वयः यत्र धर्मसुतो राजा, गदापाणिः वृकोदरः, अस्त्री कृष्णः, गाण्डीवं चापं, सुहृत् कृष्णः ततः विपत् :।।१५।।

अनुवाद— अन्यथा जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर राजा हों, भीम जैसे गदाधारी हो, अर्जुन जैसे अस्त्र धारण करने वाले हों जहाँ गाण्डीव जैसा धनुष हो एवं भगवान् श्रीकृष्ण जैसे सम्बन्धी भी हों वहाँ पर विपत्ति कैसे सम्भव थीं ?॥१५॥

भावार्थदीपिका

अहो दुर्घटघटनापदुः काल इत्याह- यत्रेति । कृष्णोऽर्जुनः अस्त्री धन्वी । ततस्तत्रापि विपत् । पुण्यशारीरबला-स्त्रनैपुण्यशस्त्रदेवसंपत्तावपीत्यर्थः ।।१५।।

भावप्रकाशिका

यह काल असम्भव को भी सम्भव करने में अत्यन्त निपुण है, इस अर्थ का प्रतिपादन यत्र **इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। इस श्लोक में कृष्ण शब्द से अर्जुन को उसको धनुर्धारी बतलाया गया है। जहाँ पर पुण्य, शारीरिक बल, अस्त्र की निपुणता शस्त्र तथा देवता ये सभी विद्यमान हों वहाँ पर भी विपत्ति होना तो आश्चर्य की बात है। तुम पाण्डवों में सारे सुख के साधन विद्यमान थे फिर भी काल के अधीन रहने वाले तुम लोगों को कष्ट हुआ। यह काल का ही कार्य हैं ॥१५॥

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्युमान्वेद विधित्सितम् । यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥१६॥

अन्वयः - राजन् अस्य विधित्सितम् कर्हिचित पुमान् न वेद । यद्विजिज्ञासया युक्ता कवयः अपि मुह्यन्ति ।।१६।। अनुवाद - राजन् ! ये कालरूपधारी श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई मनुष्य कभी नहीं जान सकता है । इनके विषय में विशेष रूप से जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ।।१६॥

ननु कृष्णं कथं कालोऽतिक्रमेदित्यपेक्षायामाह । न ह्यस्य श्रीकृष्णस्येत्यङ्गुल्या निर्दिशति । विधित्सितं कर्तुमिष्टं यत्। यस्य विधित्सितस्य जिज्ञासया ।।१६।।

भावप्रकाशिका

यदि कहे कि भगवान् श्रीकृष्ण का अतिक्रमण काल कैसे कर सकता है ? तो इसके उत्तर में भीष्मजी **नहास्य ०** इत्यादि श्लोक कहते हैं । ये श्रीकृष्ण स्वयं काल हैं । इसिलए उनका अङ्गुल्या निर्देश करके कहते हैं कि ये क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई भी नहीं जान सकता है । श्रीभगवान् की विधित्सा के विषय में जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ॥१६॥

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ । तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥१७॥

अन्वयः तस्मात् हे भरतर्षभ इदं दैवतन्त्रं व्यवस्य तस्य अनुविहितः हे नाथ ! हे प्रभो ! अनाथाः प्रजाः पाहि ।।१७।। अनुवाद अतएव हे भरतवंश में श्रेष्ठ युधिष्ठिर, यह सबकुछ सुख दुःख परमात्माधीन है, इस बात का निश्चय करके आप इनका अनुवर्ती होकर हे कुल परम्परागत स्वामिन् ! हे समर्थ प्रभो ! आप अनाथ प्रजाओं का पालन करें ।।१७।।

भावार्थदीपिका

इदं सुखदुःखादि दैवतन्त्रमीश्वराधीनं व्यवस्य निश्चित्य तस्येश्वरस्यानुविहितोऽनुवर्ती सन् । कर्तरि क्तः । हे नाथ कुलपरम्परागतस्वामिन्, प्रभो समर्थ, अनाथाः प्रजाः पाहि ।।१७।।

भावप्रकाशिका

संसार में प्राप्त होने वाले सुख और दुःख परमात्माधीन हैं, इस बात का निश्चय करके इन परमात्म का अनुवर्ती बनकर हे कुल परम्परा से प्राप्त स्वामिन् ! हे समर्थ ! आप अब अनाथ प्रजाओं का पालन करें । अनुविहित: में कर्ता के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ हैं ।।१७।।

एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् । मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥१८॥

अन्वयः एष वै साक्षात् भगवान् आद्यः पुमान् नारायणः मायया लोकं मोहयन् वृष्णिषु गूढः चरित ।।१८।। अनुवाद ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं ये आदि पुरुष नारायण हैं, ये अपनी माया द्वारा जगत् को मोहित करके यदुवंशियों में छिपकर लीला कर रहे हैं ।।१८।।

भावार्थदीपिका

अनुविधेयः परमेश्वरश्च श्रीकृष्ण एवेत्याह । एष एव भगवान्सर्वेश्वरः । यत आद्यः पुमान् । तच्च कुतः । यतो नारायणः साक्षात् ।।१८।।

भावप्रकाशिका

श्रीकृष्ण भगवान् का अनुवर्तन करना चाहिए ये परमेश्वर हैं । अतएव भगवान् अर्थात् सर्वेश्वर हैं ये ही आदि पुरुष हैं क्योंकि ये साक्षात् नारायण ही हैं ॥१८॥

अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः । देवर्षिर्नारदः साक्षाद्धगवान्कपिलो नृप ॥१९॥

अन्वयः— नृप अस्य गुह्यतमं अनुभावं भगवान् शिवः वेद देवर्षिः नारदः भगवान् किपलश्च साक्षात् वेद ।।१९।। अनुवाद— इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शिव, देवर्षि नारद तथा भगवान् किपल साक्षात् जानते हैं ।।१९।।

तदुपपादयति- अस्येति । अनुभावं प्रभावम् ।।१९।।

भावप्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के नारायणत्व का प्रतिपादन करते हुए भीष्मजी कहते हैं कि इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शङ्कर साक्षात् जानते हैं, देवर्षि नारद तथा भगवान् कपिल भी साक्षात् जानते हैं।।१९।।

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहत्तमम् । अकरोः सचिवं दूतं सौहदादथ सारिथम् ॥२०॥

अन्वयः — यं त्वं मातुलेयम् प्रियं मित्रम्, सुहत्तमम् मन्यसे अथ सौहदात् सचिवं, दूतम् सारिथम् च अकरोः सोऽयं परमेश्वरः ॥२०॥

अनुवाद जिनको तुम अपना ममेरा भाई मानते हो, अत्यन्त स्नेहिल सम्बन्धी, मानते हो और इनके सौहार्द के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत तथा सारथि भी बना डाले ये साक्षात् परमेश्वर हैं ।।२०।।

भावार्थदीपिका

त्वमज्ञानाद्यमेवं मन्यसे । मातुलेयं देवक्याः सुतम् । प्रियं प्रीतिविषयम् । मित्रं प्रीतिकर्तारम् । सुहृत्तममुपकारानपेक्ष्योपकारकं च । सौहृदाद्विश्वासात् । अकरोः कृतवानसि । सचिवं मन्त्रिणम् ।।२०।।

भावप्रकाशिका

तुम अज्ञान के कारण जिनको ममेरा भाई, देवकी का पुत्र मानते हो, प्रिय मित्र मानते हो तथा सुहत्तम मानते हो अर्थात् यह मानते हो कि उपकार की अपेक्षा किए बिना ही उपकार करने वाले हैं तथा विश्वास के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत बनाये और सारिथ भी बनाया ये परमेश्वर हैं ॥२०॥

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः । तत्कृतं मितवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥२१॥

अन्वयः— सर्वात्मनः समदृशः, अद्वयस्य अनहंकृतेः, निरवद्यस्य तत् कृतं क्वचित् मतिवैषम्यं न ।।२१।।

अनुवाद सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्कार रहित तथा निष्पाप परमात्मा में कर्म को लेकर कहीं भी किसी प्रकार की बुद्धि की विषमता नहीं होती हैं ॥२१॥

भावार्थदीपिका

नन्वीश्वरश्चेत्कथं नीचे सारथ्यादौ प्रवृत्तस्तत्राह- सर्वेति । अस्य तत्कृतं नीचोच्चकर्मकृतं मम योग्यमयोग्यमिति मतेर्वेषम्यं क्वचिदिप नास्ति । कुतः । निरवद्यस्य रागादिशून्यस्य । तत्कुतः । अनहंकृतेः । तच्च कुतः । अद्वयस्य । तदिप कुतः । समदृशः। तत्रापि हेतुः- सर्वस्यात्मनः । यथेष्टं वा हेतुहेतुमद्भावः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि ये यदि ईश्वर हैं तो फिर सारिथ जैसे नीच कर्म को करने में इनकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? तो इसका उत्तर सर्वात्मन: इत्यादि श्लोक से दिया गया है। इन भगवान् श्रीकृष्ण की नीच कर्म को लेकर या उच्च कर्म को लेकर यह कार्य मेरे योग्य है यह मेरे योग्य नहीं है, इस प्रकार की बुद्धि की विषमता कही भी नहीं हैं, क्योंकि ये तो निरवद्य हैं, अर्थात् राग द्वेष आदि दोषों से रहित हैं, ऐसा इसलिए कि इनमें अहङ्कार है ही नहीं वह भी इसलिए है कि वे भेद रहित होने के कारण अद्वितीय हैं। समदर्शी हैं तथा सर्वात्मा है। अर्थात् समदर्शित्व के कारण सर्वात्मा हैं। समदर्शित्व और सर्वात्मत्व में हेतुहेतुमद्भाव है।।२१।।

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् । यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥

अन्वयः तथापि हे भूप ! एकान्तभक्तेषु अनुकम्पितम् पश्य यत् असून् त्यजतः मे साक्षात् कृष्णः दर्शनमागतः ।।२२।। अनुवाद फिर भी हे राजन् ! इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर अनुकम्पा तो देखो कि अपने प्राणों का त्याग करते समय ये भगवान् श्रीकृष्ण मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये ।।२२।।

भावार्थदीपिका

तथापि समत्वेऽपि । हे भूप, अनुकम्पितमनुकम्पाम् ।।२२।।

भावप्रकाशिका

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण समदर्शी हैं फिर भी इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर होने वाली कृपा को तो देखो इस समय मैं अपने प्राणों का परित्याग करने जा रहा हूँ और इस समय ये भगवान् मुझ पर कृपा करके मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये हैं ॥२२॥

भक्त्यावेश्य मनोयस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् । त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मिभः ॥२३॥

अन्वयः— भक्त्या यस्मिन् मनः आवेश्य, वाचा यन्नामगृणन्, कलेवरम् त्यजन् योगी कामकर्मभिः मुच्यते ।।२३।। अनुवाद— जिन श्रीभगवान में भक्ति के द्वारा अपने मन को लगाकर उनके नामों का उच्चारण करते हुए अपने शरीर का त्याग करने वाला योगी कामनाओं तथा कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।२३।।

भावार्थदीपिका

इदानीं स्वदेहत्यागपर्यन्तं श्रीकृष्णावस्थानं प्रार्थयते-भक्त्येति द्वाभ्याम् ।।२३।।

भावप्रकाशिका

अब भीष्मजी **भक्त्यावेश्य० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि तब तक वे उनके सामने बने रहें जब तक कि वे अपने शरीर का परित्याग करते हैं ॥२३॥

स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् । प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो घ्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥

अन्वयः— यावद् इदं कलेवरम् अहम् हिनोमि तावत् सः प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसत्मुखाम्बुजः ध्यानपथः चतुर्भुजः देवदेवः भगवान् प्रतीक्षताम् ।।२४।।

अनुवाद — भीष्मजी ने कहा जब तक मैं इस शरीर का परित्याग करता हूँ तब तक मनोहर हँसी और लाल कमल के समान मनोहर नेत्रों से युक्त मुख कमल वाले, जिनका ध्यान में ही चतुर्भुज रूप से दर्शन होता है ऐसे देवताओं के भी आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें ॥२४॥

भावार्थदीपिका

यावदिति विलम्बं द्योतयित । अहं हिनोमि त्यजामीति स्वातन्त्र्यम् । इदिमित्यनात्मत्वेन ज्ञातम् । प्रसन्नहासेनरुणलोचनाभ्यां चोल्लसद्गुचिरं मुखाम्बुजं यस्य । ध्यानस्य पन्था विषय: । योऽन्यैश्चिन्त्यते केवलं सोऽग्रत: स्थित: सन्मां प्रतीक्षतामित्यर्थ: ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी **यावत्** पद का प्रयोग करके शरीर त्याग करने में होने वाले विलम्ब को सूचित करते हैं । अहं हिनोमि इस वाक्यांश के द्वारा उन्होंने शरीर त्याग के विषय में अपने स्वतन्त्र्य को सूचित किया है । इदम् शब्द के द्वारा उन्होंने सूचित किया है कि शरीर आत्मा से भिन्न है । ध्यानपथ: अर्थात् ध्यान में प्रतीत होने वाले ।

जिन श्रीभगवान् का दूसरे लोग चिन्तन करते हैं वे भगवान् मेरे आँखों के सामने स्थित रहकर मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें। प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लन्मुखाम्बुजः पद का विग्रह इस प्रकार है प्रसन्नहासेन अरुण लोचनाभ्याम् च उल्लसद्रुचिरं मुखाम्बुजम् यस्य सः ॥२४॥

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्चरे । अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥२५॥

अन्वयः -- तदाकर्ण्य युधिष्ठिरः शरपञ्जरे शयानं ऋषीणां च अनुशृण्वताम् विविधान् धर्मान अपृच्छत् ।।२५।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद भीष्मजी के उस वाक्य को सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने शरशय्या पर सोये हुए भीष्मजी से ऋषियों के सामने ही अनेक धर्मों के विषय में प्रश्न किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत् सानुकम्पं वाक्यमाकर्ण्य ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी के अनुकम्पायुक्त वाक्य को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीष्मजी से अनेक धर्मों के रहस्यों के विषय में पूछा ॥२५॥

पुरुषस्वभाविहितान्यथावर्णं यथाश्रमम्। वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥ दानद्यर्मात्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः । स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥२७॥ द्यम्थिकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने। नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित्॥२८॥

अन्वयः— हे मुने ! तत्त्ववित् भीष्मः यथावर्णं यथाश्रमम् पुरुषस्वभावविहितान् वैराग्यरागोपाधिभ्याम् आम्नातोभय लक्षणान् दानधर्मान्, राजधर्मान, मोक्षधर्मान् स्त्रीधर्मान्, भगवद्धर्मान् विभागशः समास व्यासयोगतः धर्मार्थकाममोक्षान् च सहोपायान् यथा नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास ।।२६-२८।।

अनुवाद हे शौनकजी ! तत्त्ववेता भीष्मजी ने वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार पुरुषों के स्वाभाविक धर्मरूप से बतलाये गये वैराग्य तथा राग रूपी उपाधियों के कारण निवृत्ति तथा प्रवृत्ति इन दोनों प्रकार के धर्मों का वर्णन किया । उन्होंने, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म तथा भगवद्धर्म को अलग-अलग विभाग पूर्वक संक्षेप में तथा विस्तार से वर्णन किया । हे मुने ! उन्होंने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों का तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का भी अनेक आख्यानों और इतिहासों के माध्यम से वर्णन किया ।।२६-२८।।

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्वभावेन विहितात्ररजातिसाधारणान् वर्णयामासेति तृतीयेनान्वयः । यथावर्णं वर्णधर्मान् । यथाश्रममाश्रमधर्माश्च। वैराग्यरागाभ्यामुपाधिभ्यां क्रमेणाम्नतमुभयं निवृत्तिप्रवृत्तिरूपं लक्षणं येषां तान् ।।२६।। पुनस्तत्रैव विशेषमाह- दानेति । मोक्षधर्मान् शमदमादीन् । भगवद्धर्मान् हरितोषणान् द्वादश्यादिनियमरूपान् । समासव्यासौ संक्षेपविस्तारौ तावेव योगावुपायौ ततस्ताभ्याम्।।२७।। धर्मादीश्च यथाधिकारं प्रतिनियतोपायसहितान् । यथा यथावत् नानाख्यानेषु ये इतिहासास्तेषु यथा सन्ति तथा वर्णयामासेति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पुरुष स्वभाव के अनुसार मनुष्य जाति के लिए समान रूप से बतलाये गये धर्मों का वर्णन किया **यथावर्णम्** अर्थात् तत्-तत् वर्णों के जो धर्म हैं, एवं तत्-तत् आश्रमों के जो धर्म हैं उन वैराग्योपिध से युक्त निवृत्ति धर्मों एवं रागोपिध से युक्त प्रवृत्ति धर्मों का भी उन्होंने वर्णन किया ।

पुनस्तत्रैव विशेषम्० इत्यादि- उसके पश्चात् उन सबों में होने वाली विशेषताओं को बतलाते हुए कहते हैं- दानधर्मान्० इत्यादि दानधर्म, शम दम इत्यादि रूप मोक्षधर्मों द्वादशी आदि तिथियों को उपवास आदि के नियमों से युक्त श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले मोक्षधर्मों को, उनके उपायों के साथ उन्होंने संक्षेप में तथा विस्तार से बतलाया । इनमें जो धर्म जिसके लिए बतलाये गये हैं, उनके पालन में जिन लोगों का अधिकार है, तथा उनके अनुष्ठान के जो निश्चित किए गये उपाय हैं, इन सबों के साथ उन्होंने बतलाया । अनेक आख्यानों तथा इतिहासों में वे जैसे वर्णित किए गये हैं वैसे ही उन सबों को उन्होंने युधिष्ठिर को बतलाया ॥२६-२८॥

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः । यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छतस्तूत्तरायणः ॥२९॥

अन्वयः— धर्मं प्रवदतः तस्य सः उत्तरायणः कालः समुपस्थितः यः छन्दमृत्योः योगिनः वाञ्छितः ॥२९॥ अनुवाद— इस तरह से धर्मोपदेश करते हुए वह उत्तरायण का समय आ गया जिसको अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करने वाले योगिजन चाहते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

छन्देनेच्छया मृत्युर्यस्य ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इन सभी धर्मों का उपदेश करते हुए दक्षिणायन का काल समाप्त हो गया और उत्तरायण आ गया । यह वहीं समय है जिस समय में योगिजन अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करते हैं । **छन्दमृत्योः** पद का विग्रह **छन्देन इच्छया मृत्युः यस्य** है ॥२९॥

तदोपसंहत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे । कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यद्यारयत् ॥३०॥

अन्वयः— तदा सहस्रणी: गिर: उपसंहत्य, पुर:स्थिते लसत्पीतपटे चतुर्भुजे आदिपुरुषे कृष्णे आमीलितदृक् विमुक्त सङ्गम् मन: व्यधारयत् ।

अनुवाद— उस समय भीष्मजी ने बोलना बन्द कर दिया और सामने विद्यमान सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए, चतुर्भुज रूपधारी आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में अपने नि:सङ्ग मन को तथा खुली हुयी आँखों को लगा दिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रणीर्युद्धे समीपस्थान् सहस्रं रथिनो नयति पालयतीति सहस्रणीर्भीष्मः । 'सहस्रिणीः' इति पाठे सहस्रार्थवतीर्गिरः। लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तस्मिन् अमीलितदृगेव मनो व्यधारयत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

सहस्राणी उस वीर को कहते हैं जो युद्ध में अपने सिन्नकटस्थ एक हजार रिथयों की रक्षा करता है। भीष्मजी सहस्राणी थे। जहाँ पर सहिस्राणी पाठ है, वहाँ पर हजारों अर्थों वाली वाणी अर्थ होगा। लसत् पीतपटे का विग्रह है, लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तिस्मन् है। भीष्मजी ने अपनी मन को सभी विषयों से समेट कर भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और एकटक से वे भगवान् श्रीकृष्ण को देखने लगे।।३०।।

विशुद्धया घारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुघव्यथः । निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनम् ॥३१॥

अन्वयः— तदीक्षयैव आशु गतायुधव्यथः विशुद्धया धारणया हताशुभः, निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमः जन्यं विसृजन् जनार्दनं तुष्टाव ।।३१।। अनुवाद श्रीभगवान् का दर्शन करने मात्र से ही उनकी आयुधों के प्रहार की जो व्यथा थी दूर हो गयी, और श्रीभगवान् में विशुद्ध धारणा होने के कारण उनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये। उन्होंने अपनी सारी इन्द्रियों के विलास का परित्याग कर दिया तथा इस शरीर का परित्याग करने की इच्छा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अनयैव विशुद्धया धारणया हतमशुभं यस्य सः । तस्य श्रीकृष्णस्येक्षया कृपादृष्ट्यैव गत आयुधश्रमो यस्य सः । अतएव निवृत्तः सर्वेन्द्रियवृत्तीनां विभ्रमो विविधं भ्रमणं यस्मात्सः । जन्यं देहं जनार्दनमस्तौत् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इसी धारणा के द्वारा जिनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये थे तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टि के कारण जिनकी आयुध प्रहार जन्य व्यथा समाप्त हो गयी थी, अतएव उनकी इन्द्रियों का चाञ्चल्य समाप्त हो गया था। इस प्रकार के भीष्मजी अपने इस शरीर को त्यागने की इच्छा से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥३१॥

भीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवित सात्वतपुङ्गवे विभूमि । स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

अन्वयः इति सात्त्वपुङ्गवे विभूम्नि, स्वसुखमुपगते भगवति क्वचिद् विहर्तुम् प्रकृतिमुपेयुषि वितृष्णा भक्तिः उपकल्पिता यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

श्रीभीष्मजी ने कहा

अनुवाद अब मैं सात्त्वतों में श्रेष्ठ स्वेतर समस्त वस्त्वपेक्षया महान् होने के कारण अनन्त तथा स्वरूप भूत परमानन्द में स्थित रहते हुए कभी-कभी कहीं पर विहार करने के लिए अपनी योगमाया को जो अपनाते हैं ऐसे श्रीभगवान् में अपनी निष्काम बुद्धि को समर्पित करता हूँ। जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

परमफलरूपां श्रीकृष्णे रितं प्रार्थीयतुं प्रथमं स्वकृतमर्पयित । इति नानाधर्माद्युपायैर्मितर्मनोधारणलक्षणा उपकिल्पता समर्पिता । क्व । सात्वतानां पुङ्गवे श्रेष्ठे भगवित । वितृष्णा निष्कामा । अवितृष्णेति वा छेदः । अवितृप्तेत्यर्थः । विगतो भूमा यस्मात्तस्मिन् । यमपेक्ष्यान्यत्र महत्त्वं नास्तीत्यर्थः । तदेव परमैश्वर्यमाह । स्वसुखं स्वस्वरूपभूतं परमानन्दमुपगते प्राप्तवत्येव। क्विचत् कदाचिद्विहर्तुं क्रीडितुं प्रकृतिं योगमायामुपेयुषि स्वीकृतवित नतु स्वरूपितरोधानेन जीववत्पारतन्त्र्यमित्यर्थः । विहर्तुमिति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयित । यद्यतः प्रकृतेर्भवप्रवाहः सृष्टिपरम्परा भवित ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमाभिक्त का होना ही जीवन का सबसे बड़ा फल है। उसके लिए प्रार्थना करने के लिए अपने किए हुए कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करते हुए भीष्मजी कहते हैं। इतिमितरुपकिल्पता इत्यादि अनेक प्रकार के धर्मादि साधनों से मनोधारणा स्वरूपिणी बुद्धि को मैंने लगा दी है। यदि पूछें कि किस में तो इसका उत्तर है। यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दी है। वह जो मेरी निष्काम बुद्धि है, सभी कामनाओं से रहित है। यदि अवितृष्णा पदच्छेद करें तो उसका अर्थ होगा अवितृप्त। क्योंकि श्रीभगवान् का दर्शन करने से मेरी बुद्धि तृप्त नहीं हुयी है। वे भगवान् विभूमा है, अर्थात् उनसे महान् कुछ भी नहीं है। विगतो भूमा यस्मात् तिस्मन् यह विभूम्नि पद का विग्रह है। वही श्रीभगवान् का परम ऐश्वर्य है। वे श्रीभगवान् अपने स्वरूपभूत

परमानन्द में स्थित रहकर ही जब कभी लीला करना चाहते हैं तो वे उसके लिए अपनी योगमाया को अपना लेते हैं। उसी से यह सृष्टि का प्रवाह प्रवृत्त होता है। वे जैसे जीव अपने स्वरूप के माया के द्वारा तिरोहित हो जाने के कारण माया के परतन्त्र हो जाता है वैसे भगवान् माया के परतन्त्र न होकर स्वतन्त्र रूप से लीलाओं को करते हैं।।३२।।

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने । वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥३३॥

अन्वयः— त्रिभुवन कमनं तमाालवर्णं रविकगौरवराम्बरं, अलककुलावृताननाब्जं वपुः दघाने विजयसखे मे अनवद्या रतिः अस्तु ।।३३।।

अनुवाद— त्रैलोक्य में सबसे सुन्दर तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, प्रात:कलीन सूर्य की किरणों के समान पीले श्रेष्ठ पीताम्बर को धारण किए हुए, काले घुंघराले केशों से आच्छन्न मुख कमल वाले शरीर को धारण करने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी अहैतुकी (फलाभिसंधि) रहित प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ॥३३॥

भावार्थदीपिका

इदानीं श्रीकृष्णमूर्तिं वर्णयन् रितं प्रार्थयते । त्रिभुवनकमनं त्रिलोक्यामेकमेव कमनीयं यत्तद्वपुर्दधाने रितर्मेऽस्तु । कथंभूतं वपुः । तमालवत्रीलो वर्णो यस्य तत् । प्रातःकालीना रवेः करा इव स्वत एव गौरे पीते वरे निर्मले चाम्बरे यस्मिस्तत् अलककुलैरुपर्यावृतमाननाब्जं यस्मिस्तत् । विजयसखे पार्थसारथौ अनवद्या अहैतुकी फलाभिसन्धिरहिता रितरस्तु ।।३३।।

भावप्रकाशिका

अब भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर का वर्णन करते हुए भीष्मजी उनमे प्रेमाभक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि त्रैलोक्य सुन्दर शरीर को धारण करने वाले श्रीभगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो । श्रीभगवान् का वह शरीर तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण का है । वे प्रात:कालीन सूर्य के समान पीले दो श्रेष्ठ पीताम्बरों को धारण किए हुए हैं । काले घुंघराले केश उनके मुख कमल पर लटके हुए हैं । ऐसे श्रीभगवान् अर्जुन के मित्र हैं । ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् में मेरी निष्काम प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ॥३३॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये । मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥

अन्वयः— युधि, तुरगरजो विधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये मम निशित शरैः विभिद्यमानत्विच विलसत् कवचे कृष्णे आत्मा अस्तु ॥३४॥

अनुवाद— युद्ध में अश्वों के खुर से उठी हुयी धूलि से घूसरित चारो ओर फैले हुए बालों से विकीर्ण स्वेद विन्दुओं से अलंकृत मुख वाले, मेरे तीक्ष्ण बाणों से टूटे हुए कवच वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरा मन लगा रहे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

विजयसिखत्वमेवानुवर्णयन् रितं प्रार्थयते । युधि युद्धे तुरगाणां खुररजस्तुरगरजस्तेन विधूम्रा धूसारास्ते च ते विष्वश्च इतस्ततश्चलन्तः कचाः कुन्तलास्तैर्लुलितं विकीर्णं श्रमवारि स्वेदिबन्दुरूपं तेन भक्तवात्सल्यद्योतकेनालंकृतमास्यं यस्य तिस्मन् श्रीकृष्णे ममात्मा मनोऽस्तु रमतामित्यर्थः । पुनः किंभूते । मदीयैर्निशितैस्तीक्ष्णैः शरैर्विभिद्यमाना त्वग्यस्य तिस्मन् । शरैरेव विलसन्नुट्यत् कवचं यस्य तिस्मन् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की अर्जुन के साथ मित्रता का ही वर्णन करते हुए उनमें अपने प्रेममयी बुद्धि की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी युधि • इत्यादि श्लोक में कहते हैं युद्ध में अश्वों के खुर से निकली हुयी धूलि से जिनके केश धूलिधूसरित हो गये थे। वे श्रीभगवान् के मुखमण्डल पर फैलकर उनके मुख के पसीने को हटाने का काम करते थे ऐसे मुखमण्डल वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे। किश्च मेरे तीक्ष्ण बाणों से जिनके कवच दूट गये थे और मेरे बाण उनकी त्वचा को छेद रहे थे ऐसे भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे। इस वर्णन से भीष्मजी ने श्रीभगवान् की भक्तवत्सलता का द्योतन किया हैं। 13 ४।।

सपदि सिखवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य । स्थितवित परसैनिकायुरक्ष्णा हतवित पार्थसखे रितर्ममास्तु ॥३५॥

अन्वयः— सिखवचो निशम्य निजपरयोः बलयोर्मध्ये सपदि रथं निवेश्य स्थितवित परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवित पार्थसखे मम रितः अस्तु ।।३५।।

अनुवाद अपने मित्र अर्जुन की बातों को सुनकर अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में शीघ्र ही रथ को लाकर स्थित तथा अपनी दृष्टिमात्र से शत्रु के सैनिकों की आयु को छीन लेने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

किंच सपदीति 'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत । यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धकामानवस्थितान् ।।' इति सख्युरर्जुनस्य वचो निशम्य सपदि तत्क्षणमेव स्वपरयोर्बलयोः सैन्ययोर्मध्ये रथं निवेश्य स्थिते पार्थसखे मम रितरस्तु । तत्र स्थित्वा कृतं सख्यं दर्शयित । परस्य दुर्योधनस्य सैनिकानामायुरक्ष्णा कालदृष्ट्या हतवित । असौ भीष्मोऽसौ द्रोणोऽसौ कर्ण इत्यादितत्तत्प्रदर्शनव्याजेन दृष्ट्यैव सर्वेषामायुराकृष्यार्जुनस्य जयं कृतवित ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

किश्च अर्जुन के हे अच्युत जिससे कि मैं इन युद्ध करने की कामना से तैयार शत्रुओं की सेना को देख लूं अतएव आप इन दोनों सेनाओं के बीच मेरे रथ को खड़ा कीजिये। इस वाणी को सुनकर उसी क्षण अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में रथ को लाकर स्थित अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो। वहाँ पर स्थित होकर उन्होंने जो मित्रभाव दिखाया उसको भीष्मजी ने कहा— उन्हांने दुर्योधन के सैनिकों की अपनी काल दृष्टि के द्वारा आयु को ही छिन लिया। ये भीष्म हैं ये द्रोणाचार्य हैं इत्यादि विभिन्न लोगों को दिखाने के बहाने सबों की आयु को खींचकर अर्जुन को जिन्होंने विजय दिलाया उन भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो।।३५॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या । कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरितः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

अन्वयः— व्यवहितपृतनामुखं निरीक्षय दोषबुद्ध्या स्वजनवधाद् विमुखस्य आत्मविद्यया यः कुमातिम् अहरत् तस्य परमस्य चरणरतिः मे अस्तु ॥३६॥

अनुवाद दूरस्थ शत्रुओं की सेना में प्रमुख हमलोगों को देखकर दोष बुद्धि के उत्पन्न हो जाने से युद्ध में स्वजनों का वध करने से विमुख हुए अर्जुन के अज्ञान को जिन्होंने आत्मविद्या का उपदेश देकर दूर कर दिया उन परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ।।३६।।

न केवलमर्जुनस्य सपत्नायुर्हरणेनैव जयमावहत् । किंत्विवद्याहरणेनापीत्याह । व्यवहिता दूरे स्थिता या पृतना तस्या मुखमिव मुखमग्रे स्थितान् । भीष्मादीन्निरीक्ष्येत्यर्थः । स्वजनवधाद्विमुखस्य निवृत्तस्य । तदुक्तं गीतासु एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।' इति । कुमतिमहं हन्तेत्यादिकुबुद्धिम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

केवल शत्रुओं की आयु को छिनकर ही श्रीभगवान् अर्जुन को विजयी बनायें हो ऐसी बात नहीं है, अपितु उन्होंने अर्जुन के अज्ञान को भी दूर किया और उसके द्वारा उन्होंने अर्जुन को विजयी बनाया इस बात को भीष्मजी ने ट्यवहित इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा है। उन्होंने कहा— कि अर्जुन ने जब दूर से ही शत्रुओं की सेना को देखा और उसमें प्रमुख रूप से हमलोगों को देखा तो उसने सोचा कि इन लोगों का युद्ध में वध करना तो महापाप है। उसने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा भगवन् मैं इन लोगों से युद्ध नहीं कर सकता। गीताकार कहते हैं- एवमुक्तवार्जुन: संख्ये इत्यादि अर्थात् युद्ध के मैदान में श्रीभगवान् से इस तरह से कहकर अर्जुन रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गये। उनहोंने धनुष बाण को रख दिया और उस समय उनका मन शोक से व्याकुल हो गया।

इस तरह से सोचना वस्तुत: अर्जुन का अज्ञान ही था वे सोचते थे कि मैं मारने वाला हूँ । अर्जुन के इस प्रकार के अज्ञान को आत्मविद्या का उपदेश देकर श्रीभगवान् ने दूर किया और अर्जुन को विजयी बनाया ॥३६॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः । धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्वुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

अन्वयः— स्विनगममपहाय मत्प्रतिज्ञां अधिकं ऋतम् कर्तुम् रथस्थः अवप्लुतः, घृतरथचरणः इभं हन्तुं सिंह इव गतोत्तरीयः अभ्ययात् येन गुः अचलत् ।

अनुवाद — श्रीभगवान् ने प्रतिज्ञा की थी कि इस युद्ध में मैं बिना शस्त्र धारण किए हुए सहायता करूँगा। मैने भी प्रतिज्ञा की थी की मैं भगवान् से शस्त्र उठवाकर ही रहूँगा। भीष्म पितामह के बाणों से व्याकुल अर्जुन को देखकर भगवान् रथ से पृथिवी पर कूद पड़े और अपने हाथ में चक्र उठाकर भीष्मजी पर टूट पड़े। उसी को याद करके भीष्मजी कहते हैं कि भगवान् तो सबकुछ करने में समर्थ हैं वे अपनी इच्छा मात्र से ही मुझे मार सकते थे, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए भगवान् अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिए। वे रथ से कूदकर अपने हाथ में चक्र उठाकर इतने वेग से मेरे सामने दौड़ पड़े कि पृथिवी काँप गयी और उनका उत्तरीय रास्ते में ही गिर पड़ा वे ऐसे मुझपर झपटे जैसे हाथी को मारने के लिए सिंह उस पर टूट पड़ा है।।३७॥

भावार्थ दीपिका

मम तु महान्तमनुग्रहं कृतवानित्याह द्वाभ्याम् । स्वनिगममशस्त्र एवाहं साहाय्यमात्रं करिष्यामीत्येवंभूतां स्वप्रतिज्ञां हित्वा श्रीकृष्णं शस्त्रं ग्राहियष्यामीत्येवंरूपां मत्प्रतिज्ञामृतं सत्यं यथा भवित तथा अधि अधिकां कर्तु यो रथस्थः सन् अवप्लुतः सहसैवावतीर्णः सन् योऽभ्ययादिभमुखमधावत् । इभं हन्तुं हिरः सिंह इव । किंभूतः । घृतो रथचरणश्चक्रं येन सः । तदा च संरम्भेण मानुष्यनाट्यविस्मृतेरुदरस्थसर्वभूतभुवनभारेण प्रतिपदं चलद्वुश्चलन्ती गौः पृथ्वी यस्मात्सः । तेनैव संरम्भेण पिथ गतं पितितमुत्तरीयं वस्त्रं यस्य स मुकुन्दो मे गतिर्भवित्वत्युत्तरेणान्वयः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को विजयी बनाया और मेरे ऊपर तो उन्होंने बहुत बड़ी कृपा की । इस बात को इन दो श्लोकों के द्वारा वे कहते हैं । भगवान् की प्रतिज्ञा थी कि विना शस्त्र धारण किए ही मैं सहायता करूँगा । उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को तोड़ दी । मेरी जो यह प्रतिज्ञा थी कि मैं श्रीकृष्ण से शस्त्र उठवाकर ही रहूँगा मेरी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से सत्य करने के लिए वे जो रथ पर बैठे थे सहसा कृद पड़े और अपने हाथ में सुदर्शन चक्र उठाकर मेरे सामने उसी तरह दौड़ पड़े जिस तरह से कोई सिंह किसी हाथी को मारने के लिए उस पर दूट पड़ता है।

उस समय मानवीय लीला करते हुए श्रीभगवान् इस बात को भूल गये कि उनके उदर में ही सम्पूर्ण जगत् का निवास है। उनके प्रत्येक डेग के भार से पृथिवी काँप रही थी और उनका उत्तरीय बीच मार्ग में ही गिर पड़ा था। ऐसे भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय बनें। यह अगले श्लोक से अन्वित है।।३७॥

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे । प्रसभमभिससार मह्यार्थं स भवतु मे भगवन् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥

अन्वयः— मे शितविशिखहतः विशीर्णदंश क्षतजपरिप्लुतः आततायिनः मद्वधार्थम्प्रसधं य अधिससार स धगवान् मुकुन्दः मे गतिः भवतु ॥३८॥

अनुवाद— मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से जिनका कवच टूट गया था, और वे रक्त से सराबोर हो गये थे, उसके पश्चात् मुझ आततायी का वध करने के लिए जो भगवान् वेग से दौड़ पड़े वे ही भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय हो ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एवं यदाऽष्ययात्तदा स्मयमानस्याततायिनो धन्विनो में शितैस्तीक्ष्णैर्विशिखैहंतोऽतो विशीर्णदंशो विध्वस्तकवचः क्षतजेन रुधिरेण परिप्तुतो व्याप्तः सन् प्रसमं बलाद्वारयन्तमर्जुनमप्यतिक्रम्य मद्वधार्थमभिससाराभिमुखं जगाम । एवं यो लोकप्रतीत्या-र्जुनपक्षपातीव लक्षितो वस्तुतस्तु ममैवानुग्रहं कृतवान्यन्मद्भक्तेनोक्तं वचो मा मृषाऽस्त्वित स भगवान्मे गतिर्भवत्वित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी कहते हैं जब भगवान् हाथ में चक्र धारण करके मेरे समक्ष दौड़े उस समय में मुस्कुरा रहा था। मुझे गर्व था कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर ली और श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा दूट गयी। इस तरह से त्रैलोक्याधिपति से द्रोह करने के कारण धनुष धारण किए मैं अतातायी था। मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से भगवान् का कवच दूट गया था और वे रक्त से सराबोर हो गये थे। अर्जुन उनको बलपूर्वक रोक रहे थे; किन्तु वे माने नहीं अपितु मुझ पर दूट ही पड़े। यह देखकर लोगों को लगा कि भगवान् अर्जुन के पक्षपाती हैं किन्तु वह तो श्रीभगवान् का मुझ पर अनुबह था वे सोचे मेरी प्रतिज्ञा दूट जाय किन्तु मेरे भक्त भीष्म की प्रतिज्ञा तो सुरक्षित रहे। ऐसे भगवान् एकमात्र मेरे आश्रय रहे। ३८॥

विजयरथकुदुम्ब आत्ततोत्रे घृतहयरश्मिन तिच्छ्येक्षणीये । भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्वोयमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥३९॥

अन्तयः — विजयरचकुटुम्बे आततोत्रे घृतहयरश्मिन, तिब्छ्या ईक्षणीये भगवति मुमुर्षोः मे रतिः अस्तु, यमिह निरीक्ष्य हताः गताः सरूपम् ॥३९॥

अनुवाद— अर्जुन के रब की रक्षा में सावधान रहने वाले, अपने दाहिने हाथ में अश्वों को हाँकने के लिए चाबुक धारण करने वाले तथा बावें हाथ में घोड़ों की लगाम धारण करने वाले दर्शनीय शोधा से सम्पन्न श्रीभगवान् में मेरी परम प्रीति हो ॥३९॥

तदेवमन्यायैरिप भृत्यरक्षाव्यमे कृष्णे रितमाज्ञास्ते । विजयोऽर्जुनस्तस्य रच एव कुटुम्बमकृत्यश्तैरिप रक्षणीयो यस्य तस्मिन् । आत्तं तोत्रं प्रतोदो येन तस्मिन् । धृताश्च ते इयानां रश्मयः प्रव्रहास्ते सन्ति यस्य तस्मिन् । 'बीद्यादिध्यश्च' इत्यनकारान्तादिप रश्मिशब्दादिनिः । तिष्कृया तथा सारच्यिश्चया ईक्षणीये शोधमाने । मुमूर्वोर्मर्तुभिष्कोः । नत्वन्यायवर्तिनि किमिति रतिः प्रार्थ्यतेऽत आह । भगवत्यिचन्यैश्चर्यं । तदाष्ट । इह युद्धे हताः सर्वे यं निरीक्ष्य सरूपं तत्समानं रूपं गताः प्राप्ता इति दिव्यदृष्ट्या पश्मनाह ।।३९।।

भावप्रकाशिका

इस तरह से अन्यायों के द्वारा भी अपने भक्त की रक्षा करने में व्यव रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में अपने प्रीति की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी विजयरख० इत्यादि कहते हैं अर्जून का एक नाम विजय था। उनका रच ही श्रीभगवान् का कुटुम्ब है, उसकी रक्षा सैकड़ों अकृत्यों से भगवान द्वारा रक्ष्य है। तथा वे चाबुक भारण किए हुए है। तोत्र चाबुक का नाम है। तथा वे अर्खों के लगाम को धारण करने वाले हैं। रहिमनि शब्द में इनि प्रत्यय नकारान्त नहीं होने पर भी ब्रीह्मादिष्यश्च इस सूत्र से इनी हुआ है। उन श्रीभगवान् के सार्शवरूप की शोभा भी दर्शनीय थी। उस श्री से सुशोभित श्रीभगवान् में मेरी प्रीति बनी रहे। भगवान् शब्द का प्रयोग करके उनको अचिन्य ऐश्वर्य सम्पन्न कहा गया है। इस युद्ध में जो मारे गये हैं वे सबके श्रीभगवान् के इस सौन्दर्य को देखकर सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए हैं इस बात को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उन्होंने कहा ॥३९॥

लितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः । कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवय्यः ॥४०॥

अन्वयः— लिलतगति विलास वल्गुहासप्रणयनिरीक्षण कल्पितोरुमानाः उन्यदन्ताः वस्य कृतम् अनुकृतवस्यः गोपवध्यः किल प्रकृतिम् अगन् ।।४०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हावधाव वृक्त चेष्टाएँ, मधुरमुसकान तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, जिनकी गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का अनुकरण करके गोपियाँ सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लीं उन्हीं श्रीभगवान् में मेरा परम प्रेम हो ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

क्षत्रधर्मेण युध्यमानास्तत्सरूपं प्रापुरित्येतत्र चित्रम् । यतो मदान्या अपि प्रापुरित्याहः । ल्डिलतगीतक विल्लसक कल्युहासादिक्ष मञ्जगत्यादिभिरात्मीयैस्तदीयैर्वा कल्पित उरुर्मानः पूजा यासां ताः । अत उत्कटेन मदेनान्या विवशाः । अत्यव तदेकचित्ताचेन तस्य कृतं कर्म गोवर्धनोद्धरणादिकमनुकृतवत्यो गोपवध्वो यस्य प्रकृतिं स्वरूपमगत्रगमन् । मकारलोपस्त्यार्थः किल प्रसिद्धम्। तस्मिन्मे रतिरस्त्वित पूर्वेणैवान्वयः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय धर्म के अनुसार उनसे युद्ध करने वाले श्रीभगवान् की सरूपता को प्राप्तकर लिए वहीं आश्चर्य नहीं है, अपितु मदान्ध गोपियों ने भी उनकी सरूपता प्राप्त कर ली। श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हाब-भाव पूर्ण चेष्टाएँ, मधुर हँसी तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा जिन सबों ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त कर लिया या वे उन्मदान्ध अत्यधिक मद के कारण मदमत्त बनी हुयी गोपियाँ श्रीभगवान् के विरह से व्याकुल होकर उनके द्वारा की गयी गोवर्धनधारण आदि की लीलाओं का अनुकरण करके हीं सरूप मुक्ति को प्राप्त कर ली यह प्रसिद्ध है, उन्हीं श्रीभगवान् में मेरी अत्यन्त प्रेममयी बुद्धि बनी रहे, इस तरह से इसका पहले के इलोक से अन्वय है ॥४०॥

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः सदिस युधिष्ठिरराजसूय एषाम् । अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

अन्वयः— युधिष्ठिरराजसूये मुनिगणनृपवर्यसंकुले अन्तः सदिस एषाम् अर्हणम् उपपेदे, ईक्षणीयः एष आत्मा मम दृशिगोचरः आविः अस्ति ।।४१।।

अनुवाद युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ के अवसर पर मुनि समूह तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के भीतर जिन्होंने इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा प्राप्त की ऐसे देखने योग्य सबों की अन्तरात्मा ये भगवान् मेरी इस मृत्यु की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, इन्हीं श्रीभगवान् में मेरा अत्यन्त प्रेम होए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

जगत्पूज्यतामनुस्मरत्राह । मुनिगणैर्नृपत्रर्येश्च सङ्कुले व्याप्तेऽन्तःसदिस सभामध्ये युधिष्ठिरस्य राजसूये एषां मुनिगणादीनामीक्षणीयः अहो रूपमहो महिमेत्येवमाश्चर्येण विलोकनीयः सन्नर्हणमुपपेदे प्राप । एष जगतामात्मा दृशिगोचरो दृष्टिविषयः सन्नाविः प्रकटो वर्तते । अहो मे भाग्यमिति भावः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की जगत् पूज्यता का स्मरण करते हुए भीष्मजी मुनिगण इत्यादि श्लोक को कहते हैं। मुनिसमूहों तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के बीच में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर इन मुनि समूहों के द्वारा कितनी महान है इनकी महिमा यह सोचकर आश्चर्य पूर्वक देखने योग्य ये श्रीभगवान् इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा को प्राप्त किए इस प्रकार के सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् इस मेरे शरीर त्याग की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है। ।४१।।

तिमममहमज शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकिल्पतानाम् । प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

अन्वयः — आत्मकल्पितानाम् शरीरभाजाम् हृदि-हृदि धिष्ठितम् एकम् अर्कम् अनेकधा प्रतिदृशमिव विधूतभेदमोहः तम् इमम् अजम् समधिगतोऽस्मि ।।४२।।

अनुवाद उन श्रीभगवान् के ही द्वारा किल्पत शरीरधारियों के प्रत्येक हृदय को अधिष्ठित करने वाले अधिष्ठित भेद के कारण प्रत्येक देखने वालों को भ्रम के कारण अनेक दिखने वाले एक ही सूर्य के समान इन अजन्मा श्रीभगवान् को मैंने प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ दीपिका

सोऽहं कृतार्थोऽस्मीत्याह । तिममजं सम्यगिधगतः प्राप्तोऽस्मि । सम्यक्त्वमाह । विधूतभेदमोहः । तदर्थ भेदस्यौपिधकत्वमाह। आत्मकित्पतानां स्वयं निर्मितानां शरीरभाजां प्राणिनां हृदि हृदि प्रतिहृदयं धिष्ठितमधिष्ठितम् । अधिष्ठाय स्थितिमिति यावत् । अकारलोपस्त्वार्षः । नैकधा अनेकधा । अधिष्ठानभेदनेकधा भातिमत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः – सर्वप्राणिनां दृशं दृशं प्रत्येकमेवार्कमनेकधा प्रतीतिमविति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

तिमम् इत्यादि श्लोक के द्वारा भीष्मजी बतलाते हैं कि मैं तो कृतार्थ हो गया हूँ। क्योंकि मैंने उस अज परमात्मा को अच्छी तरह से प्राप्त कर लिया है। प्राप्ति की सम्यक्ता को बतलाते हुए उन्होंने कहा— मेरा भेदमोह समाप्त हो गया है। वे परमात्मा अपने से ही निर्मित इन प्रत्येक शरीरधारियों के हृदय में अधिष्ठित होकर विराजमान हैं, फिर भी वे अधिष्ठानों की भिन्नता के कारण अनेक रूप में प्रतीत होते हैं, यह उसी तरह से प्रतीति होती

है जिस तरह सूर्य के एक होने पर अधिष्ठान की भिन्नता के कारण: अनेक सूर्य प्रतीत होते है । **धिष्ठितम्** में अकार का लोप आर्ष प्रयोग के कारण हो गया है ॥४२॥

सूत उवाच

कृष्ण एवं भगवित मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः । आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥

अन्वयः— मनोवाग्दृष्टि वृत्तिभिः कृष्ण एव भगवित आत्मन्यात्मानम् आवेश्य सः अन्तःश्वासः उपारमत् ।।४३।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— मन, वाणी तथा दृष्टि की वृत्तियों को आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में भीष्मजी ने लीन कर दिया और उनके श्वासों का विराम हो गया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

मनोवाग्दृष्टीनां वृत्तिभि: । परमात्मिन श्रीकृष्णे । अन्तरेव विलीन: श्वासो यस्य सः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी के मन, वाणी और दृष्टियाँ अपनी-अपनी वृत्ति के साथ भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो गयीं और उन्होंने अन्तिम श्वास लिया ॥४३॥

सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥४४॥

अन्वयः -- निष्कले ब्रह्मणि सम्पद्यमानं भीष्मम् आज्ञाय ते सर्वे दिनात्यये व्यांसि इव तुष्णीं बभृतुः ।।४४।।

अनुवाद — निष्कल ब्रह्म में लीन हुए भीष्मजी को जानकर वे सभी उसी तरह से मौन हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

निष्कले निरुपाधौ परात्मनि । संपद्यमानं मिलितमाज्ञायालक्ष्य । वयांसि पक्षिण इव ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उपाधि रहित अखण्ड ब्रह्म में भीष्मजी को मिल गये जानकर वे सभी लोग जो वहाँ पर भीष्मजी को देखने के लिए आये थे, उसी तरह से चुप हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं।।४४।। तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः । शसंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥४५॥

अन्वयः— तत्र देवमानवादिताः दुन्दुभयो नेदुः राज्ञां साधवः शसंसुः खात् पुष्पवृष्टयः पेतुः ।।४५।।

अनुवाद उस समय देव मानवों ने दुन्दुभियों को बजाया, सज्जन राजाओं ने प्रशंसा किया और आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुयी ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

देवैर्मानवैश्च वादिता: । राज्ञां मध्ये ये साधवोऽनसूयव: ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं और मानवों ने दुनदुभियों को बजाया जो असूया रहित राजागण थे वे उनकी प्रशंसा किए ॥४५॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव । युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥४६॥

अन्वयः हे भार्गव ! सम्परेतस्य तस्य निर्हरणादीनि कारयित्वा युधिष्ठिरः मुहूर्तं दु:खितः अभवत् ।।४६।।

अनुवाद— हे भृगुवंशी शौनकजी ! मरे हुए भीष्मजी की दाहादि क्रियाओं को राजा युधिष्ठिर ने कराया और कुछ समय तक के लिए वे दु:खी हुए ॥४६॥

निर्हरणादीनि दाहसंस्कारादीनि । सम्यक् परेतस्य । मुक्तस्यापीत्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

निर्हरणादीनि पद से दाहादि संस्कार आदि को कहा गया है। सम्परेतस्य का अर्थ केवल मरे हुए ही नहीं है अपितु मुक्त हुए भी है ॥४६॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तहुह्यनामिः । ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥४७॥

अन्वयः— हृष्टाः मुनयः कृष्णं गुह्मनामभिः तुष्टुवुः । ततः कृष्णहृदयाः ते पुनः स्वाश्रमान् प्रययुः ।।४७।।

अनुवाद - उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन उनके गोपनीय नामों से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति किए और उसके पश्चात् फिर भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण किए हुए वे लोग अपने-अपने आश्रमों में चले गये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गुह्मनामभिर्वेदोक्तैः । कृष्ण एव हृदयं येषां ते कृष्णहृदयाः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के वेदोक्त रहस्यात्मक नामों से मुनियों ने उनकी स्तुति की । वे ऋषिगण कृष्णहृदय थे। अर्थात् भगवान् ही उनके हृदय थे ॥४७॥

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् । पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥

अन्वयः -- ततः सह कृष्णः गजाह्वयम् गत्वा युधिष्ठिरः पितरं तपस्विनीम् गान्धारीं च सान्त्वयामास ।।४८।।

अनुवाद उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर में जाकर महाराज युधिष्ठिर अपने पिता धृतराष्ट्र को तथा पुत्रों के दु:सह शोक से सन्तप्त गान्धारी को सान्त्वना प्रदान किये ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

पितरं धृतराष्ट्रम् । तपस्विनीं सन्तापवतीम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **पितरम्** पद से धृतराष्ट्र को कहा गया है । **तपस्विनीम्** पद से पुत्रों के दुःसह शोक से युक्त गान्धारी को कहा गया है ॥४८॥

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदित: । चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभु: ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्याय: ॥९॥

अन्वयः— पित्रा अनुमतः वासुदेवानुमोदितः विभुः राजा पितृपैतामहं राज्यं धर्मेण चकार ।।४९।।

अनुवाद— पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण से अनुमोदित होकर राजा युधिष्ठिर अपने पिता तथा पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का प्रशासन करने लगे ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के युधिष्ठिर को राज्यलाभ नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

राजा युधिष्ठिरः अनुमतोऽनुज्ञातः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने राजा युधिष्ठिर को राज्य करने के आज्ञा प्रदान कर दी और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका समर्थन भी कर दिया । इसके पश्चात् अपने पिता पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का उन्होंने धर्मपूर्वक प्रशासन किया ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के प्रथम स्कन्य के नवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।९।।



दशवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका गमन

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिक्थ्स्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः । सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥

अन्वयः— स्वरिक्थस्पृध आततायिनः हत्वा धर्मभृतां वरिष्ठः राजा युधिष्ठिर प्रत्यवरुद्धभोजनः अनुजैः सह कथं प्रवृत्तः ततः किमकारषीत् ॥१॥

शौनकजी ने कहा

अनुवाद— अपने पैतृक संम्पित से स्पर्धा करने वाले आततायियों को मारकर धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर बन्धुजन वियोग के कारण भोजन करना भी बन्द कर दिये थे, वे अपने छोटे भाइयों के साथ राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे कृतकार्यस्य हस्तिनापुरतो हरे: । स्त्रीभि: संस्तूयमानस्य वर्ण्यते द्वारकागमः ।।१।। राज्यं चकारेत्युक्तं तत्र पृच्छति- हत्वेति । स्वस्य रिक्थे धने स्पर्धन्ते स्म ये ते तथा । यद्वा स्वरिक्थाय स्पृत्संग्रामो येषामत एव धनादिहरणादाततायिनस्तान्हत्वा प्रत्यवरुद्धभोजनो बन्धुवधदुःखेन सङ्कृचितभोगो, राज्यलाभेन प्राप्तभोगो वा । कथं राज्ये प्रवृत्तः, प्रवृत्तो वा ततः किमकार्षीत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में जिन्होंने अपना काम पूरा कर लिया था तथा स्त्रियाँ जिनकी स्तुति कर चुकी थीं ऐसे श्रीहरि का हस्तिनापुर से द्वारका गमन का वर्णन किया गया है ॥१॥

नवें अध्याय के अन्त में कहा गया है कि युधिष्ठिर ने राज्य किया उसी के विषय में हत्वा **इत्यादि** श्लोक के द्वारा शौनक जी पूछते हैं । स्वरिक्थस्पृद्धः इसका विग्रह है— स्वस्य रिक्थे धनेस्पृहन्ति ये ते तथा । अर्थात् उनकी अपनी सम्पत्ति के विषय में जो स्पर्धा करते थे । अथवा स्वरिक्थाय स्पृत् संग्रामो येषाम्, अर्थात् अपनी सम्पत्ति के लिए जिन सबों के साथ संग्राम हुआ ऐसे धन आदि का हरण करने वाले आतिययों को मारकर बान्धवों के दुःख के कारण जिन्होंने भोजन भी करना बन्द कर दिया था अथवा राज्य के प्राप्त हो जाने से जिन्होंने भोगों को प्राप्त कर लिया था ऐसे राजा युधिष्ठिर पुनः राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ॥१॥

सूत उवाच

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हतं संरोहयित्वा भवभावनो हरि: । निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥

अन्वयः— कुरोः वंशदवाग्नि निर्हतं वंशं संरोहयित्वा भवभावनः ईश्वरः हरिः युधिष्ठरं, निजराज्ये निवेश्य प्रीतमना बभूव ॥२॥

अनुवाद कलहाग्नि के द्वारा कुरु का वंश तो दग्ध ही हो गया था उसको तथा सम्पूर्ण सृष्टि को उज्जीवित करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रशासक श्रीहरि पुन: अङ्कुरित करके तथा राजा युधिष्ठिर को उनके राज्य पर बैठाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

राज्यप्रवृत्तौ श्रीकृष्णस्य प्रीतिं पर्यालोच्य प्रवृत्त इत्याशयेनोत्तरमाह । वंशं कुरोः संरोहियत्वा परीक्षिद्रक्षणेन संरोह्याङ्कृरितं कृत्वा । कथंभूतम् । वंशदवाग्निनिर्हृतं वंश एव दवो वनं तस्मादुद्भूतो यः क्रोधरूपोऽग्निस्तेन निर्हृतं दग्धम् । निजराज्ये निवेश्य च ।।२।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने देखा कि मेरे राज्य करने से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता होगी, इस बात का विचार करके वे राज्य करने में प्रवृत्त हुए । उसी अभिप्राय से सूतजी ने कहा कुरु के विनष्ट वंश को परीक्षित् की रक्षा करके श्रीभगवान् ने उसको पुन: अङ्कुरित कर दिया । कुरु का वंशरूपी दवाग्निसे ही विनष्ट हो चुका था । वंशदवाग्निनिर्हृतम् पद का विग्रहार्थ इस प्रकार है वंश रूपी वन में परस्पर में उत्पन्न क्रोध रूपी जो अग्नि थी उसी ने उसको जला दिया था । उस वंश को भगवान् ने पुन: अङ्कुरित कर दिया और उसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर को उनके राज्य सिंहासन पर बैठा दिया । इन दो कार्यों को करके श्रीहरि को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ।।२।।

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः । शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥३॥

अन्वयः— भीष्मोक्तम् अथ अच्युतोक्तं निशम्य प्रवृत्त विज्ञानविधूतविभ्रमः अजिताश्रयः अनुजानुवर्तितः राजा युधिष्ठिरः परिष्युपान्ताम्गाम् इन्द्र इव शशास ।।३।।

अनुवाद भीष्मजी के उपदेशों को सुनकर तथा भगवान् कृष्ण के वचनों को सुनकर महाराज युधिष्ठिर के विज्ञान का उदय हो गया और उनकी भ्रान्ति विनष्ट हो गयी । उसके पश्चात् भगवान् के आश्रय में रहकर तथा अपने छोटे भाइयों द्वारा अनुवर्तित किए जाते हुए उन्होंने समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का इन्द्र के समान प्रशासन किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तौ हेतुमुक्त्वा किमकार्षीदित्यस्योत्तरमाह । प्रवृत्तं यद्विज्ञानं परमेश्वराधीनं जगन्न स्वतत्रमित्येवंभूतं तेन विधूतो विभ्रमोऽहंकर्तेत्येवंभूतो मोहो यस्य सः । अनुजैरनुवर्तितः सेवितः सन् । अजितः श्रीकृष्ण एवाश्रयो यस्य सः । परिधिः समुद्रस्तत्पर्यन्तां गां पृथ्वीं पालयामास ।।३।।

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर की राज्य में होने वाली प्रवृत्ति का कारण बतलाकर, उन्होंने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर सूतजी ने निशम्य० इत्यादि श्लोक के द्वारा दिया है । भीष्मजी के उपदेश को सुनकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर युधिष्ठिर को यह ज्ञान हो गया कि यह जगत् परमात्मा के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, उसके कारण उनको जो यह भ्रम था कि मैं युद्ध करने वाला हूँ यह भ्रम मिट गया। उसके पश्चात् वे अपने छोटे भाइयों द्वारा सेवित होते हुए तथा भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना आश्रय मानते हुए समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का पालन करने लगे।।३।।

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही । सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥४॥

अन्वयः— पर्जन्यः कामं ववर्ष, मही सर्वकामदुधा उधस्वतीः मुदा गावः पयसा व्रजान् सिसिचुः स्म ।।४।। अनुवाद— युधिष्ठिर के राज्य में मेघ पर्याप्त मात्रा में वर्षा करते थे, पृथिवी सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी, बड़े-बड़े थनों वाली गायें अपने दूध से गोशालाओं को प्रसन्नता पूर्वकर सीचंती रहती थीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य राज्यमनुवर्णयति–कामिति त्रिभिः । मही सर्वकामदोग्ध्री बभूव । व्रजान् गोष्ठानि । ऊधस्वतीरूधस्वत्यः ऊधः क्षीराशयस्तद्वत्यः । स्थूलोधस इत्यर्थः । सिषिचुरभ्यषिञ्चन् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर के राज्य का वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं । कामम् कहने का अभिप्राय है कि उनके राज्य में प्रतिवर्ष तीन बार वर्षा होती थी । उनके राज्य की भूमि सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी । बड़े-बड़े थनों वाली गायें प्रसन्नता पूर्वक गोशालाओं को अपने दूध से सींचती रहती थीं ॥४॥

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥५॥

अन्वयः— नद्यः समुद्राः गिरयः सवनस्पितवीरुध अनु ऋतु तस्य वै सर्वाः ओषधयः तस्य कामम् फलन्ति।।५।। अनुवाद— निदयाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पितयाँ, लताएँ, ओषिधयाँ, प्रत्येक ऋतुओं में यथेष्ट मात्रा में अपनी-अपनी वस्तुओं को राजा को प्रदान करती थीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अन्वृतु ऋतावृतौ ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अन्वृतौ पद का अर्थ है प्रत्येक ऋतुओं में ॥५॥

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः । अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥६॥

अन्वयः --- अजातशत्रौ राज्ञि आधयो व्याधयः दैवभूतात्मा हेतवः क्लेशाः न अभवन् ।।६।।

अनुवाद युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को न तो आधियाँ (मानसिक कष्ट) और न तो व्याधियाँ (रोग) होती थीं दैवक, भौतिक तथा दैहिक संताप भी किसी को नहीं होता था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

आधयो मनोव्यथाः । व्याधयो रोगाः । क्लेशाः शीतोष्णादिकृताः । दैवं च भूतानि चात्मा च हेतुर्येषामाधिदैविकादीनां वै जन्तूनां नाभवन् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मानसिक कष्ट को अधि कहा जाता है तथा रोग इत्यादि को व्याधि कहा जाता है। गर्मी अथवा ठंढी से होने वाले कष्ट को क्लेश कहते है। ये सब युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को नहीं होते थे, किसी को दैहिक दैविक तथा भौतिक सन्ताप भी नहीं होता था। सबलोग हर प्रकार से सुखी थे। दैवभूतात्महेतवः का विग्रह है दैवं च, भूतानि च आत्मा च हेतुः येषां ते ॥६॥

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः । सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥ आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् । आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥

अन्वयः — सुहृदां च विशोकाय, स्वसुः च प्रियकाम्यया हरिः कतिपयान् मासान् हस्तिन पुरे उषित्वा तम् अभिवाद्य, परिष्वज्य च आमन्त्र्य अभ्यनुज्ञातः कैश्चित् परिष्वक्तः अभिवादितः रथम् आरुरोह ॥७-८॥

अनुवाद अपने सम्बन्धियों का शोक मिटाने के लिए तथा अपनी बहन सुभद्रा की प्रसन्नता के लिए श्रीहरि कुछ महीने हस्तिनापुर में रहकर राजा युधिष्ठिर को प्रणाम करके उनका आलिङ्गन किए और उसके बाद जब उन्होंने आज्ञा माँगी तो युधिष्ठिर उनको जाने की आज्ञा दे दिए। उसके पश्चात् कुछ लोगों से आलिङ्गित और अभिवादित होकर भगवान् रथ पर चढ गये।।७-८।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं द्वारकागमनं निरूपियतुमाह- उषित्वेति । स्वसुः सुभद्रायाः । तं युधिष्ठिरम् ।।७-८।।

भाव प्रकाशिका

अब श्रीभगवान् के द्वारका गमन का वर्णन करने के लिए सूतजी ने उषित्वा इत्यादि श्लोक को कहा है। स्वसुः शब्द का अर्थ है सुभद्रा का । तम् शब्द से युधिष्ठिर को कहा गया है ।।७-८।।

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा । गान्धारी घृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः। न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥

अन्वयः सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराटतनया, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सुः, गौतमः, यमौ, वृकोदरः, धौम्यः, मत्स्यसुतादयः स्त्रियश्च विमुह्यन्तः शार्ङ्गधन्वनः विरहं न सेहिरे ।।९-१०।।

अनुवाद सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराट पुत्री उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु:, गौतमवंशीय कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य तथा सत्यवती इत्यादि स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह सकीं वे सब मूर्छित जैसे हो गयीं ॥९-१०॥

भावार्थ दीपिका

युयुत्सुर्धृतराष्ट्राद्वैश्यायां जातः । गौतमः कृपः । यमौ नकुलसहदेवौ ।।९।। अन्याश्च स्त्रियः । मत्स्यसुता उत्तरा । तस्याः पुनर्ग्रहणं गर्भरक्षककृष्णविरहे मोहाधिक्यात् । यद्वा मत्स्यसुता सत्यवती ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र के वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु थे। गौतम शब्द से कृपाचार्य को कहा गया है। नकुल और सहदेव को यमौ शब्द से कहा गया है। मत्स्यसुता उत्तरा हैं, उनका दोबार नाम यहाँ इसिलए आया है कि उनके गर्भ के रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण का विरह होने से अधिक मोह था। अथवा मत्स्यसुता शब्द से सत्यवती को कहा गया है।।९-१०।।

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः। कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकण्यं रोचनम् ॥११॥ तस्मित्र्यस्तिधयः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम्। दर्शनस्पर्शसँल्लापशयनासनभोजनैः ॥१२॥

अन्वयः— सत्सङ्गात् मुक्त दुःसङ्गः बुधः यस्य रोचनं कीर्त्यमानं यशः सकृत् आकर्ण्य हातुं न उत्सहते तस्मिन् दर्शन-स्पर्श-संल्लाप-शयन-आसन भौजनैः न्यस्तिधयः पार्थाः भगवतो विरहं कथं सहेरन् ।।११-१२।। प्रथम स्कन्ध २४१

अनुवाद सत्सङ्ग के कारण जिसका दु:सङ्ग छूट गया है ऐसे विज्ञ पुरुष वर्णन किए जाने वाले जिन श्रीभगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे नहीं छोड़ना चाहता है, उस श्रीभगवान् के साथ-साथ देखने, स्पर्श करने, बातें करने, सोने, बैठने तथा भोजन करने के कारण जिनकी बुद्धि उनमें ही लग गयी थे वे पाण्डव उन श्रीभगवान् के विरह को कैसे सह सकते थे ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

तेषां कृष्णविरहासहनं कैमुत्यन्यायेनाह-सत्सङ्गादिति द्वाभ्याम् । सतां सङ्गाद्धेतोर्मुक्तः पुत्रादिविषयो दुःसङ्गो येन सः। सद्भिः कीर्त्यमानं रुचिकरं यशः सकृदप्याकण्यं सत्सङ्गं त्यक्तुं न शक्रोति ।।११।। दर्शनादिभिस्तस्मिन् श्रीकृष्णे न्यस्ता अध्यस्ता धीर्येषां ते ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

वे पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह पा रहे थे इस बात का सत्सङ्गात् इत्यादि दो श्लोकों से कैमुत्यन्याय से बतलाते हैं। सत्सङ्ग के कारण जिसका पुत्रादि विषयक दु:सङ्ग छूट गया हो, वह व्यक्ति भगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे छोड़ना नहीं चाहता है, क्योंकि भगवान् का यशरूपी सत्सङ्ग अत्यन्त आकर्षक होता है। पाण्डव तो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही एक दूसरे को देखते थे, उनका स्पर्श करते थे उनसे बातें करते थे, सोते थे, बैठते थे और साथ ही भोजन करते थे, अतएव पाण्डवों की चित्तवृत्ति, श्रीभगवान् में ही समर्पित हो गयी थी इसीलिए वे उन भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग नहीं सह पा रहे थे ॥११-१२॥

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥१३॥

अन्वयः अनुद्रुतचेतसः ते अनिमिषैः अक्षैः तम् वीक्षन्तः स्नेहसंवद्धा तत्र तत्र विचेलुः ।।१३।।

अनुवाद— उन सबों का अन्त:करण द्रवित हो गया था वे अपनी निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् को देख रहे थे और इधर-उधर चल रहे थे। क्योंकि वे सभी पाण्डव श्रीभगवान् से स्नेह के बन्धन में बंधे हुए थे।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतएवानिमिषैर्नेत्रैस्तमेव वीक्षमाणास्तत्र तत्रार्हणानयनाद्यर्थं चलन्ति स्म । यतः स्नेहेन सम्यग्बद्धाः । अतएव तमनुद्रुतानि गतानि चेतांसि येषां ते ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

चूिक सभी पाण्डव श्रीभगवान् के साथ स्नेह के बन्धन में बन्धे थे। अतएव जाते हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को निर्मिमेष नेत्रों से देख रहे थे। और वहाँ पर विद्यमान पूजन की सामग्री लाने के लिए चल रहे थे। उन सभी पाण्डवों का चित्त जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था।।१३।।

न्यरुन्धन्नुद्गलद्वाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्वान्धवस्त्रियः ॥१४॥

अन्वयः अगारात् निर्याति देवकी सुते औत्कण्ठ्यात् उद्गलद्वाष्पम् बान्धविस्त्रयः अभद्रम् नो स्यात् इति न्यरून्धन्।।१४।। अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण के घर से निकलते समय उत्कण्ठावशात् स्त्रियों के नेत्र आँसू के जल से भर गये किन्तु उनके बान्धवों की स्त्रियों ने आँसुओं को इसिलए रोक लिया कि कोई अमङ्गल न हो जाय ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अगारान्निर्याति निर्गच्छति सति । औत्कण्ठयादासक्त्यतिशयाद्धेतोरुद्रलत् स्रवद्वाष्पमश्रुन्यरुन्धन्नेष्वेव स्तम्भितवत्य: । तत्र हेतु:- अभद्रं नो स्यादमङ्गलं मा भूदित्येतदर्थम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए घर से निकलने लगे तब उनके बान्धवों की स्त्रियों के नेत्रों में आँसू छलछला गये, क्योंकि उन सबों की भगवान् श्रीकृष्ण में अत्यधिक आसक्ति बढ गयी थी, किन्तु उन सबों ने आंसुओं को अपने नेत्रों में ही इसलिए रोक लिया कि श्रीभगवान् को रास्ते में कोई अमङ्गल न हो ॥१४॥

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥१५॥

अन्वयः मृदङ्ग, शङ्ख् भेर्यः वीणापणवगोमुखाः धुन्धुर्यानकघण्टाद्याः तथा दुन्दुभयःनेदुः ।।१५।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी वीणा, ढ़ोल, नरसिंधे, धुन्धुरी, नगारे घण्टे तथा दुन्दुभियाँ इत्यादि बाजे बजने लगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मृदङ्गादयो दश वाद्यभेदा: ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् जाने लगे उस समय उनके मङ्गल के लिए अनुवाद में गिनाये गये दश प्रकार के बाजे बजने लगे ॥१५॥

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया । ववृषुः कुसुमैः कृष्णे प्रेमब्रीडास्मितेक्षणाः ॥१६॥

अन्वयः— दिदृक्षया, प्रासादशिखरारूढाः प्रेमवीडास्मितेक्षणाः कुरुनार्यः कृष्णे कुसुमैः ववृषुः ।।१६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय उनको देखने की इच्छा से अट्टालिकाओं के ऊपर चढी हुयी कुरुवंश की नारियाँ प्रेम, लज्जा तथा मुस्कान युक्त नेत्रों से देखती हुयी भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ।।१६॥

भावार्थ दीपिका

प्रेमब्रीडास्मितपूर्वकमीक्षणं यासां ताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम, लज्जा तथा मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों से जाते हुए कुरुवंश की नारियों ने पुष्पों की वर्षा की ।।१६॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् । रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ।।१७॥

अन्वयः प्रियः गुडाकेशः प्रियतमस्य रत्नदण्डं, मुक्तादामविभूषितम् सितातपत्रं जग्राह ह ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् के प्रिय अर्जुन ने अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण के रत्न निर्मित दण्डों वाले तथा मोतियों के झालर से सुशोभित श्वेत छत्र को अपने हाथ में ले लिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

गुडाका निद्रा तस्या ईशो जितनिद्रोऽर्जुन: ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन का एक नाम गुडाकेश है। गुडाका निद्रा को कहते हैं, अर्जुन ने निद्रा पर विजय प्राप्त कर लिया था अतएव उनका नाम गुडाकेश है।।१७॥

उद्धवः सात्यिकश्चैव व्यजने परमाद्भुते । विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपितः पिथ ॥१८॥ अन्वयः— उद्भवः सात्यिकः चैव परमाद्भुते व्यजने जगृहतुः विकीर्यमाणः कुसुमैः मधुपित पिथरेजे ॥१८॥ अनुवाद— भगवान् के अत्यन्त अद्भुत दोनों चामरों को उद्भव और सात्यिक ने धारण किया । रास्ते में भगवान् श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वर्षा की जा रही थी और भगवान् श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

व्यजने चामरे जगृहतुः । मधुपतिः श्रीकृष्णः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उद्धव और सात्यिक दोनों भगवान् के दोनों अद्भुत चामर को पकड़ लिए, भगवान् पर मार्ग में पुष्पों की वर्षा की जा रही थी । उससे भगवान् श्रीकृष्ण की अत्यन्त शोभा हो रही थी ॥१८॥

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः । नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥

अन्वयः— तत्र-तत्र द्विजेरिताः सत्याः आशिषः अश्रूयन्त ता निर्गुणस्य गुणात्मनः अनुरूपाः आसन् ।।१९।।

अनुवाद जहाँ-तहाँ ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किए गये श्रीभगवानृ के लिए सत्य आशीर्वाद भी सुनायी पड़ रहे थे। वे निर्गुण भगवान के लिए तो अनुरूप नहीं थे किन्तु मनुष्यावतार धारण करके लीला करने वाले सभी गुणों से सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के लिए तो अनुरूप ही थे।।१९।।

भावार्थ दीपिका

सत्याः श्रीकृष्णे तासामव्यभिचारात्, किंतु नानुरूपाश्चानुरूपाश्च । निर्गुणस्य परमानन्दस्य सुखी भवेत्यादयो नानुरूपा मानुष्यनाट्यावतारेऽनुरूपाश्चेत्यर्थः । सन्धिरार्षः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

सर्वगुण सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्णरूप से पाये जाने के कारण वे आशीर्वचन सत्य थे निर्गुण अर्थात् परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के लिए सुखी रहें इस तरह का आशीर्वाद अनुरूप नहीं था किन्तु मानवावतार धारण करके, लीला करने वाले श्रीभगवान् के लिए तो वे आशीर्वचन अनुरूप हीं थे। नानुरूपानुरूपाः पद में की गयी सन्धि आर्ष हैं।।१९।।

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् । कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥

अन्वयः— उत्तमश्लोकचेतसाम् कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः संजल्पः अन्योन्यम् आसीत् ।।२०।।

अनुवाद— जिन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था वे युधिष्ठिर के नगर की खियाँ सबों को सुनने में मनोहर ही आपस में बातें करती थीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वासां श्रुतीनां मनोहरः । उपनिषदोऽपि मूर्तिमत्यः सत्यस्तं संजल्पमभ्यनन्दन्नित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उन नारियों की बातों का अभिनन्दन मूर्तिमान श्रुतियाँ भी करती थीं क्योंकि उनकी बातें सभी श्रुतियों से मनोहर थीं ।।२०।।

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मिन । अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्चरे निमीलितात्मिन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥२१॥

अन्वयः— अयं किल स वै पुरातनः पुरुषः, यः गुणेभ्यः अग्रे अविशेषे आत्मिन एक आसीत् । जगदात्मिन ईश्वरे, निमीलितात्मिन, सुप्तशक्तिषु ।।२१।। अनुवाद— वे आपस में कहती थी कि ये भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं । प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने से पहले प्रलयकाल में भी अपने निर्विशेष स्वरूप में एक मात्र स्थित थे । उस समय भी जीवात्माएँ जगत् की आत्मा परमात्मा में लीन थीं और महदादि सारी शक्तियाँ अव्यक्त में लीन थीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तेजः सौन्दर्याद्यतिशयेन विस्मिताभ्यः सखीभ्योऽन्याः स्त्रियः कथयन्ति । नात्र विस्मयः कार्यः, साक्षादीश्वरत्वादस्येति। स वा इति चतुर्भः । वै स्मरणे । किलेति प्रसिद्ध्या प्रमाणद्योतकम् । य एक एवाद्वितीयः पुरुष आसीत् एवायं श्रीकृष्णः । कुत्रासीत् । अविशेषे आत्मिन निष्प्रपञ्चे निजस्वरूपे । कदा अग्रे गुणेभ्यो गुणक्षोभात्पूर्वम् । तथा निशि प्रलये च । तस्य लक्षणम्। जगतामात्मिन जीवे । निमीलितात्मिन । निमीलितात्मिति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । जातावेकवचनम् । ईश्वरे लीनरूपेषु जीवेषु सित्स्वत्यर्थः । ननु जीवानां ब्रह्मत्वात्कथं लयस्तत्राह । सुप्तासु शक्तिषु सतीषु । जीवोपाधिभूतसत्त्वादिशक्तिलय एव जीवलय इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के तेज तथा सौन्दर्यांतिशय्य को देखकर आश्चर्यित सिखयों से दूसरी सिखयाँ कहती थीं भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में आश्चर्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे तो साक्षात् ईश्वर हैं। इस बात को उन सबों ने सवै किलायम् इत्यादि चार श्लोकों में कहा है। यहाँ वै यह अव्यय स्मरणार्थक है। किल शब्द प्रसिद्धि के अनुसार प्रमाण का द्योतक है। वे कहती थीं कि सृष्टि से पहले जब प्रकृति में न तो क्षोभ उत्पन्न हुआ था और न तो गुणों का उद्रेक हुआ था। उस समय जो एक मात्र अद्वितीय पुरुष थे वे ही ये श्रीकृष्ण हैं। उस समय जगत् की आत्मा परमात्मा में सभी जीव लीन हो गये थे। यदि कहें कि जीवो ब्रह्मैव नापर: इस सूक्ति के अनुसर जीव तो ब्रह्म है, ब्रह्म में उसका लय कैसे सम्भव है? तो इसका उत्तर है कि जब महदादि सभी शक्तियाँ सुप्त हो जाती हैं, अर्थात् अपने कारणभूत प्रकृति में लीन हो जाती हैं उस समय जीवों की उपाधि भूत सत्त्व आदि शक्तियों का भी लय हो जाता है। इसी को जीवों का लय कहा जाता है।

निमीलितात्मन् यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है। यहाँ पर जाति के अर्थ में एक वचनान्त प्रयोग हैं।।२१॥

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् । अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

अन्वयः— स एव भूयः अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानः निजवीर्यचोदितां सिसृक्षतीम् स्वजीवमायाम् अनुससार शास्त्रकृत् ।

अनुवाद— वे ही परम पुरुष पुन: सृष्टिकाल के आ जाने पर नाम रूप से रहित निर्विशेष स्वरूप नाम और रूप के निर्माण करने की इच्छा से अपनी काल शक्ति के द्वारा प्रेरित प्रकृति का अनुसरण किए। वह प्रकृति परमात्मा के अंशभूत जीव को मोहित करने का काम करती है तथा सृष्टि में प्रवृत्त होती। उन्होंने ही व्यवहार के लिए वेद आदि शास्त्रों की रचना की ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सृष्टेरादौ प्रलयानन्तरं च निष्प्रपञ्चावस्थानमुक्त्वा सृष्टिप्रलययोर्मध्ये सप्रपञ्चावस्थानमाहुः । स एवाप्रच्युतस्वरूपस्थितिरेव प्रकृतिमनुससाराधिष्ठितवान् । भूयः पुनः । सृष्टिप्रवाहस्यानादित्वात् । कीदृशीम् । निजवीर्यचोदितां स्वकालशक्तिप्रेरिताम् । स्वांशभूतानां जीवानां मायां मोहिनीम् । अतएव सिसृक्षतीं स्रष्टुमिच्छन्तीम् । किमर्थमनुससार । अनामरूपे आत्मिन जीवे रूपनामनी विधातुमिच्छन् । उपाधिसृष्ट्या जीवानां मोगायेत्यर्थः । कर्माणि च विधातुं वेदान्कृतवानित्याहुः – शास्त्रकृदिति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सृष्टि के प्रारम्भ में और प्रलय के पश्चात् प्रपञ्चरहित परमात्मा की स्थित को कहकर सृष्टि और प्रलय के बीच में परमात्मा की स्थिति का वर्णन करती हुयी उन नारियों ने कहा कि जिन श्रीभगवान् के स्वरूप और स्थिति में किसी प्रकार का विकार नहीं आता है वे भगवान् पुन: प्रकृति को अधिष्ठित किए क्योंकि सृष्टि का प्रवाह तो अनादि है। अतएव परमात्मा अपनी कालशक्ति के द्वारा प्रकृति को अधिष्ठित किए। वह प्रकृति ही माया है। वह माया परमात्मा के अंशभूत जीवों को मोहित करने का काम करती है तथा वह सृष्टि करने के कार्य में प्रवृत्त होती है। परमात्मा ने प्रकृति को इसलिए अधिष्ठित किया कि नाम तथा रूप से रहित जीवों को मैं नाम और रूप प्रदान कर दूँ; जिससे कि वे जीव इस नाम और रूप रूपी उपाधि के द्वारा भोगों को भोग सकें। वे कर्मों को भी करें एतदर्थ परमात्मा ने शास्त्रों का ब्रह्माजी इत्यादि के द्वारा प्रवर्तन कराया ॥२२॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातिरश्वनः । पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥

अन्वयः— स वै अयं यत् पदम् अत्र जितेन्द्रिया, निर्जितमातिरश्वनः सूरयः भक्त्युत्कलितात्मना पश्यन्ति नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुम् अर्हति ।।२३।।

अनुवाद — निश्चित रूप से ये ही परमात्मा हैं जिनके चरण कमलों का साक्षात्कार योगिजन अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा अपनी प्राण वायु को वश में करके भित्त की भावना से प्रफुल्लित हृदय में करते हैं। इनके ही द्वारा अन्त:करण की पूर्ण रूप से शुद्धि हो सकती है, योग के द्वारा नहीं।।२३।।

भावार्थ दीपिका

अस्य दर्शनमितदुर्लभमस्माभिर्लब्धिमित्याहुः । स वै अयम् । यस्य पदं स्वरूपमिङ्घ्र वा । निर्जितो मातिरश्चा प्राणो यैः । ह्रस्वत्वमार्षम् । ते सूरय एव पश्यिन्त । केन । भत्तया उत्कलित उत्किण्ठितोऽमलो य आत्मा बुद्धिस्तेन । 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इति श्रुतेः । बुद्धिवैमल्यस्याप्ययमेव हेतुरित्याहुः । ननु हे सिख, एष एव सत्त्वं बुद्धिं परिमार्षुं सम्यक् शोधियतुमर्हति नतु योगादय इत्यर्थः । यद्वा नु अहो एष सत्त्वं ज्ञानं परिमार्षुं नाशियतुं दूरगमनेनाप्रत्यक्षीभिवतुं नार्हित, किंत्वनेन सहैव गन्तव्यमित्यर्थः ।।२३।।

भावप्रकाशिका

उन नारियों ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन जिसको हमलोगों ने प्राप्त किया है वह अत्यन्त दुर्लभ है। इस बात को उन सबों ने स वा अयम् इत्यादि श्लोक से कहा है। यत्पदम् के पद शब्द का अर्थ स्वरूप तथा चरण दोनों है। अर्थात् योगिजन अपने हृदय में भगवान् के स्वरूप अथवा चरण का साक्षात्कार करते हैं। निर्जित मातिरश्चन का विग्रह है। निर्जित मातिरश्चा प्राणों यै: ते। अर्थात् जिन लोगों ने अपनी प्राणवायुको अपने वश में कर लिया है, ऐसे ही सूरिजन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करते हैं। मातिरश्चन: में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है अन्यथा मातिरश्चान: पद होना चाहिए। उन परमात्मा के साक्षात्कार करने के साधन का वर्णन करते हुए उन सबों ने कहा भक्त्युकितात्मलात्मना भिक्त की भावना से उत्कण्ठित अर्थात् निर्मल जो आत्मा अर्थात् बुद्धि उसके द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। श्रुति भी कहती है दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या अर्थात् श्रवण मनन तथा निदिध्यासन के संस्कार से सम्पन्न मन के द्वारा ही परमात्माक्षात्कार होता है।

नारियों न कहा कि बुद्धि की शुद्धि परमात्मा के द्वारा होती है। इस बात को उन सबों ने कहा नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमहीत अर्थात् हे सिख ये बुद्धि को अच्छी तरह शुद्ध बना सकते है योग के द्वारा बुद्धि की शुद्धि नहीं हो सकती है।

नन्वेष इत्यादि का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि ये दूर जाकर हमलोगों के ज्ञान को नष्ट नहीं कर सकते है अर्थात् हमलोगों को भी इनके ही साथ चलना चाहिए ॥२३॥

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गृह्येषु च गृह्यवादिभिः । य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सञ्जते ॥२४॥

अन्वयः— हे सिख स वै अयम् यःगुह्मवादिभिः वेदेषु गुह्मेषु च अनुगीत सत्कथः । यः एक एव ईशः आत्मलीलया जगत् सृजति, अवति अति च किन्तु तत्र सज्जते न ॥२४॥

अनुवाद हे सिख ! ये ही ईश्वर हैं जिनकी सुन्दर लीलाओं का वर्णन व्यास आदि रहस्यवादी ऋषियों ने गोपनीय वेदों और शास्त्रों में किया है । जो ईश्वर अकेले ही अपनी लीलामात्र से जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते है, फिर भी वे उसमें स्वयं आसक्त नहीं होते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यश्लोकतामाहुः । हे सिख, यो वेदेषु रहस्यागमेषु च रहस्यनिरूपकैरनुगीतसत्कथः । अनुगीताः सत्यः कथा यस्य स एवायम् । गानप्रकारमाहुः- य एक ईश इत्यादि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

उन नारियों ने श्रीभगवान् की पुण्यश्लोकता का वर्णन करते हुए कहा— हे सिख ! ये वे भगवान् हैं जिनकी सत्य कथाओं का वर्णन रहस्यवादी जो व्यास आदि ऋषिगण हैं उन लोगों ने वेदों तथा रहस्यागमों में किया है। उनके द्वारा श्रीभगवान् की कथाओं का वर्णन करने का प्रकार यह है कि ये परमात्मा अपने लीलामात्र से इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य अकेले करते हैं, किन्तु ये उसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तेमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल । धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५।

अन्वयः— यदा हि तमोधियो नृपाः अधर्मेण जीवन्ति, तत्र एष हि युगे, युगे भवाय रूपाणि दधत् किल सत्त्वतः भगं, सत्यम्, ऋतम्, दयाम् धत्ते ।।२५।।

अनुवाद जब तामसी बुद्धि वाले राजागण अधर्म पूर्वक अपना पेट पालने लग जाते हैं उस समय ये ही भगवान् जगत् का कल्याण करने के लिए प्रत्येक युग में अपने शुद्ध सात्त्विक गुण के द्वारा भग (ऐश्वर्य) सत्य (सत्यप्रतिज्ञत्व) ऋत (यथार्थोपदेश) दया (भक्तों पर कृपा) तथा अद्भुत कर्म रूप यश को धारण करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य नानावतारे कारणमाहुः- यदा हीति । तमोव्याप्ता धीर्येषां ते नृपा यदाऽधर्मेण जीवन्ति केवलं प्राणान्पुष्णन्ति तत्र तदैव एष भवाय स्थित्यै सत्त्वतो विशुद्धसत्त्वेन रूपाणि दधद्भगादीनि धत्ते प्रकटयति । युगे युगे तत्तदवसरे । भगमैश्चर्यम्। सत्यं सत्यप्रतिज्ञत्वम् । ऋतं यथार्थोपदेशकत्वम् । दयां भक्तकृपाम् । यशोऽद्धुतकर्मत्वम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के परमात्मा जो अनेक अवतारों को धारण करते हैं उसका कारण बतलाती हुई उन नारियों ने कहा **यदा हि॰ इत्यादि** श्लोक । स्त्रियों ने कहा कि जब तमोगुणी प्रकृति वाले राजागण अधर्म परायण हो जाते हैं और केवल अपने ही प्राणों के पोषण में लग जाते हैं, उस समय पर श्रीभगवान् अनेक अवतारों को धारण करते हैं और अपने शुद्ध सत्त्वगुण के द्वारा, ऐश्वर्य आदि को धारण करते हैं ।।२५।।

अहो अलं श्लाध्यतमं यदोः कुलमहो अलंपुण्यतमं मधोर्वनम् । यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अन्वयः— अहो ! यदोः कुलं श्लाध्यतमं यदेष पुंसाम् ऋषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना अञ्चति अहो मर्घोर्वनम् अलं पुण्यतमं यदेष चङ्क्रमणेन च अञ्चति ।।२६।।

अनुवाद — अरे यह महाराज यदु का वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि इसको पुरुषों में अग्रगण्य लक्ष्मीपित श्रीभगवान् ने सम्मानित किया है और यह मथुरा भी अत्यन्त पवित्र है, क्योंकि यहाँ पर श्रीभगवान् ने भ्रमण करके इसको पवित्र बना दिया है ॥२६॥

भावार्थदीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णावतारसौभाग्यं वर्णयन्ति- अहो इति पञ्चभिः । यद्यस्मादेषु पुरुषोत्तमः श्रियः पितः स्वजन्मना यदोः कुलमञ्चिति पूजयित सत्करोति । अतः श्लाघ्यतमं तत् । चङ्कमणेन च मधोर्वनं मथुरां सत्करोत्यतस्तत्पुण्यतममिति । तमेवर्थस्याप्यत्यन्तातिशयेऽलमिति । तत्राप्याश्चर्ये अहो इत्युक्तम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

वे स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार जन्य सौभाग्य का वर्णन विशेष रूप से करती हुयी **अहो अलम्॰ इत्यादि** पाँच श्लोकों को कहती हैं । चूिक ये लक्ष्मीपित अपने जन्म से यदुवंश को सम्मानित किए हैं अतएव यह वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है । मधुवन इसिलए अत्यन्त प्रवित्र है कि यहाँ पर श्रीभगवान् अपने भ्रमण के द्वारा उसे सम्मानित किए हैं ॥२६॥

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः । पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥

अन्वयः— अहो बत स्वर्यशसः तिरस्करी कुशस्थली भुवः पुण्ययशस्करी यत् प्रजाः यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं नित्यं पश्यन्ति स्म ।।२७।।

अनुवाद— यह आश्चर्य की बात है कि स्वर्ग के यश को तिरस्कृत करने वाली कुशस्थली द्वारकापुरी पृथिवी के पवित्र यश को बढ़ा रही है। ऐसा इसलिए है कि वहाँ की प्रजाएँ कृपादृष्टि युक्त एवं मुस्कान युक्त अपने स्वामी श्रीभगवान् का नित्य ही दर्शन करती हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

द्वारकां श्लाघन्ते । अहो वताऽत्याश्चर्यम् । किं तत् । कुशस्थली द्वारका । स्वर्ग उत्कृष्ट इति यद्यशस्तस्य तिरस्करी परिभवकर्त्री । भुवश्च पुण्ययशःकर्त्री भवति । यद्यतो यत्रत्याः सर्वाः प्रजाः । स्वानुग्रहेणेषितं प्रेषितम् । स्मितपूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । यद्वा अनुग्रहार्थमिषितिमष्टम् । 'अनुग्रहेषितम्' इति पाठे स्वानुग्रहार्थमुषितं कृतानि वासम् ऐकपद्यपाठे त्वनुग्रहेणेषितं यत्स्मितं तत्पूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । स्वस्यात्मनः पितं श्रीकृष्णं न तु पित्रादिवद्देहमात्रपितं नित्यं न पश्यन्ति स्म । नैतत्स्वर्गेऽस्तीत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

द्वारका की प्रशंसा करती हुयी वे कहती हैं यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। अहो बत का प्रयोग अत्यन्त आश्चर्य के अर्थ में हुआ है। यदि कहो कि क्या आश्चर्य हैं? तो इसका उत्तर है कि कुशस्थली (द्वारकापुरी) स्वर्ग के उत्कृष्ट यश को तिरस्कृत कर रही है। और भूलोक के पवित्र यश को बढ़ा रही है। उसका कारण यह है कि वहाँ प्रजायें अनुग्रह पूर्वक तथा मन्दमुस्कान से युक्त देखने वाले अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का नित्य ही दर्शन करती हैं।।२७।।

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः । पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहुर्वजिश्वयः संमुहुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

अन्वयः— सिख ! गृहीतपाणिभिः हि नूनं व्रत स्नानहुतादिना ईश्वरः समर्चितः याः अस्य अधरामृतं पिबन्ति । यदाशयाः व्रजस्त्रियः संमुमुहुः ।।२८।।

अनुवाद हे सिख ! इनकी पाणिगृहीता पिल्नयों ने निश्चित रूप से ईश्वर की व्रतों तथा तीर्थों में स्नानों एवं होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होगी क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान करती हैं। जिस अधरामृत को याद करके व्रज की स्त्रियाँ बार-बार मूर्छित हो जाती हैं। १८।।

भावार्थ दीपिका

हे सिख ! अस्य गृहीतपाणिभिः पत्नीभिरीश्वरोऽयमेव नूनं जन्मान्तरेषु समर्चितः । यस्मिन्नधरामृते आशयश्चित्तं यासां ता संमोहं प्राप्ता इति मनोहरत्वमुक्तम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

वे स्त्रियाँ परस्पर में बातें करती हुयी कहती हैं कि इन भगवान श्रीकृष्ण की पत्नियों ने जन्मान्तर में निश्चित रूप से इनकी व्रत, स्नान तथा होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होंगी क्योंकि वे इनके अधरामृत का पान करती हैं। जिस अधरामृत को याद करके व्रज की नारियाँ मूर्छित सी हो जाती हैं।।२८।।

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिण : ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥
एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं वत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

अन्वयः — या हि स्वयम्बरे चैद्य प्रमुखान् शुष्मिणः प्रमध्य वीर्यशुक्लेन हताः या प्रद्युम्न साम्बाम्बसुतादयः अपराः, याश्च भौमवधे सहस्रशः आहृताः एताः अपास्तपेशलम् निरस्तशौचं परं स्त्रीत्वम् बत साधु कुर्वते यासां गृहात् आहृतिभिः हृदि स्पृशन्, पुष्करलोचनः पति जातु न अपैति ।।२९-३०।।

अनुवाद स्वयम्बर में जिस रुक्मिणी का भगवान् ने अपने पराक्रम से हरण किया, तथा दूसरी जो प्रद्युम्न साम्ब अम्ब आदि की मातायें रुक्मिणी, जाम्बवती सत्यभामा नाग्नजीति इत्यादि पटरानियाँ तथा नरकासुर का वध करके जिन हजारों नारियों को भगवान् लाये, उन सबों ने स्वातन्त्र्य आदि से रहित तथा पावित्र्य रहित केवल स्त्रीत्व को ही पवित्र और सुन्दर बना दिया। जिन सबों के हृदय को सुन्दर वचनों तथा पारिजातादि उपहारों के प्रदानादि के द्वारा आनन्दमय बनाते हुए भगवान् उन सबों के भवन से कभी भी बाहर नहीं निकलते हैं, उन सबों के सौभाग्य और महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयन्ति-या इति द्वाभ्याम् । वीर्यं प्रभाव एव शुल्कं मूल्यं तेन । शुष्मिणो बलिष्ठान् । प्रद्युम्रश्च साम्बश्च अम्बश्च सुता यासां रुक्मिणीजाम्बवतीनाग्नजितीनां ता आदिर्यासां सत्यभामादीनां ताः । याश्चापराः । अस्य श्लोकस्योत्तरश्लोकेनान्वयः। एताः स्त्रीत्वमेव परं केवलं साधु शोभनं कुर्वते । किंभूतम् । अपास्तं गतं पेशलं भद्रं स्वातन्त्र्यं यस्मात्तत् । निरस्तं शौचं शुचित्वं यस्मात्त्रथाभूतमिष । जातु कदाचिदिष नापैति न निर्गच्छति । आहृतिभिर्व्याहारैः । यद्वा पारिजातादिप्रियवस्त्वाहरणैः । हृदि स्पृशन्तानन्दयन् ।।२९-३०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विस्तार वे सब **यावीर्यशुल्केन इत्यादि** श्लोकों से करती हुयी कहती हैं अपने प्रभाव रूपी शुल्क के द्वारा रुक्मिणी को भगवान् ने स्वयम्बर में शिशुपाल आदि बलवान तथा मदमत्त राजाओं का मंथन करके हरण किया तथा प्रद्युम्न, साम्ब तथा अम्ब इत्यादि पुत्रों की जो माताएँ हैं ऐसी रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा तथा नाग्नजीती इत्यादि आठ पटरानियाँ है, तथा भौमासुर का वध करने के पश्चात् जिन हजारों ख्रियों को भगवान् लाये उन सबों की महिमा और भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है। श्रीभगवान् की इन सभी पत्नियों ने स्वातन्त्र्य, मङ्गल तथा पवित्रता से रहित स्त्रीत्व को अत्यन्त मङ्गलमय तथा पवित्र बना दिया। इन ख्रियों के गृह से कमलनयन भगवान् कभी बाहर भी नहीं निकलते हैं और अपने प्रेमपूर्ण वचनों से तथा पारिजात आदि उपहारों को प्रदान आदि क्रियाओं के द्वारा उन पत्नियों के हृदय को आनन्दमय बनाते रहते हैं ॥२९-३०॥

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् । निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥

अन्वयः— एवं विधाः गदन्तीनां पुरयोषिताम् गिरः सस्मितेन निरीक्षणेन अभिनन्दन हरिः ययौ ॥३१॥

अनुवाद— इस प्रकार से बात करने वाली उन नगर की नारियों की बातों का मुसकान पूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीहरि चले गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवंविधा विचित्रा गिरः सस्मितेन निरीक्षणेनाभिनन्दन् स हरिर्ययौ ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर की नारियों की इस प्रकार की विचित्र वाणियों का मुस्कानपूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीभगवान् द्वारका चले गये ॥३१॥

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः । परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क चतुरङ्गिणीम् ॥३२॥

अन्वयः - अजातशत्रुः स्नेहात् परेभ्यः शङ्कित मधुद्विषः गोपीथाय चतुरङ्गिणीम् सेनां प्रायुंक्त ।।३२।।

अनुवाद युधिष्ठिर को यह शङ्का हो गयी कि बीच में शत्रुगण इन पर आक्रमण न कर दें, अतएव स्नेह के कारण वे मधुनामक दैत्य को मारने वाले श्रीभगवान् की रक्षा के लिए चतुरङ्गिणी सेना को उनके साथ लगा दिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

मधुद्विषोऽवि गोपीथाय रक्षणाय स्नेहात् परेभ्यः शत्रुभ्यः शङ्कितः सन् पायुंक्त 'हस्त्यश्चपदातं' सेनाङ्गं स्याच्चतुर्विधम्। इत्येवंचतुरङ्गिणीम् पृतनां सेनाम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

रास्ते में जाते हुए श्रीभगवान् पर शत्रुगण कहीं आक्रमण न कर दें इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर ने भगवान् की रक्षा करने के लिए उनके साथ चतुरङ्गिणी सेना भेज दिया। यह उन्होंने श्रीभगवान के प्रति स्नेह होने के कारण किया।।३२।।

अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् । संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥ अन्वयः— दूरागतान् विरहातुरान् दृढं स्निग्धान् कौरवान् शौरिः संनिवर्त्य प्रियैः सह स्वनगरीं ययौ ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् दूर आये हुए, विरह से व्याकुल अत्यन्त स्निग्ध कुरुवंशी पाण्डवों को लौटाकर श्रीहरि अपने प्रिय उद्धव आदि के साथ अपनी नगरी द्वारका चले गये ॥३३॥

पाण्डोः कुरुवंशजत्वात् पाण्डवा अपि कौरवा एव तान् प्रियैरुद्धवादिभिः सह ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

पाण्डु भी कुरुवंश में ही उत्पन्न हुए थे इसलिए पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं । वे श्रीभगवान् के साथ उन्हें भेजने के लिए बहुत दूर तक चले गये थे । यह देखकर उन पाण्डवों को भगवान् ने लौटाया और अपने प्रिय उद्धव सात्यिक इत्यादि के साथ वे अपनी नगरी द्वारकापुरी के लिए प्रस्थान किए ॥३३॥

कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्जूरसेनान्स यामुनान् । ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥३४॥ मरुघन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् । आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥३५॥

अन्वयः— कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्रं, मत्स्यान्, सारस्वतान् अथ मरुधन्वम् सौवीराभीरयोः परान् अतिक्रम्य आनर्तान् उपागात् तत्र विभुः मनाक् श्रान्तवाहः अभवत् ।।३४-३५।।

अनुवाद हे भृगुवंशीय शौनकजी श्रीभगवान् कुरुजाङ्गल प्रदेश, शूरसेन प्रदेश, यमुना के तटवर्ती ब्रह्मावर्त प्रदेश, कुरुक्षेत्र, मत्स्य प्रदेश, सारस्वत प्रदेश, मरुधन्व प्रदेश को पारकर सौ वीर और आभीर प्रदेश के पश्चात् द्वारका देश में आ गये। वहाँ बहुत अधिक चलने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के रथ के घोड़े कुछ थक गये थे।।३४-३५॥

भावार्थ दीपिका

कुरुक्षेत्रं कुरुदेशान्तरगतमेव । क्रमोऽत्र न विवक्षितः ।।३४।। मरुर्निरुदको देशः । धन्वोऽल्पोदकः। अग्नर्ताख्यो द्वारकादेशः। स विभुरुपागात्प्राप्तः । हे भार्गव । मनागीषत् श्रान्ता वाहा यस्य सः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जहाँ बहुत कम पानी मिलता है वह धन्व प्रदेश है। जहाँ पानी ही नहीं मिलता है वह मरु प्रदेश है कुरुक्षेत्र कुरुदेश के अन्तर्गत ही है। यहाँ पर देशों का क्रम नहीं विवक्षित है, उन सबों का नाम केवल गिना दिया गया है। आनर्त शब्द से द्वारका देश ही कहा गया है। द्वारका प्रदेश में आकर श्रीकृष्णभगवान् के रथ के घोड़े थोड़ा थक से गये थे। १३४-३५॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः । सायं भेजे दिशं पश्चाद्रविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः -- तत्र तत्र ह तत्रत्यैः प्रत्युद्यतार्हणः हरिः सायं पश्चात् दिशं भेजे तदा गविष्ठः गाम् गतः ।।३६।।

अनुवाद विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों से उपायन प्राप्त करके श्रीहरि सायंकाल पश्चिम दिशा में पहुँचे उस समय स्वर्गस्थ सूर्य अस्त हो गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्य के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तत्र देशे तत्रत्यैर्जनै: । प्रत्युद्यतानि निवेदितान्यर्हणान्युपायनानि यस्मै सः । सायमपराह्ने पश्चाद्दिशं पश्चिमां दिशं भेजे प्राप्त: । तदा च गविष्ठ: स्वर्गस्थ: सूर्यो गामुदकं गत: प्रविष्टोऽस्तं गत इत्यर्थ: । अद्भय वा एष प्रातरुदेत्यप: सायं प्रविशति, इति श्रुते: । यद्वा तदा सायङ्काले जाते रथादवतीर्य गविष्ठो भूमौ स्थितस्ततो गां जलाशयं गत: सन् पश्चाद्दिशं सन्ध्यां भेजे । उपासितवानित्यर्थ: ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवात महापुराणे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्याय: ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

रास्ते में विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों ने श्रीभगवान् को उपहार प्रदान किया। उसके पश्चात् सायंकाल श्रीभगवान् पश्चिम दिशा के द्वारका प्रदेश में आ गये। उस समय स्वर्गस्थ सूर्य जल में प्रवेश कर गये थे। अर्थात् सूर्यास्त हो गया था। श्रुति भी कहती है अद्भयो वा एष प्रातस्वेत्यपः सायं प्रविशति अर्थात् ये सूर्य जल से उदित होते हैं और सायंकाल ये सूर्य जल में प्रवेश कर जाते हैं। अथवा सायंकाल हो जाने पर श्रीभगवान् रथ से पृथिवी पर उतरकर खड़े हुए उसके पश्चात् जलाशय पर जाकर वे सायंकालिक संध्योपासन किए ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के दशवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।१०।।



ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन

सूत उवाच

आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान्स्वकान् । दथ्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥

अन्वयः सः स्वृद्धान् स्वकान् आनर्तान् उपव्रज्य तेषां विषादं शमयत्रिव दरवरं दध्मौ ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण अच्छी तरह से समृद्ध अपने द्वारका प्रदेश में प्रवेश करके वहाँ के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए के समान अपने श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को बजाये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

आनर्तैः स्तूयमानस्य पुरीं निर्विश्य बन्धुभिः । एकादशे रितः सम्यग्यादवेन्द्रस्य वर्ण्यते । उत्सवैरुच्चलत्पौरमुदश्चद्-ध्वजतोरणम्। उल्लसद्रत्नदीपालि स्वपुरं प्रभुराविशत् । स्वृद्धान्समृद्धान् । दरवरं पाञ्चजन्यं शङ्खम् । दध्मौ वादितवान् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

आनर्त देशवासियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में प्रवेश करके अपने बान्धवों के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किए इस बात का वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है। जब नगर के लोग उत्सव मना रहे थे उस समय ध्वजा और तोरण से सुशोभित और रत्नदीपों से प्रकाशित अपने नगर में श्रीभगवान् प्रवेश किए। सायंकाल की बेला में भगवान् कृष्ण द्वारका प्रदेश के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए अपने पाञ्चजन्य नामक श्रेष्ठ शङ्ख को बजाये।।१।।

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा । दाध्मायमानः करकञ्जसंपुटे यथाऽब्जषण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

अन्वयः - ऊरुक्रमस्य अधरशोणशोणिमा दाध्मायमानः धवलोदरः दरः करकञ्जसम्पुटे अब्जषण्डे उत्स्वनः कलहंसः यथा उच्चकाशे ।।२।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण की ओठों की लाली से लाल बना हुआ बजाया जाता हुआ श्वेत वर्ण का शङ्ख श्रीभगवान् के करकमलों में इस तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल रङ्ग के कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई राजहंस जोर-जोर से ध्विन कर रहा हो ॥२॥

स इति । दरः शङ्को दाध्मायमानो भगवता आपूर्यमाण उच्चकाशेऽतिशयेन शुशुभे इत्यन्वयः । कथंभूतो दरः । धवलमुदरं यस्य सः । तथाप्युरुक्रमस्य कृष्णस्याधरस्य यः शोणगुणस्तेन शोणिमा यस्य सः । करकञ्जे करकमले तयोः संपुटे मध्ये वर्तमानः । कथमुच्चकाशे । अब्जषण्डे रक्तकमलसमूहे कलहंसो राजहंस उत्स्वन उच्च शब्दो यथा तद्वत् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

दर शङ्ख को कहते हैं। इस श्लोक से बतलाया जा रहा है कि श्रीभगवान् का पाञ्चजन्य शङ्ख तो श्वेत वर्ण का था, किन्तु उसको बजाते समय श्रीभगवान् के लाल-लाल ओठों के सम्पर्क के कारण उसमें भी लालिमा संक्रान्त हो गयी और भगवान् के दोनों हाथों के बीच में विद्यमान वह उजला शङ्ख उसी तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई उजला राजहंस जोर से ध्विन कर रहा हो ॥२॥

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥३॥

अन्वयः -- तम् जगद्भयभयावहम् निनदम् उपश्रुत्य सर्वाः प्रजाः भर्तृदर्शनलालसाः प्रत्युद्ययुः ।।३।।

अनुवाद संसार के भय को भयभीत करने वाली उस ध्विन को सुनकर सारी प्रजाएँ अपने स्वामी के दर्शन की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

जगतो यद्भयं तस्य भयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रत्युज्जग्मुः । भर्तुर्दर्शने लालसौत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जगतो यद्भयम् तस्य भयावहम् जगद्भयभयावहम् पद का विग्रह है । इसका अर्थ है जगत् के भय को भयभीत कर देने वाला । इस प्रकार के भगवान् के शङ्ख की ध्विन को सुनकर सारी प्रजायें भगवान् का दर्शन करने की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी । भृतदर्शनलालसाः पद का विग्रह है भृतः दर्शनस्य लालसा औत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः। आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा॥४॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्भदया गिरा। पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥५॥

अन्वयः— तत्र आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा उपनीत बलयः रवे आदृता दीपम् इव । सर्वं सुहृदम् अवितारम् पितरम् अर्भका इव प्रीत्युत्फुल्लमुखाः हर्षगद्गदयागिरा प्रोचुः ।।४-५।।

अनुवाद श्रीभगवान् तो आत्माराम है, वे आत्मलाभ से ही सदा पूर्णकाम हैं उनको प्रजाओं ने उसी तरह से उपहार प्रदान किया जिस तरह कोई प्रेम पूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है। उसके पश्चात् उन प्रजाओं ने जिस तरह सुहृद अपने पिता की स्तुति बालक करते हैं उसी तरह से उन प्रजाओं ने भी प्रसन्नता पूर्वक तथा हर्षातिरेक के कारण गद् गद् वाणी से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तस्मिन् श्रीकृष्णे उपनीताः समर्पिता बलय उपायनानि याभिस्ताः । निरपेक्षेऽपि तस्मित्रादरेण समर्पणं दृष्टान्तः-रवेदींपमिवेति । पितरमर्भका इव तं सर्वसुहृदमिवतारं प्रोचुरित्युत्तरेणान्वयः । सुहृत्त्वेनैवावितारं नतु कामेन । अत्र हेतुः-आत्मारामम् । तत्रापि हेतुः- परमानन्दनिजस्वरूपलाभेनैव पूर्णकामम् ।।४-५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् तो सभी वस्तुओं से निरपेक्ष हैं । किन्तु प्रजाओं ने उनको उसीतरह से उपहारों को प्रदान किया जिस तरह से कोई प्रेमपूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है । सूर्य तो स्वयं प्रकाश है सभी वस्तुओं को प्रकाशित करते हैं उनको दीपक दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी अर्चना करने वाले उनकी प्रसन्नता के लिए उन्हें दीपक दिखाते ही हैं। इसके पश्चात् प्रजाओं ने सबों के रक्षक श्रीभगवान् की उसी तरह से स्तुति की जिस तरह से अपने सभी पुत्रों का कल्याण चाहने वाले और सबों की रक्षा करने वाले अपने पिता की बालक स्तुति करते हैं।

भगवान् के उपायन निरपेक्ष होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है कि भगवान् तो आत्माराम हैं। उसका भी कारण यह है कि आत्मलाभ से ही पूर्णकाम हैं।।४-६।।

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् । परायणं क्षेमिमहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परप्रभुः ॥६॥

अन्वयः— हे नाथ वयम् विरिश्चिवैरिश्य सुरेन्द्रसेवितम् इहक्षेमम् इच्छताम् परं परायणम् ते अङ्घ्रिपंकजम् नताः सम यत्र पर प्रभुः कालः न प्रभवेत् ॥६॥

अनुवाद हे नाथ ! ब्रह्मा सनकादि तथा इन्द्र जिसकी वन्दना करते हैं, इस लोक में कल्याण चाहने वाले लोगों के लिए जो सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ऐसे आपके चरण कमलों की हम सदा वन्दना करते हैं । आपके उन चरणों की वन्दना करने वालों का; ब्रह्मा इत्यादि को भी अपने वश में रखने वाला काल कुछ नहीं विगाड़ पाता हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किमूचुरित तदाह- नताः स्मेति । विरिञ्चो ब्रह्मा । वैरिञ्च्याः सनकादयः । इह संसारे परं क्षेमिमच्छतां परायणं परमं शरणम् । कुतः । परेषां ब्रह्मादीनां प्रभुरिप कालो यत्र प्रभुर्न भवेत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उन प्रजाओं ने श्रीभगवान् से क्या कहा ? इस बात को नताः स्म० इत्यादि श्लोक से कहा गया है। विरिञ्च ब्रह्माजी का नाम है और वैरिञ्च अर्थात् ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनकादि हैं। प्रजाओं ने कहा कि हे नाथ! हमलोग आपके चरण कमलों की सदा वन्दना करते हैं। आपके इन चरणों की वन्दना ब्रह्माजी, सनकादि महर्षि तथा इन्द्र भी किया करते हैं। आपके ये चरण उन लोगों के सर्वश्रेष्ठ रक्षक हैं जो लोग इस संसार में आत्म कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं। आपके चरणों के शरणागत जीवों का काल कुछ भी नहीं विगाड़ पाता है। जो काल ब्रह्माजी को भी अपने वश में रखता है उसका आपके भक्तों पर कोई भी वश नहीं चलता है।।६।।

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता । त्वं सहुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥७॥

अन्वयः— हे विश्वभावन त्वम् नः भवाय भव । त्वमेव नः माता, पिता सुहृत्, पितः, सद्गुरुः परमं दैवतम् च यस्य तव अनुवृत्त्या वयम् कृतिनः बभूविम ॥७॥

अनुवाद हे विश्वभावन ! आप ही हमलोगों का कल्याण करें । आप ही हमारे माता, पिता, सुहद्, स्वामी, सद्गुरु तथा परमाराध्य देवता हैं । आपके ही चरण कमलों की सेवा करने के कारण हम सभी कृतार्थ हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अतो भवायोद्भवाय नोऽस्माकं त्वं भव । हे विश्वभावन । कृतिन: कृतार्था बभूविम जाता वयम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रजाएँ कहती हैं कि हमलोग आपके शरण में है अतएव आप हमलोगों का कल्याण करें । हमारे माता,

पिता सुहृद् स्वामी, सहुरु तथा परमाराध्य आप ही हैं । आप से ही हमारे सारे सम्बन्ध हैं और आपके चरणों की सेका करने के कारण हम सभी कृतार्थ हुए हैं ॥७॥

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् । प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्चेम रूपं तव सर्वसीभगम् ॥८॥

अन्वयः - अहो वयम् सनाथा भवता स्मः यत् त्रैविष्टपानाम् अपि दूरदर्शनम् प्रेम-स्मित-स्निगधनिरीक्षणाननम् तव सर्वसीभगम् रूपं पश्येम ॥८॥

अनुबाद यह हमलोगों का परम सौभाग्य है कि हमलोग आपसे सनाधित हैं । उसी के कारण जिनका दर्शन देवताओं को भी मिलना कठिन है ऐसे आपको प्रेमपूर्ण मुस्कान से तथा स्निग्ध नेत्र से युक्त आपके मुख का तथा आपके सर्वाङ्ग सुन्दर रूप का हम लोग दर्शन करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कृतार्थत्वमेबाहुः । अहो भवता वयं सनाधाः स्मः । यद्यस्मात्तव रूपं पश्येम । त्रैविष्टपानामपि दूरे दर्शनं यस्य तत्। देवानामपि दुर्लभदर्शनमित्यर्थः । प्रेम्णा यत्स्मतं तद्युक्तं स्निग्धं निरीक्षणं यस्मिस्तदाननं यस्मिस्तद्रूपम् । सर्वेषु चाङ्गेषु सौभगं यस्मिस्तत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अहोसनाधा० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रजाएँ अपनी कृतार्थता का ही वर्णन करती है। वे कहती है कि आप हमारे स्वामी हैं यह हमलोगों का परम सौभाग्य है। यही कारण है कि हमलोग आपके प्रेमपूर्ण मुस्कान तथा स्नेह भरे नेत्रों से युक्त मुखड़े का तथा आपके सवाई व्याप्त सौन्दर्य से युक्त रूप का दर्शन करते हैं। आपके इस रूप का दर्शन तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं।।८।।

यद्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुदृद्दिदृक्षया । तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥९॥

अन्तयः— मो अम्बुजाक्ष यहिं भवान् सुहद्दिदृक्षया कुरून् अध मधून् अपससार तहिं हे अच्युत न: क्षण: अब्दकोटि: इव रविं विना अक्ष्णो: इव भवेत् ॥९॥

अनुवाद— है कमलनयन भगवन् ! जब आप अपने संबन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मचुरा चले जाते हैं तब हे अच्युत ! आपके बिना हमलोगों का एक-एक क्षण करोड़ों वर्ष के समान अथवा सूर्य के बिना आँखों के समान बड़े कष्ट से बितता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अर्थका इव सकरूणमाहुः । यर्हि यदा । भो अम्बुजास । नो भवानिति पाठे न इत्यनादरे षष्ठी । अस्माननादृत्यापससारापहाय जगाम । कुरून्हस्तिनापुरम् । मधून्मयुर्गं वा । तत्र तदा । रविं विना आन्ध्यादश्लोयंधैकोऽपि क्षणोऽब्दकोटिप्रतिमो भवेत् । एवं तव नः त्वदीयानामस्माकमीत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

बालकों के समान अत्यन्त करुण होकर प्रजाओं ने कहा नो भवान् जहाँ पाठ है वहाँ न: में षष्ठी विभक्ति अनादर के अर्थ में होगी और अर्थ होगा। है कमलनयन जब हमलोगों की परवाह किए बिना आप अपने सम्बन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं उस समय हमलोगों का एक-एक क्षण बितना मुस्किल हो जाता है। जिस तरह सूर्य के बिना आखों की बेचैनीमय स्थिति हो जाती है उसी तरह ।।९।।

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः । शृण्वानोऽनुब्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥१०॥

अन्वय: इति प्रजानां च उदीरिताः वाचः मृण्यानः भक्तवत्सलः भगवान् दृष्ट्या अनुग्रहं वितन्वन् पुरीम् प्राविशत् ।।१०।।

अनुवाद इस तरह से प्रजाओं द्वारा कही गयी बातों को सुनते हुए भक्तवत्सल भगवान् अपनी दृष्टि के
द्वारा उन सबों पर कृपा करते हुए अपनी नगरी द्वारकापुरी में प्रवेश कर गये ।।१०।।

भावार्ध दीपिका

इति च एवंविघा अन्याश्चोच्चारिता वाचः शृण्वन् दृष्ट्या साभिनन्दनावलोकेनानुग्रहं कुर्वन् पुरीं द्वारकां प्राविशत् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रजाओं के द्वारा कही गयी दूसरी भी बातों को भी भगवान् सुनते हुए तथा अपनी दृष्टि द्वारा अभिनन्दनमयी दृष्टि के द्वारा उन प्रजाओं पर कृपा करते हुए द्वारका पुरी में प्रवेश कर गये ॥१०॥

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः । आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैभौगवतीमिव ॥११॥

अन्वयः — नागैः भोगवतीम् इव आत्मतुल्यवलैः मधुभोजदशार्हाईकुकुरान्धकवृष्णिभिः रक्षिताम् पुरीं प्राविशत् ।।११।।

अनुवाद — जिस तरह नागों द्वारा नागों की नगरी भोगवती सुरक्षित है, उसी तरह अपने सदृश ही बल वाले

मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक तथा यदुवंशियों द्वारा सुरक्षित अपनी द्वारकापुरी में वे प्रवेश किए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तां द्वारकां स्तीति पञ्चभि: । स्वतुल्यबलैर्मघुभोजादिभिर्गुप्तां रक्षिताम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त द्वारका का वर्णन पाञ्च श्लोकों द्वारा किया गया है। भगवान् के सदृश ही बलवाले मधु भोज इत्यादि वंशीयों से वह द्वारका पुरी संरक्षित थी ॥११॥

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमै:

। उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्चियम्

118 511

अन्वयः— सर्वतु सर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः उद्यानोपवनारामैः वृत्तपद्माकरश्रियम् (पुरी प्राविशत्)।।१२।।

अनुवाद— वह नगरी सभी ऋतुओं के सभी विभवों से युक्त थी वह स्थान स्थान पर पवित्र वृक्षों लताओं तथा आन्नमों से युक्त थी, उद्यानों, उपवनों और पुष्पवाटिकाओं से युक्त तथा कमलों से भरे सरीवरों की शोभा से वह सम्पन्न थी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेष्वृतुषु सर्वे विभवाः पुष्पादिसम्पदो येषां ते पुण्यवृक्षा लताश्रमा लतामण्डपा**ड येषु तैरुद्यानादिभिवृंता ये पद्माकराः** सर्यास तैः श्रीः शोभा यस्यां ताम् । उद्यानं फलप्रधानम् । उपवनं पुष्पप्रधानम् । आरामः क्रीडा**र्थं व**नम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सभी ऋतुओं में होने वाली सम्पूर्ण ऐश्वर्य पुष्प इत्यादि से युक्त पवित्र वृक्षों, लतात्रमों अर्थात् ललितमण्डपों, से युक्त उद्यानों आदि से घिरे हुए कमलों से भरे हुए सरोवरों की शोभा से सम्पन्न फलों से भरे उद्यानों, पुष्पों से भरे उपवनों तथा क्रीडावनों से युक्त द्वारकापुरी में भगवान् ने प्रवेश किया ॥१२॥

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् । चित्रध्वजपताकात्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥१३॥

अन्वयः गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम्, चित्रध्वजपताकाग्नैः अन्तः प्रतिहतातपाम् (पुरीं प्रविशतत्)।।१३।।

अनुवाद नगर के द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में श्रीभगवान् के स्वागत के लिए जिसमें उत्सव पूर्वक तोरण लगाये गये थे, गरुड आदि के चित्रों से युक्त ध्वजाओं तथा विजय प्रदान करने वाले यन्त्रों के चित्रों से चित्रित पताकाओं से जिसके भीतर घूप नहीं लगती थी ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

गोपुरं पुरद्वारम् । द्वारं गृहद्वारम् । कृतानि कौतुकेनोत्सवेन तोरणानि यस्यां ताम् । गरुडादिचिह्नाङ्किता ध्वजाः । जयप्रदयत्राङ्किताः पताकाः । चित्राणां ध्वजपताकानामग्रैरन्तः प्रतिहत आतपो यस्यां ताम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस नगरी में नगर द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में लोग श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए तोरण बाँधे थे, गरुड आदि के चित्रों से चित्रित ध्वजों तथा विजयप्रद यन्त्रों से चित्रित पताकाओं के कारण उस नगरी में धूप का कोई भी असर नहीं होता था ॥१३॥

संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् । सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥१४॥

अन्वयः संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम्, गन्धजलैः सिक्तां फलपुष्पाङ्कुराक्षतैः उप्ताम् पुरीं प्राविशत् ।।१४।।

अनुवाद उस नगरी के राजमार्ग, गिलयाँ, बाजार तथा चौराहे झाड़कर सुगन्धित जल से सींच दिए गये थे तथा श्रीभगवान् के स्वागतार्थ बरसाये गयें फल, पुष्प, अक्षत और अङ्कुर उसमें विखरे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

संमार्जितानि निःसारितरजस्कानि महामार्गादीनि यस्यां ताम् । महामार्गा राजमार्गाः । रथ्या इतरमार्गाः आपणकाः पण्यवीथयः । चत्वराण्यङ्गनानि फलादिभिरुप्तामवकीर्णाम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

राजमार्ग तथा दूसरे मार्ग वाजार की गलियों तथा चौराहों को झाड़कर साफ कर दिया गया था और उन सबों को सुगन्धित जलों से सींच दिया गया था तथा श्रीभगवान् के स्वागत के लिए बरसाये गये फल तथा पुष्प जहाँ विखे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।१४।।

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः । अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बिलिभिर्घूपदीपकैः ॥१५॥

अन्वय:— गृहाणां द्वारि द्वारि च दध्यक्षतफलेक्षुभि:, पूर्णकुम्भै:, धूपदीपकै: बिलिभि: अलङ्कृताम् (पुरीं प्रविशत्)।।१५।। अनुवाद— प्रत्येक गृहों के द्वारों पर, दिध, अक्षत, फल, ईख, जलभरे कलश तथा धूप-दीप आदि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी। ऐसी द्वारका नगरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए नगर के प्रत्येक द्वारों पर दिध, अक्षत, ईख, जलभरे कलश तथा धूप दीप इत्यादि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी, इस प्रकार की द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ॥१५॥ निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः। अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्धुतविक्रमः॥१६॥ प्रद्युप्रश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः। प्रहर्षवेगोच्छिशितशयनासनभोजनाः ॥१७॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः। शङ्ख तूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः॥ प्रत्युज्जग्मृ रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः

अन्वयः प्रेष्ठम् आयान्तम् निशम्य महामनाः वसुदेवः अक्रूरश्च उग्रसेनश्च अद्भुत विक्रमः रामश्च, प्रद्युम्नः, चारुदेष्णः च जाम्बवती सुतः साम्बः प्रहर्षवेगोच्छ्शितशयनासन भोजनाः वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ससुमङ्गलैः ब्राह्मणैः शङ्खुतूर्य निनादेन, ब्रह्मघोषेण च आदृताः च प्रणयागत साध्वसाः प्रत्युज्जग्मुः ।।१६-१८।।

अनुवाद अपने प्रियतम श्रीकृष्ण भगवान् को आते हुए सुनकर अत्यन्त उदार वासुदेवजी, अक्रूरजी, उग्रसेनजी अद्भुत पराक्रमी बलरामजी, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब ये सबके सब हर्षातिरेक के कारण, शयन, आसन तथा भोजन करना छोड़कर गजराज को आगे करके श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए मङ्गलमय ब्राह्मणों, शङ्ख, तूरी आदि वाद्यों की ध्विन पूर्वक तथा वेद पाठ के द्वारा स्मरण पूर्वक अगवानी करने के लिए आदर पूर्वक रथों पर चढ़कर आगे आये ॥१६-१८॥

भावार्थ दीपिका

प्रेष्ठान्तरात्मानमायान्तं निशम्य श्रुत्वा वसुदेवादयः प्रत्युज्जग्मुरिति चतुर्थेनान्वयः । प्रहर्षवेगेनोच्छशितान्युल्लिङ्कृतानि शयनादीनि यैस्ते । 'शश प्लुतगतौ' । वारणेन्द्रं मङ्गलार्थं पुरतः कृत्वा । ससुमङ्गलैः सुमङ्गलपुष्पादितद्युक्तपाणिभिः ब्रह्मघोषो मन्त्रपाठः प्रणयेन स्नेहेनागतं साध्वसं संभ्रमो येषां ते । वारमुख्या नटादयश्च प्रत्युज्जग्मुः ।।१६-१८।।

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को आते हुए सुनकर वसुदेवजी आदि ने उनकी अगवानी की इसका उन्नीसवें श्लोक से सम्बन्ध है। इन वसुदेवजी आदि ने शीघ्रता से जाने के लिए अपने शयनादि क्रियाओं का परित्याग कर दिया। उन लोगों ने मङ्गल के लिए गजराज को आगे कर लिया था। अपने हाथों में मङ्गलमय पुष्प आदि को ले लिया था और शङ्ख आदि बाद्यों की ध्वनि तथा वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए वे लोग रथ पर चढ़कर स्नेहातिरेक के कारण शीघ्रता से अगवानी किए। श्रीभगवान् की अगवानी वेश्याओं ने तथा नटों आदि ने भी किया।।१६-१८।।

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः। लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्चियः ॥१९॥ नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः। गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥

अन्वयः— तद्दर्शनायोत्सुकाः लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनिश्रयः शतशो वारमुख्याश्च यानै तत् प्रत्युज्जग्मुः । नट-नर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः च उत्तमश्लोकचिरतानि अद्भुतानि गायन्ति स्म ।।१९-२०।।

अनुवाद — श्रीभगवान् के दर्शन के लिए उत्किण्ठित जिनके मुख तथा कपोलों पर चमकते हुए कुण्डल सुशोभित हो रहे थे ऐसी सैकड़ों मुख्यवाराङ्गनायें सवारियों पर चढ़कर श्रीभगवान् की अगवानी करने के लिए गयीं। उस समय अनेक नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध और बन्दीजन भगवान श्रीकृष्ण के अद्भुत चिरत्रों का गायन कर रहे थे ।।१९-२०।।

भावार्थ दीपिका

लसत्कुण्डलैर्निर्भातानि यानि कपोलानि तैर्वदनेषु श्रीः शोभा यासां ताः । वारमुख्या नर्तक्यः । वेश्या इति यावत् । अद्धुतानि चेति चकारस्य बन्दिनश्चेत्यन्वयः । नटा नवरसाभिनयचतुराः । तालाद्यनुसारेण नृत्यन्तो नर्तकाः । गन्धर्वा गायकाः। 'सूता पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः । वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ।' ते सर्वे गायन्ति चेत्यन्वयः। उत्तमश्लोकस्याद्भुतानि चरित्राणि भक्तवात्सल्यादीनि ।।१९-२०।।

भाव प्रकाशिका

चमकते हुए कुण्डलों से प्रकाशित होने वाले कपोलों की शोभा से सुशोभित मुख वाली नर्तिकयाँ भी भगवान्

की अगवानी करने के लिए गयीं। उस समय श्रीभगवान् के भक्तवात्सल्य से सम्बद्ध चारितों का गायन नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध तथा बन्दीगण भी कर रहे थे।

श्रीभगवान् के यश उत्तम कोटि के हैं, इसलिए भगवान् का नाम उत्तम श्लोक है। नवरसों का अभिनय करने में निपुण व्यक्ति को नट कहा गया है। ताल आदि के अनुसार नृत्य करने वालों को नर्तक कहा जाता है। गाने वालों को गन्धर्व कहते हैं।

सूतों मागधों और बन्दिजनों को निम्नाङ्कित सूक्ति से परिभाषित किया गया है-

सूताः पौराणिकाः प्रोक्ताः मागधा वंशशंसकाः । बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्ताव सदृशोक्तयः ।।

अर्थात् जो पुराणों के ज्ञाता होते हैं उनको सूत कहा गया है, राजाओं के वंशों का वर्णन करने वालों को मागध कहा जाता है। बन्दीजनों की बुद्धि निर्मल होती है, वे प्रसङ्ग के अनुसार ही वर्णन करते हैं।।१९-२०।।

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् । यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥२१॥

अन्वयः -- तत्र भगवान् बन्धूनां, पौराणाम्, अनुवर्तिनाम् यथाविधि उपसंगम्य सर्वेषां मानम् आदधे ।।२१।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ अपने बान्धवों, नागरिकों, तथा सेवकों से यथायोग्य मिलकर सबों का समादर किए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

यथाविधि यै: सह यथोचितं तैस्तथा समागमं कृत्वा । सर्वेषां मानमादधे कृतवानित्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिसके साथ जिस विधि से मिलना चाहिए वैसे ही उन सबों से मिलकर भगवान् सबों का यथोचित्त सम्मान किए ॥२१॥

प्रह्लाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः । आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥२२॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि। आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बन्दिभिश्चाविशत्पुरम्॥२३॥

अन्वयः प्रह्वाभिवादन-श्लेष-स्पर्श-स्मितेक्षणैः अभिमतैः वरैश्च आश्वपाकेभ्यः आश्वास्य विभुः स्वयम् गुरुभिः, सदारैः, विप्रैः स्थविरैः अपि आशीर्भिः युज्यमानः अन्यैः वन्दिभिः च पुरम् आविशत् ।।२२-२३।।

अनुवाद श्रीभगवान् किसी को तो शिर झुकाकर प्रमाण किए, किसी का अभिवादन किए, किसी का आिलङ्गन किए, किसी से हाथ मिलाये तथा किसी को देखकर मुस्कुरा दिए, किसी को प्रेम पूर्वक देखे; जिसको जैसी इच्या थी उसको वैसा ही वरदान दिए। इस तरह श्रीभगवान् चाण्डाल पर्यन्त सबों को सन्तुष्ट किए।

स्वयम् भी वे गुरुजनों, सपत्नीक ब्राह्मणों, तथा वृद्धों से आशीर्वाद प्राप्त करके दूसरे लोगों तथा बन्दीजनों के साथ अपनी नगरी में प्रवेश किए ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

तदाह- प्रह्वेति । प्रह्वं प्रह्वत्वं शिरसा नितः । अभिवादनं वाचा नितः । आश्वास्याभयं दत्त्वा । श्वपाकानभिव्याप्य वरैरभीष्टदानैश्च मानं कृतवान् । अन्येश्च वन्दिभिश्च ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने सबों का जो सम्मान किया उसी का वर्णन प्रह्**वाभिवादन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । शिर झुकाकार प्रणाम करने को प्रह्वा कहते हैं । वाणी से नमस्कार करने को अभिवादन कहते हैं । अभय प्रदान करने को आश्वासन कहते हैं । श्रीभगवान् ने चाण्डाल इत्यादि सबों को अभिप्रेत वरदान देकर उन सबों का सम्मान किया इसके बाद वे दूसरे बन्दीजनों के साथ नगर में प्रवेश किए ॥२२-२३॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलिश्चियः । हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥२४॥

अन्वयः— हे विप्र ! कृष्णे राजमार्गं गते तत् ईक्षणमहोत्सवाः द्वारकायाः कुलस्त्रियः हर्म्याणि आरुरुहुः ।।२४।।

अनुवाद — हे शौनकजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण राजमार्ग पर जा रहे थे उस समय उनके दर्शन को ही महोत्सव मानने वाली द्वारका की कुलिस्त्रियाँ उनको देखने के लिए अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे विप्र शौनक ! तस्येक्षणेन महानुत्सवो यासां ता: ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

विप्र शब्द से यहाँ शौनकजी को कहा गया है। द्वारका की कुल स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन को ही अपना महोत्सव मानती थीं ॥२४॥

नित्यं निरीक्षमाणानां यदिप द्वारकौकसाम्। न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम्॥२५॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् । बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम्॥२६॥

अन्वयः — यस्य उर: श्रिय: निवास:, मुखम् दृशम् पानपात्रम् बाहवः लोकपालानां निवास:, पदाम्बुजम् सारङ्गाणाम् निवास श्रियः धामाङ्गम् अच्युतम् नित्यं निरीक्षमाणानाम् द्वारकौकसाम् दृश निह वितृप्यन्ति ।।२५-२६।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में सौन्दर्यलक्ष्मी का निवास स्थान है, उनका मुखारविन्द नेत्रों द्वारा सौन्दर्यामृत पान करने के लिए पानपात्र है, उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, तथा श्रीभगवान् के चरण में शास्त्रों के सार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास स्थान है ऐसे सौन्दर्य लक्ष्मी के आश्रयभूत अङ्गों वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नित्य ही देखने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों के नेत्र पूर्ण रूप से कभी भी तृप्त नहीं होते हैं ॥२५-२६॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मान्नित्यं सदाऽच्युतं निरीक्षमाणानामपि दृशो नैव तृप्यन्त्यतः आरुरुहुः । कथंभूतम् । श्रियः शोभाया घामस्थानमङ्गं यस्य तम् । एतदेवाभिनयेनाह । श्रियो लक्ष्म्याः यस्योरो वक्षो निवासः । यस्य मुखं सर्वप्राणिनां दृशां सौन्दर्यामृतपानाय पात्रम्। यस्य बाहवो लोकपालानां निवासः । सारं श्रीकृष्णं गायन्तीति सारङ्गा भक्तास्तेषां यस्य पदाम्बुजं निवासः तं निरीक्षमाणानां दृश इति पूर्वेणान्वयः ।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

चूकि सदैव भगवान् अच्युत का दर्शन करने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों की कभी भी देखने से तृप्ति नहीं होती है, अतएव वे कुलिस्त्रयाँ अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं, क्योंकि श्रीभगवान् के अङ्ग शोभा के आश्रय हैं ऐसे भगवान् को देखने से तृप्ति नहीं होती है। इसी को अभिनय पूर्वक बतलाते हैं— श्रीभगवान् का वक्ष:स्थल लक्ष्मीजी का निवास स्थान है। श्रीभगवान् का मुख सभी प्राणियों के नेत्रों के लिए श्रीभगवान् के सौन्दर्य रूपी अमृत का पान करने के लिए पात्र है। उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, सभी शास्त्रों के सारभूत श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास उनके चरण कमल है। इस श्लोक का पच्चीसवे श्लोक के साथ अन्वय हैं। १२५-२६।।

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि । पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽकोंडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥

अन्वयः— पथि सितातपत्रव्यजनैः उपास्कृतः प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः पिशङ्गवासा वनमालया च अर्कोडुपचापवैद्युतैः घनः यथा बभौ ॥२७॥

अनुवाद द्वारका के राजमार्ग पर श्वेतछत्र तथा चामरों से मण्डित चारो ओर से बरसाये जा रहे फूलों की वर्षा से पीताम्बर से वनमाला से भगवान् उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे श्याम वर्ण का मेघ सूर्य तारों से युक्त चन्द्रमा इन्द्रधनुष तथा विद्युत् से सुशोभित हो रहा हो ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सितैरातपत्रव्यजनैरुपस्कृतो मण्डितः । अर्कश्चोडुपो नक्षत्रसिहतश्चन्द्रश्च चापिमन्द्रधनुश्च वैद्युतं विद्युत्तेजश्च तैः । अर्कश्छत्रस्योपमानम् । नक्षत्राणि पुष्पवृष्टेः । चन्द्रः परिभ्रमकृतमण्डलाकारयोश्चामरव्यजनयोः । चापं वनमालायाः विद्युत्तेजः पिशङ्गवाससोः । अभूतोपमेयम् । यदि धनस्योपिर सूर्यबिम्बमुभयतश्चन्द्रो सर्वतो नक्षत्राणि मध्ये च मिलितं चापद्वयं स्थिरं विद्युत्तेजश्च यदि भवेत्तर्हि स धनो यथा भित तथा हरिर्बभावित्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

द्वारका के राजमार्ग पर जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत छत्र से आवृत्त थे और चामरों से उनको हवा की जा रही थी । वे पीताम्बर और वनमाला धारण किए थे । इन सबों से अलंकृत भगवान् की शोभा सूर्य, तारों सिहत चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और विद्युत् से अलंकृत श्याम वर्ण के मेघ के समान हो रही थी । सूर्य छत्र के उपमान हैं, नक्षत्र पुष्पों के उपमान हैं, चन्द्रमा चारो ओर घुमाये जा रहे चामरों के उपमान हैं इन्द्रधनुष वनमाला का उपमान है, विद्युत् का तेज पीताम्बरों का उपमान है । इस श्लोक में अभूतोपमा अलङ्कार हैं । यदि मेघ के ऊपर सूर्य का बिम्ब हो और उसके दोनों ओर दो चन्द्रमा, चारो ओर तारे हों, बीच में मिले हुए दो इन्द्र धनुष हों तथा विद्युत् का स्थिर तेज हो इस प्रकार का श्याम मेघ जैसे सुशोभित होए उसी तरह की शोभा श्रीहरि की हो रही थीं ॥२७॥

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः। ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥ ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः। हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः॥२९॥

अन्वयः— पित्रोः गृहं प्रविष्टः देवकी प्रमुखाः सप्त शिरसा ववन्दे । स्वमातृभिः परिष्वक्तः । स्नेह स्नुतपयोधराः ताः पुत्रम् अङ्के आरोप्य हर्षविह्वलितात्मानः नेत्रजैः जलैः सिषिचुः ।।२८-२९।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम अपने माता-पिता के गृह में प्रवेश किए और देवकी आदि अपनी सातो माताओं के चरणों पर शिर रखकर उनकी वन्दना किए, माताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगा लिया। उन माताओं के स्तनों से स्नेह के कारण दूध प्रवाहित होने लगा। उन लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बैठा लिया और अपने स्नेहाश्रुओं से उनके शिर को भिङ्गो दिया। १८८-२९॥

भावार्थ दीपिका

देवकीप्रमुखाः सप्त ववन्द इति मातृसौन्दर्यादादरिवशेषज्ञापनार्थमुक्तम् । अष्टादशापि वसुदेवभार्या मातृतुल्यत्वात्रमस्कृता एव । नेत्रजैर्जलैर्हर्षाश्रुभिः ।।२८-२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सातो माताओं को प्रणाम करके उनकी प्रार्थना की । देवकीजी उन सबों में सुन्दर

थीं उनके प्रति आदर विशेष को बोधित करने के लिए देवकीप्रमुखाः सप्तववन्दे कहा गया है वसुदेवजी की अठारहो पत्नियाँ माता के ही तुल्य थीं अतएव श्रीभगवान् उन सबों को भी नमस्कार किए । नेत्रजैर्जलैः अर्थात् आँसुओं से ।।२८-२९।।

अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् । प्रसादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ।।३०।।

अन्वयः अथ सर्वकाममनुत्तमम् स्वभवनं अविशत् यत्र च षोडश सहस्राणि पत्नीनां प्रसादाः ।।३०।।

अनुवाद— इसके पश्चात् श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले सर्वोत्तम अपने महल में प्रवेश किए जिसमे सोलह हजार पत्नियों के अलग-अलग महल थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स्वगृहप्रवेशमाह- अथेति । सहस्राणि च षोडशेति च करादष्टोतरशतानीतिच ज्ञेयम् ॥३०॥ भाव प्रकाशिका

अथ इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के अपने गृह में प्रवेश का वर्णन किया गया है। सहस्राणि षोडशेति च के चकार का अर्थ है कि सोलह हजार एक सौ आठ महल थे।।३०।।

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः । उत्तस्थुरारात् सहसासनाशयात्साकं व्रतैव्रीडितलोचनानाः ॥३१॥

अन्वयः प्रोष्य गृहान् उपागतं पतिं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः, व्रतैः व्रीडितलोचनानाः पत्न्यः आरात् आसनाशयात् सहसा साकं उत्तस्थुः ।।३१।।

अनुवाद— परदेश में रहकर घर आये अपने पित श्रीभगवान् को दूर से ही देखकर प्रोषित भर्तृका के नियमों तथा शय्या तथा आसन का त्याग करके श्रीभगवान् की पितनयाँ अचानक एक साथ खड़ी हो गयीं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

प्रोष्य देशान्तरे उषित्वा आरात् दूरादेव विलोक्य संजातो मनिस महोत्सवो यासाम् ताः आसनादाशयाच्च आसनाद देहेनोत्तस्थुः । आशयोऽन्तः करणं तस्मादप्यात्मनोत्तथुः श्रीकृष्णेनात्मनः संश्लेषेऽन्तः करणव्यवधानमि ता नसहन्तेत्यर्थः। ब्रीडितानि लोचनान्याननानि च यासां ताः अपाङ्गैरेव वीक्षणाद् ब्रीडितलोचनाः अवनतमुखत्वाद् ब्रीडिताननाः साकं ब्रतैः हास्य क्रीडावर्जनादिनियमा अपि ताभ्य उत्तस्थुरित्यर्थः । धृतब्रता उत्तस्थुरिति वा । ब्रतानि च याज्ञवल्क्येनोक्तानि–

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं पर गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।। इति ।।३१।। भाव प्रकाशिका

प्रोष्य अर्थात् दूसरे देश में रहकर । अरात् अर्थात् दूसरे ही देखकर जिन सबों के मन में अत्यधिक प्रसन्नता हो गयी थी । वे सब अपने शरीर से आसन से उठकर खड़ी हो गयीं और अन्तःकरण से उठ खड़ी हुई । श्रीकृष्ण के द्वारा आत्मालिङ्गन के समय वे सब अपने अन्तःकरण के भी व्यवधान को नहीं सह सकीं । उस समय उन सबों के नेत्र और मुख लज्जा के कारण झुक गये थे । कटाक्षपातों से ही उन सबों के नेत्र लिज्जित हो गये ो और उन सबों ने अपना मुख झुका लिया था । साथ ही साथ प्रोषित पितका के हँसी करना, क्रीडा करना आदि के पिरत्याग आदि नियमों का भी पिरत्याग कर दिया । अथवा व्रत धारण किए हुए ही उठकर खड़ी हो गयीं । प्रोषित पितका के व्रत का महर्षि याज्ञवल्क्य ने बतलाया भी है— १. क्रीडा करना, २. अपने शरीर को अलंकृत करना, अपने शरीर को अलंकृत करना, ३. समाज में जाकर उत्सव देखना, ४. हँसना तथा ५. दूसरे के घर जाना, प्रोषित भर्तका का इन पाँच कामों को त्याग देना चाहिए ॥३१॥

तमात्मजैईष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् । निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलञ्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

अन्वयः— हे भृगुवर्य ! दुरन्तभावाः ताः अन्तरात्मना, दृष्टिभिः आत्मजैश्च तं पतिं परिरेभिरे । विलज्जतीनां नेत्रयोः अम्बु निरुद्धम् अपि आस्रवत् ।।३२।।

अनुवाद हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ शौनकजी ! जिन सबों का भाव अत्यन्त गम्भीर था । उन सबों ने सर्वप्रथम मन से, उसके पश्चात् दृष्टि से तथा उसके पश्चात् पुत्रों के व्याज से शरीर से उनका आलिङ्गन किया । उन सबों की आखों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उनको उन सबों ने अत्यधिक लज्जा के कारण बहुत रोका किन्तु वे रुक नहीं सकें ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

आयान्तं तं पतिं दर्शनात्पूर्वमात्मना बुद्ध्यान्तर्हदये परिरेभिरे ततो दृष्टिभिस्ततः समीपमागतमात्मजैः पुत्रैर्गृहीतकण्ठमालिङ्गयन्त्य इव स्वयमालिङ्गितवत्य इत्यर्थः । अत्र हेतुः- दुरन्तभावा गम्भीराभिप्रायाः । तदा च तासां नेत्रयोर्निरुद्धमप्यम्बु बाष्पं वैक्लव्याद्वैवश्यादास्रवदीषत्सुस्राव । अतएव धैर्यहान्या विलज्जतीनाम् । हे भृगुवर्य । चित्रं शृण्विति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आते हुए अपने पित को देखने से पूर्व उन सबों ने अपने मन से पित का आलिङ्गन किया, उसके पश्चात् श्रीभगवान् को अपनी आँखों से देखकर दृष्टि से आलिङ्गन किया, श्रीभगवान् के समीप आ जाने पर जब श्रीभगवान् अपने पुत्रों को उठाकर गले से लगा रहे थे उस समय आलिङ्गित होते हुए के समान उन सबों ने भगवान् का शारीर से आलिङ्गन किया। इसका कारण यह था कि उन सबों का भाव गम्भीर था। उस समय उन सबों के नेत्रों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उन सबों ने लज्जावशात् उसे बहुत रोकना चाहा किन्तु वे आँसू बाहर निकल ही आये। हे भृगुवर्य इस आश्चर्य को आप सुनें।।३२।।

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् । पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥

अन्वयः— यद्यपि रहः गतः असौ पार्श्वगतः तथापि तस्य अङ्घ्रियुगं (आसांकृते) पदे पदे नवं नवम् (एव) यत् श्रीः कर्हिचित् न जहाति तत् पदात् का विरमेत् ॥३३॥

अनुवाद यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त में उन सबों के पास ही रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के दोनों चरणकमल उन सबों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते थे। श्रीभगवान् के जिन चरणों को लक्ष्मीजी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कौन रमणी छोड़ सकती हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

पार्श्वगतः समीपस्थस्तत्रापि रहोगत एकान्ते प्रवर्तते स्म । पदे पदे प्रतिक्षणं नवं नवमेव । अत्र कैमुत्यन्यायः । का विरमेतेति । चला चञ्चलस्वभावापि ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् एकान्त में उन सबों के समीप ही बने रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के चरण युगल उन पत्नियों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते हैं। और ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है; क्योंकि भगवान् के जिन चरणों का चञ्चल स्वभाव वाली लक्ष्मी भी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कोई पत्नी कैसे छोड़ सकती हैं ?॥३३॥

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् । विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥३४॥

अन्वयः यथा श्वसनः (परस्पर संघर्षेण) अनलम् (उत्पाद्य वंशान् विनाशयित एवमेव) क्षितिभारजन्मनाम्, अक्षैहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् नृपाणां मिथः वैरं विधाय वधेन उपरतः ।।३४।।

अनुवाद — जिस तरह वायु बाँसों में संघर्ष उत्पन्न करके अग्नि को उत्पन्न कर देती है और उससे बांसों को जला देती है, उसी तरह आयुध हीन भी रहकर भगवन् पृथिवी के भार रूप से जन्म लेने वाले तथा कई अक्षौहिणी सेनाओं से युक्त होने के कारण तेजस्वी राजाओं में परस्पर में वैर उत्पन्न करके स्वयम् उपरत हो गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

उक्तं श्रीकृष्णचरितं संक्षिप्याह- एविमिति द्वाभ्याम् । क्षितेर्भाराय जन्म येषाम् । अक्षौहिणीभिः कृत्वा परिवृत्तं सर्वतः प्रसृतं तेजः प्रभावो येषाम् । श्वसनो वायुर्वेणूनामन्योन्यसंघर्षेणाानलं विधाय मिथो दाहेन यथोपशाम्यति तद्वत् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिस श्रीकृष्ण चिरत का वर्णन किया जा चुका है उसी को संक्षेप में एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । श्वितिभारजन्मनाम् पद का विग्रह है श्वितेभिराय जन्म येषाम् । जिन सबों का जन्म पृथिवी पर पाप का भार बढ़ाने के ही लिए होता है । अक्षौहिणी सेनाओं को ही लेकर जिन सबों का प्रभाव सब ओर फैला था, ऐसे राजागण को । वायु जिस तरह से बाँस में संघर्ष कराकर अग्नि को उत्पन्न कर देती है वही अग्नि बाँसों को भस्म करके अन्त में स्वयं शान्त हो जाती है । उसी तरह अपने हाथ में आयुध धारण किए बिना ही उन राजाओं में वैर पैदा करके एक दूसरे के द्वारा उन सबों का वध भी करवाकर भगवान् शान्त हो गये ॥३४॥

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया । रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्त्राकृतो यथा ॥३५॥

अन्वयः— स एष भगवान् स्वमायया अस्मिन् नरलोके अवतीर्णः स्नीरत्नकूटस्थः प्राकृतो यथा रेमे ।।३५।। अनुवाद— वे ही ये भगवान् अपनी माया का आश्रय लेकर इस मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए और स्नीरत्न समूह के बीच रहकर प्राकृत मनुष्य के समान रमण किए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

स्त्रीरत्नकूटस्थ उत्तमस्त्रीकदम्बस्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उत्तम कोटि के स्त्री समूह में स्थित यह स्त्रीरत्नकूटस्थ पद का अर्थ हैं ॥३५॥

उद्दामभाविपशुनामलवल्गुहासब्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् । संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमिथतुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥

अन्वयः यासाम् उद्दामभाविपशुनामलवल्गुहास-ब्रीडावलोक-निहतः मदनः अपि संमुह्य चापम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमिथतुम् न शेकुः । अथवा यासाम् उद्दाम भाविपशुनामल वल्गुहास ब्रीडावलोक निहतः अमदनः महादेवोऽपि संमुह्य पिनाकम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमिथतुम् न शेकुः ।।३६।।

अनुवाद जिन सबों की निर्मल और मनोहर हँसी उन सबों के उन्मुक्त हार्दिक भावों को सूचित करने वाली थी उनके लज्जापूर्ण अवलोकन के कारण मोहित (किङ्कर्तव्य विमूढ) कामदेव भी अपने धनुष का परित्याग कर दिये थे उन कामिनियों का काम विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभ नहीं पैदा कर सका । अथवा इस श्लोक का यह भी अर्थ है कि जिन सबों की निर्मल और मनोहर हंसी उन सबों के हृदय के उन्मुक्त भाव को अभिव्यक्त करने वाली होती है, उन स्त्रियों की लज्जा तथा अवलोकन के द्वारा प्रताडित होकर काम की भावना रहित महादेवजी भी मोहित होकर अपने पिनाक का परित्याग कर दिए, ऐसी पुराणों में प्रख्यात कोई आख्यायिका है, यह प्राचीनों का कहना है। इसी प्रकार कामिनियों का कामद्वोधक विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभा पैदा नहीं कर सका ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं स्त्रीसङ्गादिभिः संसारप्रतीतेः कथं भगवानवतीर्ण इत्युच्यते तत्राह- उद्दामेति द्वाभ्याम् । यासामुद्दामो गम्भीरो यो भावोऽभिप्रायस्तस्य पिशुनः सूचकोऽमलो वल्गुः सुन्दरो हासो व्रीडावलोकश्च ताभ्यां निहतः अमदनः श्रीमहादेवोऽपि संमुद्धा लज्जया चापं पिनाकमजहात् । एवंप्रभावा याः स्त्रिय इत्येतावद्विवक्षितम् । यद्वा भगवतो मोहिनीरूपेण महेशोऽपि मोहित एवमेताश्च तादृग्विलासा एवेति तथोक्तम् । ताः कुहकैः कपटैर्विभ्रमैर्यस्येन्द्रियं मनो विमिथतुं क्षोभियतुं न शेकुर्न शक्ताः । अथवा निहतस्ताडितो मदनोऽपि जगद्विजयी संमुद्धा तत्तत्कर्तव्यतामूढः संश्चापं धनुर्लज्जयाऽजहाज्जहौ । ताश्च प्रमदोत्तमाः कामविजयिन्योऽपीत्यादिपूर्ववत् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि श्रीभगवान् भी स्त्रियों आदि का संङ्ग करते है अतएव वे संसारी ही प्रतीत होते हैं, यह कैसे कहा जाता है श्रीभगवान् ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। इसका उत्तर उद्दाम इत्यादि दो श्लोकों से दिया गया है। उन सबों के गम्भीर अभिप्राय की सूचना उन नारियों की मनोज्ञ हँसी लज्जापूर्वक देखने के कारण कामरहित शङ्करजी भी मोहित होकर लज्जा के कारण अपने पिनाक का परित्याग कर दिए। इस प्रकार की वे स्त्रियाँ थीं। या भगवान् ने अपनी मोहिनी रूप से शङ्करजी को भी मोहित कर दिया इस प्रकार के विलास वाली स्त्रियाँ जिन श्रीभगवान् के मन आदि इन्द्रियों को मोहित नहीं कर सकीं अथवा इन सबों के द्वारा प्रताडित होकर किं कर्तव्य विमूढ जगद् विजयी काम भी लिज्जत होकर अपना धनुष त्याग दिया। इस तरह की काम को भी जित लेने वाली नारियाँ भी श्रीभगवान् के मन को मोहित नहीं कर सकीं।।३६।।

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् । आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥

अन्वयः— तम् असङ्गम् अपि लोकः सङ्गिनम् आत्मौपम्येन व्यापृण्वानं मनुजं मन्यते, यतः अयम् अबुधः ।।३७।। अनुवाद— उन आसक्ति रहित श्रीभगवान् को यह संसार इसलिए आसक्त मानता है कि यह संसार अज्ञानी हैं और अपने ही समान श्रीभगवान् को कार्यों को करते हुए देखता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तं श्रीकृष्णमयं प्राकृतो लोक आत्मौपम्येन स्वसादृश्ये सङ्गिनं मनुजं मन्यते । अत्र हेतु:- व्यापृण्वानं व्याप्रियमाणम्। यतोऽयमबुधोऽतत्त्वज्ञः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

उन आसक्ति रहित भगवान श्रीकृष्ण को यह जो अज्ञान संसार है वह अपने ही समान आसक्त मनुष्य मानता है उसका कारण यही है कि सत्यभामा आदि में आसक्त रहने के कारण वे पारिजात आदि का हरण किए। यह सब इसीलिए है कि यह संसार तत्त्वज्ञ नहीं है ॥३७॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तहुणैः । न युज्यते सदात्मस्थैर्यया बुद्धिस्तदाश्रया ॥३८॥ अन्वयः— ईशस्य एतदेव ईशनम् यत् प्रकृतिस्थ अपि तदुणैः न युज्यते यथा सदा आत्मस्थैः तदाश्रया बुद्धिः न युज्यते॥३८॥ अनुवाद परमात्मा का यही ईश्वरत्व है कि प्रकृति में भी रहकर वे प्रकृति के गुणों से संबद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह श्रीभगवान् को अपना आश्रय बनाने वाली बुद्धि प्राकृतिक गुणों से लिप्त नहीं होती है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यपेक्षायामैश्वर्यलक्षणमाह- एतदिति । ईशस्य ईशनमैश्वर्य नामैतदेव । किं तत् । प्रकृतिस्थोऽपि तस्या गुणैः सुखदुःखादिभिः सदा न युज्यते इति यत् । यथात्मस्थैरानन्दादिभिरात्माश्रयापि बुद्धिनं युज्यते तद्वत् । वैधम्यें दृष्टान्तो वा । आत्मस्थैः सत्ताप्रकाशादिभिर्यथा बुद्धिर्युज्यत इति । एवं वा । असदात्मा देहस्तत्रस्थैर्गुणैस्तदाश्रया बुद्धिस्तदुपाधिर्जीवो यथा युज्यते एवं प्रकृतिस्थोऽपि तद्वणैर्न युज्यत इति यदेतदीशनमीशस्येति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यह क्यों होता है ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर ऐश्वर्य का स्वरूप एतद् इत्यादि श्लोक से कहते हैं। परमात्मा का यही ऐश्वर्य है कि प्रकृति में स्थित रहकर भी वे प्रकृति के गुणों सुख दु:ख आदि से कभी भी सम्बद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह आत्माश्रित भी बुद्धि प्रकृति के गुणों से कभी लिप्त नहीं होती है। आत्म व्यतिरिक्त शरीर में रहने वाली बुद्धि भी शरीर के सुख दु:ख आदि से युक्त नहीं होती है। किन्तु शरीरोपहित जीव शरीर के गुणों से युक्त होता है। अतएव प्रकृति में रहकर भी उसके गुणों से युक्त नहीं होना ही ईश्वर का ईश्वरत्व हैं। ।३८।।

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः । अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— भर्तुः अप्रमाण विदः मूढाः अबला स्त्रैणम् रह अनुव्रतं च यथा मतयः ईश्वरम् मेनिरे ।।३९।।

अनुवाद — अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानने वाली अज्ञानी स्त्रियों ने उनको अपने वशवर्ती तथा सदा कामपरायण उसी तरह मानती थीं जिस तरह कोई अहङ्कारी ईश्वर को भी अपने ही समान मानता हैं ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तत्पत्न्योऽपि तस्य तत्त्वं न जानन्तीत्याह । तं स्त्रैणमात्मवश्यं रह एकान्तेऽनुव्रतमनुसृतं च मेनिरे । भर्तुरप्रमाणिवदः प्रमाणिमयत्तां मिहमानमजानन्त्य इत्यर्थः । ईश्वरं क्षेत्रज्ञं मतयोऽहंवृत्तयो यथा स्वाधीनं स्वधर्मयोगिनं मन्यन्ते तद्वत् । यद्वा यथा यथा तासां मतयः कल्पनास्तथा तथा तमीश्वरं स्त्रैणादिरूपं मेनिरे इत्यर्थः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकादशोऽध्याय: ।।११।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की पित्नयाँ भी उनके तत्त्व को नहीं जानती थीं उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने अधीन और अपने में ही सदा आसक्त रहने वाला माना । ऐसा इसिलए कि वे अपने पित भगवान् श्रीकृष्ण की मिहमा को नहीं जानती थीं । यह उसी तरह से है जिस तरह से कोई अहङ्कारी व्यक्ति ईश्वर को अपने ही समान मनुष्य मानता है। अथवा वे पित्नयाँ जैसी कल्पना करती थीं उसी तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को स्नैण मानती थीं।।३९॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य की भावार्थदीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।११।।



बारहवाँ अध्याय

परीक्षित् का जन्म वर्णन

शौनक उवाच

अश्वत्थाम्रोपसृष्टेन ब्रह्मशीष्णींरुतेजसा । उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥

अन्वयः अश्वत्थाम्नः । उपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णः उरुतेजसा उत्तराया गर्भः हतः पुनः ईशेन आजीवितः ।।१।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट ही हो गया था ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको फिर से जीवित कर दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पुरोक्तं यत्प्रसङ्गाय द्रौणिदण्डादि विस्तरात् । द्वादशे तु तदेवाथ परीक्षिज्जन्म वर्ण्यते ।। 'परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म- कर्मिवलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ।।' इति प्रतिज्ञाय पाण्डवानां राज्यस्थितिरुपोद्धातरूपा सप्रसङ्गं सप्तमाध्यायमारभ्य निरूपिता । इदानीमौपोद्घातिकमुक्तानुवादपूर्वकं पृच्छति- अश्वत्थाम्नेति। उपसृष्टेन विसृष्टेन । तस्य जन्मादि ब्रूहीत्युक्तरेणान्वयः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

जिसके प्रसङ्ग में पहले अश्वत्थामा के दण्ड आदि का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। उस परीक्षित् के जन्म का वर्णन बारहवें अध्याय में किया जा रहा है। इससे पहले सूतजी ने कहा है कि मैं राजा परीक्षित् के जन्म कर्म तथा उनकी मुक्ति का वर्णन, पाण्डवों का स्वर्गारोहण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का प्रारम्भ इन सारी बातों का वर्णन करूँगा, इस तरह से प्रतिज्ञा करके पाण्डवों को राज्य की प्राप्ति का सप्रसङ्ग वर्णन सातवें अध्याय से प्रारम्भ करके यहाँ तक किया गया। इस अध्याय में उपोद्घात में कही गयी बातों का अनुवाद पूर्वक शौनक महर्षि ने अश्वत्थाम्नो इत्यादि श्लोक से पूछा कि अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट हो ही गया था, उसको भगवान् श्रीकृष्ण ने पुन: जीवित कर दिया।।१।।

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः। निघनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥२॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे। ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥

अन्वय:— तस्य महाबुद्धेः महात्मनः जन्म, कर्माणि निधनं च यथैव आसीत् यस्य ज्ञानम् शुकः आदात् सः प्रेत्य यथा गतवान् तदिदं श्रोतुम् इच्छामः यदि गदितुम् मन्यसे (तदा) श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ।।२-३।।

अनुवाद उन महाबुद्धिमान् महात्मा परीक्षित् का शुकदेवजी ने जिनको ज्ञान प्रदान किया था उन परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा निधन जैसे हुए तथा मृत्यु के पश्चात् उन्होंने जैसे मुक्ति को प्राप्त किया उन सारी बातों को हमलोग सुनना चाहते हैं, यदि आप उसे ठीक समझें तो श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

स परीक्षित् । प्रेत्य देहं त्यक्त्वा । प्रार्थये नत्वाज्ञापयामीत्याह । गदितुं यदि मन्यसेऽनुग्रहेण तर्हि ब्रूहीति । यस्य ज्ञानमदाच्छुक: इति श्रवणेच्छायां कारणम् ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

वे परीक्षित् मृत्यु के पश्चात् जिस तरह से मुक्ति प्राप्त किए उसे आप बतलायें, यह मेरी प्रार्थना है न कि

में आपको आज्ञा दे रहा हूँ। यदि उसे आप कहने योग्य समझें तो कृपा करके बतलायें। उसको सुनने की इच्छा इसलिए है कि राजा परीक्षित् को श्रीशुदकेवजी ने ज्ञानोपदेश किया था ॥२-३॥

सूत उवाच

अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्त्रजाः । निस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ॥४॥

अन्वयः कृष्णपादाब्जसेवया सर्वकामेभ्यः निःस्पृहः धर्मराजः पितृवद् प्रजाः रञ्जयन् अपीपलत् ।।४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करने के कारण धर्मराज युधिष्ठिर समस्त भोगों से नि:स्पृह हो गये थे। वे पिता के ही समान प्रजाओं को प्रसन्न रखते हुए उन सबों का पालन किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

निस्पृहस्यापि राज्ञः श्रीकृष्णानुग्रहात्तादृक् पौत्रः समजनीति वक्तुं तस्य श्रीकृष्णे भत्तयुद्रेकमाह- अपीपलदिति त्रिभिः। पितृवदपीपलत् पालयामास ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर निःस्पृह थे फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से उनको परीक्षित् जैसा पौत्र प्राप्त हुआ इस बात को बतलाने के लिए सूतजी ने राजा युधिष्ठिर का भगवान् कृष्ण में भिक्त के उद्रेक को अपीपलत् इत्यादि तीन श्लोकों से कहा । युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के ही समान प्रजाओं का पालन किया ॥४॥ सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही। जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम्॥५॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः। अधिजहुर्मुदं राज्ञः श्रुधितस्य यथेतरे ॥६॥

अन्वयः— हे द्विजाः ! सम्पदः क्रतवः लोकाः महीषी, भ्रातरः मही, जम्बूद्वीपाधिपत्यं त्रिदिवं गतं यशः च ते सुरस्पार्हाः ते कामाः राज्ञः क्षुधितस्य इतरे यथा मुकुन्दमनसः राज्ञः मुदः अधिजहुःकिम् ॥५-६॥

अनुवाद हे महर्षियों ! अतुल सम्पितयाँ, किये गये याग, उसके फल स्वरूप अधिकृत लोक, पत्नी, भाईगण, पृथिवी, जम्बूद्वीप का साम्राज्य, स्वर्गपर्यन्त फैला हुआ यश तथा देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भोग सामग्री, जिस तरह से भूखे के लिए भोजन व्यतिरिक्त भोग्य पदार्थ अच्छे नहीं लगते हैं, उसी तरह जिनका मन सदा भगवान् में लगा रहता था उन महाराज की प्रसन्नता को वे सभी भोग्य पदार्थ नहीं बढा सके क्या ? अर्थात् जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई भी दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लगती है, उसी तरह राजा युधिष्ठिर को ये सारी भोग सामग्रियाँ आकृष्ट नहीं कर सकीं ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

क्रतवस्तदुपार्जिता लोकाश्च । सुरस्पार्हाः सुराणां स्पृहणीयास्ते सम्पदादयः कामा विषया राज्ञः किं मुदं प्रीतिमधिज**हुः** कृतवन्तः । न कृतवन्त इत्यर्थः । अत्र हेतुः । मुकुन्दे एव मनो यस्येति । क्षुधितस्यात्रैकमनसो यथेतरे स्रक्चन्दनादयो न कुर्वन्ति तद्वत् ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञों के करने के फलस्वरूप राजा युधिष्ठिर जिन लोकों पर अधिकार प्राप्त कर लिए थे वे लोक तथा देवताओं के लिए भी स्पृहा योग्य सम्पत्ति इत्यादि भोग की सामग्रियाँ क्या राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न कर सकीं ? अपितु वे नहीं कर सकीं । उसका कारण यह था कि उनका मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था उनको श्रीभगवान् से भिन्न दूसरी वस्तुएँ उसी तरह अच्छी नहीं लगती थीं जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती हैं ॥५-६॥

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन । ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥

अन्वयः हे भृगुनन्दन ! मातुर्गर्भगतः, अस्त्रतेजसा दह्यमानः स वीरः तदा कंचित् पुरुषं ददर्श ।।७।।

अनुवाद हे भृगुनन्दन शौनकजी ! अपनी माता के गर्भ में विद्यमान तथा ब्रह्मास्त्र के तेज से जलते हुए उस वीर शिशु ने किसी पुरुष को देखा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-मातुरिति । सः परीक्षित् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रस्तुत परीक्षित् के जन्मादि का वर्णन **मातुःर्गर्भगतः इत्यादि** श्लोक से प्रारम्भ किया गया है । सः शब्द से परीक्षित् को कहा गया है ॥७॥

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम्। अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम्।।८।। श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्। क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम्।। परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहूः ।।९।। अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः। विधमन्तं संनिकर्षे पर्यक्षत क इत्यसौ।।१०।।

अन्वयः अङ्गुष्ठमात्रम् अमलम् स्फुरत्पुरटमौलिनम्, अपीच्यदर्शनम् श्यामं, तिडद् वाससम् अच्युतम्, श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुम् तप्तकाञ्चनकुण्डलम्, क्षतजाक्षं, गदापाणिम्, आत्मनः सर्वतोदिशम्, उल्काभां गदाम् मुहुः भ्रामयन्तम्, स्वगदया गोपितः निहारम् इव अस्त्र तेजः'विधमन्तं पुरुषं सिनकर्षे असौ कः इति पर्यक्षत ।।८-१०।।

अनुवाद गर्भस्थ शिशु ने देखा कि एक पुरुष अङ्गुष्ठ परिमाणक है, उसका स्वरूप निर्मल है, उसके शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा है, वह देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा श्याम वर्ण का है। वह विद्युत् के समान चमकने वाले पीताम्बर को धारण किए है तथा निर्विकार है। उसकी सुन्दर तथा लम्बी भुजायें है। वह अपने कानों में तप्त सुवर्ण के कुण्डलों को धारण किए हुए है। उसकी आखें लाल हैं तथा वह अपने चारो ओर उल्का के समान अपनी गदा को घुमा रहा है। वह अपनी गदा के द्वारा ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा है जिस तरह सूर्य कुहरे को विनष्ट कर देते हैं। अपने सिन्नकट में इस प्रकार के पुरुष को देखकर उस शिशु ने सोचा कि यह कौन है ?॥८-१०॥

भावार्थ दीपिका

पुरटं सुवर्णम् । स्फुरन् पुरटमौलिर्यस्यास्ति तम् । 'ब्रीह्यादिभ्यश्च' इति इनिप्रत्ययः । अपीच्यमितसुन्दरं दृश्यत इति दर्शनं रूपं यस्य तम् । तिष्ठद्वाससी यस्येति श्यामिति च पदाभ्यां विद्युद्युक्तमेघोपमा सूचिता । अच्युतमिवकारम् । तप्तं दाहोत्तीर्णं यत्काञ्चनं तन्मये कुण्डले यस्य । क्षतजाक्षं संरम्भादत्यारक्तनेत्रम् । अहो मद्भक्तस्यापि गर्भेऽस्त्रपीडेति क्रोधादिति भावः । अस्त्रतेजो विधमन्तं विनाशयन्तम् । नीहारं हिमं गोपितः सूर्य इव । (एवंविधं गर्भगतो बालः) संन्निकर्षे समीपे ददर्श। दृष्ट्वा चासौ क इति पर्यैक्षत वितर्कितवान् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

पुरट सुवर्ण को कहते है। उस पुरुष के शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा था। मौलिनम् में **ब्रीह्यादिश्यश्च** इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है। उस पुरुष का रूप देखने में अत्यन्त मनोहर था। उस पुरुष के दोनों वस्त्र बिजली के समान चमक रहे थे और उसका शरीर श्याम वर्ण का था। ताडिद्वाससम् और श्यामम् इन दोनों पदों के द्वारा विद्युत् से युक्त मेघ की उपमा सूचित होती है। अच्युत शब्द के द्वारा उस पुरुष को निर्विकार बतलाया

गया है। उस पुरुष के कानों के दोनों कुण्डल तपाये गये सुवर्ण के समान चमक रहे थे। क्रोध के कारण पुरुष की आँखें लाल हो गयी थीं। उसको इस बात का क्रोध था कि मेरे भक्त को भी यह ब्रह्मास्त्र पीडित कर रहा है। वह पुरुष अपनी गदा के तेज से ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा था जिस तरह सूर्य अपने तेज से कुहरे को विनष्ट कर देते हैं। इस प्रकार के पुरुष को उस गर्भस्थ शिशु ने अपने सिन्नकट में देखा। उस पुरुष को देखकर वह सोचने लगा कि ये कौन पुरुष हैं?।।८-१०।।

विध्य तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः । मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥११॥

अन्वयः— धर्मगुप् विभुः अमेयात्मा भगवान् हरिः तत् विधूय दशमास्यस्य मिषतः तत्रैव अन्तर्दधे ।।११।। अनुवाद— अप्रमेय धर्म की रक्षा करने वाले, सर्व व्यापक, ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि उस ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस बालक की आँखों के सामने से अन्तर्धान हो गये ।।११॥

भावार्थ दीपिका

अमेयात्मा कथं तद्विधूतवानित्यवितक्यंरूपः । धर्मं गोपायतीति धर्मगुप् । यद्वा धर्म गोपायन्तीति धर्मगुपो राजानस्तत्प्रभुस्तेषामपि पालकत्वात् । दशमासपिरच्छेद्यस्य तस्य मिषतः पश्यतो यत्र दृष्टस्तत्रैवान्तर्हितो नत्वन्यत्र गतः । यतो विभुः सर्वगतः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अमेयात्मा हैं, उनको पूर्णरूप से कोई भी नहीं जान सकता है। उन्होंने ब्रह्मास्न के तेज को कैसे विनष्ट कर दिया इसको तर्क के द्वारा कोई नहीं जान सकता है। श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करते हैं अतएव धर्मगुप् हैं। अथवा धर्म की रक्षा करने वाले जो राजागण हैं उन राजाओं की रक्षा भगवान् करते हैं अतएव वे धर्मगुप् हैं। धर्म गोपायतीति धर्मगुप् अथवा धर्म गोपान्तीति धर्मगुप: राजानः तत्प्रभुः। यह दोनों प्रकार की व्युत्पत्ति है। वे भगवान् ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस शिशु के सामने से अन्तर्धान हो गये क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं। ११।

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये । जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥१२॥

अन्वयः— ततः सानुकूलग्रहोदये सर्वगुणोदर्के पाण्डोः वंशधरः ओजसा पाण्डुरिव जज्ञे ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जिस समय सभी अनुकूल ग्रहों का उदय हो गया था उस सभी गुणों को प्रदान करने वाले काल में पाण्डु के वंश को बढ़ाने वाले तथा पाण्डु के ही समान ओजस्वी परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उदर्क उत्तरफलम्। सर्वगुणानामुत्तरोत्तराधिक्यसूचके लग्ने। तत्र हेतु:-अनुकूलैरन्यैग्रॅहै: सहितानां शुभग्रहाणामुदयो यस्मिन्।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उदर्क फल को कहते हैं । सभी गुणों के उत्तरोत्तर आधिक्यसूचक लग्न में तथा दूसरे अनुकूल ग्रहों के साथ जिस लग्न में शुभ ग्रहों का उदय हो गया था उस लग्न में परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैधौँम्यकृपादिभिः । जातकं कारयामास वाचियत्वा च मङ्गलम् ॥१३॥

अन्वयः - तस्य जन्मनः प्रीतमना राजा धौम्य कृपादिभिः मङ्गलम् वाचियत्वा जातकं कारयामास ।।१३।।

अनुवाद— उस बालक के जन्म से प्रसन्न हुए राजा युधिष्ठिर धौम्य तथा कृपाचार्य इत्यादि ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराकर जातकर्म कराये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

जातकं जातकर्म । मङ्गलं पुण्याहम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने उस बालक का पुण्याह वाचन कराकर जातकर्म कराया ।।१३।।

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्चात्रृपतिर्वरान् । प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥१४॥

अन्वयः— तीर्थवित् नृपतिः प्रजतीर्थे विप्रेभ्यः हिरण्यम्, गाम् महीम् ग्रामान् हस्ती, वरान् अश्वान् स्वत्नं च प्रादात् ।।१४।। अनुवाद — तीर्थवेत्ता, राजा युधिष्ठिर प्रजातीर्थ के समय ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, पृथिवी, ग्राम, हाथी, श्रेष्ठ घोड़े तथा सुन्दर अत्र का दान दिये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वरान् श्रेष्ठान् । स्वत्रं शोभनमत्रं च । तीर्थविद्दानकालज्ञः । 'यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।' इति वचनात्ततः पूर्वं प्रादात् । आमात्रं वा प्रजातीर्थे पुत्रोत्पत्तिपुण्यकाले । 'पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्' इति स्मृतेः । 'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्चेष्ठ पुण्याहमिति चाबुवन् ।' इति च ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ कोटि के हाथियों और अश्वों का दान दिया । नालच्छेदन से पहले सूतक नहीं होता है कहा भी गया है—

यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्रोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।।

अर्थात् जब तक उत्पन्न शिशु के नाल का छेदन नहीं होता है तब तक सूतक नहीं लगता है। नालच्छेदन के पश्चात् ही सूतक का विधान किया गया है। इस वाक्य के अनुसार उन्होंने नालच्छेदन से पूर्व ही दान किया अथवा पुत्रोत्पत्ति के पुण्यकाल में प्रजातीर्थ में आमान्न कच्चा अन्न दान किया। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् और नालच्छेदन से पहले का कार्य प्रजातीर्थ कहलाता है। स्मृति में यह भी कहा गया है— पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवित चाक्षयम्। अर्थात् पुत्र के उत्पन्न होने पर तथा व्यतीपात योग में दिया गया दान अक्षय होता है। दूसरी भी स्मृति कहती है—

देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्रेष्ठ ! पुण्याहम् इति चाबुवन् ।।

अर्थात् हे राजश्रेष्ठ द्विजातियों के यहाँ पुत्र उत्पन्न होने पर देवता तथा पितृगण पुण्याह का उच्चारण करते हुए आते हैं ॥१४॥

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् । एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभः ॥१५॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि । रातो वोऽनुप्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः। भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥१७॥

अन्वयः— तुष्टाः ब्राह्मणा प्रश्रयान्वितम् तम् राजानम् ऊचुः पौरवर्षभ कुरूणाम् शुक्ले अस्मिन् प्रजातन्तौ अप्रतिघातेन दैवेन संस्थाम् उपेयुषि वः अनुग्रहार्थम् प्रभविष्णुना विष्णुना एषः रातः अतएव एषः विष्णुरात इति नाम्ना लोके भविष्यति। अयम् महान् महाभागवतो भविष्यति इति न संदेहः ।।१५-१७।।

अनुवाद— ब्राह्मणों ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनीत राजा युधिष्ठिर से कहा— हे पुरुवंशियों में अग्रगण्य काल की दुर्निवार गति के कारण यह पवित्र पुरुवंश मिट ही जाने वाला था; किन्तु आपलोगों पर कृपा करने के लिए भगवान् विष्णु ने यह वंश आपलोगों को प्रदान किया है और आपके वंश की रक्षा की है। अतएव इसका नाम विष्णुरात होगा। संसार में इसका महान् यश फैलेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि यह महाभागवत होगा ॥१५-१७॥

भावार्थ दीपिका

हे पौरवर्षभ, कुरूणां कुरुवंश्यानां शुक्ले शुद्धेऽस्मिन्प्रजातन्तौ । दैवेन । कथंभूतेन । अप्रतिघातेन दुवरिण । संस्थां नाशमुपेयुषि गति सति वः युष्माकं अनुग्रहार्थाय यस्माात्प्रभवनशीलेन श्रीविष्णुना रातो दत्तस्तस्माल्लोके विष्णुरात इति नाम्ना भविष्यति महाभागवतश्च । गुणैश्च महान् भविष्यति नात्र संदेह इति तं राजानं ब्राह्मणा ऊचुरिति त्रयाणामन्वयः ।।१५-१७।।

भाव प्रकाशिका

हे पुरुवंशियों में श्रेष्ठ राजन् कुरुवंशियों का शुद्ध वंश जब कि दुर्निवार काल की गित के कारण विनष्ट ही हो जा रहा था, उस समय आपलोगों पर कृपा करने के लिए सब कुछ करने में समर्थ भगवान् विष्णु ने आपलोगों को यह सन्तान प्रदान किया है। अतएव इस बालक का नाम लोक में विष्णुरात होगा। यह निसन्देह महायशस्वी होगा। इसके गुण महान् होंगे और यह महाभागवत होगा। इस तरह से संतुष्ट हुए ब्राह्मणों ने राजा युधिष्ठिर से कहा।।१५-१७॥

युधिष्ठिर उवाच

अप्येष वंश्यात्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः । अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥१८॥ अन्वयः— हे सत्तमाः एष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः साधुवादेन यशसा अनुवर्तिता स्वित् ॥१८॥

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे महापुरुषों ! यह हमारे वंश के पवित्र कीर्ति वाले तथा महात्मा राजर्षियों का अपनी सत् कीर्ति तथा यश के द्वारा अनुसरण करेगा क्या ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

महाभागवतो भविष्यतीत्युक्ते हृष्टः पृच्छति । अपिस्वित् किंस्वित् । साधुवादेन यशसा सत्कीर्त्या चानुवर्तिता भविष्यतीति पूर्वस्यैवातः परमप्यनुषङ्गः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

य़ह महाभागवत होगा यह कहने पर प्रसन्न होकर राजा ने पूछा क्या यह सत्कीर्ति और यश के द्वारा अपने वंश के राजाओं के समान होगा ? अतएव इसका भी इससे पहले के श्लोक से सम्बन्ध है ॥१८॥

ब्राह्मणा ऊचुः पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः । ब्रह्मण्यः सत्यसन्यश्च रामो दाशरिथर्यथा ॥१९॥

अन्वयः पार्थ (एषः) साक्षात् मानवः इक्ष्वाकुरिव प्रजाविता दाशरिषः रामः यथा सत्यसन्धः ब्रह्मण्यः (भविष्यिति) ।।१९।। अनुवाद धर्मराज ! यह साक्षात् मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा तथा महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान सत्य का पालन करने वाला तथा ब्राह्मणों का भक्त होगा ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हे पार्थ, प्रजानामविता रक्षक: । मानवो मनो: पुत्र: । ब्राह्मणेभ्यो हित: । सत्यप्रतिज्ञश्च श्रीरामो यथा ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों ने कहा पार्थ यह मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा । महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान ब्राह्मणों का हितकारी और सत्यवक्ता होगा ॥१९॥

एव दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः । यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥

अन्वयः एषः औशीनरः शिविः यथा दाताशरण्यश्च, यज्वनाम् दौष्यन्तिः इव स्वानाम् यशः वितनिता ।।२०।। अनुवाद यह उशीनर नरेश शिवि के समान दान करने वाला तथा शरणागत रक्षक होगा और यज्ञ करने वालों में दुष्यन्त के पुत्र भरत के समान तथा अपने वंश वालों के यश का विस्तार करेगा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

उशीनरदेशाधिपतिः शिविः । येन स्वमांसं श्येनाय दत्त्वा शरणागतः कपोतो रक्षितः । स्वानां ज्ञातीनां यज्वनां च यशोविस्तारको दौष्यन्तिर्भरत इव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह उशीनर देश के स्वामी शिवि ने अपना मांस बाज को देकर शरणागत कपोत की रक्षा किया, उसी तरह का यह दाता तथा शरणागत रक्षक होगा। अपने वंश वालों तथा यज्ञ करने वालों के यश का विस्तार यह दुष्यन्त पुत्र भरत के समान करेगा।।२०॥

धन्वनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः । हुताश इव दुर्घर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥ मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव । तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः । आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥ सर्वसहुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः । रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्राद इव सद्ग्रहः। आहर्तेषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥२५॥

अन्वयः एषः धन्विनामग्रणीः द्वयोः अर्जुनयोः तुल्यः हुताशः इव दुर्धर्षः, समुद्र इव दुस्तरः, मृगेन्द्र इव विक्रान्तः, हिमवान् इव निषेव्यः, असौ बसुधा इव तितिश्चः, पितरौ इव सिहष्णुः, पितामहसमः साम्ये गिरिशोपमः प्रसादे, रमाश्रयः देवोः यथा, सर्वभूतानामाश्रयः, एषः सर्वसद्गुण माहात्म्ये कृष्णम् अनुव्रतः, रिन्तदेव इव उदारः, ययातिः इव धार्मिकः, घृत्या बिलसमः, कृष्णे प्रह्णाद इव सद्ग्रहः, एषः अश्वमेधानां आहर्ता वृद्धानां पर्युपासकः च भविष्यति ।।२१–२५।।

अनुवाद यह धनुधारियों में सहस्रार्जुन और अर्जुन के समान अग्रगण्य होगा, यह अग्नि के समान दुर्धर्ष होगा और समुद्र के समान दुस्तर होगा। यह सिंह के समान पराक्रम सम्पन्न होगा और हिमालय के समान सेवनीय होगा। यह पृथिवी के समान तितिक्षु और माता-पिता के समान सहनशील होगा। इसमें ब्रह्माजी के समान समता होगी, शङ्करजी के समान यह कृपा करने वाला होगा, यह लक्ष्मीपित भगवान् विष्णु के समान सबों का आश्रय होगा और सभी सद्गुणों की महिमा धारण करने में यह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी होगा। यह राजा रिन्तदेव के समान उदार होगा तथा ययाति के समान धार्मिक होगा। यह बिल के समान धैर्ययुक्त होगा तथा भगवान् श्रीकृष्ण में प्रह्लाद के समान निष्ठावान् होगा। यह अनेक अश्रमेध यागों को करेगा तथा वृद्धों की सेवा करने वाला होगा।।२१-२५॥

भावार्थ दीपिका

अर्जुनयो पार्थकार्तवीर्ययोः । हिमवानिव सतां निषेव्योऽनन्यगतिकत्वेन । वसुधेव तितिक्षुः क्षन्ता । प्रीत्या मातापितराविव सिंहष्णुः । पितामहो ब्रह्मा तेन समः समत्वे । रमाश्रयो हरिः । सर्वैः सद्गुणैर्माहात्म्यं यत्तस्मिन् । श्रीकृष्णतुल्यः । धृत्या धैर्येण। सद्ग्रहः सन् भद्रो ग्रहोऽभिनिवेशो यस्य सः । आहर्ता कर्ता ।।२१-२५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुनयोः पद के द्वारा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन तथा पार्थ अर्जुन दोनों को कहा गया है । वह अनन्य गतिक होने के कारण हिमालय के समान सेवनीय होगा । समता के विषय में यह ब्रह्माजी के समान होगा । रमाश्रयः पद से लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को कहा गया है। सभी सद्वुणों से सम्पन्न वह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाला होगा। उसमें बलि के समान धैर्य होगा। उसका सद्वस्तुओं में अभिनिवेश होगा और अश्वमेधादि यज्ञों को करेगा।।२१-२५।।

राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् । नित्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥२६॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् । प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ॥२७॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ । हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम्॥२८॥

अन्वयः एषः राजर्षीणां जनयिता, उत्पथगामिनाम् शास्ता भुवः धर्मस्य कारणात् एषः कलेः निग्रहीता, द्विजपुत्रोप सर्जितात् तक्षकात् आत्मनः मृत्युं उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः हरेः पदं प्रपत्स्यते । व्याससुतात् मुनेः असौ आत्मयाथात्म्यं जिज्ञासितम्, इदम् गङ्गायाम् हित्वा अकुतोभयं यास्यिति ।।२६-२८।।

अनुवाद यह राजर्षि पुत्रों (जनमेजय आदि) को उत्पन्न करेगा, मर्यादा का उल्लंघन करने वालों का यह प्रशासन करेगा । पृथिवी तथा धर्म की रक्षा करने के लिए यह किलयुग को निगृहीत करेगा । ब्राह्मण के पुत्र के द्वारा प्रेरित तक्षक के द्वारा अपनी मृत्यु को सुनकर संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों में शरणागित करेगा। उसके पश्चात् महर्षि व्यास के पुत्र से आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके, अपने इस शरीर को गङ्गा में त्यागकर मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है ॥२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

राजर्षीणां जनमेजयादीनाम् । द्विजपुत्रेण प्रेरितात्तक्षकादात्मनो मृत्युमुपश्चत्य विरक्तः सन् हरेः पदं प्रपत्स्यते भजिष्यति। ततश्च जिज्ञासितमात्मनो याथात्म्यं येन सः । इदं शरीरं गङ्गायां हित्वाऽकुतोभयं पदं यास्यति । अद्धा निश्चयेन ।।२६-२८।।

भाव प्रकाशिका

राजिष शब्द से जनमेजय आदि को कहा गया है। अर्थात् इसके जनमेजय आदि राजिष पुत्र होंगे। यह जब जानेगा की ब्राह्मण पुत्र के द्वारा प्रेरित होकर तक्षक से मेरी मृत्यु होगी तो वह संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों को ही अपने रक्षक रूप से वरण कर लेगा। उसके पश्चात् आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके यह अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर का गङ्गा में पिरत्याग कर देगा तथा मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है। सम्यिग्वचारपूर्वकम् ज्ञातम् आत्मनो भगवतः स्वरूपयाथात्म्यं निर्णयो येन। यह जिज्ञासितात्मयाथात्म्यम्ः पद की व्युत्पित्त है। अर्थात् अच्छी तरह से आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जिसने जान लिया है।।२६-२८॥

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः । लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥२९॥

अन्वयः इति राज्ञे उपादिश्य जातककोविदाः सर्वे विप्राः लब्धापचितयः सन्तः स्वकान् गृहान् प्रतिजग्मुः ।।२९।। अनुवाद इस तरह जातक शास्त्र को जानने वाले ज्योतिषी सभी ब्राह्मण राजा को इस तरह से बातें बतलाकर तथा राजा के द्वारा पूजा प्राप्त करके अपने-अपने घर चले गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

लब्धा अपचित्ति: पूजा यैस्ते ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् राजा से पूजा प्राप्त करके वे ज्योतिषी ब्राह्मणगण अपने घर चले गये ॥२९॥

स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः । गर्भदृष्टमनुध्यायन्यरीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥

अन्वयः— स एष लोकविख्यातः परीक्षित् इति । यत् प्रभुः गर्भदृष्टम् अनुध्यायन् इह नरेष्विह परीक्षेत ॥३०॥

अनुवाद — वहीं बालक लोक में परीक्षित् के नाम से विख्यात हुआ । वह समर्थ बालक गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए लोक में मनुष्यों की परीक्षा करता है कि कहीं ये तो वह पुरुष नहीं है ?॥३०॥

भावार्थ दीपिका

परीक्षिदिति नाम निर्विक्ति-स एष इति । यद्यस्मात्प्रभुः समर्थः सन् गर्भे दृष्टं पुरुषमनुष्यायन्निह दृश्यमानेषु नरेषु मध्ये सर्वमिप नरं परीक्षेताऽयमसौ भवेत्रो वेति विचारयेदतः परीक्षिदिति विख्यातः । 'पूर्वदृष्टम्' इति वा पाठः । तदा मातृगर्भे पूर्वं दृष्टमित्यर्थः।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में परीक्षित् इस नाम का अर्थ बतलाते हैं— चूकि यह समर्थ पुरुष गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए, इस संसार में दिखाई देने वाले सभी मनुष्यों को यह सोचकर परीक्षा करता है कि कहीं ये ही तो वह पुरुष नहीं हैं ?॥३०॥

स राजपुत्रो ववृध आशु शुक्ल इवोडुपः । आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥३१॥

अन्वयः— स राजपुत्रः शुक्ल अन्वहम् काष्ठाभिः आपूर्यमाणः उडुप इव पितृभिः काष्ठाभिः आपूर्यमागः आशु ववृधे।।३१।। अनुवाद— वह राजकुमार शुक्ल पक्ष में कलाओं के द्वारा प्रतिदिन बढ़ने वाले चन्द्रमा के समान अपने पितृजनों द्वारा चौसठो कलाओं से परिपूर्ण किया जाता हुआ शीघ्र ही बड़ा हो गया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

शुक्ले शुक्लपक्षे स प्रसिद्ध उडुपोऽन्वहं यथा काष्ठाभिः पञ्चदशकलाभिरापूर्यमाणो वर्धते, एवं पितृभिर्युधिष्ठिरादिभिः कामैश्चतुःषष्ठिकलाभिश्चापूर्यमाणो ववृधे ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह शुक्ल पक्ष में पन्द्रह कलाओं से परिपूर्ण होते हुए चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ते हैं उसी तरह वह राजकुमार भी प्रतिदिन अपने पितृजनों द्वारा चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते हुए शीघ्र ही बड़ा हो गया ।।३१।।

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया । राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ॥३२॥

अन्वयः ज्ञातिद्रोहजिहासया राजा अश्वमेधेन यक्ष्यमाणः करदण्डयोः अन्यत्र अलब्धधनः दध्यौ ।।३२।।

अनुवाद उसी समय राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वध का प्रायश्चित्त करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहे किन्तु कर तथा दण्ड के रूप में वसूले गये धन से भिन्न धन नहीं प्राप्त होने के कारण वे चिन्तित हो गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वमपकृष्योक्तानश्चमेधान् स्वावसरे सप्रकारं कथयति । ज्ञातिद्रोहस्य हानेच्छया यक्ष्यमाणः करदण्डयोरन्यत्र ताभ्यां विनाऽलब्धधनो दध्यौ चिन्तयामास । करदण्डजस्य परिजनभरणमात्रोपक्षीणत्वात् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

पहले कहे गये अश्वमेधों का उचित समय पर विशेष रूप से वर्णन करते हैं। राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वधजन्य पाप को दूर करने की इच्छा से ऐसे धन से अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे जो धन कर तथा दण्ड के रूप में नहीं प्राप्त हुआ हो। किन्तु वैसा धन उनको इसलिए नहीं मिला कि वह तो परिजनों के भरण-पोषण में ही समाप्त हो चुका था। अतएव राजा युधिष्ठिर चिन्तित हो गये।।३२।।

तदिभिष्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः । धनं प्रहीणमाजह्नुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥३३॥

अन्वयः— तदिभप्रेतम् आलक्ष्य अच्युतचोदिताः भ्रतरः उदीच्यां दिशि भूरिशः प्रहीणं धनम् आजह्यः ।।३३।।

अनुवाद— राजा के अभिप्राय को जानकर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरित उनके भाइयों ने उत्तर दिशा में छोड़ दिये गये बहुत अधिक धन को ला दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रहीणं मरुत्तस्य यज्ञे ब्राह्मणैस्त्यक्तं सुवर्णपात्रादिकमानीतवन्तः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्राचीन काल में राजा मरुत्त ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सभी पात्र सुवर्ण के थे। यज्ञ समाप्त हो जाने पर राजा ने उन सभी पात्रों को उत्तर दिशा में फेंकवा दिया। उन्होंने ब्राह्मणों को भी इतना धन दिया कि वे उस धन को नहीं ले जा सके अतएव वे भी उस धन को वही छोड़कर चले गये। चूिक परित्यक्त धन पर राजा का ही अधिकार होता है, अतएव भगवान् ने उस धन को मँगवा लिया और उसी धन से राजा युधिष्ठिर का यज्ञ कराया। उसी धन को यहाँ मरुत्त के यज्ञ में छोड़ा गया धन कहा गया है उन सभी सुवर्ण पात्रों को पाण्डवों से भगवान् ने मँगवा लिया।।३३॥

तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्हरिम् ॥३४॥

अन्वयः तेन संभृत संभारः भीतः राजा युधिष्ठिरः त्रिभिः वाजिमेधैः यज्ञैः हरिम् समयजत् ।।३४।।

अनुवाद— उसी धन से पाप के भय से भयभीत राजा युधिष्ठिर यज्ञ के उपकरणों को एकत्रित करके तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

संभृतसंभारः संपादितयज्ञोपकरणः । भीतो ज्ञातिद्रोहात् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

उसी धन से सभी साधनों को तैयार करके धर्मभीरु राजा युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ॥३४॥

आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् । उवास कतिचिन्मासान्सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥

अन्वयः— राज्ञा आहूतः भगवान् द्विजैः नृपम् याजयित्वा सुहृदां प्रियकाम्यया कतिचिन् मासान् उवास ।।३५।।

अनुवाद— राजा युधिष्ठिर के द्वारा आहूत भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणों द्वारा राजा युधिष्ठिर का यज्ञ करवाकर अपने संबन्धियों की प्रसन्नता के लिए वहीं पर कुछ महीने निवास किए ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने श्रीभगवान् को बतलाया तो भगवान् हस्तिनापुर में आये और ब्राह्मणों द्वारा उनके यज्ञ को सम्पन्न कराये । अपने सम्बन्धी पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए वे वहाँ कुछ महीनों तक निवास भी किए ॥३५॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः । ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्याय: ॥१२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! ततः राज्ञा कृष्णया सह बन्धुभिः अभ्यनुज्ञातः यदुभिः वृतः सार्जुनः द्वारवतीं ययौ ।।३६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा प्राप्त करके भगवान् यादवों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारका पुरी गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के परीक्षित् के जन्म आदि उत्कर्ष का वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् कुछ महीने बीत जाने पर राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा लेकर भगवान् यदुवंशियों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारकापुरी चले गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१२।।



तेरहवाँ अध्याय

विदुरजी के उपदेश से प्रेरित धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन गमन

सूत उवाच

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् । ज्ञात्वाऽगादधस्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥१॥

अन्वयः विदुरः तीर्थयात्रायां मैत्रेयात् आत्मनः गितं ज्ञात्वा तया अवाप्तविवित्सितः हस्तिनपुरम् अगात् ।।१।। अनुवाद विदुरजी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में मैत्रेय महर्षि से आत्मा (परमात्मा) की गित (प्राप्यत्व) को जानकर, उस आत्म गित के विषय में प्राप्त ज्ञान के ही द्वारा जो कुछ उनको जानना था वे जान लिए और उसके पश्चात्

वे हस्तिनापुर आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

निर्गमो धृतराष्ट्रस्य विदुरोक्त्या त्रयोदशे । उक्तः पौत्राभिषेकेण वक्तुं राज्ञो महापथम् । इदानीं परीक्षितः कलिनिग्रहादिकर्माणि कथयिष्यन् विदुरागमनेन धृतराष्ट्रप्रस्थानं ततोऽर्जुनागमनं ततः श्रीकृष्णान्तर्धानं निशम्य पाण्डवप्रस्थानं च निरूपयित त्रिभिरध्यायैः। गतिं हरिम् । तयात्मगत्याऽवाप्तं विवित्सितं ज्ञातुमिष्टं सर्वं येन ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अपने पौत्र परीक्षित् के राज्याभिषेक पूर्वक युधिष्ठिर के महामार्ग (स्वर्गारोहरण) को बतलाने के लिए विदुरजी के उपदेश से धृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से निकलकर चले जाने का वर्णन इस तेरहवें अध्याय में किया गया है। इदानीम् इत्यादि अब परीक्षित् के किल के निग्रह आदि कर्मों का वर्णन करने के लिए विदुर के आने से धृतराष्ट्र के वन प्रस्थान का, उसके पश्चात् अर्जुन के द्वारकापुरी से आगमन का, उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने के समाचार को सुनकर पाण्डवों के प्रस्थान का निरूपण तीन अध्यायों से किया जा रहा है। इस श्लोक में गित शब्द से श्रीहिर को कहा गया है। अर्थात् जीव के लिए एकमात्र प्राप्य श्रीहिर ही हैं। इस ज्ञान के विषय भृत श्रीकृष्ण तत्त्व का ज्ञान हो जाने के कारण विदुरजी जो कुछ भी जानना चाहते थे वह सबकुछ जान लिए और उसके पश्चात् वे तीर्थ यात्रा से हिस्तिनापुर लौट आये।।१।।

यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः । जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥

अन्वयः— क्षता कौषारवाग्रतः यावतः प्रश्नान् कृतवान् जातैकभक्तिः गोविन्दे तेभ्यश्च ह उपरराम ।।२।।

अनुवाद — विदुरजी ने मैत्रेयजी के समक्ष जितने प्रश्नों को किया उन सबों का उत्तर सुनने से पहल ही श्रीभगवान् में भक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण वे उपरत हो गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । यावतः कर्मयोगव्रतादिविषयान् प्रश्नान्प्रथमं कृतवान् । कौषारवस्य मैत्रेयस्य पुरतः । पश्चात्रिचतुःप्रश्नार्थज्ञानमात्रेण गोविन्दे जातैकभक्तिः कृतार्थः संस्तेभ्यः प्रश्नेभ्य उपरराम । ततः परं न विजिज्ञासितवान् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

उसी बात का वर्णन करते हुए सूतजी कहते है— विदुरजी ने कर्मयोग तथा व्रत इत्यादि विषयक जितने प्रश्नों को मैत्रेय महर्षि के समक्ष किया था, उन सबों में तीन चार प्रश्नों का उत्तर सुनने मात्र से उनकी भगवान् गोविन्द में ऐकान्तिक भिक्त उत्पन्न हो जाने से वे कृतार्थ हो गये, उसके आगे वे प्रश्नों का उत्तर नहीं जानना चाहे॥२॥ तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः। धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥३॥ गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी। अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः॥४॥

प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् । अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥५॥ अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! बन्धुं तं आगतं दृष्ट्वा, सहानुजः धर्मपुत्रः, धृतराष्टः, युयुत्सुः, सूतः, शारद्वतः, पृथा, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, अन्याश्च जामयः पाण्डोः ज्ञातयः, ससुताः स्त्रियः तन्वे आगतं प्राणम् इव प्रहर्षेण प्रत्युज्जग्मुः ॥३–५॥

अनुवाद हे शौनकजी ! अपने बान्धव (चाचा) विदुर्जी को आये हुए देखकर अपने छोटे भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, शारद्वत, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी (द्रोणाचार्य की पत्नी) पाण्डव परिवार के अन्य सभी स्त्री पुरुष, अपने पुत्रों के साथ स्त्रियाँ, जैसे मृत शरीर में प्राण आ गये हों उसी तरह अत्यधिक प्रसन्नता से आलिङ्गन और प्रणाम पूर्वक उनसे मिलकर उनकी अगवानी किए ॥३-५॥

भावार्थ दीपिका

सूतः सञ्जयः । शारद्वतः कृपः । पृथा कुन्ती । कृपी द्रोणभार्या । जामयो ज्ञातिभार्याः । अन्याश्च स्त्रियः । प्राणं तन्व इवेति कुतश्चिन्मूर्च्छोदिदोषतः प्राणेऽवसन्ने सति तन्वः कराङ्घ्र्यादयो निश्चेष्टा भवन्ति पुनस्तस्मिन्नाविर्भूते यथोत्तिष्ठन्ति तद्वत्।।५।।

भाव प्रकाशिका

सूत शब्द से संजय को, शारद्वत शब्द से कृपाचार्य को, पृथा शब्द से कुन्ती को, कृपी शब्द से द्रोणाचार्य की पत्नी को, जामी शब्द से परिवार वालों की पित्नयों को कहा गया है। इसके अतिरिक्त दूसरी भी स्त्रियाँ विदुरजी की आगवानी में गयीं। कहीं पर मूर्छी आदि के कारण शरीर शिथिल हो जाता है, हाथ पैर इत्यादि चेष्टा विहीन हो जाते हैं और जब वह व्यक्ति होश में आ जाता है, तो वे अङ्ग पहले जैसे काम करने लगते हैं, इसी अर्थ को प्राणं तन्व इवागतम् के द्वारा कहा गया है। विदूरजी के आ जाने से अगवानी करने वाले लोगों में जैसे प्राण का सञ्चार हो गया।।३-५।।

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः । राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥

अन्वयः — विरहौत्कण्ठ्य कातराः प्रेमवाष्यौधं मुमुचुः । कृतासनपरिग्रहम् तम् राजा अर्हयाञ्चके ।।६।।

अनुवाद — विरह जन्य उत्कण्ठा से कातर बने हुए उन सब लोगों ने प्रेमाश्रु को बहाया उसके पश्चात् आसन पर बैठे हुए विदुरजी की राजा युधिष्ठिर ने पूजा की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

विरहेण यदौत्कण्ठ्यं तेन कातरा विवशा: ।।६।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही तीर्थयात्रा में चले गये थे । अतएव विदुरजी से नहीं मिलने के कारण विरह की व्यथा से व्याकुल वे लोग एक साथ बैठकर प्रेमाश्रु को बहाये ।।६।।

तं भुक्तवन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने । प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृणवताम् ॥७॥

अन्वयः— भुक्तवन्तम्, विश्रान्तम् आसने सुखम् आसीनम् च तम् प्रश्रयावनतो राजा तेषां शृण्वताम् प्राह् ।।७।। अनुवाद— भोजन एवं विश्राम करके जब विदुरजी सुखपूर्वक अपने आसन पर बैठे हुए थे तब नम्रता पूर्वंक राजा युधिष्ठिर ने सबों के सामने ही विदुरजी से पूछा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तं विदुरम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में तम् शब्द से विदुरजी को कहा गया है ॥७॥

युधिष्ठिर उवाच

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् । विपद्गणाद्विषाग्न्यादेमोंचिता यत्समातृकाः ॥८॥

अन्वयः समातृकाः विषाग्न्यादेः विपद्गणात् यत् मोचिताः युष्मत् पक्षच्छाया समेधितान् नः स्मरथ अपि ।।८।।

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद अपनी माता के साथ हमलोगों को जो विषमिश्रित अन्न के भोजन तथा लाक्षागृह की अग्नि रूपी भयङ्कर विपत्तियों से जो आपने हमलोगों को बचाया है, हमलोग जो आपकी ही छत्र-छाया में बड़े हुए ऐसे हमलोगों को आप कभी स्मरण करते थे क्या ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

पक्षिणो ह्यपत्यानि यथातिस्नेहेन पक्षच्छायया वर्धयन्ति तद्वद्युष्मत्पक्षपातच्छायया समेधितान्वर्धितान्नोऽस्मान्कि स्मरथ। समेधितत्वमेवाह । विपद्गणाद्यस्मान्मोचिताः स्म: ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जैसे पक्षी अपने बच्चों को अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपने पङ्खों की छाया में पालते-पोषते हैं, उसी तरह आपके पक्षपात की छाया में बढ़े हुए हमलोगों को क्या आप कभी स्मरण करते थे । क्योंकि आपने हमलोगों को विपत्ति समूह से बचाया है ॥८॥

कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्धिः क्षितिमण्डलम् । तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥९॥

अन्वयः - क्षितिमण्डलं चरद्भिः वः कया वृत्त्या इह भूतले वर्तितम् कानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानि ?।।९।।

अनुवाद पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए आपने किस वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह किया ? इस पृथिवी पर आपने किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रों का सेवन किया ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

वो युष्माभिः कया वृत्त्या वर्तितं देहवृत्तिः कृता । कानि च तीर्थादीनि सेवितानीति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आप पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए किस वृत्ति से अपनी जीवन यात्रा चलाते थे ? तथा आपने किन-किन मुख्य तीर्थों आदि का सेवन किया ?॥९॥

भवद्विद्या भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो । तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥१०॥

अन्वयः है विभो ! भवद्विधाः तीर्यभूताः भागवताः स्वान्तस्थेन गदाभृता तीर्थानि तीर्थी कुर्वन्ति ।।१०।। अनुवाद हे विभो ! आप जैसे भगवान् के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप होते हैं, और वे अपने हृदय में विद्यमान श्रीभगवान् के द्वारा तीर्थीं को भी पवित्र बनाने का काम करते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

भवता च तीर्थाटनं न स्वार्थ किंतु तीर्थानुग्रहार्थिमत्याह-भवद्विधा इति । मिलनजनसंपर्केण मिलनानि तीर्थानि सन्तः पुनः स्वयं तीर्थीकुर्वन्ति । स्वान्तं मनस्तत्रस्थेन । स्वस्यान्तः स्थितेनेति वा ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आप जैसे भगवतों के द्वारा किया जाने वाला तीर्थाटन अपने लिए नहीं होता है, अपितु वह तीर्थों पर कृपा करने के लिए होता है। इस बात को युधिष्ठिर ने भवदविधा इत्यादि श्लोक से कहा है। आप जैसे भागवत पापी लोगों के सम्पर्क से जब तीर्थ मलीन हो जाते है, तब उन सबों को पवित्र बनाने के लिए तीर्थों में जाते हैं। भागवतों के मन में श्रीभगवान् का निवास होता है। उन भगवान् के सम्पर्क से तीर्थ पवित्र हो जाया करते हैं।।१०।।

अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः । दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥११॥

अन्वय:— हे तात अपि न: सुहद: बान्धवा: कृष्णदेवता: यदव: स्वपुर्याम् सुखमासते इति दृष्टा: श्रुता वा ? ।।११।। अनुवाद— हे तात ! हमारे भी सुहद तथा भाई बन्धु जो भगवान् श्रीकृष्ण को देवता मानते हैं, यदुवंशियों को आपने द्वारका में सुख पूर्वक रहते हुए देखा अथवा सुना है ?।।११।।

भावार्थ दीपिका

अपि किं सुखमासते भवद्भिः क्वापि दृष्टाः श्रुताः वा ।।११।।

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने पूछा की यदुवंशी हमारे भाई बन्धु हैं, वे हमारे सुहृत् हैं । वे लोग भगवान् कृष्ण को ही अपना आराध्य मानते हैं । आप द्वारका में जाकर उन लोगों को सुख पूर्वक रहते हुए देखा है क्या ? यदि देखा नहीं है तो आप उन लोगों के विषय में सुने हैं क्या ?॥११॥

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् । यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥

अन्वयः इति धर्मराजेन उक्तः यथा अनुभूतं तत् सर्वं यदुकुलक्षयं बिना क्रमशः समवर्णयत् ।।१२।।

अनुवाद— इस तरह से धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा पूछे जाने पर विदुरजी ने जैसा अनुभव किया था उन सारी बातों को उन्होंने क्रमश: बतला दिया किन्तु यदुवंश के विनाश को उन्होंने नहीं बतलाया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने विदुरजी से जो कुछ भी पूछा था उन सारी बातों को उन्होंने उसी तरह क्रमश: बतलाया जिस तरह से उन्होंने तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में अनुभव किया था, किन्तु उन्होंने यदुवंश के विनाश की बात को नहीं बतलाया।।१२।।

नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् । नावेदयेत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥

अन्वयः— ननु दुखितान् द्रष्टुम् अक्षमः सकरुणः स्वयमुपस्थितम् दुर्विषहम, अप्रियम् न आवेदयेत् ।।१३।।

अनुवाद— क्योंकि दुखितों को देखने में असमर्थ करुणायुक्त व्यक्ति को चाहिए कि जो अपने आप उपस्थित असह्य अप्रिय बात हो उसे न सुनाये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यदुकुलक्षयावर्णने कारणमाह-ं नन्विति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पाण्डवों को यदुकुल के क्षय की बात को नहीं सुनाया। उसका कारण नन्वप्रियम् इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। नियम यही है कि जो व्यक्ति करुणा, युक्त हो उसको चाहिए कि वह स्वयम ज्ञात हो जाने वाली असह्य अप्रिय घटना को न बतलाये। विदुरजी पाण्डवों को दु:खी देखने में असमर्थ थे। इसीलिए उन्होंने यादवों के विनाश रूपी असह्य अप्रिय बात पाण्डवों को नहीं बतलाया।।१३।।

कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् । भ्रातुज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥

अन्वयः अथ देववत् सुखम् सत्कृतः ज्येष्ठस्य भ्रातुः श्रेयस्कृत् सर्वेषां प्रीतिम् आवहन् कंचित् कालम् अवात्सीत् ।।१४।। अनुवाद उसके पश्चात् देवताओं के समान राजा युधिष्ठिर द्वारा समादृत विदुरजी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र का कल्याण करने के लिए सबों को प्रसन्न रखते हुए विदुरजी कुछ समय तक हस्तिनापुर में ही निवास किये ।।१४॥

भावार्थ दीपिका

श्रेयस्कृत्तत्त्वमुपदिशन् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र को आत्म कल्याणकारी विषयों का उपदेश देते हुए विदुरजी हस्तिनापुर में निवास किए ॥१४॥ अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु । यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥१५॥

अन्वयः— यावत् यमः शापात् वर्षशतं शूद्रत्वं दधार तावत् अर्यमा अघकारिषु यथावत् दण्डं दधार ।।१५।। अनुवाद— माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण यम सौ वर्षो तक शूद्रत्व को धारण किए थे उतने समय तक अर्यमा ही पापियों को उचित दण्ड देने का काम करते थें ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ननु शूद्रोऽसौ कथमुपदिशेत् । न ह्यसौ शूद्रः किंतु यमस्तद्रूपेणासीत् । किं तत्र कारणं यमे चात्राागतेऽमुत्र को दण्डधर इत्यपेक्षायामाह-अविभ्रदिति । धृतवानित्यर्थः । माण्डव्यस्य शापात् । तथाहि । क्वचिच्चोराननु धावन्तो राजभटा माण्डव्यस्य ऋषेस्तपश्चरतः समीपे तान् संप्राप्य तेन सह निबध्यानीय राज्ञे निवेद्य तदाज्ञया सर्वान् शूलमारोपयामासुः । ततो राजा तमृषिं ज्ञात्वा शूलादवतार्य प्रसादयामास । ततो मुनिर्यमं गत्वा कुपित उवाच कस्मादहं शूलमारोपित इति । तेनोक्तं त्वं बाल्ये शलभं कुशाग्रेणाविष्य क्रीडितवानिति । तच्छुत्वा माण्डव्यस्तं शशाप । बाल्येऽजानतो मे महान्तं दण्डं यतस्त्वं कारितवानतः शूद्रो भवेति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि विदुरजी तो दासी पुत्र होने के कारण शूद्र थे, वे कैसे उपदेश दे सकते थे ? तो इसका उत्तर है कि वे शूद्र नहीं थे अपितु यमराज ही उस रूप में वहाँ विद्यमान थे। अब प्रश्न होता है कि यमराज के शूद्र होने का कारण क्या था ? यमराज के मर्त्यलोक में आ जाने पर पापियों को दण्ड देने का काम कौन करता था ? तो इसका उत्तर अबिभ्रमदर्यमा० इत्यादि श्लोक से दिया गया है। अबिभृत् पद का अर्थ है धारण किया। माडव्य महर्षि के शाप का कारण क्या था ? तो उसका उत्तर अबिभ्रत० श्लोक है। एक समय चोरों के पीछे दौड़ते हुए राजा के सिपाहियों ने तपस्या करने वाले मण्डव्य ऋषि के सिन्नकट से ही चोरों को पकड़ा

उन सबों के साथ बाँधकर वे ऋषि को भी लाये, उन सबों को सिपाहियों ने राजा को समर्पित कर दिया। राजा की आज्ञा से उन सबों ने सबों को शूलारोपण कर दिया। राजा ने जब जाना कि ये तो ऋषि हैं तो उनको शूल पर से उतरवाकर राजा ने उनसे क्षमा प्रार्थना की। उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर मुनि यमराज के पास गये और पूछे कि मैं शूल पर क्यों चढ़ाया गया ? यमराज ने कहा आपने बाल्यावस्था में कीड़े को कुश से छेद कर उसके साथ क्रीडा की। यमराज की बात को सुनकर माण्डव्य ऋषि ने यमराज को शाप दिया। बाल्यावस्था में मैं तो अज्ञानी था उसके बदले में मुझको इतना बड़ा दण्ड तुमने दिया अतएव तुम सौ वर्षों तक शूद्र रहोगे माण्डव्य महर्षि के इस शाप से ही यमराज सौ वर्षों तक शूद्र रहे।।१५।।

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलन्धरम् । भ्रातृभिलोंकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥१६॥

अन्वयः — लब्धराज्यः युधिष्ठिरः कुलन्धरं पौत्रं दृष्ट्वा लोकपालाभैः भार्तृभिः परया श्रिया मुमुदे ।।१६।।

अनुवाद— राज्य के प्राप्त हो जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने वंश को बढ़ाने वाले पौत्र परीक्षित् को देखकर लोकपालों के समान कान्ति वाले अपने छोटे भाइयों के साथ अपनी अतुलनीय सम्पत्ति को देखकर प्रसन्न रह रहे थे।।१६।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं राज्यस्यापकर्षं निरूपयितुमुत्कर्ष निगमयति- युधिष्ठिर इति । कुलन्धरं वंशधरम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अब राज्य का अपकर्ष दिखाने के लिए सूतजी राज्य के उत्कर्ष का वर्णन करते हैं कुलन्धर का अर्थ है वंश को बढ़ाने वाले ।।१६।।

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया । अत्यक्रामदिवज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥

अन्वयः एवं गृहेषु सक्तानां तदीहया प्रमत्तानां अविज्ञातः परमदुस्तरः कालः अत्यक्रामत् ॥१७॥

अनुवाद— इसी तरह से गृहकार्यों में लगे हुए परमात्मा की इच्छा के ही अनुसार प्रमत्त बने हुए पाण्डवों के लिए अत्यन्त भयङ्कर काल आ गया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदीहया गृहव्यापारेण प्रमत्तानाम् । अत्यक्रामदायुःकालोऽतिक्रान्तः । यद्वा तानभ्यभवदित्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की इच्छा से गृह व्यापार में अत्यन्त असावधन बने हुए पाण्डवों की आयु बीत चली । अथवा उन पाण्डवों को काल ने अभिभूत कर दिया ॥१७॥

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत । राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥१८॥

अन्वयः विदुरः तत् अभिप्रेत्य, धृतराष्ट्रम् अभाषत । राजन् शीघ्रं निर्गम्यताम्, इदम् आगतं भयं पश्य ।।१८।। अनुवाद उस भयङ्कर काल को देखकर विदुरजी ने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र से कहा कि राजन् इस भयङ्कर काल को देखिए और शीघ्र ही यहाँ से निकल चिलये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने उस भयङ्कर काल को जान लिया कि अब सबों की मृत्यु की बेला आ गयी है, इसीलिए उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता है। यह अत्यन्त भयङ्कर समय है; अतएव आपको यहाँ से निकल जाना चाहिए। इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है।।१८।।

प्रतिक्रिया न यस्येह कुतिश्चत्किहिचित्रभो । स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९॥

अन्वयः प्रभो ! यस्य इह कुतश्चित् प्रतिक्रिया न, स एव नः सर्वेषां भगवान् कालः समागतः ।।१९।। अनुवाद हे प्रभो ! इस लोक में जिसका केाई भी प्रतिकार नहीं कर सकता, वे ही हम सबों के भगवान् काल आ गये हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु तत्प्रतीकारः क्रियतां किं निर्गमनेन तत्राह- प्रतिक्रियेति । सर्वेषामिति । यैः प्रतिकर्तव्यं तेषामपीत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहे कि उसको रोकना चाहिए यहाँ से निकल चलने से कौन सा लाभ है? तो इसका उत्तर है कि जो रोकने वाले हैं उनकी भी मृत्यु की बेला आ गयी है। काल तो स्वयम् भगवान् का रूप है, काल को कौन रोक पायेगा ?॥१९॥

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि । जनःसद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥२०॥

अन्वयः येन चैव अभिपन्नः अयं जनः प्रियतमैः प्राणैः अपि सद्यः वियुज्यते अन्यैः धनादिभिः किमृत ?।।२०।। अनुवाद जिस काल से ग्रस्त होकर यह मानव शीघ्र ही अपने अत्यन्त प्रिय प्राणों से भी वियुक्त हो जाता है तो फिर धनों की क्या बात है ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका

कथं धनादिवियोगः सोढं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इन धनादिकों को कैसे त्यागा जा सकता है ? तो इसके उत्तर में येन चैव० इत्यादि श्लोक को कहा गया है। अर्थात् सबों को अपना प्राण अत्यन्त प्रिय है। उस काल से जब मनुष्य ग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य को शीघ्र ही अपने प्राणों को भी त्यागना पड़ जाता है तो फिर इन धन आदि की कौन सी बात है ?।।२०।।

पितृभातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः । आत्मा च जरया प्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥

अन्वयः— ते पितृ-भ्रातृ सुहृत् पुत्राः हताः, वयः विगतम्, आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहम् उपाससे ।।२१।। अनुवाद— आपके पिता, भाई, मित्र पुत्र सबके सब मारे जा चुके हैं, अवस्था भी ढल चुकी है, शरीर को बुढापे ने ग्रस्त कर लिया है और आप स्वयम् दूसरों के घर में रह रहे हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

कथं धनादिवियोगः सोढुं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अब आपका यहाँ रहना अत्यन्त दीनता है। इस बात को बतलाने के लिए विदुरजी **पितृभातृ० इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले वैराग्य को उत्पन्न करते हैं। यहाँ आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है ॥२१॥ अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् । भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥२२॥

अन्वय:— अहो जन्तोः जीविताशा महीयसी यया भवान् गृहपालवत् भीमेन आवर्जितं पिण्डम् आदत्ते ।।२२।। अनुवाद— मनुष्य की जीने की आशा कितनी बलवती होती है ? उसी के कारण आप अपने पुत्रों को मारने वाले भीम के हाथों से दिए गये अन्न को कुत्ते के समान खाते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

येन पुत्रा हतास्तेन भीमेन दत्तं पिण्डं गृहपाल इव । गृहपाल: श्वा ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

गृहपाल कुत्ते को कहते हैं । जिस भीम ने आपके पुत्रों को मार डाला उसी भीम के हाथों से दिए गये भोजन को आप कुत्ते के समान खा रहे हैं ॥२२॥

अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः । हतं क्षेत्रं धनं येषां तहत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥

अन्वय:— येषां अग्नि: निसृष्ट: गरो दत्तः, दाराः च दूषिताः, धनं क्षेत्रं च हृतम् तद् दत्तै असुिषः कियत् ।।२३।। अनुवाद जिन पाण्डवों को आप आग में जलाना चाहे, विष मिश्रित अत्र खिलाया, उनकी पत्नी को अपमानित किए, और उनके धन और भूमि को छिन लिए उन्हीं पाण्डवों के द्वारा दिए गये अत्र से प्राणों को पोषने से क्या लाभ है ?।।२३।।

भावार्थ दीपिका

निसृष्टः प्रक्षिप्तः । गरो विषम् । दूषिता अवमताः तद्दत्तैरत्रादिभिर्लब्धैरसुभिः कियत्प्रयोजनम् । न किंचिदित्यर्थः ।।२३।। भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि इन पाण्डवों को मार डालने के लिए आपने लाक्षागृह में आग लगवा दी, विष भी आपने दिया, और इन सबों की पत्नी को अपमानित किया, इन्हीं पाण्डवों के द्वारा प्रदत्त अन्न से प्राणों का पोषण करने में आपका कौन सा गौरव है ?॥२३॥

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः । परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥२४॥

अन्वयः तस्य कृपणस्य जिजीविषोः अनिच्छतः अपि तव अयं देहः जरया जीर्णः वाससी इव परैति ।।२४।। अनुवाद इस तरह से दैन्य का अनुभव करते हुए भी जीवित रहने वाले आपका यह वार्द्धक्य के कारण जीर्ण हुआ शरीर उसी तरह क्षीण होता जा रहा है जिस तरह जीर्ण वस्त्र क्षीण होता जाता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तस्यापि तवैव दैन्यमनुभवतोऽपि परैति क्षीयते । अतएव धीरो भवेति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से दीनता पूर्वक जीवन जीने के इच्छुक भी आपका यह शरीर वार्द्धक्य के कारण क्षीण होता जा रहा है। अतएव आपको धैर्य धारण करना चाहिए।।२४।।

गतस्वार्थिममं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः । अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥२५॥

अन्वयः मुक्तबन्धनः विरक्तः अविज्ञातगितः यः गतस्वार्थम् इमं देहम् जह्यात् स वै धीरः उदाहृतः ।।२५।। अनुवाद सम्पूर्ण सांसारिक बन्धनों से मुक्त, संसार से विरक्त तथा अपने लोग जिसे जान न सके इस तरह से जो पुरुष यश एवं धर्म रूपी स्वार्थ से रहित इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंलक्षणो धीर इत्यपेक्षायामाह । गतस्वार्थं यशोधर्मादिशून्यम् । मुक्तबन्धनस्त्यक्ताभिमानः । क्व गत इत्यविज्ञाता गतिर्यस्य । स धीरः । प्राप्तदुःखस्य स्वयं सहनेन मुक्तिप्राप्तेः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न है कि धीर किसको कहते हैं ? तो इसके उत्तर में कहा गया है गतस्वार्थम्० इत्यादि अर्थात् आपका यह शरीर यश एवं धर्म प्राप्ति के लिए अनुपयोगी हो चुका है । अतएव इस देह में स्वीयत्वाधिमान को आप त्याग दें ओर सांसारिक समस्त सम्बन्ध रूपी बन्धनों से आप रहित हो जायँ । आप कहाँ चले गये इस बात को कोई जान न सके इस तरह से अपने सभी लोगों से दूर जाकर जो इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता है ॥२५॥

यः स्वकात्परो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् । हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥२६॥

अन्वयः— यः आत्मवान् स्वकात् परतः वा इह निर्वेदः हृदि हिरं कृत्वा गेहात् प्रव्रजेत् सः नरोत्तमः ।।२६।। अनुवादः— जो आत्मज्ञ पुरुष स्वयम् अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से उदासीन हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि को स्थापित करके घर से निकल जाता है वही उत्तम पुरुष है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नरोत्तमस्तु ततः प्रागेव कृतप्रतीकारः । स्वकात्स्वत एव । परतः परोपदेशतो वा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उत्तम पुरुष तो वह होता है जो कि अपने अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से विरक्त हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुए घर से चुपचाप निकल जाता है ॥२६॥

अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् । इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥२७॥

अन्वयः— इतः अर्वाक् कालः प्रायशः पुंसां गुणविकर्षणः अथ स्वैः अज्ञातगितः भवान् उदीचीं दिशं यातु ।।२७।। अनुवाद— इसके आगे जो काल आयेगा वह मनुष्यों के गुणों को घटाने वाला होगा; अतएव आप अपने लोगों से छिपकर जिससे कि कोई जान न सके ऐसे आप उत्तर दिशा में चले जाइये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तु नरोत्तमो नाभूः, अत इदानीं धीरो भवेत्याह-अथेति । अर्वागर्वाचीनः एष्यन्नित्यर्थः । गुणान् धैर्यदयादीन् विकर्षत्याच्छिनतीति तथा ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आप नरोत्तम तो नहीं हो सके अतएव आप धीर पुरुष बनें। इस बात को विदुरजी ने अथोदीचीम्० इत्यादि श्लोक से कहा है। अर्वाक् शब्द आगे आने वाले अर्थ का बोधक है। यह आने वाला समय गुणों को घटाने वाला होगा ॥२७॥

एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुबोंधितो ह्याजमीढः । छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिग्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥२८॥

अन्वयः— एवं विदुरेण अनुजेन बोधितः प्रज्ञाचक्षुः आजमीढः राजा स्वेषु द्रढिम्नः स्नेह पाशान् छित्त्वा भ्रातृसंदर्शिताध्वा निश्चक्राम ॥२८॥

अनुवाद इस तरह से अपने छोटे भाई विदुर के द्वारा उपदेश दिए जाने पर प्रज्ञाचक्षु (जन्मान्ध) तथा अजमीढ के वंश में उत्पन्न धृतराष्ट्र अपने लोगों में विद्यमान अत्यन्त सुदृढ स्नेहपाश के बन्धन को काटकर अपने भाई के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर घर से निकल कर चल पड़े ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आजमीढोऽजमीढवंशजः । प्रज्ञाचक्षुरन्थः । एवं बोधितः सन् । द्रढिप्रश्चित्तदाढ्यांत् घ्रात्रा संदर्शिताऽध्वा बन्धमोक्षयोर्मार्गो यस्य सः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के उपदेश को सुनकर अजमीढ के वंश में उत्पन्न राजा धृतराष्ट्र के प्रज्ञानेत्र खुल गये। उन्होंने अपने लोगों से सम्बद्ध स्नेह के बन्धन को काट दिया; वे घर से निकल पड़े और विदुरजी के द्वारा उपदिष्ट संसार से मुक्ति के मार्ग पर वे चल पड़े ॥२८॥

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी । हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥२९॥

अन्वयः— प्रयान्तं पतिं पतिव्रता सुबलस्य साध्वी पुत्री मनस्विनां सत् सम्प्रहार इव न्यस्तदण्डप्रहर्षम् हिमालयं अनुजगाम ।।२९।।

अनुवाद हिमालय में जाते हुए अपने पित का राजा सुबल की साध्वी पुत्री तथा पितव्रता गान्धारी ने उनके साथ ही योगियों को सुख देने वाले हिमालय में उसी तरह गयी जिस तरह से वीरों पर न्याय पूर्वक किया गया प्रहार उनको सुख ही देता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सुबलस्य पुत्री गान्धारी साध्वी सुशीला हिमालयं प्रयान्तं पितमनुजगाम । ननु कथं सा सुकुमारी हिमादिदुःखबहुलं हिमवन्तं गताऽत आह । न्यस्तदण्डानां प्रहर्षौं यिस्मिस्तम् । दुःखदमिप केषांचित्प्रहर्षहेतुर्भवतीत्यत्र दृष्टान्तः । मनस्विनां शूराणां युद्धे संस्तीव्रः संप्रहारो यथा । पाठान्तरे संत्संप्रहारं युद्धं यथेति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी पतिव्रता और सुशीला नारी थीं। उन्होंने देखा कि उनके पित धृतराष्ट्र हिमालय में जा रहे हैं, और यह देखकर गान्धारी उनके पीछे-पीछे हिमालय में चली गयी। यदि कोई कहे कि हिमलाय तो वर्फ आदि के कारण बहुत दु:ख देने वाला है सुकुमारी गान्धारी वहाँ कैसे गयी? तो इसका उत्तर है न्यस्तः त्यक्तो दण्डो भूतद्रोहो यैस्तेषां भूतसुहृदाम् योगिनामिति यावत् प्रहर्षकरम्। अर्थात् जिन लोगों ने जीवों से द्रोह करना छोड़ दिया है। ऐसे सभी भूतों के सुहृद योगियों को हिमालय सुख ही देता है, दु:ख नहीं देता। यह उसी तरह से होता है जिस तरह युद्ध में वीरों को तीव्र सम्प्रहार सुख देता है जहाँ सत्म्प्रहारम् यह पाठ है उसके अनुसार सत्सम्प्रहारम् पद का अर्थ होगा युद्ध ॥२९॥

अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः । गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यित्पतरौ सौबलीं च ॥३०॥

अन्वयः— कृतमैत्रः हुताग्निः अजातशत्रुः तिलगोभूमिरुक्मैः विप्रान् नत्वा, गुरून् वन्दनाय गृहं प्रविष्टः पितरौ सौबली च न अपश्यत् ।।३०।।

अनुवाद — मित्र देवताक संन्ध्या वन्दन करके तथा अग्निहोत्र करके युधिष्ठिर ब्राह्मणों को प्रणाम किए और उनको तिल गौ, भूमि तथा सुवर्ण दान दिए । इसके पश्चात् वे अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए जब गृह में प्रवेश किए तो उन्होंने, धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी को नहीं देखा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

कृतं मैत्रं मित्रदैवत्यं सन्ध्यावदनं येन । नत्वा संपूज्य । पितरौ विदुरधृतराष्ट्रौ ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

कृतमैत्र: पद की विग्रह है कृतं मैत्रं मित्रश्रदैवत्यं सन्ध्यावन्दनं येन । मूल में पितरौ शब्द से धृतराष्ट्र और विदुर दोनों कहे गये हैं । संध्या वन्दन के अधिष्ठातृ देवता चूिक मित्र है अतएव संध्या वन्दन को मैत्र शब्द से कहा गया है । युधिष्ठिर ने नित्य संन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र कर्म को किया और उसके पश्चात् ब्राह्मणों को नमस्कार किया तथा उनको दान दिया । उसके पश्चात् जब वे गृह में गये तो उनको धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी ये तीनों नहीं मिले ॥३०॥

तत्र संजयासीनं पप्रच्छोद्विग्रमानसः । गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥३१॥

अन्वयः - उद्विग्नमानसः तत्र आसीनं संजयं पप्रच्छ गावल्गणे, नः वृद्धः नेत्रयोः हीनश्च तातः क्व ।।३१।।

अनुवाद— उद्विग्नमना होकर युधिष्ठिर ने वहाँ पर बैठे हुए सञ्जय से पूछा कि हे गावल्गणे ! मेरे वृद्ध तथा नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहा हैं ?॥३१॥

भावार्थ दीपिका

हे गावल्गणे गवल्गणस्य पुत्र सञ्जय ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

सञ्जय को गावल्गण इसलिए संम्बोधित किया गया है कि वे गवल्गण के पुत्र थे । गवल्गणस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में गवल्गण शब्द से **अतइञ** सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर गावल्गणि शब्द बनता है और उसका सम्बोधन में रूप हैं गावल्गणे ।।३१।।

अम्बा च हतपुत्रार्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत्। अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥

अन्वयः— हतपुत्रार्ता अम्बा सुहत् पितृव्यः च क्व गतः हतबन्धुः दुःखितः सः अकृत प्रज्ञे मिय शमलं आशंसमानः गङ्गायाम् अपतत् किम् ?।।३२।।

अनुवाद पुत्रों के मारे जाने के कारण दुःखिनी माता गान्धारी और मेरे सुहत् मेरे चाचा विदुरजी कहाँ गये ? कहीं महाराज धृतराष्ट्र बान्धवों के मारे जाने के कारण दुःखी होकर अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अकृतप्रज्ञे मन्दमतौ । शमलमपराधमाशंसमान आशङ्कमानः । भार्यया सह ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण दु:खी धृतराष्ट्र मन्दबुद्धि मुझसे किसी प्रकार के पाप की शङ्का करके अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ।।३२।।

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् । अराक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥

अन्वयः पितिर पाण्डौ उपरते सुहृदः सर्वान् शिशून् नः व्यसनतः अरक्षताम् इमौ पितृव्यौ इतः क्व गतौ ।।३३।। अनुवाद मेरे पिता पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर हमारे प्रिय हम सभी बच्चों को इन दोनों चाचाओं ने विपत्तियों से बचाया ऐसे मेरे दोनों चाचा यहाँ से कहाँ चले गये ?।।३३।।

भावार्थ दीपिका

यावरक्षतां तौ । इतः स्थानात् ।।३३।।

प्रथम स्कन्ध

भाव प्रकाशिका

जिन दोनों चाचाओं ने हमसबों की रक्षा की वे इस स्थान से कहाँ चले गये ?॥३३॥

सूत उवाच

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः । आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३४॥

अन्वयः --- आत्मेश्वरम् अचक्षाणः विरहकर्शितः सूतः कृपया स्नेह वैकल्यात् अतिपीडितः न प्रत्याह ।।३४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद — अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखकर विरह से दुःखी सञ्जय कृपा तथा स्नेह के कारण व्याकुल होने के कारण अत्यन्त पीडित होने से कुछ भी नहीं बोले ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कृपया स्नेहवैक्लव्याच्चातिपीडित आत्मेश्वरं धृतराष्ट्रमपश्यन् । विरहकर्शितश्च सूतः संजयो न प्रत्युत्तरमाह ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

कृपा तथा स्नेह के कारण अत्यन्त दु:खी सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखने के कारण विरह से व्याकुल थे; अतएव राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दिए ॥३४॥

विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना । अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥३५॥

अन्वयः— पाणिभ्यां अश्रूणि विमृज्य, आत्मना आत्मानम् विष्टभ्य प्रभोः पादौ अनुस्मरन् अजातशत्रुं प्रत्यूचे ।।३५।। अनुवाद— अपने दोनों हाथों से आँसुओं को पोंछकर, बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्य सम्पन्न बनाकर अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करते हुए वे युधिष्ठिर से कहे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मना बुद्ध्यात्मानं मनो विष्टभ्य धैर्ययुक्तं कृत्वा । प्रभोर्धृतराष्ट्रस्य ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

सञ्जय ने बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्ययुक्त बनाया और अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करके वे युधिष्ठिर से कहे ॥३५॥

संजय उवाच

नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन । गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मिभः ॥३६॥

अन्वयः— हे महाबाहो, कुलनन्दन, वः पित्रोः गन्धार्या वा व्यवसितं अहं न वेद, महात्मिभः मुषितः अस्मि ।।३६।।

संजय ने कहा

अनुवाद— हे महाबाहो कुलनदंन युधिष्ठिर ! मैं आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी के सङ्कल्प को नहीं जानता हूँ, मुझको तो उन महात्माओं न ठग लिया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

गान्धार्याञ्च । व्यवसितं निश्चितम् । यतो मुषितो वञ्चितोऽस्मीति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

संजय ने युधिष्ठिर से कहा कि आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी इन तीनों का क्या सङ्कल्प है, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ; क्योंकि इन लोगों ने मुझे कुछ भी नहीं बतलाया। मुझे तो इन लोगों ने ठग ही लिया।।३६।।

अथाजगाम भगवात्रारदः सहतुम्बुरु । प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥३७॥

अन्वय:— अथ तुम्बुरुः सह भगवान् नारदः आजगाम सानुजः प्रत्युत्थाय, अभिवाद्य अभ्यर्च्य इव आह ।।३७।। अनुवाद— उसके पश्चात् वहाँ पर तुम्बुरु के साथ भगवान् नारदजी आये उनको देखकर राजा अपने भाइयों के साथ खड़े होकर उनकी पूजा करते हुए कहने लगे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवं कंचित्कालं शोचित तस्मित्रथ नारद आजगाम । अत्रास्ति क्वचित्पुस्तके पाठान्तरं तदुल्लङ्ख्य यथासंप्रदायं व्याख्यायते। शोकवेगादभ्यर्चयत्रिवाह राजा नत्वभ्यर्चयत् 'शोकाक्रान्तः कृपाविष्टः श्रद्धया रहितः पुमान् । गुरुदेवद्विजातीनां पूजनं न समाचरेत् ।' इति स्मृतेः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह कुछ देर तक जब युधिष्ठिर शोच ही रहे थे उसी समय वहाँ पर तुम्बुरु के साथ महिमा सम्पन्न नारदजी आ गये। यहाँ पर किसी-किसी पुस्तक में अभ्यर्चयन् मुनिम् यह पाठ भेद है किन्तु उस पाठान्तर पर ध्यान न देकर यहाँ सम्प्रदायानुसारी व्याख्या की गयी है। चूकि राजा युधिष्ठिर को उस समय शोक था और शोक प्रस्त व्यक्ति को महापुरुषों की पूजा नहीं करनी चाहिए, इसलिए सूतजी ने अभ्यर्चयन्निव कहा है। अर्थात् उन्होंने नारदजी की पूजा नहीं कि बल्कि उनका केवल सत्कार और प्रणाम किया। स्मृति भी कहती है— शोकाक्रान्तः इत्यादि अर्थात् शोक प्रस्त कृपायुक्त, तथा श्रद्धारहित पुरुष को गुरु, देवता और ब्राह्मण की पूजा नहीं करनी चाहिए।।३७॥

युधिष्ठिर उवाच नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्व गतावित:। अम्बा वा हतपुत्रार्ता क्व गता च तपस्विनी॥ कर्णधार इवापारे भगवान्यारदर्शक:

अन्वयः— भगवन् अहं पित्रोः गितं न वेद यत् इतः क्व गतौ वा हतपुत्रा आर्ता तपस्विनी अम्बा च क्व गता भगवान् अपारे पारदर्शकः कर्णाधार इव ।।३८।।

युधिष्ठिरजी ने कहा

अनुवाद है भगवन् ! मुझे अपने दोनों चाचाओं का पता नहीं चल रहा है कि वे दोनों यहाँ से कहाँ चले गये, तथा पुत्रों के मारे जाने के कारण आर्त बनी हुयी माता गन्धारी कहाँ गयीं । हे भगवन् इस अपार दु:ख सागर में पार को दिखाने वाले आप ही कर्णधार हैं, अतएव आप ही उन लोगों के विषय में बतलायें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

नाहं वेद वेदि । तपस्विनी दुःखयुक्ता । अपारे शोकार्णवे भगवांस्त्वमेव पारदर्शकः । अतो ब्रूहीति शेषः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा कि अपने दोनों चाचा और दु:खिनी चाची का मुझे पता नहीं चल रहा है अतएव मैं अपार शोक सागर में डूब रहा हूँ। आप ही मेरे लिए सहारा हैं आप उन लोगों का पता बतलाइये ॥३८॥ अथाबभाषे भगवात्रारदो मुनिसत्तमः । मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥३९॥

अन्वयः अथ मुनिसत्तमः भगवान् नारदः आबभाषे । राजन् कंचन मा शुचः यत् जगत् ईश्वरवशं वर्तते ।।३९।। अनुवाद इसके बाद मुनियों में श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न नारदजी ने कहा राजन् किसी के भी विषय में आप शोक मत कीजिये । यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के अधीन है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

आदावेव यथावृत्तकथने शोकेन मूर्च्छितः पतेदिति प्रथमं तावच्छोकमुपशमयित । कंचन मा शुचो मा शोचः । न केवलं तानेव । यद्यस्मादीश्वराधीनं जगत् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने सोचा कि यदि मैं सारी घटना ठीक-ठीक बतला दूँ तब तो युधिष्ठिर प्रारम्भ में ही मूर्छित होकर गिर जायेंगे । अतएव सर्वप्रथम वे उनके शोक को शान्त करते हुए कहे कि यह सारा जगत् परमात्मा के अधीन है, अतएव आपका किसी के विषय में शोक करना व्यर्थ है । परमात्मा की जैसी इच्छा होती है, उसे कोई रोक नहीं सकता है ॥३९॥

लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः । स संयुनिक भूतानि स एव वियुनिक च ॥४०॥

अन्वयः— इमे सपालाः लोकाः यस्य ईशितुः बिलम् आवहन्ति सः भूतानि संयुनिक्त स एव वियुनिक्त च ।।४०।। अनुवाद— ये सारे लोक तथा लोकपाल जिस नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, वे ही परमात्मा जीवों को मिलने तथा विलग करने का काम करते हैं।।४०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-लोका इति । संयुनिक संयोजयित । वियुनिक वियोजयित च ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

लोकाः इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा के सम्पूर्ण जगत् नियामकत्व का वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं कि सारा जगत् परमात्मा का नियाम्य है। सारे लोक और लोकपाल परमात्मा की ही पूजा करते हैं। वे ही परमात्मा किसी व्यक्ति को किसी से मिलाने और किसी से विलग करने का काम करते हैं।।४०।।

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः । वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥४९॥

अन्वयः— यथा निस प्रोता तन्त्यां स्वदामिभः बद्धाः ईशितुः बिलम् आवहन्ति तथा वाक्तन्त्यां नामिभः बद्धाः मनुष्याः ईशितुः बिलमावहन्ति ।।४१।।

अनुवाद जैसे छोटी सी रस्सी से नाक में नथे हुए तथा अपनी बड़ी रस्सी में बंधे हुए बैल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हैं उसी तरह कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निर्देश करने वाली वेदवाणी रूपी रस्सी में बन्धे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामधारी मनुष्य जगत् नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

गावो बलीवर्दा निस नासिकायां प्रोतास्तन्त्यां दीर्घतन्त्यां दामिभर्बद्धाः स्वामिनो बलिं वहन्ति यथा एवं वाक्तन्त्यां कर्तव्याकर्तव्यविधायकवेदलक्षणायां नामिभर्ब्राह्मणो ब्रह्मचारीत्यादिवर्णाश्रमलक्षणैर्बद्धाः परमेश्वरस्य बलिं तेन प्रेरिताः सर्वे वहन्तीत्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जैसे बैल नाक में छोटी रस्सी से नथे हुए बड़ी रस्सी में बन्धे रहते हैं और अपने मालिक की आज्ञा का पालन करते हैं, उसी तरह कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विधान करने वाले वेद की वाणी में बन्धे हुए ब्राह्मण आदि तथा ब्रह्मचारी आदि अपने-अपने वर्णों एवं आश्रमों रूपी रस्सी में बन्धे रहकर परमात्मा की आराधना उन्हीं के द्वारा प्रेरित होकर किया करते हैं। अतएव आप अनावश्यक शोक न करें ॥४१॥

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह । इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥

अन्वय: यथा इह कीडितु: इच्छया क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमौ स्याताम् तथैव ईशेच्छया नृणाम् संयोगवियोगौ भवत: इति शेष: ।।४२।।

अनुवाद जिस तरह इस संसार में क्रीडा करने वाले व्यक्ति की इच्छा से ही क्रीड़ा के साधन भूत खिलौनों का संयोग और विलगाव होता है, उसी तरह से नियामक परमात्मा की ही इच्छा से मनुष्यों का मिलना और विछुड़ने का काम होता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तौ पारतन्त्र्यमुक्त्वा संयोगवियोगयोरप्याह-यथेति । क्रीडोपस्कराणां क्रीडासाधनानां (दारुरचितमेषादीनाम्) ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्यों की किसी भी कार्य में प्रवृत्ति परमात्मा की इच्छा के अनुसार ही होती है। जीव स्वतंत्र रूप से किसी कार्य को करने में समर्थ नहीं है। इस श्लोक में यह बतलाते हैं कि किसी भी जीव का संयोग और विप्रयोग भी परमात्मा की इच्छा के अधीन ही होता है। क्रीडा के साधनभूत खिलौनों को ही क्रीडोपस्कर कहते हैं। जैस क्रीडा करने वाला जब चहाता है तब एक खिलौना को दूसरे खिलौना से मिला देता है और जब चाहता है तो दोनों को अलग-अलग कर देता है। उसी तरह ईश्वर जब चाहते हैं तो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से मिला देते हैं और जब चाहते हैं तो उन दोनों को अलग-अलग कर देते हैं। लकड़ी के बनाये हुए भेंड़ा क्रीडोपस्कर के उदाहरण हैं।।४२।।

यन्मन्यसे घ्रुवं लोकमघ्रुवं वा न चोभयम् । सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥

अन्वयः यत् लोकं ध्रुवं मन्यसे, वा अध्रुवम्, न ध्रुवं न अध्रुवं सर्वथा मोहजात् स्नेहात् अन्यत्र ते हि शोच्या न । १४३।। अनुवाद यदि आप जीव को नित्य मानें, या अनित्य मानें, या न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें इन चारों ही पक्षों में शोक करना व्यर्थ है। यह तो अज्ञानजन्य स्नेह से भिन्न कुछ है ही नहीं । १४३।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वराधीनत्वात्र शोकः कार्य इत्युक्तम् । शोकतत्त्वे च विचार्यमाणे निर्विषयोऽयं शोक इत्याह । यद्यदि लोकं जनं धृवं जीवरूपेण । अधृवं देहरूपेण । न चेति । न धृवं नाप्यधृवम् । शुद्धब्रह्मरूपेणानिर्वचनीयत्वेन वा उभयं वा चिज्जडांशतः। सर्वथा चतुर्ष्विप पक्षेषु ते पित्रादयो न शोच्याः स्नेहादन्यत्र । स्नेह एव केवलं शोकहेतुः स चाज्ञानमूल इत्यर्थः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो कुछ भी होता है वह ईश्वर की इच्छा के अधीन होता है अतएव शोक करना व्यर्थ है। शोक तत्त्व पर यदि विचार किया जाय तो इस शोक का कोई विषय नहीं है। क्योंकि यदि आप मनुष्य को जीव रूप से नित्य मानें अथवा देह रूप से अनित्य मानें, अथवा उसे न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें अथवा शुद्ध ब्रह्म होने के कारण तथा अनिर्वचनीय होने के कारण अथवा चित् तथा जडांश होने के कारण दोनों ही मानें, इन चारो ही पक्षों में तुम्हें अपने चाचा इत्यादि के विषय में शोक नहीं करना चाहिए। उन्होंने कहा कि केवल स्नेह ही शोक का कारण है और स्नेह अज्ञान मूलक है।

जीव के विषय में चारो पक्षों को स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार ने कहा ध्रुव और अध्रुव ये दो पक्ष हुए और न ध्रुव और न अध्रुव ये दो पक्ष हुए इस तरह से चार पक्ष हो गये। यदि ध्रुव है तो उसका नाश नहीं हो सकता है। और यदि अध्रुव है तो उसका विनाश होकर ही रहेगा। यह जीव न तो ध्रुव ही कहा जा सकता है और न तो अधुव ही कहा जा सकता है। भावार्थदीपिकाकार ने उसे उभयम् कहा है। उसका अभिप्राय है कि वह चित् रूप से ध्रुव है और देहाध्यास रूप से अध्रुव है ॥४३॥

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः । कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥

अन्वयः तस्मात् हे अङ्ग ! मां विना अनाथाः कृपणाः ते कथं वर्तेरन् । इति अज्ञानकृतम् आत्मनः वैक्लव्यं जिहा।४४।। अनुवाद अतएव हे धर्मराज आप अपने इस अज्ञानजन्य मन की विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना दीन तथा अनाथ वे कैसे रहेंगे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मान्मां विना कथं ते वर्तेरित्रत्यात्मनो मनसो वैक्लव्यं व्याकुलतां त्यज ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा कि आप अपने मन की इस विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना वे कैसे रहेंगे ?॥४४॥

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः । कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥४५॥

अन्वयः अयं पाञ्चभौतिकः देहः काल-कर्म-गुणाधीनः परम् सर्पग्रस्तः यथा अन्यान् तु कथं गोपायेत् ।।४५।। अनुवाद यह पाञ्चभौतिक शरीर, काल, कर्म तथा गुणों के अधीन होने के कारण पराधीन है । अजगर के मुँह में पड़े हुए के समान यह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकता है ?॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र त्वद्देहतस्तेषां वृत्तिरेतत्तावन्नास्तीत्याह । कालो गुणक्षोभकः । कर्म जन्म निमित्तम् । गुणा उपादानम् । तदधीनः पाञ्चभौतिको जडस्तद्विभागे नाशवांश्च । सर्पग्रस्तोऽजरगिलितो यथाऽन्यं न रक्षति तद्वत् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

आपके अधीन ही उन लोगों की वृत्ति हो ऐसी बात नहीं है। कालगुणों में क्षोभ उत्पन्न करता है कर्म जन्म का कारण है, गुण ही उपादान कारण हैं उसके ही अधीन यह पाँच भौतिक जड़ शरीर है। उन सबों का विभाग होने पर यह नष्ट हो जाता है। जैसे अजगर के मुँह में स्वयं पड़ा हुआ दूसरों की रक्षा नहीं कर सकता है उसी तरह से इस शरीर से दूसरों की रक्षा नहीं हो सकती हैं।।४५।।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् । फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

अन्वय:— अहस्तानि सहस्तानाम् अपदानि चतुष्पदाम् फल्गूनि महताम् इत्थम् जीवः जीवस्य जीवनम् ।।४६।। अनुवाद— बिना हाथ वाले खरगोश, कबूतर इत्यादि पक्षी हाथ वाले मनुष्यों के; बिना पैर वाले तृण आदि पैर वाले पशुओं के तथा छोटे जीव बड़े जीवों के जीवन आहार हो जाते हैं इस तरह एक जीव दूसरे जीव के जीवन (आहार) हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेण विहिता वृत्तिश्च सर्वतः सुलभैवेत्याह । अहस्तानि पश्चादीनि । अपदानि तृणादीनि । तत्र तेष्वहस्तादिष्वपि फल्गून्यल्पानि । एवं जीवः सर्वोऽपि जीवस्य सर्वस्य जीवनं जीविका । एतेनैव सर्वतो मृत्युग्रासत्वं चोक्तम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा प्रदत्त जीविका सर्वत्र सुलभ है इस बात को अहस्तानि इत्यादि के द्वारा कहा गया है।

हाथ रहित पशु आदि हाथ वाले मनुष्यों के आहार बन जाते हैं हस्तहीनों में भी छोटे जीव बड़े जीवों के अहार बन जाते हैं इस तरह सभी जीव सभी जीवों की जीविका हैं। इस कथन से ही यह बतलाया गया है कि जो जहाँ कहीं भी रहता है, वह मृत्यु का ग्रास बनता ही है।।४६।।

तदिदं भगवानाजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् । अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥४७॥

अन्वयः— राजन् तिदं भगवान् एकः आत्मनाम् आत्मा स्वदृक् अन्तरः अन्तरः भाति तं मायया उरुधा पश्य ।।४७।। अनुवाद— राजन् ये एक मात्र भगवान् ही सभी आत्माओं की आत्मा हैं वे स्वयम्प्रकाश हैं वे ही सबों के भीतर और बाहर प्रतीत हो रहे है, माया के कारण ही उनकी अनेक रूप से प्रतीति होती है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

मोहनिवृत्त्यर्थं द्वैतस्यावस्तुत्वमाह । तदिदमहस्तसहस्तादिरूपं जगत् । स्वदृग्भगवानेव न ततः पृथक् । स चैक एव न तु नाना । ननु सजातीयविजातीयभेदे प्रत्यक्षे कुत एतत्तत्राह । आत्मनां भोक्तृणामात्मा स्वरूपम् । अतो न सजातीयभेदः। अन्तरोऽनन्तरश्च अन्तर्बिहश्च भोक्तृभोग्यरूपश्च भाति । अतो न विजातीयभेदोऽपि । नन्वेकः कथं तथा प्रतीयतेऽत आह । मायया बहुधा भाति तं पश्येति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर के मोह की निवृत्ति के लिए नारदजी ने भेद की प्रतीति के। इस श्लोक में अवास्तविक बतलाया है। यह जगत् अहस्त सहस्त इत्यादि रूप है। यह स्वयम्प्रकाश भगवत् स्वरूप ही है, उनसे भिन्न नहीं है वे एक हैं अनेक नहीं। यदि कोई कहे कि सजातीय एवं विजातीय भेद तो प्रत्यक्षतः प्रतीत होते हैं अतएव भेद का निषेध कैसे किया जा सकता है? तो इसके उत्तर में उन्होंने कहा— भोक्ता आत्माओं का स्वरूप आत्मा ही है अतएव सजातीय भेद नहीं माना जा सकता है। आत्मा ही भीतर और बाहर भोक्ता और भोग्य रूप से प्रतीत होता है। अतएव विजातीय भेद को भी नहीं स्वीकारा जा सकता है।

नन्वेक: इत्यादि अब प्रश्न है कि यदि आत्मा एक ही है तो वह अनेक रूप में कैसे प्रतीत होता है तो इसके उत्तर में कहा गया है एक ही आत्मा माया के कारण अनेक रूप से प्रतीत होती है। इस बात को आपको जानना चाहिए ॥४७॥

सोऽयमद्य महाराज भगवानभूतभावनः । कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥४८॥

अन्वयः— महाराज ! अद्य सोऽयम् भूतभावनः भगवान् सुरद्विषाम् अभवाय कालरूपः अस्याम् अवतीर्णः ।।४८।। अनुवाद— हे महाराज ! इस समय जीवों को जीवन देने वाले भगवान् देव द्रोहियों का विनाश करने के लिए इस पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

क्वासावस्तीदृशो महामायावी, द्वारकायामित्याह-सोऽयमिति । अस्यां भूम्याम् । अभवाय नाशाय ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि वे महामायावी भगवान् द्वारका में ही हैं क्या ? तो इसका उत्तर है कि वे भूमि पर अवतीर्ण हुए हैं और असुरों का विनाश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ॥४८॥

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते । तावद्ययमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥४९॥ अन्वयः— देवकृत्यं निष्पादितम्, अवशेषं प्रतीक्षते यावदिह ईश्वरः भवेत् तावद् यूयम् अवेक्षध्वम् ॥४९॥ अनुवाद श्रीभगवान् देवताओं का कार्य पूरा कर चुके हैं, अब थोड़े से बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब तक श्रीभगवान् इस भूलोक में हैं तब तक आपलोग उनका दर्शन करें ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि श्रीकृष्णाऽत्रास्तीत्यत्रैवास्थां मा कृथा इत्याह । तच्च देवानां कार्यं तेन निष्पादितं, केवलमवशेषं प्रतीक्षते । यदुकुलक्षयमिति हृदिस्थम् । ततो निजं धाम यास्यित ततो यूयमिप गच्छतेत्यर्थः । तच्च भूतमिप विदुरवदेव नावर्णयत् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ ही है इस बात को आपलोग न सोचें। उन्होंने देवताओं का कार्य पूरा कर लिया है, केवल बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे है। उनके हृदय में बचा हुआ कार्य यदुकुल का विनाश था उसके पश्चात् वे अपने लोक में चले जायेंगे। अतएव आपलोग भी जायँ। यद्यपि यदुकुल का नाश हो ही गया था किन्तु जिसतरह विदुरजी ने उसका वर्णन नहीं किया था उसी तरह उन्होंने भी उसका वर्णन नहीं किया।।४९।।

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया । दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामश्रमं गतः ॥५०॥

अन्वयः धृतराष्ट्रः भ्रात्रा भार्यया गान्धार्या च सह हिमवतः दक्षिणेन ऋषीणाम् आश्रमं गतः ॥५०॥

अनुवाद— धृतराष्ट्र अपने भाई विदुरजी तथा अपनी पत्नी गान्धारी के साथ हिमालय की दक्षिण दिशा में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं शोकमास्थां च निवार्य जिज्ञासवे तस्मै यथावृत्तं कथयति-धृतराष्ट्र इति षड्भिः । हिमवतो दक्षिणे भागे ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से शोक तथा आस्था को दूर करके जिज्ञासु युधिष्ठिर को यथार्थ वृत्तान्त **घृतराष्ट्रः इत्यादि** छह श्लोकों से कहते हैं वे बतलाये कि धृतराष्ट्र हिमालय के दक्षिण भाग में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ॥५०॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् । सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥५१॥

अन्वयः— स स्वर्धुनी सप्तानां प्रीतये नाना सप्तिभिः स्रोतोभिः सप्तधाव्यधात् यत् सप्तस्रोत प्रचक्षते ।।५१।। अनुवाद— जहाँ पर गङ्गाजी ने सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए पृथक्-पृथक् सात स्रोतों में अपने को विभक्त कर दिया जिसे सप्तस्रोत (सप्त सरोवर) कहते हैं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

तदपि कुत्रेत्याह-स्रोतोभिरिति । या वै प्रसिद्धा स्वर्धुनी सा आत्मानं यत्र सप्तधा व्यधात् । किमर्थम् । नाना पृथक् सप्तभिः स्रोतोभिः प्रवाहैः सप्तानामृषीणां प्रीतये । अतएव तत्तीर्थं सप्तस्रोतो वदन्ति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

यदि पूछें कि ऋषियों के किस आश्रम में गये हैं तो इसका उत्तर है स्रोतोभिः इत्यादि जो प्रसिद्ध देवनदी गङ्गाजी है जहाँ पर सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए अपने को सात अलग-अलग धाराओं में विभक्त कर दिया है, जिसे सप्तस्रोत कहते हैं वहीं पर चले गये हैं ॥५१॥

स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि । अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥५२॥

अन्वयः - यस्मिन् अनुसवनं स्नात्वा, यथाविधि अग्नीन् हुत्वा अब्भक्षः उपशान्तात्मा स विगतैषणः आस्ते ॥५२॥ अनुवाद - वहाँ वे त्रिकालस्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके आहार के रूप में जल को लेते हैं और शान्त चित्त वाले हो गये हैं । उनकी सारी इच्छाएँ समाप्त हो गयी हैं । इस तरह से वे निवास करते हैं ॥५२॥

तत्र तेन कृतमष्टाङ्गयोगमाह-स्नात्वेति चतुर्भिः । तत्र स्नानं होमोऽव्भक्षणं चेति नियमा उक्ताः भक्षस्थाने अपां स्वीकारादब्भक्षः। उपशान्त आत्मा यस्य सः । विगताः पुत्राद्येषणा यस्मादिति यमा उक्ताः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर धृतराष्ट्र अष्टाङ्ग योग करते हैं इस बात को स्रोतोभि॰ इत्यादि चार श्लोकों से बतलाया गया है। उसमें स्नान, होम और जलाहार ये नियम बतलाये गये हैं। भोजन के स्थान पर जल लेने के कारण उनको अब्भक्ष कहा गया है। उपशान्त आत्मा (चित्तं) यस्य सः, यह उपशान्तात्मा पद का विग्रह है। अर्थात् वे शान्त चित्त वाले हो गये हैं। उनकी सारी अभिलाषाएँ समाप्त हो गयी हैं। इस तरह से योग के अङ्ग यम को बतलाया गया है।।५२।।

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः । हरिभावनया ध्वस्तरजः सत्त्वतमोमलः ॥५३॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् । ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरिमवाम्बरे ॥५४॥ ध्वस्तमायागुणोदकों निरुद्धकरणाशयः । निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥५५॥

अन्वयः जितासनः, जितश्वासः, प्रत्याहृतषिङिन्द्रियः हरिभावनया ध्वस्त रजः सत्त्वतमोमलः । विज्ञानात्मिन संयोज्य, क्षेत्रज्ञे प्रविलप्य, अम्बरे घटाम्बरम् इवतम् आधारे ब्रह्मणि प्रविलाप्य, निरुद्धकरणाशयः ध्वस्त मायागुणोदर्कः निवर्तिता खिलाहारः स्थाणुः इव अचलः आस्ते ।।५३-५५।।

अनुवाद उन्होंने आसन को जितकर, श्वास को भी जित लिया है। उन्होंने छहो इन्द्रयों को उनके विषयों से लौटा लिया है। श्रीहरि की भावना से युक्त उन्होंने सत्त्व, रजस् एवं तमस् मलों को विनष्ट कर दिया है। अहङ्कार को बुद्धि से संयुक्त करके उसे क्षेत्रज्ञ आत्मा में उन्होंने लीन कर दिया है। उसको भी महाकाश में घटाकाश के समान सबों के आधार ब्रह्म में उन्होंने मिला दिया है। अपनी सभी इन्द्रियों और मन को अवरुद्ध करके इन्द्रियों के विषयों को बाहर से ही लौटा दिया है तथा माया के गुणों के परिणामों को विनष्ट कर दिया है। समस्त कर्मों का परित्याग करके वे इस समय स्थाणु के समान स्थिर हो गये हैं। ५३-५५।

भावार्थ दीपिका

जितासन इत्यादिना आसनप्राणायामप्रत्याहारा उक्ताः । हरिभावनयेति घारणोक्ता । ध्वस्ता रजःसत्त्वतमोरूपा मला यस्येति फलतो ध्यानमुक्तम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

जितासनः इत्यादि श्लोक से धृतराष्ट्र के द्वारा पालन किए जाने वाले आसन, प्राणायाम प्रत्याहार को बतलाया गया है। हिरभावनया॰ इत्यादि के द्वारा धारणा कही गयी है। उसके फलस्वरूप उन्होंने सत्त्व, रजस् तथा तमस् रूपी मलों को विनष्ट कर दिया है, यह कहकर ध्यान नामक योगाङ्ग को कहा गया है।।५३।।

भावार्थ दीपिका

समाधिमाह-विज्ञानेति द्वाभ्याम् । आत्मानं मनोऽहङ्कारास्पदं स्थूलदेहाद्वियोज्य विज्ञानात्मिन बुद्धौ संयोज्यैकीकृत्य तं च विज्ञानात्मानं दृश्यांशाद्वियोज्य क्षेत्रं द्रष्टरि प्रविलाप्य तं च क्षेत्रज्ञं द्रष्ट्रंशाद्वियोज्याधारे आश्रयसंज्ञे ब्रह्मणि प्रविलाप्य । घटाम्बरं घटोपाधेर्वियोज्य यथा महाकाशे प्रविलाप्यते तद्वत् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

विज्ञानात्मनि० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा समाधि नामक अन्तिम योगाङ्ग को कहा गया है । आत्मानम्०

इत्यादि अहङ्कार के विषयभूत मन को स्थूल देह से वियुक्त करके तथा ज्ञान स्वरूप बुद्धि में उसको संयुक्त करके उन्होंने उसको एक कर दिया है। उस विज्ञान स्वरूप आत्मा को दृश्यांश से अलग करके क्षेत्रज्ञ द्रष्टा आत्मा में लीन करके। उस क्षेत्रज्ञ को भी द्रष्टा रूपी अंश से पृथक् करके उसे आश्रय संज्ञक ब्रह्म में उन्होंने लीन कर दिया है। यह ठीक उसी तरह से है जिस तरह घटोपहित आकाश को घटरूपी उपाधि से अलग करके जैसे महाकाश में मिला दिया जाता है उसी तरह।।५४।।

भावार्थ दीपिका

व्युत्थानाभावमाह-ध्वस्तेति । अन्तर्गुणक्षोभाद्वा वहिरिन्द्रियविक्षेपाद्वा व्युत्थानं भवेत्, तदुभयं तस्य नास्ति । यतो ध्वस्तो मायागुणानामुदर्क उत्तरफलं वासना यस्य सः । निरुद्धानि करणानि चक्षुरादीन्याशयो मनश्च यस्य सः । अतएव निवर्तितोऽखिल आहारो भोज्यमिन्द्रियैर्विषयाहरणं वा येन सः । स्थाणुरिव निश्चल आस्ते ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

आभ्यन्तर गुणों के क्षोभ के कारण अथवा बाह्येन्द्रियों के विक्षेप के कारण किसी भी प्रकार से उनको व्युत्यान नहीं होता है, क्योंकि उन्होंने माया के गुणों का फल जो वासना है उसको उन्होंने विनष्ट कर दिया है। उन्होंने चक्षुरादि बाह्यइन्द्रियों और मन को भी अपने वश में कर लिया है। उन्होंने सभी प्रकार के आहारों का परित्याग कर दिया है। वे न तो किसी प्रकार का भोज्य आहार लेते हैं और न तो इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करते हैं। वे स्थाणु के समान निश्चल हो गये हैं।।५५॥

तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः। स वा अद्यतनाद्राजन्यरतः पञ्चमेऽहिन ॥ कलेवरं हास्यति स्वंतच्य भस्मीभविष्यति ॥५६॥

अन्वयः— संन्यास्तिखल कर्मणः तस्य अन्तरायो मैव अभूः । राजन् स वै अद्यतनात् परतः पञ्चमे अहिन स्वं कले वरं हास्यित तच्च भस्मीभविष्यिति ।।५६।।

अनुवाद— राजन् उन्होंने अपने समस्त कमीं का परित्याग कर दिया है, आप उनके कार्य में विध्न न बनें । निश्चित रूप से आज के पाँचवें दिन वे अपने शरीर का परित्याग कर देंगे और उनका वह शरीर भस्म हो जायेगा ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

तथाभूतमप्यानेतुमुद्यतं प्रत्याह-तस्येति । अन्तरायो विघ्नः । मैवाभूरित्यडागमश्छान्दसः । दर्शनमपि तावत्कुर्यामित्युद्यतं। प्रत्याह । स वै अद्यतनादह्नः परत उत्तरत्र । स्वं स्वाधीनम् । तर्हि तद्दाहार्थं गमिष्यामि नेत्याह-तच्चेति ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

उस तरह के भी धृतराष्ट्र को लाने के लिए उद्यत युधिष्ठिर को उन्होंने कहा आप उनके कार्यों में विघ्न न करें । अभू: में अट् का आगम वैदिक प्रयोग है । राजा ने कहा कि उनका मैं दर्शन ही कर लूँ तो उनसे नारदजी ने कहा वे आज के बाद पाँचवें दिन अपने अधीन शरीर का परित्याग कर देंगे । यदि कहो कि उस शरीर को जलाने के लिए मैं जाऊँ तो ऐसी भी बात नहीं है । उनका वह शरीर अपने आप जल जायेगा ॥५६॥

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे । बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यिति ॥५७॥

अन्वयः सहोटजे पत्युः देहे अग्निभः दह्ममाने बिहः स्थिता साध्वी पत्नी तम् अग्निम् पितम् अनुवेक्ष्यिति ।।५७।। अनुवाद झोपड़ी के साथ पित के देह को अग्नि के द्वारा जलते हुए देखकर झोपड़ी के बाहर बैठी हुयी उनकी साध्वी पत्नी पित के उसी अग्नि में प्रवेश कर जायेगी ।।५७।।

तर्हि गान्धार्यानयनाय गमिष्यामि नेत्याह । पत्युर्देहे सहोटजे पर्णशालासहिते योगाग्निना सह गार्हपत्यादिभिर्दह्ममाने तस्य पत्नी बहि: स्थिता सती तं पतिमन्वग्निं वेक्ष्यित प्रवेक्ष्यित ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर मैं गान्धारी को लेकर आऊँगा। तो ऐसा भी नहीं करना चाहिए इस बात को दशमाने इत्यादि श्लोक से कहा गया है। झोपड़ी के साथ पित के शरीर को योगाग्नि से जलते हुए देखकर झोपड़ी से बाहर बैठी हुयी उनकी सुशील पत्नी उसी अग्नि में अपने पित के साथ प्रवेश कर जायेगी ॥५७॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन । हर्षशोकयुतस्तस्माहन्ता तीर्थिसिषेवक: ॥५८॥

अन्वयः हे कुरुनन्दन ! तदाश्चर्यं निशाम्य तीर्थिसिषेवकः विदुरस्तु हर्षशोकयुतः तस्मात् गन्ता ।।५८।।

अनुवाद हे कुरुनन्दन ! उस आश्चर्य को देखकर तीर्थों का सेवन करने के इच्छुक विदुर जी तो धृतराष्ट्र की मुक्ति हो जाने के कारण हर्ष से एवं उनकी मृत्यु हो जाने के कारण शोक से युक्त होकर वहाँ से चले जायेंगे ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि विदुरानयनार्थं गन्तव्यमेव नेत्याह । विदुरस्तु तन्निशाम्य दृष्ट्वा भ्रातुः सुगत्या हर्षस्तन्मृत्युना शोकश्च ताभ्यां युक्तस्तस्मात्स्थानात्तीर्थानि सेवितुं गन्ता गमिष्यति ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर विदुरजी को लाने के लिए मुझे जाना चाहिए तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि उस आश्चर्य को देखकर अपने भाई की सद्गित के कारण हर्ष से तथा उनकी मृत्यु के कारण शोक से युक्त विदुरजी उस स्थान से तीथों की सेवा करने के लिए चले जायेंगे ॥५९॥

इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः । युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वय:— इत्युक्त्वा अथ तुम्बुरु: सह नारद: स्वर्गं अरुहत् तस्य वच: हृदि कृत्वा युधिष्ठिर: शुच: अजहात् ।।५९।। अनुवाद— इस तरह से कहने के पश्चात् नारदजी तुम्बुरु के साथ स्वर्ग लोक में चले गये । उनकी वाणी को हृदय में रखकर युधिष्ठिर ने शोक का परित्याग कर दिया ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकान् ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

🗼 🧀 🖟 🔅 भाव प्रकाशिका 📨 📨 🎉 🖠

मूल का शुच: पद शोक का बोधक है ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य की भावार्थदीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में युधिष्ठिर की अनेक प्रकार की शङ्का

सूत उवाच

संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया । ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः । ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥

अन्वयः बन्धु द्विदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य विचेष्टितम् च ज्ञातुम् जिष्णौ द्वारकायां प्रस्थिते कतिचित् मासाः व्यतीताः तदा अर्जुनः नायात् कुरुद्वहः घोररूपाणि निमित्तानि ददर्श ।।१-२।।

अनुवाद अपने बान्धवों को देखने की इच्छा से तथा पिवत्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टओं तथा अभिप्राय को जानने के लिए अर्जुन के द्वारका गये हुए कुछ महीने बीत गये, किन्तु वहाँ से अर्जुन नहीं आये और इधर राजा युधिष्ठिर भयङ्कर शकुनों को देखते थें ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे त्वरिष्टानि दृष्ट्वा राजा विशङ्कितः । अशृणोदर्जुनात्कृष्णतिरोधानमितीर्यते । कृष्णस्य चेति चकारेणाभिप्रायं च ज्ञातुम्। कतिचित्सप्त । तदा कालातिक्रमेऽपि ततो द्वारकातो नायात् नागतः । निमित्तान्युत्पातान् । कुरूद्वहो युधिष्ठरः ।।१–२।।

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपशकुनों को देखकर राजा अनेक प्रकार की शङ्का करने लगे थे। उसके पश्चात् उन्होंने अर्जुन के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन की बात को सुना।

कृष्णस्य च के चकार के द्वारा अभिप्राय को ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् अर्जुन अपने बान्धवों को देखने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं और अभिप्राय को जानने के लिए द्वारका गये थे। उनके द्वारका गये हुए सात महीने बीत गये थे किन्तु अर्जुन वहाँ से नहीं लौटे और इधर राजा युधिष्ठिर अनेक प्रकार के अपशङ्क्रुनों को देख रहे थे।।१-२।।

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः। पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् । पितृमातृसुहृद्धातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥ (कन्याविक्रयिणं तातं सुतं पित्रोरपोषकम् । ब्राह्मणान्वेदविमुखान् श्रूद्रान्वै ब्रह्मवादिनः) ॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् । लोभाद्यधर्म प्रकृतिं दृष्टवोवाचानुजं नृपः ॥५॥

अन्वयः — विपर्यर्स्तुधर्मिणः कालस्य रौद्रां गतिं, क्रोध लोभानृतात्मनाम् नृणां पापीयसीं वार्ताम्, जिह्मप्रायं व्यवहृतम् शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्, पितृ–मातृ–सुहृद–भ्रातृ–दम्पतीनां च कल्कनम्, कन्याविक्रयिणं तातम्, पित्रोः अपोषकम्, सुतम्, वेदिवमुखान्, ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः वै शूद्रान्, अत्यरिष्टानि निमित्तानि काले अनुगते तु नृणाम् लोभाद्य धर्म प्रकृतिं दृष्ट्वा नृपः अनुजं उवाच ।।३–५।।

अनुवाद जिसमें ऋतुओं के धर्म उलटा हो गये हैं ऐसे काल की भयङ्कर गित को, क्रोध, लोभ तथा मिथ्या भाषण करने वाले मनुष्यों की पापमयी जीविका को, कपटयुक्त व्यवहार को, ठगी युक्त मित्रता को, पिता, माता, भाई, मित्र, भाई तथा मित्रता को, पिता, माता, मित्र भाई तथा पित-पत्नी में होने वाल कलह आदि को, कन्या बेंचने वाले पिता को, माता-पिता का पोषण नहीं करने वाले पुत्र को, वेदाध्ययन पराङ्मुख ब्राह्मणों को, ब्रह्मवादी शूद्रों को, अत्यन्त अशुभ शकुनों को तथा काल का अनुसरण करने वाले मनुष्यों की लोभ आदि अधर्म से युक्त प्रकृति को देखकर राजा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई भीम से कहा ॥३-५॥

रौद्रां घोराम् । तदेवाह । विपर्यस्ता ऋतुधर्मा यस्मिस्तस्य । वार्तां जीविकाम् । क्रोधलोभानृतैर्युक्त आत्मा येषाम् । जिह्मप्रायं कपटबहुलम् । व्यहृतं व्यवहारम् । शाठ्यं वञ्चनं सौहृदं सख्यम् । पित्रादीनां स्वप्रतियोगिभिः कल्कनं कलहादि । अत्यरिष्टान्यत्यन्तमशुभानि दृष्ट्वा । नृणां लोभाद्यधर्मप्रकृतिं च दृष्ट्वा । अनुजं भीमम् ।।३-५।।'

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वाराका गये हुए बहुत दिन बीत गये थे, इधर महाराज युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अपशकुन दिखाई देने लग गये थे, अतएव वे चिन्तित से हो गये और अपने भाई भीम के आगे अधो वर्णित बातें कहने लगे। उस समय काल की गित भयङ्कर हो गयी थी जिस ऋतु में जो होना चाहिए उसके उलटा ही हो रहा था, लोग कपटमय व्यवहार करने लग गये थे, एक मित्र भी दूसरे मित्र को ठगता था। माता-पिता, भाई तथा पित-पत्नी आपस में कलह करने लगे थे। पिता, कन्या बेचने का काम करता था, पुत्र वृद्ध माता-पिता को त्याग देता था। ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते थे और शूद्र ब्रह्मज्ञान की बातें करते थे। इस तरह अत्यन्त अशुभ शकुन होते थे। काल के प्रभाव के कारण लोगों की प्रकृति लोभ आदि अधर्मों से युक्त हो गयी थी। इन्हीं सारी बातों को देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो रहे थे।।३-५।।

युधिष्ठिर उवाच

संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया । ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्।।६॥ गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः। नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥७॥

अन्वयः— भीमसेन, तवानुजः जिष्णुः बन्धुदिदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ज्ञातुं द्वारकायां प्रेषितः अधुना सप्त मासाः गताः कस्य वा हेतोः नायाति अञ्जसा अहम् इदम् न वेद ।।६-७।।

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद भीमसेन तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन को बान्धवों को देखने के लिए तथा पवित्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं को जानने के लिए मैंने द्वारका भेजा। अर्जुन के गये हुए सात महीने बीत गये और अभी तक अर्जुन नहीं आये। उनके नहीं आने का कारण क्या है, इस बात को मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका- वेति वितर्के कस्माद्धेतोर्नायातीत्यहं न वेद्यि ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका— सातवें श्लोक का वा शब्द वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन क्यों नहीं आ रहा है ? इस बात का मुझे पता नहीं चलता है ॥६-७॥

अपि देवर्षिणा दिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः । यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥ अन्वयः— अपि देवर्षिणा दिष्टः अयं सः कालः उपस्थितः यदा भगवान् आत्मनः आक्रीडम् अङ्गम् उत्सिसृक्षति ?॥८॥

अनुवाद— देवर्षि नारद के द्वारा उपदिष्ट वह काल आ गया है क्या ? जिस काल में श्रीभगवान् क्रीडा के साधन भूत अपने लीला विग्रह का परित्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

अपि किम् । यदा आत्मन आक्रीडं क्रीडासाधनमङ्गं मनुष्यनाट्यमुत्स्रष्टुमिच्छति स काल: प्राप्त: ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अपि शब्द का अर्थ क्या है ? युधिष्ठिर भीम से पूछते है कि यह वहीं काल आ गया है क्या ? जिस समय श्रीभगवान् मनुष्य नाट्य के साधनभूत अपने लीलाविग्रह (शरीर) का त्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः । आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुप्रहात् ॥९॥

अन्वयः यस्मात् नः संपदः, राज्यं, दाराः, प्राणाः, कुलं, प्रजाः, यदनुग्रहात् सपत्नविजयः, लोकाश्च आसन् ॥९॥ अनुवाद उन्हीं श्रीभगवान् से हमलोगों को सम्पत्ति, राज्य, पत्नियाँ, प्राण, वंश और प्रजाएँ प्राप्त हुयीं तथा उनकी कृपा से ही हमलोगों को शत्रुओं पर विजय प्राप्त हुयी एवं हमारा लोकों पर अधिकार प्राप्त हुआ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकं सर्वपुरुषार्थत्वे हेतुः श्रीकृष्णोऽतस्तद्वियोगं विनाऽनिष्टं न स्यादित्याशयेनाह । यस्मात् श्रीकृष्णाद्धेतोः । एतच्चोपरिष्टादर्जुनः स्पष्टीकरिष्यति । लोकाश्च यज्ञकरणानुरूपा यस्यानुग्रहात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति के एक मात्र साधन भगवान् श्रीकृष्ण हैं अतएव उनके वियोग के बिना हमलोगों के अनिष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने ही हमलोगों को सम्पत्ति तथा राज्य आदि को प्राप्त कराया है। इन सारी बातों को अर्जुन स्पष्ट करेंगे। हमलोगों ने जैसा यज्ञ किया है हमलोगों ने उसके अनुकूल ही लोकों की प्राप्ति हुयी हैं।।९।।

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् । दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥

अन्वय:— हे नरव्याघ्र न: बुद्धि मोहनम् अदूराद भयं शंसत: दारुणान् दिव्यान्, भौमान् सदैहिकान् उत्पातान् पश्य ।।१०।।

अनुवाद— हे मनुष्यों में महाबलवान् हमलोगों की बुद्धि को मोहित करने वाले सिन्नकट भविष्य में सम्भव
भय को सूचित करने वाले भयङ्कर आकाश से होने वाले उल्कापात इत्यादि, भूमि से होने वाले भूकम्प इत्यादि
और शरीर में होने वाले रोग इत्यादि उत्पातों को देखो ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अदूरात्संनिहितम् । नोऽस्माकम् । आशंसत उत्पातान् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

ये जो दिव्य, भौम तथा शारीरिक उत्पात होते हैं उन सबों से तात होता है कि निकट भविश्य में कोई भयङ्कर भय हमलोगों के समक्ष उपस्थित होने वाला है ॥१०॥

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः । वेपथुश्चापि हृदय आराह्यस्यन्ति विप्रियम् ॥११॥

अन्वयः— हे अङ्ग मह्मम् ऊर्वक्षिबाहवः पुनः पुनः स्फुरन्ति । हृदये वेपयुश्च अरात् विप्रियं दास्यन्ति ।।११।।

अनुवाद हे अङ्ग ! मेरी जङ्घायें, नेत्र तथा भुजाएँ बार-बार फड़क रहे है । मेरे हृदय में कँप हो रहा है उससे लगता है कि सन्निकट भविष्य में मेरा कोई अनिष्ट होने वाला है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दैहिकानाह- ऊर्विति । ऊर्वादयो वामाः स्फुरन्ति । वेपथुः कम्पश्च हृदये वर्तते । एते मह्ममारात्सन्निहितं विप्रियं दास्यन्ति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शारीरिक उत्पातों को बतलाते हुए युधिष्ठिर कहते है ऊर्विक्ष बाहव: इत्यादि उन्होंने बतलाया है कि मेरी जङ्घायें, नेत्र और भुजाएँ बार-बार फड़क रही है तथा रह-रहकर हृदय काँपने लगता है इससे सूचित हो रहा है कि सिन्नकट भविष्य में हमलोगों पर कोई भयङ्कर विपत्ति आने वाली हैं। आरात् शब्द सिन्नकटस्थ का बोधक है। ।११।।

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ॥१२॥

अन्वयः— एषा अनलानना, शिवा उद्यन्तम् आदित्यम् अभिरौति, हे अङ्ग ! अयम् सारमेय: माम् अभीरुवत् अभिरौप्ति।।१२।।

अनुवाद जिसके मुख से आग निकल रही है, ऐसी यह स्यारिन न उगते हुए सूर्य की ओर मुख करके रो रही है। हे भाई ! यह कुत्ता मेरी ही ओर मुख करके निडर होकर चिल्ला रहा है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

भौमानाह सार्धैस्त्रिभिः । शिवा क्रोष्ट्री उद्यन्तं आदित्यभिरौत्युद्यत्सूर्याभिमुखं क्रोशति । अनलानना अग्निं मुखेन वमन्ती। अङ्ग हे भीम । मामभिलक्ष्य सारमेयः श्वाऽभिरौति प्लुतं भषति । अभीरुवित्र शङ्कम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इन साढ़े तीन श्लोकों में महाराज युधिष्ठिर पृथिवी पर होने वाले उत्पातों को बतलाते हैं— स्यारिन का रोना अत्यन्त अमङ्गलमय होता है, उसमें भी सूर्योदय के समय में जिसके मुख से आग निकल रही हो ऐसी स्यारिन का सूर्य की ओर मुख करके रोना तो महाअमङ्गलमय होता है। किन्तु यह अग्नि को उगलती हुयी स्यारिन् सूर्य की ओर मुख करके रोती है यह कुत्ता भी मेरी ओर मुख करके निडर होकर रो रहा है। यह भी अमङ्गल का सूचक हैं। १२।।

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे । वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥१३॥

अन्वय:— शस्ताः मां सव्यं कुर्वन्ति अपरे पशवः दक्षिणम् हे पुरुषव्याघ्र मम वाहांश्च रुदतः लक्षये ।।१३।। अनुवाद— हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! गौ आदि पशु मुझको बायीं ओर करके जाते हैं और दूसरे बूरे पशु मुझे दाहिनी ओर करके जाते हैं । मैं देखता हूँ कि मेरे घोड़े आदि वाहन रो रहे हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शस्ता गवादयो मां सव्यं वामं कुर्वन्ति अपरे गर्दभाद्याः प्रदक्षिणं कुर्वन्ति । वाहानश्वान् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

ये गौ आदि मङ्गलमय पशु मुझको बायीं ओर करके जाते है और गधे इत्यादि बुरे पशु मुझको दाहिनी ओर करके जाते हैं, यह दोनों ही अपशकुन है बाहनों का रोना भी अमङ्गलमय ही माना जाता है ॥१३॥

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः । प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रो शून्यमिच्छतः ॥१४॥

अन्वयः अयम् कपोतः मृत्युदूतः मनः कम्पयन् उलूकः पत्युलूकश्च अनिद्रौ कुह्वानैः शून्यम् इच्छतः ।।१४।। अनुवाद यह कबूत्तर मृत्यु का दूत है । मन को कँपा देने वाला उल्लू और उसका विरोधी कौआ ये दोनों रात को नहीं सोकर कठोर वाणी को बोलते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अयं कपोतो मृत्युदूतो मृत्युसूचकः । उल्को घूकः । प्रत्युलूकस्तत्प्रतिपक्षो घूकः काको वा । कुह्वानै कुत्सितशब्दैर्विश्वं शून्यं कर्तुमिच्छतः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यह कबूतर तो मृत्यु की सूचना दे रहा है। उल्लू और उसके विरोधी कौआ ये दोनों ही रात्रि को नहीं सोते हैं। कठोर वाणी बोलते रहते हैं। इससे भी मेरा मन काँपता है, क्योंकि ये सबके सब अपशकुन हैं।।१४।। धूम्रा दिश: परिधय: कम्पते भू: सहाद्रिभि:। निर्धातश्च महानासीत्साकं च स्तनियलुभि:।।१५॥ अन्वय:— धूम्रा दिश: परिधय: अद्रिभि: सह भू: कम्पते। स्तनियलुभि: साकं महान् निर्धातश्च आसीत्।।१५।।

अनुवाद — वृत्रा दिश: परिवय: आह्राम: सह मू: फम्मत । सामावर्तुाम: साम महार गमावर्य आरोप् । पर्वतों अनुवाद — दिशायें धुंधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेडर बैठता है । पर्वतों के साथ पृथिवी काँपती है । बिना मेघ के ही बिजली गिरती है और जोर से गर्जना भी होती है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

धूम्रा धूसरा दिश: परिधयोऽग्निमिव लोकमावृण्वन्ति । दिव्यानाह सार्धाभ्याम् । निर्धातो निरम्रवज्रपात: । स्तनयित्नवोऽत्र गर्जितानि तै: सह ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के पूर्वाद्ध में भौम उत्पातों का वर्णन है तथा उत्तरार्द्ध में दिव्य उत्पातों का वर्णन है। दिशाओं का धूसर होना, पर्वतो तथा पृथिवी का काँपना ये सब पार्थिव उत्पात हैं। सूर्य चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेंडर का बैठना भी अमङ्गल है। आकाश में बिना मेघ के बिजली का चमकना और गर्जना भी अमङ्गल है। ये सभी हो रहे हैं। १५।।

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः । असृग्वर्धन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥

अन्वयः— रजसा तमः विसृजन् खर स्पर्शः वायुः वाति जलदा सर्वतः बीभत्सम् इव असृक् वर्षिन्ति ।।१६।। अनुवाद— धूलि से अन्धकार बनाने वाली रुक्ष वायु चल रही है और चारो ओर मेघ डरावना दृश्य उपस्थित करके रक्त की वर्षा करते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तमो विशेषेण सृजन् । असृग्रक्तम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

दिव्य उत्पातों का ही वर्णन करते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं कि धूल भरी आँधी चल रही है, इससे अन्धकार हो जाता है मेघ से रक्त की वर्षा होती है जो कि भयावह दृश्य है ॥१६॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि । ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥

अन्वयः हतप्रभं सूर्यं पश्य दिवि मिथः ग्रहमर्दं भवति, ससंकुलैः भूतगणैः रोदसी ज्वलिते इव ।।१७।।

अनुवाद— देखो सूर्य का प्रकाश मन्द हो गया है, आकाश में परस्पर में ग्रह एक दूसरे से टकरा जा रहे हैं। शङ्करजी के गण भूतों से भरी भीड़ में पृथिवी आकाश में जैसे आग लगी हो ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ग्रहाणां मर्दं युद्धम् । भूता रुद्रानुचरास्तेषां गणैः सङ्कुलैर्व्यामिश्रैः प्राणिभिः सहितैः । रोदसी द्यावापृथिव्यौ ज्वलिते प्रदीप्ते इव च पश्येति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

आकाश में ग्रहों का जैसे युद्ध हो रहा हो । सूर्य की ज्योति मन्द सी पड़ गयी है । भूतों से भरी भीड़ में पृथिवी और आकाश में जैसे आग लगी हो । ये सभी आकाश में होने वाले अमङ्गलमय अपशकुन हैं ॥१७॥

नद्योनदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च । न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विद्यास्यति ॥१८॥

अन्वयः नद्यः श्रुभिताः सरांसि मनांसि (च श्रुभितानि) अग्निः आज्येन न ज्वलति अयं कालः किं विधास्यति इति न जाने ।।१८।।

अनुवाद निर्दियाँ, नद, सरोवर और लोगों के मन क्षुक्य हो गये हैं । अग्नि घी से नहीं जल रही है । यह काल न जाने क्या करने वाला है ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्भौमानाह-नद्य इति सार्धैस्त्रिभि: । प्राणिनां मनांसि च ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

नद्य**ः इत्यादि** साढ़े तीन श्लोकों से फिर भौतिक उत्पातों का वर्णन करते हैं। नदियाँ, नदों, सरोवरों और मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया है। इस समय घी डालने पर अग्नि नहीं प्रज्वलित हो रही है। न जाने कौन सा अमङ्गल यह काल दिखलायेगा ?॥१८॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः । रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥

अन्वयः न वत्साः न पिबन्ति, मातरः च न दुद्दान्ति, गावः अश्रुमुखाः रुदन्ति, ऋषभाः व्रजे न हृष्यन्ति ।।१९।। अनुवाद बछड़े अपनी माताओं का दूध नहीं पीते हैं, गौएँ दूहने नहीं देती हैं । गौओं की आँखों से आँसू निकल रही है और गोशालाओं में बैल उदास रहते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

दुह्यन्तीति कर्मकर्तर्यार्षम् । न प्रस्नुवन्तीत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

दुह्यन्ति यह कर्मकर्ता में यह आर्ष प्रयोग । बछड़ों का दूध न पीना गौओं का दूहने नहीं देना, गौओं की आँखों से आँसू निकलना और बैलों का उदास रहना ये सबके-सब अमङ्गल के सूचक हैं ।।१९।।

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च । इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानन्दा किमधं दर्शयन्ति नः

अन्वयः— दैवतानि रुदन्ति इव स्विद्यन्ति हि उच्चलन्ति च, इमे जनपदाः ग्रामः पुरोद्यानाकराश्रमाः भ्रष्टश्रियः निरानन्दाः नः किम् अघं दर्शयन्ति ?।।२०।।

अनुवाद— ये देवमूर्तियाँ जैसे रो रही हैं, इनसे पसीना निकलता हैं तथा ये हिलने लग जाती हैं। ये देश, ग्राम, नगर, उद्यान, खदान और आश्रम श्रीहीन हो गये हैं और आनन्द रहित हो गये हैं। न जाने ये हमारे किस दु:ख की सूचना देती हैं।।२०।।

भावार्थ दीपिका

दैवतानि प्रतिमा: । अधं दु:खम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

दैवत शब्द देव मूर्तियों का बोधक है और अघ शब्द दु:ख का बोधक है । मूर्तियों का रोना, उनसे पसीना निकलना इत्यादि जो कुछ भी इस श्लोक में वर्णित है वह सबके सब भावी दु:ख के सूचक हैं ॥२०॥

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नुनं भगवतः पदैः । अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥२१॥

अन्वयः एतैः महोत्पातैः मन्ये नृनं हतसौधगा भृः अनन्यपुरुषश्रीभिः धगवतः पदैः हीना ।।२१।।

अनुवाद इन महा उत्पातों को देखकर मुझे तो लगता है कि जिसका सौभाग्य विनष्ट हो गया है ऐसी यह पृथिवी निश्चित रूप से दूसरे के चरणों में नहीं पाये जाने वाले वज्र, अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से रिहत हो गयी है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एतैर्महोत्पातैः कृत्वा । न विद्यतेऽन्येषु पुरुषेषु श्रीर्वज्ञाङ्कुशादिशोभा येषां तैर्भगवतः पदैर्हीना भूरित्यहं मन्ये ।।२१।। भाव प्रकाशिका

अनन्य पुरुषश्रीभि: का विग्रह है, न विद्यते अन्येषु पुरुषेषु श्री: वज्राङ्कुशादिशोभा येषां तै: अर्थात् दूसरे पुरुषों के चरणों में नहीं पाये जाने वाली व्रज अङ्कुश आदि की शोभा से युक्त । श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से यह हतभाग्य भूमि रहित हो गयी है ॥२१॥

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा । राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ! दृष्टारिष्टेन चेतसा तस्य राज्ञः इति चिन्तयतः यदुपुर्याः किपध्वजः प्रत्यागात् ।।२२।।

अनुवाद है शौनकजी ! अपशकुनों के देखने के कारण इस तरह से जब राजा युधिष्ठिर चिन्तन कर ही रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य राज्ञ इत्येवं दृष्टान्यरिष्टानि येन तेन चेतसा चिन्तयतः सतः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अपशकुनों को देखने के कारण राजा उपर्युक्त प्रकार से जब चिन्ता ही कर रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम्। अद्योवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयो: ॥२३॥ विलोक्योद्विग्रहृदयो विच्छायमनुजं नृप: । पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥२४॥

अन्वयः— पादयोः निपतितम् अयथापूर्वं आतुरम् अधोवदनम्, नयनाब्जयोः अब्बिन्दून मुञ्चतम्, विच्छायम्, अनुजम् विलोक्य नृपः नारदेरितम् संस्मरन् सुहृन्मध्ये पृच्छति स्म ।।२३-२४।।

अनुवाद— आते ही अर्जुन युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े । वे उस समय इतना आतुर थे कि जितना वे कभी भी पहले अतुर नहीं हुए थे, वे नीचे मुँह किए हुए थे तथा उनके कमलवत् नेत्रों से आँसू बह रहा था। उनका हृदय उद्विग्न था, वे शोभा विहीन लगते थे । इस प्रकार के अपने छोटे भाई अर्जुन को देखकर राजा युधिष्ठिर को नारदजी की कही हुयी बातें याद आ गयीं । उन सबों को स्मरण करते हुए वे अपने सुहृदों के बीच में ही अर्जुन से पूछे ।।२३-२४।।

भावार्थ दीपिका

अयथापूर्वं निपतितम् । तदेवाह- आतुरमित्यादि । अपां बिन्दनश्रूणि नेत्राध्यां विसृजन्तमित्यर्थः । उद्विग्नं कम्पितं हृदयं यस्य सः । विच्छायं विगतकान्तिम् ।।२३-२४।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन आकर राजा युधिष्ठिर के चरणों पर उस तरह से गिर पड़े जिस तरह वे पहले कभी नहीं उनके चरणों पर गिरे थे। अर्जुन की आतुरता भी अभूतपूर्व थी। उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। उनका हृद्य काँप रहा था तथा उनकी कान्ति भी समाप्त हो गयी थी।।२३-२४।।

युधिष्ठिर उवाच

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते । मर्धुभोजदशार्हार्हाः सात्वतान्धकवृष्णयः ॥२५॥

अन्वयः क्विचत् आनर्तुपुर्यां नः स्वजनाः मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्त्वत, अन्धक तथा वृष्णय सुखमासते ?।।२५।। अनुवाद द्वारका पुरी में हमारे बान्धव, मधु भोज, दर्शाह, अर्ह सात्त्वत अन्धक तथा वृष्णिवंशी सुख पूर्वक हैं न ?।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स्वजना बान्धवाः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्लोक का स्वजन शब्द बान्धवों का बोधक है। युधिष्ठिर ने बतलाया कि द्वारकापुरी में रहने वाले, मधुवंशी, भोजवंशी, दशार्हवंशी, अर्हवंशी, सात्त्वतवंशी, अन्धकवंशी तथा वृष्णिवंशी हमारे बान्धव हैं। वे सब कुशल पूर्वक हैं न ॥२५॥

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्त वाथ मारिषः । मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥२६॥

अन्वयः— मारिषः मातामहः शूरः किच्चत् स्वस्ति आस्ते ? किच्चत् सानुजः मातुलः आनकदुन्दुभिः कुशली आस्ते ?।।२६।।

अनुवाद— समादरणीय हमारे नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं न ? हमारे मामा वसुदेवजी अपने अनुज के साथ कुशल पूर्वक हैं न ? ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कि वक्ष्यतीति शङ्कया व्यवहितक्रमेण पृच्छति- शूर इत्यादिना । मारिषो मान्यो मातामहः शूरो नाम यादवः कुन्त्याः पिता । आनकदुन्दुमिर्वसुदेवः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन न जाने क्या उत्तर देंगे इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर बिना किसी क्रम के ही उनसे **शूरइत्यादि** श्लोक से पूछ रहे हैं । समादरणीय शूरसेन जो यदुवंशी हैं वे कुन्ती के पिता हैं और युधिष्ठिर के नाना हैं । वसुदेवजी का एक नाम आनकदुन्दुभि है । वे युधिष्ठिर के मामा है उन दोनों के कुशल के विषय में युधिष्ठिर ने पूछा ॥२६॥

सप्त स्वसारस्तत्पलयो मातुलान्यः सहात्मजाः । आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥

अन्वयः देवकीप्रमुखाः सप्तस्वसारः तत्पत्न्यः, मातुलान्यः सहात्मजाः सस्नुषाः स्वयं क्षमं आसते :।।२७।। अनुवाद देवकी आदि सात बहनें जो उनकी पितनयाँ हैं और हमारी मातुलानियाँ हैं वे अपने पुत्रों तथा बहुओं के साथ कुशल पूर्वक हैं न?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

स्वसार: परस्परम् । वसुदेवक्षेमेण तासामपि क्षेमं पृष्टमेव, तथापि पृथक् पृच्छति–स्वयमिति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आपस में बहन लगने वाली देवकी इत्यादि जो उनकी सात पत्नियाँ हैं, वे सब भी सुखपूवक हैं न ? यद्यपि वसुदेवजी के कल्याण पूछने से ही उन सबों का कल्याण पूछ लिया गया फिर भी अलग से युधिष्ठिर ने उन सबों का कल्याण पूछा यह स्वयम् इस पद से पता चलता हैं ॥२७॥

कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः । हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥२८॥

अन्वयः असत्पुत्रः अहुकः अस्य अनुजः । च जीवित किन्वित् हृदीकः ससुतः अक्रूरः जयन्तगदसारणाः ।।२८।। अनुवाद असत् पुत्र वाले आहुक (उग्रसेन) उनके छोटे भाई हृदीक, जयन्त, गद तथा सारण और अपने पुत्रों के साथ अक्रूरजी जीवित हैं न ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका

आहुक उग्रसेनः । असन् पुत्रो यस्य । अतएव जीवमात्रमेव पृष्टम् । अनुजश्च देवकः । हृदीकः सुतः कृतवर्मा । जयन्तादयः कृष्णभ्रातरः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जिनका पुत्र कंस दुष्ट था वे आहुक (उग्रसेन) जीवित हैं न ? उग्रसेन के जीवन के ही विषय में पूछा गया है। उनके छोटे भाई देवक कृतवर्मा, ये सभी तथा कृष्ण के भाई जयन्त गद और सारण कुशल से हैं न ?॥२८॥ आसते कुशलं किच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः। किच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः॥२९॥

अन्वयः — ये किच्चत् शत्रुजिदादयः कुशलं आसते ? किच्चत् सात्त्वतां प्रभुः रामः सुखं आस्ते ।

अनुवाद— जो शत्रुजित् इत्यादि हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? सात्त्वत् वंशियों के स्वामी बलरामजी सुख पूर्वक हैं न ?॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

भाव प्रकाशिका— यहाँ पर बलरामजी को ही राम कहा गया है ॥२९॥

प्रद्युमः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः । गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥

अन्वयः - वृष्णीनां महारथः प्रद्युम्नः सुखम् आस्ते ? उत गम्भीररयः भगवान अनिरुद्धः वर्धते ।।३०।।

अनुवाद— वृष्णिवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी सुख पूर्वक तो हैं ? अथवा युद्ध करने में महावेग सम्पन्न भगवान् अनिरुद्ध सम्पन्न हैं न ?॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सर्ववृष्णीनां मध्ये महारथ: । गम्भीररयो युद्धे महावेग: वर्धते मोदत इत्यर्थ: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

सभी यदुवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी है, और युद्ध करने में अत्यधिक वेग सम्पन्न अनिरुद्ध जी हैं । ये लोग तो कुशल से हैं न ॥३०॥

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः । अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥

अन्वयः— सुषेणः चारुदेष्णः जाम्बवती सुतः साम्बः अन्ये कार्ष्णिप्रवराः ऋषभादयः स पुत्राः कुशलाः सन्ति न ?।।३१।। अनुवाद सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब तथा दूसरे भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णस्यापत्यानि कार्ष्णयस्तेषु प्रवरा: ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

कृष्णस्य अपत्यानि तेषां प्रवराः यह कार्ष्णिप्रवराः पद का विग्रह है । इसका अर्थ है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों में श्रेष्ठ ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ?॥३१॥

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः। सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः॥३२॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः। अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः॥३३॥

अन्वयः तथैव शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः अनुचरा ये च सुनन्दनन्दशीर्षण्याः अन्ये सात्वतर्षभाः रामकृष्णभुजाश्रयाः अपि स्वस्ति आसते । बद्धसौहदाः अस्माकं कुशलं अपि स्मरन्ति ।।३२-३३।।

अनुवाद तथा भगवान् श्रीकृष्ण के श्रुतदेव उद्धव इत्यादि जो अनुचर हैं, जिनमें सुनन्द और नन्द प्रमुख हैं ऐसे यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष हैं जो भगवान् राम कृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? क्या सुदृढ सौहार्द सम्पन्न वे हमलोगों की कुशलता का स्मरण भी करते हैं ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

सुनन्दनन्दौ शीर्षण्यौ मुख्यौुयेषां ते ।।३२-३३।।

भाव प्रकाशिका

इन दोनों श्लोकों में राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के अनुचरों तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले यदुवंशियों के विषय में अर्जुन से पूछा है। उन्होंने यह भी पूछा है कि क्या वे लोग हमलोगों का भी कभी स्मरण करते हैं ?॥३२-३३॥

भगवानिप गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः । कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥

अन्वयः - ब्रह्मण्यः भक्तवत्सलः भगवान् गोविन्दः अपि पुरे सुधर्मायां सुहृद्वृतः किच्चत सुखम् आस्ते ।।३४।। अनुवाद - ब्राह्मणभक्त भक्तवत्सल भगवान् गोविन्द भी अपनी नगरी द्वारका की सुधर्मा सभा में अपने सुहृदों के साथ सुखपूर्वक हैं क्या ?॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भगवति सुखमास्त इति प्रश्नस्यानौचित्यमाशङ्क्याह- पुर इत्यादि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के विषय में वे सुख पूर्वक हैं न ? इस तरह से किए जाने वाले प्रश्न को अनुचित समझकर राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि अपनी नगरी की सुधर्मा सभा में वे सुखपूर्वक हैं न ?॥३४॥

मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च। आस्ते युदुकुलाम्भोद्यावाद्योऽनन्तसखः पुमान्॥३५॥ यद्वाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः। क्रीडन्ति परमानन्द महापौरुषिका इव ॥३६॥

अन्वयः— लोकानाम् मङ्गलय क्षेमायच भवायच अनन्तसखः आद्यः पुमान् यदुकुलाम्मोधौ आस्ते । यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपूर्याम् महापौरुषिका इव अर्चिताः यादवाः परमानन्दं कीडन्ति ।।३५–३६।। अनुवाद सम्पूर्ण जगत् का मङ्गल करने के लिए, पालन करने के लिए, तथा उद्भव करने के लिए बलरामजी के साथ आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंश रूपी क्षीरार्णव में निवास कर रहे हैं न । उनके ही बाहुबल से संरक्षित द्वारकापुरी में सबों से पूजित यदुवंशी, महापुरुष भगवान् विष्णु के पार्षदों के समान परमानन्द को प्राप्त करके क्रीडा करते हैं ।।३५-३६।।

भावार्थ दीपिका

भगवतोऽत्रावस्थाने हि लोकानां मङ्गलं नान्यथेत्याशयेनाह चतुर्भिः । मङ्गलाय शुभाय । क्षेमाय लब्धपालनाय । भवायोद्भवाय । अनन्तसखो बलभद्रसहायः । अर्चिताः सर्वैः पूजिताः । परमानन्दं यथा भवति तथा । महापुरुषो विष्णुस्तदीया महापौरुषिका वैकुण्ठनाथानुचरा इव ।।३५-३६।।

भाव प्रकाशिका

जब तक भगवान् इस लोक में हैं तब तक ही जगत् का मङ्गल हो रहा है, अन्यथा नहीं हो सकता है, इसी अभिप्राय से वे चार श्लोकों को कहते है । मङ्गलाय का अर्थ मङ्गल के लिए है । लब्ध वस्तु का पालन करने के क्षेम कहते है । उद्भव (उत्पत्ति) को ही भव कहते हैं । अनन्त सखः का अर्थ है बलभद्रजी के साथ । अर्चिताः का अर्थ है सबों से पूजित । परमानन्द का अर्थ है महानन्द सम्पन्न । महापुरुष भगवान् विष्णु हैं उनके पार्षदों को महापौरुषिक कहते हैं । शेष अर्थ अनुवाद के ही समान है ॥३५-३६॥

यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः । निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥

अन्वयः— यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयः द्वयष्टसहस्रयोषितः संख्ये त्रिदशान् निर्जित्य वज्रायुधवल्लभोचिताः तदाशिषः हरन्ति ।।३७।।

अनुवाद उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा रूपी मुख्य कर्म के द्वारा ही सत्यभामा इत्यादि सोलह हजार श्रीभगवान् की पित्नयाँ युद्ध में इन्द्रादि देवताओं को परास्त करके इन्द्रकी पत्नी शची के ही उपभोग के योग्य तथा उनके अभीष्ट देवभोग योग्य पारिजात आदि का उपभोग करती हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

यस्य पादशुश्रूषणमेव मुख्यं तपआदिभ्यः श्रेष्ठं यत्कर्म तेन । सत्यभामादयः संख्ये युद्धे श्रीकृष्णबलेन त्रिदशान्देवात्रिर्जित्य। तदाशिषो देवभोग्यान्पारिजातादीन् । वज्रायुधस्य बल्लभा शची तस्य उचिताः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों की सेवा तपस्या आदि कर्मों से श्रेष्ठ है। उसी के द्वारा सत्यभामा आदि रानियाँ, युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा देवताओं को परास्त करके देवताओं के ही द्वारा उपयोग किए जाने योग्य पारिजात इत्यादि जो इद्राणी के उपयोग के योग्य हैं, उनका उपभोग करती हैं ॥३७॥

यद्वाहुदण्डाभ्युदयानुजीविना यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहूः । अधिक्रमन्त्यिङ्ग्रभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥

अन्वयः— यद्वाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनः अकुतोभया हि यदुप्रवीराः, बलात् आहृताम् सुरसत्तमोचिताम् सुघर्मां अंग्निभिःमुहुः अधिक्रामन्ति ।।३८।।

अनुवाद जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर बलपूर्वक जीतकर लयी गयी श्रेष्ठ देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा में अपने पैरों को रख कर चलते हैं ॥३८॥

यद्वाहुदण्डप्रभावोपजीविनः सुधर्मामङ्घ्रिभरधिक्रामन्ति स गोविन्दः सुखमास्ते इति गतपञ्चमश्लोकेनान्वयः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा को अपने पैरों से आक्रान्त करते हैं वे भगवान् गोविन्द सुख पूर्वक हैं न । इस तरह इसका सम्बन्ध पीछे के पाञ्चवें श्लोक से है ॥३८॥

किच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे । अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥३९॥

अन्वयः — तात किन्वत् ते अनामयम् मे भ्रष्टतेजा विभासि । तात चिरोषितः अलब्धमानः किं वा अवज्ञातः ।।३९।। अनुवाद — हे भाई यह बतलाओ तुम स्वयम् कुशल पूर्वक हो न मुझे तो तुम तेजोहीन से प्रतीत हो रहे हो । वहाँ बहुत दिन तक रहने के कारण तुम्हारा कोई सम्मान नहीं किया क्या ? अथवा किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?।।३९।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यैव कुशलं पृच्छिति । किच्चिदिति षिड्भिः । अनामयमारोग्यम् । न लब्धो येन बन्धुभ्यः सकाशात् । किंवा तैः प्रत्युतावज्ञातस्तिरस्कृतः । यतिश्चरोषितो बहुकालं तत्र स्थितः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस समय राजा युधिष्ठिर अर्जुन का ही कुशल **किन्चित्० इत्यादि** छह श्लोकों से पूछ रहे हैं । अनामय आरोग्य को कहते हैं । अलब्धमानः का विग्रह है । न लब्धो मानो येन बन्धुभ्यः सकाशात् । अर्थात् जिसका बान्धवों ने सम्मान नहीं किया है । अवज्ञात अर्थात् तिरस्कृत अर्थात् द्वारका में बहुत दिनों तक रहने के कारण किसी ने तुम्हारा सम्मान नहीं किया है क्या ? या किसी ने तुम्हारा तिरस्कार किया है ?।।३९।।

किच्चन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः । न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥४०॥

अन्वयः किन्त्वत् अभावै: अमङ्गलै शब्दादिभि: अभिहतः, अर्थिभ्यः आशया यत् प्रतिश्रुतम् उक्तम् न दतम्।।४०।। अनुवाद किसी ने प्रेम शून्य अमङ्गल मय शब्दों आदि के द्वारा तुमको दुःखी बनाया है क्या, अथवा किसी याचक से याचना करने पर देने की प्रतिज्ञा करके उसको वह वस्तु नहीं दे सके हो ?।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अभावैरिति छेदः । प्रेमशून्यैः । अमङ्गलैः परुषैः शब्दादिभिर्नाभिहतो न ताडितोऽसि किम् । यद्वा अर्थिभ्यः किमपि दास्यामीति नोक्तं किम् । यद्वा आशया सह यथा आशा भवति तथा दास्यामीति प्रतिश्रुतं यत्तत्र दत्तं किम् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

हतो भावै: में अभावै: यह पदच्छेद करना चाहिए । अभावै: का अर्थ है प्रेम शून्य । अमङ्गल अर्थात् कठोर शब्दों के द्वारा तुम दु:खी तो नहीं बनाये गये हो न ? अथवा याचकों को तुमने कहा है कि नहीं दूँगा । अथवा मैं दूगा इस तरह से प्रतिज्ञा करके पुन: आशा युक्त होने पर उसे नहीं दे पाये क्या ?।।४०।।

किच्चत्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् । शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥४१॥

अन्वयः शरणप्रदः त्वं किच्वत् ब्राह्मणं, बालं, गाम्, वृद्धम् रोगिणम् स्त्रियं शरणोपसृतं सत्त्वं न अत्याक्षीः ।।४१।। अनुवाद तुम शरणागत रक्षक हो किन्तु तुमने किसी शरणागत ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री अथवा किसी दूसरे प्राणी का परित्याग तो नहीं कर दिए हो ?।।४१।।

अन्यद्वा शरणागतं सत्त्वं प्राणिमात्रं न त्यक्तवानसि किम् । यतस्त्वं पूर्वं शरणप्रद आश्रयप्रदः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि पहले तो तुम शरणागत रक्षक थे, किन्तु किसी शरणागत प्राणी का तुमने परित्याग कर दिया है क्या ? जिसके कारण निस्तेज प्रतीत होते हो ?॥४१॥

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् । पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमै: पथि॥४२॥

अन्वयः— किन्नत्वं अगम्यां न अगमः ? गम्यां वा स्त्रियं असत्कृतां अगमः । अथवा पथिर्वात्वम् नोत्तमैः असमै वा पराजितः ।।४२।।

अनुवाद तुमने किसी अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम तो नहीं किया है ? अथवा किसी गम्या स्त्री से असत्कार पूर्वक गमन किया है या रास्ते में तुम किसी अपने बराबरी वाले से अथवा अपने से हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हुए हो ?॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अगम्यामिति छेदः । निन्दितां स्त्रियं नागमः किं न गतवानिस । असत्कृतां मिलनवस्त्रादिना नागमः किम् । नोत्तमैरनुत्तमैः समैरित्यर्थः । असमैरधमैर्वा किं न पराजितोऽऽसीत्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

नागमोगम्याम् में अगम्याम् इस तरह पदच्छेद करना चाहिए । धर्मशास्त्र के अनुसार अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना तथा गम्या स्त्री के साथ सङ्गम न करना या अनादर पूर्वक उसके साथ सङ्गम करना भी पाप है । युधिष्ठिर पूछ रहे हैं कि तुमने ऐसा तो नहीं किया है जिसके कारण भ्रष्ट तेज के समान प्रतीत हो रहे हो । या मार्ग में तुम किसी अपने समान बल वाले, अथवा हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हो गये हो ।

मूल के **असत्कृताम्** का अर्थ यह है कि अनादर पूर्वक अथवा मिलन वस्त्र धारण करके गम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना भी अनादर पूर्वक गमन है।

नोत्तमैः पद का विग्रह है न उत्तमैः अनुत्तमैः समैरित्यर्थः ।

अपने समान बलवाले अथवा हीन बल वाले से पराजय भी तेजो राहित्य का कारण हो सकता है। ऐसा तो तुम्हारे साथ नहीं हुआ है न ?॥४२॥

अपिस्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् । जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥४३॥

अन्वयः अपिस्वित् त्वम् सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् भुंक्थाः अथवा जुगुप्सितम् किश्चित कर्म यदक्षमम् न कृतवान् ।।४३।। अनुवाद अथवा तुम वृद्धों तथा बालकों को भोजन कराये ही बिना भोजन तो नहीं कर लिए हो अथवा कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं किए हो ?।।४३।।

भावार्थ दीपिका

संभोजनार्हान्वृद्धान्बालकांश्च किंस्वित्पर्यभुङ्क्थाः त्यक्त्वा भुक्तवानिस किम् । अक्षमं कर्तुमयोग्यं यत्तन्न कृतवानिस किम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

धर्मशास्त्र के अनुसार वृद्धों और बालकों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए । कहीं ऐसा

तो नहीं हुआ है कि तुम वृद्धों और बालकों को भोजन कराये बिना ही भोजन कर लिए हो । अथवा तुमने कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं कर लिया है, जिसके कारण इस तरह से तेजोभ्रष्ट हो गये हो ॥४३॥ किन्वित्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना । शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरवितकों नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः किन्वत् अथ प्रेष्ठतमेन, हृदयेन आत्माबन्धुना रहितः सन् शून्यः अस्मि इति नित्यं मन्यसे अन्यथा ते रुक् न ?।।४४।।

अनुवाद अथवा अपने प्रियतम, अभित्र हृदय श्रीकृष्ण से मैं सदा के लिए रहित हो गया हूँ इस तरह से अपने को शून्य मान रहे हो, अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ॥४४॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्य के युधिष्ठिरवितर्क नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

नित्यं सदा प्रेष्ठतमेन हृदयेनान्तरङ्गेण स्वबन्धुना श्रीकृष्णेन रहितः शून्योऽस्मीति मन्यसे । अन्यथा ते रुक् मनः पीडा न घटेत ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमे स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।। भाव प्रकाशिका

या मैं अपने प्रियतम तथा अन्तरङ्ग मित्र श्रीकृष्ण से रहित होने के कारण अब शून्य हो गया हूँ इस तरह से मानकर इतना उदास हो गया हो । अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्य के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नाम टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१४।।



पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण विरह व्याकुल पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देकर स्वर्गारोहरण करना सूत उवाच

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः । नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥

अन्वयः एवं कृष्णसखः कृष्णविश्लेष कर्षितः कृष्णः भ्रात्रा राज्ञा नानाशङ्कास्पदं रूपम् आविकल्पितः ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र तथा भगवान् श्रीकृष्ण के विश्लेषजन्य विरह व्यथा से दु:खी अर्जुन से उनके भाई राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं से ग्रस्त होने के कारण अनेक प्रश्नों को पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

कलिप्रवेशमालक्ष्य धुरं न्यस्य परीक्षिति । आरुरोह नृप: स्वर्गमिति पञ्चदशेऽब्रवीत् । कृष्णोऽर्जुन: आविकल्पित इति छेद: । नानाशङ्कास्पदं रूपमालक्ष्य विकल्पित इत्यर्थ: । प्रतिभाषितुं नाशक्रोदित्युत्तरेणान्वय: । तत्र हेतव:- कृष्णाविश्लेषेण कर्शित: कृश: कृत: ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी पर किल के प्रवेश को देखकर राजा युधिष्ठिर परीक्षित् को राज्य का भार सौंपं कर स्वर्गारोहरण कर गये, इस अर्थ का प्रतिपादन इस पन्द्रहवें अध्याय में किया गया है।

श्लोकस्थ दूसरा कृष्ण शब्द अर्जुन का बोधक है। **राज्ञाऽऽविकल्पितः** में **आविकल्पितः** पदच्छेद है। राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं के योग्य अर्जुन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह की व्यथा से व्याकुल तथा भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र अर्जुन से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछा; किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के विरह के कारण कमजोर हो गये अर्जुन उसका उत्तर नहीं दे सकें ॥१॥

शोकेन शुष्यद्वदनहत्सरोजो हतप्रभः । विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥२॥

अन्वयः - शोकेन शुष्यत् हृतसरोजः हतप्रभः तमेव विभुं अनुध्यायन् प्रतिभाषितुम् न अशक्रोत् ।।२।।

अनुवाद— शोक के कारण जिनका हृदय कमल और मुख सुख गया था, अतएव कान्ति विहीन अर्जुन, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

शोकेन हेतुना । वदनं च हृच्च ते एव सरोजे । शुष्यती वदनहृत्सरोजे यस्य सः । हता प्रभा तेजो यस्य सः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

शोक के कारण जिनके हृदय कमल तथा मुखकमल दोनों सूख गये थे, ऐसे अर्जुन निष्प्रभ हो गये थे। वे राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दे पाये।

वदनहृत्सरोजः का विग्रह है वदनं च हृच्च त एव सरोजे शुष्यती वदनहृत् सरोजे यस्य सः शुष्यत् वदनहृत्सरोजः हतप्रभः का विग्रह है हता प्रभा यस्य सः ।।२।।

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनामृज्य नेत्रयोः। परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥३॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन्। नृपमग्रजमित्याह बाष्यगद्गदया गिरा ॥४॥

अन्वयः— कृछ्रेण शुचः संस्तभ्य पाणिना नेत्रयोः परामृज्य, परोक्षेण, विरहोत्कण्ठ्यकरतरः सन् सारथ्यादिषु सख्यं मैत्रीम् सौहृदम् च संस्मरन् वाष्पगद्गदया गिरा अग्रजम् नृपम् इत्याह ।।३-४।।

अनुवाद— बड़ी ही कठिनाई से अपने शोक को रोककर तथा हाथ से दोनों नेत्रों को पोंछकर । भगवान् श्रीकृष्ण के नहीं दिखायी पड़ने के कारण प्रेमजन्य उत्कण्ठा के बढ़ जाने के कारण कातर बने हुए अर्जुन सारिथ आदि कर्मों में श्रीभगवान् की हितैषी की भावना, मित्रता तथा संबन्धित्व का स्मरण करते हुए अपने बड़े भाई तथा राजा युधिष्ठिर से रूँधे हुए गले से कहे ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि यान्युद्रच्छन्ति तानि नेत्रयोरेव संस्तभ्य गलितानि च पाणिना आमृज्य परोक्षेण दर्शनागोचरेण श्रीकृष्णेन हेतुना समुत्रद्धमधिकं यत्प्रेमौत्कण्ठ्यं तेन कातरो व्याकुलः सत्रृपमित्याहेत्युत्तरेणान्वयः । सख्यं हितैषिताम् । मैत्रीमुपकारिताम्। सौहदं सुहत्त्वं चात् संबन्धितां च । वाष्पेण कण्ठावरोधाद्गद्भदया ।।३-४।।

भाव प्रकाशिका

शोकजन्य जो आँसू आँख से निकल रहे थे उन सबों को उन्होंने बड़ी ही कठिनाई से रोका और निकले हुए आँसुओं को उन्होंने हाथ से पोंछा इसके बाद दर्शन के अविषय बने हुए भगवान् श्रीकृष्णके विषय में अत्यधिक प्रेमजन्य उत्कण्ठा थी उसके कारण व्याकुल बने हुए अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार से कहा । इसका अन्वय अगले चौथे श्लोक से हैं ॥३॥

भगवान् की हितैषिता, उपकार करने की भावना, सुहृदता और संबन्धिता इत्यादि का स्मरण करने के कारण उनका कण्ठावरोध हो गया था उन्होंने अपनी घर्घर वाणी से कहा ॥४॥

अर्जुन उवाच

विश्वितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा । येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥

अन्वयः - येन देवविस्मापनं महत् तेजः अपहतं तेन बन्धुरूपीणा हरिणा अहं विश्वतः ।।५।।

अर्जुन ने कहा

अनुवाद जिन्होंने देवताओं को भी आश्चर्यित कर देने वाले मेरे महान् तेज को छिन लिया उन बन्धुरूपधारी श्रीहरि ने मुझको ठग लिया है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

येन मां वञ्चयता । देवान्विस्मापयति यत् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने बतलाया कि मेरा ऐसा महान् तेज था कि उसको देखकर देवता भी आश्चर्यित हो जाते थे । किन्तु मेरे साथ वञ्चना करके श्रीहरि ने उसको मुझसे छिन लिया ॥५॥

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः । उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥

अन्वयः -- यथा उक्थेन रहितः एषः मृतकः प्रोच्यते तथा यस्य क्षणिवयोगेन लोकः हि अप्रियदर्शनः ।।६।।

अनुवाद जिस तरह प्राण के शरीर से निकलते ही शरीर उसी क्षण मृत कहलाने लगता है उसी तरह श्रीकृष्ण का वियोग हो जाने के कारण मुझे यह सारा जगत् अप्रिय लगने लगा है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यस्य क्षणिवयोगेनेत्यादि यच्छब्दानां तेनाहमद्य मुषित इति सप्तमश्लोकस्थेन तच्छब्देन सम्बन्धः । प्रियस्याप्यप्रियत्वे दृष्टान्तः उक्थेन प्राणेन । एष पित्रादिः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यस्य क्षणिवयोगेन इत्यादि श्लोक के यत् पद का अग्रिम सातवें अर्थात् तेरहवें श्लोक के तेन मुषित: इत्यादि के तत् शब्द से सम्बन्ध हैं। प्रिय वस्तु के अप्रिय होने का दृष्टान्त है कि जैसे पिता इत्यादि का प्रिय शरीर भी प्राण रहित होते ही अप्रिय लगने लगता है ॥६॥

यत्संश्रयाद्दुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् । तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः सञ्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥

अन्वयः— यत् संश्रयात् स्वयम्वरमुखे द्रुपदगेहमुपागतानां स्मरदुर्मदानाम् राज्ञाम् सज्जीकृतेन धनुषा मया तेजः हतम् खलु सज्जीकृतेन धनुषा मत्स्यः अभिहतः कृष्णा च अधिगता ॥७॥

अनुवाद उन श्रीभगवान् का ही आश्रय प्राप्त करने के कारण द्रौपदी स्वयम्बर के समय राजा द्रुपद के यहाँ आये हुए कामोन्मत्त राजाओं के तेज का मैंने हरण कर लिया और धनुष पर बाण को चढ़ाकर मत्स्यवेध किया तथा द्रौपदी को प्राप्त किया ॥७॥

श्रीकृष्णोपकाराननुस्मरति-यत्संश्रयादिति दशिभः । यस्य संश्रयाद्वलात् स्मरेण कामेन दुर्मदानामितमत्तानां तेजः प्रभावो हृतं धनुर्ग्रहणेनैव । पश्चात्तद्धनुः सज्जीकृतं च । तेन च मत्स्यो यत्रोपिर भ्रमन्विद्धः । ततस्तान्विजित्य द्रौपदी प्राप्ता च ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अब अर्जुन दश श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करते हैं। जिन भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय के बल से काम से अत्यन्त मत्त बने हुए राजाओं के तेज का मैंने अपहरण धनुष धारण करके ही कर लिया और उसके द्वारा यन्त्र के ऊपर घूमते हुए मत्स्य का वेध किया उसके पश्चात् सभी राजाओं को जितकर मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया ।।७।।

यत्सन्निधावहमु खाण्डवमग्रयेऽदामिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य । लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरत्रृपतयो बलिमध्वरे ते ॥८॥

अन्वयः— यत् सन्निधौ अहम् सामरगणं इन्द्रं तरसा विजित्य खण्डवम् अग्नये अदाम्, मयकृता अद्भुत शिल्पमाया सभा लब्धा ते अध्वरे नृपतयः दिग्भ्यः बलिम् अहरन् ।।८।।

अनुवाद जिन श्रीकृष्ण भगवान् के सिन्नधान मात्र से मैंने देवगणों के साथ इन्द्र को बलपूर्वक परास्त करके खाण्डव को अग्नि देव को उनकी तृप्ति के लिए प्रदान कर दिया तथा मय नामक दैत्य के द्वारा अन्द्रुत माया से निर्मित सभा को प्राप्त किया । जिसके कारण विभिन्न दिशाओं से आपके यज्ञ में आये हुए राजाओं ने आपको उपहार प्रदान किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

उ इति विस्मये । खाण्डवमिन्द्रस्य वनमग्नयेऽदां दत्तवानस्मि । खाण्डवदाहे रक्षितेन मयेन कृता च सभा लब्धा अद्भुतशिल्परूपा माया यस्यां सा । ते अध्वरे यागे राजसूये ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अहम् उ का उ शब्द विस्मय के अर्थ में प्रयुक्त है। अर्जुन ने कहा कि भगवान् के सिन्नकर्ष मात्र से मैंने इन्द्र के खाण्डव नामक वन को इन्द्र से जीतकर उसे अग्नि को मैने प्रदान कर दिया। खाण्डवदाह के समय मैंने मय नामक दानव की रक्षा कर ली, उससे प्रसन्न होकर उसने मुझे ऐसी सभा प्रदान की जिसमें अद्भुत शिल्परूपी माया थी। और उनकी ही कृपा के कारण विविध दिशाओं से आकर राजाओं ने आपको राजसूय यज्ञ में उपहार प्रदान किया।।८।।

यत्तेजसा नृपशिरोङ्घ्रमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः । तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥९॥

अन्वयः— यत् तेजसा गजायुत सत्त्ववीर्यः आर्यः अनुजः मखार्थे नृपशिरोङ्घ्रम् अहन् । तेन प्रमथनाथमखाय आहृताः भूयः यत् मोचितः तत् ते अध्वरे बिलम् अनयन् ।।९।।

अनुवाद — उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से मेरे बड़े भाई और आपके अनुज जो दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न हैं वे भीम, राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को मार सके। उस जरासन्ध के द्वारा महाभैरव के यज्ञ में बिल प्रदान करने के लिए बन्दी बनाकर लाये गये जिन राजाओं को भगवान् ने मुक्त किया वे ही राजा आपके राजसूय यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए।।९।।

अनन्तरश्लोको विगीतस्तथापि व्याख्यायते । नृपशिर:अङ्घ्रियंस्य तं जरासन्धं तवानुजो भीमो मखार्थमहन् हतवान्। तन्निर्जयं विना राजसूय मखानुपपत्तेः । गजायुतस्येव सत्त्वमुत्साहशक्तिवीयं बलं च यस्य सः । तं हत्वा प्रमथनाथो महाभैरवस्तस्य मखाय ये राजानस्तेनाहृतास्ते च यद्यस्मान्मोचितास्तत्तस्मात्तेऽध्वरे बलिमानीतवन्तः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के विषय में विवाद है। कुछ लोग इसको भागवत का मानते हैं और कुछ लोग इसको भागवत का नहीं मानते हैं फिर भी मैं इसकी व्याख्या करता हूँ।

नृपशिरस्स्वाङ्ग्धः इत्यादि राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को राजसूय यज्ञ करने के लिए आपके भाई भीम ने जिसका वध किया था, क्योंकि उसको परास्त किए बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था। उन भीम की दश हजार हाथियों के समान उत्साह शक्ति थी और बल था। जरासन्ध को मारने के बाद महाभैरव के यज्ञ में बिल देने के लिए जिन राजाओं को वह बन्दी बनाकर लाया था उन राजाओं को श्रीभगवान् ने मुक्त कर दिया। वे ही राजागण आपके यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए थे।।९।।

पत्न्यास्तवाधिमखक्लप्तमहाभिषेकश्लाधिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् । स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यैस्तित्श्रयोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

अन्वयः — तव पत्न्याः अधिमखक्तृप्तमहाभिषेक श्लाघिष्ठचारु कवरं कितवैः समायाम् विकीर्य स्पृष्टं पतिताश्रुमुख्याः यैः तिस्त्रियः हतेशविमुक्तकेशाः अकृत ॥१०॥

अनुवाद आपकी पत्नी महारानी द्रौपदी के राजसूय यज्ञ के महान् अभिषेक से पवित्र हुए उन सुन्दर केशों को जिन दुष्टों ने भरी सभा में छूने का साहस किया उन केशों को विखेरकर तथा आँखों में आँसू भरकर जब भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं तो उन सबों की श्वियों को भगवान् ने ऐसा बना दिया कि पतियों के मारे जाने के कारण उन सबों ने स्वयम् अपना केश खोल दिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यै: कितवैर्दु:शासनादिभिस्तव पत्याः कबरं विकीर्योन्मुच्य स्पृष्टमाकृष्टं तेषां स्त्रियो हतेशा अतएव वैधव्याद्विमुक्तकेशा अकृत चकार । कथंभूतं कबरम् । अधिमुखं राजसूयमधिकृत्य क्लप्तो रचितो यो महाभिषेकस्तेन श्लाघ्यतमम् । चारु रम्यम्। यत्स्मरणात्तदानीमेवास्मत्कृपया प्राप्तस्य श्रीकृष्णस्य नमने पादयोः पिततान्यश्रूणि मुखाद्यस्याः पत्न्याः । पदशब्दसापेक्षस्यापि पिततशब्दस्याश्रुपदेन समासो नित्यसापेक्षितत्वात् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जिन दुष्ट दुशासन आदि ने आपकी पत्नी द्रौपदी के केशों को खोलकर खींचा था उन दुष्टों की पत्नियाँ पतियों के मारे जाने के कारण विधवा हो गयीं और उनके केश हमेशा-हमेशा के लिए खुल गये । कथंभूतम् o इत्यादि- द्रौपदी के केशों का वर्णन करते हुए कहते हैं राजसूय यज्ञ में सम्पन्न महाभिषेक के कारण प्रशंसनीय तथा मनोहर वे केश थे । द्रौपदी के द्वारा स्मरण किए जाने के कारण हमलोगों पर कृपा करने के लिए पधारे हुए श्रीकृष्ण को प्रणाम करते समय उसके मुख से जो आंसू भगवान् के पैर पर गिरे । उसके कारण भगवान् ने उन सबों के पतियों का वध करवाकर उनकी पत्नियों के केश को हमेशा के लिए बन्धनमुक्त बना दिया ।

पतिताश्रुमुख्याः में पद शब्द की अपेक्षा होने पर भी पति शब्द का अश्रुपद के साथ समास नित्य सापेक्ष होने के कारण हुआ है ॥१०॥

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्रादुर्वाससोऽरिविहितादयुताव्रभुग्यः । शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ॥११॥

अन्वयः यः वनम् एत्य अरिविहितात् दुर्वाससः कृछ्रात् नः जुगोप । शाकान्नशिष्टम् उपयुज्य यतः अयुताग्रभुक् यः सिलले विनिमग्न संघः त्रिलोकीं तृप्ताम् अमंस्त ।।११।।

अनुवाद — जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर शत्रु के द्वारा आयोजित महर्षि दुर्वासा के भयङ्कर शाप से केवल शाक को ही खाकर हमलोगों की रक्षा किये । जिससे कि दश हजार शिष्यों से पहले भोजन करने वाले महर्षि दुर्वासा और जल में अघमर्षण करने के लिए प्रविष्ट मुनियों का समूह त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शिष्याणामयुतस्याग्रे तत्पङ्कौ भुङ्के यस्तस्मादुर्वाससो हेतोरिएणा दुर्योधनेन रचितं यदुरन्तं कृच्छ्रं शापलक्षणं तस्मात्सकाशात्रोऽस्मान्वनमेत्य जुगोप। किं कृत्वा। शाकमेवात्रं तिस्मत्रेव पात्रेऽवशिष्टमुपयुज्य जग्ध्वा। यत उपयोगात्सिलले विनिमग्रो मुनीनां सङ्घिल्लोकीं तृप्ताममंस्त। एवं हि भारते कथा— 'कदाचिदुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्यं कृतम्। तेन च पिरतुष्ट्रेन वरं वृणीष्वेत्युक्ते दुर्वाससः शापात्पाण्डवा नश्येयुरितं मनिस विधाय दुर्योधनेनोक्तम्। युधिष्ठिरोऽस्मत्कुलमुख्यः, अतस्तस्यापि भवतैवमेव शिष्यायुतसितिनातिथिना भवितव्यं, किंतु द्रोपदी यथा क्षुधा न सीदेत्तथा तस्यां भुक्तवत्यां तद्गृहं गन्तव्यमिति। ततश्च तथैव दुर्वासिस प्राप्ते परमादरेण युधिष्ठिरेण माध्याह्निकं कृत्वा आगम्यतामिति विज्ञापितो मुनिसङ्घोऽघमर्षणाय जले निममज्ज। तत्र चिन्तातुरया द्रौपद्या स्मृतमात्रः श्रीकृष्णोऽङ्कस्थां रुक्मिणीं हित्वा तत्क्षणमेव भक्तवत्सलतया चागतः। तया चावेदिते वृत्तान्ते भगवतोक्तं- हे द्रौपदि, अहं च बुभुक्षितोऽस्मि प्रथमं मां भोजयेति। तया चातिलज्ज्योक्तं- स्वामिन्, मद्भोजनपर्यन्तमक्षयमप्यत्रं सूर्यदत्तस्थाल्यां मया च सर्वात्रंसंभोज्य भुक्तमतो नास्त्यन्नमिति। तथाप्यतिनिर्बन्धेन स्थालीमानाय्य तत्कण्ठलग्रं किंचिच्छाकात्रं प्राश्योक्तमनेन विश्वात्मा भगवान्त्रीयताम्। अथ भोक्तुं मुनिसङ्घामाह्न्येति भीमं प्रहितवान्। स च तावतातितृप्तो वृथ्यापाकभयेन पलायितः' इति।।११।।

भाव प्रकाशिका

दश हजार शिष्यों की पंक्ति में सबसे पहले भोजन करने वाले जो दुर्वासा महर्षि थे उनको दुर्योधन ने भेजा था, उनके भयङ्कर शाप रूप कष्ट से जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर हमलोगों की रक्षा किए। प्रश्न है कि कैसे रक्षा किए? तो इसका उत्तर है कि उस पात्र में ही लगे हुए शाक नामक भोज्य पदार्थको खाकर भगवान् के उस शाक के खाते ही अधमर्षण करने के लिए जल में निमग्न मुनि समूह ने त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया।

एवं ही भारते कथा महाभारत ग्रन्थ में यह कथा आयी है कि एक बार दुर्योधन ने महर्षि दुर्वासा का आतिथ्य सत्कार किया । उससे प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने कहा वरदान माँगो । दुर्योधन ने सोचा कि महर्षि के शाप से ही पाण्डवों का नाश हो जाय । यह विचार करके दुर्योधन ने कहा हमारे वंश में मुख्य युधिष्ठिर हैं । अतएव आप इसी तरह अपने दश हजार शिष्यों के साथ उनके अतिथि बनें । किन्तु द्रौपदी भूख के कारण दुःखी न हो अतएव जब वह भोजन कर ली हो उसके बाद ही आप जायँ ।

उसके पश्चात् दुर्वासा ऋषि उसी तरह उनके यहाँ गये। युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदर के साथ कहा आपलोग मध्याह्न की क्रिया करके आयें। इस तरह से कहने पर मुनियों का समूह अघमर्षण करने के लिए जल में प्रवेश कर गया। उस समय अत्यन्त चिन्तित द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् श्रीकृष्ण अपने गोद में बैठी हुयी रुक्मिणी को छोड़कर भक्तवत्सलता के कारण उसी समय वहाँ आ गये।

द्रौपदी के द्वारा सारा वृत्तान्त बतलाये जाने पर भगवान् ने कहा— द्रौपदी मैं भूखा हूँ मुझे पहले भोजन कराओ अत्यन्त लज्जा पूर्वक द्रौपदी ने कहा— हे स्वामिन् ! मेरे भोजन पर्यन्त ही सूर्य के द्वारा प्रदत्त स्थाली में अक्षय अन्न रहता है । सबों को खिलाकर मैंने भी भोजन कर लिया है । अतएव अन्न बिल्कुल नहीं है ।

फिर भी अतिथि श्रीभगवान् ने आग्रह पूर्वक उस स्थाली को मँगवाकर उस स्थाली के कण्ठ में सटे शाक के पत्ते को खाकर कहा इससे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हो जायँ। उसके पश्चात् मुनि समूह को भोजन करने के लिए बुलाने के लिए भीम को उन्होंने भेजा। उतने मात्र से तृप्त मुनिसमूह व्यर्थ भोजन बनवाने के भय से भाग गया।।११।।

यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे । अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ॥१२॥

अन्वयः— अथ यत् तेजसा युधि सगिरिजः भगवान् शूलपाणिः विस्मापितः निजम् अस्त्रम् मे अदात् अन्येऽपि च, अहम् अमुना एव कलेवरेण महेन्द्र भवने महत् अर्धासनम् प्राप्तः ।।१२।।

अनुवाद उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से सम्पन्न मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शिव को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने मुझे अपना पाशुपतास्त्र नामक अस्त्र प्रदान किया तथा दूसरे लोकपाल भी मुझे अपना अस्त्र प्रदान किए। किश्च इसी शरीर से मैंने इन्द्र की सभा में इन्द्र के आसन पर बैठने का सम्मान प्राप्त किया।।१२।।

भावार्थ दीपिका

गिरिजासहितो विस्मापितः सन्निजं पाशुपतमस्त्रम् । अन्येऽपि लोकपाला निजान्यस्त्राण्यदुः । अन्यप्याश्चर्यमाह- अमुनेति। महत इन्द्रस्यासनार्धम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के ही तेज से मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शङ्कर को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और वे प्रसन्न होकर मुझे अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किए और दूसरे लोकपाल भी मुझको अपना अस्त्र प्रदान किए। दूसरा आश्चर्य यह कि इसी शरीर से मैंने इन्द्र के आधे आसन पर बैठने का सौभाग्य भी प्राप्त किया ॥१२॥

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः । सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूमा ॥१३॥

अन्वयः— हे आजमीढ तत्रैव विहरतः सेन्द्राः देवा अरातिवधाय गाण्डीवलक्षणं मे यदनुभावितं भुजदण्डयुमं श्रिताः तेन भूम्ना पुरुषेण अहम् अद्य मुषितः ।।१३।।

अनुवाद हे अजमीढवंशावतंस उस स्वर्ग लोक में विहार करते समय इन्द्र सिहत सभी देवगण निवात कवच नामक दैत्य शत्रुओं का वध करने के लिए गाण्डीव धनुष से सुशोभित तथा श्रीभगवान् के प्रभाव से युक्त मेरी दोनों भुजाओं का सहारा लिया, वे ही भूमाविद्या में वर्णित पुरुष श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैव स्वर्गे क्रीडतो गाण्डीवं लक्षणं चिह्नं यस्य तत् । अरातयो निवातकवचा दैत्यास्तेषां वधार्थमाश्रितवन्तः । येनानुभावितं प्रभावयुक्तं कृतम् । हे आजमीढ युधिष्ठिर । तेन मुषितो वश्चितोऽस्मि । कथंभूतेन । भूम्ना निजमहिमावस्थानेन ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग में ही विहार करने वाले गाण्डीव धनुष से सुशोभित मेरी भुजाओं का सहारा इन्द्रिादि देवताओं ने निवात कवच दैत्यों को मारने के लिए लिया । जिन भगवान की ही कृपा से मैं प्रभाव सम्पन्न हुआ । हे आजमीढ युधिष्ठिर उन्हीं विपुल महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ॥१३॥

यद्वान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् । प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोध्यः ॥१४॥

अन्वयः - यद्वान्धवः अहम् कुरुबलाब्धिम् अनन्तपारम् अतीर्यसत्त्वम् एकः अहम् रथेन ततरे । मया परेषां बहुधनं प्रत्याहृतम्, तेजास्पदं मणिमयं च शिरोभ्यः हृतम् ।।१४।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव मैं भीष्म तथा द्रोण रूप अपराजेय वीरों से युक्त कौरवों की अनन्तपार समुद्र के समान सेना को अकेले रथ पर सवार होकर पार कर गया और राजा विराट् के गोधन को लौटा लाने के समय उनके बहुमूल्य अलङ्कारों तथा शिर पर चमकते हुए मुकुटों को भी मैं उतार लाया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

यद्वान्धव इत्यादिश्लोकत्रयस्यापि तेन मुषितोऽहमिति पूर्वेणैव संबन्धः । श्रीकृष्णबान्धव एक एवाहं कौरवसैन्याब्धि नास्त्यन्तो गाम्भीर्येण, पारं च देशतो यस्य तं ततरे तीर्णवानुत्तरगोग्रहे । अतीर्याणि दुस्तराणि सत्त्वानि तिमिङ्गिलादीनि भीष्मादिरूपाणि यस्मिन् । परैर्नीतं गोधनं प्रत्याहृतम् । परेषां च शिरोभ्यः सकाशात्तेजास्पद प्रभावस्यास्पदमुष्णीषरूपं मणिमयं मुकुटरत्नरूपं च बहुधनं तान्मोहनास्त्रेण मोहयित्वा हृतम् । यद्वान्धवेन मया ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यद्वान्धव इत्यादि तीन श्लोकों का भी मुषितोऽहम् इस पहले के श्लोक से ही सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव अकेला ही मैं जिसकी गम्भीरता और देश का कोई अन्त नहीं था ऐसी कौरवों की सेना रूपी सागर को मैंने पार कर लिया।

उसके पश्चात् विराट की गौओं को लौटा लाने के समय दुस्तर पराक्रम वाले तिमिङ्गिल इत्यादि सभान भीष्म इत्यादि वीरों से पार पाना असम्भव था ऐसे शत्रुओं के द्वारा ले जाये जाते हुए गोधन को मैं लौटा लाया और शत्रुओं के शिरों से तेज तथा प्रभावयुक्त उष्णीश स्वरूप मणिमय मुकुट रूपी बहुत धनों को गन्धर्वास्त्र से मोहित करके ले आया । यह सबकुछ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव होने के कारण ही कर सका ॥१४॥

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु । अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥

अन्वयः— हे विभो ! यः भीष्म कर्ण-गुरु-शल्य चमूषु अदभ्र राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु मम अग्रेचरः रथयूथपानाम् दृशा आयुः मनांसि च सह ओजः आर्च्छत् ।।१५।।

अनुवाद महाराज ! भीष्म, कर्ण, गुरुद्रोण तथा शल्य एवं दूसरे बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरों के रथों से कौरवों की सेना सुशोभित थी जो भगवान् मेरे आगे-आगे चलते हुए अपनी दृष्टि मात्र से ही उन सभी महारथी यूथपितयों की आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे । उन्होंने ही आज मुझको ठग लिया ।।१५॥

भावार्थ दीपिका

अदभ्रा अनल्पा ये राजन्यवर्यास्तेषां रथमण्डलैर्मण्डितासु भीष्मादीनां चमूषु सारथिरूपेण ममाग्रेचर: सन् हे विभो, तेषां रथयूथपानामायुरादीनि यो दृशा दृष्ट्यैवार्च्छत् हृतवान् । मनांसीत्युत्साहादिशक्तिम् । सहो बलम् । ओज: शस्त्रादिकौशलम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अदभ्र शब्द अत्यधिक का बोधक है। बहुत अधिक श्रेष्ठ राजाओं के रथ समूह से सुशोभित भीष्म आदि की सेनाओं में सारिथ रूप से मेरे आगे चलते हुए हे महाराज ! उन रथ यूथपों की आयु आदि को जो भगवान् अपनी दृष्टिमात्र से छिन लिए। मनांसि शब्द से उत्साह शक्ति को, सह शब्द से बल को तथा ओज: शब्द से शस्त्रादि कौशल को कहा गया है। इन सबों को भगवान् छिन लिए।।१५।।

यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्यववाह्निकाद्यैः । अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥१६॥

अन्वयः — यद् दो:षु प्रणिहितं मा गुरु-भीष्म-कर्ण-द्रौणि-निर्गत-शल-सैन्धव बाह्विकाद्यै निरूपितानि अमोघमहिमानि अस्त्राणि आसुराणि हरिदासम् इव न पस्पृशुः ।।१६।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् के हाथों में मैंने अपने को डाल दिया था उसके कारण आचार्य द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, सिन्धुदेशाधिपति जयद्रथ, शन्तुनु के भाई बह्लोक आदि के द्वारा चलाये गये कभी भी विफल नहीं होने वाले अस्न मुझको उसी तरह छू नहीं पाये जिस तरह दैत्यों के द्वारा प्रयुक्त अस्न भगवद् भक्त प्रह्लाद को स्पर्श नहीं कर पाते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यस्य दोःषु भुजेषु मा मां प्रणिहितं स्थापितं तैरेव गुर्वीदिभिर्निरुपितानि प्रयुक्तान्यस्त्राणि न स्पृशन्ति स्म । गुरुर्द्रीणः । त्रिगर्तिस्त्रगर्तदेशाधिपतिः सुशर्मा । शलः शल्यः । सैन्धवः सिन्धुदेशाधिपतिर्जयद्रथः । वाह्निकः शन्तनोर्भ्राता । अमोघो महिमा येषां तथाभूतान्यपि । पाठान्तरेऽपि स एवार्थः । प्रतीकाराकरणेऽप्यस्पर्शे दृष्टान्तः- नृहरिदासं प्रह्लादिमवेति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् के हाथों में समर्पित मुझको आचार्य द्रोण आदि के द्वारा प्रयुक्त अमोघ अस्त्र मुझको छू तक नहीं सके । यहाँ गुरु शब्द से द्रोणाचार्य को, त्रिगर्त शब्द से त्रिगर्त देशाधिपित सुशर्मा को, शल शब्द से शल्य को और सैन्थव शब्द से सिन्धु देशाधिपित जयद्रथ को कहा गया है । अमोघमहिमानि पद का विग्रह, अमोघो महिमा येषां तानि है । अमोघमहितानि इस पाठान्तर का भी वहीं अर्थ है । प्रतिकार नहीं करने पर भी स्पर्श नहीं कर सकने का उदाहरण भगवान् नृसिंह के भक्त प्रह्लाद को दिया गया है ॥१६॥

सौत्ये वृतः कुमितनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्मभवाय भजन्ति भव्याः । मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥

अन्वयः— भव्याः यदपादपद्मम् अभवाय भजन्ति, सः आत्मदः ईश्वरः कुमितना मे सौत्ये वृतः रिथनः अरयः यदनुभाविनरस्तिचित्ताः श्रान्तवाहम् भुविष्ठं मां न प्राहरन् ।।१७।।

अनुवाद श्रेष्ठ पुरुष संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिनके चरण कमलों की सेवा करते हैं; उन अपने को भी दे डालने वाले परमात्मा को मैंने सारिष्य रूप से वरण किया, यह मेरी निन्दित मित का परिणाम है। जिन श्रीभगवान् के प्रभाव से ही जिनकी बुद्धि मारी गयी थी ऐसे रथी शत्रुगण उस समय मुझ पर प्रहार नहीं कर सके जब थके हुए अश्वों वाला मैं पृथिवी पर खड़ा था।।१७।।

भावार्थ दीपिका

स्वापराधमनुस्मरन् संतप्यमान आह । सौत्ये सारथ्ये कुमितना मे मया स वृत: । कुमितत्वमेवाह-आत्मद इत्यादिना। अभवाय मोक्षाय । भव्या: श्रेष्ठा: । श्रान्ता वाहा अश्वा यस्य तं माम् । जयद्रथवधे हि जलपानं विनाऽश्वा: श्रान्तास्ततो रथादवतीर्य बाणैर्भुवं भित्त्वा मया जलं संपादितम् । तदा यस्यानुभावेन निरस्तचित्ता अरयो मां न प्रहृतवन्तः स सौत्ये वृत इति कुमतित्वम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अपने अपराध का स्मरण करते हुए संताप करते हुए अर्जुन ने कहा मेरी यह कुमित ही है कि मैंने उनको अपना सारिथ बनाया। अपनी कुमितत्व का वर्णन करते हुए अर्जुन ने कहा वे ईश सम्पूर्ण जगत् के नियामक ईश्वर थे और अपने तक को दे देने वाले थे। श्रेष्ठ पुरुष उनके चरणों की सेवा मुक्ति प्राप्त करने के लिए करते है। जब जयद्रथ वध के समय पानी पिए बिना मेरे अश्व थक गये थे उस समय मैं रथ से पृथिवी पर उत्तर गया था और बाणों से पृथिवी का भेदन करके जल उत्पन्न किया। उस समय उन श्रीभगवान् के प्रभाव के ही कारण मेरे रथी शत्रुओं की बुद्धि मारी गयी थी, क्योंकि भूमि पर खड़े मुझ पर सभी शत्रुओं ने प्रहार नहीं किया।।१७॥

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति । संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥१८॥

अन्वयः— हे नरदेव, माधवस्य उदार-रुचिर-स्मितशोभितानि हे पार्थ ! हे अर्जुन हे सखे ! हे कुरुनन्दन ! इति हृदि स्पृशानि संजल्प्तानि नार्माणि स्मर्तुः मम हृदयं लुठन्ति ।।१८।।

अनुवाद हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् के उदार, मनोहर तथा मुसकान से युक्त हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे कुरुनन्दन ! इस तरह की हृदय स्पशी, परिहास भरी वाणियों को स्मरण करने वाले मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हे नरदेव, उदारं गम्भीरं रुचिरं च यत् स्मितं तेन शोभितानि नर्माणि परिहासवाक्यानि तथा कार्यप्रस्तावेषु हे पार्थेत्यादीनि मधुराक्षराणि संजल्पितानि च हृदिस्पृशानि मनोज्ञानि माधवस्य यान्येतानि तानीदानीं स्मर्तुर्मम हृदयं लुठन्ति लोठयन्ति क्षोभयन्ति। णिजभाव आर्ष: ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा हे राजन् ! श्रीभगवान् के उदार, गम्भीर्य पूर्ण तथा मनोहर मुसकानसे सुशोभित परिहास भरे वाक्यों तथा कार्य प्रारम्भ करते समय हे पार्थ इत्यादि मधुर अक्षरों से युक्त वाक्यों को जो हृदय स्पर्शी तथा मनोहर थे उन श्रीकृष्ण वाक्यों को स्मरण करते ही मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ॥१८॥

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः । सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं ते ॥१९॥

अन्वयः— शय्यासनाटन विकत्थन भोजनादिष्वैक्याद् वयस्य ऋतवान् इति विप्रलब्धः तदापि महान ् महितया सख्युः सखेव, तनयस्य पितृवत् कुमतेः मे सर्वम् अघं सेहे ॥१९॥

अनुवाद सोने, बैठने, टहलने तथा आत्मश्लाघा के समय सदा एक साथ रहने के कारण कभी-कभी मैं यह कहकर उपहास करता था कि आप तो सत्यवादी हैं, उस समय महामिहमा से समन्न होने के कारण जिस तरह से कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है, उसी तरह से वे मुझ कुबुद्धि के सारे अपराधों को सह लेते थे ॥१९॥

विकत्थनं स्वगुणश्लाघनादि । शय्यादिष्वैक्यादव्यितरेकाद्धेतोः । कदाचिद्व्यभिचारं दृष्ट्वा हे वयस्य, ऋतवान् सत्ययुक्तस्त्विमित वक्रोत्तया विप्रलब्धस्तिरस्कृतोऽपि । 'ऋभुमान्' इति पाठे ऋभवो देवाः सेवकाः सन्ति यस्य सः । असौ महानिप मया वयस्य इति मत्वा विप्रलब्धस्तिरस्कृत इत्यर्थः । 'ऋतमान्' इति पाठे वत्त्वाभाव आर्षः । मे अघमपराधमसहत। महितया महत्त्वेन । ऐकपद्ये अतिमहत्त्वेनेत्यर्थः । सख्युरघं सखेव । तनयस्याघं पितेव ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अपने गुणों की प्रशंसा करने आदि को विकत्थन कहते हैं, सोने आदि के समय सदा एक साथ रहने के कारण, कभी उनमें देर हो जाने पर मैं व्यंग्य करता था कि मित्र तुम तो बड़े सत्यवादी हो ? इस तरह से कहकर मैं उनका तिरस्कार कर देता था। किन्तु वे महान् थे और मेरे द्वारा तिरस्कृत होने पर भी अपनी महत्ता के कारण मेरे सभी अपराधों को उसी तरह से सह लेते थे जैसे कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है। ऋभुमान पाठ होने पर अर्थ होगा जिनके ऋभु आदि देवता सेवक हैं। ऋतमान् पाठ होने पर वत्त्व का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण मानना चाहिए।।१९।।

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः । अध्वन्युरुक्रमपरित्रहमङ्ग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥२०॥

अन्वयः— हे नृपेन्द्र ! सोऽहं प्रियेण सख्या पुरुषोत्तमेन रहितः, सुहृदाहृदयेन शून्यः हे अङ्ग अध्विन, उरुक्रमपरिग्रहम् रक्षन् असद्भिः गोपैः अबला इव विनिर्जितः अस्मि ।।२०।।

अनुवाद हे नृपेन्द्र ! वहीं मैं अपने प्रिय मित्र पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् से रहित होकर अपने मित्र रूप हृदय से शून्य हो गया हूँ हे राजन् ! रास्ते में श्रीभगवान् की सोलह हजार स्त्रियों की रक्षा करते समय नीच गोपों द्वारा किसी अबला के समान पराजित कर दिया गया हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्वया शङ्कितं पराजयं चापि प्राप्तोऽहमित्याह । तेन सख्या रहितोऽतो हृदयेन शून्यः । अङ्ग हे राजन्, उरुक्रमस्य परिग्रहं षोडशसहस्रस्रीलक्षणम् । असद्भिनीचैः अबला योषेव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

आपके द्वारा शिक्कत मैं पराजित भी हुआ हूँ । उन अपने मित्र श्रीकृष्ण से रिहत होने के कारण मैं हृदय से रिहत हो गया हूँ, क्योंकि वे तो मेरे हृदय में थे । हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियों को लाता हुआ मैं उन सबों की रक्षा नहीं कर सका और नीच गोपों ने मुझे किसी अबला नारी के समान हरा दिया ॥२०॥

तद्वै घनुस्तइषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति । सर्व क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥

अन्वयः— तद्वै धनुः त इषवः स रथः, ते हयाः अहं सः रथी यतः नृपतयः आनमन्ति ईश रिक्तम् सर्वं तत् क्षणेन भस्मन् हुतम्, कुहकराद्धम्, ऊष्याम् उप्तमिव क्षणेन असत् अभूत् ।।२१।।

अनुवाद मेरा गाण्डीव धनुष वही है वे ही मेरे बाण हैं मेरा रथ भी वही है और वही मैं रथी भी हूँ। जिसको राजागण शिर झुकाया करते थे। श्रीभगवान् के अभाव में वह सबकुछ भस्म में किए गये होम के समान कपट पूर्वक की गयी सेवा और उषर में बोये गये बीज के समान व्यर्थ हो गया ॥२१॥

श्रीकृष्णवियोग एवात्र हेतुर्नान्य इत्याह-तदिति । यतो येभ्यो नृपतय आनमन्ति ईशेन रिक्तं शून्यमसत्कार्याक्षमं सन्मन्त्रविधानैरिप भस्मानि हुतिमव । अतिप्रीतादिप कुहकान्मायाविनः सकाशाद्राद्धं लब्धं यथा असत् । सम्यक्कर्षणादिनाप्यूषरभूमावुप्तं बीजिमव ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इसका कारण भी भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग ही है, दूसरा कोई भी नहीं जिन सबों को राजागण नमस्कार करते हैं श्रीकृष्ण के बिना वे सभी साधन उसी तरह से कार्य करने में असमर्थ हो गये जिस तरह मन्त्रों तथा विधान पूर्वक भी भस्म में किया गया होम व्यर्थ हो जाता है। अथवा मायावियों से अत्यन्त प्रेम पूर्वक भी प्राप्त किया गया धन व्यर्थ हो जाता है, अथवा जिस तरह अच्छी तरह से जोतकर भी ऊषर भूमि में बोया गया बीज नहीं जमता है।।२१।।

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे। विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम्। अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥२३॥

अन्वयः— राजन् त्वया अभिपृष्टानां विप्रशापविमूढानाम् वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मिथत चेतसाम् अजानतामिव मिथः मुष्टिभिः निघ्नताम् सुहत् पुरे न सुहृदाम् चतुः पञ्च अवशेषिताः ।।२२-२३।।

अनुवाद— हे राजन् ! आपने जिनलोगों के विषय में पूछा है वे ब्राह्मणों के शाप से अज्ञानी बने हुए वारुणी मंदिरा पीकर मदोन्मत्त होकर एक दूसरे को नहीं पहचानते हुए परस्पर में एक दूसरे पर एरका मुष्टि से प्रहार करने के कारण हमारे सुहदों की नगरी में हमारे सुहदों में केवल चार पाँच लोग ही बचे हुए हैं ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

सुहृत्पुरे त्वया पृष्टानां नः सुहृदां मध्ये चत्वारः पञ्च वाऽवशेषिताः । तत्र हेतुः-विप्रशापेत्यादि । वारुणीमन्नमयीम् । अजानतामिवान्योन्यमेरकामुष्टिभिर्निघ्नताम् ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

आप जिन द्वारकावासी हमारे सुहृदों के विषय में पूछे हैं उनमें से केवल चार-पाँच ही लोग बचे हैं, उसका कारण यह है कि ब्राह्मणों के शाप के कारण अज्ञानी बने हुए सबों ने अन्नमयी वारुणी मदिरा को पी ली और वे मदमत हो गये। एक दूसरे को जैसे वे पहचान ही नहीं पाते थे और वे एरका की मुष्टि से वज्र कल्प प्रहार करके विनष्ट हो गये।।२२-२३।।

प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् । मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥२४॥

अन्वयः प्रायेण एतद् भगवतः विचेष्टितम् यत् भूतानि मिथः निघ्नन्ति भावयन्ति च ।।२४।।

अनुवाद - प्रायः यह भगवान् की ही चेष्टा है जिसके कारण एक जीव दूसरे को मारते हैं और उसका पालन भी करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अवशेषिता इत्यनेनोक्त हेतुकर्तारमाह त्रिभि:-प्रायेणेति । भावयन्ति पालयन्ति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि अब केवल चार पाँच ही बचे हैं, उसके कर्ता हेतुको प्रायेण इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाया गया है । भावयन्ति पद का अर्थ पालन करते हैं ॥२४॥ जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः। दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥२५॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः। यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह॥२६॥

अन्वयः— राजन् यद्वत् जले जलौकसां महान्तः अणीयसः अदन्ति, दुर्बलान् बलिनः महान्तिमथः बलिनः, एवं विभुः बलिष्ठैः महद्भिः यदुभिः इतरान् यदुभिः अन्योन्यं यदून् भूभारान् संजहार ह ।।२५-२६।।

अनुवाद हे राजन् ! जिस तरह जल में रहने वाले छोटे जलचरों को बड़े जलचर को खा जाते हैं, दुर्बलों को बलवान् मार देते हैं, और बलवानों में भी एक बलवान् दूसरे बलवान् को मार डालते हैं, उसी तरह परमात्मा ने बलवान् यदुवंशियों के द्वारा दूसरे बड़े राजाओं को विनष्ट करके पृथिवी के भारभूत यदुवंशियों में भी एक यदुवंशी से दूसरे यदुवंशी का नाश कराकर पृथिवी के भार को दूर कर दिया है ॥२५-२६॥

भावार्थ दीपिका

जलौकसां मत्स्यादीनां मध्ये महान्तः स्थूला अणीयसः यथाऽदन्ति भक्षयन्ति । एवं बलिष्ठैर्महद्भिः पाण्डवैर्दुर्योधनजरासन्धादीत्रिहत्य, यदुभिरितरान् शाल्वादीत्रिहत्य, यदून्यदुभिरन्योन्यं निहत्य, भगवान् भुवो भारभूतान् संहतवान् ॥२५-२६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह जल में रहने वाली मछिलयों आदि में जैसे बड़ी मछिलियाँ छोटी मछिलयों को खा जाती हैं, इसी तरह बलवान् तथा महान् पाण्डवों के द्वारा दुर्योधन जरासन्ध आदि को विनष्ट करके, यदुवंशियों द्वारा शाल्व इत्यादि को मारकर तथा परस्पर में यदुवंशियों द्वारा यदुवंशियों का नाश कराकर पृथिवी के भारभूत इन सबों को उन्होंने विनष्ट कर दिया ॥२५-२६॥

देशकालार्थयुक्तानि हत्तापोपशमानि च । हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥

अन्वयः— देशकालार्थयुक्तानि, हृत्तापोपशामिन गोविन्दाभिहितानि स्मरतः मे चित्तम् हरन्ति ।।२७।।

अनुवाद— देश काल और प्रयोजनोपयोगी तथा हृदय के संताप को शान्त करने वाली जिन बातों को भगवान् गोविन्द ने मुझको बतलाया था उन सबों का स्मरण करने वाले मेरे चित्त को वे बातें आकृष्ट करती हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अतः परं वक्तुं न शक्नोमीति सूचयत्राह । देशकालोचितार्थयुक्तानि मनःपीडोपशमकराणि च गोविन्दस्य वचनानि स्मरतो मे मम चित्तं हरन्त्याकर्षन्ति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इससे अधिक कुछ भी कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ इस अर्थ को सूचित करते हुए उन्होंने कहा देश कालोचित अर्थ से युक्त तथा मन की पीडा को शान्त करने वाली गोविन्द की बातों का स्मरण करने वाले मेरे हृदय को वे बातें आज भी आकृष्ट करती हैं ॥२७॥

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् । सौहार्देनातिगाढेन शान्तासीद्विमला मतिः ॥२८॥

अन्वय:— एवं अतिगाढेन सौहार्देन कृष्णपादसरोरुहम् चिन्तयत: जिष्णो: विमला मित: शान्ता आसीत् ।।२८।। अनुवाद— इस तरह अत्यन्त प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करने वाले अर्जुन की बुद्धि निर्मल बुद्धि शान्त हो गयी ॥२८॥

प्रथम स्कन्ध

भावार्थ दीपिका

एविमिति सूतोक्तिः । अतिदृढेन स्रेहेन कृष्णपादसरोरुहं चिन्तयतोऽर्जुनस्य मितः शान्ता विशोका विमला विरक्ता चासीत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि यह सूतजी की उक्ति है। इस तरह प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करते हुए अर्जुन की बुद्धि शान्त अर्थात् शोकरहित तथा विमल अर्थात् विरक्त हो गयी ॥२८॥

वासुदेवाङ्घ्रचनुध्यानपरिबृंहितरंहसा । भक्त्या निर्मिथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥२९॥

अन्वयः — वासुदेवाङ्घ्रचनुध्यान परिबृंहितरंहसा । भक्त्या अर्जुनः निर्मिथताशेष कषायधिषणः अभूत् ।।२९।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव के निरन्तर चिन्तन के कारण जिसका वेग बढ़ गया था उस भक्ति के द्वारा मथित अर्जुन के हृदय के सारे विकार बाहर निकल गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

मितवैमल्यफलमाह । वासुदेवाङ्घ्रचनुध्यानेन परिबृंहितं रंहो वेगो यस्यास्तया भक्त्या निर्मिथता उन्मूलिता अशेषाः कषायाः कामादयो यस्याः सा धिषणा बुद्धिर्यस्य सः । ज्ञानं पुनरध्यगमदित्युत्तरेणान्वयः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन की बुद्धि की विमलता का फल बतलाते हुए सूतजी ने कहा— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करने से जिसका वेग बढ़ गया था। उस भक्ति के द्वारा, उनकी बुद्धि के सारे विकार विनष्ट हो गये और उन्होंने पुन: ज्ञान प्राप्त कर लिया यह आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है ॥२९॥

गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि । कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥३०॥

अन्वयः— भगवत् संग्राममूर्धनि यत् ज्ञानं गीतं कालकर्मतमोरुद्धं विभुः तत् पुनरध्यगमत् ॥३०॥

अनुवाद— संग्राम के समय भगवान् श्रीकृष्ण जो ज्ञान अर्जुन को दिए थे, वह काल, कर्म तथा भोगाभि निवेश के कारण विस्मृत सा हो गया था उसको उन्होंने पुन: प्राप्त कर लिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

कालेन कर्मभिस्तमसा भोगाभिनिवेशेन च रुद्धमावृतं सत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

काल, कर्म तथा भोगाभिनिवेश रूपी अज्ञान के कारण वह ज्ञान अवरुद्ध हो गया था उस ज्ञान को अर्जुन ने पुन: प्राप्त कर लिया ॥३०॥

विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः । लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ॥३१॥

अन्वयः - ब्रह्मसम्पत्त्या विशोकः संछिन्नद्वैतसंशयः लीनप्रकृतिनैर्गुण्यात् अलिङ्गत्वात् असंभवः ।।३१।।

अनुवाद — ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होते ही वे विशोक हो गये अर्थात् उनके माया का आवरण भङ्ग हो गया। उसके कारण उनका द्वैत रूपी संशय समाप्त हो गया। मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार के ज्ञान होने से अविद्या नामक जो प्रकृति है, वह भी लीन हो जाती.है। उसके कारण सूक्ष्म शरीर का भङ्ग हो जाने से वह जन्म मरण के च्रक्र से छूट जाता है।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानफलमाह-विशोक इति । एतदेव शोकहेत्वभावेनोपपादयति । शोकस्य हि हेतुर्द्वैतभ्रमस्तस्य देहस्तस्य लिङ्गं तस्य

गुणास्तेषामिवद्या । तत्र ब्रह्मसंपत्त्या वेदान्तश्रवणेन ब्रह्माहमिति ज्ञानेन लीना प्रकृतिरिवद्या यस्मिस्तन्नैर्गुण्यं भवित नतु सुषुप्तिप्रलययोरिवाविद्याशेषः । तस्मान्नैर्गुण्याद्रुणकार्यिलङ्गनाशः । अलिङ्गत्वाच्चासंभवः सम्यग्भोगाय भवित पुनःपुनिरित सम्भवः स्थूलदेहस्तद्रहितः । ततश्च तत्पिरच्छेदाभावात्संछिन्नो द्वैतलक्षणः संशयो भ्रमो यस्य स विशोको जात इति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन को जो ज्ञान प्राप्त हो गया था। उस ज्ञान का विशेष फल विशोक इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। शोक के हेतु के अभाव के द्वारा इसी अर्थ का प्रतिपादन किया जा रहा है। शोक का हेतु द्वैतभ्रम (भेदभ्रम) है। उसका कारण देह है उसका कारण लिङ्ग (कारण) शरीर है। उसका कारण गुण है। उन गुणों का कारण अविद्या है। वेदान्त श्रवण के द्वारा मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञान से प्रकृति के लीन हो जाने से नैर्गुण्य की प्राप्त हो जाती है। उस समय जिस तरह सुषुप्ति तथा प्रलय काल में अविद्या बची ही रहती है, उस तरह से अविद्या बची नहीं रहती। उसके कारण नैर्गुण्य हो जाने के कारण गुण के कार्य लिङ्ग शरीर का नाश हो जाता है। अलिङ्ग हो जाने के कारण जन्म-मरण का चक्र मिट जाता है। जीव जो भोगों को प्राप्त करने के लिए बार-बार जन्म लेता है उसको सम्भव कहते हैं। अर्थात् स्थूल देह की प्राप्ति अलिङ्ग हो जाने के कारण उस स्थूल देहाभिमान छूट जाता है। फलत: उस परिच्छेद का अभाव हो जाने से उसकी द्वैतभावना विनष्ट हो जाती है अतएव वह विशोक हो जाता है।।३१॥

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च । स्वःपथाय मृत्ं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥

अन्वयः भगवन्मार्गं यदुकुलस्य संस्थां च निशम्य निभृतात्मा युधिष्ठिरः स्वपथाय मितं चक्रे ।।३२।।

अनुवाद— भगवान् के स्वधामगमन, और यदुवंश के विनाश का वृत्तान्त सुनकर निश्चित मित वाले युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण का निश्चय कर लिया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

भगवतो मार्गमालक्ष्य यदुकुलस्य संस्थां नाशं श्रुत्वा नारदोक्तं चानुस्मृत्य स्व:पथाय स्वर्गमार्गाय । निभृतात्मा निश्चलिचत्तः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मार्ग को जानकर तथा यदुकुल के विनाश को सुनकर एवं नारदजी द्वारा कही गयी बातों का स्मरण करके निश्चल बुद्धि वाले युधिष्ठिर ने स्वर्ग के मार्ग को अपनाने का निश्चय कर लिया ॥३२॥

पृथाप्यनुश्रुत्य घनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् । एकान्तभक्त्या भगवत्यघोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥३३॥

अन्वयः— धनंजयोदितं यदूनां नाशं भगवद्गतिं च अनुश्रुत्य पृथा अपि एकान्तभक्त्या भगवति अधोक्षजे निवेशितात्मा संसृतेः उपरराम ।।३३।।

अनुवाद अर्जुन के द्वारा वर्णित यदुवंश के नाश और भगवान् के स्वधाम गमन की बात को सुनकर कुन्ती भी अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में ही अपने मन को लगाकर संसार चक्र से मुक्त हो गयीं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तां दुर्विज्ञेयाम् । वक्ष्यित ह्येकादशे– 'सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गर्तिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतै:' इति । संस्तेरुपरराम जीवन्मुक्ता बभूव । देहं जहाविति वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

भगवद् गति को दुर्विज्ञेय बतलाते हुए ग्यारहवें स्कन्ध में कहेंगे भी---

सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गर्तिनत्लक्ष्यते मत्यैः तथा कृष्णस्य दैवतैः ।।

अर्थात् जिस तरह मेघमण्डल को हटाकर जाने वाली विद्युत् की गित जैसे कोई नहीं जान पाता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण की स्वधाम गमन की गित को देवता तथा मनुष्य कोई नहीं जान सका । संसृतेः उपरराम का अर्थ है वह जीवन्मुक्त हो गयी अथवा अपने शरीर का त्याग कर दी ॥३३॥

ययाहरद्भवो भारं तां तनुं विजहावजः । कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥३४॥

अन्वयः अजः यया भुवो भारम् अहरद् तां तनुं कण्टकं कण्टकेन इव विजहौ द्वयं चापि ईशितुः समम् ।।३४।। अनुवाद श्रीभगवान् ने जिस शरीर से पृथिवी के भार को दूर किया उस शरीर को उसी तरह से उन्होंने त्याग दिया जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालकर दोनों को फेंक देता है। क्योंकि दोनों श्रीभगवान् के लिए संहार्य होने के कारण एक समान थे।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमुक्तमिप यादवेभ्यो भगवतो वैलक्षण्यमबुद्धवा तत्साम्यं वदतो मन्दमतीन्प्रति वैलक्षण्यं स्पष्टयित द्वाभ्याम् । यया यादवरूपया तन्वा भुवो भारं कण्टकेन कण्टकमिवाहरत् । यादवतनुर्भरतनुश्चेति द्वयमपीश्वरस्य संहार्यत्वेन सममेव ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यह बात बतलायी गयी कि यादवों से भगवान् की विलक्षणता को न जानकर दोनों में समता बतलाने वाले मन्दबुद्धि वालों के प्रति यादवों से भगवान् की विलक्षणता को दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं। जिस यादव रूपी शरीर के द्वारा भगवान् ने पृथिवी के भार को; जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालता है उसी तरह दूर किए और उसके बाद उन्होंने अपने उस शरीर को त्याग दिया। क्योंकि चाहे यादव शरीर हो अथवा पृथिवी का भारभूत शरीर हो ये दोनों श्रीभगवान् के लिए समान रूप से संहार्य थे।।३४॥

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः । भूभारः क्षपितो येन जहाँ तच्च कलेवरम् ॥३५॥

अन्वयः— यथा भगवान् मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्यात् तथा येन भूभारः क्षपितः तच्च कलेवरम् जहौ ।।३४।।

अनुवाद जिस तरह श्रीभगवान् मत्स्य आदि रूपों को धारण करते हैं और नट के समान उसका त्याग भी कर देते हैं, उसी तरह से उन्होंने जिस शरीर से पृथिवी के भार को उतारा उस श्रीकृष्ण शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णमूर्तेर्विशेषमाह- यथेति । तान्यपि यथा धत्ते जहाति च । तदाह । यथा नटो निजरूपेण स्थितोऽपि रूपान्तराणि धत्तेऽन्तर्धत्ते च तथा तदपि कलेवरं जहौ । अन्तरघादित्यर्थ: ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण शरीर की विशेषता उन्होंने यथा॰ इत्यादि श्लोक से बतलायी है। जिस तरह से भगवान् मत्स्य इत्यादि रूपों को धारण करते हैं और उनका परित्याग कर देते है। या जैसे नट अपने रूप में स्थित रहकर भी विभिन्न रूपों को धारण करता है और फिर उन रूपों को त्याग देता है। उसी तरह से भगवान् ने भी अपने श्रीकृष्ण शरीर का परित्याग कर दिया ॥३५॥

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः । तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कल्तिरन्वर्तत ॥३६॥

अन्वयः— यदा श्रवणीयसत्कथः भगवान् मुकुन्दः इमां महीम् स्वतन्वा जहौ तदा अहः एव अप्रतिबुद्धचेतसाम् अधर्म हेतुः कलिः अन्ववर्तत ।।३६।।

अनुवाद जिनकी कथाएँ सुनने के योग्य हैं वे भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द जिस दिन अपने शरीर से इस पृथिवी का परित्याग किए उसी दिन अज्ञानी मनुष्यों को अधर्म में लगाने वाला कलियुग आ गया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिरस्य स्वर्गारोहप्रसङ्गाय कलिप्रवेशमाह-यदेति । स्वतन्वा जहौ । सतनोरेव वैकुण्ठारोहात् । श्रवणार्हा सती कथा यस्य । तदा यदहस्तिस्मन्नेव । अहरिति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । अप्रतिबुद्धचेतसामविवेकिनां इति । विवेकिनां तु न प्रभुरित्युक्तम्। अन्ववर्ततेति पूर्वमेवांशेन प्रविष्टस्य तेन रूपेणानुवृत्तिरुक्ता ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के प्रसङ्ग को उपन्यस्त करने के लिए यदा इत्यादि श्लोक के द्वारा सूतजी किल के प्रवेश का वर्णन करते हैं। स्वतन्वा जहाँ का अभिप्राय है कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीर के साथ ही अपने लोक में चले गये। श्रवणीय सत्कथः का विग्रह है श्रवणीया सती कथा यस्य। अर्थात् श्रीभगवान् की सत्कथा सुनने योग्य है। जिस दिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का परित्याग किया उसी दिन पृथिवी पर किलयुग आ गया। अहः यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है। अविवेकियों द्वारा किए जाने वाले अधर्म का कारण किल है। किल अविवेकियों का ही स्वामी है विवेकियों का नहीं। चूकि किलयुग पहले ही अंशतः प्रविष्ट हो गया था। उसी रूप से उसकी अनुवृत्ति यहाँ बतलायी गयी है।।३६।।

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथात्मनि । विभाव्य लोभानृतजिह्यहिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

अन्वयः — बुधः युधिष्ठिरः तत् परिसर्पणम् पुरे राष्ट्रे, गृहे, तदात्मिन लोभानृतजिह्यहिंसनाद्यधर्मचक्रं विभाव्य गमनाय पर्यघात् ।।३७।।

अनुवाद ज्ञानी युधिष्ठिर उसका (किलका) प्रसार नगर, राष्ट्र, गृह और प्राणियों में लोभ, असत्य, कपट, हिंसा आदि अधर्म समूह को देखकर महा प्रस्थान करने का निश्चय कर लिए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

बुधो युधिष्ठिर: । तस्य कले: परिसर्पणं प्रसरणं विलोक्य । कथंभूतम् । लोभाद्यधर्मचक्रं यस्मिन् । जिह्नं कौटिल्यम्। पर्यधात्तदुचितं परिधानमकरोत् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका अर्थ निवास सम्बद्धा के जीन स्वर्धनी

युधिष्ठिर ज्ञानी थे। उन्होंने सर्वत्र किल के प्रसार को देखा। उस किल में लोभ, असत्य, छल तथा हिंसा आदि अधर्म समूह विद्यमान था। जिह्न कुटिलता को कहते है। इस प्रकार के किल को देखकर उन्होंने महाप्रस्थानानुकूल अपने परिधान को धारण कर लिया।।३७॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः । तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यिषञ्चद्रजाह्नये ॥३८॥

अन्वयः स्वराट् गुणैः आत्मनः सुसमं विनियनं पौत्रम् तोयनीव्याः भूमेः पितं गजाह्वये अभ्यसिंचत् ॥३८॥ अनुवाद सम्राट् युधिष्ठिर ने गुणों के विषय में अपने ही समान विनीत अपने पौत्र परीक्षित् को समुद्र पर्यन्त की पृथिवी के स्वामी के रूप में हस्तिनापुर में अभिषिक्त किया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य गुणैः सुसममतिसदृशम् । तोयं परिवेषाकारेण सर्वतः समुद्रोदकमेव नीवी परिधानविशेषो यस्यास्तस्या भूमेः पतित्वेनाभिषिक्तवान् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

सम्राट् युधिष्ठिर ने देखा कि उनके पौत्र परीक्षित् में वे सारे गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं, साथ ही वह विनीत भी है इसिलए उन्होंने समुद्र पर्यन्त पृथिवी के स्वामी के रूप में परीक्षित् को हस्तिनापुर में अभिषिक्त कर दिया । तोपनीव्याः पद का विग्रह है तोयम् परिवेषाकारेण सर्वतः स्थितम् समुद्रोदकम् एव नीवी परिधान विशेषो यस्याः तस्याः ।।३८।।

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्रीनपिबदीश्वरः ॥३९॥

अन्वय:— तथा मथुरायां शूरसेनाधिपतिं वज्रम् कृत्वा प्राजापत्याम् इष्टिं निरूप्य ईश्वर: अग्नीन् अपिबत् ।।३९।। अनुवाद— और उन्होंने मथुरा में शूरसेन को पति के रूप में अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को अभिषिक्त करके प्राजापत्य इष्टि की और अग्नियों को उन्होंने अपनी आत्मा में स्थापित कर लिया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

वज्रमनिरुद्धस्य पुत्रम् । निरूप्य कृत्वेत्यर्थः । अपिवदात्मिन समारोपयामास । ईश्वरः समर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

समर्थ युधिष्ठिर ने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को शूरसेनाधिपति बनाकर अपनी आत्मा में ही अग्नियों को स्थापित किया ॥३९॥

विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् । निर्ममो निरहङ्कारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०॥

अन्वयः तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् विसृज्य निर्ममः निरहङ्कारः संछित्राशेष बन्धनः ॥४०॥

अनुवाद— उन्होंने वहीं पर अपने वस्त्र तथा आभूषण इत्यादि को ल्याग दिया और ममता तथा अहङ्कार से रहित होकर सारे बान्धत्रों को काट दिया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

संछित्रान्यशेषाणि बन्धनान्युपाधयो येन ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने समस्त उपाधियों को काट दिया ॥४०॥

वाचं जुहाव मनिस तत्प्राण इतरे च तम् । मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१॥

अन्वयः— वाचं मनसि जुहाव, तत्प्राणे, तम् च इतरे, सोत्सर्गमपानं मृत्यौ तं पञ्चत्वे अजोहवीत् ।।४१।।

अनुवाद— उन्होंने वाणी को मन में लीन कर दिया, मन को प्राण में, प्राण को अपान में, क्रिया के साथ अपान को मृत्यु में तथा उसको पाँच भौतिक शरीर में लीन कर दिया ॥४१॥

तदेव दर्शयित द्वाभ्याम् । वाचिमत्युपलक्षणम् । सर्वेन्द्रियाणि मनिस प्रविलापितवानित्यर्थः । तच्च मनः प्राणे, प्राणाधीनप्रवृत्तित्वात् । तं च प्राणमितरे अपाने, तेनाकर्षणात् । अपानव्यापार उत्सर्गस्तत्सिहतमपानं मृत्यौ तदिधष्ठातृदेवतायाम्। अनेनैव वागादिष्वपि तत्तत्कर्मसाहित्यं ज्ञेयम् । तं मृत्युं पञ्चत्वे पञ्चभूतानामैक्ये देहे । देहस्यैव मृत्युर्नात्मन इति भावितवानित्यर्थः। अजोहवीदिति यङ्लुगन्ताल्लुङि रूपम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

उसी को **वाचं जुहाव० इत्यादि** दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं। युधिष्ठिर ने वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को मन में लीन किया, उसको प्राण में लीन किया, प्राण को अपान में लीन किया क्योंकि अपान प्राण का आकर्षण करता है। अपान का व्यापार उत्सर्ग है। उसके साथ अपान को उन्होंने मृत्यु में अर्थात् मृत्यु के अधिष्ठातृ देवता में लीन किया। इस तरह वाणी आदि को भी उनकी क्रियाओं के साथ ही लीन करने की क्रिया को समझना चाहिए। उस मृत्यु को भी पञ्चभूतों के एकीभूत शरीर में लीन किया। क्योंकि मृत्यु तो देह की ही होती है आत्मा की नहीं। इस तरह से उन्होंने भावना की। अजोहवीत् यह यङ्लगन्त लुङ् लकार का रूप है।।४१।।

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः । सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२॥

अन्वयः— पञ्चत्वम् त्रित्वे हुत्वा मुनिः तत् च एकत्वे अजुहोत् सर्वम् आत्मिन अजुहवीत्, आत्मानम् अव्यये ब्रह्मणि अजोहवीत् ।।४२।।

अनुवाद शरीर को मृत्यु रूप जानकर मनन शील युधिष्ठिर ने उसको त्रिगुण में मिला दिया, त्रिगुण को प्रकृति में मिला दिया, सबों के कारण स्वरूप प्रकृति को आत्मा में उन्होंने लीन किया और आत्मा को अविनाशी ब्रह्म में विलीन कर दिया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

त्रित्वे गुणत्रये पञ्चत्वं देहम् । तच्च त्रित्वमेकत्वे अविद्यायाम् । सर्वं सर्वारोपहेतुमविद्यामात्मिन जीवे । अजोहवीदिति वक्तव्ये अजुहवीदित्यार्षम् । एवं शोधितमात्मानं ब्रह्मण्यव्यये कूटस्थे । न तस्यान्यत्रलय इत्यर्थ: ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

देह के तीनों गुणों में उन्होंने लीन किया। उन तीनों गुणों को प्रकृति (अविद्या) में लीन किया। अविद्या ही सभी आरोपों का हेतु है। उस अविद्या को उन्होंने आत्मा में लीन किया। अजोहवीत् कहना चाहिए किन्तु उसके स्थान में अजुहवीत् यह आर्ष प्रयोग है। इस प्रकार से शोधित आत्मा को उन्होंने कूटस्थ ब्रह्म में लीन किया। आत्मा का ब्रह्मव्यतिरिक्त में लय नहीं हो सकता है। ४२।।

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः । दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।४३॥ अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा। उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मिभः ॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः

अन्वयः — चीरवासा निराहारः बद्धवाक्, मुक्तमूर्धजः आत्मनः रूपम् जडोन्मत्तपिशाचवत् दर्शयन्, अनपेक्षमाणः बिधरः यथा अशृण्वन् निरगात् । महात्मिभः पूर्वगताम् हृदि परंब्रह्मध्यायन् उदीचीम् आशां प्रविवेश यतो गतः न आवर्तेत ।।४३-४४।।

अनुवाद — उन्होंने शरीर पर चीर वस्त्र धारण कर लिया, आहार का परित्याग कर दिया और मौन धारण कर लिया एवं अपने केशों को खोल दिया, वे अपने रूप को जड, या उन्मत्त या पिशाच के समान दिखाने लगे। वे किसी की अपेक्षा किए बिना ही, बहरे के समान किसी की बात सुने बिना ही घर से निकल पड़े। हृदय में

परंब्रह्म का ध्यान करते हुए जिस दिशा में ज्ञानी पुरुष पहले जा चुके हैं उस उत्तर दिशा में वे चले गये। जिस दिशा में जाकर कोई लौटता नहीं है।।४३-४४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मप्रतिपत्तिमुक्त्वा बाह्यस्थितिमाह- चीरवासा इति द्वाभ्याम् । बद्धवाङ्मौनी । अनवेक्षमाणोऽनुजादिप्रतीक्षामकुर्वन् आशां दिशम् । गतपूर्वां पूर्वं प्रविष्टाम् । महात्मिभिर्विवेकवद्भिः । यतो यां दिशं गतः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के दो श्लोक में आत्मा की स्थिति को बतलाकर सूतजी राजा युधिष्ठिर की वाह्यस्थिति का वर्णन चीरवासा॰ इत्यादि दो श्लोकों में करते है। बद्धवाक् का अर्थ है कि उन्होंने मौन धारण कर लिया। अनवेक्षमाण: का अर्थ है कि वे अपने अनुजों की प्रतीक्षा किए बिना ही उस उत्तर दिश में चल दिए जिस दिशा में पहले ज्ञानी पुरुष जा चुके हैं उस दिशा में जाकर कोई पुन: नहीं लौटता है।।४३-४४।।

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भातरः कृतनिश्चयाः । कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥

अन्वयः भुवि, प्रजाः अधर्ममित्रेण स्पृष्टाः दृष्ट्वा कृतनिश्चयाः तमनु सर्वे भ्रातरः निर्जग्मुः ।।४५।।

अनुवाद — पृथिवी पर सारी प्रजा को अधर्म के मित्र किल के द्वारा स्पृष्ट देखकर उनके सभी छोटे भाई भी निश्चय करके उनके पीछे घर से निकल गये ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अधर्मो मित्रं यस्य तेन ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जिसका अधर्म ही मित्र है, उस किल के द्वारा पृथिवी की सारी प्रजाओं को प्रभावित देखकर भीम, अर्जुन आदि युधिष्ठिर के सभी भाई भी घर से निकल गये ॥४३॥

ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वात्यन्तिकमात्मनः । मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥

अन्वयः— साधुकृतसर्वार्थाः ते आत्मनः आत्यन्तिकं ज्ञात्वा वैकुण्ठचरणाम्बुजम् मनसा धारयामासुः ।।४६।।

अनुवाद— उन लोगों ने जीवन के धर्म आदि समस्त प्रयोजनों को अच्छी तरह से सम्पन्न कर लिया था अतएव आत्मा के अन्तिम शरण रूप से वैकुण्ठाधिपति भगवान् के चरण कमल को जानकर उसीको अपने मन में वे लोग धारण किए ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

साधु सम्यक् कृताः सर्वेऽर्था धर्मादयो यैः । अतएव वैकुण्ठस्य चरणाम्बुजमेवात्यन्तिकं शरणं ज्ञात्वा ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

जीवन का प्रयोजन है अच्छी तरह से धर्मादि का अनुष्ठान । सभी पाण्डव उन सभी प्रयोजनों को पूरा कर लिए थे । उन लोगों ने जान लिया था कि आत्मा के अन्तिम रक्षक श्रीभगवान् के चरण कमल ही है । अतएव उन लोगों ने अपने मन में भगवान् के चरण कमलों को धारण किया ॥४६॥

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धिषणाः परे । तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्धिर्विषयात्मिभः । विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

अन्वयः तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या परेविशुद्धधिषणाः एकान्तमतयः ते विरजेनात्मनैव हि असद्धि विषयात्मिभः दुरवापाम् गतिम् तस्मिन् नारायणपदे विधूत कल्मषास्थानं अवापुः ।।४७-४८।।

अनुवाद — श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करने के कारण जिनकी भक्ति उद्रिक्त हो गयी थी। फलत: उनकी बुद्धि भी सर्वथा शुद्ध हो गयी थी। उनकी बुद्धि के केवल श्रीभगवान् में ही लगे रहने के कारण वे अपने निष्कल्मष आत्मा के द्वारा उस गित को प्राप्त कर लिए जिसे विषयासक्त कोई भी दुष्ट व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। श्रीभगवान् का चरण ही निष्पाप पुरुष का निवास स्थान है उन्हीं भगवान् नारायण के चरण कमलों को उन लोगों ने प्राप्त कर लिया। १४७-४८।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूते पदे । विधूतकल्मषाणामास्थानं निवासस्थानं यत्तस्मिन् । विरजेनात्मनैव गतिं प्रापुर्नतु षोडशकलेन लिङ्गेन। गतेर्वा विशेषणम् । विरजेनात्मनैवावस्थानरूपां गतिं ते विधूतकल्मषाः प्रापुरिति ।।४७-४८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् का चरण कमल निष्पाप पुरुषों का निवास स्थान है, उसी में उन लोगों ने गति प्राप्त कर ली। उन लोगों ने रजोगुणादि से रहित ही आत्मा के द्वारा प्राप्त किया, सोलह अवयवों वाले लिङ्ग शरीर से नहीं; क्योंकि उन लोगों के सारे पाप विनष्ट हो गये थे।।४७-४८।।

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् । कृष्णावेशेन तिच्चत्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

अन्वयः --- आत्मवान् विदुरोऽपि प्रभासे देहं विसृज्य कृष्णावेशेन तिच्चतः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ।।४९।।

अनुवाद— प्रभास क्षेत्र में अपने शरीर को त्याग कर भगवान् श्रीकृष्ण की भावना से भूषित चित्त वाले आत्मज्ञ विदुरजी भी पितृगणों के साथ अपने लोक (यमलोक) में चले गये ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

विदुरोऽपि तीर्थान्यटन्प्रभासे श्रीकृष्णावेशेन कृष्णे चित्तमावेश्य देहं परित्यज्य तिच्चित्त एव संस्तदानीं नेतुमागतै: पितृभि: सह स्वक्षयं स्वाधिकारस्थानं ययौ ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

तीर्थाटन करते हुए विदरुजी भी प्रभास क्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमावेश में श्रीकृष्ण में ही अपने चित्त को लगाकर अपने देह का परित्याग करके उनको लेने के लिए आये हुए पितरों के साथ अपने अधिकार स्थान यमलोक में चले गये ॥४९॥

द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् । वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५०॥

अन्वयः - द्रौपदी च तदा पतीनाम् अनपेक्षताम् आज्ञाय भगवित वासुदेवे एकान्तमितः सती तम् आप ।।५०।। अनुवाद - द्रौपदी ने जब यह जान लिया कि उनके पित उनसे अनपेक्ष हो गये हैं तो उन्होंने अपनी बुद्धि केवल श्रीभगवान् में लगा दी और श्रीभगवान् को ही प्राप्त कर लिया ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानं प्रत्यनपेक्षतां तदा ज्ञात्वा तमाप ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने जब जाना कि उनके पित उनसे अपेक्षा रहित हो गये हैं तो उन्होंने अपना मन एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और अन्त में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया ॥५०॥

यः श्रन्द्रयैतद्भगवित्रप्रयाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् । शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहरणं नाम पञ्चदशोऽध्याय: ॥१५॥

अन्वयः— यः भगवित्प्रयाणां पाण्डोः सुतानाम् एतत् अलंस्वस्त्ययनम् पवित्रं इति संप्रयाणम् श्रद्धया शृणोति सः हरौ भक्तिं लब्ध्वा सिद्धिम् उपैति ॥५१॥

अनुवाद जो व्यक्ति भगवान् के प्रिय पाण्डु के पुत्रों (पाण्डवों) के इस अत्यन्त मङ्गलमय तथा पिवत्र महाप्रयाण की कथा को श्रद्धा पूर्वक सुनता है वह निश्चित रूप से भगवान् की भिक्त को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाण्डवस्वर्गारोहण नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

इति एवं यत्संप्रयाणम् । अलमितशयेन स्वस्त्ययनं मङ्गलास्पदम् । अलं पवित्रं च ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायाम् टीकायाम् पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पाण्डवों का यह जो महाप्रयाण है वह अत्यन्त मङ्गलमय है और अत्यन्त पवित्र भी है ॥५१॥
इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१५।।



सोलहवाँ अध्याय

पृथिवी धर्मसंवाद

सूत उवाच

ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शसास ह । यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥

अन्वयः— हे विप्र ! ततः द्विजवर्यशिक्षया महाभागवतः परीक्षित् महीं शशास सूत्याम् अभिजातकोविदः यथा समादिशन् तथा महद्भुणः ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— पाण्डवों के परधाम गमन के पश्चात् हे शौनकजी महाभागवत राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की शिक्षा के अनुसार करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च षोडशे भूमिधर्मयोः कलिखित्रयोः । संवादे वर्ण्यते प्राप्तिः पालकस्य परीक्षितः । द्विजवर्याणां शिक्षया सदुपदेशेन। सूत्यां जन्मनि । अभिजातकोविदा जातकर्मविदः । हे विप्र, महतां गुणा यस्मिन् ।।१।।

उसके पश्चात् सोलहवें अध्याय में किल से खिन्न हुए भूमि तथा धर्म के संवाद का तथा पृथिवी के पालक राजा परीक्षित् का संवाद वर्णित है। श्रेष्ठ ब्राह्मणों के उपदेशानुसार राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन करते थे। जन्म के समय ज्योतिषियों ने परीक्षित् के जिन गुणों का वर्णन किया था वे सभी गुण उनमें विद्यमान थे।।१।। स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावत्तीम् । जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ।।२।।

अन्वयः— सः उत्तरस्य तनयाम् इरावतीम् उपयेमे तस्याम् जनमेजयादीन् चतुरः सुतान् उत्पादयत् ।।२।।

अनुवाद उन्होंने उत्तर की पुत्री इरावती के साथ विवाह किया और उससे जनमेजय आदि चार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

जनमेजयादीनित्यक्षराधिक्यं छान्दसम् । 'उत्पादयन्' इति पाठे हेतौ शतृप्रत्ययः । सुतानुत्पादयितुमिरावतीमुपयेम इति वाक्ययोजना ।।२।।

भाव प्रकाशिका

जनमेजयादीन् इत्यादि श्लोक के प्रथम पाद में एक अक्षर अधिक छन्दस प्रयोग होने के कारण है। टिप्पणीकार का कहना है कि 'प्रधानकर्मण्याख्येये न्यादीनामाहुर्द्धिकर्मणाम्।' इत्यादि के समान नव अक्षरों का एक चरण वाला यह अनुष्ठुप् विशेष है। उत्पादयत् इस पाठ में हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय समझना चाहिए। उन्होंने पुत्रों को उत्पन्न करने के लिए इरावती के साथ विवाह किया यह वाक्य योजना है।।२।।

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् । शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥३॥

अन्वयः— सः शारद्वतं गुरुं कृत्वा गङ्गायाम्त्रीन् अश्वमेधान् आजहार यत्र देवा अक्षगोचरा: ।।३।।

अनुवाद— उन्होंने कृपाचार्य को गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया, उस यज्ञ में देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

आजहार कृतवानित्यर्थ: । शारद्वतं कृपम् । यत्र येष्वश्वमेधेषु देवा दृष्टिगोचरा बभूवु: ।।३।।

भाव प्रकाशिका

शारद्वत कृपाचार्य का नाम है। परीक्षित् ने कृपाचार्य को अपना गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया उन यज्ञों में देवता प्रत्यक्ष रहते थे।।३।।

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् । नृपलिङ्गधरं शूद्रं घनन्तं गोमिथुनं पदा ॥४॥

अन्वयः— सः वीरः ववचित् दिग्विजये नृप लिङ्गधरं शूद्रं पदा गोमिथुनं ध्नन्तम् कलिम् ओजसा निजग्राह ।।४।। अनुवाद— वीर राजा परीक्षित् एक बार दिग्विजय के प्रसङ्ग में राजा का रूप बनाये हुए एक शूद्र को जो अपने पैरों से दो गौ के जोड़े को मारते हुए देखा और उसको बलपूर्वक पकड़कर उन्होंने दण्डित किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

निजग्राह निगृहीतवान् । कलिमेव निर्दिशति-नृपेति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने किल को ही निगृहीत किया। वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था और एक गौ और एक बैल को पैर से मार रहा था।।४।।

शौनक उवाच

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः। नृदेवचिह्नधृक् शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत्॥५॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्। अथवाऽस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्॥६॥

अन्वयः — दिग्विजये नृपः किलं कस्य हेतो केवलं निजग्राह (हतवान् निह यतः) असौ नृदेविचह्नधृक् शूद्रःकः यः गां पदा अहनत् । हे महाभाग ! यदि कृष्ण कथाश्रयम् अथवा अस्य पदाम्भोजमकरन्दिलहां सताम् तत्कथ्यताम् ।।५-६।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद — दिग्वजय के प्रसङ्ग में राजा ने किल को केवल दण्ड ही देकर क्यों छोड़ दिया, उसे मारा क्यों नहीं ? एक तो वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था दूसरे शूद्र था और गौ को अपने पैरों से मार रहा था उसको नहीं मारने का कारण क्या था ? हे महाभाग सूतजी यदि इस वृत्तान्त का सम्बन्ध भगवान् की कथा से हो अथवा श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग का पान करने वाले सन्तों से इसका सम्बन्ध हो तो इसको आप मुझे बतलाइये ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

कस्य हेतोरित । अयमर्थः- किलं कस्माद्धेतोः केवलं निजग्राह नतु हतवान् । यतोऽसौ शूद्रः अतिकुत्सितः । यो गां पदाऽहनदहन्निति । अस्य विष्णोः पदाम्भोजयोर्मकरन्दस्तं लिहन्त्यास्वादयन्ति ये तेषां सतां महतां वा कथाश्रयमिति समासान्निष्कृष्टस्यानुषङ्गः । तर्हि कथ्यताम् ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

शौनकजी के **कस्य हेतो:** कहने का अभिप्राय है कि राजा परिक्षित् किल का केवल नियह करके क्यों छोड़ दिये ? और उसको मारे नहीं । क्योंकि एक तो वह अत्यन्त निन्दित शूद्र था और वह पैर से गौ के जोड़े को मारता था, अतएव उसका तो उन्हें वध ही कर देना चाहिए था । इस बात का यदि भगवान् की कथा से सम्बन्ध हो अथवा भगवान् विष्णु के चरणारविन्द के पराग का रस पान करने वाले सन्तों की कथा से सम्बन्ध हो तो बतलाइये ।।५-६।।

किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः । क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥७॥

अन्वयः --- अन्यै असदालापैः किम् यद् आयुषः असद् व्यर्थः । हे अङ्गः । क्षुद्रायुषाम् मर्त्यानाम् नृणाम् ऋतम् इच्छताम् इह भगवान् मृत्युः उपहूतः ॥७॥

अनुवाद— दूसरी व्यर्थ की बातों से क्या लाभ है ? उससे तो आयु व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है । हे अङ्ग मरणशील मनुष्य होकर भी जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों के ही कल्याण के लिए यहाँ इस शोमित्र कर्म में यमराज को नियुक्त किया गया है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नो चेत्किमन्यैरसद्भिरालापै: । यद्यैरायुषो वृथा क्षय: । अस्माकमयं सत्रप्रयत्नोऽपि हरिकथामृतपानार्थ एवेत्याह सार्धाभ्याम्। क्षुद्रमल्पमायुर्येषाम् । अतो मर्त्यानां मरणधर्मवताम् । तथापि ऋतं सत्यं मोक्षमिच्छताम् । यो मृत्यु: स इह सत्रे शमितुरिदं शामित्रं कर्म पशुहिंसनं तदर्थमुपहूत: । तत: आह-न कश्चिदिति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि इसका भगवान् अथवा भागवतों की कथा से सम्बन्ध हो अन्यथा दूसरे व्यर्थ की बातों से क्या लाभ

उन्होंने उपहार भी प्राप्त किया । सुमेरु पर्वत के चारो ओर इलावृत वर्ष है, सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में रम्यक और हिरण्यमय वर्ष है । सुमेरु के दक्षिण दिशा में हरिवर्ष और कुरुवर्ष है । इन सबों को जीतकर वे उपहार प्राप्त किए ॥१२॥

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम्। प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥१३॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः। स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे॥१४॥ तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युञ्चम्भितलोचनः। महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥१५॥

अन्वयः— तत्र तत्र स्वपूर्वेषां महात्मनाम् कृष्णमाहात्म्य सूचकम् प्रगीयमानं यशः उपशृण्वन्, अश्वथाम्नः अस्त्रतेजसः, परित्रातम् आत्मानं, स्नेहं च वृष्णिपार्थानाम् तेषां केशवे भक्तिम् च उपशृण्वन्, तेभ्यः परमसंतुष्टः, प्रीत्युजृम्भितलोचनः महाधनानि वासांसि हारान् च ददौ ।।१३-१५।।

अनुवाद — उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने पूर्वज महात्माओं का भगवान् श्रीकृष्ण के माहात्म्य सूचक गाये जाते हुए यश सुनते हुए, अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रिक्षित अपने को, यदुवंशियों और पाण्डवों में परस्पर में होने वाले प्रेम को तथा पाण्डवों की भगवान् श्रीकृष्ण में होने वाली भिक्त को वे सुने इन सभी बातों को करने वाले लोगों से राजा अत्यन्त सन्तुष्ट थे। प्रेमातिरेक के कारण उनके नेत्रकमल विकसित हो गये और महामनस्वी राजा परीक्षित् ने उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों को तथा हारों को प्रदान किया ।।१३-१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रगीयमानं यशः यशआदीनि शृण्वंस्तेभ्यो ददाविति तृतीयेनान्वयः ।।१३-१५।।

भाव प्रकाशिका

गाये जाने वाले यश को लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना । उन यश आदि को सुन कर वे महामनस्वी प्रसन्न हो गये तथा उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों एवं हारों को प्रदान किए ।।१३-१५।।

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् । स्निग्घेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥१६॥

अन्वयः— सारथ्य-पारषद-सेवन-सख्य-दौत्य-वीरासन-अनुगमन्-स्तवन-प्रणामम्-स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत् प्रणतिं च शृण्वन् नृपतिः विष्णोः चरणारविन्दे भिक्तं करोति ।।१६।।

अनुवाद— उन यशोगान करने वाले लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमाितरेक के कारण, पाण्डवों के सारिथ बन गये, उनके सभापित बने, वे पाण्डवों की सेवा भी करते थे, वे पाण्डवों के सखा बने तथा पाण्डवों के दूत बनने का भी काम किए रात्रि को भगवान् हाथ में खड्ग लेकर पाण्डवों के शिविर की रक्षा रात्रि में करते थे, पाण्डवों के पीछे-पीछे चलते थे, पाण्डवों की स्तुति करते थे तथा पाण्डवों को प्रणाम भी करते थे। वे अपने स्नेहपात्र पाण्डवों के चरणों में संसार को झुका दिये। इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् विष्णु के चरणकमलों में भिक्त करते थे।।१६।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च स्निग्धेषु पाण्डवेषु विष्णोर्यानि सारथ्यादीनि कर्माणि तानि शृण्वन् । तथा विष्णोर्जगत्कर्तृकां प्रणतिं च शृण्वन्। नृपतिः । परीक्षिद्विष्णोश्चरणारविन्दे भक्तिं करोति स्म । पारषदमिति रेफषकारयोर्विश्लेषश्छान्दसः । तत्र पार्षदं सभापतित्वम्। सेवनं चित्तानुवृत्तिः । वीरासनं रात्रौ खड्गहस्तस्य तिष्ठतो जागरणम् ।।१६।।

उन्होंने यशोगान करने वाले लोगों के मुख से सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्नेह के पात्र पाण्डवों के सारिथ आदि का भी काम किए । उन्होंने यह भी सुना कि भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को पाण्डवों के चरणों में झुकाकर प्रणाम करवाया । वे रात्रि में अपने हाथ में खड्ग धारण करके पाण्डवों के शिविर की रक्षा भी करते थे । इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की भिक्त करते थे ।।१६।।

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् । नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीतित्रिबोध मे ॥१७॥

अन्वयः— एवं पूर्वेषाम् अन्वहम् वृत्तिम् वर्तमानस्य, नातिदूरे किल यत् आश्चर्यम् आसीत् तत् मे निबोध ।।१७।। अनुवाद— इस तरह से अपने पूर्वजों की वृत्ति का प्रतिदिन अनुवर्तन करने वाले राजा के साथ बहुत जल्दी ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी, उस आश्चर्य को आप मुझसे सुनें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वृत्तिमनुवर्तमानस्य सतः । नातिदूरे शीघ्रमेव ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् भी अपने पूर्वज पाण्डवों की ही वृत्ति का अनुगमन करते थे। उनके जीवन में शीघ्र ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी उसको आप मुझसे सुनें ॥१७॥

धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥

अन्वयः— एकेन पद चरन् धर्मः, विच्छायां गाम् उपलभ्य, विवत्साम् मातरम् इव अश्रुवदनाम् उपलभ्य पृच्छति स्म ॥१८॥

अनुवाद— बैल का रूप धारण करके एक पैर से चलता हुआ धर्म मृतवत्सा माता के समान दुःखी पृथिवी से मिलकर पूछे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मों वृषरूप: । विच्छायां हतप्रभाम् । गां गोरूपां पृथ्वीम् । विवत्सां नष्टापत्याम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

वृष का रूप धारण किए धर्म, जो एक पैर पर चल रहा था, वह गौ रूप धारिणी पृथिवी से मिला । वह गौ जिसका बच्चा मर गया हो ऐसी निष्प्रभ माता के समान गौ से पूछा ॥१८॥

धर्म उवाच

कच्चिद्धद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन । आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब ॥१९॥

अन्वयः— भद्रे ! किच्चत् ते आत्म्नः अनामयम् ? ईषत् म्लायता मुखेन विच्छायासि, भवतीम् अन्तराधिम् आलक्षये। अम्ब ! कञ्चन दूरे बन्धुं शोचिस ।।१९।।

धर्म ने कहा

अनुवाद हे भद्रे ! तुम्हारा कुशल तो है न ! कुछ मलीन होते हुए मुख के कारण तुम श्रीहीन प्रतीत होती हो, लगता है तुम्हारे मन में बहुत अधिक कष्ट है । हे अम्ब ! तुम अपने किसी दूर देश में विद्यमान अपने बान्धव को सोच रही हो क्या ?।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ते आत्मनो देहस्य यद्यपि वहिरामयो न लक्ष्यते तथाप्यन्तर्मध्ये आधिः पीडा यस्यास्तां त्वामालक्षये । केन । यतो विच्छायासि, अत ईषन्म्लायता वैवर्ण्यं भजता मुखेन लिङ्गेन । तत्र कारणानि कल्पयन्यृच्छति-दूरेबन्धुमित्यादिपञ्चिधः । दूरे स्थितं बन्धुम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वृष रूपधारी धर्म ने कहा कि तुम्हारे शरीर में तो कोई रोग नहीं दिखता है, लेकिन मुझे लगता है कि तुम्हारे मन में बहुत अधिक पीडा है, इसीलिए तुम श्रीहीन सी प्रतीत हो रही हो। यह तुम्हारे थोड़ा सा मिलन पड़े हुए मुख के कारण प्रतीत होता है। उसके विषय में कारण की कल्पना करते हुए दूरे बन्धुम्० इत्यादि पाञ्च श्लोकों से वह पूछता है दूर देश में विद्यमान किसी अपने बन्धु के विषय में सोचती हो क्या ?॥१९॥

पादैर्न्यूनं शोचिस मैकपादमात्मानं वा वृषलैभोंक्ष्यमाणम् । आहो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्त्रजा उतस्विन्मघवत्यर्षति ॥२०॥

अन्वयः— पादैः न्यूनम् एकपादं माम् शोचिस वा वृषलैः भोक्ष्यमाणम् आत्मानं शोचिस । आहो हृतयज्ञभागान् सुरान् शोचिस, उतस्वित् अवर्षति मधवित शोचिस ।।२०।।

अनुवाद क्या तीन पादों के विनष्ट हो जाने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? अथवा अपने विषय में सोच रही हो कि मेरे ऊपर शूद्र प्रशासन करेंगे ? अथवा जिनके यज्ञों का भाग छिन लिया गया है, उन देवताओं के विषय में तुम सोच रही हो क्या ? अथवा इन्द्र के द्वारा वर्षा नहीं किए जाने के कारण अकाल से पीड़ित अपने विषय में तुम सोच रही हो ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्रिभिः पादैर्न्यूनमत एवैकपादम् । मा मां मल्लक्षणं जनमित्यर्थः । वृषलैरित ऊर्ध्वं भोक्ष्यमाणम् । पुंस्त्वमात्मपदविशेषणत्वात्। हृता यज्ञभागा येषां तान् । यज्ञाद्यकरणात् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

तीन पैरों के नहीं रहने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? मेरे जैसे व्यक्ति के विषय में सोचती हो ? अब इसके बाद मेरे ऊपर प्रशासन शूद्र करेंगे यह सोचकर दु:खी हो क्या ? मे आत्मा पद का विशेषण होने के कारण भोक्ष्यमाणम् में पुल्लिङ्ग है यज्ञ आदि के नहीं किए जाने के कारण जिनके भाग अपहत हो गये हैं ऐसे देवताओं के विषय में सोच रही हो क्या ?।।२०।।

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् । वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्यान् ॥२१॥

अन्वयः— हे उर्वि देवि ! अरक्ष्यमाणाः स्त्रियः अथो पुरुषादैः इव आर्तान् बालान् शोचसि ? कुकर्मणि ब्रह्मकुले वाचं देवीं शोचसि, वा अब्रह्मण्ये राजकुले शोचसि, अथवा कुलाग्रचान् शोचसि ।।२१।।

अनुवाद— हे पृथिवी देवि ! आप क्या पितयों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है, उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हैं, अथवा राक्षस के समान पिताओं के द्वारा आर्त बने हुए बालकों के विषय में सोचती हो? अथवा निन्दित कर्म करने वाले ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी विद्यादेवी के विषय में आप सोच रही हो । या नास्तिक राजाओं के विषय में आप सोच रही हो, अथवा श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न दु:खी ब्राह्मणों के विषय में आप सोच रही हो ?॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हे उर्वि पृथ्वि, भर्तृभिररक्ष्यमाणाः स्त्रियः पितृभिररक्ष्यमाणान्बालान्त्रत्युत तैरेव निर्दयैरार्तान् क्लिष्टान् । वाचं देवीं सरस्वतीं कुकर्मणि दुराचारे स्थितान् । कुलाग्र्यान्ब्राह्मणोत्तमान्सेवकान् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हे पृथिवी ! आप क्या पितयों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हो ? अथवा अपने पिता के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है उन बालकों के विषय में सोच रही हो ? जिन बालकों के पिता ही राक्षसों के समान उन बालकों को अत्यधिक कष्ट देते है, उन बालकों के विषय में सोच रही हो अथवा दुराचारी ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी सरस्वती देवी के विषय में सोचती हो ? अथवा ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं के विषय में सोचती हो ? या सेवक बने हुए ब्राह्मणों के विषय में तुम सोचती हों ?॥२१॥

किं क्षत्रबन्धून्किलनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवतोषितानि । इतस्ततो वाशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥२२॥

अन्वयः— किं कलिना उपसृष्टान् क्षत्रबन्धून् वातैः अवरोपितानि राष्ट्राणि वा अशन-पान स्नान व्यवावायोन्मुखम् जीवलोकम् शोचसि ।।२२।।

अनुवाद— आप किल दोष से व्याप्त राजाओं को या उन सबों से व्याप्त राष्ट्रों को; खान-पान-निवास-स्नान तथा मैथुन के विषय में मनमानी करने वाले मनुष्यों के विषय में सोच रही हैं क्या ?।।२२।।

भावार्थ दीपिका

उपसृष्टान् व्याप्तान् अवरोपितान्युद्धासितानि । व्यवायो मैथुनम् । इतस्ततो निषेधानादरेण सर्वतोऽशनादिषून्मुखं प्रवर्तमानं जीवलोकं वा ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उपसृष्ट पद व्याप्त का बोधक है, अवरोपितानि का अर्थ है विनष्ट कर दिए गये। व्यवाय का अर्थ है मैथुन इन सबों के विषय में जो शास्त्रों में नियम बतलाये गये हैं, उन सबों का अनादर करने वाले जीव समूह के विषय में आप सोच रही हैं क्या ?॥२२॥

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि । अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥२३॥

अन्वयः यद्वा हे धारित्रि अम्ब ते भूरिभारकृतावतारस्य अन्तर्हितस्य हरेः स्मरती विसृष्टाऽसि कर्माणि शोचिस ?।।२३।। अनुवाद अथवा हे धरती माँ आपके अत्यधिक भार को दूर करने के लिए अवतार ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् के अन्तर्धान हुए श्रीहरि को स्मरण कर रही हो, जिन श्रीहरि ने तुमको त्याग दिया है, जिनकी लीलाएँ मोक्षकामी पुरुषों के आश्रय हैं, उन श्रीहरि के विषय में शोच रही हो क्या ?।।२३।।

भावार्थ दीपिका

हे अम्ब मातः हे धरित्रि, ते तव यो भूरिभारस्तस्यावतारणार्थं कृतावतारस्य कर्माणि स्मरन्ती तेन विसृष्टा सती शोचिस। निर्वाणं विलम्बितमाश्रितं येषु तानि । पाठान्तरे निर्वाणं विडम्बितमुपहसितं यैः । मोक्षादप्यधिकसुखानीत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

हे मात: पृथिवी ! तुम्हारे ऊपर जब बहुत भार बढ़ जाता है उस समय तुम्हारे भारातिशय्य को दूर करने के लिए श्रीभगवान् अवतार ग्रहण करते हैं । जहाँ पर निर्वाण विडम्बिताति पाठ हैं उसका अर्थ होगा कि मोक्ष से भी अधिक मुख देते हैं। तथा जो भगवान् तुमको छोड़कर अपने लोक में चले गये हैं उनके विषय में तुम सोचती हो क्या ?॥२३॥

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुन्धरे येन विकर्शितासि । कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥२४॥

अन्वयः हे वसुन्धरे ! येन त्वं विकर्शितासि इदं तवाधिमूलम् मम आचक्ष्व, हे अम्ब ! बलिनाम् बलियसा कालेन ते सुरार्चितम् सौभागम् इतम् शोचसि ।।२४॥

अनुवाद हे भूदेवि ! आप तो धनधान्य की खान हैं । जिसके कारण आप इतना दुखी है, अपनी उस अन्तर्व्यथा का कारण मुझे बतलाइये । अथवा सभी बतलवानों से भी बलवान् काल ने देवताओं से पूजित जो आपका सौभाग्य है उसको आप से छिन लिया है उसके विषय में आप दु:खी हैं ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे अम्ब, ते सौभाग्यं कालेन वा हतम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

धर्म ने कहा कि आप तो वसुन्धरा हैं, अर्थात् समस्त धन-धान्यों की खान हैं, आप इतना दु:खी क्यों हैं? क्या आप देवताओं के द्वारा भी पूजित होने वाले अपने सौभाग्य के विषय में सोच रही हैं जिसको काल ने आपसे छिन लिया है ? काल के समान तो कोई भी बलवान् नहीं है । आप उसी के विषय में सोचकर दु:खी हो रही हैं क्या ?॥२४॥

धरण्यवाच

भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छिस । चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैलोंकसुखावहैः ॥२५॥

अन्वयः हे धर्म ! भवान् हि यत् मामनु पृच्छिस तत् सर्वं वेद येन त्वम् चतुर्भिः लोकसुखावहैः पादैः वर्तसे ।।२५।। अनुवाद पृथिवी ने कहा हे धर्म ! आप जो कुछ मुझसे पूछ रहे हैं वह सबकुछ आप जानते हैं, क्योंकि संसार को सुख प्रदान करने वाले आपके चार चरण हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

भवान् जानात्येव तथापि वक्ष्यामीत्याह । येन हेतुभूतेन त्वं चतुर्भिः पादैर्वर्तसे । यत्र च सत्यादयो महागुणा न वियन्ति (न क्षीयन्ते स्म) तेन श्रीनिवासेन रहितं लोकं शोचमीति पष्ठेनान्वयः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने कहा— आप तो जानते ही हैं, फिर भी मुझसे पूछे रहे हैं, तो मैं आपको बतला रही हूँ क्योंकि आपके चार चरण हैं, और वे सभी चरण संसार को सुख देने वाले हैं जिन श्रीभगवान् के सत्यादि गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन भगवान् श्रीनिवास से रहित हो गया है संसार; उस संसार के विषय में मैं सोचती हूँ इस श्लोक का सम्बन्ध आगे के छठे श्लोक से हैं ॥२५॥

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवम् । शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२६॥

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः । स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिधैर्यं मार्दवमेव च ॥२७॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः। गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः॥२८॥ ऐते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः। प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित्॥२९॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम्। शोचिम रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम्॥३०॥

अन्वयः सत्यं, शौचम् दया, क्षान्तः, त्यागः, सन्तोषः आर्जवम्, शमः दमः, तपः साम्यम्, तितिक्षा, उपरितः, श्रुतम्, ज्ञानम्, विरक्तिः, ऐश्वर्यम्, शौयं तेजः बलं स्मृतिः, स्वातंत्र्यम्, कौशलम्, कान्तिः, धैर्यम्, मार्दवम्, प्रागल्म्यं, प्रश्रयः, शीलम् सह, ओजः, बलम्, भगः, गाम्भीर्यम्, स्थैर्यम्, आस्तिक्यम्, कीर्तिः मानः, अनहंकृतिः, एते च अन्ये च महत्त्वम् इच्छद्भिः प्रार्थ्याः महागुणाः यत्र नित्याः कदाचन न वियन्ति । तेन गुणपात्रेण श्रीनिवासेन रहितं पाप्मना कलिना इक्षितम् लोकम् साम्प्रतम् शोचामि ।।२६-३०।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् में सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरित, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वातन्त्र्य, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और अहङ्कार राहित्य ये जो अप्राकृत गुण हैं, तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषों के द्वारा वांछित महान गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय श्रीभगवान् से रहित और पापी कलियुग के द्वारा दृष्ट संसार के विषय में सोचती हूँ ॥२६-३०॥

भावार्थ दीपिका

सत्यं यथार्थभाषणम् । शौचं शुद्धत्वम् । दया परदुःखासहनम् । क्षान्तिः क्रोधप्राप्तौ चित्तसंयमनम् । त्यागोऽर्थिषु मुक्तह्रस्तता । संतोषोऽलंबुद्धिः । आर्जवमवक्रता । शमो मनोनैश्चल्यम् । दमो वाह्येन्द्रियनैश्चल्यम् । तपः स्वधर्मः । साम्यमिरिमित्राद्यभावः । तितिक्षा परापराधसहनम् । उपरितर्लाभप्राप्तावौदासीन्यम् । श्रुतं शास्त्रविचारः । ज्ञानमात्मविषयम् । विरक्तिर्वैतृष्ण्यम् । ऐश्वर्यं नियन्तृत्वम् । शौर्यं संग्रामोत्साहः । तेजः प्रभावः । बलं दक्षत्वम् । स्मृतिः कर्तव्याकर्तव्यार्थानुसन्धानम्। स्वातन्त्र्यमपराधीनता । कौशलं क्रियानिपुणता । कान्तिः सौन्दर्यम् । धैर्यमव्याकुलता । मार्दवं चित्ताकाठिन्यम् । प्रागलभ्यं प्रतिभातिशयः । प्रश्रयो विनयः । शीलं सुस्वभावः । सहओजोबलानि मनसो ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च पाटवानि । भगो भोगास्पदत्वम् । गाम्भीर्यमक्षोभ्यत्वम् । स्थैर्यमचञ्चलता । आस्तिक्यं श्रद्धा । कीर्तिर्यशः । मानः पूज्यत्वम् । अनहंकृतिर्गर्वाभावः। एते एकोनचत्वारिंशत् । अन्ये च ब्रह्मण्यशरण्यत्वादयो महान्तो गुणा यस्मित्रत्याः सहजा न वियन्ति न क्षीयन्ते स्म । तेन गुणपात्रेण गुणालयेन । पाप्मना पापहेतुना ।।२६-३०।।

भाव प्रकाशिका

यथार्थ बात को कहने को सत्य कहते हैं, शुद्धता को ही शौच कहते हैं, दूसरे के दुःख को नहीं सह सकने को दया कहते हैं, क्रोध हो जाने पर भी चित्त को संयमित करके क्षमाकर देने को क्षान्ति कहते हैं, मुक्त हस्त होकर अर्थियों को देने को त्याग कहते हैं, अब और नहीं चाहिए इस प्रकार की बुद्धि को सन्तोष कहते हैं। सीधे पन को आर्जव कहते हैं, मन की निश्चलता को शम कहते हैं बाह्येन्द्रियों को अपने वश में रखने को दम कहते हैं अपने धर्म के पालन को तप कहते है, शत्रु तथा मित्र के भाव से रहित होकर सबों को एक समान देखने को साम्य कहते हैं, दूसरे के अपराध को सहने को तितिक्षा कहते हैं। लाभ की प्राप्ति होने पर भी उससे उदासीन बने रहने को उपरित कहते हैं। शास्त्रों के चिन्तन को श्रुत कहते हैं। आत्मविषयक ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का नहीं होना ही विरिक्त है। नियामकता को ऐश्वर्य कहते हैं। संग्राम में सदा उत्साह के बने रहने को शौर्य कहते हैं। प्रभाव सम्पन्नता को तेज कहते हैं। दक्षता (निपुणता) को बल कहते हैं। करने योग्य तथा नहीं करने योग्य के विचार को स्मृति कहते हैं। विषयों के पराधीन नहीं रहने का स्वातन्त्र्य कहते हैं, कार्यों को करने की निपुणता को कौशल कहते हैं, सौन्दर्य को कान्ति कहते हैं। व्याकुल न होने को

धैर्य कहते हैं। चित्त की कठिनता का न होने को ही मार्दव कहते हैं। प्रतिभा की अतिशयता को प्रागल्भ्य कहते हैं, नम्रता को प्रश्रय कहते हैं, स्वभाव के सुन्दर होने को शील कहते हैं, सह, ओज एवं बल इन तीनों से मन, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों में कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। भोग की योग्यता को भग कहते हैं। क्षोभ राहित्य को गाम्भीर्य कहते हैं। चाञ्चल्य राहित्य को स्थैर्य कहते हैं, श्रद्धा को ही अस्तिक्य कहते हैं। यश को ही कीर्ति कहते हैं, पूज्यत्व को मान कहते हैं। गर्व के अभाव को अनहंकृति कहते हैं।

ये श्रीभगवान् के उनतालिस दिव्य गुण हैं। इसके अतिरिक्त उनमें ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों का भक्त होना) शरण्य (रक्षक होना), इत्यादि महान् गुण सदैव बने रहते हैं, अतएव उनके ये गुण स्वाभाविक है। उनके ये गुण कभी भी क्षीण नहीं होते हैं। इन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय हैं श्रीभगवान् तथा कलियुग। सारे पापों का साधन है। उस पापकारी कलियुग की दृष्टि के विषय बने हुए जगत् के विषय में मैं सोचती हूँ ॥२६-३०॥

आत्मानं चानुशोचामि भगवन्तं चामरोत्तमम् । देवान्पितृनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ॥३१॥

अन्वयः अहम्, आत्मानम्, अमरोत्तमम् भवन्तम्, देवान् पितृन् ऋषीन् साधून् तथा सर्वान् वर्णान् अनुशोचामि ।।३१।। अनुवाद मैं अपने विषय में, देवताओं में श्रेष्ठ आपके विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुजनों तथा सभी ब्राह्मणादि वर्णों के विषय में सोच रही हूँ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका- नहीं हैं ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने कहा कि मैं अपने विषय में, आप (धर्म) के विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुओं तथा ब्राह्मणादि सभी वर्णों के विषय में चिन्तित हूँ। क्योंकि पापी कलियुग इन सबों को दूषित कर देने वाला है ॥३१॥

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः । सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३२॥

अन्वयः— यदपाङ्गमोक्षकामाः भगवत् प्रपन्नाः ब्रह्मादयः बहुतिथं तपः समचरन् सा श्रीः स्ववासम् अरविन्दवनम् विहाय अनुरक्ता सती यत्पादसौभगम् अलं भजते ।।३२।।

अनुवाद जिस लक्ष्मी जी का कृपा कटाक्ष प्राप्त करने के लिए श्रीभगवान् के शरणागत ब्रह्मा इत्यादि उत्तम देवता बहुत समय तक तपस्या किए वे ही लक्ष्मीजी अपने निवास स्थान कमल वन का परित्याग कर प्रेम पूर्वक अनुरक्त होकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के सौन्दर्य का सदा सेवन करती हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य विरहो दुःसह इत्याह चतुर्भिः । ब्रह्मादयो यस्याः श्रियोऽपाङ्गमोक्षः स्वस्मिन् दृष्टिपातस्तत्कामाः सन्तो बहुतिथं बहुकालं तपः समचरन्सम्यक्चरन्ति स्म । भगवद्भिरुत्तमैः प्रपन्ना आश्रितापि सा श्रीर्यस्य पादलावण्यमलमनुरक्ता सती सेवते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त किठन है इस बात को पृथिवी देवी ने **ब्रह्मादयः इत्यादि** चार श्लोकों से कहा है। **ब्रह्मा इत्यादि** देवता जिस श्रीदेवी के कृपाकटाक्ष को प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों तक तपस्या किए वे उन उत्तम देवताओं के आश्रय रूप से जाने जाने पर भी श्रीदेवि जिन भगवान् के चरणों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उनके चरणों में अत्यधिक अनुरक्त रहकर उन दोनों चरणों की सेवा करती हैं, उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त किठन है। ।३२।।

तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्यदैर्भगवतः समलंकृताङ्गी । त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३३॥

अन्वयः— तस्य अब्जकुलिशाङ्कुश केतुकेतैः श्रीमत्पदैः समलंकृताङ्गी सती भगवतः विभूतिम् उपलभ्य त्रीन् लोकान् अत्यरोचे, तदन्ते उत्समयन्तीं मां व्यसृजत् ।।३३।।

अनुवाद उन श्रीभगवान् के कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा आदि के चिह्नों से चिह्नित श्रीचरणों से विभूषित होने के कारण मुझे बहुत अधिक वैभव की प्राप्ति हुयी थी। मैं तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित हो गयी थी। उसके नाशक समय आ जाने पर अत्यधिक गर्विली मुझको श्रीभगवान् ने त्याग दिया।।३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य भगवतः श्रीमद्भिः पदैः । केतुर्ध्वजः । अब्जादयः केताश्चिह्नानि येषां तैः । यद्वा अब्जादीनामाश्रयैः सम्यगलंकृतमङ्गं यस्याः साऽहं ततो भगवतो विभूतिं संपदमुपलभ्य प्राप्य त्रीन् लोकानितक्रम्य अरोचे शोभितवत्यस्मि । पश्चात्तस्या विभूतेरन्ते नाशकाले प्राप्ते सत्युत्स्मयन्तीं गर्वं कुर्वाणां मां स व्यसृजत्यक्तवान् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

कमल, वज्र, अङ्कुश तथा ध्वजा इत्यादि के चिह्नों से युक्त शोभा सम्पन्न श्रीभगवान् के चरणों से अथवा कमल आदि के आश्रयभूत श्रीभगवान् के चरणों से मेरे अङ्ग अच्छी तरह से अलंकृत हो गये थे। इस प्रकार की मैं श्रीभगवान् से विभूति को प्राप्त करके तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित होने लग गयी थी। उसके पश्चात् मेरी उस विभूति के नाश का काल आने पर मैं अपने पर गर्व करने लग गयी थी यह देखकर लगता है कि श्रीभगवान् ने मुझे त्याग दिया है।।३३॥

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः । त्वां दुःस्थमूनपदमात्मिन पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३४॥

अन्वयः— यो वै आत्मतन्त्रः आसुरवंशराज्ञाम् मम् अतिभरम् अक्षौहिणीशतम् अपानुदत् ऊन पदम् दुःस्थम् त्वाम् पौरुषेण आत्मिन सम्पादयन् युदुषु रम्यम् अङ्गम् अबिभ्रत् ।।३४।।

अनुवाद स्वतन्त्र रहने वाले जो परमात्मा आसुर वंश में उत्पन्न राजाओं के मेरे ऊपर अत्यन्त भार स्वरूप सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं को विनष्ट कर दिए तथा पैरों के कम हो जाने के कारण तुमको अपने पौरुष से सर्वाङ्ग पूर्ण बना देने की इच्छा से जिन्होंने यदुवंश में अत्यन्त मनोहर शरीर वाले के रूप में अवतीर्ण हुए उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

किंच यो वै आसुरो वंशो येषां तेषां राज्ञामक्षौहिणीशतरूपं ममातिभरं भारमपनीतवान् । त्वां चोनपदत्वादुःस्थं सन्तं पौरुषेण पुरुषकारेणात्मिन स्वस्मिन् संपूर्णपदं सुस्थं संपादयन् । 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति हेतौ शतृप्रत्ययः । संपादियतुमित्यर्थः। अविभ्रत् धृतवानित्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तो स्वतंत्र है। अतएव वे हमारे ऊपर भार बने हुए जिन असुर वंश वाले राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना थी उनकी उस सेना को भगवान् ने विनष्ट करके मेरे अत्यधिक भार को दूर कर दिया, तथा तीन पैरों के कम होने के कारण तुम दु:खी थे, तुमको अपने ही पौरुष से पूर्ण बनाने के लिए जिन भगवान् ने अत्यन्त सुन्दर शरीर धारण करके यदुवंश में अवतार ग्रहण किया उन भगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है।

सम्पादयन् पद में लक्षण हेत्वोः क्रिययाः इस सूत्र से हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय हुआ है और उसका अर्थ है सम्पादित करने के लिए ॥३४॥

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः । स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिवटङ्कितायाः ॥३५॥

अन्वयः— यः प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः मधुमानिनीनां समानम् स्थैर्यं अहरत् यदङ्घ्रिवटङ्कितायाः मम रोमोत्सवः तस्य पुरुषोत्तमस्य विरहं का वा सहेत ।।३५।।

अनुवाद जिन्होंने अपने प्रेम पूर्ण दृष्टिपात मधुर मुसकान तथा प्रेमभरी बातों से मधुमानिनियों सत्यमामा इत्यादि के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी छिन लिया तथा जिनके चरण कमलों के संस्पर्श से निरन्तर रोमाञ्चित मैं आनन्दमग्न रहती थे उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन बर्दास्त कर सकती है ?॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तस्य विरहं का वा सहेत । प्रेमावलोकश्च रुचिरस्मितं च वल्गुजल्पश्च तैर्मधुमानिनीनां सत्यभामादीनां समानं गर्वसहितं स्थैर्यं स्तब्धत्वं योऽहरत् । यस्याङ्घ्रिणा रजस्युत्थितेन विटङ्किताया अलंकृतायाः सस्यादिमिषेण रोमोत्सवो भवति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन रमणी बर्दास्त कर सकती है ? जिन भगवान् ने अपने प्रेमपूर्वक चितवन, मधुर मुस्कान और मनोहर बातों से सत्यभामा इत्यादि द्वारकापुरी की मानिनियों के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी अपहृत कर लिया तथा जिनके चरणों से निकली धूलि से अलंकृत मुझको सस्य सम्पत्ति के व्याज से रोमोत्सव हो जाया करता था ॥३५॥

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसंवादो नाम षोडशोऽध्याय: ॥१६॥

अन्वयः— तयोः पृथिवी धर्मयोः एवं कथयतोः तदा परीक्षित् नाम राजर्षिः प्राचीं सरस्वतीम् प्राप्तः ।।१६।।

अनुवाद जिस समय वे दोनों पृथिवी और धर्म आपस में इस तरह से बातें कर रहे थे उसी समय परीक्षित् नामक राजर्षि प्राची सरस्वती में आ गये ॥३६॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के पृथिवीधर्मसंवाद नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

कथयतोः सतोः प्राचीं पूर्ववाहिनीं सरस्वतीं कुरुक्षेत्रे ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से जब धर्म और पृथिवी परस्पर में बातें कर ही रहे थे उसी समय पूर्व बाहिनी सरस्वती कुरुक्षेत्र में परीक्षित् नामक राजर्षि आ गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की भावप्रकाशिका नामक शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित् द्वारा कलियुग का निग्रह

सूत उवाच

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् । दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥१॥

अन्वयः— तत्र राजा नृपलाञ्छनम् दण्डहस्तं वृषलम् गोमिथुनम् अनाथवत् हन्यमानम् ददृशे ॥१॥

अनुवाद — वहाँ पर राजा परीक्षित् ने देखा कि राजा का वेष बनाये हुए कोई शूद्र अपने हाथ में दण्डा लेकर गौ और बैल के जोड़े को ऐसे पीट रहा था जैसे वे अनाथ हों ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे राज्ञः कलेर्निग्रह उच्यते । तस्यैवं वीर्यभाजोऽपि वैराग्यं वक्तुमद्भुतम् ।। हन्यमानं ताड्यमानम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय के बाद सत्रहवें अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा किल के निग्रह का वर्णन इसलिए किया जा रहा है कि इस तरह के पराक्रम से सम्पन्न राजा परीक्षित् के अद्भुत वैराग्य का आगे वर्णन किया जा सके।

ताड्यमानम् का अर्थ मारे जाते हुए है। अर्थात् वह शूद्र गौ और बैल के जोड़े को बड़ी ही निर्दयता के साथ मार रहा था ॥१॥

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् । वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥२॥

अन्वयः - शूद्रताडितम् तदैकेन सीदन्तम् विभ्यतम्, वेपमानम् मेहन्तमिव मृणालधवलं वृषं ददृशे ।।२।।

अनुवाद— एक पैर से खड़ा तथा दुःखी भयभीत, काँपते हुए तथा डर के मारे मूत्र त्याग करते हुए मृणाल तन्तु के समान श्वेत वर्ण के बैल को शूद्र के द्वारा पीटे जाते हुए राजा ने देखा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मृणालं पद्मकन्दस्तद्वद्धवलम् । भयान्मेहन्तं मूत्रयन्तम् । इवेत्यनेन पादावशेषो धर्मो भयान्मूत्रयन्निव प्रतिक्षणं क्षीयमाणांशस्तस्याप्यनिर्वाहात्कम्पमान इवेति दर्शितम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कमल के डंठल के समान श्वेत वर्ण के तथा भय के कारण मूत्र त्याग करते हुए के समान बैल को राजा ने देखा । यह कहकर बतलाया गया है कि जिसका केवल एक ही पैर बचा था और वह भय के कारण मूत्र त्याग कर रहा था अर्थात् प्रत्येक क्षण क्षीण होता जा रहा था । बचे हुए धर्म के अंश का निर्वाह नहीं होने के कारण जैसे वह काँप रहा हो ॥२॥

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् । विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसिमछतीम् ॥३॥

अन्वयः— धर्मदुघां दीनाम् भृशंशूद्रपदाहताम्, विवत्सां साश्रुवदनाम् क्षामां यवसम् इच्छन्तीम् गां च ददृशे ।।३।। अनुवाद— धर्म के साधनभूत दूध दिध घृत इत्यादि को पैदा करने वाली, दीन, शूद्र के पैरों द्वारा बहुत अधिक प्रताडित, बछड़े रहित, जिसकी आंखों से आसू बह रहे थे, दुर्बल, तथा भूख के कारण घास खाना चाहने वाली गौ को राजा ने देखा ।।३।।

भावार्थ दीपिका— धर्मदुघां हिवर्दोग्घ्रीम् । क्षामां कृशाम् । यवसं तृणम् । अत्र सस्यादिप्रसवक्षयाद्विवत्सेव । यज्ञाद्यभावात् कृशा । अतएव यज्ञभागमिच्छन्ती पृथ्वीति सूचितम् ॥३॥

धर्मदुघां का अर्थ है हिविष्य को उत्पन्न करने वाली, क्षामाम् अर्थात् अत्यन्त दुर्बल, यवस अर्थात् तृण खाना चाहने वाली, सस्यादि के नहीं उत्पन्न करने के कारण विवत्सा के समान पृथिवी थी । यज्ञ इत्यादि के नहीं होने के कारण वह कृश थी, अतएव यज्ञ के भाग को प्राप्त करना चाहती थी पृथिवी, इस अर्थ को भी सूचित किया गया है ॥३॥

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् । मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥४॥

अन्वयः कार्तस्वरपरिच्छदम् रथम् आरूढः समारोपितकार्मुकः राजा मेघगम्भीरया वाचा पप्रच्छ ।।४।।

अनुवाद — सुवर्ण जटित रथ पर बैठे हुए और धनुष को चढ़ाये हुए राजा ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से पूछा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कार्तस्वरं सुवर्णं तन्मयः परिच्छदः यस्य । स्वर्णनिबद्धमित्यर्थः । सज्जीकृतकार्मुकः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् सुवर्णमय परिच्छदों से युक्त रथ पर बैठे हुए थे और धनुष को चढ़ाये हुए थे । उन्होंने उस शूद्र से मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी से पूछा ॥४॥

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली । नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥५॥

अन्वयः— मच्छरणे लोके त्वं कः यः बली सन् बलात् अबलान् हंसि ? नटवत् वेषेण नरदेवः, किन्तु कर्मणा अद्विजः असि ?।।५।।

अनुवाद अरे तुम कौन हो ? जो मेरे राज्य में बलवान् होकर भी बलपूर्वक दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? तुम नट के समान राजा का वेष बनाये हो किन्तु तुम्हारा कर्म शूद्र का है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

हंसि घातयसि । राजाहमिति चेत्तत्राह । नट इव वेषमात्रेण नरदेवोऽसि । कर्मणा त्वद्विजः शूद्रः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

हंसि घातयिस । अर्थात् तुम कौन हो ? जो इन दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? यदि कहो कि मैं राजा हूँ तो ऐसी बात नहीं है तुम किसी नट के समान राजा का वेष बनाये हो, तुम्हारा कर्म तो शूद्र का है ॥५॥ कस्त्वं कृष्णो गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना । शोच्योऽस्यशोच्यान् रहिस प्रहरन्वधमहिस ॥६॥

अन्वय:— गाण्डीवधन्वना सह कृष्णे दूरं गते त्वम् कः यः रहिस अशोच्यान् प्रहरन् शोच्योऽसि अतः वधम् अर्हिस ।।६।। अनुवाद— गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के परंधाम गमन कर जाने पर तुम कौन हो ? जो एकान्त में निरपराधों को मार रहे हो, अतएव तुम वध कर दिए जाने के योग्य हों ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अशोच्यात्रिरपराधान् रहसि यस्त्वं प्रहरन् प्रहरसि स शोच्यः सापराधोऽस्यतो वधमर्हसि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

निर्जन स्थान में निरपराध जीवों को मारने वाले तुम अपराधी हो अतएव तुम वध कर दिए जाने के योग्य हो ॥६॥

त्वं वा मृणालघवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् । वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥७॥

अन्वयः मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् नः परिखेदयन् वृषरूपेण कश्चिद् देवः किम् ?।।७।।

अनुवाद कमल नाल के समान श्वेत वर्ण वाले, तीन पैरों से रहित होने पर भी एक ही पैर से संचरण करने वाले तथा मुझको अत्यधिक चिन्तित बनाने वाले आप कोई देवता हैं क्या ? इस तरह से राजा ने धर्म से पूछा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वृषं प्रत्याह । त्वं वा क: । स्वयमेव संभावयित । किं कश्चिदेवो वृषरूपेणास्मान् परिखेदयन् वर्तसे ।।७।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने धर्म से पूछा कि आप कौन हैं ? राजा ने स्वयम् ही विचार करते हुए कहा क्या आप कोई देवता है ? जिससे हमें चिन्तित बना रहे हैं क्योंकि आपके तीन पैर नहीं है एक ही पैर से आप चल फिर रहे हैं यही देखकर मुझको कष्ट हो रहा है ॥७॥

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते । भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥८॥

अन्वयः— पैरवेन्द्राणाम् दोर्दण्डपरिरम्भिते अस्मिन् भूतले ते विना प्राणिनां शुचः जातु न अनुपतन्ति ।।८।।

अनुवाद— पुरुवंशी राजाओं की भुजाओं से संरक्षित इस भूतल पर आपको छोड़कर किसी भी प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दोर्दण्डै: परिरम्भिते परिरम्भितवत्सुरक्षिते ते शुचोऽश्रूणि विनान्येषामश्रूणि नानुपतन्तीति खेदहेतुत्वं दर्शितम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

भुजाओं से परिरम्भित आर्थात् परिरम्भित के समान सुरक्षित इस पृथिवी पर, आपकी शोकाश्रुओं को छोड़कर किसी दूसरे प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं । नानुपतन्ति पद के द्वारा राजा को होने वाले खेद के कारण को बतलाया गया है ।।८।।

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् । मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥

अन्वयः— हे सौरभेय ! मा अनुशुचः ते वृषलद्भयं व्येतु । हे अम्ब ! खलानांशास्तिर मिय मा रोदीः ते भद्रम् अस्तु ।।९।। अनुवाद— हे सौरभेय (धेनुपुत्र) अब आप शोक न करें, इस शूद्र से आप निर्भय हो जायँ । हे गो माता मैं दुष्टों को दण्डित करने वाला हूँ, मेरे रहते आप न रोएँ । आपका कल्याण हो ।।९।।

भावार्थ दीपिका

एवमुक्ते पुनरिप शोचन्तं प्रत्याह । भो सुरभेः पुत्र, मा शुचः शोकं मा कुरु । व्येतु अपयातु । गां प्रत्याह । हे अम्ब मातः, शास्तरि मिय जीवित सित ते भद्रमेवाऽतो मा रोदीः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहने के पश्चात् भी शोक करने वाले धर्म से राजा ने कहा हे धेनुपुत्र ! आप शोक न करें। आप इस शूद्र से निर्भय रहें । गाय से राजा ने कहा आप न रोएँ । जब तक मैं जीवित हूँ तब तक आपका कल्याण हो । व्येतु पद का अर्थ दूर हो जाय है ॥९॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्वयसाधुभिः । तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥

अन्वयः— हे साध्व ! यस्य राष्ट्रे सर्वाः प्रजाः असाधुभिः त्रस्यन्ते तस्य मत्तस्य कीर्तिः आयुः भगः गतिश्च नश्यन्ति ।।१०।। अनुवाद— हे देवि ! जिस राजा के राज्य में दुष्टों के उपद्रव के कारण प्रजायें भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु, भोग तथा परलोक नष्ट हो जाते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

मद्भितार्थमेवैनं हनिष्यामि न तवोपकारायेत्याह-यस्येति द्वाभ्याम् । हे साध्वि, सर्वा याः काश्चिदपीत्यर्थः असाधुभिस्त्रस्यन्ते पीड्यन्त इत्यर्थः । भगो भाग्यम् । गति परलोकः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस शूद्र का वध मैं अपने ही कल्याण के लिए करूँगा तुम्हारा उपकार करने के लिए नहीं । इस बात को राजा ने यस्य इत्यादि दो श्लोकों से कहा । हे साध्व ! अर्थात् हे देवि ! जिस राजा के राज्य में सारी प्रजायें दुष्टों के उत्पात के कारण भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु और भग (भाग्य) तथा परलोक ये सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनित्रहः । अत एनं विधष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥

अन्वयः— आर्तानाम् अर्तिनाशनम् एष हि राज्ञां परमो धर्मः । अतः भूतद्वहम् असत्तमम् एनं वाधिष्यामि ।।११।। अनुवाद— दुखियों के दुःख को दूर करना यही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है, अतएव महादुष्ट और प्राणियों को पीड़ित करने वाले इस शूद्र का मैं वध करूँगा ।।११।।

भावार्थ दीपिका- नही है ।।११।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने कहा कि मैं इस बात को जानता हूँ कि राजाओं का यह सबसे बड़ा धर्म है कि वे दुखियों के दुःख को दूर करें। यह शूद्र महादुष्ट है और प्रजाओं से द्रोह करता है अतएव मैं इसका वध कर देता हूँ ॥११॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद । माभूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥

अन्वयः— हे चतुष्पद सौरभेय ! तव त्रीन् पादान् कः अवृश्चत् कृष्णानुवर्तिनां राज्ञां राष्टे त्वादृशाः मा भुवन् ।।१२।। अनुवाद— हे चार पैर वाले सुरभिनन्दन ! आपके तीन पैरों को किसने काट दिया है ? भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी राजाओं के राज्य में आपके जैसे दुःखी किसी को भी नहीं होना चाहिए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

पुनरिप शोचन्तं वृषं प्रत्याह । कः अवृश्चच्चिच्छेद । त्वादृशास्त्वद्विधा दुःखिताः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

शोक करते हुए वृष से राजा ने फिर कहा आपके तीन् पैरों को किसने काटा है ? मैं भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी राजा हूँ । मेरे राज्य मैं आपके जैसे दु:खी किसी को भी नहीं होना चाहिए ॥१२॥

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् । आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥

अन्वयः— हे वृष ! व: भद्रम् अकृतागसाम् साधूनाम् आत्मवैरूप्यकर्तारम्, पार्थानां कीर्तिदूषणम् आख्याहि ।।१३।। अनुवाद— वृष ! आपका कल्याण हो । निरपराध सज्जनों का अङ्गभङ्ग करने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलायें ।।१३।।

प्रथम स्कन्ध

भावार्थ दीपिका

वो भद्रमस्तु । आत्मनस्त्व पादच्छेदेन वैरूप्यं कृतवन्तं कीर्तिं दूषयतीति तथा तमाख्याहि ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का कल्याण हो आपके पैरों को काटकर आपके शरीर को विरूप बना देने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलाइये ॥१३॥

जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् । साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥

अन्वयः — अनागिस जने अघं युञ्जन् अस्य च सर्वतः मद्भयं भवतु । असाधु दमने कृते साधूनां भद्रमेव स्यात् ।।१४।। अनुवाद — निरपराध को सताने वाले इसको चाहे यह जहाँ कहीं भी रहे मुझसे भय होना चाहिए । दुष्टों का दमन कर दिए जाने पर सज्जनों का कल्याण होता ही है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ननु तदाख्याने कृते कथं भद्रं स्यादित्यत आह । यस्मादनागिस जने योऽघं दुःखं युञ्जन् कुर्वन् भवत्यस्यैवंभूतस्य मत्तः सकाशात् सर्वत्रापि भयं भवति, ततः साधूनां भद्रं भवेदेवेति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि उसको बतलाने से कल्याण कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जो कोई भी निरपराध को इस तरह से पीडित करता है, इस तरह के लोगों को मुझसे सदा भयभीत रहना चाहिए इस तरह से दुष्टों का दमन करने से साधु पुरुषों का कल्याण होता ही है ॥१४॥

अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः । आहर्ताऽस्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥

अन्वयः अनागस्सु भूतेषु य निरङ्क्षुशः इह आगः कृत् तस्य साक्षात् अमर्त्यस्यापि साङ्गदम् भुजं आहर्ता अस्मि ।।१५।। अनुवाद इस संसार में निरपराध भी जीव का जो अपराध करता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो उसके बाजूबन्द से अलंकृत भुजा को मैं काट डालूँगा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

एतस्य दण्डेऽहमसमर्थ इति माशङ्कीरित्याह-अनागःस्विति । आगस्कृदपराधकर्ता । तस्यामर्त्यस्य देवस्यापि भुजमाह-र्तास्म्याहरिष्यामि । साङ्गदमित्यनेन मूलत उत्पाट्याहरिष्यामीति दर्शितम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस दुष्ट को दिण्डित करने में मैं असमर्थ हूँ आप इस तरह की शङ्का न करें इस बात को राजा ने अनागः सु० इत्यादि श्लोक से कहा— अपराधी को आगस्कृत् कहते हैं। निरपराधों को दिण्डित करने वाला चाहे देवता ही क्यों न हो उसकी भुजा को मैं जड़ से ही काट दूँगा इस बात को साङ्गदम् कहकर सूचित किया गया है।।१५॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्यानुपालनम् । शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ।।१६॥

अन्वयः अनापदि इह उत्पथान् अन्यान् यथा शास्त्रम् शासतः राज्ञः स्वधर्मस्य अनुपालनम् परमो धर्मः ।।१६।। अनुवाद — बिना किसी आपत्ति के दूसरे कुमार्ग गामियों को इस लोक में शास्त्रानुसार प्रशासन करना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेकस्य निग्रहेणान्यस्यानुग्रहे तव किं प्रयोजनं तत्राह-राज्ञो हीति । अन्यानधर्मिष्ठान् । शासतो दण्डयत: ।।१६।।

अब प्रश्न उठता है कि एकका प्रशासन करने और दूसरे पर अनुग्रह करने में आपका कौन सा प्रयोजन है ? तो इस पर राजा ने कहा कि अधार्मिकों को शास्त्रानुसार दण्ड देकर अपने धर्म का पालन करना ही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है ॥१६॥

धर्म उवाच

एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः । येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥१७॥

अन्वय:— पाण्डवेयानाम्, वः एतत् आर्ताभयं वचः युक्तम् । येषां गुणगणैः कृष्णः दौत्यादौ भगवान् कृतः ।।१७।। अनुवाद— धर्म ने कहा— पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए आपके द्वारा दुःखी जीवों को अभय प्रदान करने वाली आपकी वाणी आपके स्वरूपानुरूप ही है । जिन पाण्डवों के गुणसमूहों ने भगवान् को उनके (पाण्डवों के) दूतकर्म और सारिथ कर्म में भी लगा दिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

आर्तानामभयं यस्मात्तद्वचो वो युष्माकं युक्तमुचितमेव ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

धर्म ने कहा कि आप तो उन पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए हैं जिन पाण्डवों के गुण से आकृष्ट होकर श्रीभगवान् उनके दूत तथा सारिथ भी बन गये। अतएव आपकी आर्तजीवों को अभय प्रदान करने वाली वाणी उचित ही है।।१७।।

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ । पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥

अन्वयः हे पुरुषर्षभ ! वाक्यभेदविमोहिता : वयम् तं पुरुषं न विजानीमः यतः क्लेशवीजानि ।।१८।।

अनुवाद हे पुरुषो में श्रेष्ठ परीक्षित् ! शास्त्रों के विभिन्न वाक्यों से मोहित हुए उस पुरुष को नहीं जानता हूँ जिससे कि क्लेशों के कारण उत्पन्न होते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

वयं तु यतः पुरुषात्प्राणिनां क्लेशहेतवो भवेयुस्तं पुरुषरूं न विजानीमः । यतो वादिनां वाक्यभेदैर्विमोहिताः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जिस पुरुष से प्राणियों को प्राप्त होने वाली क्लेशों के बीज उत्पन्न होते हैं, उस पुरुष को मैं नहीं जानता हूँ, क्योंकि हमलोग वादियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों के कारण मोहित हैं ।।१८।।

केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः । दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥

अन्वयः— केचित् विकल्पवसनाः आत्मानमेव आत्मनः प्रभुम् आहुः, अन्ये दैवम् अपरे कर्म, अपरे स्वभावम् प्रभुम् आहुः ॥१९॥

अनुवाद जो लोग किसी प्रकार के द्वैत को नहीं मानते हैं, वे लोग अपने को ही अपने दु:ख का कारण बतलाते हैं दूसरे लोग दैव (भाग्य) को, उनसे भिन्न लोग कर्म को तथा तीसरे प्रकार के लोग स्वभाव को ही दु:ख का कारण मानते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वाक्यभेदानेवाह । विकल्पं भेदं वसते आच्छादयन्ति ये योगिनस्ते आत्मानमेवात्मनः प्रभुं सुखदुःखप्रदमाहुः । तदुक्तम् 'आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः' इति । यद्वा विकल्पैः कुतर्कैः प्रावृता नास्तिकाः । एवं हि ते वदन्ति । न ताबद्देवतादीनां प्रभुत्वम्, कर्माधीनत्वात् । न च कर्मणः स्वाधीनत्वादचेतनत्वाच्च । अतः स्वयमेव प्रभुनं चान्यः कश्चिदिति। अन्ये दैवज्ञा दैवं ग्रहादिरूपां देवताम् । परे तु मीमांसकाः कर्म । अपरे लौकायतिकाः स्वभावम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वादियों के वाक्य भेद को ही बतलाते हुए धर्म ने कहा जो योगी जन भेद को नहीं मानते हैं, वे अपने को ही सुख-दु:ख का प्रदाता मानते हैं। कहा भी गया है- आत्मैव • इत्यादि आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सुख प्रदाता) है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु (दु:खप्रदाता) है । अथवा विकल्प शब्द कुतर्क का वाचक है । उन कुतर्कों से युक्त जो नास्तिक पुरुष हैं, वे भी अपने को ही सुख दुःख का कारण मानते हैं। वे किसी देवता के प्रभुत्व को नहीं मानते हैं वे सबकुछ कमों के अधीन मानते हैं। कर्म तो अपने अधीन रहने वाले हैं तथा अचेतन भी हैं। अतएव वे अपने को हीं प्रभु मानते हैं, अपने से भिन्न किसी दूसरे को नियामक नहीं मानते हैं। दूसरे जो ज्योतिषी हैं वे ग्रह रूपी देवताओं को ही सुख तथा दु:ख देने वाला मानते हैं। मीमांसक कर्मी को ही सुख एवं दु:खों को देने वाला मानते हैं। और चार्विक स्वभाव को ही सुख एवं दु:ख को देने वाला मानते हैं।।१९।। अप्रतर्क्यादिनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः । अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥

अन्वयः— केष्वपि अप्रतर्क्यात् अनिर्देश्यात् इति निश्चयः । राजर्षे अत्र स्वमनीषया अनुरूपं विमृश ।।२०।। अनुवाद कुछ वादियों का निश्चय है कि सुख एवं दु:ख के कारण को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो उसका वाणी के द्वारा निर्देश ही किया जा सकता है, अतएव आप अपनी बुद्धि के अनुसार उसका विचार करें ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

केष्वपि सेश्वरेषु मध्ये । केष्वपीति दुर्लभत्वं दर्शितम् निश्चय इति सिद्धान्तत्वम् । अप्रतर्क्यान्मनोऽगोचरादिनर्देश्या-द्वचनागोचरात्परमेश्वरात्सर्वं भवतीति विमृश विचारय स्वबुद्ध्या ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग ईश्वर को मानते हैं, उन लोगों के दुर्लभत्व को केष्वपि पद के द्वारा बतलाया गया है । निश्चय पद के द्वारा उनके कथन को सिद्धान्तानुकूल कहा गया है। वे लोग बतलाते हैं कि सुख और दु:ख के कारणों को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो वाणी से सबकुछ करने वाले परमात्मा है इस बात का बुद्धि पूर्वक विचार करो ॥२०॥

सूत उवाच एवं धर्मे प्रवदित स सम्राड्द्विजसत्तम । समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्टतम् ॥२१॥

अन्वयः हे द्विजसत्तम ! एवं धर्मे प्रवदित विखेदः स सम्राट् समाहितेन मनसा तम् पर्यचष्ट ।।२१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद हे द्विज ! श्रेष्ठ शौनकजी धर्म के इस तरह कहने पर राजा परीक्षित् का खेद शान्त हो गया उन्होंने शान्तमना होकर उससे कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विखेदो गतमोहः । पर्यचष्ट प्रत्यभाषत ज्ञातवानिति वा ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

धर्म की बातों को सुनकर राजा परीक्षित् का अज्ञान समाप्त हो गया और उन्होंने धर्म से कहा अथवा उसको धर्म रूप से जान लिया ॥२१॥

राजोवाच

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् । यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

अन्वयः हे धर्मज्ञ धर्मं व्रवीषि अतः वृषरूपधृक् धर्मः असि यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ।।२२।।

राजा ने कहा

अनुवाद हे धर्मज्ञ ! आप धर्म की बातें करते हैं, अतएव निश्चित रूप से आप वृष का रूप धारण किए धर्म हैं; क्योंकि पापी को जिस स्थान की प्राप्त होती है, वही स्थान चुगली करनने वालों को भी प्राप्त होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अनिर्घारितमिव ब्रुवन्घातकं जानत्रपि न सूचयेदित्येवंरूपं धर्मं ब्रवीष्यतो धर्मोऽसि । सूचने को दोष इत्यत आह-यदिति। स्थाानं नरकादि ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अपने घातक को भी आप अनिर्धारित के समान बतला रहे हैं, क्योंकि घातक को जानते हुए नहीं बतलाना चाहिए । इस तरह से आप धर्मोपदेश कर रहे हैं । अतएव आप धर्म ही हैं । यदि कहें कि घातक को सूचक को कह देने पर कौन सा दोष होता है ? तो उसे बतला रहे हैं । जो स्थान पाप करने वाले को मिलता है, वहीं स्थान उसके सूचक को भी मिलता है । अर्थात् उसको भी नरकादि की प्राप्ति होती है ।।२२।।

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा । चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥

अन्वयः अथवा नूनं भूतानाम् चेतसः वचसः चापि देवमायायाः गतिः अगोचरा इति निश्चयः ।।२३।।

अनुवाद— अथवा यह भी निश्चित है कि जीवों के मन तथा वाणी के द्वारा परमात्मा की माया की गति को नहीं जाना जा सकता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यद्वा अज्ञानादप्यकथनं भवतीत्याह-अथवेति । देवस्य मायाया गतिर्वध्यघातकलक्षणा वृत्तिर्भूतानां चेतसो वचसश्चागोचरा सुज्ञेया न भवतीति निश्चय इत्यर्थ: ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अथवा नहीं जान पाने के कारण भी नहीं कहा जा सकता है, इस बात को राजा ने अथवा॰ इत्यादि श्लोक से कहा है। परमात्मा की बध्यघातक रूपी वृत्ति जीवों के मन और वाणी का विषय नहीं बनती है। अतएव वह आसानी से जानने योग्य नहीं है यह निश्चित है। १२३।।

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥

अन्वयः— तपः शौचम् दया सत्यम् इति तव पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्माशैः स्मय सङ्गमदैः त्रयः भग्नाः ।।२४।। अनुवाद— तपस्या, पवित्रता, दया और सत्य ये आपके चार-चरण बतलाये गये है, इनमें अधर्म के अंश भूत गर्व आसक्ति और मद के कारण आपके तीन चरण टूट गये हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

धर्मोऽसाविति ज्ञात्वा तस्य पादानुवादेन व्यवस्थामाह-तप इति द्वाभ्याम् । अधर्मपादैस्तव त्रयः पादास्त्रिभिरंशैर्भग्नाः । स्मयो विस्मयः ॥२४॥

राजा ने उसे धर्म जानकर उसके चरणों का अनुवाद करके **तपः इत्यादि** दो श्लोक से व्यवस्था बतलाया। अधर्म के तीन चरणों के द्वारा आपके तीन चरण टूट चुके हैं। अधर्म के तीन चरण हैं स्मय (गर्व) आसक्ति और मद, उन सबों से धर्म के तप पवित्रता और दया नामक तीन चरण टूट चुके हैं। स्मय-विस्मय (गर्व) को कहते हैं। १४।।

इदानीं धर्मं पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः । तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥२५॥

अन्वयः— धर्मं इदानीं ते सत्यं पादः यतः निर्वर्तयेत् तम् अनृतेन एधितः अधर्मः किलः जिघृक्षिति ।।२५।। अनुवाद— हे धर्म ! इस समय आपका सत्य नामक पाद अविशष्ट है जिससे कि आप आत्मधारण कर सकें । उसको असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ अधर्म रूपी किल विनष्ट कर देना चाहता है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कलौ हे धर्म, ते पादश्चतुर्थौऽशस्तत्रापि सत्यमेवास्ति । यतः सत्याद्भवानात्मानं निर्वर्तयेत् कथंचिद्धारयेत् यद्धा पुरुषस्त्वां साधयेत् । तमपि पादमनृतेन संवर्धितः किलः किलरूपोऽयमधर्मो ग्रहीतुमिच्छिति, तत्रेयं स्थितिः कृतयुगे प्रथमं संपूर्णश्चतुष्पाद्धर्मः । त्रेतायां चतुर्णामपि पादाना मध्ये स्मयेन तपः, सङ्गेन शौचं, मदेन दया, अनृतेन सत्यमित्येवं चतुर्थाशो हीयते । द्वापरे त्वर्धम् कलौ चतुर्थोऽशोऽविशष्यते सोऽप्यन्ते विनङ्क्षयतीति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हे धर्म ! इस समय कलियुग में आपके चरणों का चौथा अंश सत्य बचा हुआ है । उससे आप किसी तरह आत्मधारण किए हैं । अथवा सत्य को अपनाकर मनुष्य धर्म को प्राप्त कर सकता है । आपके उस चरण को असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ किल अर्थात् किल रूपी अधर्म, विनष्ट कर देना चाहता है ।

तत्रेयं स्थिति: इत्यादि- धर्म के चार चरणों की स्थिति इस प्रकार है। सत्ययुग में पहले धर्म के चारो चरण विद्यमान थे वह चतुष्पाद था त्रेतायुग में स्मय (गर्व) नामक अधर्मांश से चारो पैरों में से तप गर्व के द्वारा शौच आसक्ति के द्वारा, दया मद के द्वारा और सत्य अनृत (मिथ्या) भाषण के द्वारा इन सबों का चतुर्थांश विनष्ट हो जाता है। द्वापर में आधा विनष्ट हो जाता है किलयुग में चतुर्थांश बचा रहता है, और किलयुग के अन्त में वह भी विनष्ट हो जायेगा ॥२५॥

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती । श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥

अन्वयः— इयं च भूः भगवता न्यसितोरुभरा सती श्रीमद्भिः तत् पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ।।२६।।

अनुवाद— ये भूदेवी हैं, श्रीभगवान ने इनके महान् भार को उतार दिया था । श्रीभगवान् के ऐश्वर्य पूर्ण चरणों के विन्यास से ये सर्वत्र उत्सवमयी बनी रहती थीं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

न्यासितोऽन्योन्यद्वारेणावतारित उरुर्भरो भारो यस्याः । कृतं कौतुकं मङ्गलं यस्याः सा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने दुष्ट क्षत्रिय राजाओं में वैर उत्पन्न करके एक के द्वारा दूसरे का विनाश कर पृथिवी के महान् भार को उतार दिया था । उस समय ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् के चरण विन्यास के द्वारा पृथिवी मङ्गलमयी हो गयी थी ।।२६।।

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना । अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥

अन्वयः— अधुना साध्वी उज्झिता दुर्भगा इव अश्रुकलाशोचित । यत् अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्राः माम् भोक्ष्यन्तीति ।।२७।।

अनुवाद साध्वी भू देवी परमात्मा से परित्यक्त हो जाने के कारण अभागिनी के समान आँखों में आँसू भरकर सोच रही हैं कि अब राजा का वेष बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मेरा उपभोग करेंगे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अश्रृणि कलयति मुञ्जतीत्यश्रुकला । तेन उज्झिता त्यक्ता सती शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति शोचिति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इस समय ये भूदेवी अपनी आँखों से आँसू बहाती हुयी सोच रही हैं कि आगे आने वाले समय में शूद्र ही राजा होंगे। राजा का वेष बनाये हुए वे ब्राह्मणद्रोही होंगे। वे ही सब मेरा उपभोग करेंगे।।२७।।

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः । निशातमाददे खङ्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥

अन्वयः इति महारथः धर्मं महीं च सान्त्वयित्वा धर्महेतवे निशातम् खड्गम् आददे ।।२८।।

अनुवाद इस तरह से महारथी परीक्षित् भूदेवी और धर्म को सान्त्वना प्रदान करके अधर्म के कारण भूत कलियुग को मारने के लिए हाथ में तीक्ष्ण खड्ग ले लिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

निशातं निशितम् । अधर्मस्य हेतुर्यः कलिस्तं हन्तुमित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने अधर्म के कारणभूत किल को मारने के लिए अपने हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण खड्ग ले लिया ॥२८॥ तं जिद्यांसुमिभप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् । तत्पादमूलं शिरसा समगाद्धयविह्वलः ॥२९॥

अन्वयः तं जिघांसुम् अभिप्रेत्य नृपलाञ्छनम् विहाय भयविह्नलः शिरसा तत्पादमूलं समगात् ।।२९।।

अनुवाद राजा परीक्षित् को मारने की इच्छा वाला जानकर किल ने अपने राजा के चिह्न का परित्याग कर दिया और भय से काँपता हुआ वह राजा परीक्षित् के चरणों पर गिर पड़ा ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

हथ में तीक्ष्ण खड्ग ग्रहण किए हुए राजा को देखकर किलयुग ने जान लिया कि राजा मुझको मार देना चाहते हैं। यह जानकर उसने राजा के चिह्न को जो धारण किया था उसका परित्याग कर दिया और राजा के चरणों पर गिर पड़ा ॥२९॥

पतितं पादयोवींक्ष्य कृपया दीनवत्सलः । शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥

अन्वयः— पादयोः पिततं वीक्ष्य दीनवत्सलः शरण्यः श्लोक्यः राजा न अवधीत् हसन् इव कृपया इदं आह ।।३०।। अनुवाद — पैरों पर गिरे हुए किल को देखकर दीनों पर दया करने वाले तथा शरणागतों की रक्षा करने वाले राजा परीक्षित् ने उसका वध नहीं किया, वे दया करके हँसते हए के समान किल से कहे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

शरण्य आश्रयार्ह: । श्लोक्य: सत्कीर्त्यर्ह: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् आश्रयण करने के योग्य तथा सत्कीर्ति कें योग्य थे। उन्होंने कृपा करके किल को मारा नहीं अपितु किलयुग से कहा ॥३०॥

राजोवाच

न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेवैं भयमस्ति किंचित् । न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥३१॥

अन्वयः - गुडाकेश यशोधराणां बद्धाञ्जलेः ते किञ्चित् भयं न अस्ति त्वम् अधर्मबन्धः, अतएव भवता मदीये क्षेत्रे कथञ्चन न वर्तितव्यम् ।।३१।।

अनुवाद— अर्जुन के यशस्वी वंश में उत्पन्न किसी भी वीर से हाथ जोड़े हुए तुमको कोई भी भय नहीं है, किन्तु तुम अधर्म बन्धु हो, अतएव तुमको मेरे राज्य में किसी भी प्रकार से नहीं रहना चाहिए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

गुडाकेशोऽर्जुनस्तस्य यशोधरा ये वयं तेषां तान्प्रति बद्धोऽञ्जलिर्येन तस्य ते भयं न किंतु मदीये क्षेत्रे कथंचन केनाप्यंशेन न वर्तितव्यम्। यस्मात्त्वमधर्मस्य बन्धुः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

गुडाकेश अर्जुन का नाम है। उनके यश को धारण करने वाले हमलोगों से किसी भी प्रकार से तुमको भय नहीं है; क्योंकि तुमने हाथ जोड़ लिया है। किन्तु तुमको मेरे राज्य के किसी भी अंश में नहीं रहना होगा, क्योंकि तुम अधर्म बन्धु हो।।३१।।

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः । लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥३१॥

अन्वयः— नरदेवदेहेषु वर्तमानं त्वाम् अनु, लोभः अनृतम् चौर्यम्, अनार्यम्, अंहः, ज्येष्ठा, माया, कलहः दम्भः अवृतं च अयम् अधर्म पूगः अनुप्रवृत्तः ।।३२।।

अनुवाद - तुम्हारे राजाओं के देह में रहने के कारण ही, लोभ, झूठ, चोरी, दुर्जनता, अंह (स्वधर्मत्यग) अलक्ष्मी, कपट, कलह और दम्भ यह अधर्म समूह इतना बढ़ा है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । राजदेहेषु वर्तमानं त्वामनु सर्वतः प्रवृत्तः । अनार्यं दौर्जन्यम् । अंह स्वधर्मत्यागः । ज्येष्ठा अलक्ष्मीः । माया कपटम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही बतलाते हुए राजा परीक्षित् कहते हैं कि चूकि तुम राजाओं के शरीर में निवास कर रहे हो उसी के कारण सब जगह अनार्य (दुर्जनता) अंह: (स्वधर्म त्याग) माया (कपट) इत्यादि ये सारे अधर्म समूह इतना बढ़े हुए हैं, अतएव तुम मेरे राज्य में नहीं रह सकते हो ॥३२॥

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये । ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥

अन्वयः— तत् अधर्मबन्धो ! यत्र वितानविज्ञाः यज्ञैः यज्ञेश्वरम् यजन्ति एतादृशे धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ब्रह्मावर्ते न वर्तितव्यम् ॥३३॥

अनुवाद अतएव हे अधर्मबन्धो ! जहाँ पर यज्ञ की विधि को जानने वाले यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना करते हैं, उस सत्य एवं धर्म पूर्वक रहने योग्य इस ब्रह्मावर्त में तुमको नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये वर्तितुमहें ब्रह्मावर्ते देशे । यज्ञस्य वितानं विस्तारस्तत्र विज्ञा निपुणाः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यह ब्रह्मावर्त नामक देश है। यहाँ पर सत्य एवं धर्म का पालन पूर्वक ही निवास किया जा सकता है। यहाँ पर यज्ञ का विस्तार करने में निपुण पुरुष यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीहरि की आराधना करते हैं, अतएव तुमको इस देश में विल्कुल नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति । कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥

अन्वयः - यस्मिन् इज्यामूर्तिः इज्यमानः भगवान् हरिः यजताम् शं तनोति कामान् अमोघान् करोति । एषः वायुः इव स्थावरजङ्गमानां आत्मा ।।३४।।

अनुवाद जिस ब्रह्मवर्त देश में यज्ञमूर्ति श्रीहरि यज्ञों के द्वारा आराधित किए जाते हैं । भगवान् श्रीहरि यज्ञों को करने वालों का कल्याण करते हैं और उनकी कामनाओं को सफल बना देते हैं । वे वायु के समान सम्पूर्ण चराचर में आत्मा रूप से उनके भीतर और बाहर विद्यमान रहते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

इज्या यागस्तद्रूपा मर्तिर्यस्य । शं क्षेमं कामांश्च । निन्वन्द्रादयो देवा इज्यन्ते नतु हरिस्तत्राह- स्थिरेति । एष स्थावरादीनामात्मेति । तथापि जीववन्न परिच्छिन्न इत्याह-अन्तर्बिहिरिति । यथा वायुः प्राणरूपेणान्तस्थोऽपि बहिरप्यस्ति तद्वत्सर्वान्तर्यामीश्वरोऽपीति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मूर्ति इज्या रूपिणी है। जो लोग इसका यजन करते हैं भगवान् श्रीहरि उनका कल्याण करते हैं और उनकी सारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। इस जगत् में जितने भी जड-चेतन पदार्थ हैं उन सबों के भीतर वे अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं और बाहर-अन्तर प्रदेश तक उसी तरह से व्यापक रहते हैं जिस तरह वायु सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्यापक है।।३४॥

सूत उवाच

परीक्षितैमवादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः । तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥

अन्वयः— एवम् परीक्षिता आदिष्टः जातवेपथुः सः कलिः उद्यतम् दण्डपाणिमिव उद्यतासिं इदम् आह ।।३५।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद राजा परीक्षित् के द्वारा इस तरह से आदेश दिए जाने पर काँपता हुआ किल दण्ड उठाये हुए यमराज के समान तलवार उठाये हुए राजा परीक्षित् से कहा ॥३५॥

प्रथम स्कन्ध

भावार्थ दीपिका

उद्यतासिमुद्यतखड्गम् । दण्डपाणिं यमम् । उद्यतमुद्युक्तम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् उसी तरह से खड्ग उठाये थे जिस तरह मानो यमराज दण्ड देने के लिए तैयार हों । उनसे काँपते हुए किल ने कहा ॥३५॥

कलिरुवाच

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया । लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥३६॥

अन्वयः— हे सार्वभौम ! यत्र क्वचन तवाज्ञया वत्स्यामि तत्र तत्रापि आतेषुशरासनम् त्वाम् लक्षये ।।३६।।

किल ने कहा

अनुवाद— हे सार्वभौम ! आपकी आज्ञानुसार जहाँ कहीं पर भी मैं रहूँगा वहाँ सर्वत्र मैं धनुष बाण धारण किए हुए आपको देखूँगा । अर्थात् आपका भय मुझे सर्वदा बना रहेगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अत्र न वस्तव्यिमिति या तवाज्ञा तया यत्र क्वापि वत्स्यामि किंतु तत्र तत्राप्यात्तो गृहीत इषु: शरासनं च येन तं त्वामेव लक्षये ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो आज्ञा दी है कि तुमको यहाँ नहीं रहना चाहिए अतएव जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ सर्वत्र आप मुझको धनुष एवं बाण को धारण किए हुए दिखायी पड़ेंगे ॥३६॥

तन्मे धर्मभृतांश्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हिस । यत्रैव नियतो वतस्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥३७॥

अन्वयः— तत् हे धर्मभृतां श्रेष्ठ मे स्थानं निर्देष्टुम् अर्हिस यत्रैव ते अनुशासनम् आतिष्ठन् नियतं वत्स्ये ।।३७।। अनुवाद— अतएव हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! आप मुझको ऐसे स्थान को बतला दें जहाँ पर मैं आपकी आज्ञा का पालन करते हुए निश्चल रूप से निवास कर सकूँ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् । नियतो निश्चलः । वत्स्ये वत्स्यामि ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

किल ने राजा से प्रार्थना किया कि आप मुझे ऐसा स्थान बतला दें जहाँ मैं निश्चल होकर निवास कर सकूँ और आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँ ॥३७॥

सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ । द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विघः ॥३८॥

अन्वयः— तदा अभ्यर्थितः तस्मै कलये, द्यूतं, पानं, स्त्रियः, सूना यत्र चतुर्विधः अधर्म तथा विधानि स्थानानि ददौ ।।३८।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद किलयुग के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उस किल को द्यूत, जुआ खेलने के स्थान, पान, मदशाला, स्त्रियाँ तथा सूना (कसाईखाना) इन चार स्थानों को प्रदान किया जहाँ पर चार प्रकार के अधर्म होते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पानं मद्यादेः । सूना प्राणिवधः । द्यूतेऽनृतम् । पाने मदः । पूर्वं मदो दयानाशकत्वेनोक्तोऽत्र तु गर्वद्वारा तपोनाशकत्वेन। स्त्रीषु सङ्गः । हिंसायां क्रौर्यं दयानाशकिमिति ज्ञेयम् । यद्यपि सर्वं सर्वत्र संभवित, तथापि प्राधान्येनानृतादीनां द्यूतादिषु यथासङ्ख्यां ज्ञेयम् । द्वादशस्कन्धे तु 'सत्यं दया तपो दानिमिति पादा विभोर्नृप' इत्यत्र दानशब्देन शौचमेवोक्तम् । मनः शुद्धिरूपत्वाद्भुताभयदानस्य । 'त्रेतायां धर्मपादानां तुर्याशो हीयते शनैः । अधर्मपादैरनृतिहंसाऽसन्तोषविग्रहैः' इत्यत्र चाऽसन्तोषशब्देन तस्य हेतुर्गर्वो लक्ष्यते । विग्रहशब्देन च तद्धेतुः स्त्रीसङ्ग इत्यविरोधः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मदिरा आदि को पीने को **पानं** शब्द से अभिहित किया गया है। प्राणियों के वध को सूना कहते हैं। घूत में झूठ बोलना पड़ता, मदिरा पान से मद नामक पाप होता है। इससे पहले पचीसवें श्लोक में मद को दया का नाश करने वाला कहा गया है और यहाँ पर गर्व के द्वारा तप का नाश कहा गया है। स्त्रियों में आसिक्त बढ़ती है। हिंसा करने से दया का नाश करने वाली क्रूरता बढ़ती है।

यद्यपि सर्वम् इत्यादि - यद्यपि सभी पाप इन सभी स्थानों में होते हैं । फिर भी प्रधान रूप से द्यूत इत्यादि में मिथ्या भाषण आदि पाप होते है । अतएव द्यूत इत्यादि को क्रमशः अनृत इत्यादि का जनक जानना चाहिए। द्वादशस्कन्ये तु इत्यादि सत्यं दया तपो दानम् इत्यादि श्लोक में दान शब्द से शौच को ही कहा गया है, क्योंकि जीवों को अभय प्रदान करने से मन की शुद्धि होती है । त्रेतायाम् इत्यादि त्रेता में धर्म के चरणों का चतुर्थांश अधर्म के अनृत, हिंसा, असन्तोष तथा विग्रह के द्वारा धीरे-धीरे ह्रास होता है । इस श्लोक में असन्तोष शब्द के द्वारा उसके कारण भूत स्त्री सङ्ग को लक्षित किया गया है । इस तरह से कहीं भी विरोध नहीं है ॥३८॥

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः । ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥३९॥

अन्वयः पुनश्च प्रभुः याचमानाय जातरूपम् अदात्। ततः अनृतं, मदं, कामं, रजः पञ्चमम् वैरं च जायते।।३९।। अनुवाद उसके पश्चात् भी कलियुग के द्वारा याचना किए जाने पर राजा परीक्षित् ने किल के लिए सुवर्ण को निवास स्थान के रूप में प्रदान किया। इस तरह किल के पाँच निवास स्थान हो गये। उन पाँचों स्थानों में क्रमशः मिथ्याभाषण, मद, काम, रजोगुण और वैर ये पाँच प्रकार के पाप होते हैं।।३९।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विधस्याप्येकत्रैवावस्थानं देहीति पुनर्याचमानाय जातरूपं सुवर्ण दत्तवान् । ततः सुवर्णदानात् अनृतम्, मदम्, काममिति स्त्रीषु सङ्गम्, रज इति रजोमूलां हिंसाम्, एतानि चत्वारि पञ्चमं वैरं चादादिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इन चारो प्रकार के अधर्मों के एक स्थान में स्थिति आप मुझे प्रदान करें इस प्रकार से याचना किए जाने पर राजा ने उसे सुवर्ण को प्रदान किया।

उस सुवर्ण प्रदान से, मिथ्या भाषण, मद, काम, स्त्रियों में आसक्ति रूपी काम, रजस् शब्द से रजोगुण मूलक हिंसा इन चार प्रकार के अधर्म स्थान को तथा पाँचवे वैर के स्थान को उन्होंने किलयुग को प्रदान किया।।३९॥ अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः किलः । औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥४०॥

अन्वयः -- तन्निदेशकृत अधर्म प्रभवः कलिः औत्तरेयेण दत्तानि अमूनि पञ्च स्थानि न्यवसत् ।।४०।।

अनुवाद— राजा परीक्षित् की आज्ञा का पालन करने वाला अधर्म का मूल कारण किल, राजा परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाञ्च स्थानों में रहने लगा ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

औत्तरेयेण परीक्षिता अमून्यमीषु स्थानेषु न्यवसदित्यर्थः । तस्य राज्ञो निदेशकृदाज्ञाकृत् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

उत्तरा के पुत्र परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाँचों स्थानों में किल राजा परीक्षित् की आज्ञाओं का पालन करता हुआ रहने लगा ॥४०॥

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् । विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥

अन्वयः अथ बुभूषु: पुरुष: धर्मशीलो राजा, लोकपति: गुरुश्च एतानि क्वचित् न सेवेत ।।४१।।

अनुवाद— अतएव आत्मकल्याण कामी पुरुष विशेष रूप से धार्मिक राजा, लोक स्वामी, तथा गुरुजनों को आसक्ति पूर्वक कभी भी इन सबों का सेवन नहीं करना चाहिए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अथ इति हेतो: बुभूषुरुद्भवितुमिच्छु: । स्त्रीसुवर्णयोरसेवनं नाम तयोरनासक्ति: ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इसीलिए जो पुरुष आत्मकल्याण करना चाहाता है, वह तथा धार्मिक राजा लोगों के स्वामी (नेता) तथा धर्मोपदेष्टा गुरुजनों को इन सभी वस्तुओं का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए । स्त्री तथा सुवर्ण के असेवन का अर्थ है कि इन दोनों में आसक्ति न रखे ॥४१॥

वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति । प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥

अन्वयः— वृषस्य नष्टान् त्रीन् पादान् तपः शौचं दयाम् इति प्रतिसंदधे आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ।।४२।।

अनुवाद— इस तरह से किल का निग्रह करके राजा धर्म के तप, शौच और दया इन तीन चरणों को प्रवर्तित किए और पृथिवी को सान्वना प्रदान किए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

एवं किलं निगृह्य वृषस्य पादान्प्रतिसंदधे तपआदीनि प्रवर्तितवानित्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कलियुग को निगृहीत करके तथा धर्म और पृथिवी को आश्वासन प्रदान करके राजा परीक्षित् ने टूटे हुए धर्म के तप, शौच और दया रूप पैरों को प्रवर्तित किए ॥४२॥

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् । पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥४३॥

अन्वयः अरण्यं विविक्षता पितामहेन राज्ञा उपन्यस्तम् पार्थिवोचितम् आसनम् एतर्हि स एष अध्यास्ते ।।४३।। अनुवाद वन में जाते समय पितामह राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राजसिंहासन पर ही राजा परीक्षित् विराजमान हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

युष्मदीयसत्रप्रवृत्तिरिप तत्प्रभावादेवेत्याह त्रिभि: । एतहींदानीं युधिष्ठिरेणारण्यं प्रवेष्टुमिच्छता उपन्यस्तं समर्पितमासनमध्यास्ते। अधुना आस्ते पालयत इति वर्तमानसमीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः स्मेत्यध्याहारो वा ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि आप लोग यह जो सत्र चला रहे हैं वह इसलिए चल रहा है कि यह राजा परीक्षित्

का प्रभाव है। इस बात को उन्होंने तीन श्लोकों में कहा— इस समय वन जाते समय राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राज सिंहासन पर राजा परीक्षित् ही विराजमान हैं। इस समय वे इस राज्य का पालन कर रहे हैं। अध्यास्ते पद में वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग वर्तमान सामिप्य के अर्थ में हुआ है। अथवा यहाँ पर स्म पद का अध्याहार भी किया जा सकता है। ।४३।।

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् । गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्वाः ॥४४॥

अन्वयः अधुना महाभागः चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः सः राजर्षिः महाह्वये कौरवेन्द्रश्रिया उल्लसन् आस्ते ।।४४।। अनुवाद इस समय महाभाग, चक्रवर्ती महान् यशस्वी वे ही राजर्षि परीक्षित् हस्तिनापुर में कौरवकुल की राज्यालक्ष्मी से सुशोभित हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका- नहीं है ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने शौनकादि महर्षियों को बतलाया कि राजा परीक्षित् महाभाग तथा चक्रवर्ती होने के साथ-साथ महायशस्वी हैं। इस समय वे ही हस्तिनापुर के राजा हैं।।४४।।

इत्यंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः । यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्याय: ॥१७॥

अन्वयः अयम् अभिमन्यु सुतः नृपः इत्यंभूतानुभावः यस्य क्षोणीं पालयतः यूयं सत्राय दीक्षिताः ।।४५।। अनुवाद ये अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न है । उनके ही पृथिवी पालकत्व काल में आपलोग इस दीर्घकालिक सत्र के लिए दीक्षित हुए हैं ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के किलिनिग्रह नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

सत्राय सत्रं कर्तुं दीक्षिता दीक्षां कृतवन्तः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

सत्राय दीक्षिताः का अर्थ है कि आपलोग इस दीर्घ कालिक सत्र को करने के लिए दीक्षित हुए हैं ॥४५॥ इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्य की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१७।।



अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप

सूत उवाच

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः । अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥

अन्वयः — यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टः अद्भुतं कर्मणः भगवतः कृष्णस्य अनुग्रहात् मातुरुदरे न मृतः ।।१।।

अनुवाद — जो परीक्षित् अश्वत्थामा के अस्त्र से जल जाने पर भी अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के कारण अपनी माता की कोंख में नहीं मरे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञस्त्वष्टादशे तस्य ब्रह्मशापो निरूप्यते । स चानुग्रह एवास्य जातो वैराग्यमावहन् ॥१॥ परीक्षितो निर्याणमत्याश्चर्यं वक्तुं तत्संभावनाय जन्माश्चर्यमनुस्मारयति-यो वा इति । विप्लुष्टो निर्दग्धः सन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में राजा परीक्षित् को ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त शाप का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् की कृपा से ही राजा परीक्षित् वैराग्य सम्पन्न हो गये ॥१॥

राजा परीक्षित् के अत्यन्त आश्चर्यमय परंपद गमन का वर्णन करने के लिए परीक्षित् के आश्चर्यमय परीक्षित् के आश्चर्यमय जन्म की याद दिलाते हुए सूतजी योवा > इत्यादि श्लोक को कहते हैं । विप्लुष्टः पद का अर्थ है जले हुए ॥१॥

ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् । न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्म कोपोत्थितात् तक्षकात् प्राणविप्लवात् ऊरुभयात् भगवति अर्पिताशयः यः न संमुमोह ।।२।।

अनुवाद— ब्राह्मण के क्रोध से उत्पन्न तक्षक के काट लेने के कारण उत्पन्न प्राणनाश से भी राजा परीक्षित् इसलिए भयभीत नहीं हुए कि उनका मन भगवान् में उस समय लगा था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकोपादुत्थितात्तक्षकाद्यः प्राणविप्लवः प्राणनाशस्तस्माद्यदुरु भयं तस्मात्र संमुमोह । तत्र हेतुः- यस्तु भगवत्येवार्पिताशय इति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के क्रोध के कारण उत्पन्न तक्षक के काट लेने पर उत्पन्न प्राणनाश के भय से राजा परीक्षित् भयभीत नहीं हुए । उसका कारण यह था कि उस समय उनका मन श्रीभगवान् में लगा हुआ था ॥२॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः । वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः - विज्ञाताजितसंस्थितिः वैयासकेः शिष्यः सर्वतः सङ्गम् उत्सृज्य गङ्गायां स्वकलेवरं जहौ ।।३।।

अनुवाद— जिन्होंने मृत्युकाल में परमात्म साक्षात्कार कर लिया था ऐसे शुकदेवजी के शिष्य राजा परीक्षित् ने सब ओर से अपनी आसक्ति का परित्याग करके गङ्गा नदी में अपने शरीर का परित्याग कर दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंतु उत्सृज्येति । वैयासकेः शुकस्य शिष्यः सन् । विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिस्तत्त्वं येन सः ।।३।।

राजा परीक्षित् शुकदेवजी के शिष्य बनकर अपनी मृत्यु की बेला में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिए थे; अतएव वे मृत्यु की विभीषिका से भयभीत नहीं हुए । विज्ञाताजितसंस्थितिः पद का विग्रह इस प्रकार है । विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिः येन । इसका अर्थ होगा कि उन्होंने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था । किन्तु विजयध्वजी कार ने इस पद का विग्रह इस तरह से किया है विज्ञातः अजितः श्रीहरिः संस्थितौ मृत्युकाले येन सः ॥३॥

नोत्तमञ्रलोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् । स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥

अन्वयः - उत्तमश्लोकवार्तानां तत्कथामृतम् जुषताम्, तत्र पदाम्बुजम् स्मरताम् अन्तकाले अपि सम्भ्रमः न स्यात् ।।४।। अनुवाद - जो लोग सदा श्रीभगवान् की चर्चा करते हैं और जो लोग सदा श्रीभगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं तथा इन दोनों ही साधनों के द्वारा जो लोग उनके चरण कमल का स्मरण करते हैं, उनलोगों को मृत्यु काल में भी किसी प्रकार का मोह नहीं होता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

न चैतिच्चित्रमित्याह । उत्तमश्लोकस्यैव वार्ता येष्वत एव नित्यं तत्कथारूपममृतं जुषतां संभ्रमो मोहो न स्यात् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भगवद्भक्त को मृत्यु की विभीषिका जन्य भय भी नहीं होता है, क्योंकि वे लोग बातें भी श्रीभगवान् की ही करते हैं, एवं नित्य ही भगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं ऐसे लोगों को किसी प्रकार का मोह होता ही नहीं है ॥४॥

तावत्कर्लिन प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः । यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥ अन्वयः— यावत् उर्व्याम् अभिमन्यवः एकराट् महान् ईशः तावत् इह सर्वतः प्रविष्ट अपि कलिः न प्रभवेत् ॥५॥

अनुवाद जब तक इस पृथिवी पर एक मात्र चक्रवर्ती महान् राजा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् हैं तब तक भूलोक में पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी कलियुग अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्राज्ञि सुतरां तन्न चित्रमित्याशयेनाह-तावदिति । अभिमन्योः पुत्र एकराट् चक्रवर्ती ईशः पतिर्यावत् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के भी विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; इस बात को **तावत् कलिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् चक्रवर्ती सम्राट् थे। इसलिए उनके भय से भयभीत किलयुग पृथिवी पर पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी अपने प्रभाव को नहीं प्रदर्शित कर सकता था।।५॥

यस्मिन्नहिवन यहींव भगवानुत्ससर्ज गाम् । तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥

अन्वयः - यस्मिन् अहनि, जह्वेंव भगवान् गाम् उत्ससर्ज तदैव अधर्मप्रभवः कलिः इह अनुवृत्तः ।।६।।

अनुवाद जिस दिन जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथिवी का परित्याग किए उसी समय अधर्म का मूल कारण कलियुग पृथिवी पर प्रवृत्त हो गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु तदा कलेरप्रवेश एवास्तु, इह प्रविष्टोऽपि न प्राभवदिति कुतस्तत्राह-यस्मित्रहिन । यर्हि यस्मित्रेव क्षणे । गां पृथ्वीम्। अनुवृत्तः प्रविष्टः अधर्मस्य प्रभवो यस्मिन् ।।६।।

यदि कोई यह कहे कि तब तो उस समय तक किल का पृथिवी पर प्रवेश ही नहीं हुआ होगा ? तो ऐसी बात नहीं है। किल तो उसी दिन पृथिवी पर आ गया जिस दिन जिस समय भगवान् ने इस पृथिवी का परित्याग किया। वह किल ही अधर्मका मूल कारण है। किन्तु वह राजा परीक्षित् के प्रशासन काल तक अपना प्रभाव नहीं प्रदर्शित कर सकता है।।६।।

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् । कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥

अन्वय:— सारङ्ग इव सारभुक् सम्राट् किलं न अनुद्वेष्टि, यत: कलौ कुशलानि आशु सिध्यन्ति न इतराणि कृतानि ॥७॥ अनुवाद— भौरे के समान सार तत्त्वग्राही राजा किलयुग से इसिलए द्वेष नहीं करते हैं कि इस युग में अच्छे कर्मों की शीघ्र ही सिद्धि हो जाती है और बुरे कर्म किए गये भी फलद नहीं होते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वधर्महेतुं कलिं सर्वथा किं न हतवांस्तत्राह- नानुद्वेष्टीति । सारङ्गो भ्रमर इव सारग्राही । सारमाह । यद्यस्मिन्कुशलानि पुण्यान्याशु सङ्कल्पमात्रेण फलन्ति । इतराणि पापान्याशु न सिध्यन्ति । यतस्तानि कृतान्येव सिध्यन्ति नतु सङ्कल्पितमात्राणीति।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि अधर्म का कारणभूत किल है। उसको राजा परीक्षित् ने क्यों नहीं मार दिया ? उसका उत्तर नानुद्देष्टि इत्यादि श्लोक से दिया गया है। राजा परीक्षित् किलयुग से द्वेष नहीं करते हैं क्योंकि जिस तरह भौंरा केवल पराग का ही पान करता है उसी तरह राजा परीक्षित् भी सारग्राही हैं। इस युग का गुण है कि इस युग में अच्छे कार्यों का सङ्कल्प भी शीघ्र ही फलद हो जाता है और पाप कर्म किए जाने पर भी फल नहीं देते हैं केवल सङ्कल्प मात्र की तो कोइ बात ही नहीं है।।७।।

किं न बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा । अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥८॥

अन्वयः बालेषु शूरेण, धीर भीरुणा कलिना किनु यः प्रमत्तेषु नृषु अप्रमत्तः वृक इव वर्तते ।।८।।

अनुवाद— बालकों पर वीरता दिखाने वाले तथा धीर पुरुष से डरने वाले भेंडिये के समान प्रमादी जीवों के प्रति सावधान रहने वाले कलियुग से क्या होने वाला है ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु दोषाधिक्यादद्वेष एव युक्तः, न, धीरेषु तस्याकिंचित्करत्वादित्याह-किं न्विति । किं नु तेन भवेत् । बालेष्वधीरेषु। अप्रमत्तोऽविहतः सन् यो वृक इव वर्तते ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि किलयुग में तो दोष ही अधिक है अतएव उसके प्रित द्वेष बुद्धि से उसको मार देना ही उचित था, तो ऐसा कहना इसिलए उचित नहीं है कि किलयुग धैर्य सम्पन्न व्यक्ति का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। ऐसे किलयुग से क्या मतलब है, जो लोग धैर्यहीन हैं, उन्हीं लोगों के प्रित सावधान रहकर उन लोगों को वह अपना विषय बनाता है। वह तो उस भेंडिये के समान है जो बच्चों पर तो वीरता दिखाता है और बड़े बलवान् लोगों को देखते ही डरकर भाग जाता है।।८।।

उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया। वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत।।९।।

अन्वयः वासुदेवकथोपेतम् एतत् पुण्यं पारीक्षितं आख्यानं मया वः उपवर्णितम् यद् अपृच्छत् ।।९।।

अनुवाद शौनकादि महर्षियों भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त इस पवित्र परीक्षित् आख्यान को मैंने आपलोगों को सुनाया इसी को आपलोगों ने पूछा था ।।९।।

भावार्थ दीपिका

पारीक्षितमाख्यानम् । अपृच्छत पृष्टवन्तो यूयम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि शौनकादि महर्षियों मैंने आपलोगों को यह भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त राजा परीक्षित् के इस पवित्र आख्यान को सुना दिया । इसी के विषय में आपलोगों ने प्रश्न भी किया था ।।९।।

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः । गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥१०॥

अन्वयः कथनीयोरुकर्मणः भगवतः याः याः गुणकर्माश्रयाः कथाः ताः बुभूषुभिः संसेव्याः ।।१०।।

अनुवाद महान् कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् की जो वर्णन करने योग्य कथाएँ हैं, तथा जिन कथाओं का श्रीभगवान् के कर्मों तथा गुणों से सम्बन्ध हैं, उन कथाओं का सेवन आत्मकल्याण चाहने वाले पुरुषों को करना चाहिए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किं बहुना नरैरेतावदेव कर्तव्यमिति सर्वशास्त्रार्थसारं कथयति-या या इति । कथनीयान्युरूणि कर्माणि यस्य तस्य गुणकर्मविषयाः । बुभूषुभिः सद्भाविमच्छद्भिः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है, मनुष्यों को इस श्लोक में बतलाये जाने वाले कार्यों को ही करना चाहिए । अतएव शास्त्रों के सार को बतलाते हुए सूतजी **या या: इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । श्रीभगवान् के कर्म महान् तथा वर्णनीय हैं । उन श्रीभगवान् के गुणों एवं कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली जो कथाएँ है, कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को उन सभी कथाओं का सेवन करना चाहिए ।।१०।।

ऋषय ऊचु:

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः । यस्त्वं शंसिस कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥११॥

अन्वयः हे सौम्य सूत शाश्वतीः समाः जीव यःत्वम् मर्त्यानां हि नः कृष्णस्य विशदम् अमृतम् यशः शंसिस ।।११।।

ऋषयों ने कहा

अनुवाद— हे सौम्य स्वभाव वाले सूतजी ! आप युगों तक जीवित रहें क्योंकि आप हम मर्त्य जीवों को भगवान् श्रीकृष्ण के अमृतमय विशद यश को सुना रहे हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

पुनर्विस्तरेण कथनार्थं सूतोक्तिं तत्सङ्गं चाभिनन्दन्ति–सूतेति त्रिभिः । शाश्वतीः समा अनन्तान्वत्सरान् जीव । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । विशुद्धं यशः कीर्तयसि । तच्चास्माकं मर्त्यानाममृतं मरणनिवर्तकम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

फिर विस्तार से परीक्षित् की कथा को कहने के लिए सूतजी की बातों की तथा उनकी सङ्गित की प्रशंसा करते हुए शौनक महर्षि ने सूत जीव॰ इत्यादि तीन श्लोकों में कहा कि हे सूतजी आप अनन्त वर्षों तक जीवित रहें। यहाँ शाश्वती: समा: में अत्यन्त संयोग के अर्थ में द्वितीया विभक्ति है। क्योंकि आप हमलोगों को भगवान्

श्रीकृष्ण के विशुद्ध यश को सुनाते हैं। वह हम मरणशील जीवों की मृत्यु को दूर करने वाले अमृत के समान है।।११।।

कर्मण्यस्मिन्ननाश्चासे धूमधूम्रात्मनां भवान् । आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥१२॥

अन्वयः --- अस्मिन् अनाश्वासे कर्मणि धूम धूम्रात्मनां नः भवान् गोविन्दपादपद्मासवं मधु आपाययति ।।१२।।

अनुवाद— इन यज्ञ रूपी कर्मों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, और इन यज्ञादि कर्मों के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। आप हमलोगों को भगवान् गोविन्द के चरण कमलों का मादक मधु पीलाकर तृप्त कर रहे हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

किंच अस्मिन्कर्मणि सत्रेऽनाश्वासेऽविश्वसनीये । वैगुण्यबाहुल्येन फलनिश्चयाभावात् । धूमेन धूम्रो विवर्ण आत्मा शरीरं येषां तानस्मान् । कर्मणि षष्ठी । आसवं मकरन्दम् । मधु मधुरम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च यह सत्र रूपी कर्म ऐसा हैं कि इस पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यह अपना फल प्रदान करेगा ही; क्योंकि इसके अनुष्ठान में अनेक प्रकार के विघ्न सम्भव हैं। अतएव इसके फल का निश्चय नहीं किया जा सकता है; और इस यज्ञ कर्म के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। और आप भगवान् गोविन्द के चरण कमल के मकरन्द से संबद्ध मधुर कथा को सुनाकर हमलोगों को आप्यायित कर रहे हैं।।१२।।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥

अन्वय:— भगवत् साङ्गिसङ्गस्य, लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवम् तुलयाम मर्त्यानाम् आशिषः किमुत ।।१३।। अनुवाद — श्रीभगवान् के भक्तों के सत्सङ्ग के लवमात्र की भी तुलना न तो स्वर्ग से की जा सकती है और न तो मोक्ष से की जा सकती है, ऐसे मनुष्यों को राज्यादि से प्राप्त होने वाले भोगों से इसकी तुलना कैसे की जा सकती है ?।।१३।।

भावार्थ दीपिका

भगवत्सिङ्गिनो विष्णुभक्तास्तेषां सङ्गस्य यो लवोऽत्यल्पः कालस्तेनापि स्वर्गं न तुलयाम समं न पश्याम । न चापवर्गम्। संभावनायां लोट् । मर्त्यानां तुच्छा आशिषो राज्याद्या न तुलयामेति किमु वक्तव्यम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु के भक्त भगवत् सङ्गी है। उनका जो होने वाला सङ्ग है, उसके अत्यल्प भाग की भी तुलना न तो स्वर्ग सुख से की जा सकती है और न मुक्ति से ही की जा सकती है। तुलयाम में सम्भावना के अर्थ में लोट् लकार हुआ है। ऐसी स्थिति में राज्यादि जन्य भोगों की तुलना उससे नहीं करते हैं, इस बात को क्या कहना है ? वह तो अर्थत: ही सिद्ध है। १३।।

को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य । नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥१४॥

अन्वयः— को नाम रसवित् कथायां तृप्येत्, महत्तमैकान्तपरायणस्य अगुणस्य गुणानाम् ये भवपाद्ममुख्याः योगेश्वराः ते अन्तं न जग्मुः ।।१४।।

अनुवाद कौन ऐसा रसज्ञ प्राणी होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से तृप्त हो जायेगा । जो

भगवान् महापुरुषों के लिए एकमात्र आश्रय हैं तथा निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से रहित हैं), उनके गुणों के अन्त का पता शिवजी तथा ब्रह्माजी आदि योगेश्वर भी नहीं लगा सके । क्योंकि भगवान् के गुण अनन्त हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं सत्सङ्गमभिनन्द्य श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति-को नामेति । रसविद्रसज्ञः । महत्तमानामेकान्तेन परमायनमाश्रयो यस्तस्य कथायाम् । अगुणस्य प्राकृतगुणरिहतस्य । कल्याणगुणानामन्तं ये योगेश्वरास्तेऽपि न जग्मुरेतावन्त इति न परिगणयाञ्चकुः भवः शिवः पाद्मो ब्रह्मा च मुख्यौ येषां ते ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सत्सङ्ग की प्रशंसा करके महर्षि शौनक भगवत् कथा के श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए को नाम रसिवत् इत्यादि श्लोक को कहते हैं। रसिवत् रस के वेत्ता पुरुष को कहते हैं; श्रीभगवान् महापुरुषों के लिए एक मात्रा आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से कोई कैसे तृप्त हो सकता है? श्रीभगवान् अगुण हैं अर्थात् वे प्राकृतिक गुणों से रिहत हैं और वे अनन्त कल्याण गुणों के आश्रय है। उन श्रीभगवान् के कल्याणगुणों के अन्त का पता लगाने वाले शिवजी तथा ब्रह्माजी इत्यादि जो योगेश्वर हैं; वे भी उनके गुणों का अन्त नहीं पा सके ॥१४॥

तन्नौ भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य । हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥१५॥

अन्वयः हे विद्वन् भवान् वै भगवत् प्रधानः शुषूषतां नः हरेः उदारं विशुद्धं चिहरतं वितनोतु ।।१५।। अनुवाद हे विद्वन् ! आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान् ही हैं ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को श्रीहरि के धर्मार्थ काममोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं मध्ये भगवान्प्रधानं सेव्यो यस्य स भवात्रः हरेश्चरितं विस्तारयतु ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के बीच में विद्यमान आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान हैं । ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को महापुरुषों के एक मात्र आश्रय श्रीहरि के धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ॥१५॥

स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमभ्रबुद्धः । ज्ञानेन वैयासिकशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥१६॥

अन्वयः— स वै महाभागवतः परीक्षित् अदभ्रबुद्धिः येन वैयासिकः शब्दितेन ज्ञानेन अपवर्गाख्यं खगेन्द्रध्वजपादमूलम् भेजे ।।१६।।

अनुवाद— वे महाभागवत परीक्षित् महान् बुद्धि सम्पन्न थे, उन्होंने शुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के द्वारा मोक्ष नामक गरुडध्वज भगवान् विष्णु के चरणों के सिन्नध्य को प्राप्त किया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तच्च शुकपरीक्षित्संवादेन कथयेत्याहु:- स वा इति द्वाभ्याम् । वैयासिकना श्रीशुकेन शब्दितेन कथितेन येन ज्ञानेन ं ज्ञानसाघनेनापवर्ग इत्याख्या यस्य तत् खगेन्द्रध्वजस्य हरे: पादमूलं भेजे ।।१६।।

शौनकजी ने कहा कि श्रीभगवान् के चिरत को आप शुक-परीक्षित् संवाद के माध्यम से सुनायें। इस बात को उन्होंने स वै० इत्यादि दो श्लोकां के माध्यम से कहा। व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान रूपी साधन के द्वारा राजा परीक्षित् अपवर्ग (मोक्ष) नामक भगवान् गरुडध्वज के चरणों को प्राप्त कर लिए।।१६।।

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् । आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥

अन्वयः — तत् असंवृतार्थम् अत्यद्भुतयोगनिष्ठम् । अनन्तचरितोपपन्नम् भागवताभिरामम् परं पुण्यं पारीक्षितम् आख्यानम् आख्याहि ।।१६।।

अनुवाद — ज्यों के त्यों, अत्यन्त, भगवत् प्रेम की अद्भुत योगनिष्ठा से युक्त, श्रीभगवान् की लीलामयी कथाओं से युक्त, भगवद् भक्तों को अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त पवित्र महाराज परीक्षित् के चरित का आप वर्णन करें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तदसंवृतार्थं यथा तथा आख्याहि । तदेव निर्दिशन्ति । परीक्षिते कथितं पारीक्षितमायानं श्रीभागवतं पुराणम् । परं पुण्यं सत्त्वशोधकम् । अत्यद्भुते योगे निष्ठा यस्य । अनन्तस्याचिरतैरुपपन्नं युक्तम् । अतएव भागवतानामभिरामं प्रियम् । एतैर्विशेषणैः कर्मज्ञानभक्तियोगप्रकाशकत्वं दर्शितम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के चिरत को आप ज्यों के त्यों हमलोगों को सुनायें । उसी को बतलाते हुए शौनक महर्षि कहते हैं राजा परीक्षित् के विषय में विणित आख्यान को पारीक्षित् कहते हैं अर्थात् परीक्षित् से संबद्ध श्रीमद्भागवत पुराण को जो अन्तःकरण को स्वच्छ बनाने वाला होने के कारण अत्यन्त पिवत्र है । जिसकी अत्यन्त अद्भुत योग में निष्ठा है तथा अनन्त श्रीभगवान् की लीलाओं से युक्त होने के कारण भगवद् भक्तों को जो अत्यन्त प्रिय है उस परीक्षित् के आख्यान का आप वर्णन करें । इन सभी विशेषणों से यह बतलाया गया है कि राजा परीक्षित् की कथा कर्मयोग, ज्ञानयोग एव भक्तियोग का प्रकाशक है ॥१७॥

सूत उवाच

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः । दौष्कुल्यमाघिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥

अन्वयः— विलोमजाता जन्मभृतः अपि वयं वृद्धानुवृत्त्या अद्य अहो, यतः महत्तमानामाभिधानयोगः दौष्कुल्यम् आधिं शीघ्रं विधुनोति ।।१८।।

अनुवाद— विलोम जाति में उत्पन्न होने पर भी वृद्ध पुरुषों की सेवा करने के कारण आज हम धन्य हो गये; क्योंकि महापुरुषों के साथ बातें करने का अवसर नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

श्रीभागवतव्याख्याने लब्धप्रसङ्गं महतामादरपात्रमात्मानं श्लाघते द्वाभ्याम् । अहो इत्याश्चर्ये । ह इति हर्षे । वयमिति बहुवचनं श्लाघायाम् । प्रतिलोमजा अप्यद्य जन्मभृतः सफलजन्मान आस्म जाताः । वृद्धानामनुवृत्त्या आदरेण । ज्ञानवृद्धः शुकस्तस्य सेवयेति वा । यतो दुष्कुलत्वं तित्रिमित्तमाधिं च मनःपीडां महत्तमानामभिधानयोगो लौकिकोऽपि संभाषणलक्षणः संबन्धो विधुनोत्यपनयति ।।१८।।

श्रीमद्भागवत की कथा कहने का प्रसङ्ग प्राप्त होने के कारण सूतजी दो श्लोकों के द्वारा अपनी प्रशंसा करते हैं। अहो इस अव्यय का प्रयोग आश्चर्य के अर्थ में किया गया है। ह इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में हुआ है। वयम् इस बहुवचनान्त पद का प्रयोग प्रशंसा के अर्थ में है। सूतजी अपनी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मैं प्रतिलोम जाति में उत्पन्न हुआ हूँ किन्तु आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि ज्ञान वृद्ध शुकदेवजी की मैंने सेवा की है। महापुरुषों के साथ बात-चित भी करने का अवसर प्राप्त होने के कारण नीच जाति में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है। १८।।

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य । योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महहुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥१९॥

अन्वयः— महत्तमैकान्तपरायणस्य तस्य नाम गुणतः कुतः । यः अनन्तशक्तिः भगवान् अनन्तः यम् महद्गुणत्वात् अनन्तम् आहुः ।।१९।।

अनुवाद महापुरुषों के लिए जो एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के विषय में फिर क्या कहना है। जो श्रीभगवान् अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं तथा देश, काल एवं वस्तु की सीमा से रहित हैं। जिन श्रीभगवान के महान् गुणों से सम्पन्न होने के कारण ही महापुरुषों ने अनन्त कहा है।।१९॥

भावार्थ दीपिका

कुतः पुनः किं पुनर्वक्तव्यं तस्यानन्तस्य नाम गृणतः पुंसो महत्तमानामभिधानयोगो दौष्कुल्यं विधुनोतीति । यद्वा नाम गृणतः पुनः कुतो दौष्कुल्यमिति । यद्वा गृणतः पुंसस्तस्य नाम दौष्कुल्यं विधुनोतीति किं वक्तव्यमिति कैमुत्यन्यायमेवाह । अनन्ताः शक्तयो यस्य । स्वतोऽप्यनन्तः किंच महत्सु गुणा यस्य स महद्भुणः तस्य भावस्तस्मात् । यं गुणतोऽप्यनन्तमाहुः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अनन्त के नामों का उच्चारण करने वाले पुरुष के विषय में क्या कहना है ? महापुरुषों के साथ बातिचत करने का अवसर भी नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है । अथवा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के नीच जाित का होने का प्रसङ्ग ही कहाँ हैं । अथवा उच्चारण किया जाने वाला भगवान् का नाम नीच वंशोत्पन्नत्व को ही विनष्ट कर देता है । यह क्या कहना है, यह तो अपने आप ही सिद्ध है । इसतरह कैमुत्यन्याय को यहाँ पर बतलाया गया है । भगवान् में अनन्त शक्तियाँ हैं अतएव वे अनन्त शिक्त शब्द से अभिहित किए जाते हैं । वे स्वयं भी अनन्त है । अथवा जिनके गुण महापुरुषों में पाये जाते हैं ऐसे महद्गुण सम्पन्नता के कारण भी भगवान् को अनन्त शब्द से अभिहित किया गया है ।।१९।।

एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य । हित्वेतरान्त्रार्थयतो विभृतिर्यस्याङ्घिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥

अन्वयः -- गुणै: असाम्यानितशायनस्य ननु एतावता सूचितेन अलम् यत् प्रार्थयतः इतरान् हित्वा विभूतिः अनभीप्सोः यस्य अङ्घ्रिरेणुम् जुषते ।।२०।।

अनुवाद — जब कोई भगवान् के गुणों की ही समता नहीं कर सकता है तो फिर उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा ? उनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की इच्छा से जो उनकी प्रार्थना करते हैं उन सबों को त्यागकर लक्ष्मीजी नहीं चाहने वाले भी श्रीभगवान् के चरणरजों का प्रेमपूर्वक सेवन करती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति त्रिभि:- एतावतेति । तस्य यदसाम्यानितशायनं च गुणैस्तत्साम्यं तदाधिक्यं चान्यस्य नास्तीत्यस्यार्थस्य ज्ञानमेतावता सूचितेनैवालं प्रयीप्तं कस्तद्विस्तरो वक्तुं शक्रोति । तदेवाह । इतरान्ब्रह्मादीन्प्रार्थयमानान् हित्वा विभूतिर्लक्ष्मीरनभीप्सोरिप यस्याङ्घरेणुं सेवत इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विसतार से वर्णन एतावतालम् इत्यादि तीन श्लोंकों से किया जा रहा है। श्रीभगवान के गुणों के ही कारण उनका साम्यातिशय राहित्य है। अतएव श्रीभगवान् के गुणों के समान गुणों वाला कोई दूसरा नहीं है और न तो उनसे बढ़कर ही गुणों वाला कोई है। इस प्रकार का जो ज्ञान है उसके विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि भगवान् के गुणों का विस्तार से वर्णन कौन कर सकता है? इसी बात को बतलाते हुए सूतजी कहते हैं हित्वा इत्यादि दूसरे ब्रह्माजी इत्यादि लक्ष्मीजी की प्रार्थना करते हैं कि वे उनको प्राप्त हो जायँ, किन्तु उन प्रार्थना करने वालों को त्यागकर लक्ष्मीजी उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा अत्यन्त प्रेम पूर्वक करती हैं, जिन श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की लालसा है ही नहीं ॥२०॥

अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः । सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥२१॥

अन्वयः— अथापि यत्पादनखावसृष्टं विरिञ्चोपहृतअर्हणाम्भः सेशं जगत् पुनाति लोके मुकुन्दात् को नाम अन्यतमः भगवत् पदार्थः ।।२१।।

अनुवाद किञ्च जिन श्रीभगवान् के चरणों के नख से निकले हुए तथा ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त पूजनीय जल गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है, उन भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीमुकुन्द से भिनन दूसरा कौन नाम है जो भगवान् पद का वाच्यार्थ बन सके ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अथेत्यर्थान्तरे । यस्य पादनखादवसृष्टं निःसृतमिप विरिश्चेनोपहृतं समर्पितमर्हणाम्भोऽर्घोदकमीशसिहृतं जगत्पुनाति । विरिश्चोपहृतं सेशमिति च तयोरप्युपासकत्वमुक्तम् । तस्मान्मुकुन्दव्यतिरिक्तः को नाम भगवत्पदस्यार्थः । स एव सर्वेश्वर इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ अथ शब्द का अर्थान्तर के अर्थ में प्रयोग हुआ है। जिन श्रीभगवान् के चरणों से निकला हुआ जल जिसे ब्रह्माजी ने शङ्करजी को अर्घोदक के रूप में प्रदान किया वह गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है। विरिश्चिचोपहृतं सेशम् कहने का अभिप्राय है कि वह शङ्करजी के साथ ही ब्रह्माजी को भी पवित्र बन दिया। इस तरह ब्रह्माजी और शिवजी दोनों के उपासकत्व की प्रतीति होती है। अतएव भगवान् मुकुन्द को छोड़कर दूसरा कौन है जिसको भगवान् पद से अभिहित किया जाय। फलतः भगवान् विष्णु ही सर्वेश्वर सिद्ध होते हैं।।२१।।

यात्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् । व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥२२॥

अन्वयः यत्रानुरक्ताः धीराः सहसा एव देहादिषु ऊढं सङ्गं व्यपोह्य, तत् अन्त्यं पारमहंस्यं ब्रजन्ति यस्मिन् अहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२।। Ш

अनुवाद - उन श्रीभगवान् में अनुरक्त ज्ञानी पुरुष अचानक ही शरीर आदि में गृहीत आसक्ति का परित्याग करके उस अन्तिम पारमहंस्य आश्रम को अपना लेते हैं जिसमें अहिंसा और उपशम ही अपना धर्म हो जाता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

घीराः सन्तः । ऊढं घृतम् । अन्त्यं परमकाष्ठापन्नम् । तदाह । यस्मिन्नहिंसा उपशमश्च स्वाभाविको धर्मः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् में जब सुदृढ प्रेम हो जाता है, उस समय ज्ञानी पुरुष इन शरीरादिकों में जो आसित हो गयी है, उसको अचानक बिना किसी हिचक के ही त्याग देते हैं और जीवन का जो अन्तिम आश्रम है उस संन्यास आश्रम को अपना लेते हैं और उस आश्रम में हिंसा का त्याग रूपी अहिंसा और उपशम ये दोनों अपना स्वाभाविक धर्म बन जाता है ॥२२॥

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् । नभः पतन्त्यात्मसमं पतित्रणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥२३॥

अन्वयः— हे अर्यमणः अहं हि भवद्भिः पृष्टः यावान् आत्मावगमः अत्र वक्ष्ये । यथा पतित्रणः आत्मसमं नभः पतिन्त तथा समं विपश्चितः विष्णु गतिम् ॥२३॥

अनुवाद हे सूर्य के समान देदीप्यमान महर्षिगण, आपलोगों ने जो मुझसे पूछा है उसे मैं अपने ज्ञान के अनुसार बतलाता हूँ। जिस तरह पक्षीगण अपनी शक्ति के अनुसार ही आकाश में उड़ते हैं उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञान के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्वभाग्यमभिनन्द्य पारीक्षितोपाख्यानं वक्तुमाह-अहं हीति । हे अर्यमणः हे सूर्यास्त्रयीमूर्तयः, अत्र यावानात्मावगमो मम ज्ञानं तावदाचक्षे प्रवक्ष्यामि । तथाहि । यथा पक्षिणो नभ आत्मसमं स्वशक्त्यनुरूपमेवोत्पतन्ति न कृत्स्नं, तथा विपश्चितोऽपि विष्णोर्गतिं लीलां समं स्वमत्युनरूपमेव वदन्तीत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने भाग्य की सराहना करने के पश्चात् सूतजी ने परीक्षितोपाख्यान का वर्णन करने के लिए अहंहि॰ इत्यादि श्लोक को कहा है। उन्होंने कहा— हे सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकाश सम्पन्न त्रयीमूर्ति महर्षियों इस विषय में मेरी जितनी जानकारी है। उसी के अनुसार मैं परीक्षित् चरित का वर्णन करूँगा। उदाहरणार्थ-पक्षीगण अपनी शक्ति के ही अनुसार आकाश में उड़ते हैं, वे सम्पूर्ण आकाश में तो उड़कर जा नहीं सकते हैं। उसी तरह विद्वान् पुरुष भी अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं। वे भगवान् की सारी लीलाओं का वर्णन तो नहीं कर सकते हैं।।२३॥

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वनं । मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् । ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥

अन्वयः— एकदा धनुः उद्यम्य वने मृगयां विचरन् मृगानुगतः श्रान्तः भृशम् क्षुधितः तृषितः जलाशयम् आचक्षाणः तम् आश्रमम् प्रविवेश । आसीनम् शान्तम् मीलितलोचनम् मुनिं ददर्श ।।२४-२५।।

अनुवाद— एक बार राजा परीक्षित् वन में आखेट के प्रसङ्ग में विचरण करते हुए तथा मृग का पीछा करते हुए बहुत अधिक थक गये भूखे तथा प्यासे राजा जलाशय की खोज करते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये। उन्होंने आसन पर बैठे हुए शान्त तथा नेत्रों को बन्द किए हुए ऋषि को देखा ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

संप्रति कथामुपक्षिपति-एकदेति । अचक्षाणोऽपश्यन् तं प्रसिद्धमाश्रमम् । तस्मिश्च मुनिं शमीकम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अब एकदा॰ इत्यदि श्लोक से सूतजी ने कथा प्रारम्भ की । उन्होंने कहा— राजा परीक्षित् एक बार धनुष धारण करके वन में मृगया विहार कर रहे थे । एक मृग का पीछा करते हुए वे बहुत थक गये और भूख तथा प्यास के मारे वे जलाशय को खोजते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये । वह शमीक मुनि का आश्रम था। वहाँ उन्होंने आसन पर बैठे हुए, शान्त तथा आँखें बन्द किए हुए शमीक मुनि को देखा ॥२४-२५॥

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् । स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम्॥२६॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च। विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत॥२७॥

अन्वयः— प्रतिरुद्धेन्द्रिय प्राणमनोबुद्धिम् उपारतम् स्थानत्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतम्, अविक्रियम्, विप्रकीर्णजटा रौरवेण अजिनेन छत्रं तथा भूतम् विशुष्यत् तालुः उदकम् अयाचत् ।।२६-२७।।

अनुवाद — इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि के अवरुद्ध हो जाने के कारण संसार से ऊपर उठे हुए, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर तुरीयावस्था को प्राप्त कर गये अतएव विकार रहित ब्रह्म स्वरूप ऋषि की जटायें विखरी हुयी थी और रुरु मृग के चर्म को वे ओढे हुए थे, उस प्रकार के मुनि से प्यास से जिनका तालु सुख रहा था वे राजा जल माँगे ॥२६-२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिरुद्धाः प्रत्याहृता इन्द्रियादयो येन तम् । अत एवोपरतम् । स्थानत्रयाज्जग्रदादिलक्षणात्परं तुरीयं पदं प्राप्तम् अतएव ब्रह्मभूतत्वादिविक्रियम् । विप्रकीर्णाभिर्जटाभिराच्छत्रम् । रुरुर्मृगविशेषस्तस्य चर्मणा चाच्छत्रम् । विशेषेण शुष्यत्तालु यस्य सः। तथाभूतं मुनिमुदकमयाचत ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय महर्षि अपनी इन्द्रियों, प्राण, मन तथा बुद्धि को निरुद्ध कर दिये थे, अतएव वे संसार से ऊपर उठ चुके थे। जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर वे तुरीयावस्था को प्राप्त कर लिए थे। फलत: वे ब्रह्मस्वरूप तथा निर्विकार हो गये थे महर्षि उनकी जटायें विखरी हुयी थीं और वे रुरु मृग के चर्म को ओढ़े हुए थे। इस प्रकार के महर्षि से राजा ने जल माँगा। उस समय प्यास के कारण राजा का कण्ठ सूखा जा रहा था।।२६-२७॥

अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्धसूनृतः । अवज्ञातिमवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥२८॥

अन्वयः --- अलब्धतृणभूम्यादिः न संप्राप्तार्घसुनृतः अवज्ञातम् इव आत्मानं मन्यमानः चुकोप ह ।।२८।।

अनुवाद— बैठने के लिए तृण आसन तथा भूमि आदि राजा को नहीं प्राप्त हुआ, राजा को किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो उनको किसी ने प्रिय वाणी से सत्कृत किया। उससे राजा ने मान लिया कि वहाँ पर उनका अपमान हुआ है। अतएव वे क्रुद्ध हो गये।।२८।।

भावार्थ दीपिका

न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशस्थानं च येन सः । न संप्राप्तोऽर्घः सूनृतं प्रियवचनं य येन सः ।।२८।।

अलब्य तृण भूम्यादिः पद का विग्रह है । न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशन स्थानं येन सः । असंप्राप्तार्धसुनृतः का विग्रह है न सम्प्रातोऽर्धः सुनृतं प्रियवचनं च येन सः । अर्थात् वहाँ पर किसी ने राजा को न तो बैठने के लिए कोई तृण निर्मित आसन ही दिया और न तो उनको भूमि पर ही बैठ जाने के लिए किसी ने कहा । इसी तरह उनको न तो किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो किसी ने प्रियवाणी से उनका सत्कार ही किया । यह देखकर राजा ने मान लिया कि यहाँ तो मेरा अपमान हो रहा है । राजा मन ही मन क्रुद्ध हो गये ॥२८॥

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः। ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च॥२९॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ! क्षुततृड्भ्याम् अर्दितात्मनः सहसा तस्य ब्राह्मणं प्रति अभूतपूर्वः मत्सरः मन्युरेव च अभूत् ॥२९॥ अनुवाद हे शौनकजी भूख तथा प्यास से व्याकुल राजा परीक्षित् के मन में ब्राह्मण के प्रति अचानक अभूतपूर्व द्वेषमयी बुद्धि हो गयी और क्रोध उत्पन्न हो गया । राजा के जीवन में इससे पहले किसी ब्राह्मण के प्रति द्वेषबुद्धि और क्रोध कभी नहीं हुआ था ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

मत्सरस्तदुत्कर्षासहनम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

राजा के मन में महर्षि शमीक के प्रति द्वेष बुद्धि हो गयी । दूसरे के उत्कर्ष को नहीं सह पाने को ही मत्सर कहते हैं यह राजा के जीवन में इस प्रकार का पहला अवसर था ।।२९।।

स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा । विनिर्गच्छन्थनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥

अन्वयः स तु रुषा विनिर्गच्छन् धनुष कोट्या गतासुम् उरगं निधाय पुरमागमत् ।।३०।।

अनुवाद— वे राजा क्रोध करके आश्रम से निकलते हुए अपने धनुष के अग्रभाग से मरे हुए सर्प को उठाकर ऋषि के गले में उसे डालकर अपने नगर में आ गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

गतासुं मृतम् । धनुष्कोट्या चापाग्रेण ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

राजा क्रोध के आवेश में थे, उन्होंने एक मरे हुए सर्प को अपने धनुष के अग्रभाग से उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया ॥३०॥

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षण: । मृषासमाधिराहोस्वित्कि तु स्यात्क्षत्रबन्धुभि: ॥३१॥

अन्वयः एषः मीलितेक्षणः किं निभृताशेषकरणः आहोस्वित् क्षत्रबन्धिभिः किं नु स्यात् इति मृषा समाधिः ।।३१।। अनुवाद आँखों को बन्द किए ये मुनिः वस्तुतः अपनी इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध कर लिए हैं अथवा यह जानकर कि क्षत्रियों के आने जाने से क्या होता है ? यह सोचकर झूठी समाधि लगा रखे हैं यही सोचकर राजा ने ऋषि के गले में मरा साँप डाल दिया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

सर्पनिधाने राजोऽभिप्रायमाह । एष किं प्रत्याहृतसर्वेन्द्रियः सन् मीलितेक्षणः स्थितो यद्वा क्षत्रबन्धुभिरागतैर्गतैर्वा किं नु स्यादित्यवज्ञया मृषासमाधिः सित्रिति जिज्ञासयेत्यर्थः ।।३१।।

ऋषि के गले में सर्प डालते समय राजा के मन में यह जानने की इच्छा हो गयी थी कि ये आँखे बन्द किए हुए ऋषि वस्तुत अपनी इन्द्रियों आदि का निग्रह कर लिए हैं अथवा यह सोचकर कि क्षत्रियों के आने-जाने से क्या होता है ? आँखे बन्द किए हुए झूठी समाधि लगाये हुए हैं ॥३१॥

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः । राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥

अन्वयः — तस्य अतितेजस्वी बालकः पुत्रः विहरन् सन् अर्भकैः राज्ञा अघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्र इदम् अब्रवीत् ।।३२।। अनुवाद — उन शमीक ऋषि का बालक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी था वह बालकों के साथ खेल रहा था । बालकों से उसने जब यह सुना कि राजा ने मेरे पिता को दुःख दिया है तो उसने बालकों के बीच में ही कहा ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य पुत्रः शृङ्गीनामा । अतितेजस्वी तपोबलसंपत्रः । अघं दुःखम् । तत्र अर्थकमध्ये ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषि शमीक के पुत्र का नाम शृङ्गी था। शृङ्गी ऋषि यद्यपि बालक थे और बालकों के साथ खेल रहे थे। फिर भी वे अत्यन्त तेजस्वी थे। उनको तपस्या का बल प्राप्त था। उन्होंने बालकों से जब यह सुना कि राजा ने उनके पिता को दु:ख पहुँचाया है तो वे कुद्ध हो गये, उन्होंने बालकों के बीच में ही निम्नलिखित बातों को कहा।।३२।।

अहो अद्यर्मः पालानां पीब्नां बलिभुजामिव । स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥

अन्वय:— पीब्नां बिलभुजामिव पालानां अहो अधर्मः स्वामिनि अधं कुर्वतां दासानाम् द्वारपानां शुनामिव ।।३३।। अनुवाद— उच्छिष्ट भोजन खा करके मोटे हुए कौओं के समान भोजन करके मोटे हुए राजाओं का यह कितना बड़ा पाप है । यह उसी तरह से है जिस तरह उच्छिष्टभोजी भृत्य स्वामी का अपकार करने लग जाय या द्वार की रक्षा करने वाला कुत्ता स्वामी को काटने के लिए दौड़ने लगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

पालानां राज्ञाम् । पीव्नां पुष्टानाम् । अधर्ममेव निर्दिशति । स्वामिनि दासानां यदघं पापाचरणं बलिभुजां काकानामिव शुनामिव चेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ये खाकर मोटे हुए राजागण अपने स्वामी ब्राह्मणों के प्रति पाप करने लगे हैं। यह तो उसी तरह से है जैसे खाकर मोटे हुए भृत्य, या द्वारों का रक्षक कुत्ता या बलिभोजी उच्छिष्ट भोजी कौआ अपने स्वामी का ही अपकार करने लगे ॥३३॥

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः । स कथं तद्वहे द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हित ॥३४॥

अन्वयः— ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुः हि द्वारपालो निरूपितः द्वाःस्थःसःकथं तद्गृहे सभाण्डं भोक्तुमर्हति ।।३४।।

अनुवाद ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के। अपना द्वारपाल नियुक्त किया है। द्वार पर रहने वाला वह अपने स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में कैसे भोजन कर सकता है ?॥३४॥

भावार्थ दीपिका

दासत्वं दर्शयति-ब्राह्मणैरिति । सभाण्डं भाण्डे एव स्थितम् ।।३४।।

क्षत्रिय ब्राह्मणों के दास हैं, इस बात का निरूपण करते हुए ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को द्वार पर रहकर घर की रखवाली करने का काम सौंपा है। वह द्वार पर रहने वाला स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में भोजन करने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?॥३४॥

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् । तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥

अन्वयः - उत्पथगामिनां शास्तिर भगवित कृष्णे गते, तद्भिन्न सेतून् अद्य अहं शास्मि मे बलम् पश्यत ।।३५।। अनुवाद - उन्मार्ग गामियों का प्रशासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम गमन कर जाने के पश्चात् मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इन राजाओं को आज मैं दण्ड देता हूँ । तुमलोग मेरा बल देखो ।।३५॥

भावार्थ दीपिका

तत्तदनन्तरम् । अहं शास्मि दण्डयामि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पश्चात् इन राजाओं को मैं दिण्डित कर रहा हूँ । तुमलोग मेरे बल को देखो इस तरह से शृङ्गी ऋषि ने बालकों से कहा ॥३५॥

इत्युक्त्वा रोषताप्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् । कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥३६॥

अन्वयः - रोषताम्राक्षः वयस्यान् ऋषिबालकान् इति उक्त्वा कौशिक्यापः उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६।। अनुवाद - क्रोध से आँखें लाल किए हुए बालक शृङ्गीं अपने मित्र बालको से इस बात को कहकर कौशिकी नदी के जल का आचमन करके वाणी रूप वज्र (शाप) का प्रयोग किया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

इति वयस्यानुक्त्वा रोषेण ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । कौशिकी नदी तस्या अपः । सन्धिरार्षः । वाग्वज्रं शापम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने मित्रों से कहकर ऋषि कुमार ने कौशिकी नदी के जल से आचमन करके शाप दे दिया ॥३६॥

इति लङ्कितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहिन । दङ्क्ष्यिति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥३७॥

अन्वयः इति लङ्कितमर्यादम् कुलाङ्गरम् मे तत द्रुहम् सप्तमे अहनि प्रेरितः तक्षकः दंक्ष्यति ।।३७।।

अनुवाद इस प्रकार से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले अपने वंश के लिए अङ्गार स्वरूप तथा मेरे पिता से द्रोह करने वाले राजा को आज के सातवें दिन मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक काट लेगा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं सर्पनिक्षेपेण । दङ्क्ष्यति भक्षयिष्यति । पाठान्तरे भस्मीकरिष्यति । स्मेति । पादपूरणे । कुलस्स्याङ्गारतुल्यम्। मे मया । ततेति ह्रस्वत्वमार्षम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से मेरे पिता के गले में सर्प डालने से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले, अपने वंश के लिए अङ्गार के समान उसको विनष्ट करने वाले राजा को मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक आज के सातवें दिन काट लेगा। दंक्ष्यित के स्थान पर जहाँ पर धक्ष्यित पाठ भेद हैं वहाँ पर भस्म कर देगा यह अर्थ होगा । दंक्ष्यित सम में सम का प्रयोग पादपूर्ति के लिए है । ततद्वहम् में तत यह ह्रस्व पाठ आर्ष प्रयोग है ॥३७॥ ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गलेसर्पकलेवरम् । पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥

अन्वयः— ततः बालः आश्रमं अभ्येत्य गले सर्पकलेवरम्, पितरं वीक्ष्य दुःखार्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ।।३८।। अनुवाद— उसके पश्चात् वह बालक अपने आश्रम में आकर तथा पिता के गले में सर्प को देखकर दुःख से आर्त हो गया और जोर-जोर से रोने लगा ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

गले सर्पकलेवरं यस्येत्यलुक्समासः मुक्तकण्ठः उच्चैरित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

गले सर्पकालेवरम् इस पद में अलुक् समास है, अर्थात् विभक्ति का लुक् नहीं हुआ है । मुक्त कण्ठः का अर्थ है जोर-जोर से । अर्थात् पिता के गले में सर्प के शरीर को देखकर वह बालक अत्यन्त दुःखी होकर जोर-जोर से रोने लगा ॥३८॥

स वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् । उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि । केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥४०॥

अन्वयः— स वै आङ्गिरसः सुतविलापनं श्रुत्वा शनकैः नेत्रे उन्मील्य स्वांसे मृतोरगम् दृष्ट्वा, विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ, कस्मात् हि रोदिषि वा केन ते प्रतिकृतम् ? इत्युक्तः स न्यवेदयत् ।।३९-४०।।

अनुवाद — अङ्गिरा गोत्रीय वे शमीक महर्षि अपने पुत्र का रुदन सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखों को खोले और गले में मरे सर्प को देखकर उसे हटाकर अपने पुत्र से पूछे— वत्स ! तुम्हारा किसने अपकार किया है ? ऋषि के द्वारा इस तरह पूछे जाने पर बालक ने सारी बातें बता दी ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

तं सर्पं विसृज्य । केनापकारः कृतः ।।३९-४०।।

भाव प्रकाशिका

अपने गले से मरे सर्प को हटाकर ऋषि ने अपने पुत्र से पूछा तुम्हारा किसने अपकार किया है ?॥३९-४०॥

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् । अहो बतांहो महदज्ञ ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमोधृतः ॥४१॥

अन्वयः— अतदर्हं नरेन्द्रं शप्तं निशम्य स ब्राह्मणः आत्मजम् न अभ्यनन्दत् । अहो अज्ञ बत ते महत् अंहः कृतम् यत् अल्पीयसि द्रोहे उरुः दमः त्वया धृतः ।।४१।।

अनुवाद - शाप के अयोग्य राजा को अभिशप्त सुनकर ब्राह्मण शमीक ऋषि ने अपने पुत्र की सराहना नहीं की । उन्होंने कहा मूर्ख बालक तुमने बहुत बड़ा पाप किया है; क्योंकि अत्यन्त छोटे अपराध के लिए तुमने राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अनिधनन्दनवाक्यमहो इत्यादि । बत कष्टम् । ते त्वया महत्पापं कृतम् । द्रोहे अपराधे । दमो दण्डः ।।४१।।

द्रोह शब्द अपराध का बोधक है और दम शब्द दण्ड का बोधक है। पुत्र की बातों को सुनकर शमीक ऋषि ने उसकी प्रशंसा नहीं किया। उन्होंने कहा— मुझे कष्ट है कि तुमने छोटे से अपराध के बदले में राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया यह तुम्हारा अनुचित कार्य है।।४१।।

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे । यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥

अन्वयः— अविपक्व बुद्धे पराख्यं नरदेवं नृभिः सम्मातुम् न अर्हसि यत् दुर्विषहेण तेजसा गुप्ता अकुतोभया प्रजाः भद्राणि विन्दन्ति ।।४२।।

अनुवाद - ऋषि ने कहा - वत्स ! तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं हुयी है । राजा परमात्मा का रूप होता है । उसकी तुलना तुम सामान्य मनुष्य से नहीं कर सकते हो । राजा के असह्य तेज के कारण ही सारी प्रजाएँ निर्भय रहती हैं और कल्याण को प्राप्त करती हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

परो विष्णुरित्याख्या खयातिर्यस्य तं नरदेवम् । नृभिः संमातुं समं द्रष्टुम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

राजा की ख्याति भगवान् विष्णु के रूप में है । उस राजा को तुम सामान्य मनुष्यों के समान नहीं देख सकते हो ॥४२॥

अलक्ष्यमाणे नरदेवानिम् रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः । तदा हि चोरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥४३॥

अन्वयः— नरदेवनाम्नि अलक्ष्यमाणः लोकः अविवरुथवत् तदा हि चोरप्रचुरः अरक्ष्यमाणः अविबरुथवत् क्षणात् विनंक्ष्यति ।।४३।।

अनुवाद हे वत्स ! जब राजा नामक भगवान् विष्णु इस लोक में नहीं रहेंगे उस समय चोरों से संसार भर जायेगा और किसी रक्षक के नहीं रहने पर वह क्षणभर में विनष्ट हो जायेगा, जिस तरह रक्षक से रहित भेड़ों का समूह विनष्ट हो जाता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अलक्ष्यमाणेऽदृश्यमाने । अविवरुथवन्मेषसङ्घवत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

राजा नामक भगवान् विष्णु के नहीं दिखायी देने पर चोर बहुल तथा रक्षक रहित संसार उसी तरह विनष्ट हो जायेगा जिस तरह रक्षक से रहित मेष समूह (भेड़ समूह) विनष्ट हो जाता है ॥४३॥

तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् । परस्परं घ्निनिशपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥४४॥

अन्वयः— अद्य नष्टनाथस्य वसोः विलुम्पकात् यत् पापम् तत् अनन्वयमपि अद्य नः उपैति । पुरुदस्यवो जनाः परस्परं ध्नन्ति, शपन्ति, पशून् स्त्रियः अर्थान् वृञ्जते ।।४४।।

अनुवाद— राजा के विनष्ट हो जाने के कारण संसार की सम्पत्ति को लूटने वाले लुटेरों के द्वारा किए गये

पाप का हमसे सम्बन्ध नहीं होने पर भी हमको भी वह पाप लगेगा; क्योंकि हमारे ही चलते राजा का नाश हुआ है। राजा के नहीं रहने पर दस्युप्रचुर सभी लोगों के हो जाने पर वे परस्पर में एक दूसरे को मारते हैं। एक दूसरे को गाली देते हैं और उनके पशुओं स्त्रियों और धनों को लूट लेने का काम करते हैं। १४४।।

भावार्थ दीपिका

नष्टो नाथो यस्य लोकस्य तस्य वसोर्वसुनो धनस्य विलुम्पकादपहर्तुश्चोरादेर्हेतोर्यत्पापं भविष्यित तदस्मन्निमित्त-त्वादस्मानुपैष्यित। अनन्वयं सम्बन्धशून्यमेव। तदेव पापं दर्शयित-परस्परिमित। शपन्ति परुषं वदन्ति। पश्चादीन्वृञ्जतेऽपहरिन्त। पुरुदस्यवश्चोरबहुलाः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों के स्वामी का नाश हो जाता है उन लोगों की सम्पत्ति को लूटने वाले लोगों के द्वारा जो पाप किया जाता है उन सबों के हमलोगों के कारण ही होने के कारण यद्यपि उसका सम्बन्ध हमलोगों से नहीं है, फिर भी उसका पाप हमलोगों को लगेगा ही। उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले पापों को बतलाते हुए ऋषि कहते हैं सभी लोगों के चोरप्राय हो जाने पर वे आपस में एक दूसरे को मारते हैं, गाली देते हैं, उनके पशुओ, स्त्रियों और सम्पत्तियों को लूट लेते हैं। १४४।।

तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमय । ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः ॥४५॥

अन्वयः— तदा नृणाम् वर्णाश्रमाचारयुतः त्रयीमयः आर्यधर्मः विलीयते । अथकामाभिनिवेशितात्मनाम् शुनां कपनीनाम्। इव वर्ण सङ्करः जायते ।।४५।।

अनुवाद— उस समय मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के आचार युक्त वेदत्रयी के द्वारा प्रतिपादित आर्य धर्म का नाश हो जाता है। अर्थ एवं काम लोलुप मनुष्यों में कुत्तों और वानरों के समान वर्णसांकर्य हो जाता है।।४५।।

भावार्थ दीपिका

आर्यधर्मः सदाचारः शुनां कपीनामिवार्थकामयोरेवाभिनिवेशितचित्तानाम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

आर्य धर्म सदाचार को ही कहते हैं । किन्तु चेरप्राय लोगों के हो जाने पर तो सदाचारमय आर्यधर्म नष्ट ही हो जाता है । लोग भी अर्थपरायण और कामपरायण हो जाते हैं । उसके फलस्वरूप मनुष्यों में भी उसी तरह से वर्णसाङ्कर्य का साभ्राज्य हो जाता है जिस तरह काम परायण वन्दरों और कुत्तों में वर्णसङ्कर्य हो जाता है ॥४५॥

धर्मपालो नरपितः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः । साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हित ॥४६।

अन्वयः— स तु नरपितः धर्मपालः सम्राट् बृहच्छ्रवाः साक्षात् महाभागवतः हयमेधयाट् राजिषः क्षुत् तृट्श्रमयुतः दीनः अस्मत् शापं नैव अर्हति ।।४६।।

अनुवाद राजा परीक्षित् धर्म के रक्षक हैं, वे सम्राट (चक्रवर्ती राजा हैं) वे महायशस्वती हैं तथा साक्षात् महाभागवत हैं। उन्होंने अश्वमेघ याग किया है। वे राजर्षि, भूख तथा प्यास से व्याकुल होने के कारण दीन हो गये होंगे। अतएव वे हमलोगों के शाप के पात्र नहीं हैं।।४६।।

एवं राजमात्रस्य शापानर्हत्वमुक्त्वा प्रस्तुत विशेषमाह-धर्मपाल इति सार्धेन । हयमेधयाडश्वमेधयाजी । नन्वेवंभूतश्चेत्तत्कुतोऽपकृतवांस्तत्राह-क्षुतृडिति । स्वागतप्रश्नाभावेनावज्ञातः प्रत्युत शापं कथमर्हतीथ्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

पहले यह बतलाया जा चुका है कि राजा शाप के पात्र नहीं होते हैं । अब राजा परीक्षित् की विशेषताओं को बतलाते हुए महर्षि शमीक ने कहा राजा धर्म के रक्षक हैं और अवमेध याग किए हुए है । यदि कोई यह कहे कि यदि राजा इस तरह की विशेषताओं से सम्पन्न थे तो उन्होंने महर्षि का अनुपकार क्यों किया ? इसका उत्तर है कि वे राजा भूख तथा प्यास से व्याकुल थे । उनका हमलोगों को स्वागत करना चाहिए था ऐसी स्थिति में वे शाप के योग्य कैसे हो सकते हैं ?॥४६॥

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्कबुद्धिना । पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥

अन्वयः— अपापेषु स्वभृत्येषु अपक्वबुद्धिना त्वया । पापं कृतं तत् सर्वात्मा भगवान् क्षुन्तुम् अर्हित ।।४७।। अनुवादः— निरपराध अपने भी अनुचर के प्रति बुद्धि के परिपक्व नहीं होने के कारण बालक होने के कारण तुमने अपराध किया है, उसको सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् क्षमा करें ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अस्य महापापस्यान्यत्प्रायश्चित्तमदृष्ट्वा पापमावेदयन् भगवन्तं प्रार्थयते-अपापेष्विति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

मेरे पुत्र के द्वारा किए गये इस महान् अपराध का कोई भी दूसरा प्रायश्चित नहीं हो सकता है यह सोचकर ऋषि श्रीभगवान्से अपापेषु० इत्यादि श्लोक के द्वारा क्षमा प्रार्थना करते हैं ॥४७॥

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा । नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्धक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥४८॥

अन्वयः प्रभवोऽपि हि तद्धक्ताः तिरस्कृताः विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ताः हता अपि वा अस्य तत् न प्रतिकुर्वन्ति ।।४८।। अनुवाद बदला लेने में सक्षम होने पर भी भगवद् भक्त दूसरों के द्वारा किए गये अपमान, धोखे बाजी, शाप, अभद्रशब्द व्यवहार तथा प्रताइना करने वाले का बदला नहीं लेते हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

राजा चेत्प्रतिशापं दद्यात्तर्हि निष्कृतिर्भवेदपि तत्तु न संभवति तस्यमहाभागवतत्वादित्याह । तिरस्कृता निन्दिताः । विप्रलब्धा वश्चिताः ।क्षिप्ता अवज्ञाताः । हतास्ताडिताः । अस्य तिरस्कारादिकर्तुः । न तत्प्रतीकारं कुर्वन्ति । तद्भक्ता विष्णुभक्ताः। प्रभवः समर्थाः अपि ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यदि उस शाप के बदले में राजा भी शाप दे दे तो उसका प्रायश्चित भी हो सकता था किन्तु वह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि राजा तो महाभागवत हैं। इस बात को ऋषि ने तिरस्कृता इत्यादि श्लोक से कहा है। तिरस्कृत अर्थात् निन्दित विप्रलब्ध उगे गये, आर्त, अपमानित तथा मारे गये भगवान् के भक्त उसका प्रतिकार करने में समर्थ होकर भी तिरस्कृत आदि करने वाले से बदला नहीं चुकाते हैं। १४८।।

इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः । स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥

अन्वयः इति पुत्रकृताघेन सः महामुनिः अनुतप्तः स्वयं राज्ञा विप्रकृतः तदघं नैव अचिन्तयत् ।।४९।।
अनुवाद इस तरह से अपने पुत्र के द्वारा किए गये अपराध के कारण महामुनि शमीक बहुत अधिक दुःखी हुए किन्तु अपने विषय में राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में ऋषि ने सोचा भी नहीं ।।४९।।
भावार्थ दीपिका

विप्रकृतोऽपकृतः । अघमपराधम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

विप्रकृत: अपकार किए गये, अघ अर्थात् अपराध पुत्र ने जो राजा को शाप दे दिया था उसके विषय में तो शमीक महर्षि को बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु राजा ने उनका जो अपराध किया था उसके विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं ॥४९॥

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः । न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अन्वयः— परै: द्वन्द्वेषु योजिता साधवः प्रायशः न व्यथयन्ति न ह्रष्यन्ति यतः आत्मा अगुणाश्रयः ।।५०।।

अनुवाद महात्माओं का यह स्वभाव होता है कि दूसरे लोगों के द्वारा दु:ख अथवा सुख को प्राप्त करके वे न तो दु:खी होते हैं और न तो प्रसन्न होते है, क्योंकि आत्मा तो गुणों का आश्रय है नहीं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्य के विप्रशापोपलम्भन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

युक्तं चैतदित्याह-प्रायश इति द्वन्द्वेषु सुखदुःखादिषु । अगुणाश्रयः सुखदुःखाद्याश्रयो न भवति ।।५०।। इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने ऋषियों से कहा कि ऋषि शमीक जो अपने पुत्र के द्वारा ही किए गये अपराध से दुःखी थे और राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं, यह उचित ही था। क्योंकि सन्तों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरे के द्वारा दिए गये सुख अथवा दुःख से न तो प्रसन्न होते हैं और न दुःखी होते हैं। वे जानते हैं कि आत्मा गुणों का आश्रय नहीं होता है।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्य की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१८।।



उन्नीसवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् का अनशन व्रत और शुकदेवजी का आगमन

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः । अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥

अन्वयः— अथ महीपति आत्मकृतं तत् गह्यं कर्म विचिन्तयन् सुदुर्मनाः चिन्तयति स्म अहो मया निरागसि, गूढतेजसि ब्रह्मणि अनार्यवत् नीचम् कृतम् ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद उसके पश्चात् राजा अपनी राजधानी में जाकर अपने द्वारा किए गये उस निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए अत्यन्त दु:खी हो गये। वे सोच रहे थे अरे मैंने अपने तेज को छिपाये रखने वाले तथा निरपराध ब्राह्मण के साथ अनार्य के समान बड़ा ही नीच कर्म किया है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

प्रायोपविष्टे गङ्गायां राज्ञि योगिजनावृते । शुकस्यागमनं तत्र प्रोक्तमेकोनविंशके ।।१।। स्वकृतं तत्कर्म मुनिस्कन्धे सर्पप्रक्षेपणं गर्ह्यं निन्द्यं चिन्तयन्सुदुर्मना जात: । चिन्तामेवाह सार्धाभ्याम्-अहो इति । नीचं पापम् । अमीविमिति पाठे स एवार्थ:। ब्रह्मणि ब्राह्मणे । गूढं गुप्तं तेजो यस्य तस्मिन् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उपवास करके योगिजनों से घिरे हुए राजा परीक्षित् के गङ्गाजी ते तट पर बैठ जाने पर वहाँ पर शुकदेवजी के आगमन का वर्णन उन्नीसवें अध्याय में किया गया है ॥१॥

राजा परीक्षित् मुनि के गले में सर्प डालना रूपी अपने निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए राजा अत्यन्त दुःखी हो गये। राजा की चिन्ता का ही वर्णन अहो मया॰ इत्यादि डेढ श्लोक में किया गया है। नीच शब्द पाप का बोधक है। जहाँ अमीवम् यह पाठ भेद है वहाँ भी यही अर्थ है। ब्रह्म शब्द ब्राह्मण का बोधक। गूढ तेजिस पद का विग्रह है। गूढ तेजो यस्य तिस्मन्। अर्थात् जिनका तेज छिपा हुआ है उन ब्राह्मण के प्रति मैंने महान् अपराध किया है।।१।।

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनादुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् । तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥

अन्वयः— ततः कृतदेवहेलनात् नातिदीर्घात् मे दुरत्ययं व्यसनं ध्रुवम् तत् मे अघनिष्कृताय कामं अद्धा अस्तु यथा पुनरेवम् न कुर्याम् ।।२।।

अनुवाद— उस ब्राह्मण देवता का अपकार करने के कारण अत्यधिक कष्ट मुझको शीघ्र ही मिलेगा । वह कष्ट निश्चित रूप से मुझको साक्षात् मिले, जिससे कि मैं पुनः इस प्रकार का अपराध न करूँ ।।२।

भावार्थ दीपिका

कृतं यद्देवहेलनमीश्वरावज्ञापापमित्यर्थः । तस्मान्मे व्यसनं भविष्यति तत्तु नातिदीर्घात्कालादिचरादेवास्तु तत्राप्यद्धा साक्षान्ममैव न पुत्रादिद्वारेणेति प्रार्थना । काममसंकोचतः । एवं प्रार्थनायाः प्रयोजनम् । अघस्य निष्कृताय प्रायश्चित्ताय । यथा पुनरेवं न कुर्यामिति ।।२।।

परमात्मा का अपमान रूपी जो मैंने पाप किया है। अतएव उसके कारण मुझपर शीघ्र ही कोई बहुत बड़ी विपत्ति आयेगी। वह दण्ड जो है वह मुझको ही साक्षात् मिलना चाहिए। पुत्रादि के द्वारा नहीं। इस तरह राजा ने श्रीभगवान् से प्रार्थना किया। वह जितना दण्ड मिलना हो उतना मिले। इस प्रकार की प्रार्थना का प्रयोजन है कि उससे मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाय जिससे कि मैं पुन: ऐसा पाप न करूँ ॥२॥

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे । दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्यापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥३॥

अन्वयः प्रकोपितो ब्रह्मकुलानलः अभद्रस्य मे अद्यैव राज्यं, बलम् ऋद्धंकोशं च दहतु येन मे पुनः द्विजदेवगोम्यः पायीयासी धी न अभूत ॥३॥

अनुवाद — क्रुद्ध ब्राह्मणवंश की क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और समृद्ध कोश को जलाकर भस्म कर दे जिससे कि मुझ पापी की पुन: कभी, देवताओं, ब्राह्मणों और गौओं के विषय में ऐसी बुद्धि न हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

एवं साक्षात्स्वस्यैव व्यसनं संप्रार्थ्य ततः प्रागेव किंचित्प्रार्थयते । अद्यैव मे राज्यादि दहतु प्रकोपितं ब्रह्मकुलमेवानलः पुनर्द्विजादीन्पीडियतुं धीर्मे मा भूत्र भवेदित्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से साक्षात् अपने कष्ट की प्रार्थना करके उससे पहले ही कुछ प्रार्थना करते हैं । वे कहते हैं कि ब्राह्मणवंश की जो क्रोधाग्नि है वह आज ही कुद्ध होकर मेरे राज्य सेना तथा कोश को भस्म कर दे ॥३॥

स चिन्तन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋितस्तक्षकाख्यः । स साध मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥

अन्वयः— इत्थं चिन्तयन् सः अथ मुनेः सुतोक्तः तक्षकाख्यः निऋति यथा तथा अशृणोत् । सः तक्षकाख्यं साधुमेने यतः प्रसक्तस्य न चिरेण विरक्तिकारणम् ॥४॥

अनुवाद जब राजा परीक्षित् इस तरह से सोच ही रहे थे कि उसी समय शमीक प्रेषित शिष्य से मुनि के पुत्र के द्वारा उक्त सातवें दिन उनकी मृत्यु जैसे हो जायेगी उसके विषय में उन्होंने सुना । उन्होंने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उसके द्वारा विषयों में आसक्त राजा की शीघ्र ही विरक्ति हो गयी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

इत्थं चिन्तयन्स राजा मुनेः सुतेनोक्तः सप्तमेऽहिनं निर्ऋतिर्मृत्युर्यथा भविष्यति तथाऽशृणोत् । शमीकप्रेषितशिष्याच्छुत्वा च स तक्षकस्य विषाग्निं साधु मेने । यतो विषयेषु प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से जब राजा चिन्तन ही कर रहे थे उसी समय उन्होंन सुना कि मुनि के पुत्र ने उनको उसके सातवें दिन मृत्यु का शाप दे दिया है। महर्षि शमीक के द्वारा प्रेषित शिष्य से उस समाचार को सुनकर राजा ने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उससे विषय में आसक्ति से शीघ्र विरक्ति हो जाती है।।४।।

अथो विहायेमममुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् । कृष्णाङ्घिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥५॥

अन्वयः— अथो पुरस्तात् हेयतया विमर्शितौ इमम् अमूं च लोकं विहाय कृष्णांघ्रिसेवाम् अधिमन्यमानः अमर्त्यनत्द्यां प्रायम् उपाविशत् ॥५॥ अनुवाद— राजा पहले से ही जिसे त्याज्य समझते थे उन लोक और परलोक दोनों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए वे गङ्गानदी के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरमुभौ लोकौ पुरस्ताद्राज्यमध्य एव हेयतया विचारितौ विहाय श्रीकृष्णाङ्घ्रिसेवामेवाधिमन्यमानः सर्वपुरुषार्थीधिकां जानन् प्रायमनशनं तिस्मित्रित्यर्थः । तत्सङ्कल्पेनोपाविशदिति यावत् । यद्वा प्रायं प्रकृष्टमयनं शरणं यथा भवति तथा ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् राजा परीक्षित् अपने राज्य काल में ही जिन लोक और परलोक दोनों को त्याज्य मान चुके थे उन दोनों लोकों का ही परित्याग करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते हुए गङ्गा के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये। अथवा प्रायम् पद का यह भी अर्थ है कि जिससे प्रकृष्ट आश्रय की प्राप्ति होती है, वैसे राजा बैठ गये।।५।।

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिग्वभ्यधिकाम्बुनेत्री । पुनाति लोकानुभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥

अन्वयः— लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री या वै सेशान् उभयत्र लोकान् पुनाति तां कःमरिष्यमाणः न सेवेत ॥६॥

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का पराग लेकर प्रवाहित होने वाले गङ्गाजी का जो जल तुलसीजी की सुगन्धि से मिश्रित है तथा जो लोकपालों के साथ दोनों लोकों को पवित्र बनाता है कौन ऐसा मरने वाला व्यक्ति होगा जो उसका सेवन न करे ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

अमर्त्यनद्यामिति विशेषणस्य फलमाह । या गङ्गा लसन्ती श्रीर्यस्यास्तुलस्यास्तया विमिश्रा ये कृष्णाङ्घ्रिरेणवस्तैरभ्यधिकं सर्वोत्कृष्टं यदम्बु तस्य नेत्री तद्वाहिनी । उभयत्र अन्तर्बिहश्च सेशान् लोकपालैः सिहतान् लोकान् पुनाति । मरिष्यमाण आसन्नमरणः। मरणस्यानियतकालत्वात्सर्वोऽपि तथा । अतस्ता को न सेवेत ।।६।।

भाव प्रकाशिका

पाँचवें श्लोक में गङ्गाजी को अमर्त्य नदी कहा गया है। उस विशेषण के फल को बतलाते हुए कहते हैं। **या गङ्गा॰ इत्यादि** जो गङ्गाजी श्रीसम्पन्न तुलसी से मिश्रित जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरण रज से युक्त अत्यधिक जल को प्रवाहित करती हैं। वे लोकपालों सिहत इस लोक को तथा परलोक को पवित्र करती हैं, उन गङ्गाजी का सिन्नकट भविष्य में मरने वाला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो सेवन न करे ?।।६।।

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् । दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥७॥

अन्वयः— सः पाण्डवेयः विष्णुपद्याम् प्रायोपवेशम् प्रति व्यवच्छिद्य अनन्यभावः, मुनिव्रतः मुक्तसमस्तसङ्गः मुकुन्दाङ्घ्रम् दध्यौ ।।७।।

अनुवाद— पाण्डववंशावतंस राजा परीक्षित् गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का व्यवच्छिद्य (निश्चय करके) अनन्यमना होकर तथा मुनियों का व्रत लिए हुए तथा सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करने लगे ॥७॥

प्रथम स्कन्ध

भावार्थ दीपिका

इत्येवं विष्णुपद्यां गङ्गायां प्रायोपवेशं प्रति व्यवच्छिद्य निश्चित्य । पाण्डवेय इति तत्कुलौचित्यं दर्शयित । नास्त्यन्यस्मिन् भावो यस्य सः । कुतः । मुनिव्रत उपशान्तः । तत्कुतः । मुक्तः समस्तसङ्गो येन सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का निश्चय करके। पाण्डवेय पद का प्रयोग करके उनके वंश के औचित्य को बतलाया गया है। अनन्यभाव: का विग्रह है नास्त्यन्यस्मिन् भावोयस्य अर्थात् उनका श्रीभगवान् को छोड़कर किसी दूसरे में भाव नहीं था। वे मौन व्रत धारण किए हुए थे परीक्षित्; उनकी सब ओरे से असक्ति भी समाप्त हो गयी थी।।७।।

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सिशष्याः । प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥

अन्वयः— तत्र प्रायेण तीर्थापदेशैः भुवनं पुनाना महानुभावाः सशिष्याःमुनयः आजग्मुः स्वयं हि सन्तः तीर्थानि पुनन्ति ।।८।।

अनुवाद— वहाँ पर प्राय: तीर्थ के बहाने संसार को पवित्र बनाने वाले महान् प्रभाव वाले मुनिगण अपने शिष्यों के साथ आ गये। सन्तजन तो स्वयं ही तीर्थों को पवित्र करने का काम करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा तद्दर्शनार्थं मुनय उपागता न तु तीर्थस्नानार्थम् । कृतार्थत्वात् । ननु तादृशानामपि तीर्थयात्रा दृश्यते तत्राह-प्रायेणेति । तीर्थयात्राव्याजै: ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर राजा को देखने के लिए मुनिगण आ गये तीर्थ में स्नान करना उनका उद्देश्य नहीं था; क्योंकि वे ऋषिगण कृतार्थ थे। यदि कहें कि वैसे लोग भी तीर्थ यात्रा करते हुए देखे जाते हैं तो इसका उत्तर प्रयेण • इत्यादि से दिया गया है। वे सभी तीर्थ यात्रा के व्याज से वहाँ आये थे।।८।।

अत्रिर्विसष्ठश्च्यवनः शरद्वानिरष्टनेमिर्भृगुरिङ्गराश्च । पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥९॥ मेघातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः । मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥१०॥ अन्ये च देविष्व्रह्मार्षिवर्या राजिष्वर्या अरुणादयश्च । नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥११॥

अन्वयः अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान्, अरिष्टनेमिः भृगुः अङ्गिराः, पराशरः, गाधिसुतः, रामः, उतथ्यः, इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ, मेधातिथिः, देवालः अष्टिषेणः, भारद्वाजः गौतमः, पिप्पलादः, मैत्रेय, और्वः कवषः, कुम्भयोनिः, द्वैपायनः भगवान् नारदश्च । अन्ये च देवर्षि ब्रह्मर्षिवर्याः, राजर्षिर्याः, अरुणादयः च । नानार्षेयप्रवरान् समेतन् अभ्यर्च्य शिरसा ववन्दे ।।९-११।।

अनुवाद— उस समय वहाँ पर अत्रि, विसष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेघातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय,

और्व, कवष, अगस्त्य, व्यास, भगवान् नारद, इन सबों के अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा श्रेष्ठ राजर्षिगण भी वहाँ आये। वहाँ पर अनेक गोत्रों के मुख्य ऋषियों की पूजा करके राजा परीक्षित् ने उनके पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया और उनकी वन्दना की है ।।९-११।।

भावार्थ दीपिका

अरुणादयः काण्डर्षित्वविशेषेण पृथक् निर्दिष्टाः । नाना यान्यार्षेयाणि ऋषीणां गोत्राणि तेषु प्रवरान् श्रेष्ठान् । शिरसा भुवं स्पृष्ट्वा ववन्दे ।।९-११।।

भाव प्रकाशिका

अरुण आदि के काण्डविशेष के ऋषि होने के कारण उनका अलग निर्देश किया गया है। अनेक जो ऋषियों के गोत्र हैं उनमें से श्रेष्ठ ऋषि वहाँ आ गये थे राजा ने सबों के पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया ॥९-११॥

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् । विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥१२॥

अन्वयः— अथ तेषु सुखोपविष्टेषु कृतप्रणामः विविक्तचेता राजा अभिगृहीतपाणिः अग्रे उपस्थितः स्विचिकीर्षितं विज्ञापयामास ॥१२॥'

अनुवाद उसके पश्चात् उन सभी महर्षियों के सुख पूर्वक बैठ जाने पर राजा ने शुद्ध हृदय से सबों को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन सभी लोगों के सामने खड़े होकर उन्होंने अपने अभिप्रेत बातों का निवेदन किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञापनार्थं पुनः कृतप्रणामः । विविक्तं शुद्धं चेतो यस्य । अभिगृहीतौ संयोजितौ पाणी येन सः । स्वचिकीर्षितं प्रायोपवेशनादियुक्तमयुक्तं वेति विज्ञापयामास ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

राजा सबों के सामने अपनी बातें कहना चाहते थे इसलिए उन्होंने उन सभी ऋषियों को फिर प्रणाम किया, उन्होंने शुद्ध हृदय से हाथ जोड़कर सबों से निवेदित किया कि आमरण अनशन व्रत ठीक है कि नहीं ॥१२॥

म्हण के अध्यक्ष विश्वासक्त स्राजीवाच स्राजीवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः । राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचादुराद्विसृष्टं बतगर्ह्यकर्म ॥१३॥

अन्वयः अहो वयं नृपाणां धन्यतमाः महत्तमानुग्रहणीयशीलाः । वत गर्ह्यकर्म राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद् दूराद् विसृष्टं ।।१३।।

अनुवाद हम सभी राजाओं में धन्य है क्योंकि आप सभी महापुरुषों के अनुग्रह का पात्र बन गया हूँ निन्दित कर्म करने वाला राजाओं का वंश ब्राह्मणोंके चरणोदक से दूर चला जाता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनुमोदनेनानुग्रहमालक्ष्यात्मानं श्लाघते-अहो इति । नृपाणां महत्तमैरनुग्रहणीयं शीलं वृत्तं येषां ते । एतच्च राज्ञामतिदुर्लभिमत्याह। ब्राह्मणानां पादशौचात् पादक्षालनोदकात् 'दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत्' इति स्मृतेः, दूरे हि तैस्तद्विसृज्यते । ततोऽपि दूरादेव विसृष्टं क्षिप्तम् । तत्रापि स्थातुमयोग्यमित्यर्थः । गर्ह्यं कर्म यस्येत्यात्मानमुद्दिश्योक्तम् ।।१३।।

महर्षियों के द्वारा अनुग्रह को देखकर राजा अपनी प्रशंसा करते हैं राजाओं के बीच में हम इसलिए धन्य हैं कि हमारा शील महापुरुषों के अनुग्रह का विषय हो गया है। यह राजाओं के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। निन्दित कर्म करने वाले राजागण के वे 'दूरादुच्छिष्ट' इत्यादि सूक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के भी चरणों से दूर फेंक देते हैं। 1831

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् । निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥

अन्वयः— तस्यैव अघस्य, गृहेषु अभीक्ष्णम् व्यासक्तचित्तस्य मे द्विजशापरूपः निर्वेदमूलः परावरेशः यत्र प्रसक्तः आशुभयम् धत्ते ।।१४।।

अनुवाद — निन्दित कर्म करने के कारण मैं पाप रूप हो गया हूँ। निरन्तर गृह में ही मेरा चित्त लगा रहता है। ऐसे मुझ पर संसार से वैराग्य के कारणभूत ब्राह्मण के शाप रूपी परमात्मा ने कृपा की ही। इस प्रकार के शाप से डरा हुआ संसार में आसक्त पुरुष शीघ्र ही वैराग्य को धारण कर लेता है।।१४॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावदनुग्रहः, ब्रह्मशापोऽपि भगवत्प्रसादादेव जात इत्याह । तस्य गर्ह्यकर्मण एव । अतोऽघस्य पापात्मनो गृहेष्वासक्तचित्तस्य मे स्वप्राप्तये परावराणामीश एव द्विजशापतया बभूव । यत्र यस्मिन् शापे सित गृहेषु प्रसक्तो भयं धत्ते निर्विण्णो भवति । यतो निर्वेदमूलो निर्वेदो वैराग्यं मूलं प्राप्तिकारणं यस्मिन् । स्वस्य वैराग्यप्राप्यत्वात्तस्य च भयमूलत्वात्तदर्थं द्विजशापं कारितवानित्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यह भी भगवान् की कृपा ही है। ब्राह्मण का शाप भी श्रीभगवान् की कृपा से ही हुआ है। उस निन्दित कर्म करने वाले राजवंश का होने के कारण मैं भी पाप स्वरूप हूँ। गृहादि में आसक्तिचत्त वाले मुझको प्राप्त होने के ही लिए सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ब्राह्मण का शाप बन गये हैं। उस शाप के हो जाने से गृह परिवार में आसक्त चित्त वाले व्यक्ति को भय उत्पन्न हो जाता है। उसके फलस्वरूप उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। परमात्मा तो निर्वेद मूल हैं। अर्थात् निर्वेद (संसार से वैराग्य) ही परमात्मा की प्राप्ति का मूल कारण है। परमात्मा तो संसार से वैराग्य के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वैराग्य तब होता है जबिक संसार से भय हो जाय। इसीलिए परमात्मा ने मुझे ब्राह्मण से शाप दिलवाया है।।१४।।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी घृतचित्तमीशे । द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥

अन्वयः— हे विप्रा: गङ्गा देवी च ईशे धृतचित्तम् उपयातं मा प्रतियन्तु द्विजोपसृष्टः कुहकः तक्षको वा अलं दशतु विष्णगाथाः गायत ।।१५।।

अनुवाद हे ब्राह्मणों ! हे गङ्गा देवी ! आपलोग मुझे शरणागत समझें मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है । ब्राह्मण के द्वारा निर्मित कोई माया अथवा स्वयं तक्षक ही मुझे आकर डंस ले, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है । आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की लीलाओं को ही सुनायें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तान्प्रार्थयते–तिमिति द्वाभ्याम् । तं मा मामुपयातं शरणागतं प्रतियन्तु जानन्तु । देवी देवतारूपा गङ्गा च प्रत्येतु । वाशब्दः प्रतिक्रियानादरे । गाथा:। कथा: ।।१५।।

ब्राह्मणों की प्रार्थना तं मोपयातम् इन दो श्लोकों से करते हुए ब्राह्मणों से कहते हैं आपलोग मुझे अपना शरणागत समझें, अथवा गङ्गा देवी भी मुझे शरणागत समझें। वा शब्द का प्रयोग प्रतिक्रिया के अनादर के अर्थ में है। अर्थात् वे मेरे इस कथन समर्थन की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है। अब आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की ही कथाओं को सुनाएँ ॥१५॥

पुनश्च भूयाद्धगवत्यनन्ते रितः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु । महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥

अन्वयः — यां यां योनिमुपयामि पुनः अनन्ते भगवित रितः तदाश्रयेषु प्रसङ्गः सर्वत्र द्विजेभ्यो नमः मैत्री अस्तु ।।१६।। अनुवाद — मैं आपलोगों से ही आशीर्वाद माँगता हूँ कि मैं जिस-जिस योनि में जन्म लूँ पुनः मेरा भगवान् अनन्त में प्रेम हो, तथा भगवद् भक्तों का सत्सङ्ग प्राप्त होए । मैं सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करूँ और सबों में मेरा प्रेम बना रहे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

स आश्रयो येषां तेषु प्रकृष्टः सङ्गो भूयात् । तस्यां तस्यां सृष्टौ जन्मनि ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

तदाश्रयेषु प्रसङ्गः का अर्थ है कि भगवद् भक्तों में मेरा प्रकृष्ट सङ्ग हो सभी जन्मों में भगवान् विष्णु की भक्ति करूँ, ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करूँ यही मैं आप लोगों से आशीर्वाद माँगता हूँ ॥१६॥

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः । उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥

अन्वयः— स्वसुतन्यस्तभार घीरः राजा इति अध्यवसाययुक्त समुद्रपत्न्याः दक्षिणे कूले उदङ्मुखः प्राचीन मूलेषु कुशेषु आस्ते ।।१७।।

अनुवाद जिन्होंने अपने पुत्र जनमेजय पर राज्य का भार डाल दिया था, वे धैर्य सम्पन्न राजा परीक्षित् इस तरह का निश्चय करके गङ्गा के दाहिने तट पर पूर्वाग्र कुशों के आसन पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अध्यवसायो निश्चय: । प्राचीनानि प्रागग्राणि मूलानि येषां तेषु प्रागग्रेषु कुशेष्वास्ते स्म । स्वसुते जनमेजये न्यस्तो भारो राज्यं येन स: ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अध्यवसाय, निश्चय को कहते है । राजा उपर्युक्त प्रकार से निश्चय करके कुशों से निर्मित आसन पर गङ्गाजी के दाहिने तट पर बैठ गये । उनके आसन के कुशों के मूल पूर्वाग्र थे । वे उत्तर की ओर मुख करके बैठे थे ।।१७॥

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिविदेवसङ्घाः । प्रशस्य भूमौ व्यक्तिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥

अन्वयः — तस्मिन् नरदेवदेवे एवं प्रायोपविष्टे दिविदेवसंघाः प्रशस्य भूमौ मुदा प्रसूनै व्याकिरन् दुन्दुभयश्च नेदुः।।१८।। अनुवाद — चक्रवर्ती सम्राट् राजा परीक्षित् के इस प्रकार से आमरण अनशनव्रत पर बैठ जाने पर स्वर्ग में देवताओं के समूह ने उनकी प्रशंसा की और प्रसन्नतापूर्वक भूमि पर फूलों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

मुदा व्याकिरन् । देवसङ्घैर्वादिता दुन्दुभयो नेदुः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

आमरण अनशन पर बैठे हुए राजा परीक्षित् के ऊपर प्रसन्न होकर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ॥१८॥

महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः । ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदूत्तमञ्रलोकगुणाभिरूपम् ॥१९॥

अन्वयः— ये वै प्रजानुग्रहशीलसाराः समुपागताः ते साधु इति प्रशस्य अनुमोदमानाः यदूमत्तश्लोकगुणाभिसमम् इति ऊचुः ।।१९।।

अनुवाद সजाओं पर कृपा करने के शील रूपी प्रधान गुण से सम्पन्न जो महर्षि वहाँ आये थे वे साधु! साधु!! कहकर राजा के निश्चय की प्रशंसा किए और उनके इस कार्य का अनुमोदन करते हुए उनलोगों ने कहा कि राजा का यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजानुग्रहे शीलं स्वभाव: सारो बलं च येषाम् उत्तमश्लोकगुणैरभिरूपं सुन्दरम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रजानुग्रहशील सारा: का अर्थ है जिनका प्रजाओं पर कृपा करने का स्वभाव है और उसी में जो अपने बल का सदुप्रयोग करते हैं, ऐसे वहाँ पर उपस्थित महर्षियों ने राजा के आमरण अनशन व्रत की सराहना की और कहा कि यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु । येऽध्यासनं राजिकरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥२०॥

अन्वयः— हे राजर्षि वर्य ! कृष्णं समनुव्रतेषु भवत्सु इदंवै चित्रं न ये राजिकरीटजुष्टं अध्यासनं भगवत् पार्श्वकामाः सद्यः जहुः ।।२०।।

अनुवाद हे राजर्षिवर्य ! भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी आप पाण्डुवंशीयों के लिए यह कोई आश्चर्य जनक कार्य नहीं है । श्रीभगवान् के सान्निध्य की प्राप्ति की कामना से आप पाण्डु वंशीयों ने उस सिंहासन का शीघ्र ही परित्याग कर दिया जिस सिंहासन की सेवा बड़े-बड़े राजा अपने किरीट से किया करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भवत्सु पाण्डोर्वंश्येषु । ये जहुरिति युधिष्ठिराद्यभिप्रायेण ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

महर्षियों ने कहा कि आप पाण्डुवंशीय चक्रवर्ती सम्राटों ने भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अपने समृद्धराज्य का परित्याग कर दिया अतएव आपका यह भगवत् सान्निध्य प्राप्त्यर्थ आमरण अनशन व्रत करना कोई आश्चर्यकारी नहीं है । राजा युधिष्ठिर ने भी यही किया था ॥२०॥

सर्वे वयं ताविदहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय । लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥

अन्वयः— वयं सर्वे अद्य इहतावद् आस्महे यावत् अयं भागवतप्रधानः असौ कलेवरं विहाय विरजस्कं विशोकं परं लोकं यास्यित ।।२१।। अनुवाद आज से हमलोग तब तक यहाँ रहेंगे जब तक ये भगवद् भक्तों में प्रधान राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया तथा शोक रहित परमात्मा के श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

परस्परं संमत्रयन्ते-सर्व इति । परं श्रेष्ठं लोकम् । तत्र हेतुः-विरजस्कं निर्मायं विशोकं च यास्यतीति । कुतस्तत्राह-अयमिति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

सभी महर्षियों ने आपस में मन्त्रणा की कि हमलोग यहाँ पर तब तक बने रहेंगे तब तक कि राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया और शोक से रहित श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ।।२१।।

आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युहुरु चाव्यलीकम् । आभाषतैतानिभनन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥२२॥

अन्वयः— परीक्षित् समं, मधुच्युत्, गुरु अव्यलीकम् च तत् ऋषिगणवचः आश्रुत्य युक्तान् एतान् अभिनन्द्य विष्णोः चरितानि शुश्रूषमाणः आभाषत ॥२॥

अनुवाद पक्षपात रहित, अमृतस्रावी, अर्थ गौरव सम्पन्न तथा सत्य ऋषियों की उस वाणी को सुनकर उन योग युक्त महर्षियों का अभिनन्दन करके भगवान् के चरित्र को सुनने की इच्छा से उन ऋषियों से राजा परीक्षित् ने कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आश्रुत्याकर्ण्य । समं पक्षपातशून्यम् । मधुच्युदमृतस्रावि । गुरु गम्भीरार्थम् । अव्यलीकं सत्यम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण जो मन्त्रणा कर रहे थे उनके वे निर्णीत वाक्य सर्वथा सम (पक्षपात रहित) मधुच्युत् (अमृत के समान अत्यन्त मधुर) गुरु (अर्थगौरवसम्पन्न) तथा अव्यलीक (सत्य) थे। उन बातों को सुनकर राजा ने उन महर्षियों की बातों का समर्थन किया, क्योंकि वे ऋषि युक्तयोगी थे। और भगवान की कथा सुनने की इच्छा से उन्होंने महर्षियों से कहा ॥२२॥

समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे । नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥२३॥

अन्वयः— त्रिपृष्ठे, मूर्तिघराः वेदा यथा भवन्तः सर्वे सर्वतः समागताः परानुग्रहम् आत्मशीलम् ऋते भवताम् इह अथवा अमुत्र कश्चन अर्थः न ॥२३॥

अनुवाद जिस तरह स्वर्गलोक से ऊपर सत्यलोक में वेद शरीर धारण करके रहते हैं, उसी तरह आप सभी लोग सभी ओर से पधारे हैं। आप लोगों का यही स्वभाव है कि आपलोग दूसरे जीवों पर कृपा करते हैं, इसके अतिरिक्त लोक अथवा परलोक में आपलोगों का कोई भी दूसरा प्रयोजन नहीं है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि सत्यलोके वेदा यथा मूर्तिघरा भवन्ति तत्तुल्याः । ज्ञानातिशयमुक्त्वा कृपालुतामाह- नेहेति। भवतां प्रयोजनं परानुग्रहं विना नास्ति । तर्हि स एवार्थः स्यात्, न । आत्मशीलं स्वस्वभावम् ।।२३।।

तीनों लोकों के ऊपर जो सत्यलोक है वहाँ पर सभी वेद जिस तरह शरीर धारण करके रहते हैं आप सभी लोग मूर्तिमान वेद के समान हैं और सभी ओर से यहाँ पधारे हैं। इस तरह से महर्षियों के ज्ञानातिशय्य को बतलाकर राजा ने उन महर्षियों की कृपालुता का वर्णन करते हुए कहा। आपलोगों का एक मात्र प्रयोजन है दूसरों पर कृपा करना। यही आपलोगों का स्वभाव है। अतएव उसी कार्य को होना चाहिए।।२३।।

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् । सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥

अन्वयः— ततश्च हे विप्राः वः विश्रभ्य इमं पृच्छ्यं विपृच्छे सर्वात्मना म्रियमाणैःच इति कृत्यतायाम्, शुद्धं कृत्यं विप्पृच्छे हे अभियुक्ताः तत्र आमृशत ।।२४।।

अनुवाद— अतएव हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य यह पूछ रहा हूँ कि सबों को सभी अवस्थाओं में तथा शीघ्र मरने वालों को कौन सा शुद्ध कर्म करना चाहिए ? इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पृच्छ्यं प्रष्टव्यम् । विश्रभ्य विश्वासं कृत्वा । एवं कर्तव्यमित्यस्य भाव इतिकृत्यता तस्मिन्वषये । सर्वात्मना सर्वावस्थासु यत्कृत्यं विशेषतश्च म्रियमाणैस्तच्च शुद्धं पापसंपर्करहितमामृशत विचारयत ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा— हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य बात यह पूछ रहा हूँ कि मनुष्य को सभी अवस्थाओं में तथा विशेष रूप से सन्निकट भविष्य में मरने वालों को कौन सा पाप रहित कर्म करना चाहिए, इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः । अलक्ष्यिलङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥२५॥

अन्वयः— तत्र गाम् अटमानः अनपेक्षः अलक्ष्यलिङ्गः निजलाभ तुष्टः स्त्रीबालैः वृतः, अवधूतवेषः भगवान् व्यासपुत्रः यदृच्छया अभवत् ।।२५।।

अनुवाद जिस समय सभी महर्षि परस्पर में याग, योग, तप तथा दान को लेकर विवाद कर रहे थे उसी समय पृथिवी पर भ्रमण करने वाले, किसी से, जिनका वर्ण, तथा आश्रम रूपी बाह्य कोई भी चिह्न लक्षित नहीं हो रहा था वे आत्मलाभ के कारण सन्तुष्ट रहने वाले तथा स्त्रियों एवं बालकों से घिरे हुए ऐसे अवधूत वेष में विद्यमान महर्षि व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तेषु यागयोगतपोदानादिभिर्विवदमानेषु सत्सु यदृच्छया गां पर्यटन्व्यासपुत्रस्तत्राभवत्प्राप्तः । न लक्ष्यमाश्रमादिलिङ्गं यस्य । अवधूतोऽवज्ञया जनैस्त्यक्तो यस्तस्येव वेषो यस्य सः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की बात को सुनकर कोई यज्ञ को बतला रहा था, तो कोई योग का महत्त्व दे रहा था, तो कोई तपस्या का, कोई दान का, इस तरह से परस्पर में जब महर्षिगण विवाद कर रहे थे, उसी समय वहाँ व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी अचानक आ गये। वे पृथिवी पर भ्रमण करते हुए वहाँ आये थे, वे सबों से तथा सभी वस्तुओं से निरपेक्ष थे, वे किस वर्ण के हैं तथा किस आश्रम के हैं, इस बात का सूचक कोई भी उनका वाह्य चिह्न दिखायी

नहीं देता था। आत्मलाभ हो जाने के कारण वे अपने आप में संतुष्ट थे। वे अवधूत वेष में थे। अर्थात् ऐसा वेष जिसका लोगों ने त्याग कर दिया था अर्थात् सर्वजन परित्यक्त उनका वेष था। क्योंकि वे नग्न थे और स्त्रियाँ और बच्चे उनको घेर रखे थे। इस प्रकार के शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये।।२५।।

> तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् । चार्वायताक्षोत्रसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥२६॥ निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिं विलवल्गूदरं च । दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन । प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥

अन्वयः— द्वयष्टवर्षं सुकुमारकरोरुबाह्वंश कपोलगात्रम् चार्वायतवक्षोत्रत तुल्यकर्ण सुभ्र्वावाननं कम्बुसुजातकण्ठम्, निगूढजत्रुम् पृथुतुङ्गवक्षसमम् आवर्तनाभिं, विलवल्गूदरं च, दिगम्बरं, वक्त्रकीर्णकेशं प्रलम्बवाहुं, स्वमरोतमाभम्, श्यामं सदापीच्यवयो अङ्गलक्ष्म्या रुचिरस्मितेन च स्त्रीणां मनोज्ञं, गूढवर्चसम् अपि तल्लक्षणज्ञाः मुनयः स्वासनेभ्यः तं प्रत्युत्थिताः ।।२६-२८।।

अनुवाद सोलह वर्ष की अवस्था वाले, अत्यन्त कोमल, हाथ, पैर, ऊरू (जङ्घे), भुजाएँ, दोनों कंधे, दोनों गाल तथा शरीर वाले, मनोहर तथा विस्तृत नेत्रों वाले, उठी हुयी नाक, एक समान कान, सुन्दर भौहों तथा मुख वाले, शङ्ख के समान मनोहर कण्ठ वाले, ढंकी हुयी हँसली वाले विस्तृत तथा उठे हुए वक्षःस्थल वाले, आवर्त के समान गहरी नाभि वाले, त्रिबली से मनोहर उदर (पेट) वाले, नग्न तथा विखरे हुए केश जिनकें मुख पर आ गये थे, लम्बी भुजाओं वाले तथा देवताओं के समान सुन्दर कान्ति वाले श्याम वर्ण वाले, अत्युत्तम युवावस्था के कारण अथवा शरीर की कान्ति और मनोहर मुसकान के द्वारा ब्रह्मतेज के छिपाये रखने पर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण ने उनको देखकर अपने आसन से उठकर शुकदेवजी की अगवानी की ।।२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

तिमत्यादीनां प्रत्युत्थिता इति तृतीयश्लोकेनान्वयः । द्विगुणान्यष्टौ वर्षाणि यस्य । सुकुमारौ कोमलौ पादौ कराबूरू बाहू अंसौ कपोलौ गात्रं च यस्य । चारुणी आयते अक्षिणी यस्मिन् । उन्नता नासा यस्मिन् । लम्बह्रस्वादिवैषम्यं विना तुल्यौ कणौँ यस्मिन् । शोभने च भ्रुवौ यस्मिन् एवंभूतमाननं यस्य कम्बुवद्रेखात्रयाङ्कितः सुष्ठु जातः कण्ठो यस्य । कण्ठस्याधोभागयोः स्थिते ते अस्थिनी जन्नुणी । मांसेन निगूढे जन्नुणी यस्य । पृथु विस्तीणाँ तुङ्गमुन्नतं च वक्षो यस्य । आवर्तवन्नाभिर्यस्य । बिलिभिस्तिर्यङ्निम्नरेखाभिर्वला रम्यमुदरं यस्य । दिश एवाम्बरं यस्य । वक्त्रविकीणाः केशा यस्य । प्रलम्बौ बाहू यस्य । स्वमरेषु श्रेष्ठदेवेषूत्तमो हरिस्तद्वदाभा यस्य तम् । सदा अपीच्यमत्युत्तमं यद्वयो यौवनं तेन याऽङ्गलक्ष्मीर्देहकान्तिस्तया रुचिरस्मितेन च । गूढवर्चसमपि प्रत्युत्थितास्तं दृष्ट्वा प्रत्युद्गमं कृतवन्त इत्यर्थः ।।२६-२८।।

भाव प्रकाशिका

तम् इत्यादि शुकदेवजी के सारे विशेषणों के वाचक पदों का आगे के तीसरे प्रत्युत्थिता: श्लोक से अन्वय है। शुकदेवजी की अवस्था सोलह वर्ष की थी, उनके हाथ, पैर, दोनों जङ्को, दोनों भुजाएँ, तथा दोनों गालों से युक्त शरीर कोमल था। उनकी दोनों फैली हुयी और मनोहर आँखें थी, नाक उठी हुयी थी, दोनों कान बराबर मात्रा में लम्बे थे उनकी दोनों भौहे और मुख मनोहर थे। उनका कण्ठ शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त और सुन्दर था कण्ठ के नीचे की हंसली मांस से भरी हुयी होने के कारण छिपी हुयी थी, उनका वक्ष:स्थल विस्तृत

तथा उठा हुआ था तथा आवर्त (जल के चकोह) के समान उनकी गहरी नाभी थी तथा त्रिबली के कारण उनका उदर मनोहर दिखता था, वे दिगम्बर (नग्न) रूप में थे, उनके विखरे हुए केश मुख पर लटक रहे थे, दोनों भुजाएँ लम्बी थीं, उनकी कान्ति देवता के समान सुन्दर थीं, उनका वर्ण श्याम था सदा उत्तम युवावस्था से युक्त शरीर की सुन्दरता तथा मनोहर मुसकान के कारण स्त्रियों के लिए वे मन मोहक थे। उनका तेज यद्यपि छिपा हुआ था फिर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण उनको देखते ही पहचान गये, और अपने आसन से उठकर उनलोगों ने उनकी (शुकदेवजी की) अगवानी की ॥२६-२८॥

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार । ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥

अन्वयः— स विष्णुरातः आगताय तस्मै अतिथये शिरसा सपर्यां आजहार, ततः अबुधाः स्त्रियः अर्भकाः च निवृत्ताः पूजितः सः महासने उपविवेश ।।२९।।

अनुवाद राजा परीक्षित् आये हुए अतिथि श्रीशुकदेवजी के। शिर झुकाकर प्रणाम किए और उनकी पूजा किए। शुकदेवजी की इस महिमा को देखकर उनको नहीं जानने वाली स्त्रियाँ और बालक गण वहाँ से लौट गये और राजा के द्वारा पूजित होकर शुकदेवजी महान् आसन पर विराजमान हो गये।।२९।।

भावार्थ दीपिका

शिरसैव सपर्यामाजहारात्मनिवेदनं कृतवान् । तेन सहागताः स्त्र्यादयो निवृत्ताः । स चोपविवेश सन्धिरार्षः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने आये हुए शुकदेवजी की पूजा शिर झुकाकर प्रणाम पूर्वक की । शुकदेवजी के साथ जो स्त्रियाँ और बच्चे वहाँ तक आये थे उन सबों ने उनका जब इस प्रकार से समादर देखा तो वे वहाँ से लौट कर चले गये । राजा परीक्षित् के द्वारा पूजित शुकदेवजी महान् आसन पर बैठ गये ॥२९॥

स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजार्षिदेवर्षिसङ्घैः । व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥३०॥

अन्वयः महीयसां महान् सः तत्र, ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि संघैः संवृतः ग्रहर्सतारानिकरैः भगवान् इन्दुः यथा अलं व्यरोचत ।।३०।।

अनुवाद राजर्षियों तथा देवर्षियों के समूह से घिरे हुए महानो में भी महान् शुकदेवजी की शोभा, ग्रह, नक्षत्र, तथा तारों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स भगवान् ब्रह्मर्घ्यादिसङ्घैः संवृतः सन्नलं व्यरोचत । ग्रहाः शुक्रादयः । ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि । अन्यास्ताराः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मिष आदि से घिरे हुए भगवान् शुकदेवजी की शोभा ग्रहों नक्षत्रों एवं तारों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी । ग्रह शब्द से शुक्र आदि तथा अश्विनी आदि नक्षत्र एवं तारों को लेना चाहिए ॥३०॥

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य । प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥३१॥

अन्वयः— प्रशान्तम्, आसीनम्, अकुण्ठमेधसं मुनिम् अभ्युपेत्य अवहितः कृताञ्जलिः महाभागवतः राजा मूर्घ्ना प्रणम्य पुनः नत्वा सुनृतया गिरा अन्वपृच्छत् ॥३१॥ अनुवाद शान्त भाव से बैठे हुए तथा किसी भी विषय में जिनकी मेधा कुण्ठित नहीं थी ऐसे मुनि शुकदेवजी के सन्निकट आकर सावधान तथा हाथ जोड़े हुए महाभागवत राजा परीक्षित् उनको शिर झुकाकर प्रणाम किए तदनन्तर उनसे प्रश्न पूछने के लिए पुन: प्रणाम करके उनसे मधुर वाणी से पूछे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

न कुण्ठा सर्वार्थेषु मेधा यस्य तम् । प्रणम्य प्रश्नार्थं पुनर्नत्वा ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी शान्त भाव से बैठ गये। उनकी बुद्धि किसी भी विषय में कुण्ठित नहीं थी। उनके पास महाभागवत राजा परीक्षित् आये, वे सावधान और हाथ जोड़े हुए थे। उन्होंने सर्वप्रथम शिर झुकाकर श्रीशुकदेवजी को प्रणाम किया। उसके पश्चात् प्रश्न पूछने के लिए उन्होंने शुकदेवजी को पुन: प्रणाम किया तथा अत्यन्त मधुर वाणी में उनसे प्रश्न किये। १३१।।

अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः । कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अन्वयः अहो ब्रह्मन् अद्यवयं क्षत्रबन्धवः सत्सेव्या यतः, भवद्भिः अतिथिरूपेण कृपया तीर्थकाः कृताः ।।३२।। अनुवाद हे ब्रह्मन् यह मुझ क्षत्रिय का बहुत बड़ा भाग्य है कि हम सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये, क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर मुझे पवित्र बना दिए हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

सूनृतां गिरमाह-अहो इति पञ्चभिः । सतां सेव्या जाताः । यतः अतिथिरूपेण हेतुना तीर्थका योग्याः कृता ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अहो इत्यादि पाञ्च श्लोकों से राजा परीक्षित् की सुन्दर वाणी का वर्णन करते हैं। राजा परीक्षित् ने कहा हे ब्रह्मन् आज हम क्षत्रिय भी सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये हैं। क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर हमको उस योग्य बना दिये हैं ॥३२॥

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः । किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥

अन्वयः— येषां संस्मरणात् वै पुंसा गृहाः सद्यः शुध्यन्ति दर्शनस्पर्शपादशौच आसनादिभिः पुनः किम् ।।३३।।

अनुवाद जिन आप जैसे महापुरुषों को स्मरण करने मात्र से ही गृहस्थों के गृह सद्य: पवित्र हो जाते हैं तो फिर, दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन तथा आसन प्रदान आदि करने पर क्या कहना है ?।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा कि आप जैसे महापुरुषों का केवल नाम स्मरण कर लेने मात्र से ही गृहस्थों का गृह पवित्र हो जाता है। आज तो मुझे आपका दर्शन करने, स्पर्श करने, पाद प्रक्षालन करने का एवं आसन प्रदान करने का अवसर प्राप्त हो गया है। अतएव हमारी योग्यता के विषय में आज क्या कहना है। मुझे आपने कृतार्थ कर दिया ॥३३॥

सान्निध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि । सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥

अन्वयः— हे महायोगिन् ! ते सात्रिध्यात् महान्ति अपि पातकानि सद्यः तथैव नश्यन्ति यथा भगवतः विष्णोः सित्रिध्यात् सुरेतरा सद्यः नश्यन्ति ॥३४॥

अनुवाद हे महायोगिन् आपके सान्निध्य मात्र से बड़े-से-बड़े भी पाप उसीतरह विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह से भगवान् विष्णु के सन्निधान मात्र से बड़े-बड़े पापी दैत्य इत्यादि भी विनष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ दीपिका

विष्णो: सान्निध्यादसुरादय इव ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु के सान्निध्य मात्र को प्राप्त करके मय इत्यादि असुर भी विनष्ट हो गये ॥३४॥

अपि मे भगवान्त्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतिप्रियः । पैतृष्वस्नेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तवान्यवः ॥३५॥

अन्वयः— पाण्डुसुतिप्रयः पैतृष्वास्नेय तद्गोत्रस्य आत्तवान्धवः भगवान् कृष्णः अपि मे प्रीतः ॥३५॥

अनुवाद— पाण्डवों के प्रिय अपने फुफेरे भाइयों की प्रसन्नता के लिए, उनके गोत्र में उत्पन्न होने के कारण
मुझसे भी अपना सम्बन्ध मानकर भगवान् श्रीकृष्ण भी आज मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

पाण्डुसुतानां प्रियोऽतस्तेषां पैतृष्वस्रेयानां प्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्य मे आत्तं स्वीकृतं बन्धुकृत्यं येन सः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के प्रिय हैं। वे अपने फुफेरे भाई पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए, पाण्डवों के गोत्र में उत्पन्न मुझसे भी अपना सम्बन्ध स्वीकार कर लिए हैं और मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ॥३५॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् । नितरां प्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥३६॥ अन्ययः— अन्यथा अव्यक्तगतेः संसिद्धस्य वनीयसः ते दर्शनम् नितरांप्रियमाणानां नृणाम् नः कथम् दर्शनम् ?॥३६॥ अनुवाद यदि भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा नहीं होती तो अव्यक्त गति वाले, वन में रहने वाले तथा परम सिद्ध आपका दर्शन, शीघ्र ही मर जाने वाले मुझ जैसे मनुष्य को कैसे होता ? ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा श्रीकृष्णप्रसादं विना । अव्यक्ता गतिर्यस्य । म्रियमाणानां नितरां कथं स्यात् । वनयिता याचयिता वनयितृतमो वनीयांस्तय । अत्युदारतया मां याचेथा इति प्रवर्तकस्येत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यदि भगवान् श्रीकृष्ण की मुझ पर कृपा नहीं होती तो फिर आपका दर्शन मुझको कैसे मिलता ? क्योंकि आपकी अव्यक्त गित हैं । आपकी गित को कोई नहीं जानता है, साथ ही आप परम सिद्ध हैं तथा वन में रहने वाले हैं और मैं तो शीघ्र ही मर जाने वाला मनुष्य हूँ । वनीयसः पद की व्याख्या है वन में रहने वाले को वनीय यानी वनवासी कहते हैं । इस ऋषि समुदाय की अपेक्षा अत्यधिक वन में रहने वाले हैं । श्रीधर स्वामी भी लिखते हैं वनियता अर्थात् याचना करने वाले । सर्वोत्तम वनियतृ (याचना करने वाले) होने के कारण वनीयान् हैं । अर्थात् अत्यन्त उदार होने के कारण मुझसे याचना करो इस तरह से प्रेरित करने वाले हैं आप । ऐसे आपका दर्शन मुझको कैसे सम्भव था ?।।३६।।

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् । पुरुषस्येह यत्कार्यं प्रियमाणस्य सर्वथा ॥३७॥ अन्वयः अत इह योगिनां परमं गुरुम् पृच्छामि यत् सर्वथा प्रियमाणस्य पुरुषस्य यत् कार्यम् संसिद्धिं च पृच्छामि ॥३०॥ अनुवाद अतएव मैं योगियों के परम गुरु आप से यह पूछ रहा हूँ कि मरने वाले पुरुष को इस लोक में कौन सा कार्य करना चाहिए जिससे कि मुक्ति की प्राप्ति हो ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

सम्यक् सिद्धिर्यस्मात्तम् । कार्यं कर्तुं योग्यम्, कर्तव्यं त्वावश्यकमिति भेदः । अतएव सर्वथा म्रियमाणस्य पुरुषस्य यस्मिन्कृते संसिद्धिर्मोक्षलक्षणा सिद्धिर्भवति तत्त्वां योगिनां गुरुं पृच्छामि ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा कि जो मनुष्य शीघ्र ही मर जाने वाला हो, उसको कौन सा ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिसके करने से सम्यक् सिद्धिरूप मुक्ति मिल जाय ? आप योगियों के परम गुरु हैं । यही मैं आपसे पूछ रहा हूँ ॥३७॥

यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो । स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥३८॥

अन्वयः हे प्रभो ! नृभिः यच्छ्रोतव्यम्, यत् जाप्यं, यत् कर्तव्यम् यत् स्मर्तव्यम्, यत भजनीयं वा यद्वा विपर्ययम् तद्बृहि ॥३८॥

अनुवाद हे प्रभो ! इस संसार में मनुष्यों को जो सुनना चाहिए, जो जपना चाहिए, जो करना चाहिए, जिसका स्मरण करना चाहिए, तथा जिसका भजन करना चाहिए तथा जिसे न तो सुनना चाहिए, न जपना चाहिए, न करना चाहिए, न स्मरण करना चाहिए और न जिसका भजन (सेवन) करना चाहिए उसको आप मुझे बतलायें ।।३८॥

भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यं यज्जाप्यं यत्कर्तव्यं यत्स्मर्तव्यं तद्ब्रृहि । विपर्ययमश्रोतव्यामादि ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा ने सभी कल्याणकामी पुरुषों के द्वारा श्रोतव्य, जपने योग्य, अवश्य करने योग्य, स्मरण करने योग्य तथा सेवन करने योग्य तथा जिसको नहीं सुनना आदि चाहिए ऐसे साधनों के विषय में शुकदेवजी से पूछा है। इस तरह सैंतीसवें और अड़तीसवें इन दोनों श्लोकों में राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से दो बातों को पूछा है। १. मियमाण पुरुष को मुक्ति की प्राप्ति कैसे होती है तथा २. इस संसार में कल्याण चाहने वाले पुरुषों को क्या करना चाहिए ? इस सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण में इन्हीं दोनों बातों का उत्तर दिया गया है।।३८॥ नूनं भगवतो ब्रह्मनगृहेषु गृहमेधिनाम्। न लक्ष्यते ह्यवस्थानमिप गोदोहनं क्विचित् ॥३९॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! गृहमेधिनाम् गृहेषु भगवतः क्वचित् गोदोहनम् अपि हि अवस्थानं न लक्ष्यते ।।३९।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो किसी गृहस्थ के घर पर गोदोहन काल पर्यन्त भी नहीं रुकते हैं अतएव इसी समय आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तव दर्शनस्य पुनर्दुर्लभत्वादिदानीमेव कथनीयमित्याशयेनाह-नूनमिति । गोदोहनमात्रकालमपि अस्माकं भाग्यवशात्त्वद्दर्शनं जातमिति भाव: ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

नूनम्॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा राजा परीक्षित् ने कहा कि आपका दर्शन दुर्लभ है, अतएव आप इसी समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें। क्योंकि आप तो किसी गृहस्थ के यहाँ गोदोहन काल अर्थात् मुहूर्त के आठवें भाग के बराबर भी समय तक नहीं ठहरते हैं। मेरे भाग्य से ही आपका दर्शन हुआ है।।३९॥

सूत उवाच

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे अष्टादशसाहस्त्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥१॥

अन्वयः एवमाभाषितः राज्ञा श्लक्षणया गिरा पृष्टः धर्मज्ञः भगवान् बादरायणिः प्रत्यभाषत ।।४०।।

अनुवाद इस तरह से अहो अद्य० इत्यादि श्लोक के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् द्वारा मधुर वाणी से पूछे जाने पर धर्मज्ञ तथा ब्रह्मावास शुकदेवजी राजा परीक्षित् के वाक्यों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ॥४०॥

इस तरह से श्रीमद्भागवम महापुराण नामक अठारह हजार श्लोकों वाली पारमहंस्य संहिता के प्रथम स्कन्य के शुकागमन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य)

कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।। यह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

एवमहो इत्यादिकया श्लक्ष्णया मधुरया गिरा आभाषितोऽभिमुखीकृतः पृष्टश्च । आर्यं धर्मजमाहतारिमवनौ कृत्वा परीक्षित्रृपं ब्रह्मास्त्रादिभरिक्षतं कलिजयख्यातं च कृत्वा भुवि । अन्ते यः शुकरूपतः स्वपरमज्ञानोपदेशेन तं शापादावदमुं नामामि परमानन्दाकृतिं माधवम् ।।१।।

इति श्रीमद्भागवगतभावार्थदीपिकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां प्रथमस्कन्धटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अहोअद्य**ं इत्यादि** श्लोकों के द्वारा मधुर वाणी से शुकदेवजी को अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् ने उनसे उपर्युक्त प्रश्नों को पूछा और शुकदेवजी ने उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥४०॥

आर्यं **इत्यादि** अपने पूज्य धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को पृथिवी का अजातशत्रु राजा बनाकर, ब्रह्मास्त्र से रिक्षत राजा परीक्षित् को किल विजयी रूप से पृथिवी पर विख्यात बनाकर, अन्त में शुकदेव महर्षि के रूप में परमात्मा के ज्ञानोपदेश के द्वारा परीक्षित् की ब्रह्मशाप से रक्षा जिन्होंने की उन लक्ष्मीपित परमानन्द स्वरूप भगवान् माधव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत भावार्थदीपिका नामक प्रथम स्कन्य की टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१९।। इस तरह यह पहला स्कन्य सम्पूर्ण हो गया ।।१।।



।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

द्वितीयस्कन्थ

प्रथम अध्याय

ध्यान विधि और भगवान् के विराट् स्वरूप का वर्णन

श्रीशुक उवाच

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप । आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥

अन्वयः - नृप आत्मवित् संमतः, पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः, लोकहितं प्रश्नः कृतः एव वरीयान् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद राजन् आपने आत्मज्ञ पुरुषों के अभिमत (अनुकूल) तथा पुरुषों को सुनने, करने, जपने, स्मरण करने योग्य सभी वस्तुओं में श्रेष्ठ वस्तु विषयक तथा लोक कल्याणकारी प्रश्न किया है। अतएव यह श्रेष्ठ प्रश्न है।।१।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु दशाध्यायैः श्रीभागवतमादितः । उद्देशलक्षणोक्तिभ्यां संक्षेपेणोपवर्ण्यते ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये कीर्तनश्रवणादिभिः। स्थिविष्ठे भगवद्रूपे मनसो धारणोच्यते ।।२।। यत्रामकीर्तनं दानतपोयोगादिसत्फलम् । तं नित्यं परमानन्दं हिर नर नम स्मर ।।३।। अथ द्वितीयस्कन्ध व्याख्या । उक्तः पूर्वमुपोद्धातः सप्रसङ्गः शुकागतः । राज्ञा पृष्ट नृणां कृत्यमथाह शुकसन्मुनिः ।।४।। राज्ञः प्रश्नमभिनन्दिति–वरीयानिति । ते त्वया पुंसां श्रोतव्यादिषु मध्ये यः परः श्रेष्ठगोचरः प्रश्नः कृतः एष वरीयान् । यतो लोकहितमेतत्, मोक्षहेतुत्वात् । आत्मविदां मुक्तानां च संमतो यतः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध में दश अध्याओं के माध्यम से उद्देश (पदार्थी के नाम का निर्देश) पूर्वक पदार्थों के स्वरूप निरूपकधर्म वर्णन रूप लक्षण के द्वारा श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ से लेकर अन्ततक के पदार्थों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ॥१॥ सर्वप्रथम इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में कीर्तन तथा श्रवण आदि के द्वारा श्रीभगवान् का जो स्थूल रूप है उसमें मन की धारणा का वर्णन किया गया है ॥२॥ हे मनुष्य ! कीर्तन, दान, तप तथा योग इत्यादि साधनों के जो सर्वोत्तम फल हैं उन परमानन्द स्वरूप श्रीहरि को नमस्कार पूर्वक निरन्तर स्मरण करो ॥३॥

अथ द्वितीय स्कन्ध व्याख्या- इन तीन श्लोकों द्वारा वर्णित भागवत शास्त्र सार का वर्णन करने के पश्चात् भावार्थ दीपिका व्याख्या के लेखक श्रीधर स्वामी दूसरे स्कन्ध की व्याख्या को प्रारम्भ करते हैं । इससे पहले प्रसङ्ग निरूपण के साथ-साथ श्रीमद्भागवत महापुराण का शुकदेवजी के आगमन रूप उपोद्घात का वर्णन प्रथम स्कन्ध में किया जा चुका है। प्रतिपाद्य अर्थ को ध्यान में रखकर उसकी सिद्धि के लिए जो दूसरे विषयों का वर्णन किया जाता है उसी को उपोद्धात कहते हैं, कहा भी गया है 'चिन्तां प्रकृत सिद्धयर्थमुपोद्धातं विदुः बुधाः ।' उसके पश्चात् इस द्वितीय स्कन्ध में शुकदेव महर्षि ने जिसे राजा ने प्रथम प्रश्न के रूप में पूछा है उस अवश्य कर्तव्य का वर्णन किया है ॥४॥

राज्ञ: प्रश्नमिनन्दित **इत्यादि** राजा परीक्षित् के द्वारा किए गये प्रश्न का अनुमोदन करते हुए शुकदेवर्जा वरीयान् इत्यादि श्लोक को कहते हैं । मनुष्यों के द्वारा श्रोतव्य आदि में श्रेष्ठ पदार्थ क्या है, उसे आप बतलायें यह जो आपने प्रश्न किया है, यह श्रेष्ठ प्रश्न है । क्योंकि आपका यह जो प्रश्न है सम्पूर्ण संसार के लिए कल्याणकारी है, क्योंकि वह पदार्थ मोक्षप्राप्ति का साधन है, तथा जो आत्मज्ञ पुरुष हैं उनके अभिमत है ॥१॥

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः । अपश्यतामात्मत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥

अन्वयः— राजेन्द्र ! आत्मतत्त्वम् अपश्यताम् गृहमेधिनाम्, नृणाम् गृहेषु श्रोतव्यादीनि सहस्रशः सन्ति ।।२।।

अनुवाद हे राजाओं में श्रेष्ठ राजन् ! परीक्षित् जिन लोगों ने आत्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं किया है, ऐसे गृहस्थ मनुष्यों के लिए घरों में सुनने जानने और स्मरण आदि करने योग्य कार्य तो हजारों हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्स्वाभाविकक्रियाणामनर्थहेतुत्वं वदन् **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्'** इत्यस्योत्तरमाह- श्रोतव्यादीनीति त्रिभि: । गृहेषु सक्तानामत एव गृहमेधिनां तद्रतपञ्चसूनापराणाम् । मेधित हिंसार्थ: ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम शुकदेवजी यह बतलाते हैं कि स्वाभाविक रूप से जो क्रियायें की जाती है, वे सबके सब अनर्थकारी ही हैं। यह कहकर राजा ने यह जो कहा था कि जिन कार्यों को नहीं करना चाहिए उन कार्यों के विषयमें शुकदेवजी बतलायें। उन्हीं को गृह में भी श्रोतव्यदीनि तीन श्लोकों में बतलाते हैं। गृह में जो आसक्त बने रहते हैं ऐसे लोगों को कहा जाता है। गृहमेधी का अर्थ है गृहस्थ। गृहस्थों को गृहमेधी इसलिए कहा जाता है कि वे प्रतिदिन पाँच प्रकार से जीवों की हत्या करते रहते हैं। गृहमेधी पद में मेध धातु से निष्पन मेधी पद का अर्थ हिंसा करने वाला है मेध धातु हिंसार्थक है।।२।।

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः। दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा॥३॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्विप । तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥४॥

अन्वयः— राजन् नक्तं निद्रया, व्यवायेन च वा वय: ह्रियते, दिवा च अर्थेहया कुटुम्ब भरणेन वा ह्रयते, देहापत्यक लत्रेषु आत्मसैन्येषु असत्स्विप च दिवा ह्रियते, तेषां प्रमत्तः निधनं पश्यन् अपि न पश्यित ।।३-४।।

अनुवाद गजन् ! मनुष्य सोने में अथवा स्त्री प्रसङ्ग में ही रात्रि को तथा आयु को बिता देता है । दिन को वह धन प्राप्त करने की इच्छा से कार्य करता रहता है, अथवा परिवार के ही पालन-पोषण में लगा रहता है । अपने शरीर, सन्तान, पत्नी आदि में अथवा अपनी सेना के सङ्गठन में लगा रहता है । यद्यपि ये सबके सब असत् पदार्थ हैं, अतएव मिथ्याभूत हैं । वह अपने पिता इत्यादि को मरते हुए भी देखता है, फिर भी वह यह नहीं सोचता है कि मुझे भी इन सारी वस्तुओं को छोड़कर मरना है । अतएव उसका देखना भी नहीं देखने के तुल्य है ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

तैश्च वृथैवायुर्व्ययो भवतीत्याह । नक्तं रात्रौ यद्वय आयुस्तन्निद्रया व्यवायेन रत्या वा ह्रियते । दिवा अह्रि यद्वयस्तत् अर्थेहया अर्थार्थमुद्यमेन, सिद्धेऽर्थे कुटुम्बपोषणेन वा । चकारावनुक्तसमुच्चार्थौ । ननु नश्चरकुटुम्बाद्यर्थं कथमायुर्व्ययं कुर्यात्तत्राह। देहादिषु आत्मनः सैन्येषु परिकरेष्वसत्सु मिथ्याभूतेष्वपि प्रमतः प्रसक्तस्तेषां पित्रादिदृष्टान्तेन नाशं पश्यत्रपि नानुसंधत्ते ।।३–४।।

भाव प्रकाशिका

उन गृह कार्यों में व्यर्थ ही आयु बीत जाती है, इस बात को शुकदेवजी कहते हैं- गृहस्थ मनुष्य रात्रि में अपनी आयु को या तो सोने में बिता देता है अथवा स्त्री के साथ सङ्गम करने में बिता देता है। दिन में वह अपनी आयु को धन कमाने की इच्छा से उद्योग करता हुआ बिता देता है। जब धन की प्राप्ति हो जाती है तो उससे अपने परिवार के पालन में अपनी आयु को बिताता है। श्लोक का दो चकार उन अर्थों को सूचित करता है जिनको यहाँ पर नहीं कहा गया है। यदि कोई कहे कि परिवार तो नश्वर है, उसके लिए वह क्यों अपनी आयु बितायेगा। तो इसका उत्तर है कि देह, पुत्र, पत्नी इत्यादि तथा अपनी सेना इत्यादि यद्यपि परिकर होने के कारण असत् पदार्थ हैं। फलतः वे मिथ्या हैं किन्तु उसी में आसक्त होकर मनुष्य देखता है कि हमारे माता-पिता यह सब कुछ छोड़कर चले गये, किन्तु वह यह नहीं सोचता है कि एक दिन मुझे भी इन सबों को छोड़कर जाना है ॥३-४॥

तस्माद्धारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥५॥ अन्वयः — तस्मात् हे भारत ! अभयम् इच्छता सर्वात्मा, भगवान् ईश्वरः हरिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ॥५॥ अनुवाद — अतएव हे भरतवंशी राजन् अभयपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहने वाले को चाहिए कि वह सबों की आत्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

एवं विपर्ययप्रश्नोत्तरमुक्त्वा श्रोतव्यादिप्रश्नस्योत्तरमाह-तस्मादिति । हे भारत भरतवंश। सर्वात्मेति प्रेष्ठत्वमाह । भगवानिति सौन्दर्यम् । ईश्वर इत्यावश्यकत्वम् । हरिरिति बन्धहारित्वम् । अभयं मोक्षमिच्छता ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से राजा परीक्षित् के द्वारा पृष्ट विपर्यय शब्द वाच्य अश्रोतव्यादि का वर्णन करके श्रोतव्यादि (सुनने योग्य) विषयक प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने तस्माद् इत्यादि श्लोक से दिया है। उन्होंने बतलाया कि जो पुरुष मोक्ष प्राप्त करना चाहे उसे सर्वात्मा, भगवान् तथा ईश्वर श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। श्रीभगवान् को सर्वात्मा कहकर उनके प्रियतमत्व को बतलाया गया हैं। परमेश्वर प्रेष्ठ (प्रियतम) इसलिए हैं कि श्रुति उनको प्रियतम बतलाती है। भगवान् इस विशेषण के द्वारा परमात्मा के सौन्दर्य को बतलाया गया है। इश्वर पद के द्वारा आवश्यकत्व को बतलाया गया है। हिरः पद के द्वारा परमात्मा के बन्धहारित्व को बतलाया गया है।।।।।

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥६॥

अन्वयः पुंसाम् एतावान् परः जन्मलाभः यत् सांख्ययोगाभ्याम् स्वधर्मपरिनिष्ठया च अन्ते नारायणस्मृतिः ।।६।। अनुवाद मानव जन्म प्राप्त करने का सबसे बड़ा लाभ यही है कि मनुष्य, ज्ञान, भक्ति अथवा अपने धर्म की निष्ठा के द्वारा अपने जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण करे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतः परमन्यच्छ्रेयो नास्तीत्याह । एतावानेव जन्मनो लाभः फलम् । तमाह-नारायणस्मृतिरिति। सांख्यादिभिः साध्य इति तेषां स्वातन्त्र्येण लाभत्वं वारयति । सांख्यमात्मानात्मिववेकः । योगोऽष्टाङ्गः । अन्ते तु स्मृतिः परो लाभः । न तन्मिहमा वक्तुं शक्य इत्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जीवन के अन्त में परमात्मा के स्मरण से बढ़कर मानव जीवन का दूसरा कोई लाभ है ही नहीं। मानव जन्म प्राप्त करने का यही फल है। उस फल को शुकदेवजी ने बतलाया कि जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण ही हो जाना मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है। गीता में भी भगवान् ने कहा कि जो मनुष्य अपने जीवन के अन्त में ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म (वेद) का जप करते हुए तथा मेरा स्मरण करते हुए अपने शरीर का त्याग करता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

सांख्ययोगाभ्याम् पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि ये सभी साधन स्वतन्त्र रूप से मुक्ति रूपी फल प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। सांख्य शब्द से आत्मा और अनात्मा के भेद पूर्वक ज्ञान को कहा गया है और योग शब्द से अष्टाङ्ग योग को बतलाया गया है। जीवन के अन्त में परमात्मा का स्मरण करना ही मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है। उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।।६॥

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः । नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥७॥

अन्वयः हे राजन् ! विधिषेधतः निवृत्ताः नैर्गुण्यस्थाः मुनयः प्रायेण हरेः गुणानुकथने रमन्तेस्म ।।७।।

अनुवाद— हे राजन् ! विधि एवं निषेध की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा निर्गुण ब्रह्म में स्थित मुनिजन प्राय: श्रीहरि के दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सदाचारं प्रमाणयति-प्रायेणेति । विधिषेधतो विधिनिषेधाभ्यां निवृत्ता नैर्गुण्ये ब्रह्मणि स्थिता अपि । स्म प्रसिद्धम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

नारायण स्मृति में सत्पुरुषों के आचरण को उपन्यस्त करके उसकी प्रामाणिकता का प्रातिपादन **प्रायेण ० इत्यादि** श्लोक से किया गया है। विधिशास्त्र तथा निषेध शास्त्र की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा ब्रह्म में स्थित रहने वाले मुनिगुण भी प्राय: परमात्मा के अनन्त तथा दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं। स्म पद के द्वारा इस अर्थ की प्रसिद्धि को सूचित किया गया है।

नैर्गुण्ये रमन्ते स्म० इस श्लोकांश के द्वारा यह सूचित किया गया है कि नैर्गुण्य पद के द्वारा परंब्रह्म में गुणों के अत्यन्ताभाव के प्रतिपादन में तात्पर्य न होकर परमात्मा में प्राकृतिक गुणों का ही अभाव अभिप्रेत है। अन्यथा भगवान के गुणों के वर्णन का प्रसङ्ग ही कैसे हो सकता है। अतएव निर्गुणत्व का अर्थ यहाँ पर परमात्मा के प्राकृत गुण रहितत्व तथा दिव्य गुण सम्पन्नत्व रूप ही स्वीकार करना चाहिए।।७।।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥८॥

अन्वयः इदं भागवतं नाम ब्रह्मसंमितम् पुराणम् अहम् द्वापरादौ पितुः द्वैपायनात् अधीतवान् ॥८॥

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण सम्पूर्ण वेद के सदृश है, इसको मैंने द्वापर के अन्त में अपने पिता बादरायण से पढ़ा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

किमिदमपूर्वं कथयिस, सत्यम्, अत्यपूर्वमेवेदिमत्याह । इदं भगवत्प्रोक्तं तन्नामैकप्रधानं पुराणं ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम् यद्वा ब्रह्म सम्यक् मितं येन । कुतस्त्वया प्राप्तमत आह-अधीतवानिति । द्वैपायनात्पितुः । कदा । द्वापरादौ द्वापरः आदिर्यस्य कालस्य तस्मिन् द्वापरान्ते इत्यर्थः । शन्तनुसमकाले व्यासावतारप्रसिद्धेः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कोई कहे कि आप यह अपूर्व सी बात कैसे कह रहे हैं तो इसका उत्तर है कि यह अपूर्व ही बात है। यह मैं जो कह रहा हूँ वह अत्यन्त अपूर्व है। यह भगवान् के द्वारा प्रोक्त भागवत पुराण है इसमें श्रीभगवान् के नामों की प्रधानता बतलायी गयी है। यह सभी वेदों के समान होने के कारण ब्रह्मसंहिता है। अथवा इसको ब्रह्मसंमित कहने का अभिप्राय यह है कि इस पुराण के द्वारा ब्रह्म का खूब अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है। ब्रह्म सम्यक् मितं येन यह ब्रह्मसंमितम् पद का विग्रह है। प्रश्न होता है कि आपने इस पुराण को कहाँ से प्राप्त किया ? तो इसका उत्तर है कि मैंने इसको अपने पिता महर्षि द्वैपायन से पढ़ा है। फिर प्रश्न होता है कि कब आपने पढ़ा तो इसका उत्तर है द्वापरादौ । द्वापर युग के अन्त में। द्वापरादौ ० पद का विग्रह है द्वापर: आदिर्यस्य कालस्य । अर्थात् जिस काल के आदि में द्वापर विद्यमान हों, अर्थात् द्वापर के अन्त में। क्योंकि यह प्रसिद्धि है कि व्यासजी का अवतार राजा शन्तनु के समय में हुआ था।।८।।

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया । गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥९॥

अन्वयः— राजर्षे ! नैर्गुण्ये परिनिष्ठितोऽपि उत्तमश्लोकलीलया, गृहीतचेताः यत् आख्यानम् अधीतवान् ।।९।। अनुवाद— राजर्षे ! यद्यपि मैं परमात्मा के निर्गुण स्वरूप में ही पूर्ण रूप से निष्ठित था फिर भी उत्तम श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं से आकृष्ट चित्त वाला होने के कारण मैंने इस पुराण का अध्ययन किया ।।९।।

भावार्थ दीपिका

सिद्धस्य तव कुतोध्ययने प्रवृत्तिस्तत्राह-परिनिष्ठतोऽपीति । गृहीतचेता आकृष्टचित्त: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आप तो परम सिद्ध हैं फिर भी इस पुराण के अध्ययन में आपकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर **परिनिष्ठितो ॰ इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । अर्थात् मैं यद्यपि निर्गुण ब्रह्म में ही परिनिष्ठित था । फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं ने मेरे चित्त को आकृष्ट कर लिया, उसी के कारण श्रीभगवान् की लीला की प्रधानता होने के कारण मैंने इसका अध्ययन किया ॥९॥

तदहं तेऽभिद्यास्यामि महापौरुषिको भवान् । यस्य श्रद्द्यतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥१०॥

अन्वयः— भवान् महापौरुषिकः ते तत् अभिधास्यामि यस्य श्रद्दधताम् सती मितः मुकुन्दे आशु स्यात् ।।१०।। अनुवाद— आप महापुरुष भगवान् विष्णु के भक्त हैं, अतएव मैं आपको उस पुराण को सुनाऊँगा । उस पुराण में श्रद्धा रखने वाले मनुष्यों की शुद्धबुद्धि श्रीभगवान् में शीघ्र ही लग जाती हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

महापरुषो विष्णुस्तदीय: । यस्य यस्मिन् श्रद्धां कुर्वताम् । सती अहैतुकी ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुष भगवान् विष्णु हैं । उनके भक्त ही महापौरुषिक शब्द से कहे जाते हैं । शुकदेवजी ने कहा कि राजन् आप तो भगवान् विष्णु के भक्त हैं । अतएव मैं आपको श्रीमद्भागवत पुराण सुनाऊँगा । उस पुराण में जो मनुष्य श्रद्धा रखता है उसकी श्रीभगवान् में शीघ्र ही अहैतुकी बुद्धि बन जाती है। वह भगवान् की निष्काम आराधना करने लग जाता है ॥१०॥

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् । योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥

अन्वयः हे नृप ! एतत् निर्विद्यमानानां, अकुतोभयम् इच्छताम्, योगिनां च हरेर्नामानुकीर्तनम् निर्णीतम् ।।११।। अनुवाद जो लोग इस संसार से विरक्त हो गये हैं, जो लोग मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे योगिजनों के लिए सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि वे श्रीभगवान् के नामों क्रा प्रेम पूर्वक कीर्तन करें ।।११।।

भावार्थ दीपिका

साधकानां सिद्धानां च नातः परमन्यच्छ्रेयोऽस्तीत्याह-एतदिति । इच्छतां कामिनां तत्तत्फलसाधनमेतदेव । निर्विद्यमानानां मुमुक्षूणां मोक्षसाधनमेतदेव । योगिनां ज्ञानिनां फलं चैतदेव निर्णीतम् । नात्र प्रमाणं वक्तव्यमित्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

साधकों तथा सिद्धों के लिए इस श्रीमद्भागतव श्रवण से बढ़कर कोई भी दूसरा कल्याण कारी साधन नहीं है। सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि सभी साधकों तथा सिद्धों को परमात्मा के नामों का कीर्तन करना चाहिए इस विषय में किसी प्रमाण को उपन्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है ॥११॥

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह । वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥

अन्वयः प्रमत्तस्य परोक्षैः बहुभिः हायनैः इह किम् । विदितं मुहूर्तंवरं यतः श्रेयसे घटेत ।।१२।।

अनुवाद — अपनी मृत्यु के प्रति असावधान रहने वाले मनुष्यों के बीते हुए अनेकों वर्षों से क्या लाभ है? उससे तो अच्छा यही है कि जान लिया जाय कि एक ही मुहूर्त मेरे जीवन का अवशिष्ट है क्योंकि वैसा जानकर कल्याण के साधन के प्रति कुंछ भी तो प्रयास किया जा सकता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अल्पमेवायुरविशष्टं किमहं साधयेयिमिति मा शुच इत्याह-किमिति त्रिभिः । परोक्षैरलिक्षतैर्हायनैविषैः । विदितं वृथा यातीति ज्ञातम् । यतो येन ज्ञानेन । घटेत यत्नं कुर्यात् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि परीक्षित् कहें कि मेरी तो बहुत कम आयु बची हुयी है, ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकता हूँ इसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा कि जो मनुष्य अपनी मृत्यु के प्राति असावधान हो उसको कुछ भी पता नहीं चलता है कि हमारे इतने वर्ष कैसे बीत गये ? उस व्यक्ति के व्यर्थ में बीते हुए अनेक वर्षों से तो वह एक भी मुहूर्त अच्छा है जिसके विषय में व्यक्ति यह जान ले कि अब मुझे एक ही मुहूर्त जीवित रहना है क्योंकि उस एक ही मुहूर्त में वह आत्मकल्याण का प्रयास कर सकता है। अस्पके तो अभी सात दिन बाकी हैं।।१२॥

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिज्ञात्वेयत्तामिहायुषः । मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥१३॥

अन्वयः खट्वाङ्गो नाम राजिष, इह आयुष: इयत्ताम् ज्ञात्वा मुहूर्तात् सर्वम् उत्सृज्य अभयं हिरं गतवान् ।।१३।। अनुवाद खट्वाङ्ग नामक राजिष को जब इस बात का पता चल गया कि अब मेरी आयु एक मुहूर्त ही है तो वे सब कुछ का त्याग करके श्रीहिर की शरणागित करके मुक्ति प्राप्त कर लिए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

खट्वाङ्गो हि देवपक्षे स्थित्वा दैत्यानजयत्, ततः प्रसन्नैर्देवैर्वरं वृणीष्वेत्युक्ते तेनोक्तं प्रथमं तीवन्ममायुः कथ्यतामिति,

ततो देवैरुक्तं तत्तु मुहूर्तमात्रमस्तीति, ततोऽतिशीघ्रं विमानेन भुवमेत्य हरिं शरणं गत इति । यत इयं स्वर्गभूमि रजोधिका । कर्मभूमि: पृथ्वी ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

राजर्षि खट्वाङ्ग देवताओं की ओर से युद्ध करते हुए विजय प्राप्त किए। प्रसन्न होकर देवताओं ने कहा आप वरदान माँगें। राजा ने कहा आपलोग मेरी आयु बतलायें। देवताओं ने कहा राजर्षे! अब आपकी आयु केवल एक मुहूर्त बची है। उसके पश्चात् राजा शीघ्रता पूर्वक विमान से पृथिवी पर आ गये और श्रीभगवान् की शरणागित करके मुक्ति को प्राप्त कर लिए। वे जान गये कि स्वर्गभूमि रजोगुण प्रधान है यहाँ मुक्ति सम्भव नहीं है। पृथिवी कर्मभूमि है। अतएव वे पृथिवी पर आकर श्रीभगवान् की शरणागित किए।।१३।।

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः । उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ॥१४॥

अन्वयः हे कौरव्य ! एतर्हि तवापि जीवितावधिः सप्ताहम् । तावत् यत् साम्परायिकम् तत्सर्वम् उपकल्पय ।।१४।। अनुवाद हे कुरुवंशीय राजन् ! परीक्षित् अभी तो तुम्हारे पास सात दिन तक जीवन की अवधि है । इसी बीच में ही तुम अपने परम कल्याण के लिए जो कुछ भी करना हो कर लो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तव तु एतर्ह्यपि इदानीमपि । तावदिति तावता कालेन साम्परायिकं पारलौकिकं साधनं संपादय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

राजन् आपके पास तो अभी भी जीने के लिए सात दिन का समय बचा है। इतने समय में तुम सारे पारलौकिक साधनों को सम्पन्न कर लो ॥१४॥

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः । छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥१५॥

अन्वयः अन्त काले तु आगते गतसाध्वसः पुरुष असङ्ग शस्त्रेण देहे, ये च तम् अनु स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।। अनुवाद मृत्यु की बेला आ जाने पर मनुष्यों को चाहिए कि वह भय का त्याग करके तथा अनासिक्त रूपी शस्त्र के द्वारा शरीर तथा शरीर से सम्बनध रखने वाले पुत्र-पत्नी आदि से प्राप्त होने वाली सुख की इच्छा रूपी ममता को काट डाले ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र वैराग्यं तावदाह-अन्तकाल इति । गतसाध्वसो मृत्युभयशून्यः । असङ्गो नाम अनासक्तिस्तेन शस्त्रेण स्पृहां सुखेच्छां, तं देहमनु ये पुत्रकलत्रादयस्तेष्वपि स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम वैराग्य का उपदेश देते हुए शुकदेवजी अन्तकाले० इत्यादि श्लोक को कहते हैं। गतसाध्वसः का अर्थ है भयरहित होकर। असङ्ग अनासिक को कहते हैं। अर्थात् मृत्यु की बेला हो जाने पर मनुष्य को भयरहित होना चाहिए। वह शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र, मित्र तथा कलत्र में होने वाली ममता को अनासिक रूपी शास्त्र के द्वारा काट दें।।१५॥

गृहात्प्रव्रजितो घीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्किल्पतासने॥१६॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्। मनो यच्छेज्जितश्चासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥१७॥

अन्वयः— गृहात् प्रव्रजितः धीरः पुण्यतीर्थं जलाप्लुतः, विधिवत् किल्पतासने, शुचौ विविक्त आसीनः, त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परमं शुद्धं मनसा अभ्यसेत् । ब्रह्मबीजम् अविस्मरन् जितश्वासः मनः यच्छेत् ।।१६-१७।। अनुवाद — वह धैर्य सम्पन्न पुरुष अपने घर से निकल जाय, पिवन्न तीर्थ के जल में जाकर स्नान करे, विधिपूर्वक निर्मित पिवन्न आसन पर एकान्त में बैठ जाय। उसके पश्चात् तीन मात्राओं अ, उ, म् इन तीन मात्राओं से युक्त परम पिवन्न प्रणव का मन में ही जप करे। उसके बाद प्राण वायु को वश में करके मन को अपने वश में कर ले, उस समय प्रणव जप को भूलना नहीं चाहिए, जप करते रहना चाहिए ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच गृहात्प्रव्रजितो निर्गतः । गृहे स्थितस्य पुनरप्यासिक्तसंभवात् । तत्राष्टाङ्गयोगमाह । घीर इति ब्रह्मचर्यादियमोपलक्षणम्। पुण्यतीर्थेति स्नानदिनियमोपलक्षणम् । आसनमाह-शुचाविति । विविक्ते एकान्ते । विधिवत् कुशाजिनचैलैः क्रमेण निर्मिते । जपगर्भं प्राणायामं वक्तुं जप्यमाह । त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं त्रिवृत्रिभिरकारादिभिवितितं ग्रथितं ब्रह्माक्षरं प्रणवं मनसाऽभ्यसेदावर्तयेत् । मनसेन्द्रियप्रत्याहारं वक्तुं प्राणायामेन मनोनियमनमाह । मनो यच्छेद्वशीकुर्यात् । ब्रह्मबीजं प्रणवमविस्मरत्रेव । जितश्वासः सन् ।।१६-१७।।

भाव प्रकाशिका

उस पुरुष को धैर्य धारण करके गृह का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि गृह में रहने पर हो सकता है, फिर उसकी पत्नी, पुत्र तथा परिवार में आसित्त हो जाय। उसके पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् केा अष्टाङ्गयोग का उपदेश देते हुए कहा। उस पुरुष की धीर कहकर ब्रह्मचर्य आदि जो यम बतलाये गये हैं उनके पालन को कहा गया है। पुण्यतीर्थ जल में स्नान रूपी नियम का पालन बतलाया गया है। शुचौ इत्यादि के द्वारा आसन का निर्देश किया गया है। आसन को चैलाजिनकुशोत्तर के नियम के अनुसार निर्मित होना चाहिए। तथा एकान्त एवं पवित्र स्थान में उस आसन पर बैठना चाहिए।

जप युक्त प्राणायाम को बतलाने के लिए जपने योग्य मन्त्र को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा कि अ, उ और म् इन तीन मात्राओं से निर्मित प्रणव का मन में ही जप करें। मन के द्वारा इन्द्रियों के प्रत्याहार अर्थात् विषयों से विमुख बनाने के लिए प्राणायाम के द्वारा मन के नियमन को बतलाते हुए कहा गया है कि मन को अपने वश में करना चाहिए ॥१६-१७॥

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारिथः । मनः कर्मिभराक्षिप्तं शुभार्थे घारयेद्घया ॥१८॥

अन्वयः— बुद्धि सारिथः मनसा विषयेभ्यः अक्षान् नियच्छेत् कर्मिभः आक्षिप्तं मनः शुभार्थे धिया धारयेत् ।।१८।। अनुवाद— बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले, तथा कर्म की वासनाओं से चञ्चल हुए मन को विचार के द्वारा रोककर उसको श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप में लगा देना चाहिए ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्याहारमाह । नियच्छेन्निगृह्णीयात् । अक्षानिन्द्रियाणि । निश्चियात्मिका बुद्धिः सारिधर्यस्य सः । धारणामाह । मन इति। पुनश्च कर्मभिस्तद्वासनाभिराक्षिप्तमाकृष्टम् । शुभार्थे भगवद्रूपे ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

नियच्छेत् इत्यादि श्लोक के द्वारा योग के पाँचवें अङ्ग प्रत्याहार को बतलाया जा रहा है। नियच्छेत् का अर्थ है कि निगृहीत करे। निश्चयात्मिका बुद्धि रूपी सारिथ वाले पुरुष को चाहिए कि वह मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले। धारणा को बतलाते हुए उन्होंने कहा कि कमों की वासना से चञ्चल बने हुए मन को बुद्धिपूर्वक परमात्मा के शुभ रूप (मङ्गलमय रूप) में लगा दे। मन को किसी शुभाश्रय में लगा देने को ही धारण कहते हैं। प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारे

इन्द्रियाणाणां प्रत्याहार: अर्थात् जब इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध नहीं होता है उस समय इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण करने लग जाती है, इसी को प्रत्याहार कहते हैं ॥१८॥

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा । मनो निर्विषयं युंक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥

अन्वयः— तत्र अव्युच्छिन्नेन चेतसा एकावयवं ध्यायेत् ततः निर्विषयं मनः युंक्त्वा किंचन न स्मरेत् विष्णोः तत् परमं पदं यत्र मनः प्रसीदिति ।।१९।।

अनुवाद उस समय अपने सम्पूर्ण अन्त:करण के द्वारा श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करे। उसके पश्चात् विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में इस प्रकार से लगा दे कि वह किसी दूसरे विषय का स्मरण न कर सके भगवान् विष्णु का वही परमपद है। जिसको प्राप्त करके मन भगवत्प्रेम रूपी आनन्द से भर जाता है।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ध्यानमाह-तत्रेति । एकमेकं पादाद्यवयवम् । अव्युच्छित्रेन समग्ररूपादिवयुक्तेन । आश्रयविशेषेण सामान्यतश्चित्तस्थिरीकरणं धारणा । अवयवविभावनया तद्दाढर्यं ध्यानमिति भेदः । समाधिमाह । निर्विषयं मनो युंक्त्वा समाधाय । स्थिरीभूते मनसि स्फुरत्परमानन्दमात्राकारं कृत्वेत्यर्थः । प्रसीदित उपशाम्यित ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

तत्र इत्यादि श्लोक के द्वारा ध्यान को बतलाया गया है। श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप के एक-एक अङ्ग का मुमुक्षु पुरुष ध्यान करे उस समय उसके अन्त:करण में श्रीभगवान् के सम्पूर्ण रूप से विच्छित्र नहीं होना चाहिए। उस प्रकार के मन से वह श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करना चाहिए। आश्रय विशेष के साथ सामान्यत: चित को स्थिर करने को धारण कहते हैं। तथा अवयव की भावना से उस धारणा को दृढ करने को ध्यान कहते हैं। यही ध्यान और धारणा में भेद है। विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में समाहित करे। परमात्मा के उस अङ्ग में स्थिर बने हुए मन में जब केवल परमानन्द आकार की ही प्रतीति हो, किसी दूसरे वस्तु की प्रतीति नहीं हो ऐसी स्थिति में मन परमात्मा के प्रेमरूपी परमानन्द में मग्न हो जाता है इसी को समाधि कहते हैं।।१९॥

रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः । यच्छेन्द्रारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥२०॥

अन्वयः चीरः रजस्तमोभ्याम् आक्षिप्तं विमूढं आत्मनः मनः धारणया यच्छेत् या तत्कृतं मलम् हन्ति ।।२०।। अनुवाद यदि फिर रजोगुण एवं तमोगुण के द्वारा आक्षिप्त (क्षुब्ध) मन हो जाय तो अपने मन को धारण के द्वारा वश में करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य मल को विनष्ट कर देने का काम करती है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

गुणवशात्पुनरिप क्षोभे सित धारणामेव स्थिरीकुर्यादित्याह । रजसा आक्षिप्तं तमसा विमूढं स्वीयं मनो निरुध्यात् । तत्कृतं रजस्तमोभ्यां कृतम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

समाधिस्थ हो जाने पर भी ऐसा हो सकता है कि गुणों के कारण मन में क्षोभ उत्पन्न हो जाय । उस स्थिति में धारणा को ही स्थिर करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य दोष को विनष्ट कर देने का काम करती है ॥२०॥

यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः । आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥

अन्वयः - यतः संधार्यमाणायां भद्रम् आश्रयं इच्छतः योगिनः भक्तिलक्षणः योगः आशु सम्पद्यते ।

अनुवाद— क्योंकि धारणा के स्थिर हो जाने पर सुखात्मक अपने आश्रय का साक्षात्कार करने वाले योगी का भक्ति रूपी योग शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है। अर्थात् योगी की उस शुभाश्रय में ही भक्ति हो जाती है।।२१।।

भावार्थ दीपिका

यतो यस्यां क्रियमाणायां भद्रं सुखात्मकाश्रयं विषयं पश्यतस्तत्रैव प्रीतिर्भवति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिस धारणा के सम्पन्न हो जाने पर सुखमय विषय को देखने से उस विषय में ही प्रीति हो जाती हैं ॥२१॥ राजोवाच

यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता । यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥२२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् संमता धारणा, यथा यत्र संधार्यते, यादृशी वा संधार्यते, पुरुषस्य, मनोमलम् आशु हरेत् तद्भद ।।२२।।

राजा ने कहा

अनुवाद हे ब्रह्मन् ! सभी योगियों के लिए अभिमत धारण जिस तरह से की जाती है, जिस वस्तु के विषय में की जाती है तथा और जिस तरह से की जाती है, जिससे कि वह पुरुष के मनोमल को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यथा यत्र यादृशी चेतिकर्तव्यताविषयतत्तद्विशेषाणां प्रश्नाः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में यथा, यत्र तथा यादृशी, ये धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न हैं । अर्थात् धारणा किस तरह से की जाती है, उस धारणा का आश्रय क्या हो, और उस धारणा का स्वरूप क्या है ? इन तीनों विषयों में प्रश्न किया गया है क्योंकि कहा जा चुका है कि धारणा मनोमल को शीघ्र ही दूर करने का काम करती है ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

जितासनो जितश्चासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः । स्थूले भगवतो रूपे मनः संघारयेद्धिया ॥२३॥

अन्वयः जितासनः, जितश्वासः, जितसङ्गं, जितेन्द्रियः धिया भगवतः स्थूले रूपे मनः संधारयेत् ।।२३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियों को अपने वश में करके बुद्धि पूर्वक भगवान् के स्थूल रूप में मन को लगाना चाहिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यथेत्यस्योत्तरं-जितासन इति । विषयमाह-स्थूल इति सार्धेन ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने यथा पद के द्वारा जो धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न किया है उसका उत्तर दिया गया है। स्थूल इत्यादि डेढ श्लोक से धारणा के विषय को बतलाया गया है। जिसको परीक्षित् ने यत्र संमता कहकर पूछा था।।२३।।

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् । यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्य सत् ॥२४॥

अन्वयः— अयम् विशेषः तस्य स्थवीयसाम् स्थविष्ठः देहः यत्र इदं भूतं, भव्यं भवच्च विश्वं दृश्यते ।।२४।। अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् उस परमात्मा का स्थूल से भी अत्यन्त स्थूल शरीर है । उसी में यह भूतकालिक, भविष्यत्कालिक तथा वर्तमानकालिक जगत् दिखायी पड़ता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

विशेषो विराड्देहः अतिस्थूलानामपि स्थूलतरः । सत् कार्यमात्रम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का विराट् शरीर है। जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबों से यह अधिक स्थूल है। इससे स्थूल कुछ भी नहीं। श्लोक के सत् शब्द के द्वारा सम्पूर्ण कार्य जगत् को वतलाया गया है।।२४॥ आण्डकोशे शरीरेस्मिन्सप्तावरणसंयुते। वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः।।२५॥

अन्वय:— सप्तावरण संयुते, अस्मिन् आण्डकोशे शरीरे यः असौ वैराजः पुरुषः सः भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥ अनुवाद— जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत् तत्त्व और प्रकृति इन सात आवरणों से युक्त इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में जो वैराज पुरुष हैं वे ही भगवान् धारण के विषय हैं, उनकी ही धारण की जाती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अस्य चोपलक्षणत्वे विषयत्वं, वस्तुतस्तु विराड् जीवनियन्ता भगवानेव विषय इत्याह । आण्डकोशान्तर्वर्तिनि कटाह एव पृथिव्यावरणम् । ततः अप्तेजोवाय्वाकाशाहंकारमहत्तत्त्वानीति सप्त ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् उपलक्षण रूप से विषय है। वास्तविकता तो यह है कि जीवों के नियामक भगवान् ही धारणा के विषय हैं। ब्रह्माण्ड तो उनका उपलक्षण है। ब्रह्माण्ड के भीतर रहने वाला कटाह ही पृथिवी रूपी आवरण है। अतएव जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति ये सात ब्रह्माण्ड के आवरण है। इस ब्रह्माण्ड को विराट् इसलिए कहा जाता है कि बाहर से तो यह देखने में किपत्थ फल के समान गोल आकार वाला है किन्तु इसके भीतर चरण इत्यादि अवयवों से युक्त कच्छप के समान आकार वाले ब्रह्मा नामक अपने अभिमानी जीव का विशेष रूप से भोग्य होने के कारण उसके विराजमान रहने के कारण विराट् कहा जाता है। उसमें (ब्रह्माण्ड में) उपास्य रूप से रहने के कारण भगवान् को वैराज कहा जाता है।।२५॥

> पातालमेतस्य हि पादमूलं पठिन्त पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् । महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥२६॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च । महीतलं तज्जधनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥ उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य । तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥

अन्वयः— हे महीयते ! एतस्य हि पादमूलं पातालं पठन्ति, पार्ष्णिप्रपढे रसातलम् अथ विश्वसृजः गुल्फौ महातलम् तलातलं वै पुरुषस्य जङ्को, द्वे जानुनी सुतलम् वितलं अतलं च विश्वमूर्तेः उरूद्वयम्, महीतलम् तत् जघनम् नभस्तलम् नाभिसरः गृषान्ति, अस्य उरःस्थलम् ज्योतिरनीकम्, महः वै ग्रीवा, अस्य जनः तपः रराटीम् सहस्रशीर्ष्णः आदिपुंसः शीर्षाणि तु सत्वम् ।।२६-२८।।

अनुवाद है राजन् ! परीक्षित् तत्त्वज्ञ पुरुष इस विराट् पुरुष के पैरों का मूल स्थान पैर का तलवा पाताल को बतलाते हैं, रसातल को इस विराट् पुरुष की एंड़ी और पैर का पञ्जा बलाते हैं, महातल ही इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले विराट् पुरुष के दोनों गुल्फ हैं, तलातल ही इस विराट् पुरुष के दोनों जड़े हैं, सुतल ही उनके दोनों घुटने हैं, अतल और वितल ये दोनों विश्वशारीरक भगवान् के दोनों उरू प्रदेश (जंड़े) हैं। राजन् भृतल ही पेंडू हैं, । आकाश को ही विश्वरूप परमात्मा का नाभिसरोवर बतलाते हैं। ज्योति समूह को ही उनका वक्ष:स्थल बतलाते हैं। महलोंक ही उनकी ग्रीवा हैं। जनलोक उनका मुख है। तपोलोक उनका ललाट है तथा सत्य लोक ही सहस्रशीर्षा आदि पुरुष का शिर है।।२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

विराइदेहतज्जीवतदन्तर्यामिणामभेदमारोप्योपासनं कर्तव्यमित्याशयेनाह । पातालं पादमूलं पादस्याघोभागम् । पातालादीनां तदवयवता विघीयते । पातालादीन्यतलान्तान्यघस्तनादारभ्य सप्त भूविवराणि । पठिन्त गृणन्तीत्यादिप्रमाणप्रदर्शनम् । पार्षिणप्रपदे पादस्य पश्चात्पुरोभागौ । ऊरुद्वयस्याघोभागे वितलम्, उत्तरभागे अतलिमिति ज्ञेयम् । नाभिरेव सरः । ज्योतिरनीकं ज्योतिषां समूहं स्वर्गम् । महर्लोकं ग्रीवेति गृणन्ति । तपोलोकं रराटीं ललाटम् । सत्यं सत्यलोकम् ।।।२८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के विराट् शरीर उसके भीतर रहने वाले जीव तथा उसके अन्तर्यामी में अभेद का अरोप करके उपासना करनी चाहिए। इसी अभिप्राय से शुकदेवजी ने पातलमेतस्य इत्यादि श्लोकों से विश्वशरीरक परमात्मा का वर्णन किया है। पाताल आदि को ही परमात्मा के पैरों की एंडी और पंजा बतलाया गया है। पाताल से लेकर अतल पर्यन्त पृथिवी के नीचे जो सात पाताल हैं उनको विराट् पुरुष के अङ्ग प्रामाणिक पुरुष बतलाते हैं यह कहकर इस वर्णन में शुकदेवजी प्रमाणों को उपन्यस्त करते हैं। पार्ष्णिप्रपदौ पद के द्वारा पैर की एंडी और पैर के पञ्जों को कहा गया है।

दोनों जङ्घों के नीचे के भाग में वितल है, ऊपर तथा ऊपर के भाग में अतल को जानना चाहिए विराट् पुरुष की नाभि ही सरोवर है ॥२६-२७॥

ज्योतियों के समूह रूप स्वर्ग को ज्योतिरनीक कहा गया है। महलोंक को श्रीवा बतलाते हैं, तपोलोक को ललाट तथा सत्यलोक को शिरोभाग बतलाते हैं।।२८।।

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुख्य शब्दः । नासत्यदस्त्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखग्निरिद्धः ॥२९॥

अन्वयः इन्द्रादयः उस्ताः बाहवः दिशः कर्णो आहुः शब्दः अमुष्य श्रोत्रम्, नासत्यदस्तौ परमस्य नासे, अस्य घ्राणः गन्धः मुखम् इद्धः अग्निः आहुः ।।२९।।

अनुवाद— उन विश्वशरीरक परमात्मा के तेज: सम्पन्न इन्द्रादि देवता ही भुजाएँ हैं दिशाएँ ही उनके दोनों कान हैं, शब्दों का आश्रय आकाश ही श्रोत्रेन्द्रिय हैं, दोनों अश्विनी कुमार उनकी नाकों के दोनों छिद्र हैं, और गन्ध ही घ्राणेन्द्रिय है, प्रदीप्त अग्नि को ही तत्त्वज्ञों ने परमात्मा का मुख बतलाया है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उस्रा देवाः तेजोमयशरीरत्वात् ते बाहव इत्याहुः । दिशोऽस्मदादिश्रोत्राधिष्ठात्र्यो देवताः कर्णौ, श्रोत्रस्याधिष्ठानम् । शब्दस्तु श्रोत्रविषयः स तस्य श्रोत्रेन्द्रियम् । एवं नासिकादिष्वपि । नासत्यदस्राविश्वनौ नासे नासापुटे । इद्घो दीप्तः ।।२९।।

श्रीमद्भागवत महापुराण

भाव प्रकाशिका

इन्द्र इत्यादि देवतागण उस विश्वरूप परमात्मा की भुजाएँ है, क्योंकि उनके तेजोमय शरीर हैं। दिक् शब्द से हम संसारी जीवों की जो श्रोत्रेन्द्रिय हैउसकी अधिष्ठातृ देवता को कहा गया है। वे ही विश्वरूप भगवान् के दोनों कान हैं, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान हैं। शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है वही उस विश्वरूप परमात्मा का श्रेत्रेन्द्रिय है। इसी तरह से नासिका आदि के भी विषय मे समझना चाहिए। दोनों अश्विनी कुमार परमात्मा के नाक के छिद्र हैं। देदीप्यमान अग्नि ही परमात्मा के मुख हैं।।२९॥

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च । ,तद्भविजृम्भः परमेष्ठिधिष्णयमापोऽस्य तालू रस एव जिह्ना ॥३०॥

अन्वयः— द्यौः अक्षिणी, पतङ्गः चक्षुः, अहनी विष्णोः पक्ष्माणि, परमेष्ठिधिष्ण्यम् तद्भूविजृम्भः, आपः अस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥

अनुवाद अन्तिरक्ष ही भगवान् विष्णु के दोनों नेत्र है। सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय हैं, दिन और रात दोनों भगवान् विष्णु के दोनों पलक हैं, ब्रह्मलोक ही उनका भ्रूविलास है। जल ही तालु है और रस ही उनकी जीभ है।।३०॥

भावार्थ दीपिका

द्यौरन्तरिक्षम् । अक्षिणी नेत्रगोलके । चक्षुरिन्द्रियम् । पतङ्गः सूर्यः । अहनी राज्यहनी । परमेष्ठिधिष्णयं ब्रह्मपदम् । तालु अधिष्ठानम् । जिह्ना इन्द्रियम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अन्तिरक्ष ही भगवान् के दोनों नेत्र है । उस अन्तिरक्ष में विद्यमान सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय है । रात और दिन ये दोनों भगवान् विष्णु के नेत्रों की पलके हैं । ब्रह्माजी का लोक ही भगवान् की भौहों का विलास है । जल ही उनका तालु है । भगवान् का तालु ही जल का आधार है । रस ही उनकी रसनेन्द्रिय है ।।३०॥

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि । हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

अन्वयः छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति, यमः दंष्ट्रा, द्विजानि स्नेहकलाः, जनोन्मादकरी माया च हासः, यद् दुरन्त सर्गः अपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

अनुवाद वेद को ही तत्त्वज्ञ पुरुष श्रीभगवान् का शिरोभाग (ब्रह्मरन्ध्र) बतलाते हैं, यम ही उनकी दाढें हैं, और पुत्रों आदि में होने वाला जो स्नेह का अत्यल्प अंश होता है वे ही उनके दाँत हैं। संसार को मोहित करके उन्मत्त बना देने वाली माया ही उनकी हँसी है, यह अपार सृष्टि ही उनका कटाक्षपात है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

छन्दांसि वेदाः । शिरो ब्रह्मरन्ध्रम् । स्नेहकलाः पुत्रादिस्नेहलेशाः । द्विजानि दन्ताः । षण्ढत्वमार्षम् । दुरन्तोऽपारः सर्ग इति यत् स तस्य कटाक्षः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

छन्द: शब्द से वेदों को कहा गया है। वेद ही परमात्मा के शिरोभाग हैं। यहाँ पर शिरोभाग ब्रह्मरन्ध्र का बोधक है। यमराज ही उनकी दाढें हैं और पुत्र पत्नी आदि में जो स्नेह होता है, वही परमामा के दाँत हैं। स्नेह का भी वर्ण श्वेत है और दाँतों का भी वर्ण श्वेत है। माया ही संसारी जीवों को मोहित करके उनको उन्मत्त बना देती है। परमात्मा की हँसी भी मोहित कर देने वाली होती है। यह अपार सृष्टि ही परमात्मा के कटाक्षपात हैं ॥३१॥

ब्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः । कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयाऽस्थिसङ्घाः ॥३२॥

अन्वयः — व्रीडा उत्तरोष्ठः, लोभः अधर, धर्मः स्तनः, अधर्मपथः अस्य पृष्ठः, कः तस्य मेढ्रं, मित्रौ वृषणौ, समुद्राः कृक्षिः, गिरयः अस्थि संघा च ।।३२।।

अनुवाद — लज्जा ही विश्वरूप परमात्मा के ऊपर का ओछ है, लोभ ही परमात्मा का अधर है, धर्म ही उनका स्तन है और अधर्ममार्ग ही उनकी पीठ है। प्रजापित ब्रह्माजी उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण नामक दोनों देवता उनके दोनों अण्डकोश हैं, सभी समुद्र ही उनकी कोख हैं और पर्वत ही उन विश्वशरीर की हिंडुयाँ हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अधर्ममार्गोऽस्य पृष्ठभागः । कः प्रजापतिः । मित्रौ मित्रावरुणौ ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अधर्म मार्ग ही उनका पृष्ठ भाग है। कः शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है, वे ही उनके मूत्रेन्द्रिय हैं तथा मित्रावरुण देवता उनके दोनों अण्डकोश स्थानी हैं ॥३२॥

नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र । अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥३३॥

अन्वयः— हे नृपेन्द्र विश्वतनो अस्य नद्यः नाड्यः अथ महीरुहा तनूरुहाणि, अनन्तवीर्यः मातिरश्चा श्वसितम्, वयः गतिः गुणप्रवाहः कर्म च ।।३३।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् शरीरक परमात्मा की निदयाँ ही निडियाँ है, वृक्ष ही उनके रोम हैं, नि:सीम पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनके श्वास है, वयः शब्द वाच्य काल ही उनकी गित है और प्राणियों का संसार ही उनकी क्रीडा हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तं वीर्यं यस्य सः । वयः कालस्तस्य गमनम् । गुणप्रवाहः प्राणिनां संसारः कर्म तस्य क्रीडा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अनन्त वीर्य: पद का विग्रह है अनन्तं वीर्यं यस्य सः । अर्थात् अनन्त पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनका नि:श्वास है । वायु शब्द काल का बोधक हैं, वह काल ही विश्व शरीरक परमात्मा की गति है । गुणप्रवाह शब्द प्राणियों के संसार का बोधक है । वह परमात्मा की क्रीडा है ॥३३॥

ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान् वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूमः । अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥

अन्वयः— हे कुरुवर्य ज्ञानिनः अम्बुवाहान् ईशस्य केशान्, भूम्नः वासः तु संध्याम्, ते अव्यक्तं हृदयम् आहुः सर्वविकार कोशः सः चन्द्रमाः च मनः विदुः ॥३४॥

अनुवाद हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ परीक्षित् ज्ञानी पुरुषों ने जल भरे मेघों को ही परमात्मा का केश कहा है, सन्ध्या को ही उन वैपुल्य गुण सम्पन्न परमात्मा का वस्त्र कहा है। उन लोगों ने प्रकृति को ही परमरत्मा का हृदय और सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा को ही उनका मन कहा है।।३४॥

अर्थ कर कर के किया के किया है के किया **भावार्थ दीपिका** के उन्हें कि किया है कि के किया है कि किया है कि किया है

भूम्रो विभोः अव्यक्तं प्रधानम् । सः प्रसिद्धश्चन्द्रमास्तदीयं मनः । सर्वेषां विकाराणां कोश इवाश्रयभूतम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भूमन् शब्द विभुत्व का वाचक है। परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण विभु हैं, अव्यक्त शब्द से प्रकृति कही गयी है। मेघ ही परमात्मा के केश हैं संध्यायें उनका वस्त्र हैं तत्त्वज्ञों ने प्रकृति को उनका हुदय कहा है सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा ही परमात्मा का मन है।।३४॥

विज्ञानशक्तिं महिमामन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् । अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥३५॥

अन्वयः मिहम् विज्ञानशक्तिम् गिरित्रम् अन्तः करणम्, अश्व अश्वतरी ऊष्ट्र-गजाः नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ।।३५।। अनुवाद ज्ञानी पुरुष महत् तत्त्व को परमात्म का, चित्त कहते हैं, रुद्र को उनका अहङ्कार कहते हैं, अश्व, खच्चर, ऊँट और हाथी आदि उनके नख हैं तथा सभी हिरण आदि मृग एवं गौ आदि पशु परमात्मा के किट प्रदेश में स्थित हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

विज्ञानशक्तिं चित्तम् । महिं महत्तत्त्वम् । अन्तःकरणमहंकारम् । गिरित्रं श्रीरुद्रम् गर्दभाद्वडवायामुत्पन्ना अश्वतरी ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मूलका विज्ञान शक्ति चित्त का बोधक है, मिह महत् तत्त्व का बोधक है, अन्तः करण शब्द अहङ्कार का बोधक है, गिरित्र श्रीरुद्र का बोधक है। गधे से घोड़ी के पेट से उत्पन्न होने वाले बच्चे को खच्चर कहते हैं ॥३५॥

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः । गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥

अन्वयः— वयांसि तद् विचित्रं व्याकरणम्, मनुः मनीषा, मनुजः निवासः गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीः, असुरानीकवीर्यः ॥३६॥

अनुवाद विभिन्न प्रकार के पक्षिगण उन श्रीभगवान के विचित्र रचना कौशल हैं। मनु उनकी बुद्धि हैं, मनुष्य उनके निवास स्थान हैं। गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ परमात्मा के स्वरों और उनकी स्मृतियाँ हैं। असूर समूह उनका पराक्रम है।।३६॥

भावार्थ दीपिका

वयांसि पक्षिणः । तस्य व्याकरणं 'नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुत्युक्तं शिल्पनैपुणम् । यथाहुः-'येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः । मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यिति ।।' इति । मनुः स्वायंभुवः, मनीषा बुद्धिः, मनुजः पुरुषः, निवास आश्रयः । 'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' इति श्रुतेः । गन्धर्वादीनां द्वन्द्वैक्यम् । गन्धर्वादयः स्वरस्मृतीः। षड्जादिस्वरस्मृतय इत्यर्थः । असुरानीकं वीर्यं यस्य सः । 'स्वरः स्मृतिरसुरानीकवर्यः' इति पाठे गन्धर्वादयः स्वरः असुरसमूहश्रेष्ठः प्रह्लादः स्मृति स्तस्येति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के पक्षीगण ही उनके व्याकरण हैं 'नाम रूपे व्याकरवाणि' श्रुति में बतलायी गयी उनकी शिल्पकला हैं, कहा भी गया है 'येन शुक्लीकृताः' इत्यादि अर्थात् जिन परमात्मा ने हंसों को श्रेत बनाया शुक्रपक्षियों को हरा बनाया मयूर को चित्र-विचित्र बनाया, वे ही परमात्मा तुम्हारी वृत्ति का विधान करेंगे । मनु

शब्द से स्वायम्भुव मनु को कहा गया है। वे ही परमात्मा की बुद्धि है, मनु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य उनके निवास स्थान हैं। श्रुति भी कहती है **पुरुषत्वे चा विस्तारामात्मा** पुरुषत्व में आत्मा विस्तृत नहीं है। गन्धर्व विद्याधर चारणाप्सर: में समाहार द्वन्द समास होने के कारण एक वचनान्त प्रयोग हुआ है। गन्धर्व इत्यादि परमात्मा की षड्ज आदि सातो स्वरों की स्मृतियाँ हैं। असुरों की सेना ही परमात्मा का पराक्रम है। जहाँ पर स्वर: स्मृतिरसुरानीकवर्य: पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि गन्धर्व आदि स्वर है, असुर समूह में श्रेष्ठ प्रह्लाद स्मृति हैं॥३६॥

ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरुरङ्घिश्रितकृष्णवर्णः । नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥

अन्वयः — ब्रह्माननं, क्षत्रभुजः महात्मा, विड् ऊरू अङ्क्षिष्ठित कृष्णवर्णः, नाना भिघामभीज्यगणोपपत्रः द्रव्यात्मकः वितानयोगः कर्म ।।३७।।

अनुवाद — ब्राह्मण ही परमात्मा के मुख है, क्षत्रिय ही भुजाएँ हैं, ऐसे परमात्मा की वैश्य ही जघाएँ हैं कृष्ण वर्ण का शूद्र उनके पैर हैं तथा अनेक नाम वाले अभीज्या (देवगण) वसु रुद्र इत्यादि देवताओं के जो गण है उनसे युक्त जो द्रव्यात्मक यज्ञ है, वही परमात्मा का कार्य है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म विप्रस्तस्याननं मुखम् । क्षत्रं क्षत्रियो भुजौ यस्य । विड् वैश्य ऊरू यस्य । अङ्घ्रिश्रतः कृष्णवर्णः शूद्रो यस्य। नानाभिधा नामानि येषां ते च ते अभीज्या देवास्तेषां गणैर्वसुरुद्रादिभिरुपपन्नो युक्तो द्रव्यात्मको हविःसाध्यो वितानयोगो यज्ञप्रयोगस्तस्य कर्म कार्यम् । आवश्यकोऽभिप्रेत इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण ही उस परमात्मा के मुख हैं, क्षत्रिय ही भुजा हैं, महान् आत्मा वैश्य परमात्मा की दोनों जङ्घाएँ है । उनके पैरों में रहने वाला कृष्ण वर्ण ही शूद्र हैं । अनेक नामों वाले देवताओं का जो वसु, रुद्र इत्यादि समूह है उन सबों से युक्त द्रव्यात्मक यज्ञ ही परमात्मा का कर्म है । अर्थात् वह उनको आवश्यक रूप से अभिप्रेत है ॥३७॥

इयानसाविश्वरिवयहस्य यः संनिवेशः कथितो मया ते । संघार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥३८॥

अन्वयः— इयान् असौ, ईश्वर विग्रहस्य यः संनिवेशः ते मया कथितः अस्मिन् स्थविष्ठे वपुषि स्वबुद्ध्या मनः संधार्यते। यतः किञ्चित् न अस्ति ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

इयानेतावान्सित्रवेशोऽवयवसंस्थानम् । अस्मिन्स्वबुद्ध्या मनः संधार्यते मुमुक्षुभिः । यतो व्यतिरिक्तं किंचित्रास्ति तस्मिन् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

विश्व शरीरक परमात्मा के अवयवों का इस अध्याय के छब्बीसवें श्लोक से लेकर सैंतीसवें श्लोक तक विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि विराट् पुरुष परमात्मा के स्थूल शरीर के इतने ही अङ्ग है। इस स्थूल शरीर में मन को लगने को धारणा कहते हैं। इन वर्णित अवयवों से भिन्न कोई भी अवयव इस शरीर में नहीं हैं। 13८।।

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः । तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्थानुवर्णने प्रथमोऽध्याय: ।।१।।

अन्वयः— स्वप्नजनेक्षिता एकः यथा सः सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा तं सत्यम्, आनन्दनिधिं भजेत अन्यत्र न सज्जेत् यतः आत्मपातः ।।३९।।

अनुवाद जिस तरह स्वप्न देखने वाला पुरुष एक होता है, और वह स्वापकालिक अनेक पुरुषों को देखता है, उसी तरह परमात्मा भी एक हैं, वे ही सबों की बुद्धियों की वृत्ति के द्वारा सबकुछ अनुभव करते हैं । उन सत्य स्वरूप आनन्दिनिध परमात्मा का ही भजन करना चाहिए । उससे भिन्न किसी भी वस्तु में वह आसक्त न हो, क्यांकि दूसरी वस्तु की धारणा करने पर तो आत्मपात की सम्भावना होती है ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के महापुरुष संस्थानुवर्णन नामक पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं चित्तस्थैर्यार्थं विराड्देहजीवेश्वराणामभेदेनोपासनमुक्तं, तत्र तु देहजीवावीश्वरे प्रविलाप्य स एव ध्येय इति निर्धारयित– स इति । सर्वेषां धीवृत्तिभिरनुभूत सर्वं येन स एक एव सर्वान्तर आत्मा तमेव सत्यं भजेत । अन्यत्रोपलक्षणे न सज्जेत् । यत आसङ्गादात्मनः पातः संसारो भवति । एकस्य तत्तदिन्द्रियैः सर्वानुभूतौ दृष्टान्तः–स्वप्रजनानामीक्षिता यथेति । स्वप्रे हि कदाचिद्वहृन्देहान्प्रकल्प्य जीवस्तत्तदिन्द्रियैः सर्वं पश्यित तद्वत् । ईश्वरस्य तु विद्याशक्तित्वात्र बन्धः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीाकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से चित्त की स्थिरता के लिए विराट् देह, जीव तथा ईश्वर की अभेद पूर्वक उपासना बतलायी गयी। उसमें भी देह तथा जीव को अच्छी तरह से ईश्वर में ही लीन करके ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए इस बात का निर्धारण करते हुए शुकदेवजी 'स सर्वधीवृत्ति' इत्यादि श्लोक को कहते हैं। सबों की ज्ञानकी इन्द्रिय स्वरूप वृत्तियों के द्वारा सबका अनुभव करने वाले परमात्मा एक ही हैं। वे ही सबों की अन्तरात्मा है। अतएव उन आनन्दिनिध सत्य स्वरूप आत्मा का भजन करना चाहिए। परमात्मा के उपलक्षणभूत किसी भी दूसरी वस्तु में आसिक्त न रखे। क्योंकि परमात्मशरीरव्यतिरिक्त में आसिक्त होने पर आत्मपात होता है।

एक ही परमात्मा सबों की इन्द्रियों के द्वारा सबों का अनुभव करता है। इसमें दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा जैसे स्वप्न में दिखायी देने वाले लोगों का द्रष्टा एक ही पुरुष होता है। वह स्वप्न काल में अनेक देहों की कल्पना करके अपनी विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा सब कुछ देखता हैं, उसी तरह परमात्मा एक ही हैं परमात्मा सबों को देखता है। ईश्वर चूकि विद्या शक्ति से सम्पन्न होता है अतएव उसको संसार का बन्धन नहीं होता है।।३९॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

द्वितीय अध्याय

श्रीभगवान् के स्थूल एवं सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति एवं सद्योमुक्ति का वर्णन

श्रीशुक उवाच

एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् । तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥१॥

अन्वयः— एवं धारणया तुष्टात् हरेः पुरा नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य आत्मयोनिः अप्ययात् प्राक् इदं यथा तमथ अमोघ दृष्टिः ससर्ज ।।१।।

अनुवाद— इस तरह से धारण के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से सृष्टि के प्रारम्भ में नष्ट हुयी सृष्टि विषयिणी स्मृति को प्राप्त करके अमोघ दृष्टि सम्पन्न ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी प्रकार से इसकी रचना किए ।।१।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु ततः स्थूलधारणातो जितं मनः । सर्वसाक्षिणि सर्वेशे विष्णौ धार्यमितीयंते ।।१।। दृश्यालम्बनरूपैवमुक्ता वैराजधारणा इहोच्यते तु तत्साध्या सर्वान्तर्यामिधारणा ।।२।। तत्र तावत्पूर्वोक्तधारणाया अवान्तरफलमाह । एवं या धारणा तया तुष्टाद्धरेः पुरा प्रलयसमये नष्टां सृष्टिस्मृतिं प्रत्यवरुध्य लब्ध्वा ब्रह्मा अप्ययात्प्रागिदं विश्वं यथासीत्तथा ससर्ज । व्यवसायात्मिका बुद्धिर्यस्य सः । अत एवामोघा दृष्टिर्यस्येति । अतस्तया धारणया विश्वसृष्टिसामर्थ्यं भवति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे स्कन्ध के दूसरे अध्याय में स्थूल धारणा के द्वारा अपने मन को वश में करे। अतएव सबों का साक्षी तथा सबों के स्वामी भगवान् विष्णु की धारणा करनी चाहिए यह कहा गया है ॥१॥

दृश्यालम्बन ॰ इत्यादि - इस तरह दृश्य आलम्बन रूपा वैराज की धारणा कही गयी है । इस अध्याय में वैराज धारणा के द्वारा प्राप्त होने वाली सर्वन्तर्यामी परमात्मा की धारणा बतलायी जा रही है ॥२॥

एवंतावत् इत्यादि - सर्वप्रथम पूर्वोक्त धारणा के अवान्तर फल को बतलाया जा रहा है। इस तरह की स्थूल धारणा जो बतलायी गयी है उसके द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से प्रलय के काल में जो मृष्टि विषयिणी स्मृति नष्ट हो गयी थी उसे प्राप्त करके ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी तरह के विश्व की सृष्टि उन्होंने कर दी; क्योंकि ब्रह्माजी निश्चयात्मिका बुद्धि से सम्पन्न थे। उसी धारणा से जगत् की सृष्टि का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।।१।।

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति घीरपार्थैः । परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥२॥

अन्वयः— शाब्दस्य हि ब्रह्मणः एष पन्था यत् अपार्थे नामिभः धीः ध्यायित । तत्र मायामये वासनया शयानः परिभ्रमन् अर्थान् न विन्दते ।।२।।

अनुवाद — वेदों की ऐसी वर्णन शैली है कि उसके कारण साधक अर्थशून्य स्वर्गीद नामों के द्वारा विभिन्न प्रकार की इच्छाओं को करता है। वह मायामय मार्ग में सुख की वासना से स्वप्न देखने के समान विभिन्न लोकों में जाकर भी निर्दोष सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उपासनाफलादिपि विरक्तस्य शुद्धात्मधारणायामिधकारः । अतो वैराग्यार्थं सर्वं कर्मफलं निन्दित । शाब्दं शब्दमयम्। ब्रह्म वेदः । तस्य एष पन्थाः कर्मफलबोधप्रकारः । कोऽसौ । अर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामिभः साधकस्य धीर्ध्यायित तत्तिदच्छां करोतीति यत् । अपार्थत्वमेवाह । तत्र मायामये पिथ सुखमिति वासनया शयानः स्वप्नान्पश्यन्निव परिश्रमन्नर्थात्र विन्दित । तत्तल्लोकं प्राप्तोऽपि निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

शुद्ध आत्मा की धारणा में उसी का अधिकार होता है जो उपासना के फल को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है। अतएव वैराग्य की प्राप्ति के लिए वे सभी कमों के फलों की निन्दा करते हैं। वेद को ही शब्दमय ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है। उस वेद का यही मार्ग है कि वह तत्-तत् कमों के फलों का वर्णन करता है। अर्थशून्य ही स्वर्ग इत्यादि नामों से साधक की बुद्धि विभिन्न प्रकार के सुखों की प्राप्ति की इच्छा करती है। उसके द्वारा की जाने वाली इच्छा को निरर्थक बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं। उस मायामय मार्ग में सुख की वासना से सोए हुए स्वप्न द्रष्टा जैसे स्वप्न देखता है, उसी तरह तत्-तत् लोकों में भ्रमण करता हुआ जीव शुद्ध सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है।।२।।

अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः । सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥३॥

अन्वयः अतः अप्रमत्तः व्यवसायबुद्धिः कविः नामसु यावदर्थः यतेत । तत्र परिश्रमं समीक्षमाणः अन्यथासिद्ध अर्थे न यतेत ॥३॥

अनुवाद — अतएव प्रमाद रहित तथा निश्चयात्मिका बुद्धि सम्पन्न विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह नाम मात्र वालों से उतना ही व्यवहार करे जितना शरीर निर्वाह के लिए अपेक्षित हो । यदि प्रारब्धवशात् संसार के पदार्थ अपने आप मिल जायँ तो वह उनको प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले परिश्रम को व्यर्थ समझकर उनकी प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वथा कर्मफलत्यागे सद्य एव देहपात: स्यादित्याशङ्क्र्याह । अत: किवर्नामसु नाममात्रेषु भोग्येषु यावताऽर्थेनार्थो देहिनर्वाहो यस्य स तथाभूत: स्यात् । अप्रमत्तस्तावन्मात्रेऽप्यनासक्त: । व्यवसायबुद्धिर्नेदं सुखिमिति निश्चयवान् । तदापि तत्र तिस्मन्नर्थेऽन्यथैव सिद्धे सित तत्र यत्ने परिश्रमं पश्यत्र यतेत ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि सभी कर्मों के फल का त्याग कर दिया जाय तब तो शीघ्र ही शरीर का पात हो जायेगा । इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं अतएव विज्ञपुरुष को चाहिए कि वह केवल नाम प्रधान भोग्य वस्तुओं में उतना ही आसक्त हो जितने से उसके शरीर का निर्वाह हो जाय । और उन प्राप्त वस्तुओं में भी उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। उसको यह मन में निश्चय रखना चाहिए कि वस्तुत: इन वस्तुओं में सुख नहीं है । वह भी वस्तु यदि अपने आप प्राप्त हो जाय तो उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास किए जाने में होने वाले परिश्रम को देखकर उसके लिए प्रयास न करें ॥३॥

सत्यां क्षितौ किं किशपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिन्धे ह्युपबर्हणैः किम् । सत्यञ्जलौ किं पुरुषाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥४॥

अन्वय:— क्षितौ सत्यां किशपो: प्रयासै: किम् ? बाहौ सर्वसिद्धे हि उपबर्हणै: किम् ? सत्यञ्जलौ पुरुधा अन्नपात्र्या किम् ? दिग् बल्कलादौ सति दुकूलै: किम् ?।।४।। अनुवाद — यदि सोनें के लिए पृथिवी अपने आप प्राप्त है तो फिर शय्या प्राप्त करने के लिए प्रयास करने से क्या लाभ है ? यदि भुजाएँ स्वतः प्राप्त हैं तो फिर तिकयों की क्या आवश्यकता है ? यदि परमात्मा ने अञ्जलि रूपी पात्र प्रदान ही किया है तो बहुत अधिक वर्तनों को प्राप्त करना व्यर्थ है । जब दिगम्बर रहा जा सकता है अथवा बल्कल धारण करके रहा जा सकता है तो वस्त्रों की क्या आवश्यकता है ?।।४।।

भावार्थ दीपिका

अन्यथा सिद्धिमाह द्वाभ्याम् सत्यामिति । कशिपोः शय्यायाः । स्वतःसिद्धे बाहौ सति उपबर्हणैरुच्छीर्षकैः । पुरुधा बहुप्रकारयाऽन्नपात्र्या भोजनपात्रेण ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने को व्यर्थ बतलाते हुए शुकदेवजी सत्याम् इत्यादि दो श्लोकों को कहते हैं । किशपु शब्द शय्या का बोधक है । अपने आप प्राप्त भुजाओं के रहने पर तिकया के लिए प्रयास करना व्यर्थ है । उपबर्हण शब्द तिकया का बोधक है । अन्नपात्री शब्द भोजन पात्र का बोधक है ।।४।।

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् । रुद्धा गुहाः किमजितोऽवित नापसन्नान् कस्माद्धजन्ति कवयो धनदुर्मदान्यान् ॥५॥

अन्वयः— पथि चीराणि न सन्ति किम्, परभृतः अङ्घ्रिपाः भिक्षां न दिशन्ति किम् ? सरितः अपि अशुष्यन् । गुहाः रुद्धा किम् । उपसन्नान् अजितः न अवित किम् । कवयः धनदुर्मदान्धान् कस्माद् भजन्ति ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

ननु दिक्सद्भावो नाम नग्नत्वमेव, बल्कलमत्रं तोयं वासस्थानं तु याच्ञाप्रयत्नं विना कथं प्राप्येत तत्राह । चीराणि वस्त्रखण्डानि परान्बिभ्रति पुष्णन्ति फलादिभिर्ये । गुहाः गिरिदर्यः । ननु कदाचिदेषामलाभे किं कार्यं तत्राह । अजितो हरिरुपसन्नान् शरणागतान्किं नावति न रक्षति । किंशब्दस्य पूर्वत्रापि संबन्धः । धनेन यो दुर्मदस्तेनान्धान्नष्टविवेकान् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि आपने दिशाओं के सद्भाव को बतलाकर दिगम्बर का उपदेश दिया है अतएव उससे तो काम चल सकता है। किन्तु बल्कलवस्त्र, अन्न, जल और निवास स्थानकी प्राप्ति तो बिना माँगे नहीं हो सकती है। अतएव उसके लिए तो याचना करनी ही होगी तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं वस्त्र के फटे पुराने टुकड़े रास्ते में पड़े ही रहते हैं, उनसे भी काम चलाया जा सकता है। वृक्षों का स्वभाव ही है कि दूसरों का भरण व पोषण करते रहते हैं। वे अपने पास में आये हुए मनुष्यों को फल तथा पुष्प आदि की भिक्षा प्रदान करते रहते है। उससे भोजन का काम चल जायेगा रहने के लिए पर्वतों की गुफाएँ खुली हुयी हैं उनमें रहा जा सकता है।

ननु कदाचिदेषाम्० इत्यादि- यदि कहें कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि ये वस्तुएँ उपलब्ध न हों

पायें। ऐसी स्थिति में याचना तो करनी ही होगी। तो इसके उत्तर में शुकदेवजी पूछते हैं कि क्या शरणागत जीवों की रक्षा करना भगवान् छोड़ दिए हैं क्या ? इससे पहले भी सर्वत्र किम् शब्द का सम्बन्ध करना चाहिए। ये सारी आवश्यकता की वस्तुएँ यदि अपने आप प्राप्त है तो जो लोग धन के मद से मदमत्त हैं जिनका विवेक नष्ट हो गया है, ऐसे धनिकों की सेवा विज्ञ परुष भी क्यों करते हैं ?॥५॥

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः । तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥६॥

अन्वयः— एवं आत्मा, प्रियः अर्थः अनन्तः भगवान् स्वचित्ते स्वतः एव सिद्धः । निर्वृतः नियतार्थः तं भजेत । यत्र संसार हेतूपरमश्च ।।६।।

अनुवाद इस तरह से सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप हाने के कारण अत्यन्त प्रियतम अनन्त परमात्मा हृदय में अपने आप विराजमान हैं। अतएव संसार से विरक्त होकर उनकी ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उनकी सेवा करने से इस संसार के बन्धन का कारण जो अज्ञान है उसका अपने आप नाश हो जाता है।।६।।

भावार्थ दीपिका

तदा तेन किं कर्तव्यं हरिस्तु सेव्य इत्याह । एवं विरक्तः संस्तं भजेत । भजनीयत्वे हेतवः-स्वचित्ते स्वत एव सिद्धः। यत आत्मा अतएव प्रियः । प्रियस्य च सेवा सुखरूपैव । अर्थः सत्यो न त्वनात्मवन्मिथ्या । भगवान् भजनीयगुणश्च अनन्तश्च नित्यः । य एवं भूतस्तं भजेत् नियतार्थो निश्चितस्वरूपः । तदनुभवानन्देन निर्वृतः सिन्निति स्वतः सुखात्मत्वं दर्शितम् । किंच यत्र यस्मिन्भजने सित संसारहेतोरिवद्याया उपरमो नाशो भवति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई पूछे तो फिर क्या करना चाहिए ? तो उसका उत्तर है कि आत्मकल्याण चाहने वाले को श्रीहरि की ही सेवा करनी चाहिए । उपर्युक्त प्रकार से संसार से विरक्त हो जाना चाहिए । श्रीभगवान् इसिलए सेवनीय हैं कि वे अपने आप अन्त:करण में विराजमान हैं । उसका कारण है कि वे ही आत्मा है । आत्मा से बढ़कर कोई भी दूसरी वस्तु प्रिय नहीं होती है । वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण अनन्त हैं वे देश काल एवं वस्तु की सीमा से परे हैं । उन प्रियतम परमात्मा की सेवा सुख स्वरूप होती है । वे सत्य हैं । आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं के समान मिथ्या नहीं है ।

भगवान् भजनीय गुणश्च० इत्यादि- भगवान् में सेवोचित गुण ये हैं कि वे अनन्त हैं और नित्य हैं इस प्रकार के परमात्मा की सेवा करनी चाहिए। वे निश्चित स्वरूप वालें हैं। श्रीभगवान् की सेवा से उत्पन्न आनन्द से उपासक परमानन्द सम्पन्न हो जाता है। यह कहकर शुकदेवजी ने बतलाया कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से सुखात्मक हैं। दूसरी बात यह है कि उन परमात्मा की सेवा करने से संसार रूपी बन्धन का कारण अज्ञान भी विनष्ट हो जाता है।।६।।

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युझयात् । पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥७॥

अन्वयः— वैतरण्यां पतितं स्वकर्मजान् परितापान् जुषाणम् जनं पश्यन् पशून् ऋते कः नाम तां परानुचिन्ताम् अनादृत्य असतीम् युञ्जयात् ॥७॥

अनुवाद— यम के द्वार पर विद्यमान वैतरणी नदी में गिरे हुए तथा अपने किए हुए कर्मों के फल को भोगने वाले मनुष्य को देखकर भी पशुओं को छोड़कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उन परमात्मा की धारणा रूपी चिन्ता का परित्याग करके असत् विषयों के भोग का चिन्तन करेगा ? क्योंकि विायोपभोग का ही फल है वैतरणी नदी में गिरकर अनेक प्रकार के कर्म फलों को भोगना ॥७॥

SECTION

भावार्थ दीपिका

एतदेवान्यचिन्तानिन्दया द्रढयित-क इति । तां तथाभूतां परस्य हरेरनुचिन्तां धारणामनादृत्य पशून्कर्मजडान्विना । 'यथा पशुरेवायं स देवानाम्' इति श्रुतेः । असतीं विषयचिन्तां को नाम कुर्यात् । तया चिन्तया वैतरण्यां पिततं, तत्र च स्वकर्मजानाध्यात्मिकादिक्लेशान्सेवमानं जनं पश्यन् । वैतरणी यमस्य द्वारस्था नदी तत्तुल्यत्वात्संसृतिर्वैतरणी ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस बात का समर्थन अन्य चिन्ताओं की निन्दा के माध्यम से कस्ताम् इत्यादि श्लोक द्वारा करते हैं। पशुओं के समान तत्-तत् कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले कर्म जड़ों को छोड़ कर दूसरा कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उपर्युक्त प्रकार की परमात्मानुचिन्तन रूपी धारणा का परित्याग करके अपने को असत् (मिथ्या) विषयों की सेवा में लगा देगा ? केवल कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले की निन्दा करती हुयी श्रुति भी कहती है 'यथा पशुरेवायं स देवानाम्' वह कर्मों के ही करने में लगे रहने वाला देवताओं के पशु के समान है । उन असत् कर्मों की चिन्ता में कौन लग सकता है ? कर्मों का ही निरन्तर चिन्तन करने के कारण वे जीव अपने कर्मजन्य अनेक प्रकार के क्लेशों को वैतरणी नदी में गिरकर भोगते रहते हैं। ऐसे जीवों को देखकर भी वह कैसे केवल कर्मपरायण हो सकता है ? यम के द्वार पर विद्यमान नदी का नाम वैतरणी है । उसमें गिरकर वे जीव अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते हैं। उस वैतरणी नदी के ही समान यह सृष्टि रूपी वैतरणी है ॥७॥

केचित्स्वदेहान्तर्हदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् । चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

अन्वयः— केचित् स्वदेहान्तः हृदयावकाशे वसन्तम् प्रादेशमात्रं कञ्जरथाङ्गाशङ्ख्यगदाधरं चतुर्भुजं पुरुषं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

अनुवाद — कुछ ऐसे भी भाग्यवान् साधक हैं जो अपने शरीर के भीतर विद्यमान हृदयाकाश में रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीर वाले, कमल, चक्र, शङ्ख तथा गदा धारण करने वाले चार भुजाओं वाले पुरुष परमात्मा का धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तामेवं धारणां सिवशेषणामाह-केचिदिति पिड्भः । स्वदेहस्यान्तर्मध्ये यद्भृदयं तत्र योऽवकाशस्तस्मिन्वसन्तम् । प्रादेशस्तर्जन्यङ्गृष्ठयोर्विस्तारः, स एव मात्रा प्रमाणं यस्येति हृदयपरिमाणं तत्रोपचर्यते । कञ्जं पद्मम् । रथाङ्गं चक्रम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उस विशेषण विशिष्ट धारणा का केचित्० इत्यादि छह श्लोकों के द्वारा वर्णन करते हैं। अपने शरीर के भीतर जो हदयाकाश है उसमें रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीरक, हृदय के भीतर जो अवकाश है उसमें रहने वाले शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाले परमात्मा का ध्यान करने वाले कुछ ही भाग्यवान पुरुष हैं। अङ्गृठे से लेकर तर्जनी पर्यन्त की दूरी को प्रादेश मात्र कहते है। हृदय के भीतर रहने वाले अन्तर्यामी परमात्मा का भी परिमाण प्रादेश मात्र ही है।।८।।

प्रसन्नवक्त्रं निलनायतेक्षणं कदम्बिकञ्जल्किपशङ्गवाससम् । लसन्महारत्निहरण्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्निकरीटकुण्डलम् ॥९॥

अन्वयः प्रसन्नवक्त्रं, निलनायतेक्षणम्, कदम्बिकञ्चलकिपशङ्गवाससम्, लसन्महारत्निहरण्मयाङ्गदम् स्फुरन् महारत्न किरीट कुण्डलम् स्मरन्ति ॥९॥ अनुवाद— वे साधक प्रसन्नमुख वाले, कमल दल के समान सुन्दर तथा बड़े-बड़े नेत्रों वाले, कदम्ब पुष्प के समान पीताम्बर धारण किए हुए, जड़े गये महारत्नों से सुशोभित बिजाइठ धारण किए हुए एवं देदीप्यमान रत्न जटित किरीट तथा कुण्डल धारण किए हुए श्रीभगवान् का अपने हार्दाकाश में स्मरण करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

निलनं पद्मं तद्वत्प्रसन्ने आयते दीर्घे ईक्षणे यस्य । कदम्बकुसुमस्य किञ्जल्काः केसरास्तद्वित्पशङ्गे पीते वाससी यस्य । लसन्ति महारत्नानि येषु तानि सुवर्णमयान्यङ्गदानि यस्य । स्फुरन्ति च तानि महारत्नानि च तन्मयानि किरीटकुण्डलानि यस्य ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रयुक्त सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं। हार्दाकाश में विराजमान श्रीभगवान् का मुख प्रसन्न एवं सुन्दर है। जिस तरह विकसित कमल के दल चौड़े और सुन्दर होते हैं उसी तरह श्रीभगवान् के नेत्र भी विस्तृत और मनोहर हैं, यह निलनायतेक्षणम् पद का अर्थ है। कदम्ब पुष्प के पराग जिस तरह पीले होते हैं, उसी तरह के पीले पीताम्बरों को भगवान् धारण किए हुए हैं। वे अपनी भुजाओं में जिन विजाइठों को धारण किए हुए उनमें अत्यन्त मूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं। उनके किरीट और कुण्डलों के महान् रत्न चमक रहे हैं, इस प्रकार के श्रीभगवान् की धारणा साधक अपने हार्दाकाश में करते हैं।।९।।

उन्निद्रहृत्यङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थपितपादपल्लवम् । श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरलकन्थरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥१०॥

अन्वयः - उत्रिद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपाद पल्लवम् श्रीलक्ष्मणम् कौस्तुभरत्नकन्धरं अम्लानलक्ष्म्या वनमालया अचितम् पुरुषं स्मर्रान्त ।।१०।।

अनुवाद योगेश्वरों ने अपने विकसित हृदय कमल की कर्णिका रूपी स्थान पर श्रीभगवान् के चरण कमलों को स्थापित कर रखा है। श्रीभगवान् श्रीवत्स नामक लक्ष्मीजी के चिह्न से सुशोभित हैं, उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है तथा तरोताजी शोभा से युक्त वनमाला को धारण किए हुए श्रीभगवान् का वे साधक अपने हृदय में धारणा के द्वारा चिन्तन करते हैं।।१०।।

भावार्थ दीपिका

उन्निद्रं विकिततं यद्धत्पङ्कजं तस्य कर्णिकैवाऽऽलयः स्थानं तिस्मन् । योगेश्वरैरास्थापितौ पादपल्लवौ यस्य । श्रीरेव लक्ष्म चिह्नं तद्युक्तम् । पामादिविहितो मत्वर्थीयो नप्रत्ययः । कौस्तुभरत्नं कन्घरायां यस्य । अम्लाना लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तया वनमालया अचितं व्याप्तम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के भी सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं। इन सभी पदों का विग्रह भी भावार्थ दीपिका में स्पष्ट है। वेदों में हृदय को कमलाकृति बतलाया गया है वह हृदय विकिसत कमल के समान है। उसके बीच में विद्यमान जो किर्णिका है वही श्रीभगवन् का निवास स्थान है। योगेश्वरों ने अपने उस हृदय रूपी कमल की किर्णिका पर श्रीभगवान के लाल-लाल पल्लवों के समान अत्यन्त कोमल चरणों को स्थापित कर दिया है। उन श्रीभगवान् के वक्षस्थल में श्रीलक्ष्मी का पीतवर्ण का चिह्न विद्यमान है। तथा उनके गले में कौस्तुभ मिण लटक रही है। वे भगवान् जिस वनमाला को धारण किए हैं उसकी शोभा बिल्कुल तरोताजी है। उस माला से सुशोभित भगवान् की धारणा साधक जन किया करते हैं। १०।।

विभूषितं मेखलयाऽङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः । स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥११॥

अन्वयः— मेखलया, महाधनै: अङ्गुलीयकै, महाधनै: नृपुर कङ्कणादिभि: विभूषितम्, स्निग्धामलकुञ्चितनीलकुन्तलै: विरोचमानं हासपेशलम् आननम् पुरुषं हृदयावकाशे धारणया स्मरन्ति ।।११।।

अनुवाद कमर में करधनी, अङ्गुलियों में बहुमूल्य अङ्गूठी, चरणों में नुपूर और हाथ में कड्गन आदि आभूषणों को धारण किए हुए चिकने स्वच्छ घुघराले तथा काले केशों से सुशोभित एवं मन्दमुसकान से मनोहर मुख वाले श्रीभगवान् का वे अपने हार्दाकाश में धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

स्निग्घत्वादिविशिष्टैः कुन्तलैर्विरोचमाने आनने यो हासस्तेन पेशलं सुन्दरम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

काले घुंघराले केश जिस पर लटक आये हैं ऐसे मुस्कान से मनोहर बने मुख से युक्त श्रीभगवान् की धारणा करे ॥११॥

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् । ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥

अन्वयः— अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् चिन्तामयम् एनम् ईश्वरम् मनः यावद् धारणया अवतिष्ठेत् तावत् ईक्षेत् ।।१२।।

अनुवाद— लीला पूर्ण उन्मुक्त हास्य एवं अवलोकन से सुशोभित भौहों के द्वारा जिनका बहुत अनुग्रह सूचित होता है ऐसे चिन्तन के द्वारा आविर्भूत श्रीभगवान् का तब तक साधक को दर्शन करते रहना चाहिए जब तक मन धारणा के द्वारा उनमें लगा रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अदीनमुदारं यल्लीलाहसितं तेन यदीक्षां तस्मिन्नुल्लसन्तो ये भ्रूभङ्गा भ्रूविक्षेपास्तै: संसूचितो भूरिरनुग्रहो येन । चिन्तामयं चिन्तया आविर्भवन्तम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक का पूर्वाद्ध एक ही पद है, और वह श्रीभगवान् का विशेषण है। इसका विग्रह भी भावार्य दीपिका में दिया गया है। इस पद का अभिप्राय है कि श्रीभगवान लीला पूर्वक उन्मुक्त भाव से मुसकुरा रहे हैं। उसके कारण उनकी उठी हुयी जो सुन्दर भौहें हैं उसके द्वारा वे अपने भक्तों पर विपुल मात्रा में अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं। धारणा के समय इस प्रकार से हृदय में आविर्भूत परमात्मा का तब तक ध्यान के माध्यम से दर्शन करते रहना चाहिए जब तक कि धारणा के द्वारा मन उनमें लगा रहे।।१२॥

एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः । जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥१३॥

अन्वयः— गदाभृतः पादादिहसितं यावत् एकैकशः अङ्गानि धिया अनुभावयेत् । यथा-यथा धीः शुद्धयित तथा-तथा जितं-जितं स्थानम् अपोह्य परं परं घारयेत् ।।१३।।

अनुवाद - श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुसकान युक्त मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग का बुद्धि के द्वारा ध्यान करना

चाहिए, जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होकर स्थिर होती जाती है, वैसे ही वैसे श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से प्रकाशित होने लगे उस-उस को छोड़कर उसके ऊपर के घुटना जङ्घा इत्यादि अङ्गों की धारणा करता जाय ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अस्यैव ध्यानमाह-एकैकश इति । अनुभावयेद्ध्यायेत् । यद्यज्जितमयत्नतः स्फुरितं पादगुल्फादिस्थानमवयवस्तत्तदपोह्य त्यक्त्वा परं परं जङ्क्वाजान्वादि धारयेद्ध्यायेत् शुध्यति तस्मित्रिश्चला भवति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ही ध्यान को एकैकशः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी बतलाते हैं। साधक को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग की धारणा करे। ध्यान के अभ्यास के कारण श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से बुद्धि में प्रकाशित होने लगे, उसको छोड़कर उससे ऊपर के अङ्गों का ध्यान करना चाहिए श्रीभगवान् की धारणा से जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जाती है, वैसे ही वैसे चित्त स्थिर होता जाता है।।१३।।

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्त्रिश्चेश्चरे द्रष्टरि भक्तियोगः । तावतस्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥

अन्वयः— यावत् अस्मिन् परावरे द्रष्टरि विश्वेश्वरे भक्तियोगः न जायेत तावत् क्रियावसाने पुरुषस्य स्थवीयः रूपं प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥

अनुवाद राजन् ! जब तक स्वेतर समस्त जीवों से श्रेष्ठ, द्रष्टा, तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक परमात्मा में साधक का प्रेम पूर्ण भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक वह अपनी नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के अन्त में परम पुरुष परमात्मा के इस स्थूल रूप का प्रयत्न पूर्वक स्मरण करता रहे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तवैराजधारणाया एतद्भारणाङ्गत्वमाह-यावदिति । परे ब्रह्मादयोऽवरे यस्मात् । कुतः विश्वेश्वरे द्रष्टरि न तु दृश्ये, चैतन्यधनत्वात् । भक्तियोगः प्रेमलक्षणः । क्रियावसाने आवश्यककर्मानुष्ठानानन्तरम् । अनेन कर्मापि भक्तियोगपर्यन्तमेवेत्युक्तम्। प्रयतो नियमतत्परः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त वैराज धारण का यह धारणा अङ्ग है इस बात को यावञ्च० इत्यादि श्लोक से शुकदेवजी ने बतलाया है। श्रीभगवान् को परावर इस लिए कहा गया है कि ब्रह्मा इत्यादि देवता भी श्रीभगवान् की अपेक्षा हीन कोटि के हैं। वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। वे द्रष्टा है, दृश्य नहीं है क्योंकि वे ज्ञान घन स्वरूप हैं उन परमात्मा में जब तक भक्तियोग साधक का नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक आवश्यक कर्मों के अनुष्ठान के पश्चात् नियम पूर्वक परमात्मा के इस स्थूल रूप का ध्यान करना चाहिए। यह कहकर उन्होंने यह बतलाया कि कर्मों का अनुष्ठान भी तब तक ही करना चाहिए जब तक भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय। उसके पश्चात् तो सभी कर्मों का त्याग ही हो जाता है।।१४।।

स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् । काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥

अन्वयः — अङ्ग ! यदा यतिः इमम् लोकम् जिहासुः तदा देशे काले च मनः न सज्जयेत अपितु सुखं स्थिरं च आसनं आश्रितः जितासुः मनसा प्राणं नियच्छेत् ॥१५॥ अनुवाद— राजन् जब घर से निकला हुआ योगी, इस लोक का परित्याग करना चाहे तो वह तीर्थादि पुण्य स्थानों तथा उत्तरायण आदि काल विशेष में मन को आसक्त न करे, क्योंकि देश और काल योगी की सिद्धि (मुक्ति प्राप्ति) के साधन नहीं हैं अपितु वह सुख पूर्वक स्थिर आसन पर बैठकर जितेन्द्रिय होकर अपने प्राणों का जीते ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावदासन्नमृत्योः पुंसः कृत्यमुक्तम्, इदानीं तस्यैव स्वयं देहं त्यक्तुमिच्छतः कृत्यमाह-स्थिरमिति सार्धैश्चतुर्भिः । अङ्ग हे राजन्, एवंभूतो यतिर्यदा इमं लोकं देहं जिहासुर्हातुमिच्छति, तदा देशे पुण्यक्षेत्रे काले चोत्तरायणादौ मनो न सज्जयेत् सङ्गं न प्रापयेत् । न हि देशकालौ योगिनः सिद्धिहेत्, किंतु योग एवेति दृढनिश्चयो भूत्वा स्थिरं सुखकरं चासनमास्थितः प्राणं नियच्छेदित्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ तक जिसकी मृत्यु सिन्नकट होए ऐसे व्यक्ति के द्वारा किए जाने वाले आवश्यक कर्मों को बतलाया गया है। अब शुकदेवजी शरीर त्याग करने के इच्छुक राजा परीक्षित् को उनके द्वारा किए जाने योग्य कर्मों को स्थिरं सुखम् इत्यादि साढे चार श्लोकों द्वारा बतला रहे हैं। वे कहते हैं— राजन्! जब संसार से विरक्त योगी इस लोक का परित्याग करना चाहता है तब उसे पुण्य क्षेत्र इत्यादि देशों तथा उत्तरायण काल इत्यादि में अपने मन को नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि योगियों को सिद्धि किसी देश विशेष अथवा काल विशेष के द्वारा नहीं प्राप्त होती है अपितु योग के द्वारा ही उनको सिद्धि (मुक्ति) मिलती है, यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् योगी को सुखप्रद और स्थिर आसन पर बैठकर इन्द्रियों को अपने वश के करके प्राणों को नियन्त्रित करना चाहिए।।१५॥

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि । आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥१६॥

अन्वयः— स्व अमलया बुद्ध्या मनः नियम्य एतां क्षेत्रज्ञे निनयेत् तम् आत्मिन, आत्मानम् आत्मिन अवरुध्य धीरः लब्धोपशान्तिः कृत्यात् विरमेत ।।१६।।

अनुवाद— अपनी निर्मल बनी बुद्धि के द्वारा मन को विषयों से हटाकर उसको बुद्धि में लीन कर दे। उसके पश्चात् बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे । क्षेत्रज्ञ को आत्मा में लीन करे और आत्मा को परमात्मा में लीन करे । उसके पश्चात् शान्ति प्राप्त वह धीर पुरुष सभी कर्मी से विरक्त हो जाय ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तत् गृहीतिवषयं मनो बुद्ध्या निश्चयरूपया नियम्य तन्मात्रं कृत्वा, एता बुद्धिं क्षेत्रज्ञे बुद्ध्यादिद्रष्टिरि निनयेत्प्रविलापयेत्। तं च क्षेत्रज्ञमात्मिन शुद्धे । तं च शुद्धमात्मानमात्मैवाहमित्यामिन शुद्धे ब्रह्मण्यवरुध्यैकीकृत्य लब्धोपशान्तिः प्राप्तिनर्वृतिः सन् कृत्याद्विरमेत, ततः परं प्राप्याभावात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

योगी को चाहिए कि वह सर्वप्रथम वह अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा विषय प्रवण मन को विषयों से हटा ले। उसके पश्चात् वह उस मन को अपनी स्वच्छ बुद्धि में लीन कर दे। उसके पश्चात् उस बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे। उस क्षेत्रज्ञ को शुद्ध आत्मा अन्तर्यामी में लीन करे। उस शुद्ध आत्मा की मैं आत्मा ही हूँ इस प्रकार से मानते हुए उसे शुद्ध ब्रह्म में लीन करके शान्ति प्राप्त कर ले। और शान्ति प्राप्त करके वह अपने प्रयास से विरत हो जाय क्योंकि परंब्रह्म की प्राप्ति से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु उसके लिए प्राप्य रह ही नहीं जाती है।।१६॥

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे । न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥१७॥

अन्वयः यत्र अनिमिषां परः प्रभुः कालः न, कुतः, नुदेवाः, ये जगताम् ईशिरे । यत्र सत्त्वं न, रजः तमश्च न, न वै विकारः, न महान्, न प्रधानम् ॥१७॥

अनुवाद जिस अवस्था में देवताओं का भी नियामक काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो देवता वहाँ पर क्या कर सकते हैं ? और मनुष्यों के नियामक राजागणों के विषय में क्या कहना है ? वे तो उस अवस्था में कुछ भी नहीं कर सकते हैं । उस अवस्था में सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, अहङ्कार महान् तथा प्रकृति भी नहीं रहती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रति । यत्रात्मस्वरूपे कालो न प्रभुः किमपि कर्तुं न समर्थः । अतएव देवा न प्रभव इत्याह । अनिमिषां देवानां परः प्रभुः कालोऽपि यत्र न प्रभुस्तत्र कुतो नु देवाः प्रभवेयुः । दैवनियम्यानां तु जगतां प्राणिनां का वार्तेत्याह-जगतामिति। कुतो न प्रभवन्तीत्यपेक्षायां निरुपाधित्वादित्याह-न यत्रेति । यद्वा जगत्कारणान्यपि न यस्य सृष्ट्यादौ प्रभवन्तीत्याह- न यत्रेति । विकारोऽहङ्कारः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

न यत्र इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त अवस्था का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं जिस ब्रह्मरूप आत्मा के विषय में काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो काल के नियाम्य भूत देवता अथवा मनुष्य क्या कर सकते हैं ? अब प्रश्न उठता है कि उस आत्मा के स्वरूप के विषय में काल, देवता अथवा मनुष्य कुछ भी क्यों नहीं कर पाते हैं तो उसके उत्तर में बतलाते हैं कि जीव की वह स्थिति निरूपाधिक है । सोपाधिक अवस्था में ही जीवात्मा पर कालादि का प्रभाव होता है । उस ब्रह्मस्वरूप आत्मा के विषय में सत्त्व, रजस, तमस् अहङ्कार महान् अथवा प्रकृति का भी संस्पर्श नहीं रहता है । उस स्थिति में पहुँचा हुआ उपासक शुद्ध आत्मस्वरूप होता है श्लोक में विकार शब्द से अहङ्कार को कहा गया है ॥१७॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः । विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥

अन्वयः— यत् अतत् नेति-नेति उत्सिम्क्षवः दौरात्म्यम् विमृज्य अर्हपदं पदे पदे हृदा उपगुह्य अनन्य सौहृदाः सन्तः तद् वैष्णवं पदं परं आमनन्ति ॥१८॥

अनुवाद चूिक योगिजन, आत्म व्यतिरिक्त वस्तुओं को यह नहीं यह नहीं इस प्रकार से कहकर त्याग देना चाहते हैं। देह आदि में आत्मत्व का परित्याग करके पूज्य भगवान् विष्णु के पद को प्रतिक्षण हृदय से लगाकर, श्रीभगवान् के चरणों से ही जिन योगियों का सौदाई है, वे लोग भगवान् विष्णु के ही पद को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं।।१८॥

भावार्थ दीपिका

निरूपाधित्वं कुत इत्यत आह-परिमिति । यद्यस्मात् अतत् आत्मव्यितिरक्तं नेति नेतीत्येवमुत्स्रष्टुमिच्छवो दौरात्म्यं देहाद्यात्मत्वं विसृज्य अर्हस्य पूज्यस्य श्रीविष्णोः पदं पदे भणे क्षणे हृदा उपगुह्य आश्लिष्य नान्यस्मिन्सौहृदं येषां तथाभूताः सन्तस्तद्वैष्णवं पदम् अतएव परं सर्वतः श्रेष्ठमामनन्तीत्यन्वयः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

आतमा के उस स्वरूप को निरूपाधिक बतलाते हुए कहते हैं— चूकि आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं को त्याग देने की इच्छा वाले योगिजन यह नहीं, यह नहीं इस तरह से कहकर देहादि में होने वाले आत्मत्व भ्रम को त्यागकर पूज्य भगवान् विष्णु के पद (चरणों) को ही सदा हृदय से लगाकर उससे भिन्न सभी वस्तुओं से सौहार्द रहित वे श्रीभगवान् के चरणों को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं ॥१८॥

इत्थं मुनिस्तूपरमेद्वयवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्थिताशयः । स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥१९॥

अन्वयः— विज्ञानदृग्वीर्यः सुरन्धिताशयः व्यवस्थितः मुक्तिः तु इत्थम् उपरमेत् स्वपार्ष्णिना गुदं निपीड्य ततः अनिलं षट्सु स्थानेषु उन्नमयेत् ।।१९।।

अनुवाद शास्त्रजन्य ज्ञान दृष्टि के बल से जिसके चित्त की वासना नष्ट हो गयी है उस योगी को अपने शरीर का त्याग इस तरह करना चाहिये । सर्वप्रथम वह अपनी एंडी से गुदा को दबाकर स्थिर हो जाय उसके पश्चात् बिना घबड़ाहट के प्राणवायु को वह ऊपर की ओर ले जाय ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादित्थं ब्रह्मत्वेन व्यवस्थितो मुनिरुपरमेत् । तुशब्देन 'यदि प्रयास्यन्' इति वक्ष्यमाणात्सकामाद्विशेष उक्तः । तमाह। विज्ञायतेऽनेनेति विज्ञानं शास्त्रं तेन जाता दृग् ज्ञानं तस्य वीर्य बलं तेन सुरन्धिता विहिंसिता आशया विषयवासना यस्य सः । इदानीं तस्य देहत्यागप्रकारमाह । स्वपार्ष्णिना पादमूलेन गुदं मूलाधारमापीड्य निरुध्यानिलं प्राणमुत्रमयेदूर्ध्वं नयेत् जितःक्लमो येन । षट्सु स्थानेषु नाभ्यादिषु ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म की प्राप्ति के प्रकार को बतलाने के लिए इस श्लोक में देह से उत्क्रमण करने के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं— इस प्रकार से ब्रह्म रूप से व्यवस्थित योगी ऊपरत हो जाय । श्लोक के तु शब्द के द्वारा इस अध्याय के बाइसवें श्लोक में जिसको बतलाया जायेगा उस सकाम उत्क्रमण की अपेक्षा इसकी विशेषता बतलायी गयी है । इसी को बतलाते हुए कहते हैं शास्त्रजन्य ज्ञान के बल से जिसने अपनी चित्त की वासना को नष्ट कर दिया है, उसी के देह त्याग के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि सर्वप्रथम अपनी एंडी से अपने मूलाधारचक्र गुदा को दबाकर प्राण वायु को ऊपर की ओर बिना किसी घबड़ाहट के नाभि आदि के क्रम से ऊपर की ओर ले जाय ।।१९।।

नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरिस तं नयेन्मुनिः । ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥२०॥

अन्वयः — नाभ्यां स्थितं हृदि अधिरोप्य तस्मात् उदानगत्या मुनि तं नयेत। ततः धिया अनुसंधाय शनकैः स्वतालुमूलं नयेत ।।२०।।

अनुवाद— मनस्वी योगी को चाहिये कि वह नाभिचक्र (मणि पूरक चक्र) में स्थित वायु को हृदय चक्र (अनाहतचक्र) में स्थापित करके, वहाँ से उदान वायु के द्वारा वक्ष: स्थल के ऊपर विशुद्धिचक्र में लाये उस वायु को धीरे-धीरे तालु के मूल में विशुद्धिचक्र के अग्रभाग में लाये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नाभ्यां मणिपूरके स्थितं हृदि अनाहतचक्रेऽधिरोप्य । उरिस कण्ठादधोदेशे स्थिते विशुद्धिचक्रे । मनस्वी जितिचत्तः। स्वतालुमूलं तस्यैव चक्रस्याग्रदेशम् । ततो बहुधा गमनसंभवाच्छनकैरित्युक्तम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

नाभि में विद्यमान मणिपूरकचक्र में स्थित वायु को हृदय में विद्यमान अनाहतचक्र में स्थापित करे फिर उस वायु को वक्ष:स्थल से ऊपर तथा कण्ठ के नीचे विद्यमान विशुद्धिचक्र में लाकर जिसने अपने मन को वश में कर लिया है जिसने वह योगी तालु के मूल में विद्यमान उस चक्र के अग्रभाग में वायु को धीरे-धीरे लाये, अन्यथा वह दूसरी ओर चली जा सकती है ॥२०॥

तस्माद्धवोरन्तरमुत्रयेत निरुद्धसप्तास्वयनोऽनपेक्षः । स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥२१॥

अन्वयः— तस्माद् भ्रुवोः अन्तरम् उत्रयेत निरुद्धसप्तास्वयनः । अनपेक्षः मुहूर्तार्धम् स्थित्वा अकुण्ठदृष्टिः मूर्धम् निर्मद्य परं गतः विसृजेत् ।।२१।।

अनुवाद उस विशुद्धिचक्र से प्राण वायु को दोनों भौहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र में लाये। यदि उसको किसी लोक में जाने की इच्छा न हो ता वह प्राणों के निकलने के जो सात (दो आँख, दो नाक, दो कान और मुख) मार्गों को रोककर वहाँ दो घड़ी (आधा मुहूर्त) ठहरकर अपने ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि का त्याग कर दे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्भवोरन्तरमाज्ञाचक्रम् । निरुद्धानि श्रोत्रे नेत्रे नासिके मुखं चेत्येवं सप्तास्वयनानि प्राणमार्गा येन सः । अनपेक्षश्चेत्परं ब्रह्म गतः सन् मूर्धन्मूर्धनि ब्रह्मरन्त्रे निर्पिद्य देहमिन्द्रियाणि च विस्जेत् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उस विशुद्धि चक्र के अग्रभाग से प्राणवायु को दोनों भौहों के बीच में विद्यमान आज्ञा चक्र में लाये फिर दोनों आँख, दोनों नाक, दोनों कान एवं मुख इन सातो प्राण के निकलने के मार्ग को रोककर यदि योगी की किसी लोक में जाने की इच्छा न हो तो वह वहाँ प्राण वायु के साथ आधा मुहूर्त (दो घड़ी) तक रहकर मुर्धा प्रदेश में विद्यमान ब्रह्मरन्थ्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि को त्याग देना चाहिए ।।२१।।

यदि प्रयास्यत्रृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् । अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥

अन्वयः— नृप यदि पारमेष्ठयं उत वैहायसानाम् यद्विहारम् अष्टाधिपत्यम् गुण सन्निवाये प्रयास्यन् मनसा इन्द्रियैः च सहैव गच्छेत् ।।२२।।

अनुवाद राजन् यदि योगी की इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोक में जाऊँ और अणिमा आदि आठो सिद्धियों को प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धों के साथ विहार करूँ अथवा ब्रह्माण्ड के सभी प्रदेशों में विचरण करूँ तो उसे मन तथा इन्द्रियों को साथ लेकर ही शरीर से निकलना चाहिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सद्योमुक्तिमुक्त्वा क्रममुक्तिप्रकारमाह-यदीति दशिभः । यदि तु पारमेष्ठ्यं पदं प्रयास्यन्भवति । उत वैहायसानां खेचराणां सिद्धानां क्रीडास्थानम् । कीदृशम् । अष्टावाधिपत्यान्यणिमाद्यैश्वर्याणि यस्मिस्तदपि प्रयास्यन् । क्व गुणसन्निवाये गुणसमुदायरूपे ब्रह्माण्डे । सर्वत्रेत्यर्थः । तर्हि देहत्यागावसरे मनक्षेन्द्रियाणि च न त्यजेत्, किंतु तैः सहैव तत्तल्लोकभोगार्थं गच्छेत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सद्य:मुक्ति का वर्णन करने के बाद क्रममुक्ति के प्रकार का वर्णन यदि प्रयास्यन्० इत्यादि दश श्लोकों

द्वारा करते हैं। यदि योगी ब्रह्मलोक में जाना चाहे अथवा आकाश में चलने वाले सिद्धों का जो विहार स्थल है उसमें जाकर अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त करके विहार करना चाहे अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड में ही सर्वत्र विचरण करना चाहे तो उसको देहत्याग के समय मन तथा इन्द्रियों का त्याग नहीं करना चाहिए, उसे उन लोकों में भोगों को प्राप्त करने के लिए मन एवं इन्द्रियों के साथ ही जाना चाहिए ॥२२॥

योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् । न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपो योगसमाधिभाजाम् ॥२३॥

अन्वयः— पवनान्तरात्मनाम् विद्या तपो–योग–समधिभाजाम् योगेश्वराणाम् त्रिलोक्य अन्तः बहिः गतिमाहुः, कर्मभिः तं गतिम् न आप्नुवन्ति ।।२३।।

अनुवाद — वायु के भीतर जिनका लिङ्ग शरीर होता है, ऐसे विद्या (उपासना) तप (भगवद् धर्म) योग (अष्टाङ्ग योग तथा समाधि) एवं ज्ञान से युक्त योगेश्वरों की गित त्रिलोकी के भीतर और बाहर दोनों ओर बतलायी गयी है केवल कर्म करने वाले; योगेश्वरों की गित को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यतः कर्मगतिवत्र योगगतिःपरिच्छिन्नेत्याह । योगेश्वराणां त्रिलोक्या अन्तर्बहिश्च महर्लोकादिषु ब्रह्माण्डाद्वहिश्च गतिमाहुः। अत्र हेतुः- पवनस्यान्तः आत्मा लिङ्गशरीरं येषामिति । विद्या उपासना, तपो भगवद्धर्म, योगोऽष्टाङ्गः समाधिर्ज्ञानं, तान्येव भजन्ति तेषां या गतिस्ताम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

चूिक कर्म गित के समान योग की गित सीमित नहीं होती है, उसका कारण यह है कि योगेश्वरों का लिङ्ग शरीर वायु के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म होता है। वे उपासना भगवद् धर्म, अष्टाङ्गयोग तथा ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। अतएव योगेश्वरों की गित को केवल कर्म के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है। योगेश्वरों की गित त्रिलोकी के भीतर और बाहर बिना किसी रोक-टोक के होती है।।२३।।

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्रया ब्रह्मपथेन शोचिषा । विद्यूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥२४॥

अन्वयः— नृप ! विहायसां ब्रह्मपथेन गतः सुषुम्नया वैश्वानरं याति, शोचिषा विधूतकल्मषः उदस्तात् हरेः चक्रं शैशुमारं प्रयाति ।।२४।।

अनुवाद हे नृप ! आकाश नामक ब्रह्ममार्ग से जाकर सुषुम्त्ना नाड़ी के द्वारा योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है । उसके ऊपर भगवान् विष्णु के शिशुमार चक्र में जाता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तामाह वैश्वानरमित्यष्टभिः । शोचिषा ज्योतिर्मय्या विधूतस्त्यक्तः कल्को मलो येन सः । क्वाप्यसज्जमान इत्यर्थः । उदस्तादुपरिष्टाद्वर्तमानं हरेः संबन्धि तारारूपम् । नारायणाधिष्ठितमित्यर्थः । शैशुमारं चक्रं पञ्चमस्कन्धे वक्ष्यमाणं शिशुमाराश्रयं ज्योतिश्चक्रम् । चक्रस्थान्यादित्यादि ध्रुवान्तानि पदानि प्रयातीत्यर्थः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वैश्वानरम् इत्यादि आठ श्लोकों के द्वारा योगेश्वरों की गति का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— आकाशस्थ ब्रह्मलोक मार्ग से गया हुआ योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है। वहाँ वह सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा जाता है। सुषुम्ना नाड़ी शरीर के बाहर भी फैली हुयी है। इस बात को वे उसको प्रकाशमयी बतलाकर कहते हैं। वहाँ पर उसके सारे मल विनष्ट हो जाते है। उसकी कहीं भी आसक्ति नहीं होती है, उसके ऊपर श्रीहरि का जो तारा रूपी शिशुमार नामक ज्योतिश्चक्र है, उसमें वह जाता है। वह चक्र स्थानी आदित्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त के स्थानों में वह जाता है।।२४।।

तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः । नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ॥२५॥

अन्वयः— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य अणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषोः विबुधा रमन्ते ॥२५॥

अनुवाद— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य आणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषः विबुधा रमन्ते ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तद्विष्णोश्चक्रम् । विश्वस्य नाभिं सूर्याद्याश्रयभूतम् । आविष्टलिङ्गत्वात्राभिशब्दस्य न षण्ढत्वम् । अतिवर्त्यातिक्रम्य । परतः स्वर्गिणां गत्यभावादेक एव निर्मलेन लिङ्गशरीरेण ब्रह्मविदां स्थानमन्यैर्नमस्कृतं महर्लोकमुपैति । यत् यस्मिन्वबुधा महाकल्पायुषा भृग्वादयः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

शिशुमार चक्र नामक भगवान् विष्णु का चक्र सूर्य आदि सम्पूर्ण विश्व का आश्रय है । आविष्ट लिङ्ग (अजहिल्लङ्ग) होने के कारण ही यहाँ नाभि शब्द का नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग नहीं हुआ है । उस शिशुमारचक्र को पार करके योगी अपने अत्यन्त सूक्ष्म तथा निर्मल शरीर के द्वारा अन्य जीवों से नमस्कृत महलोंक में अकेले जाता है । उस लोक में महाकल्प पर्यन्त जीने वाले भृगु आदि महर्षि रहते हैं ।।२५।।

अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् । निर्याति सिन्देश्वरजुष्टिषण्यं यद्द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥

अन्वय: अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्ममानं विश्वं निरीक्ष्य सिद्धेश्वरजष्टिष्ण्यं तदुपारमेष्ठयं, यद् द्विपरार्ध्यम् ।।२६।। अनुवाद कल्प के अन्त में शोषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि से भस्म होते हुए विश्व को देखकर योगी उस ब्रह्मलोक में चला जाता है जहाँ पर बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानों पर निवास करते हैं । उस ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्माजी की आयु के ही समान दो परार्द्धों की है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरं कल्पान्ते स विश्वं त्रैलोक्यमतिशयेन दह्ममानं निरीक्ष्य, तत्राप्यूष्मप्राप्ते: । यत् द्विपरार्धस्यायि तत्पारमेष्ठ्यं पदं प्रति निर्याति । सिद्धेश्वरैर्जुष्टानि घिष्ण्यानि विमानानि यस्मिस्तत् । उत इति श्रैष्ठयं सूचितम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् कल्प के अन्त में शेष के मुख से निकली हुयी अग्नि के द्वारा जलते हुए विश्व को देखकर महलोंक में उष्णता हो जाने के कारण जो दो परार्ध पर्यन्त रहने वाला है, उस ब्रह्मलोंक में योगी चला जाता है। उस लोक में योगेश्वरों के द्वारा अधिष्ठित विमान रहते है। उत इस अव्यय के द्वारा ब्रह्मलोंक की श्रेष्ठता को सूचित किया गया है।।२६॥

न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् । यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥२७॥

अन्वयः यत्र न शोकः, न जरा, न मृत्यु न आर्ति न च कुतश्चित् उद्वेगः, किंतु यत् चित्ततः, अदः अनिदं विक्षं कृपया दुरन्त दुःखप्रभवानुदर्शनात् ऋते ।।२७।।

अनुवाद उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु, आर्ति तथा किसी भी प्रकार का उद्देग भी नहीं है अपितु इस ब्रह्मलोक को नहीं जानने के कारण संसार के जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर जो संताप होता है, वहाँ के लोगों का केवल यह कष्ट है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रेति । । अर्तिर्दुःखम् । उद्वेगो भयम् । किंतु चित्ततो हेतोर्यदुखं अदः ऋते तदेकं विना तत्कुतो भवित। अनिदंविदामिदं भगवतो ध्यानमजानतां प्राणिनां दुरन्तदुःखो यः प्रभवो जन्म तस्यानुदर्शनात्तेषां कृपया । यद्वा चित्तमोदो मनः पीडेति यत् तद्विना कुतश्चिदिप यत्र शोकादयो न सन्तीति । तत्र ब्रह्मलोकं गतानां त्रिविधा गितः । ये पुण्योत्कर्षेण गतास्ते कल्पान्तरे पुण्यतारस्तम्येनाधिकारिका भवन्ति ये तु हिरण्यगर्भाद्युपासनाबलेन गतास्ते ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते । ये तु भगवदुपासकास्ते स्वेच्छया ब्रह्माण्डं भित्त्वा वैष्णवं पदमारुहन्ति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

न यत्र ॰ इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्मलोक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है आर्ति दु:ख को कहते हैं । उद्देग भय का बोधक है । शुकदेवजी बतला रहे हैं कि उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा, मृत्यु, दु:ख, भय इत्यादि कोई भी कष्ट नहीं है । केवल उन अज्ञानी जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर उनको कष्ट होता है कि ये अज्ञानी जीव श्रीभगवान् के ध्यान को करना नहीं जानते हैं । उस ब्रह्मलोक में गये जीवों की तीन प्रकार की गित होती हैं—

- श. जो लोग पुण्यातिरेक के कारण ब्रह्मलोक में जाते हैं, वे कल्पान्तर में अपने पुण्य के अनुसार वहाँ के कोई अधिकारी होते हैं ।
- २. जो जीव ब्रह्माजी इत्यादि की उपासना के द्वारा ब्रह्मलोक में जाते हैं वे ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाते हैं।
- ३. जो लोग श्रीभगवान् की उपासना करके ब्रह्मलोक में जाते हैं वे अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्माण्ड का भेदन करके श्रीभगवान् के लोक में चले जाते हैं ।।२७।।

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् । ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥२८॥

अन्वयः— ततो विशेषं प्रतिपद्य योगी निर्भयः त्वरन् तेनात्मना अपः अनलः मूर्ति ज्योतिर्मयः काले वायुमुपेत्य, वाय्वात्मना बृहदात्मलिङ्गं खम् प्राप्नोति ।।२८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्मलोक में पहुँचा हुआ योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीर (लिङ्ग शरीर) को पृथिवी में मिला देता है। उसके पश्चात् शीघ्रता किए बिना वह पृथिवी रूप से जल को और जल रूप से अग्निमय आवरण को प्राप्त करता है। उसके पश्चात् वह ज्योति रूप से वायुरूप आवरण को प्राप्त करके वहाँ से ब्रह्म की अनन्तता के बोधक आकाश रूप आवरण में आ जाता है।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रस्तुतस्य भगवद्धक्तस्य ब्रह्माण्डभेदनप्रकारमाह- तत इत्यादिना । तत्रेयं प्रक्रिया-ईश्वराधिष्ठितायाः प्रकृतेः केनचिदंशेन महत्तत्वं भवित । तस्यांशेनाहंकारः । तस्यांशेन शब्दतन्मात्रद्वारा नभः तस्यांशेन स्पर्शतन्मात्रद्वारा वायुः । तस्यांशेन रूपतन्मात्रद्वारा तेजः । तस्यांशेन रसतन्मात्रद्वारा आपः तदंशेन गन्धतन्मात्रद्वारा पृथ्वी । तैश्च मिलितैश्चतुर्दशभुवनात्मकं विराट्शरीरम् । तस्य च पञ्चाशत्कोटियोजनिशालस्य पृथिव्येवाण्डकटाहिवशेषशब्दवाच्या कोटियोजनिशालं प्रथमावरणम् पञ्चाशत्कोटियोजनिशालमित्येके । ततश्चाबादीनां ये परिणता अंशास्तान्येवोत्तरोत्तरं दशगुणान्यावरणानि । अष्टमं तु प्रकृत्यावरणं व्यापकमेव । तदेवं स्थिते पृथिव्याद्यावरणभेदप्रकारः। कथ्यते । ततो विशेषं प्रतिपद्य । लिङ्गदेहेन पृथिव्यात्मतां प्राप्येत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । निर्भयः कथं यास्यामीति शङ्काशून्यः । तेनात्मना पृथिवीरूपेण तित्ररन्तरा अपः प्रतिपद्य । अत्वरंस्त्वरामकुर्वन् तत्तदात्मत्वेन क्लेददाहादिशङ्काभावाद्यथेष्टं भोगान्भुञ्जान इत्यर्थः । एवं ज्योतिर्मयः सन् । काले भोगावसाने । बृहदात्मनो लिङ्गं परमात्ममूर्तित्वेनोपासनेषूक्तम् । यद्वा वेदशब्दात्मना तस्य प्रमापकिमिति ।।२८।।'

भाव प्रकाशिका

जिसका वर्णन यहाँ पर उपक्रान्त है उस भगवद् भक्त के द्वारा किए जाने वाले ब्रह्माण्ड भेदन के प्रकार का वर्णन ततो॰ इत्यदि श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। ब्रह्माण्डभेदन की प्रक्रिया इस प्रकार की है। परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित प्रकृति अपने अंश विशेष के द्वारा महत्तृतत्त्व बन जाती है। महत् तत्त्व के अंश से अहङ्कार उत्पन्न होता है। अहङ्कार के अंश विशेष से शब्द तन्मात्रा द्वारा आकाश उत्पन्न होता है। आकाश के अंश विशेष से स्पर्श तन्मात्रा द्वारा वायु की उत्पत्ति होती है। वायु के अंश विशेष से रूप तन्मात्रा द्वारा तेज की उत्पत्ति होती है। वेज के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा जल की उत्पत्ति होती है, जल के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा पृथिवी की उत्पत्ति होती है उन सबों के सम्मिश्रण द्वारा चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। वह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन विशाल है। उसका पृथिवी ही प्रथम आवरण है। उसी को अण्डकटाह कहते है। यह पहला आवरण एक करोड़ योजन ऊँचा है। कुछ लोग इस प्रथम आवरण को पचास करोड़ योजन ऊँचा मानते हैं। अत्तएव जल आदि के जो परिणत अंश हैं वे ही पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दश-दश गुना अधिक आवरण हैं, आठवाँ आवरण प्रकृति का है। वही व्यापक है इस प्रकार से आवरणों के ही भेदन का प्रकार इस श्लोक में कहा जा रहा है।

ततो विशेषंप्रतिपद्य इत्यादि योगी अपने लिङ्ग शरीर में पृथिवी तत्त्व को प्राप्त कर जाता है अर्थात् वह अपने को पृथिवी में मिला देता है। इस तरह से आगे भी समझना चाहिए। निर्भय: कहने का अर्थ है कि योगी को इस प्रकार की शङ्का ही नहीं होती है कि मैं कैसे बाहर जाऊँगा।

तेनात्म • इत्यादि - वह पृथिवी रूप से ही जल के आवरण में चला जाता है । उसके बाद वह जल रूप से तेज के आवरण में चला जाता है । वहाँ उसको किसी प्रकार की शिष्ठता नहीं रहती हैं क्योंकि उसको इस प्रकार की शङ्का भी नहीं होती है कि मैं भींग जाऊँगा या जल जाऊँगा वह यथेष्ट मात्रा में भोगो को भोगता हुआ ही उत्तरोत्तर आवरण में जाता है । वह तेजोमय रूप से वायु के आवरण में चला जाता है । वहाँ पर भी भोगों के अन्त में वह उस आकाश के आवरण में चला जाता है । जिसको उपासनाओं के प्रसङ्ग में परमात्मा की मूर्ति कहा गया है । वह अपने गुण स्वरूप वेद शब्द के द्वारा परमात्मा का बोधक है ।।२८॥

घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव । श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥२९॥

अन्वयः— घ्राणेन गन्धं, रसनेन रसं, दृष्ट्या तु रूपम्, त्वचा श्वसनम्, श्रोत्रेण नभोगुणत्वं च उपेत्य योगी प्राणेन च आकृतिम् उपैति ॥२९॥ अनुवाद इस प्रकार जब योगी स्थूल आवरणों को पार करता है उस समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठान में लीन होती जाती हैं, इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि वह प्राणेन्द्रिय के द्वारा गन्ध तन्मात्रा में, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस तन्मात्रा में चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप तन्मात्रा में और श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द तन्मात्रा में एवं कर्मेन्द्रियाँ अपनी-अपनी क्रिया शक्ति में लीन में होकर अपने सूक्ष्म स्वरूप को प्राप्त कर लेती हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियार्थानां भूतसूक्ष्माणामतिक्रममाह । घ्राणेनाधिष्ठितेन गन्धमुपेत्य । श्वसनं स्पर्शम् । नभोगुणत्वं शब्दात्मताम् । प्राणेन तत्तत्कर्मेन्द्रियेण । आकूतिं तत्तिक्रियाम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा इन्द्रियों के विषयभूतसक्ष्मों के अतिक्रमण को बतलाया गया है। वह घ्राण रूपी अधिष्ठान के द्वारा गन्धतन्मात्रा को प्राप्त करके, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस तन्मात्रा को चक्षुनिद्रिय के द्वारा रूप तन्मात्रा तथा (विगिन्द्रिय के द्वारा) स्पर्श तन्मात्रा को तथा श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द तन्मात्रा को प्राप्त करके तथा भिन्न-भिन्न कर्मेन्द्रियों के द्वारा तत्-तत् क्रियाओं को प्राप्त करके योगी, आवरणों को पार करता है ॥२९॥

स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् । संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ॥३०॥

अन्वयः— सः भूतसूक्ष्मेन्द्रियसित्रकर्षम् मनोमयम् देवमयम् विकार्यं संसाद्य तेन सह गत्या गुणसित्ररोधम् विज्ञान तत्त्वं याति ।।३०।।

अनुवाद — योगी इस तरह से पञ्च भूतों के स्थूल तथा सूक्ष्म आवरणों को पार करके मन एवं इन्द्रियों के अधिष्ठाता अहङ्कार को प्राप्त करता है। यहाँ विकार्य शब्द से अहङ्कार को कहा गया है। वह भूतसूक्ष्मों को तामस अहङ्कार में लीन करता है एवं इन्द्रियों तथा मन के अधिष्ठाता देवताओं को सात्त्विक अहङ्कार में लीन करता है। उसके पश्चात् अहङ्कर के साथ लय रूपी गित के द्वारा वह महत् तत्त्व में प्रवेश करता है। और अन्त में सभी गुणों के लय स्थान प्रकृति नामक आवरण में लीन हो जाता है।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्थूलसूक्ष्मभूतातिक्रममुक्त्वा तदावरणभूताहङ्कारप्राप्त्या महदादिप्राप्तिमाह । स योगी विकार्यं संसाद्य विज्ञानतत्त्वं याति । विविधं कार्यमस्येति विकार्योऽहङ्कारः । स त्रिविधः, तामसो राजसः सात्त्विक इति । तत्र तामसाज्जडानि भूतसूक्ष्माणि जायन्ते । राजसाद्वहिर्मुखानि दशेन्द्रियाणि । सात्त्विकान्मन इन्द्रियदेवताश्च । तेषां लयश्च तत्तदहङ्कारे तत्र भूतसूक्ष्माणामिन्द्रियाणां च सित्रकर्षं लयस्थानं तामसं, राजसं च मनोमयं देवमयं च सात्त्विकं प्राप्य । गत्या एवं गमनेन । तेनाहङ्कारेण सह विज्ञानतत्त्वं महत्तत्त्वं याति । ततो गुणानां सित्ररोधो लयो यस्मिस्तत्प्रधानं याति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह स्थूल एवं सूक्ष्म भूतों के आवरणों के अतिक्रमण का वर्णन करके शुकदेवजी उसके आवरणभूत अहङ्कार की प्राप्ति के द्वारा महदादि की प्राप्ति का वर्णन करते हैं। वे बतलाते हैं कि वह योगी अहङ्कार को प्राप्त करके विज्ञान को प्राप्त कर लेता है। विविधं कार्यमस्य इस विग्रह के अनुसार विकार्य शब्द अहङ्कार का बोधक है। वह अहङ्कार तीन प्रकार का होता है, तामस, राजस एवं सात्त्विक। तामसाहङ्कार से जड भूतसूक्ष्म उत्पन्न होते हैं। राजसाहङ्कारसे बहिर्मुख दश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सात्त्विक अहङ्कार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न होते है। उन सबों का उन्हीं अहङ्कारों में लय हो जाता है।

भूतसूक्ष्मों तथा इन्द्रियों का लय स्थान तामसाहङ्कार है। राजस मनोमय तथा देवमय सात्त्विक अहङ्कार को प्राप्त करके उसी में लीन हो जाते हैं। गित शब्द गमन का बोधक है। उस अहङ्कार के साथ योगी महत् तत्त्व (विज्ञान तत्त्व) को प्राप्त करता है! उसके पश्चात् जिसमें सभी गुणों का लय हो जाता है उस प्रधान में वह लीन हो जाता है।।३०।।

तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने । एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥३१॥

अन्वयः— हे अङ्ग तेन आत्मना आनन्दमयः अवसाने शान्तम् आनन्दम् आत्मानम् उपैति । यः एतां भगवतीं गतिं गतः स वै पुनः इइ न विषज्जते ।।३१।।

अनुवाद— उस प्रधान रूप से आनन्दमय योगी उपाधियों के समाप्त हो जाने पर शान्त (विकार रहित) तथा आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जो कोई भी इस भगवन्मयी गित को प्राप्त कर लेता है। वह फिर इस संसार में नहीं आता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तेनात्मना प्रधानरूपेणानन्दमयः सन्नुपाधीनामवसाने शान्तमविकृतमानन्दं परमात्मानमुपैति न विषज्जते नावर्तत इत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उस प्रधान रूप से आनन्दमय स्वयम् उपाधियों के समाप्त हो जाने पर निर्विकार आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। यह गति भगवन्मयी गति है। इस गति से जाने वाला मनुष्य पुन: इस संसार में नहीं आता है ॥३१॥

एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च । ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेव: ॥३२॥

अन्वयः— हे नृप एते सृती वेदगीते सनातने च येत्वयाभिपृष्टे ते वर्णिते । ये वै पुरा ब्रह्मण पृष्टः आराधितो भगवान् वासुदेव आह ।।३२।।

अनुवाद - राजन् ! ये दो गतियाँ (सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति) वैदिक और सनातन हैं । प्राचीन काल में पूजन से प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव ब्रह्माजी द्वारा पूछे जाने पर इन दोनों गतियों का वर्णन किए थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

स्ती मार्गी, प्रकारावित्यर्थः । हे नृप, (अनपेक्षो) 'निर्भिद्य मूर्धन् विस्जेत्परं गतः' इति या सद्योमुक्तिः सैका स्तिः। 'यदि प्रयास्यन्' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च द्वितीया स्तिः । एते स्ती वेदेन गीते उक्ते नतु स्वोत्प्रेक्षिते । तत्र 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्रुते' इति सद्योमुक्तिः । 'तेऽर्चिरिभसंभवन्ति' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च वेदेनोक्ता । यद्वा 'न कर्मिभसतां गतिमाप्रुवन्ति - इति दक्षिणमार्गस्यापि सूचितत्वादेते सृती इति द्विवचनम् । त्वयाऽभिपृष्टे 'यच्छ्रोतव्यं' इत्यादिप्रश्नेन, अर्थान्मुक्तिविषये द्वे अपि सृती पृष्टे । 'ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् इति दक्षिण मार्गोऽप्यर्थात्पृष्टः एवं त्वया च ये पृष्टे एते सृती सुखरूपो निर्विघ्नाश्च नास्त्येव ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त ये दोनों मुक्ति के मार्ग हैं, सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति । हे राजन् अनपेक्ष पुरुष ब्रह्मरन्श्र का भेदन करके शरीर त्याग कर दे, इस तरह से मैंने सद्योमुक्ति नामक एक मार्ग को बतलाया है । **यदि प्रयास्यन्** इत्यादि श्लोकों के द्वारा मैंने क्रम मुक्ति को बतलाया है । यही दूसरा मुक्ति का मार्ग हैं । ये दोनों गतियाँ वेद वर्णित है मनः किल्पत नहीं है। इसी का वर्णन श्रीभगवान् ने गीता के **यदा सर्वे प्रमुख्यन्ते** इत्यादि श्लोक के द्वारा सद्यो मुक्ति का वर्णन किया है। इस श्लोक का अर्थ है कि जिस अवस्था में उपासक के हृदय की सारी कामनायें समाप्त हा जाती हैं, उसी समय मर्त्य उपासक अमृत हो जाता है और इस लोक में ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। 'तेर्चिरिभिसम्भवन्ति' यह श्रुति क्रम मुक्ति का वर्णन करती है। अथवा न कर्मिभस्तां गतिमाप्नुवन्ति इस वाक्य के द्वारा दक्षिण मार्ग (धूमादि मार्ग) के भी सूचित किए जाने के कारण एते सृती यह द्विवचनान्त प्रयोग किया गया है। राजन् आपने भी मुझसे जो (यच्छ्रोतव्यम्) इत्यादि प्रश्न के द्वारा जिन दोनों मार्गों को पूछा था उन दोनों को मैंने कह दिया। आपने **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्** इस वाक्य के द्वारा दक्षिण मार्ग को पूछा था। इस तरह से आपने जिन दोनों मार्गों के विषय में पूछा था वे ये ही दोनों गतियाँ हैं।।३२।।

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह । वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥

अन्वयः इह संसृतौ विशतः इतः अन्यः शिवः पन्था निह यतः भगवित वासुदेवे भक्तियोगो भवेत् ॥३३॥

अनुवाद— इस सृष्टि चक्र में पड़े हुए जीवों के लिए इन दोनों मार्गों से बढ़कर दूसरा कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं हैं जिससे कि भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

सन्ति संसरतः पुंसो बहवो मोक्षमार्गास्तपोयोगादयः, समीचीनस्त्वयमेवेत्याह नहीति । यतोऽनुष्ठिताद्धक्तियोगो भवेदतोऽन्यः शिवः सुखरूपो निर्विध्नश्च नास्त्येव ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस संसारचक्र में संसरण करने वाले पुरुषों के लिए तपस्या योग इत्यादि अनेक मोक्ष के मार्ग हैं, किन्तु उन सबों में ये ही दोनों मार्ग समीचीन हैं। दूसरा कोई भी मार्ग समीचीन नहीं है जिसका अनुष्ठान करने से भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके। अतएव सुख स्वरूप तथा निर्विघ्न ये ही दोनों मार्ग हैं ॥३३॥

भगवान्ब्रह्म कात्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया । तद्ध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥३४॥

अन्वयः कूटस्थो भगवान् ब्रह्मा कार्त्स्येन मनीषया अन्वीक्ष्य तद् अध्यवस्यत् यत् आत्मिन रितर्भवेत् ।।३४।।

अनुवाद निर्विकार भगवान् ब्रह्माजी ने तीन बार सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके निश्चय किया जिसके
द्वारा श्रीभगवान् में प्रेम हो वही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

कुत एतदत आह । भगवान्ब्रह्मा । कूटस्थो निर्विकारः । एकाग्रचित्तः सन्नित्यर्थः त्रिस्त्रीन्वारान् कात्स्न्येन ब्रह्म वेदमन्वीक्ष्य विचार्य । यत आत्मिन हरौ रतिर्भवेत्तदेव मनीषया अध्यवस्यत् निश्चितवान् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ये दोनों मार्ग सर्वश्रेष्ठ हैं यह कैसे कहा जा सकता है तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं भगवान् ब्रह्म • इत्यादि अर्थात् ब्रह्माजी निर्विकार हैं । वे ब्रह्माजी एकाग्रचित्त से सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके विचार किए और निश्चय किए कि जिससे परमात्मा में प्रेमात्मिका भक्ति उत्पन्न हो वहीं सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ॥३४॥

भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः । दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥३५॥

अन्वयः— भगवान् हरिः सर्वभूतेष स्वात्मना दृश्यैः बुद्धयादिभिः अनुमापकैः लक्षणै द्रष्टा लक्षितः ।।३५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीहरि ही सम्पूर्ण चराचर भूतों में आत्मा रूप से लक्षित होते हैं, इन दृश्य बुद्धि आदि अनुमापक साधनों में वे द्रष्टा रूप से लक्षित होते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वनुभूतेऽर्थे रितर्भवित, अननुभूते तु भगविति कथं रितः स्यात्तत्राह । भगवान् लक्षितो दृष्टः कथम् । स्वात्मना क्षेत्रज्ञान्तर्यामितया । कै: दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिः । तदेव द्वेघा दर्शयिति । दृश्यमानं जनानां दर्शनं स्वप्रकाशं द्रष्टारं विना न घटत इत्यनुपपत्तिमुखेन लक्षणैः स्वप्रकाशान्तर्यामिलक्षक तथा बुद्ध्यादीनि कर्तृप्रयोज्यानि, करणत्वात् वास्यादिवत् इति व्याप्तिमुखेनानुमापकैः । स्वतन्त्रश्च कर्त्रत्येवमीश्वरसिद्धिः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि प्रेम उसमें ही होता है जो विषय अनुभूत होता है। परमात्मा का तो अनुभव हुआ नहीं है, अतिएव उनमें प्रेम कैसे हो सकता है? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि परमात्मा का तो अपनी आत्मा के हास क्षेत्रज्ञ के अन्तर्यामी रूप से दर्शन होता है। अब प्रश्न है कि उस अन्तर्यामी का साक्षात्कार कैसे होता है? इसका उत्तर है कि दृश्य बुद्धि आदि के द्वारा होता है। वह दो प्रकार से होता है। लोगों को दृश्य पदार्थों का दर्शन स्वप्रकाश द्रष्टा के बिना नहीं हो सकता है, इस प्रकार की अनुपपत्ति होने के कारण स्वप्रकाश अन्तर्यामी का ज्ञान 'सत्यं ज्ञानमननं ब्रह्म' 'यतो वा इमानि' इत्यादि लक्षण वाक्यों से होता है। तथा इस प्रकार के अनुमानों से भी होता है। बुद्धि आदि का प्रयोजक कोई न कोई कर्ता होगा; क्योंकि बुद्धि आदि तो करण है। वासी (वसूली) आदि के समान। अर्थात् कर्ता के द्वारा प्रयुक्त होने पर जैसे वसूली आदि के द्वारा चौकी आदि का निर्माण होता है, उसी तरह अन्तर्यामी आत्मा के द्वारा भी प्रेरित होकर बुद्धि आदि इन्द्रियाँ दर्शनादि का कार्य करती हैं। कर्ता स्वतन्त्र होता है। महर्षि पाणिनि भी कहते हैं। स्वतन्त्र:कर्ता क्रिया के करने में जो स्वतंत्र होता है, उसे ही कर्ता कहते हैं। जो करण होता है वह कर्ता के द्वारा की जाने वाली क्रिया में साधकतम होता है। महर्षि पाणिनि ने कहा है साधकतमं करणम्। करण सर्वदा कर्ता के अधीन ही रहकर कार्य करता है। इस तरह से ईश्वर क्री अन्तर्यामी रूप से सिद्धि हो जाती है।।३५॥

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवाञ्चणाम् ॥३६॥

अन्वयः - तस्मात् हे राजन् हरिः नृणाम् सर्वात्मना, सर्वत्र, सर्वदा श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ॥३६॥ अनुवादः - अतएव राजन् परीक्षित् मनुष्यों को चाहिए कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सर्वत्र तथा सर्वदा भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यमित्यादि प्रश्रोत्तरमुपसंहरति- तस्मादिति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने यह जो पूछा था कि जो सुनना चाहिए उसी प्रश्न के उत्तर का उपसंहार इस श्लोक के द्वारा शुकदेवजी ने किया है ॥३६॥

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् । पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— सताम् आत्मनः भगवतः ये श्रवण पुटेषु सम्भृतम् कथामृतम् पिबन्ति ते विषय विदूषिताशयं पुनन्ति, तच्चरण सरोरुहान्तिकम् व्रजन्ति ।।३७।।

अनुवाद — सन्त महापुरुषों की आत्मा स्वरूप परमात्मा के कथामृत को अपने कर्णपुट रूपी दोनों में भरकर जो लोग पीते हैं, वे विषयों के द्वारा दूषित हुए अपने अन्त:करण को पवित्र बना देते हैं, और उसके फलस्वरूप वे श्रीभगवान् के चरण कमलों के सित्रध्य को प्राप्त कर लेते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के पुरुषसंस्थान वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

श्रवणादिफलमभिनयेनाह-पिबन्तीति । सतामात्मन आत्मत्वेन प्रकाशमानस्य कथैवामृतम् । विष**रीविदृषितं मिलनीकृतमाशयं** पुनन्ति शोधयन्ति । तस्य चरणपद्मान्तिकं श्रीविष्णुपदं त्रजन्ति ।।३७।।

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्श्वदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्याय: ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रवण आदि के फल को **पिबन्ति इत्यादि** श्लोक के द्वारा अभिनय पूर्वक बतलाते हैं। श्रीभगवान् सन्त पुरुषों की आत्मा रूप से ही प्रकाशित होते हैं। उनकी कथा ही अमृत है। उस कथामृत का जो अपने कानों से श्रवण करते हैं, वे अपने विषयों के दोष से दूषित अन्त:करण को शुद्ध बना देते हैं। उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निधान को वे प्राप्त कर लेते हैं।।३७॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्य के द्वितीय अध्याय की भावार्श्वदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।



तीसरा अध्याय

कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति की प्रधानता का वर्णन श्रीशुक उवाच

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम । नृणां यन्प्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥१॥

अन्वयः — यद् भवान् मम पृष्टवान् यत् मनुष्येषु म्रियमाणानां कर्तव्यम् तत् एवम् एतन्निगदितम् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद — आपने मुझसे यह जो पूछा था कि भ्रियमाण मनीषी मनुष्यों को क्या करना चाहिए ? उसका उत्तर मैंने विगत अध्याय में दे दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्तीये विष्णुभक्तेषु वैशिष्टयं शृण्वतो मुने: । भक्त्युद्रेकेण तत्कर्मश्रवणादर ईर्यते ।।१।। इदानीमन्यदेवताभजनस्यापि पुत्रादिभजनवदेव तुच्छफलत्वेन हेयत्वं वक्तुं पूर्वोक्तमनुवदित-एविमिति । ममेति माम् । कदाचिद्दैवयोगेन मनुष्यत्वं प्राप्तेषु जीवेषु ये मनीषिणस्तेषां तत्रापि ये प्रियमाणास्तेषां विशेषत एवमेतद्धिरकथाश्रवणादिकं निगदितं विहितमित्यर्थ: ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में भगवान् विष्णु की भक्ति का वैशिष्ट्य सुनने वाले मुनियों में भक्ति का उद्रेक हो जाता है अतएव श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से होने वाले आदर का वर्णन किया जाता है ॥१॥ इदानीम्॰ इस अध्याय में जिस तरह पुत्रों इत्यादि की सेवा तुच्छ है, उसी तरह अन्य देवताओं की भी आराधना त्याज्य है, इस बात को बतलाने के लिए पूर्वोक्त अर्थ का अनुवाद एवम् शब्द से किया गया है । मम शब्द का अर्थ मुझको है ।

भाग्यवशात् मनुष्यत्व प्राप्त जीवों में जो मनीषी हैं तथा मरने ही वाले है, उन जीवों के लिए श्रीहरि की कथा विशेष रूप से विहित है। यह इस श्लोक का अभिप्राय है ॥१॥

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् । इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥२॥

अन्वयः - ब्रह्मवर्चसकामः ब्रह्मणस्पतिं यजेत, इन्द्रियकामः इन्द्रम्, प्रजाकामः प्रजापतीन् यजेत् ।।२।।

अनुवाद— ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) चाहने वाले को ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिए, इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे, प्रजा (सन्तान) चाहने वाला प्रजापितयों की पूजा करे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मणस्पतिं वेदस्य पतिं ब्रह्माणम् । इन्द्रियपाटवकामस्त्वन्द्रम् । प्रजाकामः प्रजापतीन् दक्षादीन् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणस्पति शब्द वेदों के स्वामी ब्रह्माजी का बोधक है। इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करें और सन्तान चाहने वाला दक्ष इत्यादि प्रजापतियों की पूजा करे।।२।।

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम्। वसुकामो वसून्रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान्।।३।।

अन्वयः - श्रीकामः मायां देवीम्, तेजः कामः विभावसुम्, वसुकामः वसून् वीर्यवान् वीर्यकामः रुद्रान् यजेत् ।।३।।

अनुवाद— श्रीचाहने वाले को दुर्गा देवी की पूजा करनी चाहिए, तेज चाहने वाला अग्नि की पूजा करे, धन चाहने वाला वसुओं की आराधना करे और गला काटने आदि साहसिक कार्य करने वाले को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मायां दुर्गाम् । विभावसुमग्रिम् । वसुकामो धनार्थो । वीर्यं प्रभवस्तत्कामो वीर्यवान्सन् रुद्रान् यजेत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

माया शब्द से दुर्गादेवी को कहा गया है, विभावसु अग्नि को कहते हैं । धन चाहने वाले को वसुओं की पूजा करनी चाहिए, पराक्रम चाहने वाले पराक्रमियों को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ।।३।।

अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् । विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥४॥

अन्वयः— अत्राद्यकामः तु अदितिम्, स्वर्गकामः अदितेः सुतान्, राज्यकामः विश्वान्देवान् विशाम् संसाधकः साध्यान् यजेत् ।।४।।

अनुवाद अत्र इत्यादि चाहने वाले को अदिति की आराधना करनी चाहिए, स्वर्गप्राप्त करना चाहने वाले को देवताओं की आराधना करनी चाहिए, राज्य चाहने वाले को विश्वेदेवों की पूजा करनी चाहिए और प्रजाओं को अनुकूल बनाये रखना चाहने वाले को साध्य देवताओं की आराधना करनी चाहिए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अन्नाद्यं भोज्यं भक्ष्यं च अदितेः सुतान् द्वादशादित्यान् । विशां देशस्थप्रजानां स्वाधीनतामिच्छन् साध्यान्यजेत् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

भोज्य तथा भक्ष्य पदार्थों को अन्नाद्य शब्द से कहा गया है। भोज्य भक्ष्य पदार्थों को चाहने वाले को अदिति की पूजा करनी चाहिए। स्वर्ग चाहने वाले को अदिति के पुत्र द्वादशादित्यों की आराधना करनी चाहिए। अपने देश की प्रजाओं को अपने अधीन बनाना चाहने वाला राजा साध्य देवताओं की पूजा करे।।४।।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत्। प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ।।५।।

अन्वयः आयुष्कामः अश्वनौ देवौ, पृष्टिकामः इलाम्, प्रतिष्ठा कामः पुरुषः लोकमातरौ रोदसी यजेत् ॥५॥ अनुवाद आयु चाहने वाला दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा करें; पृष्टि चाहने वाला पृथिवी की तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला पुरुष पृथिवी और आकाश की पूजा करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इलां पृथ्वीम् । प्रतिष्ठा स्थानादप्रच्युति: । रोदसी द्यावाभूमी ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इला शब्द पृथिवी का वाचक है, अपने स्थान पर बने रहने को प्रतिष्ठा कहते हैं । रोदसी शब्द द्युलोक (अकाश) और भूमि दोनों का वाचक है । द्युलोक और भूमि ये दोनों लोक माताएँ हैं ॥५॥

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् । आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ॥६॥

अन्वयः रूपाभिकामः गन्धर्वान्ः स्त्रीकामः अप्सरउर्वशीम्, सर्वेषाम् आधिपत्यकामः परमेष्ठिनाम् यजेत् ।।६।। अनुवाद सौन्दर्य प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष गन्धर्वों का यजन करेः; सुन्दर स्त्री प्राप्त करना चाहने वाले को उर्वशी नामक अप्सरा की पूजा करनी चाहिए, और सबों पर स्वामित्व प्राप्त कने की इच्छा वाला ब्रह्माजी का यजन करें ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अप्सराश्चासावुर्वशी च ताम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अप्सरउर्वशीम् पद का विग्रह है अप्सराश्चा सौ उर्वशी ताम् । इस तरह इसपद में कर्मधारय समास हैं ॥६॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् । विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थं उमां सतीम् ॥७॥ अन्वयः— यशः कामः यज्ञं यजेत्, कोश कामः प्रचेतसम् यजेत विद्याकामः गिरिशं यजेत, दाम्पत्यार्थं सतीम् उमाम् यजेत् ॥७॥

अनुवाद— यश की कामना वालों को यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए, कोश प्राप्त करने की इच्छा वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए, विद्या प्राप्त करने की इच्छा वाले को शिवजी की पूजा करनी चाहिए और पित-पत्नी में प्रेम चाहने वाले को पितव्रता पार्वती जी की पूजा करनी चाहिए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञं यज्ञोपाधिं विष्णुम् । कोशो वसुसंचयः । वसुकाम इत्यत्र धनमात्रमिति भेदः । दाम्पत्यमन्योन्यप्रीतिस्तदेवार्थौ यस्य सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ शब्द से यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु को कहा गया है। धन संपत्ति के संचय को ही वसु कहते है।

अतएव धन सम्पत्ति के संचय को चाहने वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए। यदि कोई कहे कि तीसरे रिलोक में वसु चाहने वाले को वसुओं की पूजा करने की बात कही गयी है और यहाँ कोश चाहने वाले के लिए प्रचेता की आराधना करने की बात कैसे कही गयी हैं? यह तो पुनरुक्ति है। तो इसका उत्तर है कि वसुशब्द केवल धन का बोधक है और कोश शब्द धनसंपत्ति के संचय को कहा जाता है। अतएव यह दोनों में अन्तर है। दाम्पत्य शब्द का अर्थ है, पित और पत्नी में रहने वाला परस्पर में एक दूसरे के प्रति प्रेम, उसकी प्राप्ति के लिए पार्वती देवी की आराधना करनी चाहिए।।।।।

धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्यितॄन्यजेत् । रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्रणान् ॥८॥

अन्वय:— धर्मार्थम्, उत्तमश्लोकम् तन्तुन् तन्वन् पितॄन् रक्षाकामः पुण्यजनान् ओजस्कामः मरुद्रणान् यजेत् ।।८।। अनुवाद— धर्म की प्राप्ति करना चाहने वाले भगवान् विष्णु की उपासना करे, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितृगणों की आराधना करनी चाहिए, बाधाओं से बचने की इच्छा वाले को यक्षों की पूजा करनी चाहिए तथा बल चाहने वाले को मरुद्रगणों की आराधना करनी चाहिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मार्थो धर्मकामः । उत्तमश्लोकोपाधिं विष्णुम् । तन्तुं तन्वन् संतानवृद्धिमन्विच्छन् । रक्षा बाधानिवृत्तिस्तत्कामः । पुण्यजनान्यक्षान् । ओजो बलं तत्कामो मरुद्रणान्देवान् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

धर्म चाहने वाले को उत्तम श्लोक नामक भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितरों की पूजा करनी चाहिए। जो होने वाली बाधाओं को दूर करना चाहे वह यक्षों की पूजा करे तथा बल प्राप्त करने की इच्छा वाले को मरुद्रण नामक देवताओं की पूजा करनी चाहिए।।८॥

राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्विभचरन्यजेत् । कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥९॥

अन्वयः - राज्यकामः मनून् देवान्, अभिचरन् तु निऋतिम्, काम कामः सोमम्, अकामः परम् पुरुषं यजेत् ॥९॥ अनुवाद - राज्य की प्रप्ति के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए । अभिचार कर्म करने के लिए निऋति देवता की आराधना करे । भोगों की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा की आराधना करे और निष्कामत्व की प्राप्ति के लिए परम पुरुष परमात्मा की आराधना करे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

राज्यं राजत्वं तत्कामो मनून्देवान्मन्वन्तरपालान् । राज्ञः कर्म राज्यं तत्कामो विश्वान्देवानिति विशेषः । अभिचरञ्छत्रुमरणमिच्छन् निर्ऋतिं राक्षसम् । कामकामो भोगेच्छुः । आकामो वैराग्यकामः । पुरुषं परं प्रकृतिव्यतिरेकोपाधिमीश्वरम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

राज्य शब्द से यहाँ राजत्व को कहा गया है। उसकी प्राप्त के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए। राजा के कर्म को राज्य कहते हैं उसकी प्राप्त के लिए विश्वेदेवों की उपासना करे; अतएव यहाँ पर द्विरुक्ति नहीं है। शत्रुओं को मारने के कर्म को अभिचार कर्म कहते हैं। उसको करने के लिए निऋति देवता की पूजा करे। भोगों को चाहने वाला चन्द्रमा की पूजा करे। जो वैराग्य सम्पन्न होना चाहे वह परम पुरुष प्रकृति रूपी उपाधि से रहित पुरुष ईश्वर की आराधना करे।।९।।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः । तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥

अन्वयः --- अकामः सर्वकामः वा मोक्षकामः उदारधीः तीब्रेण भक्तियोगेन परम् पुरुषं यजेत् ॥१०॥

अनुवाद बुद्धिमान पुरुष चाहे निष्काम हो, या सभी प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा वाला हो या मोक्ष चाहने वाला हो वह तीब्र भक्तियोग के द्वारा परम् पुरुष परमात्मा की आराधना करे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अकाम एकान्तभक्तः उक्तानुक्तसर्वकामो वा पुरुषं पूर्णं निरूपाधिम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ अकाम शब्द से ऐकान्तिक भक्त को कहा गया है। सर्वकाम शब्द का अर्थ है कि जो ऊपर बतलायी गयी हैं अथवा नहीं बतलायी गयी हैं, उन सभी कामनाओं से युक्त पुरुष, अथवा जो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हो वह पुरुष सभी उपाधियों से रहित पूर्ण पुरुष परमात्मा की आराधना करे।।१०।।

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः । भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥११॥

अन्वयः इह यजताम् एतावान् एव निःश्रेयसोदयः यत् भागवतसङ्गतः भगवति अचलः भावः ॥११॥

अनुवाद— इस संसार में जितने भी उपासक हैं, उन सबों का सर्वाधिक हित इसी में है कि भगवद् भक्तों की सङ्गति को प्राप्त करके श्रीभगवान् में निश्चल प्रेमभाव को प्राप्त कर ले ॥११॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तनानादेवतायजनस्यापि संयोगपृथक्त्वेन भक्तियोगफलत्वमाह-एतावानिति । इन्द्रादीनपि यजतामिह तत्तद्यजनेन भागवतानां संगतो भगवत्यचलो भावो भक्तिर्भवतीति यत् एतावानेव निःश्रेयसस्य परमपुरुषार्थस्योदयो लाभः । अन्यतु सर्वं तुच्छमित्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले जितने भी देवताओं की आराधना बतलायी गयी है उस सबों का संयोगपृथक्त्वन्याय से भक्तियोग ही फल है। इस बात को एतावानेव॰ इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है। इन्द्र इत्यादि देवताओं की आराधना करने से भगवद् भक्तों का सङ्ग मिलता है। उसके फल स्वरूप भगवान् में जो निश्चल भक्ति का उदय होता है, वहीं परम पुरुषार्थ का उदय रूपी लाभ है। इससे भिन्न सारी बातें तुच्छ (व्यर्थ) हैं।

संयोग पृथक्त का अर्थ है संबन्ध की भिन्नता । भिन्न-भिन्न देवताओं की आराधना करने से भिन्न-भिन्न फलों की सिद्धि ही पृथक्त है । विभिन्न देवताओं की आराधना करने से पापों का नाश हो जाता है उसके फलस्वरूप भगवान् के भक्तों की सङ्गित होती है । भागवतों का सङ्ग मिलने से श्रीभगवान् में अविचल भिक्त होती है । इसी को संयोग कहते है । इन दोनों का समुदित रूप ही संयोगपृथक्त कहलाता है । उदाहरणार्थ खैर का यूप होना चाहिए । इस सूक्ति के अनुसार खैर का स्तम्भ यज्ञ का अङ्ग है । और खादिरोवीर्यकामस्य इस सूक्ति के अनुसार वीर्य चाहने वाले को यज्ञ में खैर की लकड़ी का ही स्तम्भ बनाना चाहिए । इस तरह से वह वीर्य (पराक्रम) प्रदान करने वाला भी है । उसी तरह अनेक देवताओं की आराधना विभिन्न फलों को प्रदान करने वालो होने के साथ ही श्रीभगवान् की भिक्त को भी प्रदान करती है । इस तरह दोनों प्रकार का फल प्रदान करने वाले इन्द्रादि देवताओं की आराधना श्रीहर की भिक्त की प्राप्ति की कामना से ही करनी चाहिए । इसीलिए गोपियों ने कात्यायनी देवी की आराधना श्रीभगवान् को पित बनाने की कामना से की थी ।।११।

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः । कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

अन्वयः यत् आप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रं संमतपथः भक्तियोगः, कः निर्वृतः हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ।।१२।।

अनुवाद — जिस भागवत सङ्गति से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उसके कारण राग आदि गुणों का समूह पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है और उसके पश्चात् अन्तः करण शुद्ध होने से आनन्द का अनुभव होने लगता है, इन्द्रियों के विषयों में आसिक नहीं रहती है। कैवल्य मोक्ष का सर्व सम्मत मार्ग भिक्तयोग हो जाता है। भगवान् की ऐसी कथाओं का चस्का लग जाने पर उससे कौन प्रेम नहीं करेगा ?।।१२।।

भावार्थ दीपिका

भागवतसङ्गत इत्यनेन सूचितां हरिकथारितं स्तौति-ज्ञानिमिति । यत् यासु कथासु ज्ञानं भवित । कीदृशम् । आ सर्वतः प्रतिनिवृत्तमुपरतं गुणोमींणां रागादीनां चक्रं समूहो यस्मात्तत् । उत अनन्तरम् । तद्धेतुरात्मप्रसादश्च । यत्र यासु मनःप्रसादहेतुः, गुणेषु विषयेष्वसङ्गो वैराग्यं च । उभयत्रेति पाठे इहामुत्र च गुणेष्वसङ्गः । कैवल्यमित्येव संमतः पन्थाः यो भक्तियोगः । निर्वृतः श्रवणसुखेन । अन्यत्रानिर्वृत इति वा । तासु हरिकथासु को रितं न कुर्यात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें श्लोक के भागवत सङ्गतः के द्वारा सूचित श्रीहरिकथा की प्रशंसा ज्ञानं यदा इस श्लोक से करते हैं। श्रीहरि कथाओं से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उससे सभी प्रकार के रागादि समूह पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाते हैं। अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है और विषयों से वैराग्य हो जाता है तथा मुक्ति प्राप्ति के मार्ग स्वरूप श्रीभगवान् में प्रेमा भिक्त की उत्पत्ति हो जाती है उससे तृप्त हुआ कौन ऐसा मानव होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं से प्रेम न करे। ११२।।

शौनक उवाच

इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः। किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासिकमृषिं कविम् ॥१३॥ अन्वयः— इति अभिव्याहृतं निशम्य भरतर्षभः राजा वैयासिकिम् ऋषिं कविम् किम् अन्यत् भूयःपृष्टवान् ॥१३॥

शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा

अनुवाद - श्रीशुकदेवजी द्वारा कही गयी इन बातों को सुनकर भरतवंशियों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ने परंब्रह्म का साक्षात् करने वाले शब्दब्रह्मनिष्ठ शुकदेवजी से दूसरी कौन सी बात पूछा ?।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अभिव्याहतमुक्तम् । ऋषिं परब्रह्मदर्शिनम् । कविं शब्दब्रह्मनिष्णातम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शुकदेवजी के लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है— १. ऋषिम् इसका अर्थ है परंब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले और कवि शब्द का अर्थ है वेदविद्यानिष्णात । इस तरह से शुकदेवजी ने उपर्युक्त बातों को राजा परीक्षित् को बतलाया था ॥१३॥

एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हीस भाषितुम् । कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदिस ध्रुवम् ॥१४॥

अन्वय:— हे विद्वन् सूत एतत् शुश्रूषतां नः भाषितुम् अर्हीस । सतां सदिस हरिकथोदर्काः कथाः ध्रुवम् स्युः ।।१४।। अनुवाद— हे विज्ञ सूतजी हमलोग इसे सुनना चाहते हैं अतएव इसे आप हमलोगों को सुनाएँ क्योंकि सत् पुरुषों की सभा में उस कथा को तो अवश्य होनी चाहिए जिसका पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

श्रवणेच्छायां हेतु:-हरिकथा एव उदर्क: उत्तरफलं यासु ता: कथा: सतां भागवतानां सदिस सभायां स्यु: ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

शौनकादि महर्षियों ने राजा परीक्षित् के द्वारा जिज्ञासित बातों को सुनने की इच्छाका कारण बतलाते हुए कहा कि भागवतों की सभा में तो उन कथाओं को अवश्य कहा जाना चाहिए जिन कथाओं का पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो । अतएव हमलोग उसे सुनना चाहते हैं ॥१४॥

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः। बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे॥१५॥

अन्वयः स वै महारथः पडवेयः राजा भागवतः यः बालकीडनकैः कीडन् कृष्णक्रीडाम् आददे ।।१५।।

अनुवाद — निश्चित रूप से महारथी तथा पाण्डुवंशावतंस राजा परीक्षित् भगवद्भक्त थे, वे बाल्यावस्था में बालकों के खिलौनों द्वारा भी भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडाओं को ही किया करते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-स वा इति द्वाभ्याम् । कृष्णपूजादिरूपां क्रीडां यः स्वीकृतवान् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात का ही विस्तार से वर्णन सवै० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा किया गया है। राजा परीक्षित् महारथी थे। वे पाण्डवों के वंश का संवर्धन करने वाले थे। वे भगवद्भक्त थे क्योंकि बाल्यावस्था में भी जब वे खिलौनों से खेला करते थे तो भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा रूपी खेल खेला करते थे।।१५।।

वैयासिकश्च भगवान् वासुदेवपरायणः । उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥१६॥

अन्वयः— भगवान् वैयासिकश्च वासुदेव परायणः । सतां समागमे हि उरुगायगुणोदाराः कथाः स्युः ।।१६।।

अनुवाद— भगवत स्वरूप शुकदेवजी भी भगवान् वासुदेव के भक्त थे। ऐसे भागवतों का समागम होने पर तो श्रीभगवान् की महती कथाओं की चर्चा अवश्य हुयी होगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उरुगायस्य गुणैरुदारा महत्यः कथाः स्युः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का एक नाम उरुगाय है। जहाँ पर भगवद् भक्तों का समागम होता है वहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण महान् कथाओं का होना स्वाभाविक ही है। अतएव उस कथा को आप हमलोगों को सुनायें।।१६।।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ। तस्यतें यत्क्षणो नीत उत्तमञ्लोकवार्तया ॥१७॥

अन्वयः उत्तम श्लोकवार्तया यत्क्षणः नीतः तस्य ऋते, यन् असौ उद्यन् अस्तं च पुंसाम् आयुः हरित ।।१७।। अनुवाद जो समय श्रीभगवान् सम्बन्धी चर्चा के द्वारा व्यतीत होता है, उसके अतिरिक्त समय और आयु को उदय और अस्त होते हुये सूर्य व्यर्थ में ही हरण करते रहते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

किंच वृथैव क्षीयमाणमायुर्हिरिकथया सफलं कुर्वित्याशयेनाह त्रिभि: । आयुरिति । असौ सूर्यः उद्यन्नद्रच्छन्नस्तमदर्शनं च यन् गच्छन् । यत् येन क्षणो नीतस्तस्य आयु: ऋते वर्जियत्वा वृथैव हरित ।।१७।।

आयुर्हरति॰ इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा बतलाया जा रहा है कि व्यर्थ ही विनष्ट होने वाली आयु को श्रीहरि की कथा के द्वारा ही सफल बनाना चाहिए। ये सूर्य उदय और अस्त होते हुए जिसका समय श्रीहरि की कथा में बितता है उसको छोड़कर दूसरों की आयु का व्यर्थ में ही हरण करते हैं ।।१७।।

तरवः किं न जीवन्ति भस्ताः किं न श्वसन्त्युत । न खादन्ति न मेहन्ति किं प्रामपशवोऽपरे ॥१८॥

अन्वयः — तरवः न जीवन्ति किम्, उत भस्नाः न श्वसन्ति किम्, अपरे ग्राम पशव न खादन्ति, न मेहन्ति किम् ।।१८।। अनुवाद — वृक्ष जीवित नहीं रहते है क्या ? लुहार की धौंकनी श्वास नहीं लेती है क्या ? ग्रामपशु तथा दूसरे पशु खाने और मैथुनादि क्रियाओं को नहीं करते हैं क्या ?।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु जीवनमेव तेषामायुषः फलमस्ति तत्राह-तरव इति । ननु तेषां श्वासो नास्ति तर्हि, भस्त्राश्चर्मकोशाः । ननु तासामाहारादिकं नास्ति तत्राह । न खादन्ति नाश्चन्ति, न मेहन्ति रेतःसेकं मैथुनं न कुर्वन्ति किम् । उत अपि । नराकारं पशुं मत्वाह-अपरे इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भगवत् कथा पराङ्मुख मनुष्यों की आयु का जीवित रहना ही फल है तो ऐसी स्थिति में उन मनुष्यों में और वृक्षों में क्या अन्तर है ? वे भी जीवित रहते हैं। यदि कहें, कि वृक्ष जीवित तो रहते हैं किन्तु वे मनुष्य क तरह श्वास नहीं लेते हैं तो इसका उत्तर है कि श्वास तो लुहार की भाथी भी लेती है। यदि कहें कि लुहार की भाथी श्वास तो लेती है किन्तु वह आहार आदि को ग्रहण नहीं करती है। तो इसका उत्तर है कि इन नराकृति पशुओं के समान ग्रामपशु भी खाते हैं तथा मैथुनादि क्रियाओं को करते हैं अतएव ये मनुष्य तो उन पशुओं के ही समान हैं ॥१८॥

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः । न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाय्रजः ॥१९॥

अन्वयः यत् कर्णपथा जातु गदाग्रजः नाम न उपेतः सः पशुः पुरुषः श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः ।।१९।।

अनुवाद जिसके कानों में कभी भी भगवान् श्रीकृष्ण की कथा नहीं पड़ी वह मनुष्य कुता, ग्राम सूकर, ऊँट तथा गधे के समान जानने योग्य हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । श्वादिभिः संस्तुतः सदृशो निरूपितः । यस्य कर्णपथं कदाचिदपि नागतः । स अवज्ञास्पदत्वाच्छ्वभिः, कश्मलविषयासक्तत्वाद्विड्वराहेर्ग्रामसूकरैः, कण्टकवदुःखदविषयासक्तत्वादुष्ट्रैः भारवाहित्वात्खरैस्तुल्य इत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं जिस व्यक्ति ने अपने कानों से श्रीभगवान् की कथा को नहीं सुना है वह कुत्ते के समान अपमान का पात्र है, निन्दित विषयोपभोग में आसक्त रहने के कारण ग्रामसूकर के समान है, कण्टकपूर्ण दु:ख प्रदान करने वाले विषयों में आसक्त रहने के कारण कंटीले पदार्थों को खाने वाले केंट्र के समान तथा पारिवारिक भार वहन करने के कारण भारवाही गधे के समान है ।।१९।।

बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य । जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥

अन्वयः - उरुक्रमस्य विक्रमान् न शृण्वतः नरस्य कर्णपुटे बत बिले । हे सूत उरुगायगाथाः न गायती असती जिह्ना दुर्दुरिका इव ।।२०।।

अनुवाद — श्रीभगवान् की लीलाओं को नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान वस्तुतः बिल के ही समान है तथा हे सूत जी भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का कभी गायन नहीं करने वाली मनुष्य की दोष दूषित जीभ मेढक की जीभ के समान व्यर्थ है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तस्याङ्गानि च निष्फलानीत्याह- बिले इति पञ्चिभिः । बतेति खेदे । न शृण्वतोऽशृण्वतो नरस्य ये कर्णपुटे ते बिले वृथारन्ध्रे । न चेदुपगायति तस्य जिह्वा असती दुष्टा दुर्दुरो भेकस्तदीया जिह्नेव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भगवत्कथा पराङ्मुख रहने वाले मनुष्य के अङ्ग भी व्यर्थ हैं, इस बात का प्रतिपादन **बिले बतोरुक्रम इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं। बत पद का प्रयोग खेद के अर्थ में हुआ है। श्रीभगवान् की कथा को कभी नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान बिल के समान हैं तथा भगवन्नामोचारण नहीं करने वाली उसकी दोष दूषित जीभ बरसाती मेढक के जीभ के समान व्यर्थ हैं।।२०।।

भारः परं पट्टिकरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् । शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥

अन्वय:— पट्टिकरीटजुष्टं मुकुन्दं अपि यत् उत्तमाङ्गं न नमेत् तत् परं भार:, वा यत् लसत्काञ्चनकङ्कणौ हरे: सपर्यां न कुरुत: करौ शावौ ।।२१।।

अनुवाद— रेशमी वस्त्र तथा मुकुट से युक्त भी वह शिर अत्यन्त भार स्वरूप है जो भगवान् के समक्ष प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है तथा सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से युक्त वे दोनों हाथ मूर्दें के हाथ के समान हैं जो श्रीभगवान् की सेवा में नहीं लगते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

पट्टवस्त्रोष्णीषेण किरीटेन च जुष्टमपि शिरो यदि न नमेत्तर्हि केवलं भार एव । शवो मृतकस्तत्करतुल्यौ । लसती काञ्चनकङ्कणे ययोस्तौ । अप्यर्थे वाशब्द: ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

रेशमी वस्त्र से निर्मित पगड़ी और मुकुट से युक्त वह शिर केवल भार स्वरूप है यदि वह भगवान् मुकुन्द को प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है। जिन हाथों से श्रीभगवान् की सेवा नहीं की जाती हैं, वे सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से भूषित हाथ भी मूर्दें के हाथ के समान व्यर्थ हैं। इस श्लोक का वा शब्द अप्यर्थक है।।२१।।

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये । पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेयौँ ॥२२॥

अन्वयः— नराणां ये नेत्रे विष्णोः लिङ्गानि न निरीक्षतः ते बर्हायिते, नृणां यौ पादौ हरेः क्षेत्राणि न ब्रजतः तौ द्रुमजन्म भाजौ ।।२२।।

अनुवाद मनुष्यों के जो नेत्र श्रीभगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं करते हैं वे नेत्र मयूर पिच्छ में विद्यमान नेत्रों के समान व्यर्थ हैं तथा मनुष्यों के जो पैर श्रीभगवान के क्षेत्रों की यात्रा नहीं करते हैं वे दोनों पैर वृक्ष होने के लायक हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

चे नचने विष्णोर्मूतीर्न निरीक्षेते ते बहाँथिते मयूरिपच्छनेत्रतुरूथे । दुमवज्जन्म भजत इति तथा । वृक्षमूलतुरूयावित्यर्थः ।।२२।। भाव प्रकाशिका

जिन नेत्रों के द्वारा भगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं किया जाता है, वे नेत्र उसी तरह से व्यर्थ हैं जिस तरह मयूर पिच्छ में रहने वाले नेत्र व्यर्थ हैं। तथा मनुष्यों के वे पैर भी वृक्ष ही होने लायक है जिन पैरों से भगवान् के क्षेत्रों की यात्रा नहीं की जाती है। वे पैर वृक्ष की जड़ के समान हैं।।२२।।

जीवञ्छवो भागवताङ्ग्रिरेणुं न जातु मत्योंऽभिलभेत यस्तु । श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥२३॥

अन्वयः— यस्तु मर्त्यः भागवताङ्घिरेणुं न जातु अभिलभेत सः जीवन् शवः, यस्तु मनुजः विष्णुपद्याः तुलस्याः गन्धं न वेद सः श्वसन शवः ॥२३॥

अनुवाद जिस मनुष्य ने भगवद् भक्तों के चरणों की धूलि को कभी भी अपने शिर पर नहीं चढ़ाया वह जीवित मुर्दा है तथा जिसने कभी भी श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी की गन्ध को नहीं सूंघा वह श्वास लेता हुआ मुर्दा है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

नाभिलभेत अभितो न स्पृशेत्र धारयेत् । श्रीविष्णुपद्याः श्रीविष्णुपदलग्नायाः । न वेदेति अवघ्राय नाभिनन्देदित्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

जिसने जीवन में श्रीभगवान् के भक्तों के चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढ़ाने के लिए नहीं प्राप्त किया वह जीते जी मुर्दा है तथा जिसने श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी को सूंघकर उसकी सराहना कभी नहीं की वह श्वास लेते हुए मुदें के समान है ॥२३॥

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधे यै: । न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥

अन्वयः— बत तदिदं हृदयं अश्मसारं यद्गृह्यमाणैः हिरनामधेयैः न विक्रियेत । यदा विकारः तदा नेत्रे जलम् गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वह हृदय पत्थर के समान अत्यन्त कठोर है जो उच्चारण किए जाने वाले श्रीहरि के नामों को सुनकर पिघल नहीं जाता है। जब हरिनामों को सुनकर हृदय में विकार उत्पन्न होता है उस समय आँखों में आँसू भर जाते हैं तथा रोओं में रोमाञ्च हो जाता है।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अश्मवत् सारो बलं काठिन्यं यस्य । विक्रियालक्षणमाह-अथेति । गात्ररुहेषु रोमसु हर्ष उद्गम: ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अश्म पत्थर को कहते हैं उसके समान कठोर को अश्मसार कहा जाता है। भगवन् नाम संकीर्तन को सुनकर जिस हृदय में विकार नहीं उत्पन्न होता है, वह हृदय पत्थर के समान कठोर है। जब हृदय में विकार उत्पन्न हो जाता है तो आँखों में अश्रुजल भर जाता है और रोमाञ्च हो जाता है। रोंगटे खड़े हो जाते हैं। १४।।

अथाभिधेह्यङ्ग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः । यदाह वैयासिकरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्याय: ॥३॥

अन्वयः अथ हे अङ्ग अनुकूलं प्रभाषसे साधुपृष्टः भागवतप्रधानः आत्मविद्याविशारदः वैयासिकः यत् नृपति आह तत् अभिधेहि ।।२५।।

अनुवाद हे सूतजी आप अत्यन्त अनुकूल बातें सुनाते हैं। राजा परीक्षित् द्वारा अच्छी तरह से पूछे जाने पर आत्मविद्या में पारङ्गत श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कहा उसे आप हमें सुनायें ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादभक्तस्य सर्वमेतद्व्यर्थम् । मनसोऽनुकूलं प्रियं च ब्रूषे । अथ अतः साधु पृष्टः सन् वैयासिकर्नृपतिं प्रति यदाह तदिभिधेहीति ।।२५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

चूकि भगवद् भक्ति से रहित मनुष्यों के ये सारे देह तथा इन्द्रियों की पटुता आदि व्यर्थ है । और आप हमलोगों के अनुकूल बातें कहते हैं । अतएव राजा के द्वारा नियमानुसार प्रश्न किए जाने पर श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कुछ भी सुनाया उन सारी बातों को आप हमलोगों को सुनाइये ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के द्वितीयस्कन्य के तृतीय अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३।।



चौथा अध्याय

राजा परीक्षित् का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्रीशुकदेवजी द्वारा कथा का आरम्भ

सूत उवाच

वैयासकेरिति वचस्तत्विनश्चयमात्मनः । उपधार्य मितं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥१॥

अन्वयः— वैयासकेः इति आत्मनः तत्त्वनिश्चयम् वचः उपधार्य औतरेयः कृष्णे सर्ती मितं व्यधात् ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद — श्रीशुकदेवजी के भगवत्तत्त्विनश्चयात्मक इस वाणी को अपने मन में धारण करके उत्तरा के पुत्र राजा परीक्षित् ने भगवान् श्रीकृष्ण में अपनी शुद्ध बुद्धि को लगा दी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तुर्ये परीक्षिता पृष्टं सृष्ट्यादि हरिचेष्टितम् । शुकेन ब्रह्मतत्पुत्रसंवादेनोपवर्ण्यते ।।१।। राज्ञ प्रश्नं कथयितुं तस्य प्राक्तनीं स्थितिमाह चतुर्भिः । वैयासकेः शुकस्य इति एवं भूतमात्मनस्तत्त्वस्य निश्चयो यस्मात् तद्वचः उपघार्य आकलय्य सतीं कृष्ण एव सेव्यो नान्य इत्येवं भूताम् ।।१।।

इस चौथे अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा सृष्टि तथा श्रीहरि की चेष्टाओं के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने ब्रह्माजी तथा उनके पुत्र नारदजी के संवाद क माध्यम से दिया है ॥१॥

राजा के प्रश्न का वर्णन करने के लिए उसके पहले की स्थिति का वर्णन वैयासके: इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा किया गया है। श्रीशुकदेवजी के इस प्रकार से आत्मतत्त्व की निश्चायिका वाणी का विचार करके राजा ने भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए दूसरे किसी की नहीं, इस प्रकार की अपनी शुद्धबुद्धि को भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया ॥१॥

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु । राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥२॥

अन्वय: आत्म-जाया-सुत-आगार-पशु-दिवण-बन्धुषु अविकले राज्ये च नित्यं विरूढां ममतां जहाँ ।।२।। अनुवाद राजा ने शरीर, पत्नीं, पुत्र, गृह, पशु, सम्पत्ति तथा बान्धवों में एवं निष्कण्टक राज्य में जो नित्य के अभयास के कारण ममता सुदृढ हो गयी थी उसका त्याग कर दिया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मा देह: । पश्चो गजादय: ।।२।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है और पशु शब्द से हाथी घोड़े इत्यादि कहे गये हैं। इन सभी वस्तुओं में जो राजा की ममता अत्यन्त सुदृढ हो गयी थी उसका राजा ने शुकदेवजी की बाणी को सुनकर त्याग कर दिया ॥२॥

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः । कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥३॥

अन्वयः हे सत्तमाः कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्द्यानाः महामनाः हे सत्तमाः यन्मां पृच्छथ इमम् एव अर्थं प्रपच्छ । अनुवाद हे श्रेष्ठ महर्षियों ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव श्रवण में श्रद्धा करने वाले महामनस्वी राजा परीक्षित् उसी प्रश्न को पूछा जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

इममेवार्थं हरिलीलालक्षणम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् जिस तरह से आपलोग मुझ से श्रीहरि की लीला के विषय में पूछते हैं उसी तरह से राजा ने भी शुकदेवजी से श्रीहरि की लीला के ही विषय में पूछा ॥३॥

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् । वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥४॥

अन्वयः संस्थां विज्ञाय त्रैवर्गिकं यत् कर्म तत् संन्यस्य, भगवित वासुदेवे आत्मभावं दृढं गत: ।।४।।

अनुवाद राजा अपनी मृत्यु के विषय में जानकर धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी संपूर्ण कर्मों से संन्यास लेकर भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को पूर्ण रूप से प्राप्त हो गये थे ऐसे राजा श्रीशुकदेवजी से पूछे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

संस्थां मृत्युम् । त्रैवर्गिकं धर्मार्थकामप्रधानम् । संन्यस्य त्यक्त्वा आत्मभावं परमप्रेम्णा भगवदात्मत्वं गतः प्राप्तः सन् पप्रच्छ ।।४।।

राजा परीक्षित् इस बात को जान गये की मेरी मृत्यु सात दिन में हो जाने वाली है। इसीलिए उन्होंने धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी सभी कर्मों से संन्यास ले लिया। वे अत्यन्त प्रेम पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार के राजा ने शुकदेवजी से पूछा ॥४॥

राजोवाच

समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ । तमो विशीर्यते महां हरेः कथयतः कथाम् ॥५॥

अन्वयः— हे अनघ ! ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तव वच: समीचीनम्, हरे: कथा: कथयत: तव मह्मम् तम: विशीर्यते ।।५।।

राजा ने कहा

अनुवाद — हे निष्पाप ब्रह्मन् ! आप सर्वज्ञ हैं, आपकी वाणी समीचीन है (सुन्दर हैं) । आपके द्वारा श्रीहरि की कथा कहे जाने के कारण मेरा अज्ञान दूर हो रहा है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम तमोऽज्ञानं विशीयंते नश्यति तव कथयतः सतः । अतः समीचीनम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आप जो श्रीभगवान् की कथा कह रहे हैं, उसको सुनकर मेरा अज्ञान विनष्ट हो रहा है, अतएव आपकी वाणी अत्यन्त सुन्दर है ॥५॥

भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया । यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमघीश्वरैः ॥६॥

अन्वय: — आत्ममायया भगवान् अधीश्वरै: दुर्विभाव्यं इदं विश्वं यथा सृजते तदिदम् अहं भूय: विवित्सामि ॥६॥ अनुवाद — श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा भी नहीं जानने योग्य इस सम्पूर्ण जगत् की रचना कैसे करते है ? इस बात को मैं पुन: जानना चाहता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पुनश्च वेदितुमिच्छामि । इदं दुर्विभाव्यमवितर्क्यं विश्वं यथा सृजित ।।६।।

भाव प्रकाशिका

में पुनः यह जानना चाहता हूँ कि श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा इस अवितर्क्य जगत् की सृष्टि कैसे करते हैं ॥६॥

यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः। यां यां शक्तिमुपाश्चित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्॥ आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन् करोति विकरोति च

अन्वयः— विभुः यथा गोपायित पुनःयथा संयच्छते । यां यां शक्तिम् उपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्, आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥

अनुवाद— वे व्यापक परमात्मा किस तरह से जगत् की रक्षा करते हैं और अन्त में वे किस प्रकार से इसका संहार भी कर देते हैं। अनेक शक्तियों से सम्पन्न परम-पुरुष किस-किस शक्ति को अपनाकर स्वयं क्रीडा करते हैं? और ब्रह्मादि रूप वाले जगत् को क्रीडा कराते हैं, वे किस तरह से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं और अन्त में इसे विनष्ट कर देते हैं।।७।।

भावार्थ दीपिका

गोपायित पालयित । संयच्छते संहरते । पुरुशक्तिर्बहुशक्तिमान् । क्रीडन् यथा करोति । आत्मानं ब्रह्मादिरूपिणं क्रीडयन् विकरोति विविधं करोति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने पूछा कि परमात्मा किस प्रकार से संसार की रक्षा करते हैं ? और किस प्रकार से इस जगत् का संहार करते हैं ? किन-किन शक्तियों को अपना कर परमात्मा इस जगत् को खिलौना बना देते हैं और ब्रह्मा आदि रूप से उसके साथ वे किस तरह से अपने को अनुरश्चित करते है ? वे किस तरह से इस जगत् का निर्माण करके इसका अनेक रूपों में विस्तार करते हैं ?॥७॥

नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्धुतकर्मणः । दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥८॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ! अद्भुतं कर्मणः भगवतः हरेः चेष्टितम् कविभिः अपि दुर्विभाव्यं इव आभाति ।।८।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीहरि की चेष्टाएँ निश्चित रूप से बड़े-बड़े विज्ञ पुरुषों के लिए भी दुर्विभाव्य के समान है । अर्थात् वे प्रयास करके भी उसे नहीं समझ सकते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका- नहीं है ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को अद्भुत कर्म करने वाला बतलाकर यह कहा गया है कि श्रीभगवान् की चेष्टाओं को बड़े-बड़े विज्ञ पुरुष भी नहीं जान सकते हैं तो औरों की कौन कहें ?।।८।।

यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा । बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥९॥

अन्वयः एकः पुरुष रूपेण युगपत् प्रकृतेः गुणः भूरिशः विभर्ति वा जन्माभिः कर्माणि कुर्वन् क्रमशः अपि विभर्ति ।।९।। अनुवाद एक ही परमात्मा पुरुष रूप से प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूप से जन्मों के द्वारा कर्मों को करते हुए क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

एक: पुरुषरूपेण युगपत्, जन्मभिर्ब्रह्माद्यवतारै: क्रमशो वा यथा प्रकृतेर्गुणान्गृह्णाति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा तो एक ही हैं वे अनेक कर्मों को करते हैं। तदर्थ वे अकेले पुरुष रूप से ही प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं, अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूपी जन्मों के द्वारा क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ?॥९॥

विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा । शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परिस्मिश्च भवान्खलु ॥१०॥

अन्वयः— भवान् खलु शाब्दे परिस्मिन् च ब्रह्मणि निष्णातः अतएव भगवान् यथा मे एतत् विचिकित्सितम् ब्रवीतु ।।१०।। अनुवाद— राजा ने कहा आप वेद तथा परंब्रह्म दोनों के पूर्ण से ज्ञाता हैं, अतएव आप मेरे इन संदेहों को यथोचित रूप से दूर करें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

विचिकित्सितं संदिग्धम् । शाब्दे ब्रह्मणि विचारेण निष्णातः परस्मिन्ननुभवेन ।।१०।।

विचिकित्सतसं देहास्पद विषय को कहते हैं। राजा ने शुकदेवजी से निवेदन किया कि हे भगवन् आप तो शब्दब्रह्म तथा परंब्रह्म दोनों के पूर्ण रूप से ज्ञाता हैं। फलत: आप मेरे इन संदहों को यथोचित रूप से दूर करें।।१०।।

सूत उवाच

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरे: । हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥११॥

अन्वयः इति राज्ञा हरे: गुणानुकथने उपामन्त्रित: हृषीकेशम् अनुस्मृत्य प्रतिवक्तुम् उपचक्रमे ।।११।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह राजा परीक्षित् के द्वारा श्रीहरि के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रार्थना किए जाने पर भगवान् हृषीकेश का स्मरण करके श्रीशुकदेवजी ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उपामन्त्रितः प्रार्थितः । प्रचक्रमे देवतागुरुनमस्कारादिरूपमुपक्रमं कृतवानित्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उपामन्त्रितः पद का अर्थ है प्रार्थित । अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से राजा के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिए राजा के प्रार्थना करने पर श्रीशुकदेवजी ने उनके प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥११॥

श्रीशुक उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थानिरोधलीलया । गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥

अन्वयः— सदुदभवस्थितिनिरोधलीलया, गृहीतशक्तित्रितयाय, देहिनामन्तर्भवाय, अनुपलक्ष्य वर्त्मने भूयसे, परस्मै पुरुषाथ नम: ।।१२।।

अनुवाद संसार की, सृष्टि, स्थिति और संहार रूप लीला करने के लिए जो परमात्मा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन शक्तियों को धारण करके विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर का रूप धारण करते हैं, अन्तर्यामी स्वरूप होने के कारण जिनकी प्राप्ति के मार्ग को जाना नहीं जा सकता है, ऐसे नि:सीम महिमा सम्पन्न परम पुरुष को नमस्कार है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह त्रयोदशिभ: । परस्मै सर्वोत्तमाय । तत्र हेतु:-भूयसे अपरिमितमिहम्ने । तद्दर्शयित । सत: प्रपञ्चस्य उद्भवादिषु निमित्तभूता या लीला तया गृहीतं ब्रह्मादिरूपेण रज आदि शक्तित्रितयं येन तस्मै । अन्तर्भवाय अन्तर्यामिणे । अतएव सर्वान्तरत्वादनुपलक्ष्यं वर्त्म यस्य ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए शुकदेवजी अपने प्रवचन का उपक्रम तेरह श्लोाकं में करते हैं। वे कहते हैं कि परमात्मा परंपुरुष है। अर्थात् वे ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। भूयसे कहकर उन्होंने श्रीभगवान् को अनन्त महिमा सम्पन्न बतलाया। वे भगवान् इस जगत् की सृष्टि, स्थिति (रक्षा) तथा संहार लीला करने के लिए करते है। अर्थात् जगत् के जन्मादि का मुख्य प्रयोजन भगवान् की लीला है। वे इस कार्य को करने के लिए, सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीन शक्तियों को अपनाकर विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर रूप हो जाते हैं। वे सभी शरीरधारियों

के शरीर में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं। अतएव उनकी प्राप्ति के मार्ग को आसानी से नहीं जाना जा सकता है। ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है।।१२॥

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये । प्रमा पुसा पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥१३॥

अन्वयः भूयः सद्वृजिनिष्कदे, असतामसंभवाय, अखिलसत्त्वमूर्तये, पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानाम् पुंसां अनुमृग्यदाशुषे नमः ॥१३॥

अनुवाद सत् पुरुषों के दु:ख को दूर करने वाले, दुष्टों की समृद्धि को रोक देने वाले, सम्पूर्ण जीव शारीरक तथा पारमहंस्य आश्रम में पुरुषों को उनके अभीष्ट पदार्थ को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को पुन: नमस्कार हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

विचित्रफलदातृत्वमनुस्मरन् प्रणमित । भूयः पुनश्च नमः । सतां धर्मवर्तिनां वृजिनच्छिदे दुःखहन्त्रे । असतामधर्मशीलानामसंभवायानुद्भवहेतवे । अखिलसत्त्वमूर्तये, तत्तद्देवतादिरूपेण तत्तत्फलदायेत्यर्थः । समग्रसत्त्वमूर्तये इति वा । पुनिरिति पूर्वोक्तोभयवैलक्षण्यमाह । पारमहंस्ये प्रत्यङिनिष्ठारूपे आश्रमे व्यवस्थितानां पुंसामनुमृग्यमेतित्ररसनेन पुनःपुनमृंग्यं यदात्मतत्त्वं तस्य दाशुवे दात्रे ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विचित्र फलों को प्रदान करने वाले हैं इस बात का स्मरण करके पुन: इस श्लोक से शुकदेवजी उनको नमस्कार करते हैं। वे भगवान् धार्मिक पुरुषों के कष्ट को दूर करते हैं, तथा जो अधार्मिक मनुष्य हैं उनकी होने वाली समृद्धि को रोक देने का काम करते हैं। सम्पूर्ण जगत् उनकी ही मूर्ति (शरीर) हैं। वे उन जीवों को विभिन्न देवताओं का रूप धारण करके उन सभी जीवों को फल प्रदान करते हैं। पुन: उन दोनों प्रकारों से विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं, पारमहंस्य आश्रम में आत्मानिष्ठा स्वरूप है। उस आश्रम को अपनाने वाले संन्यस्त पुरुषों के अभिन्नेत अर्थ को प्रदान करने वाले हैं ऐसे भगवान् को वे पुन: नमस्कार करते हैं। १३।।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाव सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् । निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

अन्तयः — सात्वतां ऋषभाय नमो नमस्ते अस्तु, कुयोगिनाम् विदूरकाष्ट्राय निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि रस्यते नम: ॥१४॥

अनुवाद — भगवद् भक्तों का पालन करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है। भगवद् भिक्त विहीन जीवों को जिनकी दिशा भी अत्यन्त दूर है अर्थात् उन लोगों के लिए श्रीभगवान् दुर्जेय हैं। श्रीभगवान् के समान ही कोई नहीं है, अतएव उनसे महान् होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे ऐश्वर्य से सम्पन्न अपने धाम में विहार करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सात्त्वतां भक्तानामृषभाय पालकाय । कुयोगिनां भक्तिहीनानां विदूरा काष्ठा दिगपि यस्य । दुर्ज्ञेयायेत्यर्थः । तदेवं वैषम्यप्रतीताविष निर्दोषत्वायाचिन्त्यमैश्चर्यमाह । निरस्तं साम्यमतिशयश्च यस्य यदपेक्षया अन्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्ति, तेन राषसा ऐश्वर्येण स्वधामनि स्वरूपे ब्रह्मणि रममाणाय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् भक्तों का पालन करते हैं तथा जो लोग भक्ति की भावना से विहीन हैं, ऐसे जीवों के लिए उनकी दिशा भी बहुत दूर है। अर्थात् उन जीवों के लिए श्रीभगवान् दुर्ज़ेय हैं। श्रीभगवान् का ऐसा ऐश्वर्य है कि उनके समान ही कोई नहीं है तो फिर उनसे अधिक ऐश्वर्यशाली कोई कैसे हो सकता है ? इस प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न श्रीभगवान् अपने धाम में सदा रमण किया करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१४॥

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्वणं यदर्हणम् । लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥

अन्वयः यत् कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं, यच्छ्वणं यदर्हणम् लोकस्य कल्मषं सद्यः विधुनोति, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१५।।

अनुवाद जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है उन पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सर्वसाधनेभ्यो भक्ते: श्रैष्ठ्यमनुस्मरन्त्रणमित । यत्कीर्तनमिति द्वाभ्याम् । अर्हणं पूजनम् । सुभद्रं मङ्गलं श्रवो यशो यस्य तस्मै ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी पुन: नमस्कार **यत्** कीर्तनम्० इत्यादि दो श्लोकों से करते हैं । अर्हण पूजन को कहते हैं । श्रीभगवान् की लीलाएँ मङ्गलमय हैं अतएव वे सुभद्रश्रवा हैं ॥१५॥

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः । विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१६॥

अन्वयः — विचक्षणाः यञ्चरणोपसादनात् उभयतः सङ्गं व्युदस्य गतक्लमाः ते ब्रह्मगतिं विन्दति तस्मै सुभदश्रवसे नमो नमः ॥१६॥

अनुवाद विवेकी पुरुष जिनके चरणों की शरणागित करके लोक और परलोक दोनों में होने वाली आसिक का परित्याग करके विना किसी परिश्रम के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय यश वाले श्रीभगवान को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विचक्षणा विवक्तिनो यस्य चरणयोरुपसादनादुपसत्तेर्भजनादन्तरात्मनो मनस उभयत्रेह च परत्र च सङ्गं व्युदस्य निरस्य। गतक्लमाः प्रयासरिहताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् के चरणों की शरणागित करके लोक एवं परलोक दोनों में होने वाली आसिक्त को अपनी अन्तरात्मा से निकालकर बिना किसी प्रयास के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं उन मङ्गलमय यश वाले भगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥१६॥

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः । क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥

अन्वयः— तपस्विनः, दानपराः, यशस्विनः, मनस्विनः मन्त्रविदः सुमङ्गलाः, यदर्पणं विना क्षेमं न विन्दन्ति तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१७।। अनुवाद बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी मन्त्रवेत्ता तथा सदाचार परायण भी अपने तप, दान आदि को श्रीभगवान् को समर्पित किए बिना कल्याण नहीं प्राप्त करते हैं, उन श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिशून्यानां सर्वसाधनवैफल्यं दर्शयत्रमित-तपस्विन इति । मनस्विनो योगिनः । सुमङ्गलाः सदाचाराः । यस्मिस्तपआद्यर्पणं विना । सुभद्रश्रवसे इत्यस्यावृत्तिर्यशःश्रवणादेः प्राधान्यज्ञापनाय ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवान् की भक्ति से रहित है, उन लोगों के द्वारा साधन रूप से अपनाये गये तप, दान, मनस्विता, यश, मन्त्र तथा सदाचार तब तक कल्याणप्रद नहीं होते हैं, जब तक कि उन साधनों को श्रीभगवान् को समर्पित नहीं कर दिया जाय। सुभद्रश्रवसे इस पद को बार-बार कहने का अभिप्राय है श्रीभगवान् का यश ही प्रधान हैं ॥१७॥

किरातहूणान्त्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसाादयः । येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

अन्वयः— किरात-हूण-आन्ध्र-पुलिन्द-पुल्कस, आभीरकङ्काः यवनाः खसादयः अन्ये च ये पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

अनुवाद किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन, तथा खस जाति के मनुष्य तथा दूसरे भी पापी मनुष्य जिन श्रीभगवान के शरणागत जीवों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान श्रीभगवान को बार-बार नमस्कार है।।१८।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेः परमशुद्धिहेतुत्वं दर्शयत्राह । किरातादयो ये पापजातयोऽन्ये च ये कर्मतः पापरूपास्ते यदुपाश्रया भागवतास्तदाश्रयाः सन्तः शुध्यन्ति । असंभावनाशङ्कां परिहरति, प्रभविष्णवे प्रभवनशीलायेति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति परम शुद्धि का साधन है इस बात को किराक्त इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। किरात इत्यादि जो पापमयी जातियाँ हैं तथा जो पाप कर्म करने वाले लोग हैं, वे भी भगवद् भक्तों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं। यदि कहें कि यह कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् प्रभविष्णु हैं, वे असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं, ऐसे भगवान् को नमस्कार है।

किरात इत्यादि जातियों का परिचय इस प्रकार है। शबर पुरुष से पर्णशबरी जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को वैदेहक कहते हैं। वैदेहक पुरुष से पुल्कसी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न को हूण कहते हैं। वैदेहक के पुत्र को आन्ध्र कहते हैं। निष्ठय पुरुष से किराती स्त्री के गर्म से उत्पन्न पुत्र को पुलिन्द कहते हैं। शूद्र पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को चाण्डाल कहते हैं। चाण्डाल पुरुष के पुत्र: को पुल्कस कहते हैं। ब्राह्मण पुरुष से वैश्यानारी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को अम्बष्ठ कहते हैं। अम्बष्ठ की अविवाहिता पुत्री के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र को आभीर कहते हैं। कर्परा को कङ्क कहा जाता है। राजा से वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को यवन कहते हैं। तुरुष्कों की ही एक जाति शक जाति है।।१८॥

स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः । गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥१९॥

अन्वयः --- अत्मवताम् आत्मा अधीश्वरः त्रयीमयः धर्ममयः, तपोमयः, गतव्यलीकैः अजशङ्करादिभिः वितर्क्य लिङ्गः स एष भगवान् प्रसीदताम् ।।१९।।

अनुवाद जो भगवान् ज्ञानियों की आत्मा है, भक्तों के स्वामी हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं, धार्मिकों के लिए धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियों के लिए तपोमय हैं। ब्रह्मा तथा शिव आदि बड़े-बड़े देवता निष्कपटभाव से उन श्रीभगवान् का चिन्तन करते हैं वे ही श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वो पास्यत्वमनुस्मरन् प्रार्थयते । स एष आत्मवतां धीराणामात्मा आत्मत्वेनोपास्य इत्यर्थः । त्रयीमयत्वादिविशेषणैस्तत्तन्मार्गेणोपास्यत्वं विवक्षितम् । गतव्यलीकैर्निष्कपटैर्भकैर्वितर्क्यमत्याश्चर्येण वीक्षणीयं लिङ्गं मूर्तिर्यस्य स प्रसीदतु ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वे श्रीभगवान् सबों के लिए उपास्य हैं, इस बात का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी उनकी प्रार्थना करते हैं कि वे भगवान् आत्मज्ञानियों के लिए आत्मा रूप से उपास्य हैं। त्रयीमयत्व इत्यादि विशेषणों के द्वारा विभिन्न मार्गावलिम्बयों के लिए उनकी उपास्यता बतलायी गयी है। वे भक्तों के द्वारा स्वामी रूप से उपास्य हैं, वैदिकों के लिए वेदमूर्ति के रूप से उपास्य हैं। धार्मिकों द्वारा धर्ममूर्ति रूप से तथा तपस्वयों द्वारा तपोमूर्ति रूप से उपास्य हैं। जो भगवान् के निष्कपट भक्त हैं उन ब्रह्माजी तथा शङ्करजी द्वारा उनकी मूर्ति अत्यन्त आश्चर्यमयी रूप से अवलोकनीय है। ऐसे भगवान् प्रसन्न हों।।१९।।

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः । पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्त्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥२०॥

अन्वयः - श्रियः पतिः, यज्ञपतिः प्रजापतिः, धियां पतिः, लोकपतिः, धरापतिः अन्धकवृष्णिसात्त्वताम् पतिः गतिः च सतां पतिः भगवान् मे प्रसीदताम् ॥२०॥

अनुवाद — जो भगवान् लक्ष्मीजी के पित पालक हैं, यज्ञों के भोक्ता (स्वामी) हैं, प्रजाओं के पालक हैं बुद्धि के स्वामी हैं, लोकों के स्वामी है तथा पृथिवी के स्वामी हैं जो भगवान् अन्धकवंशियों वृष्णिवंशियों एवं यदुवंशियों के स्वामी और आश्रय हैं वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वपालकत्वमनुस्मरत्राह- श्रिय इति । गतिश्च सर्वापत्सु रक्षक: ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

पित शब्द पालक और स्वामी दोनों का समान रूप से बोधक है। श्रीभगवान् के सर्वपालकत्व का स्मरण करते हुए शुकदेवजी श्रीभगवान् की प्रार्थना करते हैं। जो भगवान् लक्ष्मीजी, यज्ञ, प्रजाएँ, बुद्धि, सम्पूर्ण जगत् पृथिवी, तथा साधु पुरुष इन सबों के एक मात्र रक्षक हैं। वे ही अन्धकवंशियों, वृष्णिवंशियों तथा यदुवंशियों के पालक तथा सभी अवस्थाओं में रक्षक हैं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों।।२०॥

यदङ्घ्र्यनुष्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः । वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥२१॥

अन्वयः— विवेकिनः यदंष्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धिया आत्मनः हि तत्त्वम् अनुपश्यन्ति कवयः च यथारुचम् एतत् वदन्ति सः भगवान् मुकुन्दः मे प्रसीदताम् ॥२१॥

अनुवाद विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् की चिन्तन पूर्ण समाधि से निर्मल बनी हुयी बुद्धि के द्वारा आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिनका अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वर्णन करते हैं, वे ही भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीभगवान मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानप्रदत्वमनुस्मरत्राह-यदङ्घ्रीति द्वाभ्याम् । यस्याङ्घ्रचोरनुध्यानमेव समाधिस्तेन घौतया शोधितया । यथारुचं रुच्यनुसारेण सगुणनिर्गुणादिभेदैः । यद्वा रुक् प्रतिभा । यथामतीत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, इस बात का स्मरण करते हुए शुकदेवजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं कि जिन श्रीभगवान् के चरणों का निरन्तर चिन्तन ही समाधि है। उससे श्रीभगवान् के चरणों का चिन्तन करने वाले की बुद्धि निर्मल हो जाती है। उन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करने के पश्चात् भिन्न-भिन्न विवेकी पुरुष अपनी रूचि के अनुसार ही श्रीभगवान् का वर्णन करते हैं, वे ही भगवान् हम पर प्रसन्न हो जायँ ।।२१॥

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि । स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥

अन्वयः— पुरा अजस्य हृदि सतीं स्मृतिं वितन्वता येन प्रचेदिता सरस्वती किल आस्यतः स्वलक्षणा प्रादुरभूत ् सः ऋषीणाम् ऋषभः मे प्रसीदताम् ॥२२॥

अनुवाद— कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को जागृत करने के लिए जिन परमात्मा के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से वेदाङ्गों के साथ वेद के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझपर प्रसन्न होएँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच पुरा कल्पादावजस्य हृदि सतीं सृष्टिविषयां स्मृतिं वितन्वता येन प्रचोदिता सती सरस्वती तस्य मुखतः किल प्रादुर्भूता स्वानि लक्षणानि शिक्षाद्युक्तानि यस्याः सा । ऋषीणां ज्ञानप्रदानामृषभः श्रेष्ठः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को उत्पन्न करने के लिए जिन श्रीभगवान् के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से शिक्षा इत्यादि वेदाङ्गों के साथ वेदों के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२२॥

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरा विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः । भुंक्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥२३॥

अन्वयः— यः विभुः महद्धिः भूतैः इमाः निर्माय अमूषु यत् पुरुषः शेते षोडशात्मकः षोडश गुणान् भुंक्ते सः भगवान् मे वचांसि अलङ्कृषीष्ट ॥२३॥ अनुवाद— जो परमात्मा पञ्चमहाभूतों से इन शरीरों का निर्माण करके उन सबों में जीव रूप से शयन करते हैं और (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पाञ्च प्राण और मन इन) सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भोग करते हैं, वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत करें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं स्ववाचं श्रोतृजनाह्णादिनीं शृङ्गारकरुणादिशोभां प्रार्थयते-भूतैरिति । स मे वचांस्यलंकृषीष्ट अलंकरोतु । अन्यस्य वचसामन्येनालंकारासंभवमाशङ्कच तस्यान्तर्यामितामाविष्करोति । यो महद्भिर्भूतैरिमाः पुरः शरीराणि सृष्ट्वा अमृषु पूर्व्वन्तर्यामितया शेते वसित । अत्र पुरुषसमाख्यां प्रमाणयित । यद्यस्मात्पूरुष इति । अतएव य एकादशेन्द्रियपञ्चभूतरूपान्त्रोडशगुणान्कला भुङ्के प्रकाशयित पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । अत्र हेतुः-यतः षोडशानामात्मा चेतियता । स्वार्थे कः । नत्वत्र जीवत्वमुच्यते प्रार्थनाविरोधात् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

भूतैमहिंद्धः इत्यादि इस श्लोक से शुकदेवजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी वाणी को श्रोताओं को आह्वादित करने वाली तथा शृङ्गार तथा करुण आदि रसों आदि की शोभा से सम्पन्न बना दें । वे भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत कर दें । दूसरे की वाणी को दूसरा कोई कैसे अलंकृत कर सकता है; इस तरह की आशङ्का करके वे श्रीभगवान् के अन्तर्यामित्व को ही अविष्कृत करते हैं । जो परमात्मा महाभूतों के द्वारा इन शरीरों का निर्माण करते हैं और इन शरीरों में अन्तर्यामी रूप से निवास करते हैं । जीव के इस पुरुष नाम को प्रमाणित करते हुए कहते है कि वे पूरुष हैं । अतएव ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूत रूप सोलह कलाओं का वे भोग करते हैं । अथवा प्रकाशित करते हैं या पालन करते हैं । किन्तु ऐसा अर्थ करने पर भुंके पद में आत्मनेपद का प्रयोग आर्ष मानना होगा । उसका कारण है कि वे सोलह कलाओं को ज्ञान युक्त बना देते हैं । आत्मा शब्द में स्वार्थ में ही कप्रत्यय हुआ है । यहाँ पर जीवत्व को इसलिए नहीं कहा गया है कि उसको वैसा मानने पर प्रार्थना का विरोध होगा ।।२३।।

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे । पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥२४॥

अन्वयः सौम्याः ज्ञानमयं यन्मुखाम्बुरुहासवम् पपुःतस्मै अमिततेजसे भगवते व्यासाय नमः ।।२४।।

अनुवाद— सन्त पुरुषों ने जिनके मुख रूपी कमल के पराग रूपी ज्ञानमय आसव का पान किया उन नि:सीम तेजस्वी भगवान् वासुदेव के अवतार व्यासजी को मेरा नमस्कार है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

श्रीव्यासं नमस्करोति-नम इति । सौम्या भक्ताः । यस्य मुखाम्बुरुहे आसवो मकरन्दस्तम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

नम**ः इत्यादि** श्लोक के द्वारा वे श्रीव्यासजी को नमस्कार करते हैं । सौम्य शब्द से यहाँ पर भक्तों को कहा गया है । यन्मुखाम्बुरुहासवम् का विग्रह है जिनका मुख रूपी कमल में विद्यमान पराग रूपी आसव उसका पान भक्तों ने किया ॥२४॥

एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते । वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— राजन् विपृच्छते नारदाय वेदगर्भः आत्मभूः एतदे वाभ्यधात् यत् साक्षात् हरिः आत्मनः आह ।।२५।।

अनुवाद — हे राजन् नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर वेदगर्भ ब्रह्माजी ने उनको वही बतानाया था जिसको साधात् श्रीहरि ने ब्रह्माजी को बतालाया था, उसी को मैं आपको बताला रहा हूँ ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत यहापुराण के दूसरे स्कन्ध के चीधे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराधार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं प्रजीतरतया ब्रह्मनारदसंबादं प्रस्तौति- एतदिति । उत्पत्तिसमय एव वेदा गर्भे यस्य सः । साक्षाद्धरियंदाह ।।२५।। इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थं दीपिकाटीकायां चतुर्थोऽघ्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

एतत्॰ इत्यादि इस श्लोक के द्वारा प्रश्नोलर रूप में ब्रह्मा एवं नारदाजी के संवाद को प्रस्तुत करने हैं। ब्रह्माजी को वेदगर्भ इसलिए कहा जाता है कि उत्पत्ति काल में ही उनके भीतर वेद विद्यमान थे 11२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्य की भावार्य दीपिका टीका के खीस्रे अध्याय की शिवप्रसाद दिवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।



सृष्टि का वर्णन

नारद उवाच

देखदेख नमस्ते उस्तु भूतभावन पूर्वज । तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥१॥ अन्वयः हे भृतभावनपूर्वज देवदेव ते नमः अस्तु । यत् ज्ञानम् आत्मतत्त्वनिदर्शनम् तत् विज्ञानीहि ॥१॥

नारदजी ने कहा

अपुराह— हे मृतपावन तथा सबीं द्वारा पृत्रित ! हे देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी आप मुझको वह ज्ञान प्रदान करें जिस ज्ञान के द्वारा आत्मतल्व का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे नारदेनाथ पृष्टः सृष्टधादि वक्त्यवः । हरेलीलां विराट्सृष्टिं कालकर्मादिशक्तिभः ।।१।। नारदाय विपृच्छते वेदलबाँउम्बचादित्युकं, तत्र नारदप्रवृमाह-देवदेवेति । हे भृतभावन, अत्रस्य सर्वेषां पूर्वज अनादे, ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं तत्साधनं यसद्विज्ञानीहि । विज्ञेषेण ज्ञायगैल्यर्थः । कर्यभृतम् । आत्मतत्त्वं नितरां दृश्यते येन तत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

र्वांचर्वे अध्याय में नारदर्जी के द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने सृष्टि का वर्णन किया । साथ ही उन्होंने श्रीहरि की लीला का वर्णन तथा काल कर्म आदि शक्तियों से युक्त विराट की सृष्टि का वर्णन किया ॥१॥

नारदर्जी के द्वारा पूछे जाने पर वेदमर्थ ब्रह्माजी ने इस तरह से कहा— नारदर्जी के प्रश्न का वर्णन करते हुए वे कहते हैं देव-देव इत्यादि । अर्थात् हे मृतधावन देवताओं में श्रेष्ठ अत्राएस सम्बों के पूर्वज आप है. क्योंकि ब्रह्म अन्तादि हैं । आत्मातस्व के ज्ञान के साधनभूत ज्ञान का आप उपदेश दें । विकासीहि पद का अर्थ है कि विकोष क्षप में उपदेश दें । वह ज्ञान जिस ज्ञान के द्वारा आत्मा अच्छी तरह से दिखायी देती है ॥ १॥ यदूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो । यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥२॥

अन्बयः प्रभो इदं जगत् यदूपम्, यदधिष्ठानम् यतः सृष्टम्, यत्संस्थम् यत परम् तत् तत्त्वं तत्त्वतः वद ।।२।।

अनुवाद हे प्रभो ! इस जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित है, इसका जो आधार है, जिसके द्वारा निर्मित है, जिसमें लीन होता है तथा जिसके अधीन रहता है, तथा यदात्मक है, उस तत्त्व को आप तात्त्विक रूप से बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उपलक्षणभूतं विश्वमेवात्मज्ञानसाधनमतस्तद्विशेषं पृच्छति । यदूपं येन रूप्यते प्रकाश्यते । यदिषष्ठानं यदाश्रयम् । यतो येन सृष्टम् । यत्संस्थं यस्मिँल्लीयते । यत्परं यदधीनम् । यच्चेति यदात्मकम् । स्वतः सत्कारणतो वेत्यर्थः । तस्य तत्त्वं याधार्थ्यं तत्त्वतो वद ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म का उपलक्षण स्वरूप यह जगत् ही है आत्मज्ञान का साधन है। अतएव इस जगत् की विशेषताओं के विषय में नारदर्जी पूछते हैं। यदूपम् का अर्थ है कि यह जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित होता है। उस तत्त्व को आप मुझे बतलायें। इस जगत् का जो आधार है तथा इस जगत् के जो स्नष्टा हैं, उनको मुझे आप बतलायें। प्रलयकाल के आने पर यह जगत् जिसमें लीन हो जाता है यह जिसके अधीन हैं तथा यह यदात्मक है, उस तत्त्व को आप मुझे यथार्थ रूप से बतलायें।।?।।

सर्वं होतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्रभुः । करामलकविद्वश्चं विज्ञानावसितं तव ॥३॥

अन्बयः एतत् हि सर्वं भवान् वेद भवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः विज्ञानावसितं विश्वं तव करामलकवत् ।।३।।

अनुवाद — आप इन सारी बातों को जानते हैं, क्योंकि आप भूतकालिक भविष्यत्कालिक तथा वर्तमान कालिक सभी वस्तुओं के स्वामी हैं। विशिष्ट ज्ञान के द्वारा निश्चित किया गया यह सम्पूर्ण जगत् आपको करामलकवत् प्रत्यक्ष है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

न जानामीति न वक्तव्यमित्याह-सर्वमिति । भूतं जातं, भव्यं जनिष्यमाणं, भवत् जायमानं, तेषां प्रभुर्यतः, अतो विशिष्टेन ज्ञानेनावसितं निश्चितम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आप यह नहीं कह सकते हैं कि मैं इसे नहीं जानता हूँ क्योंकि आप भूतकालिक, भविष्यत्कालिक एवं वर्तमानकालिक सभी वस्तुओं के स्वामी है अतएव विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आपने इसको निश्चित किया है ॥३॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मक: । एक: सृजिस भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥४॥

अन्वय:— त्वं यद्विज्ञान: यदाचार:, यत्पर: यदात्मक: एक: त्वम् आत्ममायया भूतैरेव भूतानि सृजिस ।।४।। अनुवाद— आपको यह ज्ञान किससे मिला ? आप किसके आधार पर स्थित हैं ? आपका स्वामी कौन हैं? आपका स्वरूप क्या है ? अकेले ही आप अपनी माया से पञ्चभूतों के द्वारा भूतों की सृष्टि कर लेते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

आस्तामिदम्, आदौ तावस्वामेव कथयेत्याह । यतो विज्ञानं यस्य । कस्तव विज्ञानद इत्यर्थ: । यदाधार: कस्तवाश्रय: यत्परो यदधीन: । यदात्मको यत्स्वरूप: । मम तु त्वमेव स्वतन्त्रः परमेश्वर इति बुद्धिः । तव तपश्चरणेन तु पराशङ्कया पृच्छामीत्याह सार्थेश्चतुर्पि: । एकोऽसहाय: ।।४।।

इन सारी बातों को रहने दें सर्वप्रथम आप अपने ही विषय में बतलायें कि आपका यह जो ज्ञान है उस ज्ञान को आपको किसने प्रदान किया ? आपका आश्रय कौन है ? आप किसके अधीन हैं ? आपका रूप क्या है ? मेरे मतानुसार तो आप ही स्वतंत्र परमेश्वर हैं; किन्तु आप तपस्या करते हैं इसके कारण मुझे शङ्का है, अतएव ही आपसे मैं इन सारी बातों को साढे चार श्लकों से पूछता हूँ। आप बिना किसी सहायक के ही सृष्टि का काम करते हैं ॥४॥

आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्त्वयम् । आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥५॥

अन्वयः --- आत्मशक्तिम् आवष्टभ्य अक्लमः उर्णनाभिः इव तानि स्वयम् पराभावयन् आत्मनि भावयसे ॥५॥

अनुवाद — जिस तरह मकड़ी बिना किसी प्रयास के ही अपने मुख से जाल निकालकर उसमें क्रीड़ा करती हैं, उसी तरह आप भी बिना किसी प्रयास के ही दीन जीवों को अपने में ही उत्पन्न करते हैं किन्तु आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मिन भावयसे पालयसि स्वयमेव पराभवमप्रापयन् अक्लमः श्रमरहितः । यथोर्णनाभिरात्मन एव शक्तिमवष्टभ्य सृजति तद्वत् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आप इन जीवों को अपने में ही प्रलीन करते हैं किन्तु आपको इस कार्य को करनें में किसी भी प्रकार के श्रम का अनुभव नहीं होता है। जिस तरह उर्णनाभि मकड़ी अपनी ही शक्ति से जाल की रचना कर देती है, और उसमें उसको थोड़ा सा भी श्रम नहीं होता है।।५।।

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो । नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किं चिदन्यतः ॥६॥

अन्वयः हे विभो ! अस्मिन् नामरूपगुणैः भाव्यं सत् असत् परं अपरं समं वा किश्चित् अन्यतः अहं न वेद ।।६।। अनुवाद हे प्रभो ! इस जगत् मे नाम रूप और गुणों से जानने योग्य सत् असत्, उत्तम, अधम या सम किसी भी ऐसी वस्तु को नहीं जानता हूँ जो आपसे भिन्न किसी दूसरे से उत्पन्न हो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादहं त्वस्मिन्वश्वस्मिन्यरमुत्तममपरमधमं समं मध्यमं च । तत्रापि नाम मनुष्यादि, रूपं द्विपदत्वादि, गुण: शुक्लत्वादिस्तैर्भाव्यं साध्यं, तत्रापि सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं च किंचिदप्यन्यतो न वेद किंतु त्वत्त एव सर्व भवतीति मन्ये ।।६।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा अतएव मैं इस सम्पूर्ण जगत् में परम (उत्तम) अपर (अधम) सम (मध्यम) जो नाम के द्वारा जानने योग्य मनुष्य आदि रूप से जानने योग्य द्विपदत्व आदि तथा गुण रूप से जानने योग्य शुक्लत्व आदि इन सबों के द्वारा साध्य उनमें सत् असत् स्थूल अथवा सूक्ष्म ऐसी किसी भी वस्तु को मैं नहीं जानता हूँ जो आपको छोड़कर किसी दूसरे से उत्पन्न हो । यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है ॥६॥

स भवानचरद्धोरं यत्परः सुसमाहितः । तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ॥७॥

अन्वयः— स भवान् सुसमाहितः घोरम् तप अचरत् तेन नः खेदयसे, परां शङ्कां च प्रयच्छिसि ।।७।। अनुवाद— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले आपने पूर्ण रूप से समाहित होकर घोर तपस्या की उसके कारण मुझे यह शङ्का होती है, कि क्या आपसे भी बढ़कर कोई है क्या ? जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने तपस्या की ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स तथाविधोऽपि भवांस्तपोऽचरदिति यत्तेन नोऽस्मान्खेदयसे मोहयसि । यतः पराशङ्कामीश्वरान्तराशङ्कां प्रयच्छसि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के सबों की सृष्टि करने वाला भी होकर आपने जो घोर तपस्या की उससे हमको मोह के साथ-साथ यह शङ्का होती है कि आपसे भी बड़ा कोई है क्या जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने यह तपस्या की ?॥७॥

एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर । विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥८॥

अन्वय:— हे सर्वज्ञ, हे सकलेश्वर,'पृच्छतः मे एतत् सर्वं विजानीहि यथैव अहम् इदम् अनुशासितः बुध्ये ।।८।। अनुवाद— हे सर्वज्ञ, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ब्रह्माजी मैंने जो आप से पूछा है इन सारी बातों को मुझे आप इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर मैं इन सारी बातों को जान सकूँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

यथैवाहं त्वयाऽनुशासितः शिक्षितः सन्बुध्ये बुध्येयं तथा विजानीहि विशेषेण ज्ञापय ।।८।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि आप इन सारी बातों को मुझे इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर इन सारी बातों को मैं जान सकूँ ॥८॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् । यदहं चोदितः सौम्य परधर्मप्रदर्शने ॥९॥

अन्वयः हे वत्स ! कारुणिकस्य ते इदं विचिकित्सितम् सम्यक् यतः हे सौम्य ! अहं परधर्मप्रदर्शनं चोदितः ।।९।। अनुवाद हे वत्स ! तुम करुणा करने वाले हो अतएव तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही अच्छा है क्योंकि इस प्रश्न के द्वारा प्रेरित होकर भगवद् धर्म का निरूपण करने में मैं प्रवृत्त हो रहा हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नमिनन्दित । वत्स हे पुत्र, तवेदं विचिकित्सितं संदेहः तत्पूर्वकः प्रश्नोऽयं सम्यगित्यर्थः । यतः कारुणिकस्य तवायं प्रश्नः। अत्र हेतुः-यत् परधर्मप्रदर्शने भगवद्वीर्यप्रकाशने प्रवर्तितोऽस्मि । अतस्त्वं जिज्ञासुरिप मिय कृपामेव कृतवानित्यर्थः।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रश्न की प्रशंसा करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि तुम्हारा यह प्रश्न बहुत अच्छा है, क्योंकि यह तुम करुणा करने वाले का प्रश्न है। इस प्रश्न के द्वारा मैं श्रीभगवान् के पराक्रम को ही प्रकाशित करने में प्रवृत्त हो रहा हूँ। फलतः तुमने जिज्ञासु होने के साथ ही मुझ पर कृपा भी किया है।।९।।

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भो । अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥१०॥

अन्वयः— भोः तव तत् च अपि अनृतं न यथा मां प्रव्रवीषि । यतः मतः परम् अविज्ञाय मोह एतावत्त्वम् ।।१०।। अनुवाद— नारद ! आपने जो मेरे विषय में जो कुछ कहा है वह भी मिथ्या नहीं है, क्योंकि जब तक मुझसे महान् तत्त्व परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है, तब तक तो मैं सम्पूर्ण जगत् का ईश्वर हूँ हीं ।।१०॥

भावार्थ दीपिका

न्तु त्वमेव भगवानित्युक्तं मया 'एक: सृजसि भूतानि' इत्यादिना । सत्यम्, यथा मामीश्वरत्वेन प्रभाषसे तदिप तव भाषणं नात्यन्तमनृतम् । यत: कारणादेतावत्प्रभावस्य भाव एतावत्त्वं मे अस्ति, किंतु मत्त: परमीश्वरमविज्ञाय बूषे । अत: सादृश्यात्तवेयं भ्रान्तिनं तु बुद्धिपूर्वमनृतमित्यर्थः । यत ईश्वरान्ममैतावत्त्वं तमविज्ञायेति वान्वय: ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम यह कहो कि मैंने आपको यह जो कहा है कि आप ही भगवान् हैं। आप ही अकेले जगत् की मृष्टि करते हैं। यह सब जो तुमने मेरे विषय में कहा है मुझको तुमने ईश्वर कहा है, वह भी तुम्हारा कहना सत्य ही है। क्योंकि इस प्रकार का मेरा प्रभाव भी है किन्तु इन सारी बातों को तुम इसिलए कह रहे हो कि तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं हैं, कि मुझसे महान् ईश्वर हैं। अतएव ईश्वर और मुझमें सादृश्य होने के कारण तुमको मुझमें ईश्वरत्व का भ्रम है। तुमने जानकर यह बात नहीं कहा है, अतएव तुम्हारा कहना असत्य नहीं है। अथवा ईश्वर की अपेक्षा मेरी सीमितता को नहीं जानने के कारण तुमने मेरे विषय में ऐसा कहा है।।१०।।

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् । यथाऽकोंऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥११॥

अन्वयः यथा अर्कः, अग्निः यथा सोमः ऋक्ष ग्रहतारका यथा येन स्वरोचिषा रोचितं विश्वम् अहम् रोचयामि ।।११।।

अनुवाद जिस तरह सूर्य, अग्नि, चन्द्रम्, ऋक्ष, ग्रह तथा तारे परमात्मा से ही प्रकाश को प्राप्त करके इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं उसी तरह मैं भी उन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित विश्व को में सृष्टि के द्वारा प्रकाशित करने का काम करता हूँ ।।११।

भावार्थ दीपिका

तर्हि कोऽसावीश्वर इत्यपेक्षायां भक्त्या नमस्कुर्वत्रेव तं कथयति त्रिभिः । येन स्वप्रकाशेन रोचितं प्रकाशितमेव प्रकाशयामि सृष्ट्याऽभिव्यक्तं करोमि । यथाऽर्कादयश्चैतन्यप्रकाश्यमेव प्रकाशयन्ति । तथाच श्रुतिः-'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वे ईश्वर कौन हैं ? इस प्रकार की शङ्का होने पर भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए ब्रह्माजी तीन श्लोकों में बतलाते हैं । येन इत्यादि जिन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित जगत् को मैं सृष्टि के माध्यम से अभिव्यक्त करने का काम करता हूँ यह उसी तरह से है जैसे सूर्य इत्यादि ज्ञानमात्र स्वरूप परंब्रह्म के द्वारा प्रकाशित ही जगत् को प्रकाशित करने का काम करते हैं । श्रुति भी कहती हैं- न तत्र सूर्यों भाति इत्यादि उस परमात्मा के समक्ष न सूर्य, न चन्द्रमा, न तारे प्रकाशित होते हैं । बिजलियाँ भी परमात्मा के समक्ष नहीं प्रकाशित होती हैं । तो फिर अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकती है ? उस परमात्मा के प्रकाश को ही प्राप्त करके सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे इत्यादि प्रकाशित होते हैं । उस परमात्मा के ही प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है ॥११॥

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि । यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगहुरुम् ॥१२॥

अन्वयः तस्मै भगवते वासुदेवाय नमः, धीमहि यत् दुर्जयया मायया जनाः मा जगद्गुरुम् ब्रुवन्ति ।।१२।।

अनुवाद — उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार है हम उन्हीं का ध्यान करते हैं । उन श्रीभगवान् की माया से ही मोहित होकर लोग मुझको ही जगद्गुरु कहते हैं । भगवान् की उस माया को पार करना बड़ा ही कठिन है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै नमो धीमहि । यस्य मायया विमोहिताः सन्तो युष्मदादयो मां जगद्गुरुं जगत्कारणं वदन्ति तस्मै ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

हम उन भगवान् वासुदेव को मन से नमस्कार करते हैं जिन श्रीभगवान् की माया से मोहित होकर तुमलोग मुझको ही जगत् का कारण कह रहे हो ॥१२॥

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥१३॥

अन्वयः - यस्य ईक्षापथे स्थातुम् विलज्जमानया अमुया विमोहिता दुर्घियः मम अहम् इति विकत्यन्ते ॥१३॥ अनुवाद - भगवान् की आँखों के सामने लज्जित होने के कारण नहीं रूकने वाली माया के द्वारा मोहित ये सभी अज्ञानी जीव यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकार से आत्मश्लाधा करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यन्माययेति मायासंबन्धोक्तेस्तस्या दुर्जयत्वोक्तेश्च तस्यापि किमस्ति संसारो नैवेत्याह । मत्कपटमसौ जानातीति यस्य दृष्टिपथे स्थातुं विलज्जमानयैव तस्मिन्स्वकार्यमकुर्वत्या अमुया मायया विमोहिता अस्मदादयो दुर्घियोऽविद्यावृतज्ञाना एव केवलं विकत्थन्ते श्लाघन्ते । अनेन 'यद्रूपम्' इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमुक्तं भवति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यन्मायया इस पद से परमात्मा का माया से सम्बन्ध प्रतीत होता है। उस माया को दुर्जय बतलाया गया है। अब प्रश्न होता है कि उस माया का ही संसार है क्या ? तो इसका उत्तर है कि नहीं। यह माया जानती है कि ये परमात्मा मेरे कपट को जानते हैं। अतएव यह परमात्मा के समक्ष ठहरने में लिजित होती हैं। वह परमात्मा के प्रति अपना मोहन रूप कार्य नहीं करती है। उस माया से हम लोग (देव मनुष्यादि सभी) अज्ञानी हो गये हैं। अविद्या ने हम लोगों के ज्ञान को आच्छादित कर दिया है। उसके फलस्वरूप हमलोग आत्मश्लाघा करते रहते हैं। इस कथन के द्वारा यद्रूपम् यह जो प्रश्न किया गया था उसका उत्तर दिया गया है।।१३॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च। वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः।।१४॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ! द्रव्यं, कर्म च, कालश्च, स्वभावः, जीवः एव च । तत्त्वतः वासुदेवात् परः अर्थः च न अस्ति ।।१४।। अनुवाद हे आत्म स्वरूप नारद द्रव्यं, कर्म, कालं, स्वभाव तथा जीव ये सभी वस्तुतः भगवान् वासुदेव से भित्र नहीं हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वस्मादन्यं परमेश्वरं निरूप्येदानीं 'यदिधष्ठानम्' इत्यादिनवप्रश्नानां स एवाधिष्ठनादिकं सर्वमित्युत्तरं वक्तुं तद्व्यतिरेकेणान्यस्यासत्त्वमाह-द्रव्यमिति । द्रव्यं महाभूतान्युपादानरूपाणि । कर्म जन्मनिमित्तम् । कालस्तत्क्षोभकः । स्वभावस्तत्परिणामहेतुः । जीवो भोक्ता । वासुदेवात्परोऽन्योऽर्थो नास्ति, कारणाव्यतिरेकात्कार्यस्य ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से अपने से भिन्न परमेश्वर को बतलाकर ब्रह्माजी अब नारदजी के नव प्रश्नों में यदिष्ण्ठानम् के उत्तर में परमेश्वर ही जगत् के अधिष्ठान आदि सबकुछ हैं, इस बात को बतलाने के लिए परमेश्वर व्यतिरिक्त की सत्ता का अभाव बतलाते हुए द्रव्यम् इत्यादि श्लोक को कहते हैं। द्रव्य शब्द से उपादान कारण रूप महाभूतों को कहा गया है। जन्म के निमित्त कारण को कर्म कहते हैं, जगत् में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल है, जगत् के परिणाम का जो कारण है वही स्वभाव है, जीव शब्द से भोक्ता को कहा गया है। ये सबके सब भगवान् वासुदेव से भिन्न नहीं हैं; क्योंकि भगवान् वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं तथा कारण तथा कार्य में अभेद होता हैं।।१४।।

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः। नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः॥१५॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः। नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः॥१६॥

अन्वयः — वेदाः नारायणपराः देवा नारायणाङ्गजाः, लोकाः नारायणपराः मखाः नारायणपराः योगाः नारायण पराः, तपः नारायणपरं, ज्ञानं नारायण परं, गतिः नारायण परा ।।१५-१६।।

अनुवाद वेदों के परं प्रतिपाद्य भगवान् नारायण ही हैं। सभी देवता भगवान् नारायण के अङ्गों से उत्पन्न हैं, सम्पूर्ण लोगों के परं कारण भगवान् नारायण हैं, तथा सभी यज्ञों के आराध्य भगवान् नारायण ही हैं। सभी योगों के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण हैं, तपों से भी आराध्य भगवान् नारायण ही हैं। ज्ञान के भी ज्ञेय भगवान् नारायण हैं तथा भगवान् नारायण ही सबों के एक मात्र आश्रय हैं।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् ं नारायणः परः कारणं येषां ते । अनेनैव शास्त्रयोनित्वप्रतिपादनेनेश्वरे प्रमाणं सर्वज्ञत्वादिकं चोक्तम् । देवाश्च तदङ्गाज्जाता अतो न तद्व्यतिरिक्ताः । लोकाः स्वर्गादयस्तदानन्दांशाः । मखास्तत्साधनभूताः । योगः प्राणायामादिः। तपस्तत्साध्यं चित्तैकाग्र्यम् । ज्ञानं तत्साध्यम् । गतिस्तत्फलम् । अनेनैव सर्वं तदधीनमित्युक्तम् ॥१५-१६॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार से वर्णन नारायण पराः इत्यादि दो श्लोकों से किया जा रहा है। नारायण पराः का विग्रह है नारायणः परः कारणं येषां ते। अर्थात् वेदों के परम् कारण भगवान् नारायण ही हैं। वे ही वेद प्रतिपाद्य हैं। इस तरह से परमेश्वर के शास्त्रयोनित्व का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रतिपादन के द्वारा ईश्वर में प्रमाण को उपन्यस्त करके उनके सर्वज्ञत्वं इत्यादि को बतलाया गया है। देवता भी श्रीभगवान् के अङ्गों से उत्पन्न होने के कारण उनसे भिन्न नहीं हैं। स्वर्ग आदि लोक भी परमात्मा के आनन्द के अंश स्वरूप हैं। यज्ञ परमात्मा की प्राप्ति के साधन स्वरूप है। योग के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण ही हैं तथा भगवान् नारायण ही तपस्याओं के द्वारा प्राप्य हैं। ज्ञान के द्वारा भगवान् नारायण को ही जाना जाता है। परमात्मा की प्राप्ति रूपी फल को ही गित कहते हैं। इस तरह से सबकुछ परमात्मा ही है इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया।।१५-१६॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः। सृज्यं सृजािम सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥१७॥

अन्वयः तेन सृष्टः अहम् तस्य द्रष्टुः अपि ईशस्य कूटस्थस्य, अखिलात्मनः इच्छयैव अभिचोदितः सृज्यं सृजामि ॥१७॥ अनुवाद मैं उन परमेश्वर के ही द्वारा सृष्ट हूँ । वे ही द्रष्टा, स्वामी, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं । मैं उनके सङ्कल्प से प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की सृष्टि करता हूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि त्वं किं करोषीत्यपेक्षायामाह । तस्य सृज्यमपि तेन सृष्टोऽहं सृजामि । ईक्षया कटाक्षेण । तत्र हेतवः-द्रष्टुरित्यादयः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता है कि जब सबकुछ परमेश्वर का ही है तो आप क्या करते हैं ? तो इसका उत्तर है कि मैं परमात्मा के ही द्वारा सृष्ट हूँ और परमात्मा के सङ्कल्प के द्वारा प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की मैं सृष्टि करता हूँ क्योंकि वे ही द्रष्टा और स्वामी हैं ॥१७॥

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः । स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥१८॥ अन्वयः— निर्गुणस्य विभोः सत्त्वं, रजस्तमः इति त्रयः गुणाः स्थिति सर्गनिरोधेषु मायया गृहीताः ॥१८॥ अनुवाद— भगवान् माया के गुणों से रहित हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के लिए रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण माया के द्वारा स्वीकार किए गये हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽयं जीवेश्वरविभागः, यतस्त्वं प्रेर्यः स च प्रेरकः स्यादित्यपेक्षायां जीवेश्वरविभागहेतुमाह त्रिभिः-सत्त्वमिति। निर्गुणस्यापीश्वरस्यैते त्रयो गुणा बध्नन्तीत्युत्तरेणान्वयः । कथंभूताः । तेनैव स्वातन्त्र्येण स्थित्याद्यर्थं मायया गृहीताः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यह जीव और ईश्वर का विभाग कैसे होता है। जिसके कारण आप प्रेर्य हैं और ईश्वर आपके पेरक हैं ? इस प्रकार का प्रश्न होने पर ब्रह्माजी तीन श्लोकों कों द्वारा जीव और ईश्वर के विभाग के हेतु को बतलाते हैं। वे सत्त्वम् इत्यादि श्लोक पढते हैं। निर्गुण भी परमात्मा के ये तीन गुण बन्धन करने का काम करते हैं। वे गुण कैसे हैं ? तो उत्तर है कि उसके द्वारा (गुणत्रय के द्वारा) ही स्वतंत्रता पूर्वक रहने के लिए माया ने इन तीनों गुणों को स्वीकार किया है।।१८।।

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः । बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥

अन्वयः मुक्तं मायिनं पुरुषं द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः गुणाः कार्यकारणकर्तृत्वे नित्यदा बध्नन्ति ।।१९।।

अनुवाद— वस्तुत सर्वदा मुक्त भी परमात्मा को द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया का सहारा लेकर ये तीनों गुण जीव को कार्य, कारण और कर्तृत्व के अभिमान से बाँधने का काम करते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वस्तुतः सर्वदा मुक्तमिप मायिनं मायाविषयं पुरुषं जीवं बध्नन्ति क्व । कार्यमिधभूतं, कारणमध्यात्मं, कर्ताऽधिदैवतं तेषां भावस्तत्त्वं तस्मिन् । द्रव्यं महाभूतानि, ज्ञानशब्देन देवताः, क्रिया इन्द्रियाणि, तदाश्रयास्तेषां कारणभूतास्तत्तदिभमानेन बध्नन्ति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वास्तविकता यह है कि मायी पुरुष परमात्मा सर्वदा मुक्त हैं किन्तु माया अपने विषयभूत जीव को बाँधने का काम करती हैं। उस समय द्रव्य (महाभूत) ज्ञान (देवता) तथा क्रिया (इन्द्रियाँ) उसके आश्रय होते हैं। उसके द्वारा माया जीव को कार्यत्वाभिमान के द्वारा अधिभूत को, कारणत्वाभिमान रूप अध्यात्म को तथा कर्तृत्वाभिमान से अधिदैवत को बाँधने का काम करती है।।१९।।

स एष भगवाँ ल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरघोक्षजः । स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ! स एष भगवान् अधोक्षजः, एभिः, त्रिभिः लिङ्गैः स्वलिक्षतगितः । सः सर्वेषां मम च ईश्वरः ।।२०।। अनुवाद हे ब्रह्मन् नारदजी इन्हीं तीनों आवरणों से श्रीभगवान् अपने को आच्छादित कर लेते हैं उसके फल स्वरूप लोग उनकी गित को नहीं जान पाते हैं । वे सबों के तथा मेरे भी स्वामी हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अतः स एष वश्यमाय एभिगुणैर्लिङ्गैर्जीवानामावरकैरुपाधिमिः । सुष्ठुलक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्य सः, स्वैर्भक्तैरेव लक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्येति वा ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वे ही परमात्मा इन तीनों गुण रूपी उपाधियों से जीवों को अपने अधीन कर देते हैं । उन परमात्मा की गित को अच्छी तरह से नहीं जाना जा सकता है । अथवा भक्तजन ही उनकी गित को जान पाते हैं । ये दोनों ही अर्थ स्वलक्षितगित: पद के हैं ॥२०॥

कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया । आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥२१॥

अन्वय: हे आत्मन् ! विबुभुष: मायेश: स्वया मायया यदृच्छया प्राप्तं कालं, कर्म, स्वभावं च उपाददे ।।२१।। अनुवाद हे आत्म स्वरूप नारद एक से अनेक होने की इच्छा वाले परमात्मा ने अपनी माया से अपने स्वरूप में प्राप्त, काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तस्य सृष्टिप्रकारमाह-कालमिति । कर्म जीवादृष्टम् । विबुभूषुर्विविधं भवितुमिच्छन् ।।२१।।

भाव प्रकाशिक

परमात्मा के द्वारा की जाने वाली सृष्टि के प्रकार को कालम् इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी ही माया के द्वारा अपने स्वरूप में प्राप्त काल, कर्म तथा स्वभाव को परमात्मा ने एक से अनेक होने की इच्छा से स्वीकार किया ॥२१॥

कालाहुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः । कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥२२॥

अन्वयः पुरुषाधिष्ठितात् कालात् गुणव्यतिकरः स्वभावतः परिणामः कर्मणः महतः जन्म अभूत् ।।२२।।

अनुवाद- परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित काल ने गुणों में क्षोभ पैदा कर दिया, स्वभाव ने उन सबों को परिणाम अर्थात् रूपान्तरित कर दिया और कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

गुणानां व्यतिकरः क्षोभः साम्यत्यागः । स्वभावतः परिणामो रूपान्तरापत्तिः । पुरुष ईश्वरस्तेनाधिष्ठितत्वं त्रयाणां विशेषणम् । महतः महत्तत्वस्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित होकर काल ने प्रलय काल में जो प्रकृति में गुणों का साम्य था उसमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया अर्थात् उन गुणों में वैषम्य उत्पन्न कर दिया, परमात्माधिष्ठित ही स्वभाव ने उन सबों का परिणाम कर दिया अर्थात् उन सबों के रूप में परिवर्तन ला दिया और ईश्वराधिष्ठित ही कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजः सत्त्वोपबृंहितात् । तमः प्रधानस्त्वभवद्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥

अन्वयः -- रजः सत्त्वोपवृंहितात् विकुर्वाणात् महतः तु तमः प्रधानः द्रव्यज्ञानिकयात्मकः अभवत् ।।२३।।

अनुवाद रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित होने के कारण विकृत महत् तत्त्व से द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक विकार उत्पन्न हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्विक्रियमाणात् तस्य च क्रियाज्ञानशक्तित्वात्रिगुणत्वेऽपि रजःसत्त्वाध्यामुपबृंहितत्वम्, अहंकारस्य त्वावराकत्वात्तमःप्रधानत्वम् । अत एवहंकारकार्येषु तामसमाकाशादिकं बहु । राजसं सात्त्विकं चाल्पम् । एवं तदुपाधिकेषु बीवेष्वपि तथैव तामसाधिक्यम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

विकृत होने वाले महत्तत्त्व क्रिया, ज्ञान एवं शक्ति इन तीनों से युक्त होने के कारण त्रिगुण होने पर भी वह रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित हुआ और उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ । अहङ्कार चूकि आवरक होता है अतएब उसमें तमोगुण की प्रधानता रहती है, रजोगुण और सत्त्वगुण अल्पमात्रा में रहते हैं । अतएव अहङ्कार के जो कार्य होते हैं, उनमें तामस अकाश आदि की अधिकता होती है। राजस एवं सात्त्विक अंश अल्पमात्रा में रहते हैं। इसीलिए अहंकारोपाधिक जीवों में भी तामस अधिक होता है ॥२३॥

सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्रिधा। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥

अन्वयः सः अहङ्कार इति प्रोक्तः विकुर्वन् त्रिधा समभूत् वैकारिकः तैजसः च तामसः च । हे प्रभो ! तद्भिदा द्रव्यशक्तिः, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिः इति ।।२४।।

अनुवाद — वह विकार अहङ्कार कहलाया । वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ वैकारिक, तैजस और तामस । हे नारदजी वैकारिक अहङ्कार ज्ञान शक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति से युक्त है तथा तामस (भूतादि) अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त हुआ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स च विकुर्वन् रूपान्तरं गच्छन् । त्रैविध्यमेवाह । वैकारिकः सात्त्विकः । तैजसो राजसः तामसः भूतादिः । यद्भिदा यस्य भेदः द्रव्यशक्तित्यादीनि प्रातिलोम्येन त्रयाणां लक्षणानि । द्रव्ये महाभूताख्ये शक्तिर्यस्य । क्रियासु इन्द्रियेषु शक्तिर्यस्य ज्ञानेषु वेदेषु शक्तिर्यस्य । हे प्रभो बोद्धं शक्त ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ । वैकारिक अर्थात् सात्त्विकअहङ्कार, तैजस अर्थात् राजस अहङ्कार और तामस अर्थात् भूतादिअहङ्कार । द्रव्य शक्ति इत्यादि इन तीनों के विपरीत क्रम से विशेष होते हैं । अर्थात् भूतादि अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति प्रधान है और वैकारिक अहङ्कार ज्ञानशक्ति प्रधान है ।

महाभूत नामक द्रव्य में तामसाहङ्कार की प्रधानता होती है, तैजस इन्द्रियों में क्रियाशक्ति की प्रधानता होती है और वेदों में ज्ञान शक्ति की प्रधानता होती है। हे प्रभो ! अर्थात् जानने में समर्थ हे नारदजी ।।२४।।

तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभूत्रभः । तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद्द्रष्ट्दृश्ययोः ॥२५॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् भूतादेः तामसात् अपि नभः अभूत् तस्य मात्रा गुणः च शब्दः यद् द्रष्ट् दृश्ययोः लिङ्गम् ।।२५।। अनुवाद— विकृत होते हुए उस महाभूतों के कारण रूप तामस अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति हुयी और उस आकाश की तन्मात्रा और गुण दोनों शब्द ही है । शब्द से ही द्रष्टा और दृश्य का बोध होता हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

भूतादेरिति तामसस्य विशेषणम् । ननु तामसाठाथमं शब्दो भवतीति प्रसिद्धम् । सत्यम् । स तु तस्य नभसो मात्रा सूक्ष्मं रूपम् । गुणश्चासाधारणो व्यावर्तको धर्मः । शब्दद्वारा नभ उत्पद्यत इत्यर्थः । एवमेव स्पर्शीदिष्विप द्रष्टव्यम् । शब्दश्च लक्षणं लिङ्गमिति । कुड्याद्यन्तरितेन केनचिदुच्चैर्गजो गज इत्युक्ते यो गजद्रष्टा यश्च तेन दृश्यो गजस्तयोर्लिङ्गं बोधकम । लिङ्गविशेषणत्वाद्यच्छब्दस्य षण्ढत्वम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भूतादि तामस अहङ्कार का विशेषण है। प्रश्न होता है कि तामस अहङ्कार से सर्वप्रथम शब्द तन्मात्र उत्पन्न होती है यह प्रसिद्ध है। आप तासम अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति कैसे कहते हैं ? तो इसका उत्तर है कि शब्द तन्मात्रा आकाश का सूक्ष्म रूप है। वह आकाश का असाधारण धर्म है। अतएव शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होती हैं इसीतरह स्पर्श आदि तन्मात्राओं के विषय में जानना चाहिए। शब्द ही लिङ्ग है। दिवाल इत्यादि से व्यवहित कोई व्यक्ति यदि जोर से कहता है, हाथी हाथी उस शब्द को सुनकर उससे देखे जाने वाले हाथी और द्रष्टा दोनों का ज्ञान होता है। यत् शब्द लिङ्ग का विशेषण होने के कारण नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त हैं ॥२५॥

नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः । परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् आकाशात् स्पर्शगुणः अनिलः परान्वयात् शब्दवान् च प्राणः ओजः सहः बलम् तस्य रूपम् ॥२६॥

अनुवाद विकृत होने वाले आकाश से स्पर्श गुण वाले वायु की उत्पत्ति हुयी । आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द नामक भी गुण है । इन्द्रियों में स्फूर्ति और प्राण में देह धारण की शक्ति, ओज और बल वायु के ही कारण है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परस्य नभसः कारणत्वेनान्वयाच्छब्दवांश्च वायुः । तस्यैव लक्षणं प्राणो देहधारणम् । ओज:सहोबलानीन्द्रियमन:शरीराणां पाटवानि तेषां हेतुरित्यर्थः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

वायु का असाधारण गुण स्पर्श है। उसका अपने कारणभूत आकाश से सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द भी हैं। वायु के कारण प्राण देह को धारण किए रहता है। ओज, सह तथा बल ये इन्द्रिय मन और शरीर की पटुता रूप हैं। इन सबों का कारण वायु ही हैं।।२६।।

वायोरिप विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः । उदपद्यत तेजो वै रूपवतस्पर्शशब्दवत् ॥२७॥

अन्वयः कालकर्मस्वभावतः, विकुर्वाणात् वायोरिप रूपवत् स्पर्शशब्दवत् तेजः उदपद्यत ।।२७।।

अनुवाद— काल, कर्म और स्वभाव से विकृत होने वाले वायु से भी रूप, स्पर्श तथा शब्द गुण वाले तेज की उत्पत्ति हुयी ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उदपद्यत उत्पन्नम् । स्वतो रूपवत्तेजो वायुर्नभसोः कारणभूतयोरन्वयात्स्पर्शशब्दवच्यः । एवमम्भसः पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्यादुणाधिक्यम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

उदपद्यत का उत्पन्न हुआ यह अर्थ है। तेज स्वभावत: रूपवान होता है। अपने कारणभूत वायु तथा आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण तेज में स्पर्श और शब्द होते हैं। इस तरह जल एवं पृथिवी का भी अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उनमें गुणों की अधिकता जाननी चाहिए ॥२७॥

तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् । रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥

अन्वय:— विकुर्वाणात् तेजसः रसात्मकम् रूपवत् स्पर्शवत् च घोषवत् च अम्भः परान्वयात् आसीत् ।।२८।। अनुवाद— विकृत होने वाले तेज से रसयुक्त जल की उत्पत्ति हुयी अपने कारणभूत वायु से अन्वित होने के कारण वह स्पर्श तथा शब्द से भी युक्त था ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तेज से जल की उत्पत्ति हुयी और वह रूप, स्पर्श और शब्द से युक्त हुआ । उसमें अपने कारण भूत वायु के स्पर्श और शब्द नामक गुण हो गये । रस जल का अपना असाधारण गुण हैं ॥२८॥

विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत् । परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥

अन्वयः विकुर्वाणात् अभ्भसः तुः, गन्धवान् विशेषः अभूत् परान्वयात् रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः अभूत् ।।२९।। अनुवाद विकृत होने वाले जल से गन्ध से युक्त पृथिवी की उत्पत्ति हुयी । अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उसमें रूप, रस, शब्द तथा स्पर्श नामक भी गुण आ गये । अधिक गुणों से युक्त होने के कारण पृथिवी को विशेष शब्द से अभिहित किया गया है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

विशेष: पृथ्वी । पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्याद्गुणाधिक्यम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

विशेष शब्द से पृथिवी को कहा गया है। अधिक गुण सम्पन्न तेज नामक कारण से सम्बन्ध होने के कारण स्वेतर भूतों की अपेक्षा उसमें अधिक गुण हुए ॥२९॥

वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश । दिग्वतार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥

अन्वयः— वैकारिकात् मनः जज्ञे दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विबहीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः वैकारिकाः देवाः दश ।।३०।।

अनुवाद— सात्त्विक अहङ्कार से मन तथा दशो इन्द्रियों के अधिष्ठातृ दिक् वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापित नामक देवताओं की भी उत्पत्ति हुयी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मनःशब्देनैव तदिधष्ठाता चन्द्रोऽपि द्रष्टव्यः । अन्ये च दश देवा वैकारिकाः सात्त्विकाहंकारकार्याः । तानाह । दिशश्च वातश्च अर्कश्च प्रचेताश्च अश्विनौ च, एते पञ्च श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिहाघ्राणानामधिष्ठातारः विहश्च इन्द्रश्च उपेन्द्रश्च मित्रश्च कश्च प्रजापितः, एते पञ्च वाक्पाणिपादपायूपस्थानामधिष्ठातारः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

मन शब्द का प्रयोग होने से ही उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा की भी उत्पत्ति स्वीकार करना चाहिए। अन्य जो दश देवता बतलाये गये हैं वे सात्त्विक हैं तथा अहङ्कार के कार्य हैं, वे देवता हैं दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता और दोनों अश्विनी कुमार, ये पाञ्चो देवता क्रमशः श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता हैं। अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापित ये पाञ्चो देवता क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ नामक कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं।।३०।।

तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ॥ श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मढ्राङ्घ्रिपायवः ॥३१॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् तैजसात् दश इन्द्रियाणि, ज्ञानशक्तिः बुद्धिः क्रियाशक्तिः, प्राणः तु तैजसौ । श्रोत्रत्वग् घ्राण दृग् जिह्ना वाग् दोःमेढः अङ्कि-पायवः इमानि दश इन्द्रियाणि सन्ति ।।३१।।

अनुवाद— विकृत होने वाले तैजस अहङ्कार से दश इन्द्रियाँ ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों तैजस हैं, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, त्विगिन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, रसनेन्द्रिय वागिन्द्रिय, पाणीन्द्रिय, पादेन्द्रिय, पाप्विन्द्रिय तथा उपस्थेन्द्रिय ये दश इन्द्रियाँ हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यतो ज्ञानशक्तिर्बुद्धिः क्रियाशक्तिः प्राणश्च तैजसाहंकारकार्यौ । अतो ज्ञानक्रियाविशेषरूपाणीन्द्रियाण्यपि तैजसादभवन्नित्यर्थः। तान्याह-श्रोत्रमिति । दोः पाणिः । मेढुमुपस्थः । क्रमस्त्वत्र न विवक्षितः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

चूिक ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों भी राजसाहङ्कारजन्य हैं अतएव इन्द्रियाँ भी ज्ञानविशिष्ट और क्रियाविशिष्ट हैं। और ये सब तैजस अहङ्कार से उत्पन्न हैं। उन सबों को श्रोत्रत्वग इत्यदि पद से कहा गया है। मूल में इन्द्रियों का क्रम विवक्षित नहीं हैं।।३१।। यदौरेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः। यदायतनिर्माणे न शोकुर्ब्रह्मवित्तम ।।३२॥

अन्वयः हे ब्रह्मवित्तम यदा भूतेन्द्रियमनोगुणा, भावाः असङ्गताः यदायतनिर्मणे न शेकुः ।।३२।।

अनुवाद हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी जब तक, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ, मन और सत्त्व, रजस्, तथा तमस् ये सभी भावपदार्थ संगठित नहीं थे तब तक ये अपने रहने के आश्रय भूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एवं कारणसृष्टिमुक्त्वा कार्यसृष्टिमाह । यदा एते असङ्गता अमीलिता आसन्, अतएव यदा आयतनस्य शरीरस्य निर्माणे न शेकुः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से कारण तत्त्वों की सृष्टि को बतलाकर कार्यसृष्टि को इस श्लोक से बतलाते हैं कि जब तक उपर्युक्त वर्णित सभी भावपदार्थ असंगठित थे तब तक वे अपने आश्रयभूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके।।३२॥ तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः । सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥३३॥

अन्वयः - तदा भगवत्शक्तिचोदिता अन्योन्यं संहत्य सदसत् उभयं भावमुपादाय अदः ससृजुः ।।३३।।

अनुवाद - उस समय भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर वे परस्पर में मिल गये और आपस में कारण-कार्यभाव को स्वीकार करके व्यष्टि एवं समष्टि रूप शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना किए ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तदा सदसत्त्वं प्रधानगुणभावमुपादाय स्वीकृत्य । उभयं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं शरीरम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

उस समय प्रधान एवं गौणभाव को अपनाकर उन सबों ने समष्टि एवं व्यष्टि शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों को उत्पन्न किया ॥३३॥

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् । कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥३४॥

अन्वय:— उदकेशयम् तत् अण्डम्, वर्षपूगसहस्रान्ते काल कर्म स्वभवस्थः जीवः अजीवम् अजीवयत् ।।३४।।

अनुवाद— एक हजार वर्ष तक जल में पड़े रहने पर उस निर्जीव ब्रह्माण्ड को काल, कर्म और स्वभाव
को स्वीकार करके जीव शब्द वाच्य परमात्मा ने उसको जीवित कर दिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कालकर्मस्वभावानिषष्ठाय स्थितो जीवयतीति जीवः परमात्मा अजीवमचेतनमजीवयच्चेतयित स्म ।।३४।।

जिस ब्रह्माण्ड का निर्माण पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ मन एवं गुणों ने मिलकर किया था वह ब्रह्माण्ड एक हजार वर्ष तक जल में पड़ा रहा । वह निर्जीव था । उसको काल, कर्म तथा स्वभाव को अधिष्ठित करके परमात्मा ने जीवित कर दिया अर्थात् चेतनारहित उसको चेतना से युक्त कर दिया । जीवित करने का काम करने के कारण परमात्मा को जीव शब्द से अभिहित किया गया है ।।३४।।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः । सहस्रोर्विङ्घबाह्नक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥३५॥

अन्वयः अण्डं निर्भिद्यः स एव पुरुषः सहस्रोर्विङ्घ्र बाहवक्षः सहस्राननशीर्षवान् तस्मात् निर्गतः ॥३५॥ अनुवाद उस अण्डे को फोड़कर वे ही विराट् पुरुष हजारों जंघाओं, चरणों, भुजाओं, नेत्रों, मुखों तथा शिरों से युक्त होकर निकले ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

निर्भिद्य पृथकृत्य स्थित इत्यर्थ: ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

निर्भद्य अर्थात् पृथक्-पृथक् करके जो परमात्मा उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किये थ वे ही विराट् पुरुष के रूप में उससे निकले । उनके जङ्घा इत्यादि अवयव हजारों की संख्या में थे ॥३५॥

यस्येहावयवैलोंकान्कल्पयन्ति मनीषिणः । कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥३६॥

अन्वय: यस्य अवयवै: इह मनीषिण: कट्यादिभि: सप्त अघोलोकान् जघानादिभि: सप्तउध्वै लोकान् कल्पयन्ति।।३६।। अनुवाद उन्हीं विराट् पुरुष के अङ्गों में मनीषीपुरुष लोकों की कल्पना करते हैं । विराट् पुरुष के कमर से नीचे के भागों में पृथिवी के नीचे के सात पातालों की कल्पना करते हैं ओर पेडू के ऊपर के भागों में सात स्वर्गों की कल्पना उपासना करने के लिए करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तदवयवैर्लोकरचनामाह-यस्येति । कटिरित्यूरुमूलयोः पश्चाद्धागः । जघनं पुरोभागः । अधः सप्तलोकान् अतलादीन्। ऊर्ध्वं भूरादीन् सप्त ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष के अङ्गों से ही लोकों की रचना बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जङ्घा के मूल के पीछे के भाग को किट कहते हैं और आगे के भाग को जङ्घा कहते हैं। नीचे के अत्तल आदि सात लोक हैं और ऊपर के भूलोक आदि सात लोक हैं ॥३६॥

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः । ऊर्वोवैंश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३७॥

अन्वयः अस्य पुरुषस्य मुखं ब्रह्म, क्षत्रम् एतस्य बाहवः भगवतः ऊर्वोः वैश्यः पद्भयां शुद्रः अभ्यजायत ।।३७।। अनुवाद विराट् पुरुष का मुख ही ब्राह्मण हैं, इसकी भुजाएँ ही क्षत्रिय है । श्रीभगवान् के दोनों ऊरूभाग ही वैश्य हैं और पैर ही शूद्र की उत्पत्ति का स्थान हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

वर्णानां तत उत्पत्तिं दर्शयति-पुरुषस्येति । ब्रह्म ब्राह्मणो मुखमिति कार्यकारणयोरभेदविवक्षयोक्तम् । बाहव इति च। क्षत्रं क्षत्रिय: ।।३७।।

विराट् पुरुष के अङ्गों से वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं यहाँ ब्रह्म शब्द, ब्राह्मण का वाचक है। ब्राह्मण उस विराट् पुरुष का मुख है यह कारण और कार्य में अभेद की विवक्षा से कहा गया है। अर्थात् विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मण वर्ण की उत्पत्ति हुयी। इसी तरह क्षत्रिय वर्ण की भुजाओं से उत्पत्ति हुयी, ऊरुओं से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी।।३७॥

भूलोंकः कल्पितः पद्भ्यां भुवलोंकोऽस्य नाभितः । हृदा स्वलोंक उरसा महलोंको महात्मनः ॥३८॥

अन्वयः पद्भयां भूर्लोकः, भुवर्लोकः नाभितः, स्वर्लोकः हृदा, महात्म्नः, महर्लोकः, उरसा किल्पतः ।।३८।। अनुवाद विराट् पुरुष के पैरों में भूलोक की कल्पना की गयी है नाभि में भुवर्लोक की कल्पना की गयी है हृदय में स्वर्लोक की कल्पना की गयी है और वक्षःस्थल में महर्लोक की कल्पना की गयी है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

इदानीमुपासनार्थं लोककल्पनाभेदान्दर्शयन् सप्तलोकपक्षमाह द्वाभ्याम्। भूर्लोकः पातालमारभ्य। पद्मां कटिपर्यन्ताभ्याम्।।३८।।

भाव प्रकाशिका

अब उपासना के लिए लोकों की कल्पना के भेदों को बतलाते हुए दो श्लोकों द्वारा सप्त लोक पक्ष का वर्णन करते हैं। पाताल से लेकर भूलोक पर्यन्त की कल्पना पैरों से लेकर किट पर्यन्त प्रदेश में की गयी हैं।।३८॥ ग्रीवायां जनलोकाश्च तपोलोक: स्तनद्वयात्। मूर्घिभ: सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोक: सनातन: ॥३९॥

अन्वयः ग्रीवायां च जनलोकः, स्तनद्वयात् तपोलोकः मूर्धभिः तु सत्यलोकः किल्पतः स एव सनातनः ब्रह्मलोकः ।।३९।। अनुवाद विराट् पुरुष की ग्रीवा में जनलोक की, दोनों स्तनों में तपोलोक की, और शिरोभाग में सत्य लोक की कल्पना की गयी है, उसके ऊपर ही सनातन ब्रह्मलोक है वही वैकुण्ठ हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

स्तनद्वयादित्युपासनार्थत्वादूर्ध्वाधोभागवैपरीत्यं न दोष: । यद्वा स्तनच्छब्दं कुर्वद्यदोष्ठद्वयं तस्मादित्यर्थ: ब्रह्मलोको वैकुण्ठाख्य:, सनातनो नित्य: नतु सृज्य प्रपञ्चान्तर्वर्तीत्यर्थ: ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

दोनों स्तनों में तपोलोक की कल्पना की गयी है और ग्रीवा में महलोक की कल्पना की गयी है। यह उलटा क्रम प्रतीत होता है। तो इस कल्पना का उद्देश्य उपासनार्थ है। अतएव ऊपर के अङ्ग और नीचे के अङ्ग को लेकर कल्पना करने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है अथवा स्तन शब्द दोनों ओष्ठ के अर्थ में प्रयुक्त मान लें और उसी में तपोलोक की कल्पना होती है। यह ब्रह्मलोक ही वैकुण्ठ है वहीं सनातन और नित्य है। यह सृज्य प्रपञ्च के अन्तर्गत नहीं है ॥३९॥

तत्कट्यां चातलं क्लप्तमूरूभ्यां वितलं विभोः। जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥४०॥ महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् । पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥४१॥

अन्वयः— तत्कट्यां च अतलं कल्रप्तं, ऊरुभ्यां वितलं, विभोः जानुभ्यां शुद्धं सुतलम् जंघाभ्यां तु तलातलम्, गुल्फाभ्यां तु महातलम्, प्रपदाभ्यां रसातलम्, पादतलतः पाताल इति लोकमयः पुमान् ।।४०-४१।।

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की किट में अतल, जङ्कों में वितल, धुटनों में पवित्र सुतल, जङ्काओं में तलातल गुल्फों में महातल पञ्चों और एड़ियों में रसातल, तथ पैर के तलवों में पाताल को जानना चाहिए। इस तरह विराट् पुरुष सर्वलोक मय है ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं चतुर्दशलोकपक्षं दर्शयति । तत्र जघनादिभिर्भूरादयः पूर्वोक्ता एव सप्त, कट्यादिभिरधः सप्तलोकानाह-तत्कट्यामिति द्वाभ्याम् । शुद्धं हरिभक्तिनिवासत्वात् ।।४०-४१।।

भाव प्रकाशिका

अब चतुर्दश लोक पक्ष को बतलाते हैं। जङ्के से लकर भूलोंक पर्यन्त पूर्वोक्त सात लोक हैं। किट के नीचे के सात लोकों को तत्कट्याम् इत्यादि दो श्लोकों द्वारा बतलाया गया हैं सुतल इसिलए पवित्र है कि वहाँ श्रीहरि की भिक्त का निवास है।।४०-४१।।

भूलोंकः कल्पितः पद्भ्यां भुवलोंकोऽस्य नाभितः । स्वलोंकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥४२॥

इति श्रीमन्द्रागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

अन्वयः भूलोंकः पद्भ्यां किल्पतः, अस्य नाभितः भुवलोंकः मूर्ध्ना स्वलोंकः किल्पतः इति लोकल्पना ।।४२।। अनुवाद अथवा विराट् पुरुष के दोनों पैरों में भूलोंक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष की नाभि में भुवलोंक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष के शिरोभाग में स्वलोंक की कल्पना करनी चाहिए ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकपक्षमाह । भूलोंक: पातालादिसहित: ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में त्रिलोक पक्ष का वर्णन किया गया है। भूलोंक: शब्द से पाताल सहित भूलोक को ग्रहण करना चाहिए ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्य की भावार्थदीपिका टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।५।।



छठा अध्याय

विराट् स्वरूप की विभूतियों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

वाचां वहेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः । हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥१॥

अन्वयः वाचांबहेः च क्षेत्रं मुखं, छन्दसां सप्त धातवः, हव्यकव्यामृतान्नानां सर्वरसस्य च जिह्ना क्षेत्रम् ।।१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद — उन विराट् पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि की उत्पत्ति हुयी । वैदिक सातो छन्दों की उत्पत्ति उनकी सातो धातुओं से हुयी । देवता, पितृगण और देवताओं के अमृतमय अन्न रसनेन्द्रिय से और सभी प्रकार के रसों की उत्पत्ति विराट पुरुष की जिह्ना से हुयी हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे विराह्विभूतिश्च प्रोक्ताऽध्यात्मादिभेदतः । दृढीकृतं च पूर्वोक्तं सर्वं पुरुषसूक्ततः ।।१।। इदानीं वैराजस्य विभूतिः सप्रपञ्चमनुवर्ण्यते । वाचामस्मदादिवागिन्द्रियाणां तदिधश्चातुर्वहेश्च तस्य मुखं क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । छन्दसां गायत्र्यादीनां सप्तानां तस्य सप्तधातवस्त्वगादयः क्षेत्रम् । हव्यं देवानामत्रम् । कव्यं पितॄणाम् । अमृतं तदुभयशेषो मनुष्याणाम् । तेषामत्रानां सर्वरसस्य मधुरादेः षड्विधस्य चकारादस्मदादिरसनेन्द्रियस्य तदिधश्चातुर्वरुणस्य चैतस्य जिह्वा क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । एवं सर्वत्रानुक्तमुत्रेयम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में अध्यात्म इत्यादि भेद से विराट् की विभूति बतलायी गयी है और पूर्वोक्त सारी बातों का समर्थन पुरुष सूक्त के द्वारा किया गया है ॥१॥

इदानीम्० इत्यादि- इस समय वैराज की विभूति का वर्णन विस्तार के साथ किया जा रहा है । वाणी तथा वाणी के अधिष्ठातृ देवता अग्नि का उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष का मुख है । गायत्री आदि सात (गायत्री, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, जगती, बृहती, पंक्ति और अनुष्टुप्) इन छन्दों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष के त्वक् आदि (चर्म, मांस, रुधिर, मेदस्, मज्जा एवं अस्थियाँ हैं) देवताओं के अन्न को हव्य कहते हैं, पितरों के अन्न को कव्य कहते हैं तथा उन दोनों से अविशष्ट मनुष्यों के अन्न ये सब अमृत स्वरूप हैं उन सभी अन्नो, सभी मधुर आदि अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त रसों तथा हमलोगों की रसनेन्द्रिय तथा उसके अधिष्ठातृ देवता के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की जिह्ना है ॥१॥

सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने । अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥२॥

अन्वयः सर्वासूनाम् च वायोश्च तन्नासे परमायने, अश्विनोः ओषधीनाम् तथा मोदप्रमोदयोः घ्राणः ।।२।।

अनुवाद— हमलोगों के सभी प्राणों तथा वायु के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की नाक के छिद्र हैं । मोद तथा प्रमोद सामान्य तथा विशेष गन्धों) के भी विराट् पुरुष के नाक के छिद्र ही श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वासूनामस्मदादिप्राणानां तस्य नासे नासारन्ध्रे परमायने उत्तमक्षेत्रे । मोदप्रमोदयोश्च सामान्यविशेषगन्धयोर्घ्राणा घ्राणेन्द्रियं परमायनम् ।।२।।

हमलोगों के प्राण, अपान, समान व्यान तथा उदान इन सभी प्राणों तथा सामान्य एवं विशेष गन्धों के श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान विराद् पुरुष की नाकों के छिद्र हैं ॥२॥

रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी । कणौं दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥३॥

अन्वय: रूपाणां, तेजसां चक्षुः दिवः सूर्यस्य अक्षिणी, दिशाम् तीर्थानाम् च कर्णीं, आकाश शब्दयोः श्रोत्रम् क्षेत्रम् ॥३॥ अनुवाद सभी रूपों तथा तेजों की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रियाँ हैं स्वर्ग लोक और सूर्य की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष के दोनों नेत्र गोलक हैं। दिशाओं तथा तीर्थों के उत्पत्ति का स्थान दोनों कान हैं और आकाश तथा शब्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की श्रोत्रेन्द्रिय है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

रूपाणां तेजसां रूपप्रकाशानां च चक्षुरिन्द्रियम् । अक्षिणी नेत्रगोलके । सर्वत्र षष्ठ्यन्तानां प्रथमान्तं क्षेत्रं द्रष्टव्यम् । कर्णौ श्रोत्राधिष्ठाने । श्रोत्रमिन्द्रियम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

सभी रूपों तथा रूपों के प्रकाशक तेजों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रिय है। स्वर्गलोक और सूर्य के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की दोनों आँखें हैं। सर्वत्र प्रयुक्त षष्ठ्यन्त पदों का अर्थ प्रथमान्त क्षेत्र करना चाहिए। कर्ण शब्द से श्रेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठान स्थान बतलाया गया है। श्रोत्र शब्द से श्रोत्रेन्द्रिय कहा गया है। श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान (रहने के स्थान) कान है।।३।।

तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् । त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेघस्य चैव हि ॥४॥

अन्वयः वस्तु साराणां सौभगस्य भाजनम् तद्गात्रम् स्पर्शवायोः सर्वमेधस्य च अस्य त्वक् क्षेत्रम् ।।४।।
अनुवाद विराट् पुरुष का शरीर सभी वस्तुओं के सार तथा सौन्दर्य का उत्पत्ति स्थान है । सभी यज्ञों
स्पर्श तथा वायु का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की त्विगिन्द्रिय है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य गात्रं शरीरं वस्तूनां ये सारास्तेषां भाजनं स्थानम् । अस्य त्वक्स्पर्शस्य वायोश्चेत्पर्थः । सर्वस्य मेघस्य यज्ञस्य ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सभी वस्तुओं के जो सारभाग हैं तथा सौन्दर्य का उत्पत्तिस्थान उस विराट् पुरुष का सम्पूर्ण शरीर है और स्पर्श, वायु तथा सभी यज्ञों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष की त्विगिन्द्रिय है ॥४॥

रोमाण्युद्धिज्जातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः । केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥५॥

अन्वय: उद्भिज् जातीनाम् रोमाणि वा यैस्तु यज्ञः संभृतः । शिलालोहाभ्रविद्युताम् अस्य केशाश्मश्रुनखानि क्षेत्राणि।।५।। अनुवाद सभी वृक्ष जातियों के उत्पत्तिस्थान उनके रोम हैं अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ का कार्य किया जाता है उन वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोम हैं । उनके केश मेधों के, श्मश्रु विद्युतों के तथा पैरों एवं हाथों के नख शिलाओं और लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

उद्भिज्जतातीनां सर्ववृक्षाणाम् । यैर्वृक्षैर्यज्ञः सम्यक् साधितस्तेषामेव वा । केशा मेघानां क्षेत्रम्, पूर्वं तथोक्तेः । श्मश्रृणि विद्युताम् । पादकरनखानि शिलालोहानामिति सादृश्यादूह्मम् ।।५।।

उद्भिज्जाति के जितने भी वृक्ष हैं उन सबों के उत्पत्तिस्थान विराद् पुरुष के रोएँ हैं । अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ अच्छी तरह सम्पन्न किया जाता है, उन्हीं वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराद् पुरुष के रोम हैं । केश मेंधों के उत्पत्तिस्थान हैं । उनके श्मश्रु विद्युत् के उत्पत्तिस्थान हैं । पैरों तथा हाथों के नख ही शिलाओं तथा लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं । सादृश्य के कारण ऐसा अर्थ करना चाहिए ॥५॥

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् । विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥६॥

अन्वयः क्षेमकर्मणाम् लोकपालानाम् प्रायशः बाहवः । भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च विक्रमः ।।६।।

अनुवाद विराद् पुरुष की भुजाओं से प्रायः लोकों की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति हुयी। उनके पादिवन्यास से भूलोंक, भुवलोंक एवं स्वलोंक की उत्पत्ति हुयी है क्षेम और रक्षा की भी उत्पत्ति उनके चरणों से ही हुयी हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

क्षेमकर्मणां पालनकर्तृणाम् । विक्रमः पादन्यासो भूरादिलोकानामास्पदमाश्रयः । भूरादिशब्दानामव्ययत्वात्पष्ट्या लुक् क्षेमो लब्धशरणम् । शरणं भयाद्रक्षणम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि संसार की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति विराट् पुरुष की भुजाओं से हुयी हैं। उनके चरणविन्यासों से भूलोंक, भुवलोंक और स्वलोंक की उत्पत्ति हुयी है। भू: आदि शब्दों के अव्यय होने के कारण भू भूव: स्व: इन तीनों की षष्ठी विभक्ति का लुक् हुआ है। प्राप्त वस्तु की रक्षा करने को क्षेम कहते हैं किसी की भय से रक्षा करने को शरण कहते है। श्रीभगवान् के चरण विन्यास ही क्षेम और शरण हैं ॥६॥

सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् । अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ पुंसः शिश्च उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥७॥

अन्वयः— सर्वकामवरस्य अपि हरेः चरणः आस्पदम् । अपाम् वीर्यस्य, सर्गस्य, पर्जन्यस्य प्रजापतेः पुंसः शिश्नः प्रजात्यानन्दिनवृतेः तु उपस्थः ।।७।।

अनुवाद सभी कामनाओं की पूर्ति के स्थान विराट् पुरुष के चरण ही हैं। विराट् पुरुष का लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ तथा प्रजापित की उत्पत्ति का स्थान है। विराट् पुरुष का जननेन्द्रिय मैथुनजन्य आनन्द का उत्पत्ति स्थान है।।७॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कामनां वरस्य वरुणस्यापि हरेरिङ्घ्ररास्पदम् । वीर्यस्य शुक्रस्य । शिश्रोऽधिष्ठानम् उपस्थस्त्विन्द्रियम् । प्रजात्यानन्दः सन्तानार्थः संभोगस्तेन या निर्वृतिस्तापहानिस्तस्याः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सभी कामनाओं की पूर्ति का भी स्थान विराट् पुरुष के चरण हैं। जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापित का उत्पत्ति स्थान लिङ्ग है। शिशन शब्द से लिङ्ग को कहा गया है। उपस्थ इन्द्रिय है। सन्तानोत्पत्ति के लिए किए जाने वाले संभोग और तज्जन्य आनन्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की उपस्थेन्द्रिय हैं।।७।।

पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद । हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥

अन्वयः नारद ! यमस्य, मित्रस्य, परिमोक्षस्य पायुः । हिंसायाः, निऋतेः मृत्योः निरयस्य गुदः स्मृतः ।।८।। अनुवाद हे नारद ! विराट् पुरुष की पायु इन्द्रिय ही यम, मित्र तथा मलत्याग का उत्पत्ति स्थान है और हिंसा, निऋति, मृत्यु और नरक का उद्गम स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

परिमोक्षस्य मलत्यागस्य पायुरिन्द्रियम् । गुदः स्थानम् । निर्ऋतेरलक्ष्म्या ।।८।।

भाव प्रकाशिका

गुद: स्थान मल द्वार को कहते हैं । यम, मित्र, मलत्याग इन सबों का उद्गम स्थान पायुरिन्द्रिय है । हिंसा अलक्ष्मी, मृत्यु, तथा नरक का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार हैं ॥८॥

पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः । नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥९॥

अन्वयः पश्चिमः पराभूतेः अधर्मस्य तमसः च अपि, नदनदीनाम् नाड्यः गोत्रणाम् अस्थिसंहति उद्गमस्थानम् ।।९।।

अनुवाद विराट् पुरुष की पीठ पराजय अधर्म और अज्ञान का उद्गम स्थान है । नदियों और नक्षत्रों का
उद्गम स्थान विराट् पुरुष की नाडियाँ हैं तथा पर्वतों का उद्गमस्थान विराट् पुरुष के अस्थिसमूह हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तमसोऽज्ञानस्य । पश्चिमः पृष्ठभाग गोत्राणां गिरीणामस्थिसंघातः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

विराट् पुरुष की पीठ अज्ञान का उत्पत्ति स्थान है। गोत्र शब्द वाच्य पर्वतों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के अस्थिसमूह से हुयी ॥९॥

अव्यक्तरसिन्धूनां भूतानां निधनस्य च । उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥१०॥

अन्वयः— अव्यक्त-रस-सिन्धूनां भूतानां निधनस्य च पुंसः उदरम् विदितम् मनसः हृदयम् पदम् ।।१०।।

अनुवाद— प्रकृति अन्नों के सारभूत रस विशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का स्थान विराट् पुरुष का उदर है और मन का उद्गम स्थान हृदय है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अव्यक्तं प्रधानम्, रसोऽत्रादिसारः, सिन्धवः समुद्रास्तेषाम् । निधनस्य लयस्य । उदरं पदं स्थानं विदितं ज्ञानिभिः । मनसोऽस्मदादिलिङ्गशरीरस्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अव्यक्त शब्द वाच्य प्रकृति अन्नों के सारभूत रसविशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का उद्गम स्थान विराट् पुरुष का उदर है; यह ज्ञानियों ने कहा है। मन: शब्द वाच्य हमलोगों के लिङ्ग शरीर का उद्गम स्थन विराट् पुरुष का हृदय है।।१०।।

धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च । विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥११॥

अन्वयः— धर्मस्य, मम, तुभ्यं च कुमाराणं, भवस्य च विज्ञानस्य सत्त्वस्य च आत्मा परायणम् ।।११।।

अनुवाद— धर्म का, मेरा, तुम्हारा, सनकादियों का, शङ्करजी का, विज्ञान का और सत्त्व का आश्रय विराट् पुरुष का चित्त है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव । कुमाराणां सनकादीनाम् । भवस्य श्रीरुद्रस्य । आत्मा चित्तं परमयनम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

धर्म, ब्रह्माजी का, नारदजी का, सनकादिक महर्षियों का, शङ्करजी का और सत्त्व अन्तःकरण का परम आश्रय विराट् पुरुष का चित्त ही है ॥११॥

अहं म्भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः । सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥१२॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः । पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः॥१३॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः । ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तिष्ठतः स्तनियत्नवः ॥१४॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्य यत्। तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥१५॥

अन्वयः— अहम्, भवान् भवः च त इमे अग्रजा मुनयः सुरासुरनराः नागाः खगाः, मृगसरीसृपाः, गन्धर्वाप्सरसः यक्षाः रक्षोभूतगणोरगाः, पशवः पितरः, सिद्धाः विद्याधाः चारणाः द्रुमाः अन्येच विविधा जीवाः, जलस्थलनभौकसः, ग्रहर्क्षकेतवः, ताराः तिहतः, स्तनियत्नवः सर्वं इदं यत् भूतं भव्यं भवत् च इदं विश्वं तेन आवृतं किञ्च सः वितस्तिम् अधितिष्ठति ।।१२-१५।।

अनुवाद में (ब्रह्माजी) तुम (नारदजी) शङ्करजी तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षिगण, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग, रेंगने वाले जीव, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प, पशु, पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, अनेक प्रकार के दूसरे जीव जो आकाश, जल अथवा पृथिवी पर रहते हैं, ग्रह, नक्षत्र केतु, तारे, विद्युत् और मेघ यह सम्पूर्ण जगत् विराट् पुरुषमय हैं। यह सम्पूर्ण विश्व जो कभी हुआ, या होगा अथवा है, ये सबके सब उस विराट् पुरुष से धिरे हैं। यह सम्पूर्ण विश्व विराट पुरुष के एक वितस्ति वित्ता मात्र में स्थित है। इस विश्व का परिमाण विराट् पुरुष का एक वित्ता है।।१२-१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्परमेश्वराज्जातं विश्वं ततो न भिन्नम् । यथा कुण्डलं सुवर्णात्र पृथक् । स तु सर्वनियन्ता सर्वप्रकाशको नित्यमुक्त इत्यर्थादुक्तम् । एतदेव पुरुषसूक्तार्थकथनेन द्रढ्यति । तत्र 'सहस्रशीर्षा' इत्यर्धर्चस्य 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादेश्व ऋक्त्रयस्यार्थः पूर्वाध्याय एव दर्शितः । 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यस्यार्थं दर्शयति । अहं भवानिति सार्धित्रिभिः । ते तव अग्रजा इमे सनकादयो मरीच्यादयश्च जलं च स्थलं च नभश्चौकांसि येषां ते । नभौकस इति सन्धिरार्षः । सर्विमदं पुरुष एव न ततः पृथगित्यर्थः । प्रपञ्चेन तस्या परिच्छेदं वक्तुं स भूमिम्' इत्यस्यार्थमाहं तेन पुरुषेण । विश्विमिति भूमिपदस्यार्थः । वितस्तिमिति दशाङ्गुलपदस्य, अधीत्यतिशब्दस्य, आवृतिमिति वृत्वेत्यस्य, स च वितस्तिमिषकं व्याप्य तिष्ठतीत्याधिक्यमात्रं विवक्षितं, नतु परिमाणम् अनुपयोगादपरिच्छित्रत्वाच्च ।।१२-१५।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा से उत्पन्न होने वाला यह जगत् उनसे भिन्न नहीं है। यह उसी तरह से है जैसे सुवर्ण से निर्मित कुण्डल सुवर्ण से भिन्न नहीं होता है। वे परमेश्वर जो हैं वे सबों के नियामक हैं, सबों के प्रकाशक है और नित्य मुक्त हैं यह अर्थत: ही सिद्ध हो जाता है। इस अर्थ का प्रतिपादन ब्रह्माजी ने पुरुषसूक्त का वर्णन करके किया है। पुरुष सूक्त के सहस्रशीर्षा इत्यादि आधे मन्त्र का तथा ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीत् इत्यादि तीन मन्त्रों का अर्थ इससे पहले के अध्याय में बतलाया जा चुका है। अहं भवान् इत्यादि साढे तीन श्लोकों द्वारा ब्रह्माजी ने पुरुष एवेदं सर्वम् इस मन्त्र का अर्थ बतलाया है। वितस्तिम् इस पद के द्वारा श्रुति के दशाङ्गुलम् पद का अधि इस अव्यय के द्वारा अति पद का अर्थ बतलाया गया है। परमेश्वर विराट् पुरुष के वित्तामात्र प्रपञ्च को अधिक

व्याप्त करके रहता है यह कहने का इतना ही मात्र अभिप्राय है कि वह प्रपञ्च की अपेक्षा अधिक व्यापक है। यहाँ परिमाण विवक्षित नहीं है। क्योंकि परिमाण प्रतिपादन का कोई उपयोग नहीं है और विराट् पुरुष परिच्छित्र हैं भी नहीं।।१२-१५।।

स्वधिष्णयं प्रतपन्त्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ । एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥१६॥

अन्वय:— यथा असौ प्राण: स्वधिष्ण्यं प्रतपन् बहिश्च प्रतपित, एवं पुमान् विराजं प्रतपन् अन्तर्बाहिश्च प्रतपित ।।१६।। अनुवाद— जैसे प्रकाशित होने वाले सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं, उसी तरह परमात्मा भी अपने शरीरभूत विराट् को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टन्तमाह । असौ प्राण आदित्यः 'असौ वा अदित्यः प्राणः' इति श्रुतेः । स्वधिष्ण्यं मण्डलं प्रकाशयन्यथा बहिश्च प्रकाशयति एवं विराड्देहं प्रकाशयन् ब्रह्माण्डमन्तर्बहिश्च प्रकाशयति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक करते हैं। जैसे दूर देश में विद्यमान प्राण शब्द वाच्य आदित्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं उसी तरह परमेश्वर भी अपने विराट् देह को प्रकाशित करते हुए ब्रह्माण्ड के भीतरी भाग को और बाहर भी प्रकाशित करते हैं। प्राण शब्द आदित्य का वाचक है इसमें 'असौ वा आदित्य: प्राण:' यह श्रुति ही प्रमाण हैं।।१६॥

सोऽमतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् । महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् यत् मर्त्यमन्नम् अत्यगात् ततः पुरुषस्य एष महिमा दुरत्ययः सः अमृतस्य अभयस्य ईशः ।।१७।। अनुवाद हे नारदजी ! जो कुछ भी मनुष्य की क्रिया और सङ्कल्प से बनता है, ईश्वर उससे परे हैं । वह अमृत अभयप्रद (मोक्ष) का स्वामी है । इसीलिए परमेश्वर की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

नित्यमुक्तत्वं दर्शयितुं 'उतामृतत्वस्य' इत्यस्यार्थमाह- स इति । अभयस्येति मन्त्रगतामृतपदव्याख्या । अन्नेनेति पदं विभक्तिव्यत्ययेन व्याचष्टे । मर्त्ये मरणधर्मकमन्नं कर्मफलं यस्मादत्यगादितक्रान्तवान् । अतो न केवलं सर्वात्मकः, किंत्वमृतत्वस्य निजानन्दस्यापीश्वर इत्यर्थः । प्रपञ्चात्मकस्य कुतो नित्यमुक्तत्विमत्याशङ्क्य तत्परिहाराय 'एतावानस्य' इत्यस्यार्थमाह- मिहमेति। प्रपञ्चात्मकस्याप्यमृतेशत्त्विमत्येष मिहमा दुरत्ययोऽपारः । प्रपञ्चानिभिभूतत्वादिति भावः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यह विराट् पुरुष नित्यमुक्त है इस बात को बतलाने के लिए ब्रह्माजी सोऽमृतस्य इत्यादि श्लोक के द्वारा उतामृतत्वस्येशानों इत्यादि श्रुति का अर्थ बतलाते हैं। श्लोक के अभयस्य पद के द्वारा मन्त्र के अमृत पद की व्याख्या की गयी है। मन्त्र के अन्नेन पद की व्याख्या अन्नम् पद से विभक्ति को परिवर्तित करके कहा गया है। मर्त्यम् पद के द्वारा मरणशील अन्न कर्मफल को कहा गया है। चूिक वह विराट् पुरुष कर्म फल का अतिक्रमण किए हुए है, अतएव वह केवल सर्वात्मक ही नहीं है अपितु वह अमृतत्त्व अर्थात् अपने आनन्द का भी स्वामी है। यह प्रपञ्चात्मक विराट् कैसे नित्य मुक्त हो सकता है तो इस प्रकार की शङ्का का परिहार करने के लिए एतावानस्य इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्माजी ने महिमैष इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया है। अर्थात् प्रपञ्चात्मक भी परमेश्वर की महिमा अपार है; क्योंकि वह प्रपञ्च से अभिभूत नहीं है।।१७।।

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः । अमृतं क्षेममभयं त्रिमूध्नोऽधायि मूर्धसु ॥१८॥

अन्वयः— पुंसः पादेषु सर्वभूतानि स्थिति पदोविदुः त्रिमूर्घ्नः मूर्धसु अमृतं क्षेमम् अभयं अधायि ।।१८।।

अनुवाद सम्पूर्ण लोक परमेश्वर के एक पद मात्र (अंश मात्र) हैं । उनके अंश मात्र लोकों में समस्त प्राणियों का निवास है । भूलोंक, भुवलोंक और स्वलोंक के ऊपर महलोंक विद्यमान है । उसके ऊपर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक विद्यमान हैं । उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेम और अभय का निवास रहता हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

मन्त्रेण चैतावानस्य मिहमा विभूतिः, स तु ज्यायान्महत्तर इति वदताऽयमेवार्थ उक्तः । तदेवमीश्वरो नित्यमुक्त इत्युक्तं 'तदाश्चितानां भूतानां बन्धमोक्षौ व्यवस्थया' इति दर्शयन् 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इत्यस्यार्थमाह-पादेष्विति । तिष्ठन्त्यत्रेति स्थितयो भूरादिलोकास्ते पादा इव पादा अंशा यस्य स स्थितिपात् तस्य पादेश्वंशभूतेषु लोकेषु सर्वाञ्जीवान्विदुः । मन्त्रे तु 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति सामानाधिकरण्यमधिष्ठानाधिष्ठेयाभेदिववक्षया । पाद इत्येकवचनं च सामान्याभिप्रायेणेति व्याख्यातं भवति । भूतेषु फलवैचित्र्यं दर्शयन् । 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' इत्यस्यार्थमाह । अस्येश्वरसंबन्धि त्रिपादमृतं नित्यसुखं दिवि कर्ध्वलोकेषु । न त्रिलोक्यामित्यर्थः । तदेव त्रिपाच्छब्दोक्तं त्रैविध्यं दर्शयन्नाह । त्रयाणां लोकानां मूर्धा महर्लोकस्तस्य मूर्धानस्तदुपरितनलोकास्तेषु यथाक्रमममृतादिकमधायि निहितम् । तत्र त्रिलोक्यां नश्वरमेव सुखम् । महर्लोकस्य क्रममुक्तिस्थानत्वेऽि कल्पान्ते तत्रत्यानां स्थानत्यागान्नाविनाशिसुखम् । जनलोके त्वमृतमिवनाशिसुखम् । यावज्जीवं स्वस्थानापरित्यागात् । किंतु महर्लोकवासिनां कल्पान्ते त्रिलोक्यां द्रामानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना । यान्त्युष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः' इति । सत्यलोके त्वभयं मोक्षः, तत्प्रत्यासत्तेः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

एतावानस्य • इत्यादि मन्त्र के द्वारा यह कहा गया है कि इतना उस पुरुष की महिमा अर्थात् विभूति है और वह पुरुष उससे भी महान् है। इस बात को बतलाने वाले मन्त्र के द्वारा यही बतलाया गया है। इस तरह सिद्ध हो गया कि ईश्वर नित्य ही मुक्त हैं । उसके अधीन रहने वाले भूतों की बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था को बतलाते हुए ब्रह्माजी पादोऽस्य विश्वाभूतानि इस मन्त्र का अर्थ पादेषु इस वाक्य से कहे हैं । उस ईश्वर में भूलोक अदि लोक है वे चरणों के समान हैं। पाद शब्द यहाँ अंश का बोधक है। वे लोक जिसके चरण है वह स्थिति पाद है। उसके अंश भूत लोकों में सभी जीवों को ज्ञानी पुरुष जानते हैं। मन्त्र में जो सामानाधिकरण्य अधिष्ठान और अधिष्ठेय के अभेद की विवक्षा से किया गया है। पादोऽस्य में पाद शब्द का एकवचनान्त प्रयोग जाति की विवक्षा से किया गया है। इस तरह से इस बात की व्याख्या की गयी है। प्रत्येक भूतों को अलग-अलग फल की प्राप्ति को बतलाते हुए त्रिपादस्यामृतं दिवि श्रुति का अर्थ बतलाया गया है । उसका अर्थ है कि ईश्वर सम्बन्धी अमृतित्रपाद है। अर्थात् वहाँ सदा सुख ही बना रहता है। वह ऊपर के लोकों में विद्यमान है वह अमृतित्रपाद त्रिलाकी के भीतर नहीं है। उस त्रिपाद शब्द से उक्त की त्रिविधता बतलाते हुए त्रिमूर्ध्न: कहा गया है। इसका विग्रह है त्रयाणां लोकानां मुर्धा । वह महलोंक है । उस महलोंक के ऊपर विद्यमान जो लोक हैं उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेभ तथा अभय विद्यमान हैं । त्रिलोकी में रहने वाला सुख तो नश्वर है । यद्यपि महलेंकि क्रममुक्ति का स्थान है, किन्तु कल्प का अन्त होने पर वहाँ के भी जीव महलोंक का त्यग कर देते हैं । अतएव वहाँ का भी सुख अविनाशी नहीं है । जनलोक में तो अमृत अर्थात् अविनाशी सुख रहता है । क्योंकि वहाँ के जीव जीवनभर उस लोक का परित्याग नहीं करते हैं । किन्तु महलोंक में रहने वालें जीव कल्पान्त में त्रिलोकदाह की गर्मी से पीड़ित होकर जनलोक में चले जाते हैं। अतएव वहाँ उनको सुख नहीं मिलता है। तपोलोक में दुख का अभाव है अतएव वहाँ क्षेम का निवास है। आगे चलकर कहा भी जायेगा-

त्रिलोक्यां • इत्यादि - अर्थात् कल्प के अन्त में संकर्ष के मुख से निकली हुयी अग्नि से जब त्रैलोक्य जलने लग जाता है तो उसकी गर्मी से सन्तप्त महलोंकवासी जीव महर्षि भृगु इत्यादि जनलोक में चले जाते हैं। सत्यलोक में तो अभय पद वाच्य मोक्ष का निवास है। क्योंकि सत्यलोक का वैकुण्ठ लोक से सित्रधान हैं।।१८।। पादास्त्रयो बहिश्चासन्त्रप्रजानां य आश्रमाः । अन्तिस्त्रलोक्यास्त्वपरा गृहमेघोऽबृहद्वतः ।।१९।।

अन्वय: अप्रजानां ये आश्रमाः त्रयः पादाः त्रिलोक्याः बहिश्चासन् अपरः अबृहद्वृतः गृहमेधः स त्रिलोक्याः अन्तः।।१९।। अनुवाद जिन लोकों में पुत्र-पौत्र इत्यादि नहीं होते हैं, वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी ये तीनों आश्रम त्रिलोकी के भीतर नहीं रहते हैं, वे उसके बाहर के लोकों में रहते हैं, जिसमें महान् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया जाता है, ऐसे गृहस्थ त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव वैचित्र्यमधिकारिभेदेनोपपादयन् 'त्रिपादूर्ध्व' इत्यस्यार्थमाह । नहि प्रजायन्ते पुत्रादिरूपेणेत्यप्रजा नैष्ठिकब्रह्मचारिवानप्रस्थयतयस्तेषामाश्रमास्त्रिलोक्या बहिरासन्, गृहमेधस्त्वन्तः । यस्माद्बृहद्व्रतो ब्रह्मचर्यव्रतरहितः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इसी विचित्रता को अधिकारी के भेद से प्रतिपादित करते हुए ब्रह्माजी त्रिपादूर्ध्वमुदैत् इत्यादि मन्त्र का अर्थ बतलाते हैं जिन आश्रमों में जीवों की पुत्र आदि रूप से उत्पत्ति नहीं होती है। उन आश्रमों को अप्रजा कहते है। ऐसे आश्रम नैष्ठिकब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासियों का आश्रम हैं। वे त्रिलोकी के बाहर हैं और गृहमेधी (गृहस्थ) तो त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं। क्योंकि गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्यव्रत रहित होता है।।१९॥

सृति विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे । यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयाः ॥२०॥

अन्वयः— साशनानशने उभे सृती विष्वङ् विचक्रमे यद् विद्या च अविद्या च । पुरुषस्तूभयाश्रयः ।।२०।।

अनुवाद शास्त्रों में दो प्रकार के मार्ग वर्णित हैं भोगप्रद तथा मोक्षप्रद । इन दोनों में से एक अविद्या रूप है, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासना रूप मोक्ष प्रदान करने वाला है । इन दोनों को क्रमशः धूमादिमार्ग या दक्षिणमार्ग तथा अर्चिरादिमार्ग या उत्तरमार्ग कहा जाता है । मनुष्य इन दोनों में किसी एक में ही जाता है किन्तु परमात्मा तो उभयाश्रय (दोनों के आधार) हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अयं चाधिकारभेद एकस्यैवावस्थाभेदेन न त्वत्यन्तभित्रविषय इति दर्शयन् 'ततो विष्वङ्' इत्यस्यार्थमाह । विविधं सुष्ठु अञ्चतीति विष्वङ् पुरुषः क्षेत्रज्ञः सृती मार्गौ दक्षिणोत्तरौ विचक्रमे चलित स्म । कथंभूते सृती, साशनानशने भोगापवर्गप्राप्तिसाधनभूते । अत्र हेतुत्वेन पुनर्विशेषणम् । यद्यतः अविद्या कर्मरूपा एका विद्या च तत्साधनोपासनारूपान्या ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यह अधिकार भेद एक के ही अवस्था भेद के कारण है। यह अत्यन्त भिन्न विषयक नहीं हैं इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने ततो विष्वङ्व्यक्तामत क्षेत्रज्ञ पुरुष इन दोनों मार्गों पर चलता है। यह विष्वङ् शब्द का विविधं (सुष्ठु) अञ्चतीति, इस विग्रह के अनुसार अर्थ हैं। द्विवचनान्त सृती पद दक्षिण एवं उत्तर इन दोनों मार्गों का बोधक है। साशनानशने पद के द्वारा दोनों मार्गों को क्रमशः भोग तथा मोक्षप्रद बतलाया गया है। उनमें एक सृति अविद्या अर्थात् कर्म रूप है और दूसरी मोक्षप्राप्ति के साधन भूत उपासना रूप है। इसको विद्या भी कहते हैं।।२०।।

यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः । तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥२१॥

अन्वयः यस्माद् भूतेन्द्रिय गुणात्मकः विराद् अण्डं जज्ञे तत् गोभिः विश्वं अतपन् सूर्य इव द्रव्यम् अत्यगात् ।।२१।। अनुवाद जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए भी सबों से अलग है, उसी तरह से जिस परमात्मा से पञ्चभूत, इन्द्रिय और गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुयी है वे इन समस्त वस्तुओं के भीतर और बाहर रहते हुए भी उससे पूर्ण रूप से पृथक् हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं विराडन्तवर्तिनां फलवैचित्र्यमुक्त्वा तत्कारणेश्वरस्य तद्वैलक्षण्यं दर्शयितुं 'तस्माद्विराडजायत' इत्यस्यार्थमाह । यस्मादण्डं जज्ञे, तत्र च भूतेन्द्रियगुणात्मको विराट् च जज्ञे, स ईश्वरस्तद्विश्वं विराट्देहं द्रव्यमण्डं च अतिक्रान्तवान् । सूर्य इवेति पूर्वोक्त एव दृष्टान्तः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्रह्माण्डन्तर्वर्ती जीवों के फलों की भिन्नता को बतलाकर उसके कारणभूत परमेश्वर की उससे भिन्नता को बतलाने के लिए तस्माद्विराडजायत इस श्रुत्यंश का अर्थ बतलाया गया है। और उसीसे भूतेन्द्रिय गुणात्मक विराट् भी उत्पन्न हुआ। वे ईश्वर अपने सम्पूर्ण विराट् देह और द्रव्य अण्ड से भिन्न हैं। सूर्य के समान। यह दृष्टान्त बतलाया गया है। जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए उससे भिन्न हैं उसी तरह परमेश्वर सबों से अपने विराट् देह और ब्रह्माण्ड से भिन्न हैं।।२१।।

यदाऽस्य नाभ्यात्रिलनादहमासं महात्मनः । नाविदं यज्ञसंभारान्युरुषावयवादृते ॥२२॥

अन्वयः यदा अहम् अस्य महात्मनः नाभ्यात् निलनाद् आसं पुरुषावयवात् ऋते यज्ञ संभारान् न अविदम् ।।२२।। अनुवाद— जिस समय इस विराट पुरुष के नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ उस समय मुझको इस पुरुष के अङ्गों के अतिरिक्त कोई भी दूसरी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं पुरुष एव चेत्सर्वं। तर्हि यज्ञस्य तत्साधनानां चापृथग्भावाद्यज्ञैः पुरुषाराधनं न सिध्येदित्याशङ्क्य तत्परिहाराय 'यत्पुरुषेण हविषा' इत्यादिमन्त्रार्थं संगृह्य दर्शयति– यदेत्यादिना । अस्येति विराडन्तर्यामिणः । तस्यैव प्रकृतत्वात् । नाभौ भवं नाभ्यं तस्मात् । यज्ञस्य संभारान्साधनानि नापश्यम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि पुरुष ही सम्पूर्ण जगत् है तो यज्ञ तथा उसके साधनों की अभिन्नता के कारण यज्ञों के द्वारा पुरुष की आराधना सिद्ध नहीं हो सकती है, इस तरह की आशङ्का करके उसका परिहार करने के लिए यत् पुरुषण हिवण इत्यादि मन्त्र के अर्थ को यदास्य इत्यादि श्लोक के द्वारा संक्षेप में ब्रह्माजी ने बतलाया। श्लोक के अस्य पद के द्वारा विराट् के अन्तर्यामी परमेश्वर का परामर्श किया गया है; क्योंकि यहाँ उसी का वर्णन प्रसङ्ग प्राप्त है। नाभि से उत्पन्न होने के कारण कमल को नाभ्य कहा गया है। ब्रह्माजी ने कहा कि उस पुरुष के अवयवों से भिन्न किसी भी वस्तु को मैंने नहीं देखा।।२२।।

तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः । इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥२३॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् । ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥ नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च । देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥२५॥ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् । पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६॥ अन्वयः हे सत्तम तेषु यज्ञस्य पशवः वनस्पतयः कुशाः, इदं देवयजनं, उरु गुणान्वितः कालः, वस्तूनि, ओषधयः स्नेहा, रस-लोह-मृदः, जलम्, ऋचः यर्जूषि, सामानि, चातुर्होत्रं च , नामधेयानि, मन्त्राः च , दक्षिणाः च ब्रतानि च , देववानुक्रमः, कल्पः, सङ्कल्पः, तन्त्रम् एव च गतयः मतयः, श्रद्धा, प्रायश्चितं समर्पणम् एते सम्भाराः मया पुरुषावयवैः सम्भृताः।।२३-२६।।

अनुवाद — मैंने पुरुष के अवयवों में ही, यज्ञ के पशु स्तम्भ (यूप) वनस्पित, कुश, यह यज्ञभूमि, यज्ञ के योग्य काल, यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तु औषिधयाँ, तिल, चावल, यव, आदि अन्न) घृत आदि स्नेह, छहोरस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुष् और साम, चातुहोंन्न, यज्ञों के नाम, मन्न्न, दक्षिणा, न्नत, देवताओं के नाम, पद्धति ग्रन्थ (कल्प) सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति, गित, मित, श्रद्धा) प्रायश्चित तथा समर्पण इन समस्त यज्ञ सामित्रयों को प्राप्त किया ।।२३-२६॥

भावार्थ दीपिका

तदा तेषु संभारेषु साध्येषु सत्सु 'पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृताः' इति चतुर्थेनान्वयः । वनस्पतयो यूपाः । देवयजनं यज्ञभूमिः । इदं चेति वचनात् यज्ञार्हे स्थाने उपविष्टः कथयतीति गम्यते । बहुगुणान्वितो वसन्तादिकालः । वस्तूनि पात्रादीनि। ओषधयो ब्रीह्यादयः । स्नेहा घृतादयः । रसा मधुरादयः, सुवर्णादीनि लोहानि, मृदश्च जलं च, चातुर्होत्रं हौत्रादिकं कर्म । नामधेयानि ज्योतिष्टोमादीनि । ऋगादीनामुक्तत्वान्मत्रा इति स्वाहाकारादयः । देवतानामनुक्रम उद्देशः । कल्पो बौधयनादिकर्मपद्धतिग्रन्थः । अनेनाहं यक्ष्य इति सङ्कल्पः । तन्त्रमनुष्ठानप्रकारः । गतयो विष्णुक्रमाद्याः । मतयो देवताध्यानानि। कृतस्य भगवति समर्पणम् ।।२३-२६।।

भाव प्रकाशिका

उस समय जिन यज्ञ की सामग्रियों को एकत्रित करना था, उस सबों को मैंने पुरुष के अवयवों से ही एकत्रित किया। इस तरह से इस श्लोक का चौथे श्लोक से अन्वय है। श्लोक में वनस्पित शब्द से यूप (स्तम्भ) को कहा गया है। देवयजन शब्द यज्ञभूमि का बोधक है। इदं शब्द के द्वारा यज्ञ के योग्य स्थान पर बैठे हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं, यह प्रतीत होता है। यज्ञ के योग्य वसन्त ऋतु आदि काल को काल शब्द से कहा गया है। वस्तु शब्द से पात्र इत्यादि को कहा गया है। धान आदि अत्रों को ओषधि शब्द से कहा गया है। घृत आदि को स्नेह कहा गया है। मधुर इत्यादि षट् रसों को रसा शब्द से कहा गया है। सुवर्ण आदि को लोह शब्द से कहा गया है। मिट्टी, जल, तथा चातुहोंत्र अर्थात् होत्रादि कर्म भी ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया। ज्योतिष्टोम इत्यादि यज्ञों के नाम, ऋग् आदि वेदों के मन्त्र स्वाहाकार आदि यज्ञ के देवताओं के उद्देश (नाम) बोधायन आदि महर्षियों द्वरा प्रणीत बौधायान कर्म पद्धित इत्यादि ग्रन्थों को कल्प शब्द से कहा गया है। इससे में यज्ञ करूँगा। इत्यादि रूप सङ्कल्पों तथा अनुष्ठान के प्रकार इन सबों को ब्रह्माजी ने विराट् पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया। गित शब्द से यज्ञ के अन्त में विष्णो: क्रमोऽस्यिभमितिहा' इस मन्त्र से यज्ञमान के द्वारा की जाने वाली गित विशेष को कहा गया है, मित शब्द से देवताओं के ध्यान को और सभी कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करना इन सबों को ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया। २३-२६॥

इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम्। तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम्॥२७॥

अन्वयः इति पुरुषावयवैः संभृतसंभारः अहम् तमेव, यज्ञं पुरुषं तेनैव अयजम् ।।२७।।

अनुवाद— इस प्रकार से पुरुषों के अवयवों से सामग्रियों को एकत्रित करके मैंने उस यज्ञपुरुष परमात्मा का उसी सामग्री समूह से मैंने यजन किया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

संभृताः संपादिताः संभारा येन सोऽहम् । तेनैव यज्ञेनैव । अनेन 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त' इति मन्त्रार्थः सूचितः ।।२७।।

इस तरह से यज्ञ की सारी सामग्रीको एकत्रित करके मैंने उस यज्ञ के द्वारा ही उस परमपुरुष का यजन किया। इस श्लोक के द्वारा यज्ञेन यज्ञमयजन्त इत्यादि मन्त्र के अर्थ को सूचित किया गया है ॥२७॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव । अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥

अन्वयः -- ततः ते इमे भ्रातरः नव प्रजानां पतयः सुसमाहिताः व्यक्तम् अजयन् ।।२८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् तुम्हारे जो नव प्रजापित भाई हैं इन लोगों ने अपने चित्त को अच्छी तरह से समाहित करके विराट् तथा अन्तर्यामी रूप से स्थित परमात्मा का यजन किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तेन देवा अयजन्त इत्यस्यार्थं सप्रपञ्चं दर्शयति- तत इति द्वाभ्याम् । व्यक्तिमिन्द्रिदिरूपेण । अव्यक्तं स्वतः । अनेन 'पुरुषं जातमग्रतः' इत्यस्यार्थौ दर्शितः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

ततस्ते इत्यादि दो श्लोकों द्वारा तेन देवा अयजन्त' इत्यादि का विस्तार के साथ वर्णन करते हैं। व्यक्त का अर्थ है इन्द्रादि रूप से व्यक्त तथा अव्यक्त अर्थात् स्वयम् इन दोनों रूपों में विद्यमान यज्ञपुरुष ईश्वर का यजन किया इस श्लोक के द्वारा 'पुरुषं जातमग्रतः' इस मंत्र के अर्थ को बतलाया गया है ॥२८॥

ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे । पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥

अन्वयः— ततः च काले मनवः अपरे ऋषयः पितरः विवुधाः दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिः विभुम् ईजिरे ।।२९।। अनुवाद— उसके पश्चात् समय-समय पर मनुओं, दूसरे ऋषियों, पितरों, देवताओं, दैत्यों तथा मनुष्यों ने यज्ञों के द्वारा परमात्मा की आराधना की ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

काले स्वस्वावसरे ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

जिस मनु, देवता, ऋषि इत्यादि का जब समय आया तो उन लोगों ने भी परमात्मा की आराधना यज्ञों के द्वारा की ॥२९॥

नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् । गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥३०॥

अन्वय:— तत् स्वतः अगुणः सर्गादौ गृहीतमायोरुगुणः यः तस्मिन् नारायणे भगवित इदं विश्वम् आहितम् ।।३०।। अनुवाद— जो परमात्मा स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक गुणों से रहित हैं, किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में अनेक गुणों को ग्रहण कर लेते हैं, ऐसे भगवान् नारायण में ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

'यदिष्ठष्ठानम्' इत्येतत्प्रश्नोत्तरार्थमुपसंहरति–नारायण इति । आहितमधिष्ठितम् । भगवत्त्वे हेतुः–यः स्वतोऽगुणः । सर्गादौ गृहीता मायया उरवो गुणा येन स तस्मिन् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि इस जगत् का अधिष्ठान कौन है ? उसी के उत्तर का उपसंहार करते हुए ब्रह्माजी नारायणो इत्यादि श्लोक को कहे हैं। आहित शब्द का अर्थ है अधिष्ठित। भगवान् नारायण के भगवत्त्व का कारण स्वाभाविक रूप से प्राकृत गुण रहित बतलाया गया है। वे भगवान् सृष्टि के प्रारम्भ में माया के अनेक गुणों को धारण कर लेते हैं ॥३०॥

सुजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः । विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥३१॥

अन्वयः— तन्नियुक्तः अहं सृजामि, तद्वशः हरः हरति, पुरुष रूपेण त्रिशक्ति धृक् विश्वं परिपाति ।।३१।।

अनुवाद— उन परमेश्वर के ही द्वारा नियुक्त होकर मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, शङ्करजी उनके ही अधीन रहकर जगत् का संहार करते हैं और माया की सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों शक्तियों को धारण करने वाले परमात्मा ही पुरुष रूप से जगत् का पालन करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

'यत्परस्त्वम्' इत्येतत्प्रश्नोत्तरं यदुक्तं 'स एष भगवान्सर्वेषां मम चेश्वरः' इति तदुपसंहरति- पालनं तु स्वयमेव करोतीत्याह-विश्वमिति । पुरुषरूपेण विष्णुरूपेण । त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति तथा सः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने जो पूछा था कि आप जिसके अधीन हैं, उसका जो उत्तर ब्रह्माजी ने दिया था उसी का उपसंहार इस श्लोक से किया गया है। ब्रह्माजी ने कहा था कि वे भगवान् ही सबों के तथा मेरे स्वामी है उसी का उपसंहार उन्होंने मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, यह कहकर किया है। जगत् का पालन तो भगवान् स्वयं ही करते हैं, इस बात को उन्होंने विश्वम् इत्यादि श्लोक के उत्तरार्ध से किया है। पुरुष रूपेण का अर्थ है विष्णु के रूप से। वे भगवान् तीन शक्तियों से युक्त माया को धारण करते हैं।।३१॥

इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि । नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥३२॥

अन्वयः हे तात ! यथेदमनुपृच्छिस इति ते अभिहितम् । भगवतः अन्यत् किञ्चत् सदसदात्मके न भाव्यम् ।।३२॥ अनुवाद हे तात ! आपने जो कुछ भी पूछा था वह मैंने बतला दिया । श्रीभगवान् से भिन्न इस जड़चेतनात्मक जगत् में कुछ भी नहीं हैं ।।३२॥

भावार्थ दीपिका

यच्चेदं विश्वं यदात्मकश्व त्विमत्येवमादिसर्वप्रश्नानां सामान्योत्तरं, यदुक्तं 'वासुदेवात्परो ब्रह्मन् न चान्योऽर्थोऽस्ति तक्त्वतः' इति 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति श्रुत्या च यद्दृढीकृतं तदुपसंहरति-इतीति । सदसदात्मकं कार्यकारणात्मकं भाव्यं सृज्यं भगवतः सकाशादन्यत्पृथङ् न भवतीत्यिभिहितम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि यह सम्पूर्ण जगत् जैसा है और आपकी जो आत्मा हैं, उसको आप मुझे बतलायें। इस तरह से पूछे गये सभी प्रश्नों का सामन्य उत्तर यह है कि हे ब्रह्मन् भगवान् वासुदेव से भिन्न कुछ भी नहीं है। इसी बात का समर्थन पुरुष एवेदं सर्वम् इस श्रुति से भी किया गया है। उसी का उपसंहार इति तेऽभिहितम् इत्यादि श्लोक से किया गया है। इस तरह सदसदात्मक अर्थात् कार्य कारण रूप जो सृज्य जगत है वह श्रीभगवान् से भिन्न नहीं है।।३२।।

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः । न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ट्यवता घृतो हरिः ॥३३॥

अन्वयः— हे अङ्ग यत् मे हृदौतण्ठ्यवता हरि: घृत अतएव मे भारती मृषा न उपलक्ष्यते, मे मनसः क्वचिन् मृषा गति: न मे हृषीकाणि असत् पथे न पतन्तीति ।।३३।। अनुवाद हे नारद ! मैं उत्कण्ठा पूर्ण हृदय से प्रेम पूर्वक श्रीभगवान् को धारण करता हूँ अतएव मेरी वाणी कभी भी असत्य होती हुयी नहीं दिखायी देती है, मेरा मन भी कभी असत् सङ्कल्प नहीं करता है और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी असत् मार्ग में प्रवृत्त नहीं होती हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं एतावत्त्वं यतो हि मे, तमिवज्ञाय मामीश्वरं प्रब्रवीषि इति तदुपपाद्योपसंहरित- न भारतीति । यद्यस्मान्मे मया औत्कण्ठ्यं भक्त्युद्रेकस्तद्युक्तेन हृदा हरिर्धृतो ध्यातः अङ्ग हे नारद । अतो मे वाङ्मनइन्द्रियाणां वृत्तयः सत्यार्थाः, नतु मत्प्रभावेणेत्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने पहले यह जो कहा है कि मेरी इतनी ही स्थिति है। उसको तुम नहीं जानते हो इसीलिए मुझे ईश्वर कहते हो। उसी का उपपादन करके ब्रह्माजी न भारती इत्यादि श्लोक के द्वारा उपसंहार करते हैं। चूिक मैं भिक्त के उद्रेक हो जाने के कारण उत्कण्ठा पूर्वक हृदय में परमात्मा को धारण करता हूँ, इसीलिए मेरी वाणी, मन तथा इन्द्रियों की वृत्ति सत्य वस्तु विषयिणी होती है। मेरे प्रभाव से वे असत्य वस्तु विषयक नहीं होती हैं। ३३।।

सोऽहं समाम्रायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः । आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥३४॥

अन्वयः— सः अहं समाम्नायमयः तपोमयः प्रजापतीनाम् अभिवन्दितः पतिः, निपुणं योगं आस्थाय समाहितः सन् यतः आत्मसंभवः तं न अध्यगच्छम् ॥३४॥

अनुवाद वहीं मैं वेद मूर्ति तथा तपोमूर्ति हूँ सभी प्रजापित मेरी वन्दना करते हैं और मैं उन सबों का स्वामी हूँ । मैंने पूर्वकाल में सर्वाङ्ग योग का अनुष्ठान किया किन्तु जिससे मेरी उत्पत्ति हुयी है उन परमात्मा को मैं नहीं जान सका ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अत्र स्वानुभवमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रमा जयित द्वाभ्याम् । सोऽहं समाम्रायादिभिः सर्वोत्कृष्टोऽपि योगमाश्रित्यापि यत आत्मने मम संभवो जन्म तमेव न ज्ञातवान्, कुतोऽन्यस्य वार्ता । एतच्च तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे वक्ष्यते ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी अन्वयव्यतिरेक के द्वारा अपने अनुभव को ही दो श्लोकों द्वारा प्रमाणित करते हैं उपर्युक्त प्रकार का मैं सबों से उत्कृष्ट होकर तथा योग को धारण करके भी अपने मूल कारण परमात्मा को ही नहीं जान सका तो दूसरे के विषय में मैं क्या कहूँ ? इस बात को तीसरे अध्याय में कमल की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में बतलायेंगे ॥३४॥

नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् । यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥३५॥

अन्वयः— अहं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं मुमङ्गलम् तत् चरणं नतः अस्मि यः आत्ममायाविभवं नभो यथा स्वान्तम् पर्यगात् अथ अपरे कुतः ॥३५॥

अनुवाद— मैं श्रीभगवान् के उन चरणों को नमस्कार करता हूँ जो चरण अपने शरण में आये हुए जीवों के संसार के बन्धन को काट देते हैं, जो कल्याणमय तथा मङ्गलमय हैं। उन श्रीभगवान् की माया की शक्ति अपार है । वे अपनी महिमा के अन्त को स्वयम् उसी प्रकार नहीं जानते हैं जिस प्रकार आकाश अपने अन्त को नहीं जानता है । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई परमात्मा की महिमा का अन्त कैसे जान पायेगा ?॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदा समीयुषां शरणागतानां संसारनिवर्तकं मङ्गलावहं सुसेव्यं च तस्य चरणं नतोऽस्मि । ततोऽचिन्त्यमिहमत्वेन ज्ञातवानस्मीति कैमुत्यन्यायेनाह-यो हीति । स्वमायाविस्तारं यः स्वयमिष पर्यगात् । परिशब्दो निषेधे । तावानिति न ज्ञातवानित्यर्थः । अपरे कुतो जानीयुः । तस्य चरणं नतोऽस्मीति पूर्वेण संबन्धः । ननु सर्वज्ञः कथं न जानाति अन्ताभावादिति दृष्टान्तेनाह । यथा स्वस्यान्तं नभो नाप्नोति तद्वत् । न हि खपुष्पादर्शनं सार्वज्ञ्यं विहन्तीति भावः । तथा च वक्ष्यित द्युपत्य एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमिष यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः' इत्यादि । श्रुतिश्च 'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद' इति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् शरणागत जीवों के भव बन्धन को दूर करने वाले मङ्गलप्रद तथा सुसेव्य श्रीभगवान् के चरणों को ही मैं नमस्कार करता हूँ । इस तरह से मैंने यह जान लिया कि श्रीभगवान् की मिहमा अचिन्त्य है इस बात को मैंने अपने आप जान लिया है । जो परमात्मा स्वयम् भी अपनी माया के विस्तार को नहीं जान सके । पर्यगात् में परि शब्द निषेधार्थक है । अर्थात् यह नहीं जान सके परमात्मा की माया इतनी ही है । तो फिर दूसरे लोग उसको कैसे जान सकते हैं ? इसीलिए मैं उनके चरणों में ही नतमस्तक हूँ । यदि कोई कहे कि परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वे कैसे नहीं जान सके तो इसका उत्तर है कि जैसे आकाश स्वयम् अपने अन्त को नहीं जानता हैं उनकी मिहमा का कोई अन्त है ही नहीं तो उसका अन्त वे कैसे जानेंगे ? आकाश पृष्प का अदर्शन परमात्मा की सर्वज्ञता को विनष्ट नहीं कर सकता है । भगवान् के विषय में दशवें स्कन्ध के सत्तासीवें अध्याय के एकतालिसवें श्लोक में कहेंगे भी कि द्युलोक के स्वामीगण ही आपके अन्त को नहीं जान सके क्योक ब्रह्माण्ड अनन्त हैं । आप भी नहीं जान सके कि आवरणों से विशिष्ट कितने ब्रह्माण्ड हैं । श्रुति भी कहती हैं यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्गवेद यदि वा न वेद अर्थात् हे वत्स जो इस माया के स्वामी परमाकाश त्रिपाद् विभृति में रहते हैं वे भी इस माया के अन्त को जानते हैं कि नहीं जानते हैं यह कोई निश्चित नहीं है ॥३५॥

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः । तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥३६॥

अन्वयः— न अहं न यूयं न वामदेव यद् ऋतां गतिं न विदुः तदा अपरे सुराः किमुत ? तन्मायया विनिर्मितं इदं मोहित बुद्धयः वयं आत्मसमं विचक्ष्महे ।।३६।।

अनुवाद— मैं तुमलोग, मेरे पुत्र, तथा शङ्करजी जिन परमात्मा के सत्य स्वरूप को नहीं जान पाते हैं । उनकी माया से निर्मित इस जगत् के भी विषय में हमलोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार केवल अन्दाजा लगाते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति–नाहमिति द्वाभ्याम् । वामदेवो रुद्रः । यस्य ऋतां गतिं परमार्थस्वरूपम् । कित्विदं प्रपञ्चरूपं तस्य मायया विनिर्मितं विचक्ष्महे विद्यः । तदप्यात्मसमं स्वज्ञानानुरूपमेव, न तु कृत्स्नम् । मोहित**बुद्धय इत्ययं तदज्ञाने प्रपञ्चाज्ञाने** च हेतुः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

माया के विस्तार के अज्ञेयत्व का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी **नाहम् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । वामदेव शङ्करजी का नाम हैं । मैं शङ्करजी तथा तुमलोग जिस परमात्मा के परमार्थ स्वरूप को नहीं जानते हैं। अपितु उन परमात्मा की माया के द्वारा निर्मित माया द्वारा रचित इस जगत् को भी नहीं जानते हैं। वह भी हमलोग अपने-अपने ज्ञान के अनुसार ही जानते हैं, पूर्णरूप से नहीं जानते हैं। परमात्मा का ज्ञान न होने और माया का ज्ञान होने के कारण हमलोनों की बुद्धि का मोहित होना है।।३६।।

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः । न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

अन्वयः अस्मदादयः यस्य अवतार कर्माणि गायन्ति यं तत्त्वेन न विदन्ति तस्मै भगवते नमः ।।३७।।

अनुवाद हमलोग जिस परमात्मा के अवतार की लीलाओं का ही गायन करते है उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वेऽपि तं वर्णयन्तो दृश्यन्ते तत्राह- यस्येति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि देखा जाता है कि सबलोग परमात्मा का वर्णन करते हैं तो ब्रह्माजी ने कहा कि हमलोग तो उनके अवतार की लीलाओं का वर्णन करते हैं उनके स्वरूप को नहीं जानते हैं ॥३७॥

ए एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः । आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥

अन्वयः— स एष आद्यः पुरुषः अजः कल्पे कल्पे आत्मिन आत्मिना आत्मानं संयच्छिति च पाति च ।।३८।। अनुवाद— वे ही आदि पुरुष अजन्मा और पुरुषोत्तम हैं । वे ही प्रत्येक कल्पों में अपने आप में अपने आपकी सृष्टि करते हैं और रक्षा करते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अवतारकर्माणि संक्षेपतो दर्शयति । स एष आद्यो भगवान् यः पुरुषावतारः सन्सृष्ट्यादि करोति । आत्मात्मन्यात्मनात्मानमिति। कर्ता अधिकरणं साधनं कर्म च स्वयमेवेत्यर्थः । पुरुषावतारः सृष्ट्यादीनि च कर्मााणीति संक्षेपोक्तिः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

एष० इत्यादि इस श्लोक से संक्षेप में अवतारों के कर्मों को बतलातें हैं। वे ही भगवान् आदि हैं वे ही पुरुषावतार धारण करके सृष्टि आदि के कर्मों को करते हैं। वे ही आत्मा (कर्ता) आत्मिन (अधिकरण) आत्मना (साधन) और आत्मानम् (कर्म) इस सृष्टि में स्वयं हैं। पुरुषावतार धारण करना और सृष्टि आदि कर्मों को इस तरह से अवतार के कर्मों को संक्षेप में कहा गया है। १३८।।

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् । सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९॥

अन्वय:— विशुद्धं, केवलं, ज्ञानं, प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् सत्यं पूर्णम् अनाद्यन्तं निर्गुणम् नित्यम् अद्वयम् ।।३९।। अनुवाद— माया के लेश से रहित होने के कारण विशुद्ध हैं, केवल ज्ञान स्वरूप हैं, और अन्तरात्मा के रूप में सदा एक समान बने रहते हैं। वे त्रिकाल सत्य हैं पूर्ण हैं तथा आदि अन्त से रहित हैं। वे सत्त्व आदि तीनों गुणों से रहित सनातन एवं अद्वितीय हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

'न यं विदन्ति तत्त्वेन' इत्युक्तं किं तत्तत्त्वमित्यपेक्षायामाह । ज्ञानं केवलं सत्यं तत्त्वम् । घटाद्याकारवृत्ति-ज्ञानव्यवच्छेदार्थं विशेषणानि । विशुद्धं विषयाकारशून्यम् । यतः प्रत्यक् सर्वान्तरम् । अतएव सम्यक् संदेहादिरहितम्। अवस्थितं स्थिरम् । यतो निर्गुणम् । गुणकार्यं हि गुणव्यतिकराच्चञ्चलं भवति । यद्यपि वृत्तिज्ञानमपि स्वरूपज्ञानमेवेति न चाञ्चल्यादिदोषयुक्तं तथाप्यन्तःकरणवृत्तिदोषैस्तथा तथा भवतीति व्यवच्छिद्यते । एभिरेव विशेषणैः सत्यत्वमिष समर्थितम्। किंच यद्विकारवत्तदसत्यं दृष्टं, न चास्य जन्मादयः षड्विकाराः सन्तीत्याहः । अनाद्यन्तं जन्मनाशरिहतम्। अतएव जन्मानन्तरास्तित्वलक्षणोऽपि विकारो नास्ति । वृद्धिविपरिणामापक्षयाश्च न सन्ति । यतः पूर्णम् । सर्वत्र हेतुः – नित्यमद्वयं नित्यं सर्वदा द्वैतप्रतीतिसमयेऽपि परमार्थतोऽद्वयमिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यह जो कहा है कि जिस परमात्मा को हमलोग तत्वतः नहीं जान पाते हैं तो यहाँ प्रश्न होता है कि तत्त्व क्या है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा वे केवल ज्ञान स्वरूप हैं और सत्य तत्त्व हैं । जिस तरह से तलाब का जल नालियों के माध्यम से खेत में जाकर खेत के जैसा चतुष्कोण आदि आकार वाला होता है, उसी के आकार का बन जाता है, उसी तरह से अन्तःकरण की वृत्ति चक्षुरादि इन्द्रियों के माध्यम से निकलकर घटादि विषयों से संसक्त होकर घट आदि के आकार वाला हो जाती है, उसी को घटाद्याकार वृत्ति ज्ञान कहते हैं, उससे उसकी भिन्नता बतलाने के लिए इन ज्ञान के विशेषणों को बतलाया गया है । वह विशुद्ध है अर्थात विषयों के सम्बन्ध से रहित है, वह प्रत्येक अर्थात् सबों के भीतर विद्यमान रहता है । इसीलिए वह सम्यक्ज्ञान है । अर्थात उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । वह अवस्थित अर्थात् स्थिर है क्योंकि वह निर्गुण है । गुणों के मिश्रण से ही ज्ञान में चञ्चलता आती है ।

यद्यपि वृत्तिज्ञानमि० इत्यादि यद्यपि वृत्ति ज्ञान भी स्वरूप ज्ञान ही है। उसमें चाञ्चल्यादि दोष नहीं है फिर भी अन्त:करण की वृत्ति के दोष से ही वह अनेक प्रकार का हो जाता है अतएव यह तत्त्व ज्ञान उससे भिन्न है। इन्हीं विशेषणों से उसका सत्यत्व भी समर्थित हो जाता है।

किञ्च इत्यादि दूसरी बात यह है कि लोक में देखा जाता है कि जो विकारों से युक्त होता है, वह असत्य होता है, किन्तु इस तत्त्वभूत ज्ञान में वस्तुओं में पाये जाने वाले जन्म आदि षड्विकार नहीं हैं। वह आदि और अन्त (विनाश) से रहित है। अतएव जन्म के पश्चात् होने वाले अस्तित्व इत्यादि भी विकार उसमें नहीं हैं। उस ज्ञान में वृद्धि, विपरिणाम तथा अपक्षय आदि भी विकार नहीं है क्योंकि वह पूर्ण हैं। वह नित्य ही अद्वय हैं अर्थात् भेद प्रतीति के काल में भी अद्वितीय बना रहता है। अतएव वह परमार्थत: अद्वितीय हैं ॥३९॥

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः । यदा तदेवासत्तर्केस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०॥

अन्वयः हे ऋषे यदा मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः तदा विदन्ति, यदा असत् तर्कैः विप्लुतम् तिरोधीयेत ।।४०।। अनुवाद हे ऋषे ! जब मुनिगण अपने अन्तः करण, इन्द्रियाँ और शरीर को शान्त कर लेते हैं, उसी समय वे उसको जान पाते हैं, जिस समय दुस्तकों के द्वारा उस तत्त्व को आच्छन्न कर दिया जाता है उस समय वह जान प्रतीत नहीं होता हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयित । हे ऋषे नारद्, प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः प्रसन्नदेहेन्द्रियमनसो यदा भवन्ति तदा विदन्ति । अन्यदा तदज्ञाने कारणमाह । यदा तदेव प्रकाशमानमेवासतां तर्कैर्विप्लुतं स्यात्तदा तिरोधीयेतेति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी अपने इस प्रतिपादन में विद्वानों के अनुभव को प्रमाण रूप से उपन्यस्त करते हैं। हे ऋषे नारद! जब मुनिजन प्रसन्न, देह, इन्द्रिय और मन से युक्त होते हैं तो उनलोगों को वह ज्ञान प्रकाशित होता है। उससे भिन्न काल में उसका ज्ञान नहीं होने का कारण बतलाते हुए वे कहते हैं- जब वह प्रकाशित होने वाला ज्ञान असत् पुरुषों के कुतर्कों से उपप्लुत (उपद्रवगस्त) हो जाता है तो वह ज्ञान तिरोहित हो जाता है।।४०।।

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च । ब्रह्मं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराद् स्वराद् स्थास्नु चरिष्णु भूमः ॥४१॥

अन्तयः— परस्य आद्यः अवतारः पुरुषः, कालः स्वभावः, सदसत् मनः च द्रव्यं, विकारः, गुणः, इन्द्रियाणि, विराट् स्वराट् स्थास्नु, चरिष्णु च तस्य अवताराः सन्ति ।

अनुवाद परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है, काल, स्वभाव, सदसत् मन (महत् तत्त्व) द्रव्य (महाभूत) विकार (अहङ्कार) सत्त्व आदि गुण, विराद् समष्टि शरीर, स्वराट् (वैराज) स्थास्नु (स्थावर वृक्ष आदि) चरिष्णु (जङ्गम ये सब भी) भगवान् के अवतार ही हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अवतारान्वस्तरेणाह-आद्य इत्यादि यावदध्यायसमाप्ति । परस्य भूम्नः पुरुषः प्रकृतिप्रवर्तकः । यस्य 'सहस्त्रशीर्षा' इत्युक्तो लीलाविग्रहः स आद्योऽवतारः । वक्ष्यति हि 'भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ।' यथोक्तम् 'विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यतो विदुः । प्रथमं महतः स्वष्टु द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते' इति । यद्यपि सर्वेषामिवशेषेणावतारत्वमुच्यते, तथापि कालश्च स्वभावश्च सदसदिति कार्यकारणात्मिका प्रकृतिश्च एताः शक्तयः, मनआदीनि कार्याणि, ब्रह्मादयो गुणावताराः, दक्षादयो विभूतय इति विवेक्तव्यम् । मनो महत्तत्वम् । द्रव्यं महाभूतानि । क्रमोऽत्र न विवक्षितः । विकारोऽहंकारः । गुणः सत्त्वादिः । विराद् समष्टिशरीरम् । स्वराद् वैराजः । स्थास्नु स्थावरम् । चरिष्णु जङ्गमं च व्यष्टिशरीरम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के अवतारों का विस्तार से वर्णन आद्य: इत्यादि श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है। वहीं प्रकृति का प्रवर्तक है। सहस्रशीर्षा इत्यादि मन्त्र से उस पुरुष का लीला विग्रह बतलाया गया है। वहीं परमात्मा का पहला अवतार है। आगे चलकर कहेंगे भी अपने से सृष्ट पञ्चमहाभूतों के द्वारा विराट् पुरुष की रचना करके उसमें भगवान् नारायण अपने एक अंश से प्रवेश कर गये और पुरुष शब्द से अभिहित किए गये। कहा भी गया है विष्णोस्तु० इत्यादि भगवान् विष्णु के तीन रूपों को मुनियों ने पुरुष रूप से जाना है। उनका पहला रूप महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है। दूसरा ब्रह्माण्ड में स्थित रूप है। तीसरा रूप सभी प्राणियोंके भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है। इन तीनों रूपों को जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।

यद्यपि सर्वेषामिवशेषेण ॰ इत्यादि यद्यपि इस श्लोक में उक्त सबों को समान रूप से भगवान् का अवतार कहा गया है फिर भी काल, स्वभाव सदसत् तथा कारण-कार्य स्वरूप प्रकृति ये सभी शक्तियाँ हैं । मन आदि कार्य हैं । ब्रह्मा आदि उनके गुणावतार हैं तथा दक्ष इत्यादि उनकी विभूतियाँ हैं । इन सबों का इस प्रकार से विभाग करना चाहिए ।

मन महत्तत्व को कहा गया है। महाभूतों को द्रव्य कहा गया है। यहाँ पर क्रम विवक्षित नहीं है। विकार शब्द से अहङ्कार को और गुण शब्द से सत्त्व आदि गुणों को कहा गया है। समष्टि शरीर को विराट् कहा गया है। स्वराट् शब्द वाच्य वैराज है। स्थावरों को स्थास्नु और जङ्गमों को चरिष्णु कहा गया है। ये सब व्यष्टि शरीर हैं।।४१।।

> अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च । स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२॥

गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षीरगनागनाथाः । ये वा ऋषीणामृषभाः पितृणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥ अन्ये च ये प्रेतिपशाचभूतकृष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥४३॥ यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्वलवत्क्षमावत् । श्रीह्मीविभूत्यात्मवदद्धताणं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥

अन्वयः अहम् भव यज्ञः इमे दक्षादयाः प्रजेशा स्वलींकपालाः खगलोकपालाः, नृलोकपालाः तललोकपालाः, गन्धर्वविद्याधरचारणेशाः ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः, ये वा ऋषीणां ऋषभाः पितृणां वा ऋषमाः दैत्येन्द्र सिद्धेश्वर दानवेन्द्राः, ये च अन्ये प्रेतिपिशाचभूतकुष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः, यत् किञ्च भगवत् महस्वत् ओजः सहस्वत् बलवत् क्षमावत् श्री ह्री विभूत्यात्मवत् अद्भूताणं रूपवत् अस्वरूपम् तत्परंतत्त्वम् ।।४२-४४।।

अनुवाद में शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि प्रजापित तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्त, स्वर्ग लोक के रक्षक, पिक्षयों के रक्षक गरुड आदि, मनुष्य लोक के राजा, गन्धर्व, विद्याधर तथा चारणों के अधिनायक, यक्ष, राक्षस, सर्प और नागों के स्वामी, महर्षि, पितृपित, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज तथा प्रेत, पिशाच भूत, कृष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग तथा पिक्षयों के स्वामी, एवं संसार में जितनी भी वस्तुएँ ऐश्वर्य सम्पन्न तेज: सम्पन्न, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमा से युक्त हैं, अथवा विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं, एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली हैं रूपवान् या रूप रहित हैं वे परं तत्त्वमय भगवत् स्वरूप हैं ॥४२-४४॥

भावार्थ दीपिका

अहं ब्रह्मा । भवो रुद्रः । यज्ञो विष्णुः । दक्षादयो य इमे प्रजेशाः । तललोकपालाः पातालाधिपतयः । गन्धर्वादीनामीशाः। यक्षादीनां नाथाः । रक्षोरगेति सन्धिरार्षः । ऋषीणां पितॄणां च श्रेष्ठाः । प्रेतादीनामधीशाः । किं बहुना, यिकिचिद्भगवदादि तत्सर्वं परमेव तत्त्विमत्यन्वयः । भगवदैश्वर्ययुक्तम्, महस्वत्तेजोयुक्तम् । ओजः सहसी इन्द्रियमनः शक्ती तद्युक्तम् । बलं दाक्ष्यम् । श्रीशोभा हीकर्मजुगुप्सा, विभूतिः संपत्ति, आत्मा बुद्धिस्तद्युक्तम् । अर्णो वर्णः । अद्भुतार्णमाश्चर्यवर्णमित्यर्थः । रूपमेव स्वरूपम्, रूपवदस्वरूपं च यत्तत्सर्वं परं तत्त्वं तद्विभूतिरित्यर्थः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष इत्यादि जो प्रजापित हैं वे पातालों के जो स्वामी हैं गन्धवों आदि के स्वामीगण हैं, यक्षों आदि के स्वामीगण रक्षोरग में जो गुणसिन्ध हुयी है वह आर्ष है। जो ऋषियों और पितरों में श्रेष्ठ हैं, जो प्रेतों आदि के स्वामी है। बहुत अधिक क्या कहें जो कुछ भी ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न वस्तुएँ हैं वे सबके सब परमतत्त्व स्वरूप ही हैं। ऐश्वर्य युक्त, तेज: सम्पन्न, ओज तथा सह: सम्पन्न, इन्द्रियशिक्त तथा मन: शिक्त से युक्त सभी वस्तुएँ परं तत्त्व स्वरूप है। बल अर्थात् दक्षता, श्रीअर्थात् शोभा, ह्री लज्जा, सम्पत्ति, आत्मा तथा बुद्धि से युक्त भी वस्तुएँ परंतत्त्व स्वरूप हैं। अर्ण वर्ण को कहते हैं। अद्भुतार्ण अर्थात् अद्भुत वर्ण से युक्त रूप का अर्थ स्वरूप है तथा रूपवान् अर्थात् स्वरूप से रहित जो कुछ भी है वह सब परंब्रह्म की विभूति हैं।।४२-४४॥

प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूमः । आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— हे ऋषे, यान् भूम्नः पुरुषस्य प्राधान्यतः लीलावतारान् आमनन्ति तान् कर्णकषायशोषान् पीयताम् सुपेशान् इमान् ते अनुक्रमिष्ये ।।४५।। अनुवाद - उस परम पुरुष के जिन प्रधान-प्रधान लीलावतारों का वर्णन शास्त्रों में किया गया हे, वे सबके सब श्रवणेन्द्रियों के दोषों को दूर करने वाले हैं अतएव उन सबों का आप श्रवण करें मैं उन सबों को क्रमश: सुनाता हूँ ॥४५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ । 1 ६ । 1

भावार्थ दीपिका

शुद्धसत्त्वावतारान्वकुमाह- प्राधान्यत इति । असत्कथाश्रवणैर्ये कर्णयोः कषाया मलास्तान् शोषयन्तीति तथा तान् । सुपेशान्सुन्दरान् । सकारलोपश्चार्षः । हे ऋषे, ते तुभ्यमनुक्रमिष्ये, तदनुक्रमेणामृतं त्वया पीयतामित्यर्थः । यद्वा पीयतामिति शत्रन्तम् । आपितवतां कर्णकषायशोषानित्यर्थः।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां षष्ठोऽधयः।।६।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के शुद्ध सात्विक अवतारों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी प्रधान्यतः इत्यादि श्लोक को बतलाते हैं। असत् कथाओं के सुनने से जो कानो में दोष आ जाते हैं उन सबों को विनष्ट करने का काम करते हैं। श्रीभगवान् के जो लीलामृतावतार हैं वे अत्यन्त सुन्दर हैं। सुपेशस् शब्द के सकार का आर्ष लोप हो गया है। हे ऋषे मैं उन सबों को क्रमशः सुनाता हूँ उसे आप अपने कानों से सुनें। अथवा पीयताम् पद को शतृ प्रत्ययान्त भी माना जा सकता है। पीङ् पाने इस दिवादिक धातु से शतृप्रत्यय करके पीयताम् बना है उसका अर्थ है उन कर्णकषाओं को विनष्ट करने वाले लीलावतारों को पूर्णरूप से सुनें।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छठे अध्ययाय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।६।।



सातवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के लीलावतारों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनु सकलयज्ञमयीमनन्तः । अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥१॥

अन्वयः— यत्र क्षितितलोद्धरणाय उद्यतः अनन्तः सकल यज्ञमयीं कौडीं तनुंविभ्रत अन्तर्महार्णव उपागतं तम् आदिदैत्यम् व्रजघरः इन्द्रम् इव दंष्ट्रया ददार ॥१॥

अनुवाद— प्रलयकालीन जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए तैयार श्रीभगवान् अपने सम्पूर्ण यज्ञमय सूकर शरीर धारण किए हुए जल के भीतर ही युद्धार्थ आये हुए आदि दैत्य हिरण्याक्ष को अपनी द्रंष्ट्रा से उसी तरह चिर दिए जिस तरह व्रज धारण करके इन्द्र ने पर्वतों के पंख को काट डाला था ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे भगवल्लीलावतारा ब्रह्मणोदिताः । नारदाय तु तत्कर्म प्रयोजनगुणैः सह । यत्र यदा क्षितितलोद्धरणार्थ वाराहीं तनुं विभ्रत्सत्रुर्द्यंतोऽनन्तस्तदा तं सुप्रसिद्धं हिरण्याक्षं दंष्ट्रया ददार ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में ब्रह्माजी ने नारदजी को श्रीभगवान् के लीला अवतारों को उनके गुणों प्रयोजनों तथा कर्मों के साथ सुनाया था उसी का वर्णन किया गया हैं ॥१॥

यत्र इत्यादि जब पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूकर शरीर धारण किए हुए श्रीभगवान् उद्यत हुए तो उस समय उन्होंने प्रख्यात उस हिरण्याक्ष नामक दैत्य को अपने दाँतों से चिर दिया ॥१॥

जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् । लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥२॥

अन्वयः— रुचेः आकृतिसुतः जातः सुयज्ञः दक्षिणायाम् सुयमान् अमरान् अजनयत् लोक त्रयस्य महतीम् अर्ति अहरत् तदनु स्वायम्भुवेन मनुना हरिः इति उक्तः ॥२॥

अनुवाद रिच प्रजापित की पत्नी के गर्भ से सुयज्ञ नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्होंने अपनी पत्नी दक्षिणा के गर्भ से सुयम नामक देवताओं को उत्पन्न किया और त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को उन्होंने दूर किया। उसके कारण उनके मातामह स्वायम्भुव मनु ने उनका नाम हिर रखा।।२।।

भावार्थ दीपिका

यज्ञावतारमाह । रुचे: प्रजापते: सकाशात्तद्भार्याया आकूते: सूनु: सुत: सुयज्ञो नाम जात: । स च स्वभार्यायां दक्षिणायां सुयमान्देवानजनयत् । स एवेन्द्र: सन् यदा आर्तिमहरत्तदा पूर्वं सुयज्ञ इत्युक्तोऽप्यनु पश्चान्मनुनना मातामहेन हरिरित्युक्त: । अनेन देवोत्पादनं लोकत्रयार्तिहरणं च तस्य कर्म दर्शितम् । एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म च ज्ञेयम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के यज्ञावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्मजी ने कहा रूचि प्रजापित की पत्नी आकृति देवी के गर्भ से भगवान् सुयज्ञ नामक उनके पुत्र हुए । उन्होंने दक्षिणा नामक अपनी पत्नी के गर्भ से सुयम नामक देवताओं को उत्पन्न किया और उन्होंने त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को दूर किया । इसीलिए स्वयम्भुव मनु ने उनका नाम हिर रखा । अर्थात् वे ही भगवान् इन्द्र रूप से त्रैलोक्य के कष्ट को दूर किये । उसके कारण भगवान् का जो सुयज्ञ नाम था उनके मातामह ने उसके पश्चात् उनका नाम हिर रख दिया । इस प्रतिपादन से ब्रह्माजी ने भगवान् के दो कर्मों को बतलाया देवताओं का उत्पादन और त्रैलोक्य के कष्ट का हरण । इस तरह से सभी अवतारों तथा उनके कर्मों को जानना चाहिए ॥२॥

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगितं स्वमात्रे । ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गितं प्रपेदे ॥३॥

अन्वयः— हे द्विज ! कर्दमगृहे देवहुत्यां नविभः स्त्रीभिः समं, जज्ञे । स्वमात्रे आत्मगितं उचे । यया अस्मिन् आत्मशम लं गुणसङ्गपङ्कम् विधूय कपिलस्य गितं प्रपेदे ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् महर्षि कर्दम की पत्नी के गर्भ से अपनी नव बहिनों के साथ पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूति को आत्मज्ञान का उपदेश दिया । उस आत्मज्ञान को प्राप्त करके माता देवहूति ने इस जन्म में ही हृदय के समस्त मलों तथा गुणों की आसक्ति रूपी समस्त कीचड़ को धो दिया और कपिल भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो गयीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कपिलावतारमाह । कर्दमस्य प्रजापतेर्गृहे च तद्भार्यायां देवहूत्यां जज्ञे । नविभ: स्त्रीभिर्भिगिनीभि सह । स च स्वमात्रे आत्मगतिं ब्रह्मविद्यामुक्तवान् यया आत्मगत्या सा आत्मनः शमलं मिलनीकरणं गुणसङ्गरूपं पङ्कमस्मिन्नेव जन्मनि विध्य कपिलस्य गतिं मुक्तिं प्राप्तवती ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के किपलावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी ने कहा कर्दम प्राजपित के गृह में उनकी पत्नी देवहूित के गर्भ से भगवान् अपनी नव बिहनों के साथ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूित को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया । उस आत्मविद्या के द्वारा माता देवहूित इसी जन्म में आत्मा के मिलनीकरण रूप गुणों की आसित्त रूपी कीचड़ को दूर करके मुक्ति को प्राप्त कर लीं ।।३।।

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाऽहमिति यद्भगवान्स दत्तः । यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥४॥

अन्वयः — अपत्यम् अभिकांक्षतः अत्रेः तुष्टः मया अहम् दत्तः इति आह स भगवान् दत्तः । यत्पाद पङ्कज परागपवित्रदेहाः यदु हैहयाद्याः उभयीं योगर्द्धिम् आपुः ।।४।।

अनुवाद - श्रीभगवान् को अपने पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे कहा मैं अपने को दे दिया। उसके कारण वे भगवान् दत्त कहलाये। उनके चरण कमलों की धूलि रूपी पराग से पवित्र शरीर वाले यदु तथा हैहयवंशी सहस्रार्जुन भोग तथा मोक्ष रूप दोनों सिद्धियों को प्राप्त किये।।४।।

भावार्थ दीपिका

दत्तात्रेयावतारमाह । मयाऽहमेव तुभ्यं दत्त इति यद्यत आह ततः स नाम्ना दत्तो जातः स्वभक्तेभ्यो योगैश्वर्यदानं तच्चरितं च दर्शयति । यस्य पादपङ्कजयोः परागस्तेन पवित्रा देहा येषां ते । उभयीमैहिकीमामुष्मिकीं च भुक्तिमुक्तिरूपां वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के दत्तात्रेयावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि पुत्र को प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा कि मैंने अपने को ही आपको दे दिया; अतएव उनका नाम दत्त हुआ। इस रूप में भगवान् अपने भक्तों को योग का ऐश्वर्य प्रदान किए और अपना चरित भी प्रदर्शित किए अतएव उनका नाम दत्त है। उन दत्त भगवान् के चरण कमलों के पराग रूप धूलि से पवित्र शरीर वाले यदु तथा सहस्रार्जुन आदि लौकिक तथा पारलौकिक अथवा भोग तथा मोक्ष रूपी सिद्धि को प्राप्त किए ॥४॥

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् । प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥५॥

अन्वयः— आदौ लोकसिस्क्षया मे तपः तप्तः सनात् स्वतपसः सः चतुः सनः अभूत प्राक् कल्प संपलव विनष्ट आत्मतत्त्वं सम्यक् जगाद मुनयः आत्मन् अचक्षत ।।५।।

अनुवाद मृष्टि के प्रारम्भ में मैने लोको की सृष्टि करने के लिए घोर तपस्या की उस अखण्ड तपस्या से वे परमात्मा सन नाम से युक्त सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार रूप वाले हो गये । इन चार रूप वाले श्रीहरि ने प्रलय के कारण विनष्ट हुए पूर्वकल्प के ज्ञान का ऋषियों को उपदेश दे दिया । उस उपदेश से मुनियों ने अपने मन मे उस आत्मज्ञान का साक्षात्कार किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कुमारावतारमाह । मे मया आदौ यत्तपस्तप्तं तस्मात्स्वतपसो मत्तपसो हेतोः सहिरश्चतुःसनोऽभूत् । सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातन इति चत्वारः सनशब्दा नाम्नि यस्य सः । कथंभूतात्स्वतपसः । सनादखण्डितात् । यद्वा स्वतपसः सनादानात् समर्पणादित्यर्थः । षणु दाने । स च पूर्वकल्पस्य संप्तवे प्रलये विनष्टमुच्छित्रसंप्रदायमात्मतत्त्विमहास्मिन्कल्पे सम्यग्जगा दोक्तवान् । सम्यक्त्वं दर्शयति । यदगदितमात्रमेव मुनय आत्मन् आत्मन् मनस्यचक्षत साक्षादपश्यन् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कुमारावतार का वर्णन करते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टि करने की इच्छा से मैंने घोर तपस्या की मेरे उस सन नामक अखण्ड तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सन शब्द से युक्त चार रूप वाले हो गये सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार अथवा मेरी इस तपस्या को मेरे द्वारा परमात्मा को ही समर्पित किए जाने के कारण चार रूप वाले हो गये। यह षणुदाने धातु से सनशब्द व्युत्पन्न है।

सच पूर्वकल्पस्य ॰ इत्यादि वे भगवान् पूर्व कल्प के प्रलय होने के कारण आत्मज्ञान विनष्ट हो गया था । उसका सम्प्रदाय इस कल्प में उन्होंने मुनियों को अच्छी तरह से उपदेश द्वारा दिया । उस उपदेश मात्र से मुनियों ने उस ज्ञान का अपने मन में साक्षात्कार किया ॥५॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः । दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥६॥

अन्वयः— दक्षदुहितरि धर्मस्य पत्न्यां मूर्त्यां नर नारायणः अजिनष्ट । स्वतपः प्रभावः दृष्ट्वा अनङ्गस्य पृतना देव्यः भगवतः नियमावलोपं घटितुम् न शेकुः ॥६॥

अनुवाद — दक्षप्रजापित की पुत्री तथा धर्म की पत्नी मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् नर-नारायण रूप दो मूर्तियों के रूप में अवतीर्ण हुए। श्रीभगवान् की तपस्या के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सरायें श्रीभगवान् के नियम का लोप नहीं कर सकीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह । धर्मस्य पत्न्यां दक्षदुहितिर मूर्तिसंज्ञायां नारायणो नर इति मूर्तिद्वयेन जातः । कथंभूतः । स्वोऽसाधारणस्तपः प्रभावो यस्य । तदेवाह । अनङ्गस्य पृतनाः देव्योऽप्सरसो भगवतः सकाशादआत्मनः स्वप्रतिरूपा उर्वश्याद्याः स्त्रीदृष्ट्वा तस्य नियमावलोपं व्रतभङ्गं घटितुं साधियतुं न शेकुः । यद्वा आत्मनः स्वस्य यो नियमस्तपोनाशनरूपस्त स्यावलोपं तत्र दृष्ट्वा भगवतः घटियतुं न शेकुरिति । एतच्चाख्यानमेकादशे भविष्यति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के नरनारायणावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि धर्म की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् ने नर तथा नारायण इन दो मूर्तियों के रूप में अवतार ग्रहण किया। उनके असाधारण तप के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सराओं ने श्रीभगवान् के सिन्नकट में अपने से भी सुन्दर उर्वशी को देखकर श्रीभगवान् के नियम का भङ्ग नहीं कर सकीं। अथवा उनका अपना जो तपस्या का नाश करना रूप नियम था उसका लोप देखकर वे भगवान् के नियम को भङ्ग नहीं कर सकीं। यह कथा ग्यारहवें स्कन्ध में आयेगी।।६।।

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् । सोऽयं यदन्तरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥७॥ अन्वयः — कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या कामं द्रहन्ति ते उत दहन्तं असह्यम् रोषं न दहन्ति सोऽयं यत् अमलम् अन्तः निविशन् विमेति, तस्य मनः कथं नु कामः श्रयेत ॥७॥

अनुवाद शङ्करजी आदि महापुरुष अपनी रोष भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं, किन्तु अपने को जलाने वाले असहा रोष को वे नहीं जला पाते। वहीं क्रोध भगवान् नर-नारायण के स्वच्छ हृदय में प्रवेश करने में भयभीत हो जाता है तो भला उन नरनारायण के हृदय में कैसे प्रवेश कर सकता है ?।।७।।

भावार्थ दीपिका

यत्र कामविजयी क्रोघोऽपि विभेति तत्र कामो न प्रभवतीति किं वक्तव्यमित्याह काममिति । कृतिनः श्रीरुद्रप्रमुखा रोषयुक्ता दृष्टवा कामं दहन्ति । रोषं त्वात्मानं दहन्तमि ते न दहन्ति । क्रोधेनाभिभूयन्त इत्यर्थः । नु अहो सोऽयं रोषो यदन्तरं यन्मध्यं प्रविशत्रलं विभेति । यद्वा यस्यान्तर्मनः । कथंभूतम् । अमलं निर्मलं प्रविशत्रिति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

जिन नर नारायण भगवान् से काम विजयी क्रोध भी भयभीत हो जाता है, उन भगवान्का काम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है, यह अर्थ तो अपने आप ही सिद्ध हैं, इसको क्या कहना है। इसी अर्थ को कामम् इत्यादि इस श्लोक के द्वारा कहा गया है। श्रीशङ्करजी प्रभृति महापुरुष अपनी क्रोध भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं। किन्तु अपने को भी जलाने वाले इस असह्य रोष को वे नहीं जला पाते हैं। अर्थात् उनको क्रोध अभिभूत कर देता है। वही रोष भगवान् के मन में प्रवेश करने में अत्यन्त भयभीत होता है उन भगवान् के स्वच्छ अन्तःकरण में काम कैसे प्रवेश कर सकता है।।७।।

विद्धः सपत्न्युदिपतित्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सञ्जुपगतस्तपसे वनानि । तस्मा अदाद्श्रुवगितं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥८॥

अन्वयः— सपत्न्युदितपत्त्रिभि विद्ध राज्ञः अन्ति बालोऽपि सन् तपसे बनानि गतः तस्मै गृणते प्रसन्नः ध्रुवगतिम् अदात् यदुपर्यधस्तात् दिव्याः मुनयः स्तुवन्ति ।।८।।

अनुवाद — अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा उक्त वाक्य रूपी बाण से विद्ध तथा अपने पिता राजा उतानपद के सिन्नकट में बैठा हुआ बालक ध्रुव तपस्या करने के लिए वन में चला गया उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उसको ध्रुवगित को प्रदान किया। उस स्थान के ऊपर रहने वाले भृग्वादि महर्षि तथा उसके नीचे रहने वाले सप्तर्षि महर्षि आदि ध्रुव की स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

चरित्रेणैव कमप्यवतारं सूचयित । मातुः सपत्न्याः उदितान्युक्तानि वाक्यान्येव पित्रणो बाणास्तैर्विद्धो ध्रुवो राज्ञ उत्तानपदोऽन्ति समीपे तपसे तपस्तप्तुम् । ध्रुवगितं ध्रुवपदम् यत् यामुपिर स्थितामधस्तात्स्थिता दिवि भवा दिव्याः सप्तर्षयः स्तुवन्ति । यद्वा उपिर भृग्वादयः अधस्तात्सप्तर्षय इति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

चित्र वर्णन के द्वारा ही श्रीभगवान् के किसी अवतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैंकि अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा कहे गये वाक्य रूपी बाणों से विद्ध राजा उत्तानपाद के सिन्नकट में बैठा हुआ उनका पाँच वर्ष का पुत्र तपस्या करने के लिए वन में चला गया। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उस बालक को ध्रुवपद प्रदान कर दिया। उस स्थान के ऊपर और नीचे रहने वाले दिव्य ऋषिगण उस ध्रुव की स्तुति करते रहते हैं। अथवा ध्रुव पद के ऊपर रहने वाले भृगु आदि दिव्य ऋषिगण तथा नीचे रहने वाले सप्तिष्र गण उस ध्रुव की स्तुति किया करते हैं।।८।।

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविष्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् । त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्घा वसूनि वसुघा सकलानि येन ॥९॥

अन्वयः उत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्ट पौरुषभगं निरये पतन्तं वेनं त्रात्वा जगति अर्थितः पुत्रपदं च लेभे येन

वसुधा च सकलानि वसूनि दुग्धा ॥९॥

अनुवाद — कुमार्गगामी ब्राह्मणों के वाक्य रूपी वज्र से जिनके पौरुष तथा ऐश्वर्य विनष्ट हो गये थे ऐसे वेन को नरक में जाने से जिन्होंने बचा लिया तथा मुनियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो राजा वेन के पुत्र बन गये तथा प्रजाओं द्वारा प्रार्थना किए जान पर जिन्होंने गोरूप धारण की हुयी पृथिवी से सम्पूर्ण द्रव्यों का दोहन किया ।।९।।

भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह । यद्यदा ऋषिभिर्रार्थितस्तदा वेनं त्रात्वा अन्वर्थं तत् पुत्र इति पदं नाम लेभे । 'पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ।' इति हि पुत्रपदव्युत्पत्तिः । कथंभूतम् । द्विजानां शापवाक्यमेव वज्रं तेन विप्लुष्टं दग्धं पौरुषं भगमैश्वर्य च यस्य तम् । चिरत्रान्तरमाह । येन च जगित जगदर्थे वसून्यत्रादिद्रव्याणि दुग्धा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के पृथु अवतार का वर्णन किए हैं। राजा वेन कुमार्ग गामी थे। इसके कारण क्रोध करके ऋषियों ने हुङ्कार भरा और उन ऋषियों के शाप रूपी वाग्वज्र से राजा वेन का पौरुष और ऐश्वर्य दोनों विनष्ट हो गया। नि:सन्तान राजा के शरीर का मंथन करते समय मुनियों ने प्रार्थना की तो भगवान् उनके पुत्र बनकर उन्हे नरक में जाने स बचा लिए।

पुनाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः । तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।

अर्थात् पुं नामक नरक में जाने से पिता को पुत्र चूकी बचा लेता है अतएव स्वयम् ब्रह्माजी ने पुत्र को पुत्र कहा है। यही पुत्रपद की व्युत्पत्ति है। कैसे राजा को बचाये तो उत्तर है कि ब्राह्मणों के शाप के वाक्य रूपी वज्र से राजा के पौरुष और ऐश्वर्य दोनों भस्म हो गये थे ऐसे राजा को भगवान् पृथु ने नरक जाने से बचाया भगवान् पृथु के दूसरे चरित्र का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं। जिन भगवान् पृथु ने संसार के लिए गोरूप धारिणी गौ से अत्र इत्यादि द्रव्यों को दूहा ॥९॥

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् । यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः॥१०॥

अन्वयः— असौ नाभेः सुदेविसूनु ऋषभ आस । यो वै स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः समदृग् जडयोगचर्याम् चचार, ऋषयः यत् पारमहंस्यपदम् आमनन्ति ॥१०॥

अनुवाद — वे ही भगवान् राजा नाभि के पुत्र के रूप में उनकी पत्नी सुदेवी के गर्भ से ऋषभ नाम से उत्पन्न हुए । जो ऋषभ अपने स्वरूप में स्थित रहकर अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखे तथा संसार में सभी प्रकार की आसिक्तयों से दूर रहे । वे समदृष्टि थें और जड़ो की भाँति योगाचर्या का इन्होंने अनुष्ठान किया। इस स्थिति को महर्षियों ने पारमहंस्य पद अथवा अवधूतचर्या कहा है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह । असौ हरिर्नाभेराग्रीध्रपुत्रात्सुदेव्याः सूनुरास । नाभेर्भार्याया मेरुदेव्या एव सुदेवीत्यिप संज्ञा । जडवद्योगेन नित्यसमाधिना चर्याम् । यदिति याम् । तत्र हेतुः- समदृक् । तत्रापि हेतुः-स्वस्थः स्वस्वरूपे स्थितः । यतः प्रशान्तेन्द्रियः। तत्कुतः । यतः परितो मुक्तसङ्गः ।।१०।।

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने भगवान् के ऋषभावतार का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि वे श्रीहरि महाराज् आग्नीध्र के पुत्र राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। मेरुदेवी का ही नाम सुदेवी भी था। वे जड़ों के समान नित्य ही समाधि रूपी चर्या को अपनाये। यह उनकी जड़योगचर्या थी। उसका कारण था कि वे समदर्शी थे। वे सदा अपने स्वरूप में स्थित रहते थे और उनकी इन्द्रियाँ नियन्त्रित थीं। क्योंकि वे सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित थे।।१०।।

सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः । छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥११॥

अन्वयः— अथ मम सत्रे स भगवान् साक्षात् यज्ञपुरुषः तपनीयवर्णः हयशिरसा छन्दोमयः मखमयः अखिल देवतात्मा आस । अस्य नस्तः उशतीः वाचो बभुवुः ॥११॥

अनुवाद— वे ही यज्ञ पुरुष भगवान् मेरे यज्ञ में साक्षात् सुवर्ण के समान कान्ति वाले हयग्रीव के रूप में अवतार ग्रहण किये। उनका वह शरीर वेदमय और यज्ञमय था। वे सर्वदेवमय हैं। उनके ही नाकों के छिद्र से कमनीय वेदवाणी आविर्भूत हुयी।।११।।

भावार्थ दीपिका

हयग्रीवावतारमाह- सत्रे इति । अथो इत्यर्थान्तरे । स एव साक्षाद्भगवान्मम ब्रह्मणः सत्रे यज्ञे हयशीर्षा आस । तपनीयं सुवर्णं तद्वद्वर्णों यस्य छन्दोमयो वेदमयः तद्विधेया ये मखास्तन्मयः । 'अमृतमय' इति वा पाठः । मखैर्यजनीया अखिला देवतास्तदात्मा च । अस्य श्वसतः श्वासं मुञ्जतो नस्तो नासापुटादुशतीरुशत्यः कमनीया वेदलक्षणा वाचो बभूवुः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने हयग्रीवावतार का वर्णन किया है। इस श्लोक में अथ शब्द का प्रयोग अर्थान्तर के अर्थ में किया गया है। वे ही यज्ञमय भगवान् मेरे यज्ञ में हयग्रीव के रूप में आविर्भूत हुए। उनका देदीप्यमान सुवर्ण के समान वर्ण था। वे वेदमय तथा यज्ञमय हैं। कहीं-कहीं पर अमृतमय भी पाठ है। यज्ञों के द्वारा जितने भी देवताओं की पूजा की जाती हैं, उन सबों की वे आत्मा हैं। इन भगवान् के नाकों से जो श्वास निकलती थी उसी से कमनीय वेदवाणी भी प्रकट हुयी।।११।।

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः । विस्नंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥१२॥

अन्वयः — युगान्त समये मनु आस क्षोणीमयः निखलजीवनिकायकेतः मत्स्यो लब्धः । मे मुखात् सनिले विस्नंसितान् वेदमार्गान् आदाय उरुमये सलिले तत्र विजहार ।।१२।।

अनुवाद— चाक्षुष् मन्वन्तर के अन्त में भावी मनु सत्यव्रत ने पृथिवी रूपी नौका के आधार बने हुए वे भगवान् सभी जीवों के आश्रय बन गये। मेरे मुख से गिरे हुए वेद को लेकर उस भयङ्कर जल में ही विहार करते रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्यावतारमाह । मत्स्यो भाविना वैवस्वतेन मननुना दृष्टः । क्षोणीमयः पृथ्वीप्रधानः, तदाश्रय इत्यर्थः । अतएव निखलजीवनिकायानामाश्रयः । मे मुखाद्विस्रंसितान्गलितान् वेदस्य मार्गान्वेदानादाय तत्र युगान्तसलिले विजहार । ह हर्षेण।।१२।।

इस श्लोक में मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है। भावी वैवस्वत मनु सत्यव्रत ने भगवान् को मत्स्य रूप से देखा। भगवान् के आश्रितों में प्रधान पृथिवी ही थी उसके आश्रय हैं। वे भगवान्। इसीलिए वे सम्पूर्ण जीव समूह के भी आश्रय हैं। मेरे (ब्रह्मा के) मुख से जल में गिरे हुए वेदों को लेकर वे भगवान् अत्यन्त भयङ्कर उस जल में प्रसन्नता पूर्वक विहार करते रहे।।१२।।

क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मध्नताममृतलब्धय आदिदेवः । पृष्ठेन कच्छप वपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥१३॥

अन्वयः— अमरदानवयूथपानाम् अमृत लब्धये क्षीरोदधौ उन्मध्नतां आदिदेवः पृष्ठेन गोत्रं दधार अद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः निद्राक्षणः ।।१३।।

अनुवाद जब बड़े-बड़े दैत्य एवं देवता अमृत की प्राप्ति के लिए क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे, तब श्रीभगवान् ने अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किया और पर्वत के रगड़ से उनके पीठ की खुजली मिट्टी तो वे क्षणभर के लिए सो गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कूर्मावतारमाह । क्षीरोदधौ कच्छपवपुः सन् गोत्रं मन्थनार्थं मन्दरिगरिं पृष्ठेन धृतवान् । कदा । अमृतलब्धये क्षीराब्धिमुन्मध्नतां सताम् । निद्रायाः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यस्य सः । निद्रावसरः कुतस्तत्राह । अद्रेः परिवर्तः परिभ्रम एव कषाणः कषणं धर्षणसुखप्रदो यस्यां सा कण्डूर्यस्य सः । यद्वा अद्रिपरिवर्त एव कषः कषणं तेन अणिति अपयातीति कषाणा कण्डूर्यस्य ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

क्षीरोदधौ इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजीने श्रीभगवान् के कच्छपावतार का वर्णन किया है। क्षीर सागर में कच्छप शरीर धारण किए हुए भगवान् ने मन्थन क्रिया के लिए अपने पीठ पर मन्दर पर्वत को धारण किया था। यह कार्य उन्होंने तब किया जब देव एवं दानव यूथप अमृत का मन्थन कर रहे थे। उस समय उनको नींद आ गयी। क्योंकि पर्वत के धूमने से जो रगड़ पैदा हुयी उसी से उनकी पीठ की खुजली मिट गयी। यहा अद्रिपरिवर्त० इत्यादि अथवा पर्वत का धूमना ही उनकी पीठ की रगड़ थी उसी से उनकी खुजली चली गयी।।१३।।

त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् । दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥

अन्वयः— भ्रमद् भुकुटि दंष्ट्र करालवक्त्रम् त्रैविष्टिपोरुभयहास नृसिंहरूपं कृत्वा गदयाभिपतन्तं दैत्येन्द्रम् आशु आरात् ऊरौ निपात्य स्फुरन्तं तं नखै: विददार ।।१४।।

अनुवाद फड़कती हुयी भौहों और तीक्ष्ण दाँतों से जिनका मुख भयङ्कर था ऐसे श्रीभगवान् ने देवताओं के महान् भय को दूर करने के लिए नृसिंह रूप धारण करके गदा धारण करके आते हुए दैत्यों के राजा हिरण्यकशिप को सिन्नकट से ही शीघ्रता पूर्वक पकड़कर अपनी जङ्कों पर लिटा दिया और छटपटाते हुए हिरण्यकशिपु को उन्होंने अपने नखों से चीर दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

श्रीनृसिंहावतारमाह । त्रैविष्टपा देवास्तेषामुरुभयं हन्तीति तथा स भगवान् । यद्वा त्रैविष्टपानां देवानामप्युरुभयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम् । अथवा हिरण्यकशिपो राज्यकाले त्रैविष्टपानां दैत्यानामुरु भयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम्। कथंभूतम् । भ्रमन्त्यौ भ्रुकुट्यौ दंष्ट्राश्च यस्मिस्तत्करालं वक्त्रम् यस्मिस्तत् । दैत्येन्द्रं स्फुरन्तमारात्समीप एव गदयोपलक्षितमभिपतन्तं नखैर्विददार ।।१४।।

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने नृसिंहावतार का वर्णन किया है। त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंह रूपम् पद की व्याख्या श्रीधर स्वामी ने तीन प्रकार से किया है। श्रीभगवान् त्रैविष्टप शब्द से देवता कहे गये है, उनका जो महान् भय था उसको दूर करने वाला था भगवान् का नृसिंह रूप (त्रैविष्टपा देवा तेषामुरु भयं हन्तीति तथा स भगवान् नृसिंह रूपं कृत्वा) अथवा देवताओं को भी जिससे महान् भय हो गया था भगवान् की हंसी से उससे युक्त थे भगवान् नृसिंह । अथवा हिरण्यकिशपु के राज्य काल में देवताओं और दैत्यों को जिससे महान् भय हो गया था उस तरह की हँसी वाला था भगवान् नृसिंह का रूप । इन तीनों प्रकार के विग्रहों का अर्थ थोड़े भेद पूर्वक प्राय: एक ही है । उन भगवान् की भौहें और तीक्ष्ण दाँत चमक रहे थे । उससे उनका मुख भयङ्कर बन गया था । ऐसे सिन्नकट में ही गदा धारण करके आते हुए हिरण्यकिशपु को शीघ्रता से पकड़कर भगवान् ने उसको अपनी जङ्घा पर लिटा दिया और उसको अपने तीक्षण नखों से चीर दिया ॥१४॥

अन्तः सरस्युरुबलेन पदे गृहीतो प्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त वार्तः । आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥१५॥

अन्वयः— अन्तः सरस्युरुबलेन ग्राहेण पदे गृहीतः आर्तः यूथपितः अम्बुजहस्तः इदम् आह हे आदिपुरुष, हे अखिललोकनाथ ! हे तीर्थश्रवः, हे श्रवणमङ्गलनामधेय ।।१५।।

अनुवाद सरोवर के भीतर महाबलवान् ग्राह के द्वारा पैर पकड़ लिए जाने पर आर्त बने हुए यूथपित गजेन्द्र ने अपनी सूंड में कमल लेकर भगवान् को इस तरह पुकारा हे आदिपुरुष, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् हे पवित्र यश वाले भगवन् ! तथा हे सुनने में मङ्गलमय नाम वाले भगवान् आप मेरी रक्षा करें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

हरिसंज्ञकावतारमाह- अन्तरिति युगलेन । गजयूथस्य पतिः । तीर्थरूपं श्रवो यशो यस्य स तीर्थश्रवाः हे तीर्थश्रवः। श्रवणेनैव मङ्गलं नामधेयं यस्य सः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अन्तः सरिस इत्यादि दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् के हिर संज्ञक अवतार का वर्णन ब्रह्माजी करते हैं। श्लोक में यूथपित शब्द से हाथियों के समूह के पित गजेन्द्र को कहा गया है। जिनके यश का श्रवण तीर्थ के समान पिवत्र बना देने वाला है अतः श्रीभगवान् का नाम तीर्थश्रवा है। भगवान् के नामों के सुनने से ही मङ्गल होता है अतएव उनका नाम श्रवणमङ्गल है।

अर्थात् सरोवर के भीतर जब बलवान् ग्राह ने गजेन्द्र के पैर को पकड़ लिया और उसे अथाह जल में ले जाने लगा तो आर्त बने हुए गजेन्द्र अपनी सूंड में एक कमल का पुष्प लेकर भगवान् को अपनी रक्षा के लिए आदिपुरुष अखिलोकनाथ तीर्थश्रव तथा श्रवणमङ्गलनामधेय इन चार नामों से पुकारा ।।१५।।

श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः । चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥१६॥

अन्वयः— अरणार्थिनम् तम् श्रुत्वा अप्रमेयः चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः हरिः चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य भगवान् हस्ते प्रगृह्य तस्मात् कृपया उज्जहार ।।१६।।

अनुवाद शरणार्थी उस गजराज की वाणी को सुनकर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् गरुड पर चढ़कर आये और चक्र से घड़ियाल के मुँह को चीरकर श्रीभगवान् गजराज की शुण्ड पकड़कर अपनी कृपा के परतन्त्र होकर उस गजराज को उस घड़ियाल के मुख से ऊपर खींच लिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तद्वचनं श्रुत्वा शरणार्थिनं तं हस्ते शुण्डायां प्रगृह्म । किं कृत्वा । नक्रस्य ग्राहस्य वदनं विनिपाट्य विदार्य । तस्मात्तद्वदनात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

गजराज शरणार्थी था, वह चाहता था कि श्रीभगवान् उसकी रक्षा करें। उसकी वाणी को सुनकर भगवान् गरुड़ के पीठ पर सवार होकर आये और चक्र से ग्राह के मुख को चीर दिये तथा गजराज की शुण्ड पकड़कर उसको वे ग्राह के मुख से ऊपर खींच लिए ॥१६॥

ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकविन्वक्रम इमान्यदथाधियज्ञः । क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्यामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥१७॥

अन्वयः अदितेः सुतानां अवरजोऽपि गुणैः ज्यायान् अधियज्ञः इमान् लोकान् विचक्रमे, त्रिपदच्छलेन वामनेन क्ष्माम् जगृहे । पथिचरन् याञ्चा ऋते प्रभुभिः न चाल्यः ॥१७॥

अनुवाद भगवान् वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे किन्तु गुणों के विषय में वे सबसे बड़े थे। क्योंकि उन्होंने इन समस्त लोकों को अपने पादन्यासों द्वारा ही नाप लिया। बिल के प्रर्थना स्वीकार करते ही वामन रूप धारी भगवान् ने बिल की सारी पृथिवी ले ली याचना के द्वारा पृथिवी लेकर भगवान् ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को याचना के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से ऐश्वर्यभ्रष्ट नहीं किया जा सकता है।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वामनावतारमाह । अदितेः सुतानां द्वादशादित्यानां मध्य अधियज्ञो यज्ञाधिष्ठाता विष्णुः । अवरजः कनीयानपि गुणैर्ज्यायाञ्जयेष्ठः। गुणानेवाह । यद्यत इमॉल्लोकान्विचक्रमे पादन्यासैः क्रान्तवान् । अथ प्रतिश्रुतनन्तरमेव । तत्र हेतुः । बलेः क्ष्मां वामनरूपेण जगृहे। नन्वीश्वरः स्वयं किमिति दुर्बलवत्तथा चक्रे तन्नाह । याच्यां बिना धर्ममार्गे वर्तमानो न चाल्यः ऐश्वर्यात्र भ्रंशनीय इति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ज्यायान् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वामनावतार का वर्णन किया गया है। अदिति माता के पुत्र जो द्वादशादित्य हैं उन सबों में छोटे हैं यज्ञों के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु; किन्तु सबों से छोटे होने पर भी वे गुणों के विषय में सबों से बड़े हैं। भगवान् के गुणों को बतलाते हुए कहते हैं कि बिल के सङ्कल्प करते ही उन्होंने बिल की पृथिवी को वामन रूप से ही नाप लिया। यदि कोई कहे कि वे तो ईश्वर (सम्पूर्ण जगत् के नियामक) थे फिर भी दीन के समान बिल से याचना करने क्यों गये? तो इसका उत्तर है कि भगवान् वामन ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले को याचना के बिना ऐश्वर्य से भ्रष्ट नहीं करना चाहिए।।१७॥

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखा घृतवतो विबुधाधिपत्यम् । यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥१८॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! उरुक्रमपाद शौचम् आपः शिखा धृतवतो बलेः विवुधाधिपत्यम् अर्थो न । यः प्रतिश्रुतम् ऋते अन्यत् च चिकीर्षत् । आत्मानम् शिरसा हरये अभिमेने ।।१८।।

अनुवाद हे नारद ! जिस बिल ने अपने शिर पर श्रीभगवान् के चरणों के जल को धारण कर लिया था । उसने आगे चलकर जो इन्द्रत्व प्राप्त किया था उसमें उसके अतिरिक्त उसका अपना कोई पुरुषार्थ नहीं था। उसने अपनी प्रतिज्ञात अर्थ के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी करना नहीं चाहा । उसने तीसरे डग की पूर्ति के लिए श्रीभगवान् के चरणों में अपना शिर रखकर अपने शरीर को भी श्रीहरि को समर्पित कर दिया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि याच्ञयापि चालनमनुचितमवेत्याशङ्क्य, ततोऽधिकं स्वसालोक्यादि दास्यामीत्याशयेन हृतवानित्याह – नार्थ इति । यद्विबुधाधिपत्यमिदानीं बलात्प्राप्तमग्रे दीयमानं बलेः पुरुषार्थो न भवति । कुत इत्यत आह । आ अप इति च्छेदः । उरुक्रमस्य पादशौचं चं चरणक्षालनरूपा अपः आ सर्वतो धृतवतः । क्व । शिखा शिखायां मूर्ध्नीत्यर्थः । किंच शुक्रेण वारितः शप्तोऽप्यङ्ग हे नारद, यः प्रतिश्रुतं विनाऽन्यन्न चिकीर्षत्कर्तुं नैच्छत् । यश्च तृतीयपादपूरणार्थं हरये आत्मानं देहमप्यभिमेनेऽङ्गीकृतवान्। एवं सदेहं त्रैलोक्यं दत्तवतो विबुधाधिपत्यमर्थो न भवतीत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि याचना के माध्यम से भी सन्मार्गगामी को ऐश्वर्य से भ्रष्ट करना ठीक नहीं है तो इस प्रकार की शङ्का करके भगवान् ने सोचा कि इसको मैं इसमें भी बड़ा अपना सालोक्य आदि प्रदान करूँगा इस अभिप्राय से उसकी पृथिवी को भगवान् ने हरण कर लिया। इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने नार्थों बले इत्यादि श्लोक को कहा है।

बिल ने आगे चलकर जो देवराजत्व प्राप्त किया उसमें इसके अतिरिक्त अपना दूसरा कोई भी पुरुषार्थ नहीं था। उसी समय भगवान् ने बिल को देवराज का पद देने को सोच लिया। इसका एकमात्र कारण था कि बिल ने भगवान् वामन के चरणों के प्रक्षालन का जल अपने शिर पर अच्छी तरह से धारण कर लिया था। शुक्राचार्य ने दान का सङ्कल्प करने से पहले रोका भी यहाँ तक कि उन्होंने बिल को शाप भी दे दिया फिर भी बिल ने जो सङ्कल्प किया था उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं करना चाहा। श्रीभगवान् के तीसरे पद की पूर्ति के लिए राजा बिल ने श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपना शरीर भी समर्पित कर दिया। इस तरह से देह के साथ अपनी आत्मा को भी जिसने श्रीहरि को समर्पित कर दिया उस बिल को देवराजत्व प्राप्त करना कोई पुरुषार्थ नहीं था।।१८।।

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् । ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदवशरणं विदुरञ्जसैव ॥१९॥

अन्वयः— नारद ! विवृद्धभावेन साधुपरितुष्टः भगवान् तुभ्यं च योगम् आत्मसतत्त्वदीपं भागवतं ज्ञानं च उवाच यद् वासुदेवशरणं एवं अञ्जसा विदुः ॥१९॥

अनुवाद नारद ! तुम्हारे अत्यन्त प्रेम भाव से परम प्रसन्न होकर हंसावतार धारण करने वाले श्रीभगवान् ने तुमको योग तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले ज्ञान का उपदेश दिया । उस ज्ञान को केवल भगवत् शरणागत भक्त ही आसानी से प्राप्त करते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हंसावतारमाह-तुभ्यमिति । भृशं विवृद्धेन भावेनात्युद्रिक्तया भत्तया परितुष्टः सन् भक्तियोगं साधु यथा तथा उवाच । ज्ञानं चेति ज्ञानसाधनम् । किं तत् । भागवतं नाम । कथंभूतम् । तत्त्वमेव सतत्त्वम् । आत्मतत्त्वदीपकम् । विवृद्धभावेनेति विशेषणस्य फलमाह-यदिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

तुभ्यम् इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी ने भगवान् के हंसावतार का वर्णन किया है । ब्रह्माजी ने कहा नारद तुम्हारी जो श्रीभगवान् में भिक्त अत्यधिक समृद्ध हो गयी थी उससे श्रीभगवान् परम प्रसन्न हो गये । उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् ने तुमको योग का उपदेश दिया तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले भागवत धर्म का उपदेश दे दिया । उस आत्मज्ञान को वे ही लोग आसानी से प्राप्त कर पाते हैं जो लोग भगवान् वासुदेव के शरणागत होते हैं ॥१९॥

चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशघरो बिभर्ति । दुष्टेषु राजसु दमं व्यद्धात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः॥२०॥

अन्वयः— मन्वन्तरेषु मनुवंशधरः दशसु दिक्षु अविहतं स्वतेजः चक्रं विभर्ति । चरित्रैः त्रिपृष्ठे सत्ये उशतीं स्वकीर्ति प्रथयन् दुष्टेष राजसु दमं व्यधात् ।।२०।।

अनुवाद — वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरों में मनुओं के वंशधर के रूप में अवतारण ग्रहण करके दशो दिशाओं में अपने अप्रतिहत तेज रूपी चक्र के द्वारा मनुवंश की रक्षा करते हैं। और अपने चिरत्रों के द्वारा त्रैलोक्य के ऊपर विद्यमान सत्यलोक पर्यन्त के लोकों में अपनी कमनीय कीर्ति का विस्तार करते हैं। समय-समय पर राजाओं के दुष्ट हो जाने पर उन सबों का दमन भी करते हैं।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तत्तन्मन्वन्तरावतारमाह-चक्रमिति । स्वतेजो निजं प्रभावमेव चक्रं सुदर्शनं विभर्ति । चक्रवदप्रतिहतं प्रभावं विभर्तीत्यर्थः। तदेवाह । मनुवंशपालकः सन् त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि स्थिते सत्यलोकेऽपि कमनीयां स्वकीर्ति विस्तारयन् राजसु दण्डं विधत्ते ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

चक्रम् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के विभिन्न मनुओं के रूप में अवतार ग्रहण का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि श्रीभगवान् के सुदर्शन नामक चक्र का जिस प्रकार से तेज अप्रतिहत है उसी तरह से मनुओं के रूप में अवतीर्ण भगवान् का भी दशो दिशाओं में फैला हुआ तेज अप्रतिहत होता है । उस तेज के द्वारा भगवान् मनुवंश की रक्षा करते हैं, अपने चिरत्रों के द्वारा सत्यादि लोक पर्यन्त अपनी मनोहर कीर्ति का विस्तार करते हैं, और समय-समय पर जब राजागण दुष्ट प्रकृति के हो जाते हैं तो वे ही भगवान् उन दुष्ट राजाओं का दमन करके उनके दण्ड का विधान करते हैं ॥२०॥

धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति । यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥२१॥

अन्वयः— स्वयमेव कीर्तिः भगवान् धन्वन्तरिः नाम्ना पुरुरुजां नृणां रुज आशु हन्ति । यज्ञे च अमृतायुः अवावरुन्ध लोक अवतीर्ण च आयुः वेदम् अनुशास्ति ।।२१।।

अनुवाद— स्वयमेव कीर्ति स्वरूप भगवान् धन्वन्तिर संसार में महान् रोगों से ग्रस्त मनुष्यों के रोगों को अपने नाम मात्र से ही दूर कर देते हैं। दैत्यों के द्वारा छिन लिए गये मरण रहित आयु को देने वाले यज्ञ के भाग को वे प्राप्त करते हैं और संसार में वे धन्वन्तिर रूप से अवतार ग्रहण करके आयुर्वेद का प्रचार करते हैं।।२१।।

भावार्थ दीपिका

धन्वन्तर्यवतारमाह । लाकेऽवतीर्य धन्वन्तरिः सन् पुरुरुजां महारोगिणां स्वनाम्नैव रुजो रोगान् हन्ति । स्वयमेव कीर्तिरिति कीर्त्यतिशयोक्तिः । अमृतं मरणशून्यमायुर्यस्मात्सः । अव अवसत्रं पूर्वं दैत्यैः प्रतिबद्धं यज्ञे भागमवरुन्धे लभते । 'अवाव रुद्धम' इति पाठेऽप्ययमेवार्थः । आयुर्विषयं वेदं चानुशास्ति प्रवर्तयति ।।२१।।

इस श्लोक में ब्रह्माजी धन्वन्तिर अवतार का वर्णन करते हैं। भगवान् संसार में धन्वन्तिर रूप से अवतीर्ण होकर संसार के महारोगी पुरुषों के रोगों को अपने नाममात्र से ही विनष्ट कर देते हैं। स्वयमेव कीर्ति होकर भगवान् के कीर्त्यितरेक को बतलाया गया है। दैत्यों के द्वारा हरण कर लिए गये मरणरहित आयु प्रदान करने वाले यज्ञ के भाग को वे भगवान् देवताओं को प्रदान करते हैं। जहाँ पर अवावरुद्धम पाठ है। वहाँ पर भी यही अर्थ होगा। वे धन्वन्तिर रूप से अवतार ग्रहण करके आयुविषयक शास्त्र आयुर्वेद का प्रवर्तन करते हैं। १२१।।

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु । उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुत्रवीर्यिक्षःसप्तकृत्व उरुधारपरश्चधेन ॥२२॥

अन्वयः - ब्रह्मघ्रुग् उज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु, अविन कण्टकम् दैवोपभृतं क्षत्रं क्षयाय, असौ उरुधारपरश्चधेन त्रिसप्तकृत्वः उद्धन्ति ॥२२॥

अनुवाद — ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले तथा कुमार्गगामी नारकीय कष्ट प्राप्त करना चाहने वाले तथा दैववशात् बढ़े हुए तथा पृथिवी के कण्टक स्वरूप क्षत्रिय राजाओं का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् महापराक्रमी श्रीपरशुरामजी के रूप में अवतार ब्रहण करके अपने तीक्ष्ण धार वाले फरसे से इक्कीस बार उन राजाओं का संहार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह । जगतः क्षयाय विधिना दैवेनोपभृतं संवर्धितं, मृत्यवे समर्पितमिति वा । ब्राह्मणेभ्यो दुह्मतीति तथा अत उज्झितः पन्था वेदमार्गो येन । अतएव नरकार्ति लिप्सतीव । एवंभूतमवनेः कण्टकतुल्यं क्षत्रमसौ महात्मा हरिरुद्धन्त्युत्पाटयित, दीर्घतीक्ष्णधारेण परशुना ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने परशुरामावतार का वर्णन किया है। संसार का नाश करने के लिए दैववशात् बढ़े हुए अथवा मृत्यु को समर्पित ब्राह्मणों से द्रोह करने के कारण सन्मार्ग का परित्याग किए हुए; उसके फलस्वरूप नारकीय कष्ट प्राप्त करने के इच्छुक के समान तथा पृथिवी के कण्टक तुल्य क्षत्रिय राजाओं का श्रीहरि ने विनाश अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण धार वाले फरसे से किया ॥२२॥

अस्मत्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे । तिष्ठन्वनं सद्यतानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥२३॥

अन्वयः— अस्मत् प्रसाद सुमुखः कलया कलेशः इक्ष्वकु वंश अवतीर्ण गुरोर्निदेशे तिष्ठन् सदयितानुजः वनम् आविवेश। यस्मिन् विरुध्य दशकन्धरःआर्तिम् आर्च्छत् ॥२३॥

अनुवाद — हमलोगों पर प्रसन्न होकर कृपा करने के लिए श्रीभगवान् अपनी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रूपी कलाओं के साथ श्रीराम रूप से इक्ष्वाकु वंश में अवतार ग्रहण करके अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी पत्नी तथा छोटे भाई के साथ में वन में चले गये और उन श्रीभगवान् से विरोध करके रावण मारा गया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

रामावतारमाह त्रिभि:-अस्मदिति । अस्माकं ब्रह्मादीनां प्रसादे सुमुख:, कलया भरतादिरूपया सह, कला माया तस्य ईशो गुरोर्दशरथस्याज्ञायां तिष्ठन् सीतालक्ष्मणाभ्यां सहितो वनमाविवेश । यस्मिन्वरोधं कृत्वा रावणो नाशं प्राप्त: ।।२३।।

तीन श्लोक से ब्रह्माजी श्रीरामावतमार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम ब्रह्मा आदि देवताओं पर कृपा करने के लिए अपनी भरतजी इत्यादि कलाओं के साथ कलेश माया के स्वामी श्रीभगवान् अपने पिता दशरथजी की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी पत्नी सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ वन में चले गये। उन भगवान् श्रीराम से विरोध करके रावण का नाश हो गया।।२३।।

यस्मा अदादुद्धिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरविद्यक्षोः । दूरसुद्दन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥

अन्वयः — दिधक्षोः हरवत् दूरे सुह्न्मिथतरोष सुशोणदृष्ट्या तातप्यमान मकरोरग नक्रचक्रः रूढभयाङ्गवेपः उदिधः यस्मै सपदि अरिपुरं मार्गं अदात् ॥२४॥

अनुवाद — त्रिपुर विमान को जलाने की इच्छा से क्रुद्ध शङ्करजी के समान अपने शत्रु रावण की नगरी को जला देने की इच्छा से समुद्र तट पर आये हुए श्रीरामचन्द्रजी की आँखें सीताजी के हरण जन्य वियोग के कारण क्रोध से लाल हो गयी थीं। उसके कारण समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल समूह अत्यन्त संतप्त हो गये और भय के कारण काँपते हुए समुद्र उनको लङ्का जाने का शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मै रामायोदिधर्मार्गं ददौ । सपिद शीघ्रं हरो यथा त्रिपुरं दिधक्षुस्तद्वदिरपुरं लङ्कां दग्धुमिच्छोः । षष्ठी चतुर्थ्यर्थे । यद्वा पञ्चमीयम् । दिधक्षोः रामाद्यद्भयं प्राप्तं तेनाङ्गे कम्पो यस्येति । कथंभूत उदिधः । ऊढं प्राप्तं यद्भयं तेनाङ्गेषु वेषः कम्पो यस्य। अत्र हेतुः दूरे वर्तमाना सुहत् सीता तथा निमित्तभूतया मिथतः क्षुभितो रोषस्तेन सुशोणाऽत्यरुणा दृष्टिस्तयाऽत्यन्तं तप्यमानं मकराणामुरगाणां नक्राणां च चक्रं यस्मिन् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

त्रिपुर विमान को जला देने की इच्छा वाले शङ्करजी के समान शत्रु रावण की नगरी को भस्म कर देने की इच्छा वाले यहाँ इच्छो:पद में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति है अथवा इसमें पञ्चमी विभक्ति हैं। भय से काँपते हुए समुद्र ने शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया। उस भय का कारण बताते हुए कहते हैं दूरे सुहन्मिथतरोषसुशोण दृष्ट्या अपनी प्रियतमा के विप्रयोग के कारण क्षुब्ध होने से रोष के कारण उनकी ऑखें अत्यन्त लाल हो गयी थीं। उस दृष्टि से समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल आदि सन्तप्त हो गये थे, ऐसे समुद्र ने भगवान् श्रीराम को शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया।।२४।।

वक्षः स्थलस्पर्शरुगणमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् । सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्घनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥२५॥

अन्वयः— वक्षः स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैः विडम्बितजुषः ऊढहासम् । अधिसैन्ये उच्चरतः धनुषः विस्फूर्जितैः दारहर्तुः असुभिः सह सद्यः विनेष्यति ।।२५।।

अनुवाद - रावण के वक्ष:स्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत चूर-चूर होकर विखर गये और उससे प्रकाशित होने वाली दिशाओं को देखकर जो रावण हँसने लगा उस श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी का अपहरण करने वाले रावण का गर्व सेना के बीच में घोष करने वाले धनुष के टंकार से ही उसके प्राणों के साथ शीघ्र ही विनष्ट हो गया ।।२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच युद्धे रावणस्य वक्षःस्थलस्पर्शेन रुग्णा भग्ना ये महेन्द्रवाहस्यैरावतस्य दन्तास्तैर्विडम्बिताः स्वधवलिम्ना धवलीकृताः। तत्तिद्देशु पतितैः प्रकाशिता इत्यर्थः । या एवंभूताः ककुभो दिशस्ता जुषते सेवते पालयतीति वा तथा तस्य दारहर्तू रावणस्य अहो मत्समः कोऽन्योऽस्तीति महागर्वेणोढं प्राप्तं हासमसुभिः प्राणैः सह सद्यः शीघ्रं विनेष्यत्यपनेष्यति । कैः धनुषो विस्फूर्जितैः टङ्कारघोषैरेव । कथंभूतस्य । अधिसैन्ये स्वपरसैन्यमध्ये उच्चरत उत्कर्षेण विचरतः । ककुब्जयस्बढहासम्' इति पाठे दन्तैरुज्विततानां ककुभां जयेन यो रूढहासः संजातो गर्वस्तमपनेष्यतीत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

युद्ध में रावण के वक्ष:स्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत टूटकर विखर गये और उन विखरे हुए दाँत के प्रकाश से दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। इस प्रकार की दिशाओं का पालन करने वाले तथा श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी का हरण करने वाले रावण का यह सोचकर गर्व करना कि मेरे समान दूसरा कौन हो सकता है। प्राणों के साथ ही उस गर्व को भी भगवान् श्रीराम की दोनों सेनाओं में होने वाली धनुष के टक्कार की ध्वनि दूर कर देने वाली है।

जहाँ **ककुब्जयरूढहासम्** पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि दाँतों से प्रकाशित दिशाओं को जीत लेने से उत्पन्न हैंसी पूर्वक गर्व को विनष्ट कर देगी ॥२५॥

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः । जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥२६॥

अन्वयः— सुरेतरवरूथ विमार्दिता याः भूमेः क्लेशव्ययाय सितकृष्ण केशः कलया जातः जनानुपलक्ष्यमार्गः आत्ममहिमोपनिबन्धनानि कर्माणि च करिष्यति ।।२६।।

अनुवाद जब दैत्यों के समूह ने इस पृथिवी को रौंद डाला तब पृथिवी के क्लेश को दूर करने के लिए भगवान् अपने उजले और काले केश रूपी कला से बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में कलावतार ग्रहण करेंगे। अपनी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले ऐसे अद्भूत कर्मों को वे करेंगे कि मनुष्य उनकी लीलाओं का रहस्य नहीं समझ पायेगा।।२६॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णावतारमाह- भूमेरिति दशिम: । सुरेतरा असुरांशभूता राजानस्तेषां वरूथै: सैन्यैर्विमर्दिताया मारेण पीडिताया:। कल्या रामेण सह जात: सन् । कोऽसौ जात: । सितकृष्णौ केशौ यस्य भगवत: स एव साक्षात् । सितकृष्णकेशत्वं शोभैव नतु वय:परिणामकृतम्, अविकारित्वात् । यत्कं विष्णुपुराणे 'उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ' इति । यच्च भारते 'स चापि केशौ हरिरुज्जजह्रे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् ं तौ चापि केशवाविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च । तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्रेतस्य देवस्य केशः । कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः' इति । तत्तु न केशमात्रावताभिप्रायं, किंतु भूभारावतरणरूपं कार्यं कियदेतन्मत्केशावेवैतत्कर्तु शक्ताविति चोतनार्थम् । रामकृष्णयोर्वर्णसूचनार्थं च केशोद्धरणमिति गम्यते । अन्यथा तत्रैव पूर्वापरिवरोधापत्तेः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् इत्येतद्विरोधाच्च । कर्यभूतः । परमेश्वरतया जनैरनुपलक्ष्यो मार्गो यस्य । तहींश्वरत्वे किं प्रमाणम्, अतिमानुषकर्मान्यथानुपपत्तिरेवेत्याह। आत्मनो महिमा उपनिबच्यतेऽभिव्यज्यते येषु तानि ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अब भूमे: सुरेतर इत्यादि दश श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी श्रीकृष्णावतार का वर्णन करते हैं । जब असुरों के अंश स्वरूप राजाओं की सेना के भार से अत्यन्त बढ़े हुए पृथिवी का भार उतारने के लिए बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत और काले केश श्रीभगवान् के ही हैं। सित कृष्णकेशों वाला भगवान् को उनकी शोभा के लिए कहा गया हैं। बुढ़ापे को बोधित करने के लिए नहीं। क्योंकि भगवान् तो विकाररहित हैं।

विष्णु पुराण में कहा गया है— हे महामुने ! श्रीभगवान् ने श्वत तथा काले दो केशों को उखाड़ लिया। महाभारत में कहा गया हैं— स चापिकेशो इत्यादि अर्थात् वे भगवान् अपने एक श्वेत तथा एक काले केश को उखाड़ लिये । वे दोनों यादवों के वंश में उत्पन्न हुए तथा रोहिणी और देवकी दो स्त्रियाँ भी यदुवंश की हुयीं। श्रीभगवान् का जो श्वेत केश था वह बलराम हो गया और जो केश काले वर्ण का बतलाया गया है वही केशव के रूप में अवतीर्ण हुआ ।

तत्तु न केशमात्र इत्यादि उसका अभिप्राय यह नहीं हैं कि ये केश ही बलराम तथा श्रीकृष्ण रूप में अवतीर्ण हैं, अपितु उसका अभिप्राय यह है कि यह पृथिवी के भार को उतारना रूपी जो कार्य है, वह बहुत छोटा कार्य है उसको तो मेरे केश ही दूर कर देंगे उसके लिए मुझे अवतार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के वर्णों को भी द्योतित करने के लिए दोनों प्रकार के केशों को उखाड़ा श्रीभगवान् ने।

यदि ऐसा नहीं माना जाय तो फिर 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इस उक्ति से विरोध होगा । उनके प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, अतएव संसार के लोग उनके मार्ग को नहीं जान सकते हैं । यह जनानुपलक्ष्यमार्गः इस पद से कहा गया है ।

प्रश्न होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ईश्वर हैं इसमें क्या प्रमाण है ? तो इसका उत्तर है कि यदि वे ईश्वर नहीं होते तो वे अतिमानुष कर्मों को कैसे कर सकते थे ? उनके जो कर्म है वे उनकी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले हैं ॥२६॥

तोकेन जीवहरणं युदलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः । यद्रिङ्गताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥२७॥

अन्वयः इतरथा तोकेन उलूकिकायाः जीव हरणम् त्रैमासिकस्य च पदा शकटोपवृत्तः यत् रिङ्गता अन्तरगतेन दिवि स्पृशोः वा अर्जुनयोः उन्मूलनं न भाव्यम् ।।२७।।

अनुवाद यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बालक श्रीकृष्ण के द्वारा पूतना का प्राणापहार, तीन मास के बच्चे द्वारा पैर से विशाल गाड़ी को उलट देना तथा घुटनों के बल रेंगते हुए दोनों अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर उन आकाशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों को उखाड़ देना इन सभी कार्यों को वे नहीं कर सकते थें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-तोकनेत्यादिना । बालेन पूतनाया जीवहरणम् । यद्रिङ्गता जानुभ्यां गच्छता अन्तरं गतेन मध्यं प्राप्तेन। दिविस्पृशोरत्युच्चयो: । इतरथाऽनीश्वरत्वे तत्र भवितव्यम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए तोकेन **इत्यादि** श्लोक को ब्रह्माजी कहते हैं। यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बच्चे के द्वारा पूतना का प्रणापहार करना, घुटनों के बल रेज़ते हुए दोनों आकशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों का उखाड़ देना इन सब कामों को वे नहीं कर सकते थे ॥२७॥

यद्वैव्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान् पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या । तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम् ॥२८॥

अन्वयः — यद्वै व्रज विषतोयपीथान् व्रजपशून् पालांस्तु अनुग्रहदृष्टिवृष्टया अजीवयत् तच्छुद्धये अतिविषवीर्य विलोलजिह्नम् उरगम् ह्रदिन्याम् विहरन् उच्चाटियष्यित ।।२८।।

अनुवाद— वे भगवान् व्रज मे विषैले पानी के पी लेने के कारण बछड़े तथा ग्वाल बाल भी मर जायेंगे तब वे अमृतमयी अनुग्रह दृष्टि की वर्षा से उन सबों को जीवित कर देंगे। उस यमुना के जल को शुद्ध कर देने के लिए यमुना में विहार करते हुए विषातिरेक के कारण चञ्चल जिह्ना वाले कालिय नाग को वहाँ से निकाल देंगे।।२८॥

भावार्थ दीपिका

विषतोयपीथान् विषमयतोयस्य पीथं पानं येषां तान् पालान्गोपांश्च कृपादृष्टिसुधावृष्ट्या जीवियष्यतीति । यमुनायां क्रीडन्नुरगं कालियमुच्चाटियष्यति । तच्छुद्भये तस्या ह्रदिन्या निर्विषत्वाय । अतिविषवीर्येण विलोलाऽतिचञ्चला जिह्ना यस्य ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

विषैले जल को पी लेने के कारण जब बछड़े और ग्वालबाल मर जायेंगे उस समय अपनी कृपा रूपी अमृतमयी दृष्टि से वे भगवान् उन सबों को जीवित कर देंगे और यमुना में विहार करते हुए वे सर्प को वहाँ से भगा देंगे। उनके यमुना में विहार करने का उद्देश्य यमुना के जल को विष रहित बना देना होगा और वे विष के आतिशय्य के कारण चञ्चल जिह्ना वाले सर्प कालीय को वहाँ से निकाल देंगे। 1२८। 1

तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने । उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिद्याय्य सबलोऽनिधगम्यवीर्यः ॥२९॥

अन्वयः - दवाग्निना शुचिवाने परिदह्ममाने निशि निःशयाननं अवसितान्त कालं व्रजम् सबलः नेत्रेपिधाय्य उन्नेष्यत्ति तत्कर्म दिव्यमिव ।।२९।।

अनुवाद कालिय मर्दन के ही दिन सब लोग जब यमुना तट पर सो जायेंगे और ग्रीष्म ऋतु होने के कारण जब आस-पास का मुंजवन जलने लगेगा उस समय बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण प्राण संकटापन्न सबों के नेत्रों को बन्द करवाकर सबों को उस अग्नि से बचा लेंगे। उनका यह कर्म दिव्य होगा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

दिव्यमलौकिकिमवेति लोकोक्तिः । उन्नेष्यत्युद्धरिष्यति । शुचिग्रीष्मस्तत्संबन्धिनि वने । शुष्क इत्यर्थः । अतो दावाग्रेहेंतोरविसतो निश्चितोऽन्तकालो यस्य तम् । सबलः सरामः अनिधगम्यं दुर्जेयं वीर्यं यस्य । तत्र निशि निःशयानिमिति कालियदमने रात्र्यां यमुनातीरे । नेत्रे पिधाय्य पिहिते कारियत्वेति मुञ्जाटव्यामिति ज्ञेयम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् का वह कर्म दिव्य ही होगा। उन्नेष्यित का अर्थ है, बचा लेंगे। शुचिवने पद का अर्थ है, ग्रीष्म ऋतु के वन में। अतएव सुखे हुए अविसतान्तकालः जब सबों का अन्तिम समय आ जायेगा। सबलः पद का अर्थ है बलरामजी के साथ। अनिधगम्यवीर्यः पद का अर्थ है कि श्रीभगवान् के पराक्रम का कोई पता नहीं लगा सकता है।

जिस दिन भगवान् ने कालिय दमन किया था उस दिन रात्रि में वज्रवासियों के यमुनातट पर ही सो जाने

पर रात्रि में मुझाटवी में आग लग जाने पर सबों के प्राण सङ्कटापन्न हो गये तो भगवान् सबों की आँखों को बन्द कराकर सबों को बचा लेंगे ॥२९॥

गृह्णीत यद्यदुपबन्धममुख्य माता शुल्वं सुतस्य न तु तत्तदमुख्य माति । यञ्जम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥३०॥

अन्वयः— अमुष्य माता यत् उपबन्धं शुल्वं गृह्ण तत् तु अमुष्यन माति जृम्भातः अस्य वदनं गोपी अस्य भुवनानि संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधितासीत् ।।३०।।

अनुवाद — भगवान् श्रीकृष्ण को बाँध देने के लिए उनकी माता जितनी भी रस्सी लेंगी वह उनके पेट में दो अङ्गुल छोटी हो जायेगी। तथा जम्भाई लेते हुए भगवान् के मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर यशोदाजी आश्चर्यित हो जायेंगी और बाद में वे आश्वस्त होंगी।।३०।।

भावार्थ दीपिका

उपबध्यतेऽनेनेत्युपबन्धं तत्साधनं शुल्वं अमुष्य माता यशोदाऽग्रहीत् । अमुष्योदरे न माति बन्धनसंमितं न भवति । न पूर्यत इत्यर्थ: । गोपी यशोदा संवीक्ष्य दृष्ट्वा प्रतिबोधिता निजैश्वर्य ज्ञापिता आसीदिति यत्, तच्च कर्म दिव्यमिवेति सर्वत्र पूर्वेणान्वय: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को बान्ध देने के लिए माता यशोदा ने जितनी भी रिस्सियों को लिया वे सब रिस्सियाँ इनके कमर में छोटी ही पड़ गयी । तथा भगवान् के जम्भाई लेते समय उनके मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर माता यशोदा पहले तो आश्चर्यित हो गयीं किन्तु वे बाद में आश्वस्त हो गयीं ये सारे भगवान् के कर्म दिव्य ही हैं ॥३०॥

नन्दं च मोक्ष्यित भयाद्वरुणस्य पाशाद्रोपान्विलेषु पिहितान् मयसूनुना च । अह्न्यापृतं निशि शयनमतिश्रमेण लोके विकुण्ठ उपनेष्यित गोकुलं स्म ॥३१॥

अन्वयः— नन्दं भयात् वरुणस्य पाशात् मोक्षयति मयसूनुना विलेषु पिहितान् गोपान् भयाद् मोक्ष्यति । अहन्यापृतं अतिश्रमेण निशिशयानं गोकुलं लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति ।।३१।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजी के अजगर के मुख से बचायेंगे तथा वरुण के पाश से मुक्त करेंगे। मय दानव के पुत्र व्योमासुर के द्वारा ग्वाल बालों के गुफा में बन्द कर दिए जाने पर वे उन सबों को बचा लेंगे दिन भर कामों में लगे रहने के अत्यन्त श्रान्त तथा रात्रि में सोने के कारण मुक्ति प्राप्ति के साधन से रहित गोकुल के लोगों को भगवान् वैकुण्ठ ले जायेंगे, यह उनका दिव्य कर्म ही होग ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

वरुणस्य पाशाद्यद्भयं तस्मान्मोचियष्यित मयसूनुना व्योमनाम्ना । अह्नि आपृतं व्यापारयुक्तं निशि शयानिमिति च वैकुण्ठप्राप्तिसाधनानुष्ठानाभावो दर्शित: । उपनेष्यित प्रापयिष्यित गोकुलवासिनं जनम् । स्मेत्याश्चर्ये ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नन्दजी के वरुण के पाशरूपी अजगर के मुख से बचाने वाले, व्योमासुर के द्वारा ग्वालों को गुफा में बन्द कर दिए जाने पर बचाने वाले तथा दिन भर कार्यों में लगे रहने के कारण अत्यन्त थककर रात्रि में सोने वाले गोकुल के लोगों को वैकुण्ठ प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के ये सब कार्य आश्चर्यमय होंगे ॥३१॥

गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः । धर्तोच्छिलीन्प्रमिव सप्तदिनानि सप्तवर्षो महीघ्रमनधैककरे सलीलम् ॥३२॥

अन्वयः— हे अनघ ! गोपै: मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवे अभिवर्षति कृपया पशून् रिरक्षु सप्तवर्षः सप्तदिनानि उच्छिलीन्म्रिमिव एककरे महीम्रम् सलीलम् धर्ता ॥३२॥

अनुवाद हे निष्पाप नारद ! गोपों द्वारा इन्द्र यज्ञ नहीं किए जाने परे क्रुद्ध होकर जब इन्द्र वर्षा करने लगेंगे तो कृपा परतन्त्र होकर पशुओं की रक्षा करने के लिए सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान आसानी से गोवर्धन पर्वत को सात दिनों तक धारण किए रहेंगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

देवे इन्द्रे ! पशून् रिरक्षुः । रिरक्षिषुरित्यर्थः । श्रमरहिते एकस्मिन्नेव करे सलीलं यथा तथा महीभ्रं गोवर्धनं धर्ता धारियष्यति । उच्छिलीन्भ्रमुद्गतं छत्राकमिव । सप्तवर्षाणि वयो यस्य सः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी ब्रह्माजी नारदजी को भगवान् श्रीकृष्ण की आश्चर्यमयी लीला को बतलाते हैं वे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के कहने से गोप जब इन्द्र का यज्ञ करना बन्द कर देंगे उस समय व्रज को विनष्ट करने के लिए इन्द्र मुसलाधार वर्षा करेंगे। यह देखकर सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण पशुओं की रक्षा करने के लिए खेल-खेल में ही गोवर्धन पर्वत को अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान विना किसी प्रयास के धारण किए रहेंगे। 13 २।।

क्रीडन्वने निशि निशाकररिश्मगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन । उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यित शिरो धनदानुगस्य ॥३३॥

अन्वयः— निशाकरिष्मगौर्याम् निशि रासोन्मुखः कलपदायतमूर्छितेन वने क्रीडन् उद्दीपिपतस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुः धनदानुगस्य शिरः हरिष्यति ॥३३॥

अनुवाद पूर्णिमा की रात्रि की चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित रात्रि में रासक्रीडा करने की इच्छा से मनोहर संगीत से युक्त वन में क्रीडा करते हुए उद्दीप्त काम की वासना से युक्त गोपियों का हरण करने वाले यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

निशि रात्रौ । निशाकररिश्मिभर्गौर्यां घवलायाम् । वने क्रीडन् कलानि मञ्जुलानि पदानि यस्मिस्तच्च तदायतं दीर्घं मूर्च्छितमालापविशेषयुक्तं गीतं तेनोद्दीपितः स्मर एव रुक् यासां तासां गोपीनां हर्तुः शङ्कुचूडस्य शिरो हरिष्यति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

पूर्ण चन्द्रमा की चाँदिनी से प्रकाशित रात्रि में वन में क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् के मनोहर पदों से युक्त होने के कारण दीर्घ आलाप युक्त गीत से जिन गोपियों का कामज्वर उद्दीप्त हो गया था उन सबों को चुराने वाले शंख चूड़ नामक यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ॥३३॥

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्काद्याः । अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरिवदूरथरुक्मिममुख्याः ॥३४॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तवापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः । यास्यन्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्नयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥ अन्वयः — ये च प्रलम्बरखर-दुर्दुर-केश्यरिष्ट-मल्लेभ-कंस-यवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः अन्ये च शाल्व-कपि-बल्वल दन्तवक्त्र-सप्तोक्ष-शम्बर-विदूरथ-रुक्मिमुख्याः, ये वा काम्बोज मत्स्यकुरु-कैकय-सृञ्जयाद्याः मृघे समितिशालिनः आत्तचापाः बल-पार्थ-भीमव्याजाह्नयेन अलम् अदर्शनम् तदीयम् निलयंयास्यन्ति ।।३४-३५।।

अनुवाद — जितने भी प्रलम्बासुर धेनुकासुर बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, काल यवन, भौमासुर, पौण्ड्रक, शाल्व, द्विविद नामक वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित् के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ तथा रुक्मी एवं काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशों के राजा लोग तथा जो भी योधा धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए आयेंगे वे सबके सब बलराम, भीमसेन तथा अर्जुन आदि नामों के बहाने स्वयं श्रीभगवान् के द्वारा मारे जाकर उनके ही लोक में जायेंगे ।।३४-३५।।

भावार्थ दीपिका

ये च प्रलम्बादयस्ते सर्वे हरिणा हेतुभूतेन तदीयं निलयमदर्शनं दर्शनायोग्यं वैकुण्ठमलं यास्यन्तीत्युत्तरेणान्वयः खरो धेनुकः, दर्दुरो इव दर्दुरो बकः, इभः कुवलयापीडः, कुजो नरकः, किपर्द्विवदः । ये च मृधे आत्तचापाः, सिमतौ संग्रामे शालन्ते शलाघन्ते ते सिमितिशालिनः । ननु प्रलम्बखरकिपबल्बलरुक्मिप्रमुखा बलभद्रेण निहताः, काम्बोजादयश्च भीमार्जुनादिभिः, शम्बर प्रद्युम्नेन, यवनो मुचुकुन्देन, न तु हरिणा तत्राह । बलो भीमः पार्थ इत्यादयो व्याजाह्वयाः कपटनामानि यस्य तेन । सप्तोक्षाणस्तु तेन दिमताः कालान्तरे यास्यन्तीति भावः । एतच्च सर्वमिप कर्म दिव्यमिव, तच्चान्यथा न भाव्यमिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।३४-३५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि प्रलम्बासुर इत्यादि जो दैत्य होंगे वे सबके सब श्रीहरि के द्वारा मारे जाने के कारण श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक जिसको देखा नहीं जा सकता है उसमें चले जायेंगे । धेनुकासुर, दर्दुर (बकासुर) कुबलयापीड हाथी, नरकासुर, द्विविद नामक वानर । वे सबके सब श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे ।

जो लोग युद्ध में धनुष धारण करके प्रख्यात योद्धा हैं वे सब भी मारे जाकर श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे। प्रश्न है कि प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, द्विविद, बल्वल तथा रुक्मी को तो बलरामजी ही मारने वाले हैं। काम्बोज इत्यादि का वध भीम, अर्जुन इत्यादि ने किया, शम्बरासुर को प्रद्युम्नजी ने मारा, कालयवन को मुचुकुन्द ने मारा। इन सबों को तो श्रीहरि ने मारा नहीं था तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा कि भीम, अर्जुन, बलराम ये सबके सब श्रीहरि के कपट नाम हैं। इन सबों के बहाने मारने का काम तो श्रीहरि ने ही किया।

राजा नग्नजीत के जो सात बैल थे उन सबों का दमन भगवान् ने किया वे सब जब मरेंगे तब श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक में जायेंगे ॥३४-३५॥

कालेन मीलितिधयामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः । आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्वुमं विटपशो विभिजिष्यति स्म ॥३६॥

अन्वयः— मीलित धियाम् स्तोकायुषां नृणाम् स्विनगमः बत दूरपारः अवमृश्य अनुयुगम् सत्यवत्याम् अविहितः सन् सः हि वेदहुमं विटपशः विभजिष्यित स्म ॥३६॥

अनुवाद— समयानुसार लोगों की बुद्धि मन्द पड़ जाती है और उन लोगों की आयु भी कम हो जाती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि मेरे आत्मतत्त्व को बतलाने वाले वेदों को समझने में लोग असमर्थ हैं; उस समय प्रत्येक युग में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

व्यासावतारमाह । अनुयुगं मीलिता संकुचिता घीर्येषाम् । स्तोकमल्पमायुर्येषां तेषां स्वनिगमः स्वकृतो वेदराशिर्वताहो दूरे पारं यस्येति दुर्गम इत्यवमृश्य सत्यवत्यामाविर्भूतः सन्स एव हरिः । विटपशः शाखाभेदेन ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक युगों में लोगों की बुद्धिमन्द होती जाती है, उन लोगो की आयु भी कम होती जाती है। ऐसे लोगों को देखकर भगवान् प्रत्येक कल्प में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर वेदरूपी महान् वृक्ष की शाखाओं का विभाग करेंगे ॥३६॥

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः । लोकान्धनतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥३७॥

अन्वयः — निगमवर्त्मीन निष्ठितानां देवद्विषाम् मयेन निर्मिताधिः अदृशतूर्धिः पूर्धिः लोकान्ध्नताम् अति प्रलोधं मतिविमोहम् वेषं विधाय बहु औपधर्म्यम् भाष्यते ।।३७।।

अनुवाद देवताओं के शत्रु सभी वेदमार्ग का सहारा लेकर मयदानव के द्वारा निर्मित नगरियों के अदृश्य वेग वाली नगरियों में रहकर लोगों का विनाश करने लगेगें उस समय भगवान् लोगों की बुद्धि को मोह में डालने वाले तथा अत्यन्त लोभ उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके बहुत से पाख्ण्ड धर्म का उपदेश करेंगे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

बुद्धावतारमाह । देवद्विषां निगमवर्त्मनि वेदमार्गे निष्ठितानां नितरां स्थितानाम् । तद्वलेन च पूर्धिः पुरीधिः । अदृश्यतूर्धिरलक्ष्यवेगाधिः । मतेर्विमोहो योग्यतात्यागो यस्मात्, मतेः प्रलोभश्चायुक्तस्वीकारो यस्मात्तं पाखण्डवेषं विधाय तेनौपधम्यं पाखण्डधर्मम् । स्वार्थेष्यञ् । बहु भाषिष्यत इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी बुद्धावतार का वर्णन करते हैं। जब देवताओं के शत्रु भी वेदमार्ग को अपना कर उसके सहारे मयदानव के द्वारा निर्मित अदृश्य गित वाली नगरीयों में रहकर दैत्य; लोगों का विनाश करने लगेंगे। उस समय मित को मोहित करने वाले तथा लोभ को उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके श्रीभगवान् बुद्ध रूप से बहुत अधिक पाखण्ड धर्मों का उपदेश करेंगे।।३७।।

यह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः । स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥३८॥

अन्वयः — यर्हि सताम् अपि आलयेषुहरेः कथा न स्युः द्विजजनाः पाखण्डिनः स्युः, नृदेवाः वृषलाः स्युः, यत्र स्वाहा, स्वधा वषडिति गिरः न स्युः तदा युगान्ते भगवान् कलेः शास्ता भविष्यति ।।३८।।

अनुवाद जिस समय सज्जनों के भी गृह में श्रीहरि की कथा नहीं होगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी पाखण्डी हो जायेंगे, राजा लोग शूद्र हो जायेंगे तथा जिस समय कहीं भी स्वाहा, स्वधा तथा वषट् शब्द सुनाई नहीं पड़ेगें उस समय युग के अन्त में किलयुग का शासन करने के लिए भगवान् किल्क अवतार ग्रहण करेंगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

कल्क्यवतारमाह । यर्हि यदा सतामप्यालयेषु गृहेषु हरेः कथा न स्युः, त्रैवर्णिकाः पाखण्डिनः स्युः, शूद्रश्च राजानः स्युस्तदा कल्किरूपेण कलेः शास्ता भविष्यति । अत्र च ब्रह्मनारदसंवादात्प्राग्भाविनो वराहादयः, मन्वन्तरावतारास्तु भूता भाविनश्च, धन्वन्तरिपरशुरामौ तदा वर्तेते, श्रीरामादयस्तु भाविनः, तत्र तु क्वचिद्भूतादिनिर्देशश्छान्दस इति द्रष्टव्यम् ।।३८।।

इस श्लोक में ब्रह्माजी कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब सज्जनों के भी गृह में श्रीभगवान् की कथा नहीं होगी, त्रैवर्णिक भी पाखण्डी हो जायेंगे तथा शूद्र राजा हो जायेंगे। कहीं भी स्वाहा स्वधा तथा वषट् शब्द सुनाई नहीं पड़ेंगे उस समय भगवान् किलयुग का प्रशासन करने के लिए कल्की अवतार धारण कर लेंगे। ब्रह्मानारद संवाद से पहले वराहावतार इत्यादि अवतार हुए हैं, मन्वन्तरों का अवतार भूतकालिक और भविष्यत् कालिक होगा। धन्वन्तरि और परशुरामावतार उस समय रहेंगे। श्रीराम आदि अवतार भविष्यत् कालिक होंगे। इन सबों में जहाँ कहीं भी भूत कालिक निर्देश हैं वहाँ आर्ष प्रयोग समझना चाहिए।।३८॥

सर्गे तपोहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः । अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥

अन्वयः पुरुशक्तिभाजः इमा माया विभूतयः सर्गे, तपः अहम् ऋषयः ये च नवप्रजेशजाः ते भवन्ति, स्थाने धर्ममखमन्वमरावावनीशाः भवन्ति, अन्ते तु अधर्महरमन्युवशासुराद्याः भवन्ति ॥३९॥

अनुवाद अनेक परा शक्तियों से सम्पन्न परमात्मा की माया की ये विभूतियाँ अविभूत होती हैं वे सृष्टिकाल के समय तपस्या, रूप में ऋषिगण और नव प्रजापितयों के रूप में अविभूत होती हैं स्थिति काल में धर्म, यज्ञ, मनु, देवता और राजा के रूप में अविभूत होती हैं और संहार काल में तो अधर्म, शङ्करजी, क्रोधवशा नामक सर्प तथा दैत्यों के रूप में आविभूत होती हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

सृष्ट्यादिकार्यभेदेन मायागुणावतारविभूतीराह- सर्ग इति । स्थाने स्थितौ । मखो विष्णुः । **घर्मश्च मखश्च मनवश्च** अमराश्च अवनीशाश्च । अन्ते संहारे । हरो रुद्रः । मन्युवशाः सर्पाः । बहुशक्तिधारिणो भगवत इमा मायाविभूतयः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि कार्यों की भिन्नता के कारण माया के गुणों के अवतार रूपी विभूतियों को बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते हैं। जिस समय स्थिति की बेला आती है उस समय वे विष्णु, धर्म, मख, मनु, देवता और राजाओं के रूप में अवतीर्ण होती है। संहार के समय वे ही रुद्र मन्युवशा सर्प होती हैं, सृष्टि के समय तपस्या, ब्रह्मा, ऋषिगण तथा नव प्रजापतियों के रूप में अविभूत होती हैं ॥३९॥

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि । चस्कम्भ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥४०॥

अन्वयः— यः कविः पार्थिवानि रजांसि अपि विमाने तादृशः अपिः कतमः नु विष्णो वीर्यगणानाम् अर्हति । यः स्वरहंसा अस्खलता यस्मात् त्रिसाम्यसदनात् उरु कम्पयानम् त्रिपृष्टठम् चस्कम्भ ।।४०।।

अनुवाद अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के सारे धूलिकणों को भी गिन सकने में समर्थ कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण लीलाओं को गिन सके ? त्रिविक्रमावतार में त्रैलोक्य को नापते समय उनके अदम्य वेग के कारण जब ब्रह्माण्ड अत्यधिक काँपने लगा उस समय भगवान् ने अपनी शक्ति से उसको स्थिर किया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

इदं मया संक्षेपेणोक्तं विस्तरेण वक्तुं न कोऽपि समर्थ इत्याह । पृथिव्याः परमाणूनपि यो विममे गणितवांस्तादृशोऽपि को नु विश्णोवीर्यगणनां कर्तुमहीत । कथंभूतस्य । यो विष्णुस्त्रिपृष्ठं सत्यलोकं चस्कम्भ धृतवान् । किमिति चस्कम्भ । यस्मात्त्रैविक्रमेऽस्खलता प्रतिषातशून्येन स्वरंहसा स्वपादवेगेन त्रिसाम्यरूपं सदनमिष्ठष्ठानं प्रधानं तस्मादारभ्योरु अधिकं कम्पयानं कम्पमानम्, कम्पेन यानं यस्येति वा । अतः कारणाच्चस्कम्भ । आ त्रिपृष्ठमिति वा च्छेदः, सत्यलोकमिष्ठ्याप्य यः सर्वं धृतवानित्यर्थः । तथाच मन्त्रः विणोर्नुकम् इति । अस्यार्थ-विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचम्, कः प्रावोचदित्यर्थः । यः पार्थिवानि रजांस्यिप विममे सोऽपि । यो विष्णुस्रेधा विचक्रमाणित्रविक्रमं कुर्वन्नुत्तरं लोकमस्कभायदवष्टव्धावान् । कथंभूतम् । सधस्थम्। सहस्य सधादेशाः । तिष्ठन्तीति स्थाः, तत्रस्थैदेवैः सह वर्तमानमित्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यह तो मैंने संक्षेप में वर्णन किया है कोई भी परमात्मा की विभूतियों का विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता है। ऐसा पुरुष जो अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के परमाणुओं को भी गिन सकता हैं, इस तरह का भी कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान विष्णु की शक्तियों की गणना कर सके ? यदि कोई कहे कि वे विष्णु कैसे हैं तो इस पर कहते हैं जो भगवान विष्णु सत्यलोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किए। प्रश्न है कि उन्होंने क्यों धारण किया ? तो इसका उत्तर है कि चूकि त्रिविक्रमावतार में प्रतिघात रहित अपने पैरों के वेग से त्रिगुण साम्य रूपी अधिष्ठान भूत प्रकृति से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जब अत्यधिक काँपने लगा था, उस सत्य लोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किया। उरुकम्पयानम् पद का अर्थ है अत्यधिक काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अथवा काँपने के कारण जो ब्रह्माण्ड डगमगाने लगा था ऐसे ब्रह्माण्ड को भगवान ने अपनी शक्ति से स्थिर किया।

इस अर्थ का प्रतिपादन विष्णोर्नुकम् इत्यादि मन्त्र करता है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— भगवान् विष्णु की शक्तियों का वर्णन कौन कर सकता है? यदि वह पृथिवी की सम्पूर्ण धूलिकण को गिनने में समर्थ है तो भी, जो भगवान् विष्णु अपनी शक्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वासियों के साथ काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति से स्थिर किए।

सबस्थम् पद का विग्रह है, सह तिष्ठति यत् । यहाँ पर सह शब्द का सध आदेश होकर सधस्थम् पद व्युत्पन्न हुआ है । अर्थात् ब्रह्माण्ड में रहने वाले देवताओं के साथ काँपते हुए ब्रह्माण्ड को भगवान् ने स्थिर किया ॥४०॥

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽप्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये । गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥४१॥

अन्वयः— मायाबलस्य पुरुषस्य अन्तं अहम् निवदामि, अमी ते अग्रजाः मुनयोऽपि न, ये अपरे ते कुतः? दशशतानन आदिदेवः शेषःगायन् अपि अस्य गुणान् अधुनापि पारं न समवस्यति ।।४१।।

अनुवाद — माया रूपी शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् के सम्पूर्ण गुणों का अन्त हम नहीं जानते हैं, ये तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षि गण भी नहीं जानते हैं, तो फिर दूसरों की क्या बात है ? आदिदेव शेष भी उनके गुणों का गायन करते हुए श्रीभगवान् के गुणों का आज तक भी अन्त नहीं जान सके ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-नान्तमिति । पुरुषस्य यन्मायाबलं तस्यान्तं न विदामि न वेद्मि । दशशतान्याननानि यस्य स शेषोऽप्यस्य गुणान्गायन्पारं न समवस्यति न प्राप्नोति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों के अन्त्य का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं माया नामक शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् की सारी शक्तियों को मैं नहीं जानता हूँ। तुम्हारे बड़े भाई जो सनकादि महर्षि हैं वे भी नहीं जानते हैं। एक हजार मुखों वाले आदिदेव शेष जी भी भगवान् के गुणों का गायन करते हुए उन सबों के अन्त का पता आज तक भी नहीं लगा सके हैं।।४१।।

येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनारितपदो यदि निर्व्यलीकम् । ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥४२॥

अन्वयः— येषां यदिं स एव भगवान् अनन्तः दययेत् त एव निर्व्यलीकम् सर्वात्मनाश्रितपदः ते दुस्तराम् देवमायाम् अतितरन्ति एषां श्वशृगालभक्ष्ये मम अहम् इति धीः न ॥४२॥

अनुवाद जिन जीवों पर भगवान् दया करते हैं, वे ही जीव निष्कपट भाव से अपने को श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित बना देते हैं। वे ही महापुरुष भगवान् की माया के पार जाते हैं, उन महापुरुषों को अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहंन्त्व और ममत्व की भावना नहीं होती है। यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य हैं।।४२।।

भावार्थ दीपिका

यदि न केऽपि विदन्ति तर्हि कथं मुच्येरन् तत्कृपयैवेत्याह-येषामिति । दययेद्दयां कुर्यात् । ते च यदि निष्कपटमाश्रितचरणाः भवन्ति । ते दुस्तरां देवमायामिततरन्ति । चकारान्मायावैभवं विदन्ति च । अथेति वा पाठः प्रत्यक्षमेव तेषां मायातरणमित्याह-नैषामिति ।श्वशृगालानां भक्ष्ये देहे ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि कोई भी भगवान् की माया के बल को नहीं जानता है तो फिर जीवों की मुक्ति कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर येषां स० इत्यादि श्लोक से दिया गया है। जिन जीवों पर अनन्तभगवान् कृपा करते हैं, वे जीव निष्कपट भाव से श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित हो जाते हैं, वे ही श्रीभगवान् की माया का अन्त पा सकते हैं। उनकी अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहन्त्व एवं ममत्त्व की भावना नहीं होती है, क्योंकि यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य है।।४२।।

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः । पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिऋभुरङ्ग उत्रघ्नुवश्च ॥४३॥

अन्वयः— अस्य परमस्य मायाम् अहम् वेद, यूयम्, भगवान् भवश्च, दैत्यवर्यः मनोः पत्नी स मनुश्च तदात्मजाः च प्राचीन बर्हिः ऋभुः उत ध्रुवश्च ।।४३।।

अनुवाद हे वत्स उस परम पुरुष की माया को मैं जानता हूँ, तुमलोग, भगवान् शिव, दैत्य शिरोमणि प्रह्लाद, मनु की पत्नी शतरूपा, मनु, मनु के पुत्र प्रियव्रत आदि प्राचीन बर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्ज्ञानाभावेऽपि मायेयमिति ज्ञानं तत्कृपया बहूनामस्तीत्याह-वेदाहमित त्रिभिः । यूयमिति सनकादीनन्तर्भाव्य बहुत्वम्। दैत्यवर्यः प्रह्लादः । मनुः स्वायम्भुवस्तस्य पत्नी शतरूपा च । तदात्मजाः प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ कन्याश्च । प्राचीनवर्हिषो विसर्गलोपश्छान्दसः । अङ्गो वेनपिता ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि मुझको आत्मज्ञान नहीं है फिर भी श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् की यह माया है, इस तरह से मैं इसको जानता हूँ। तुमलोग भी जानते हो, यूयम् में बहुवचन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि सनकादि महर्षि गण भी माया को जानते हैं। दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद, स्वायम्भुव मनु, तथा उनकी पत्नी शतरूपा भी माया को जानती हैं। मनु के पुत्र प्रियव्रत, उत्तानपाद और उनकी कन्यायें भी जानती हैं। प्राचीनबर्हि ऋभु, वेन के पिता राजा अङ्ग तथा ध्रुव भी जानते हैं प्राचीन वर्हि में विसर्ग का लोप आर्ष है।।४३।।

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरध्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः । मान्यात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥४४॥ सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्लादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः । येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥४५॥

अन्वयः— इक्ष्वाकुः ऐलमुचकुन्दिवदेहगाधिः रधु-अम्बरीष-सगराः गयनाहुषाद्याः मन्धात्रलर्कशतधन्वन रन्तिदेवाः देवव्रतः बलिः, अमूर्तरयः, दिलीपः, सौभार्युतिशिविदेवल पिप्पलाद सारस्व-तोद्धवपराशरभूरिषेणाः । अन्ये ये विभीषण हनुमदुपेन्द्र दत्तपार्थाष्टिषेण विदुर श्रुतदेववर्याः ।।४४-४५।।

अनुवाद इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रिन्तदेव, भीष्म, बिल, अमूर्तरय, दिलीप, सौभिर, उतङ्क, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर और भूरिषेण। तथा दूसरे जो विभीषण हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, अर्ष्टिषेण, विदुर तथा श्रुतदेव इत्यादि भी जानते हैं।।४४-४५।।

भावार्थ दीपिका

शतधनुः अनुश्च । सन्धिरार्षः । रन्तिदेवा इति पाठः सुगमः । ऐकपद्ये एतैः सहितो देवव्रत इत्यर्थः । उपेन्द्रदत्तः शुकः। विभीषणादयो वर्या मुख्या येषां ते ।।४४-४५।।

भाव प्रकाशिका

शतधनु और अनु में आर्ष सन्धि । **रन्ति देवा:** यह पाठ सुगम है । यहाँ पर एक पद मानने पर **रन्तिदेवदेव व्रता:** यह पाठ होगा । उपेन्द्रदत्त शब्द से शुकदेवजी को कहा गया है । विभीषण हनुमान आदि जिन में श्रेष्ठ है ऐसे लोग भी माया को जानते हैं ।

इन दोनों श्लोको में ब्रह्माजी ने भगवान् की माया को जानने वाले भगवद् भक्तों के नाम को बतलाया है ॥४४-४५॥

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः । यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥

अन्वयः— अद्भुतक्रमपरायणशीलदीक्षाः स्रीशूद्रहूणशबराः पापजीवाः अपि तिर्यग्जना अपि यदि देवमायां विदन्ति अतितरन्ति च तदा ये श्रुतधारणाः किमु ।।४६।।

अनुवाद— यदि अद्भुत पद विन्यास करने वाले श्रीभगवान् के भक्तों के समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त, स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के जीव यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी श्रीभगवान् की माया को जानकर उसको पार कर जाते हैं तो फिर जो वेदज्ञ ब्राह्मण हैं उनके विषय में क्या कहना हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

किं बहुना सत्सङ्गेन सर्वेऽपि विदन्तीत्याह-ते वा इति । अद्भुताः क्रमाः पादन्यासा यस्य हरेस्तत्परायणास्तद्भक्तास्तेषां शीले शिक्षा येषां ते तथा यदि भवन्ति तर्हि तेऽपि विदन्तीत्यर्थः । श्रुतधारणा ब्राह्मणास्ते देवमायां विदन्तीति किमु वक्तव्यम्। शुभेति पाठे शुभे भगवतो रूपे धारणा मनोनियमनं येषां ते विदन्तीति किमु वक्तव्यम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहना है ? सत्सङ्ग को प्राप्त करके सभी जीव श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं

इस बात को ब्रह्माजी ने ते वै इत्यादि श्लोक से कहा है। अद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षाः पद का विग्रहार्थ है कि अद्भूत पादिवन्यास करने वाले श्रीहरि के जो भक्त हैं अथवा उनके समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त जो स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के पापी जीव हैं, यहाँ तक कि तिर्यक् जाति के जो पशु-पक्षी हैं, वे भी श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं, और उस माया को पार कर जाते हैं, तो जो वेदाध्ययन करने वाले जीव हैं, वे तो माया के स्वरूप को जानकर उसको पार कर ही जा सकते है। उनको केवल सत्सङ्ग प्राप्त करने मात्र की ही आवश्यकता है।।४६।।

शश्चत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् । शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलञ्जमाना ॥४७॥

अन्वयः — आत्मतत्त्वं, शश्वत् प्रशान्तम्, अभयम् शुद्धं, समं, सदसतः परम्, यत्र पुरुकारकवान् कियार्थः शब्दः न, अभिमुखे च विल्ञुमाना, माया परैति ॥४७॥

अनुवाद परमात्मा का स्वरूप एक समान, शान्त एवं केवल ज्ञान स्वरूप है। वे माया के मल से रहित है, सम (माया कृत विषमताओं से रहित) हैं। वे सत् एवं असत् दोनों से रहित हैं। वे किसी भी शब्द का विषय नहीं बनते हैं अनेक प्रकार के साधनों से सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का फल भी वहाँ नहीं होता है। उस परमात्मतत्व के सम्मुख जाने पर लज्जित होकर माया उस परमात्मा से दूर चली जाती है। १४७।।

भावार्थ दीपिका

किं तद्भगवतः स्वरूपं यस्मिन्मनोधारणां विधाय मायां तरन्तीत्यपेक्षायामाह - शश्चिदिति द्वाध्याम् । यद्ब्रह्मेति विदुर्मुनयस्तद्वै धगवतः पदं स्वरूपम् । किं तद्ब्रह्म तदाह अजस्रं नित्यं च तत्सुखं च विशोकं चेति । अजस्रसुखत्वे हेतुः -शश्चत्सदा प्रशान्तम्। अतो नित्यसुखरूपम् । विशोकत्वे हेतुः -अभयम् । तत्कुतः । यतः समं भेदशून्यम् । अतोऽभयम् 'द्वितीयाद्वै भयं भविते 'हित श्रुतेः । तत्कुतः। यतः प्रतिबोधमात्रं ज्ञानैकरसम् । ननु ज्ञानस्यापि नीलपीताद्याकारेण चक्षुरादिकरणभेदेन च भेदो दृश्यते, न। शुद्धं निर्मलम् । ननु दर्शितो विषयकरणोपरागरूपो मल इत्यत आह् । सदसतः परं विषयकरणसङ्गशून्यम् । वृत्तेरेवतदुपरागो न ज्ञानस्येति भावः । ननु तथापि ज्ञात्रा सह भेदः स्यात् । न, आत्मतत्त्वमात्मनो ज्ञातुः स्वरूपमेव, तत्र, ततो भित्रम् । ननु 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति शब्दबोध्यत्वप्रतीतेः कुतो बोधरूपत्वं तत्राह-शब्दो न यत्रेति । आरोपितिनवृत्तावेव शब्दस्य व्यापारो न तद्वोध इत्यर्थः । ननु च भवतु नाम निरस्तभेदज्ञानरूपत्वाद्विशोकत्वं, सुखस्य तु नानाकारकसाध्यक्रिया-फलत्वात्कथमजस्रसुखत्वं तस्येत्यत आह । यत्र बहुकारकसाध्यः क्रियार्थः उत्पाद्याप्यविकार्यसंस्कार्यरूपं चतुर्विधं क्रियाफलं च नास्ति । इन्द्रियौर्ज्ञानांशाभिव्यक्तिरिव क्रियाभिरानन्दांशाभिव्यक्तिमात्रं क्रियते नोत्पत्त्यादिकमिति भावः। ननु उत्पत्याद्यभावेऽपि माया मलापाकरणेन विकार्यत्वमेव स्याद्ब्रीहीणामिव तुषापाकरणेनेत्याशङ्कत्वाह । मायाऽभिमुखे स्थातुं विलज्जमानेव यस्मात्परैति दूरतोऽपसरिति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भगवान् का स्वरूप क्या है ? जिसमें मन की धारणा करके मनुष्य माया को पार करते हैं? तो इसका उत्तर शाश्वत इत्यादि दो श्लोकों से देते हैं। मुनिगण जिसको ब्रह्मरूप से जानते हैं, वही भगवान् का रूप है। अब प्रश्न होता है कि वे ब्रह्म कौन हैं ? तो उसको बतलाते हैं कि वह सदैव सुख स्वरूप और शोक रहित है। उसके सदैव सुख रूप बने रहने का कारण है कि वह सदा प्रशान्त बने रहता है अतएव नित्य ही सुख स्वरूप है। उसके विशोकत्व का कारण है ? वह अभय है, क्योंकि वह भेदरहित है। भेद रहित होने के कारण अभय है। श्रुति भी कहती है द्वितीयाद्वे भयं भवति। दूसरे के रहने पर ही भय होता है। वह भेद रहित इसलिए है कि ज्ञान स्वरूप ही है।

ननु ज्ञानस्यापि० इत्यादि यदि कहें कि ज्ञान के भी नील पीत इत्यादि आकार के द्वारा तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के भेद के कारण भेद देखे जाते हैं। तो ऐसा इसिलए नहीं कहा जा सकता है कि वे शुद्ध हैं, अर्थात् मायाकृत मल से रिहत हैं। यदि कहें कि विषयों के साथ होने वाले संबन्ध रूप भी मल देखे जाते हैं। इसीिलए कहा गया कि वह सदसतः परम्। अर्थात् वह विषयों तथा इन्द्रियों के संबन्ध से रिहत हैं। वह जो उपाधि होती है वह वृत्ति की ही हाती है ज्ञान की नहीं।

ननु तथा पि॰ इत्यादि यदि कहें कि वैसा होने पर उस का ज्ञाता से तो भेद होगा ही तो ऐसा इसिलए नहीं कहा जा सकता है कि आत्मा ज्ञाता आत्मा का स्वरूप ही है। अतएव वह उससे (ज्ञाता से) भिन्न नहीं है।

ननु तं त्वौप ॰ इत्यादि अब प्रश्न होता है कि मैं उस उपनिषदों के प्रतिपाद्य पुरुष के विषय में पूछ रहा हूँ । इस श्रुति से ज्ञात होता है कि आत्मतत्त्व शब्द बोध्य है । अतएव उसे ज्ञान स्वरूप कैसे कहा जा सकता है ? तो उसके उत्तर में कहा गया है कि शब्दो न यत्र इत्यादि अर्थात् आरोपित की निवृत्ति होने पर ही शब्द का व्यापार होता है उसका बोध नहीं होता है ।

ननु भवतु नाम० इत्यादि यदि कहें कि ठीक है भेदों से रहित और ज्ञान स्वरूप होने के कारण आत्म तत्त्व विशोक हो सकता है, किन्तु सुख तो अनेक कारकों के द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के फलस्वरूप होता है आत्मा की सर्वदा सुख रूपता कैसे हो सकती है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि वह आत्मा अनेक कारकों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के जो, उत्पाद्य, आप्य, विकार्य तथा संस्कार्य रूप चार प्रकार के विषय होते हैं उन क्रियाओं का फल होता ही नहीं है । जिस तरह से इन्द्रियों के द्वारा ज्ञानांश की अभिव्यक्ति मात्र होती है, उसी तरह क्रियाओं के द्वारा आनंदांश की केवल अभिव्यक्ति होती है । उसके द्वारा उत्पत्ति इत्यादि नहीं होते हैं ।

ननु उत्पत्त्याद्यभावे० इत्यादि प्रश्न होता है कि उत्पत्ति इत्यादि के नहीं हाने पर भी माया के मल को अपाकृत करने के कारण उसमें विकार्यत्व तो है ही। यह उसी तरह से होता हैं जिस तरह ब्रीहि की भूसी को उससे दूर करने पर उसमें विकार्यत्व है तो इस शङ्का को दूर करते हुए कहते हैं माया तो उस आत्मतत्त्व के सामने स्थित रहने में लिज्जित सी होकर दूर से ही भाग जाती हैं ॥४७॥

तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्त्रसुखं विशोकम् । सध्यङ् नियम्य यतयो यमकतहेतिं जह्यः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥४८॥

अन्वयः— अस्य पुंसः तद्वै परमं पदम् यत् मुनयः अजस्रसुखं, विशोकम् ब्रह्मेति विदुः । यस्मिन् यतय सध्यङ् नियम्य यम अकर्तहेतिं निपान खनित्रम् स्वराड् इन्द्र इव जह्युः ॥४८॥

अनुवाद इस परम पुरुष का वहीं परम पद है जिसे मुनिजन अजस्त्र सुख, विशोक तथा ब्रह्मरूप से जानते हैं। जिसमें यतिजन अपने सहचारी मन को नियन्त्रित करके भेद रहित होने के कारण ज्ञान के साधनों का उसी तरह परित्याग कर देते हैं जिस तरह से स्वयं मेघ रूप होने के कारण इन्द्र कूप खोदेने के लिए अपने साथ कुदाल नहीं रखते हैं।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवं भूतं भगवित नियमितमनसां कृतार्थानां न किमिप कृत्यमस्तीत्याह । सहाञ्चतीति सध्यङ् सहचरं मनो यं प्रति नियम्य यस्मिन् स्थिरीकृत्य यतयो यत्नशीलाः कर्तो भेदस्तित्ररासोऽकर्तस्तत्र हेतिं साधनं जह्युस्त्यजेयुः । अनुपयोगात्तन्नाद्रियन्त इत्यर्थः । उपयोगाभावेन साधनानादरे दृष्टान्तः-निपीयतेऽस्मित्रिति निपानं कूपस्तस्य खनित्रं खननसाधनं यथा स्वराट् स्वयमेव पर्जन्यरूपेण विराजमान इन्द्रो नादत्ते तद्वदिति । यद्वा स्वेनैव राजत इति स्वराट् दिरद्रः स यथा इन्द्रः समृद्धः सन् कर्मकारदशायां गृहीतं निपानखनित्रं जहाति तद्वदित्यर्थः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के परमात्मा में जिन लोगों ने अपने मन को लगा दिया है और कृतार्थ हो गये हैं ऐसे लोगों के लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं रह जाता हैं इसी बात को तद्दे० इत्यादि श्लोक से कहा गया है जो मुनिगण आत्मा के सहचारी मन को परमात्मा में नियन्त्रित करके, भेद को मिटाने के साधनों का परित्याग कर देते हैं।

उपयोगाभावेन इत्यादि उपयोग न होने के कारण साधनों के परित्याग करने का उदाहरण देते हुए कहा गया है। जिस तरह स्वयम् मेघस्वरूप इन्द्र कूप खोदने के लिए अपने पास कुल्हाड़ी नहीं रखते हैं। उसी तरह स्वराट् शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं- स्वेनैवराजते इति स्वराट् दरिद्रः जैसे इन्द्र कार्य करने की स्थिति में लिए हुए कुल्हाड़ी को त्याग देते हैं उसी तरह ॥४८॥

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धः । देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥४९॥

अन्वयः— यतः सः भगवान् अस्य भावस्वभाव विहितस्य सतः श्रेयसाम् अपि विभुः । इति प्रसिद्धिः स्वधातु विगमे अनु विशीर्यमाणे देहे तत्र व्योम इव अजः पुरुषः यथा न विशीर्यते तथा ।।४९।।

अनुवाद — अपने स्वभाव के अनुसार मनुष्यों द्वारा किए गये शुभ कर्मों का फल भी वे ही परमात्मा देते हैं यह प्रसिद्धि है। यह उसी तरह से होता है जैसे जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता है उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है। किन्तु उस शरीर में विद्यमान आकाश नष्ट नहीं होता है। उसी तरह उस शरीर के भीतर विद्यमान अजन्मा आत्मा भी विनष्ट नहीं होती है। ।४९।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावदजस्रसुखं विशोकं ब्रह्मैव भगवतः स्वरूपं तत्प्राप्तानां च न प्राप्यं कृत्यं वा किंचिदस्तीत्युक्तम् । इदानीं तत् प्राक् स एव सर्वफलदाता सर्वकर्मप्रवर्तकश्चेत्याह । स एव श्रेयसां फलानां विभुर्दातापि । तत्र हेतुः-भावानां ब्राह्मणादीनां स्वभावैः शमदमादिभिर्विशेषणैर्विहितस्यास्य सतः शुभस्य कर्मणो यतः प्रवर्तकात्प्रसिद्धिः । यद्वा भावानां महदादीनां स्वभावेन परिणामेन विहितस्य सतः कार्यस्य प्रसिद्धिः । सा स्वर्गादीनां दातेत्यर्थः । ननु कर्मकर्तुर्मृतस्य कथं स्वर्गादिफलं स्यात्तत्राह। स्वारम्भकधातूनां भूतानां विगमे वियोगे सति अन्वनु विशीर्यमाणेऽपि देहे तत्रस्थं व्योमेव यस्तेन सह न विशीर्यते । यतोऽजस्तेन सह न जातः तस्य पुरुषस्य श्रेयसां प्रभुरित्यर्थः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

एवं तावदस्नसुखम् इत्यादि इस तरह यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि आत्मा सदा सुख स्वरूप है तथा विशोक ब्रह्म ही भगवान् का स्वरूप है। उस ब्रह्म को जिन साधकों ने प्राप्त कर लिया है उनको कुछ भी प्राप्त करने के लिए अथवा करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है।

इदानीम् इत्यादि अब यह बतलाया जा रहा है कि प्राप्ति से पहले परमात्मा ही सभी कमों के फल को प्रदान करते हैं। वे ही सभी कमों के प्रवर्तक हैं। वे ही शुभ कमों का फल भी प्रदान करते हैं। उसका कारण है कि ब्राह्मण आदि जो अपने स्वभाव के अनुसार शम दम आदि शुभ कमों के भी प्रवर्तक हैं। यह प्रसिद्धि है। अथवा महदादि जो पदार्थ हैं उनके स्वभाव के अनुसार होने वाले परिणाम से कार्य होते हैं, यह प्रसिद्धि है। वे परमात्मा ही स्वर्गीदि लोकों को प्रदान करते हैं।

ननु कर्मकतुर्मृतस्य • प्रश्न होता है कि जब कर्मों को करने वाला मनुष्य मर जाता है तब उसको स्वर्ग आदि की प्राप्ति कैसे हो सकती है तो इसके उत्तर में कहा गया है कि जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता है, उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर जैसे उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है लेकिन उस शरीर में रहने वाला आकाश और उसके साथ नहीं विनष्ट होने वाला आत्मा तो बना ही रहता है उसी को मृत्यु को पश्चात् भी स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है ॥४९॥

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः । समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥५०॥

अन्वयः हे तात ! सः अयम्, विश्वभावन भगवान् ते समासेन अभिहितः । सत् असच्च हरेः अन्यत न अन्यस्मात्।।५०।। अनुवाद हे नारद इस सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा भगवान् का वर्णन मैंने आपके समक्ष संक्षेप में किया है। यह कार्य कारण रूप जगत् श्रीहरि से भिन्न नहीं है । किन्तु इस जगत् का कारण होने के कारण श्रीहरि उससे भिन्न हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

अध्यायत्रयस्यार्थमुपसंहरति । सोऽयं ते समासेन संक्षेपेणाभिहितः । तमेवाह । सदसत्कार्यं कारणं च हरेरन्यन्न भवति। ननु हरेस्तदव्यतिरेके तद्गतविकारप्रसङ्गः स्यात्, न । अन्यस्मात्कारणभूतो हरिः कार्याद्यतिरिक्त इत्यर्थः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

सोऽयं त इत्यादि श्लोक के द्वारा तीन अध्याय के अर्थ का उपसंहार किया गया है। ब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने तुम्हें संक्षेप में बतलाया है सदसत् जितने भी कारण-कार्य हैं वे श्रीहरि से भिन्न नहीं हैं। ननु० इत्यादि यदि कहें कि जगत् को श्रीहरि से अभिन्न मानने पर तो, जगत् के सारे विकार कारणभूत श्रीहरि में आ जायेंगे। तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि श्रीहरि कार्यभूत जगत् से भिन्न हैं क्योंकि वे कारण है। कार्य ही कारणत्मक होता है कारण कार्यात्मक नहीं होता है।।५०।।

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् । संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥५१॥

अन्वयः— भगवता यन्मे उदितं तदिदं भागवतं नाम । अयं विभूतीनां संग्रह, एतत् त्वं विपुली कुरु ।।५१।। अनुवाद— श्रीभगवान् ने मुझको जिसका उपदेश दिया वही भागवत है । यह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है । तुम इसका प्रचार करो ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

अयं च विभूतीनां संग्रह उदित: ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि विगत तीन अध्यायों में मैंने जो कहा है, वह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है, इसके प्रचार-प्रसार का काम तुम करो ॥५१॥

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति । सर्वात्मन्यखिलाघारे इति संकल्प्य वर्णय ।।५२॥

अन्वयः यथा सर्वात्मिन अखिलाधारे हरौ नृणां भक्ति भविष्यति इति संकल्प्य वर्णय ।।५२।।

अनुवाद जिस तरह से श्रीहरि में लोगों की भक्ति हो इस तरह से मन में विचार करके तुम इसका वर्णन करो ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

यथा वर्णितेन नृणां भक्तिर्भविष्यतीत्येवं संकल्प्य संचिन्त्य तथा हरिलीलाप्राधान्येन श्रीमद्भागवतं वर्णय । नतु भक्तिरसविघातेन केवलं तत्त्वमित्यर्थः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

तुम इस भागवत को श्रीहरि की लीलाओं का प्रधान रूप से ऐसा वर्णन करो कि लोगों की श्रीभगवान् में भक्ति हो । भक्ति रस को छोड़कर केवल तत्त्व का वर्णन न करो ॥५२॥

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः । शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुहाति ॥५३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अन्वयः अमुष्य मायां वर्णयतः, ईश्वरस्य अनुमोदयतः नित्यं श्रद्धया शृण्वतः आत्मा मायया न मुह्यति ।।५३।। अनुवाद श्रीभगवान् की अचिन्त्य भिक्त माया का वर्णन करने वाले, उसका अनुमोदन करने वाले तथा दूसरे के द्वारा कहे जाने पर उसको नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनने वाले का मन कभी भी माया से मोहित नहीं होता है ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्य के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु लीला मायाश्रया किं तद्वर्णनेनेत्यत आह-मायामिति ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्याय: ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता। है कि श्रीभगवान् की लीला तो मायाश्रित है। उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में मायाम् इत्यादि श्लोक कहा गया है अर्थात् श्रीभगवान् की माया शक्ति अचिन्त्य है उसका वर्णन करने तथा ईश्वर का अनुमोदन करने वाले तथा दूसरों के द्वारा वर्णन किए जाने पर उसका सदा श्रद्धा पूर्वक श्रवण किए जाने वाले का चित्त कभी भी माया से मोहित नहीं होता है।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्य की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।७।।



आठवाँ अध्याय

राजा परीक्षित के अनेक प्रश्न

राजोवाच

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च । यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर । हरेरद्धुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥२॥

अन्वयः— वेदविदांवर ब्रह्मन् ब्रह्मणा अगुणस्य गुणाख्याने चोदितः देवदर्शनः यस्मै यस्मै यथा प्राह, अद्भुत वीर्यस्य हरेः लोकसुमङ्गलाः कथाः वेदितुम् इच्छामि ।।१-२।।

अनुवाद हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ शुकदेवजी ! ब्रह्माजी के द्वारा निर्गुण परंब्रह्म के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रेरित, देखने में देवता के समान लगने वाले नारदजी जिस-जिस को अब्दुत पराक्रम सम्पन्न श्रीहरि की मङ्गलमयी कथाओं को जैसे-जैसे बतलाये उसको मैं तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥

अष्टमे देहसंबन्धमाक्षिपत्रीशजीवयो: । बहून्परिक्षिदापृच्छत्पुराणार्थान्बुभृत्सितान् । त्वमेतद्विपुलीकुर्वित्युक्तं तदेव विपुलीकरणं पृच्छति-ब्रह्मणेति त्रिभि: । अगुणस्य गुणातीतस्यापि । देववद्दर्शनं यस्य स: ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में जीव और ईश्वर के शरीर संबन्ध को लेकर राजा परीक्षित् ने जानने के लिए अभिप्रेत पौराणिक विषयों को पूछा ॥१॥

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा तुम इसका प्रचुर प्रचार करो । नारदजी द्वारा किए गये उस विपुली करण के विषय में राजा ने अनेक प्रश्नों को ब्रह्मणा॰ इत्यादि तीन श्लोकों में पूछा— अगुण कहकर परमात्मा को गुणातीत बतलाया गया है । देवदर्शन शब्द का अर्थ है जिनका दर्शन देवता के समान है ॥१-२॥

कथयस्य महाभाग यथाहमखिलात्मिन । कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः हे महाभाग ! कथयस्व यथा अहम् अखिलात्मिन कृष्णे निःसङ्गं मनः निवेश्य कलेवरम् त्यक्ष्ये ॥३॥ अनुवाद हे महाभाग ! आप उसका वर्णन करें जिससे कि मैं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण में अपने अनासक्त मन को लगाकर अपने शरीर का त्याग कर सकूं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

नि:सङ्गं मनः श्रीकृष्णे निवेश्येति स्वप्रयत्नो दर्शितः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अनासक्त मन को भगवान् श्रीकृष्ण में लगाकर इस वाक्यांश के द्वारा राजा परीक्षित् ने अपने प्रयत्न को अभिव्यक्त किया है ॥३॥

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् । कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥४॥

अन्वयः स्वचेष्टितम् नित्यं श्रद्धया शृण्वतः गृणतश्च हृदि भगवान् नातिदीर्घेण कालेन विशते ।।४।।

अनुवाद— भगवान् की चेष्टाओं का नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने वाले और उसका वर्णन करने वाले के हृदय में श्रीभगवान् शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सोऽपि श्रद्धया शृण्वतो नावश्यक इत्याह-शृण्वत इति । स्वप्रयत्नं विनापि भगवान्स्वयमेव हृदि विशति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जो व्यक्ति नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करता है उसको प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अपने प्रयास के बिना भी श्रीहरि अपनी कथा का श्रवण करने वाले के हृदय में स्वयम् प्रवेश कर जाते हैं ॥४॥

प्रविष्टः कर्णरन्थ्रेण स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥५॥

अन्वयः कृष्णः स्वानां कर्णरन्थ्रेन भावसरोरुहम् प्रविष्टः तद्गतं शमलं सलिलस्य शरत् यथा धुनोति ।।५।।

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तों के कानों के छिद्र के माध्यम से हृदय कमल में प्रवेश करके उस हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह से विनष्ट कर देते हैं जिस तरह से शरद्ऋतु जल के गदलेपन को दूर कर देती है ॥५॥

भावसरोरुहं हृदयकमलं प्रविष्टश्च तद्गतं सर्व मलं धुनोति । सिललस्येति । द्रव्यान्तरिमश्रणादिना कुम्भस्थे जले शोधिते तदेव शुध्यति नतु नदीतडागादिगतम्, स च मलः कुम्भस्यान्तस्तिष्ठत्येव नतु सर्वाणि विलीयते । अतएव किंचिच्चलनेन पुनः क्षुभ्यति च । एवं तपोदानादि प्रायश्चित्तं च सर्वथा सर्वेषां सर्वं पापं धुनोति, किंतु सावशेषम्, तच्च कस्यचिदेव, किंचिदेव, हृदि प्रविष्टमात्रस्तु श्रीकृष्णः सर्वेषां सर्वं पापं निःशेषं हरतीत्यनेन दृष्टान्तेनोक्तं-सिललस्य मलं यथा शरदिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अपने भक्तों के हृदय कमल में प्रवेश करके उनके हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह दूर कर देते हैं जिस तरह सिललस्येति कि कतक (निर्मली) इत्यादि दूसरे द्रव्यों को घड़े के जल में मिलाने से केवल उसी घड़े का जल शुद्ध हो जाता है। उससे निदयों और सरोवरों का जल नहीं शुद्ध होता है। उस जल का दोष नीचे के भाग में बैठ जाता है, वह पूर्ण रूप से विनष्ट नहीं होता है। उस जल को थोड़ा सा भी हिलाने पर वह पुन: गंदला हो जाता है। एवं तपोदानादि कि इत्यादि इसी तरह से तपरूप और दान रूपी प्रायश्चित सबों के सम्पूर्ण पापों को नहीं विनष्ट करते हैं। अपितु कुछ पाप बचा ही रहता है। उन प्रायश्चितों के द्वारा किसी का भी थोड़ा सा ही पाप दूर होता है। भगवान् श्रीकृष्ण तो केवल हृदय में प्रवेश करके सबों के सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देते हैं। इसी बात को सिललस्य मलं यथा शरत् इस दृष्टान्त के द्वारा बतलाया गया है। शरद् ऋतु के आते ही निदयों तथा सरोवरों में रहने वाला सारा जल जैसे शुद्ध हो जाता है।।।।।

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति । मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥६॥

अन्वयः— धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादम् तथैव न मुञ्जति यथा मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः यथा स्वशरणम् ॥६॥

अनुवाद जिसका अन्त:करण शुद्ध हो गया है, वह पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का उसी तरह कभी भी परित्याग नहीं करना चाहता है जिस तरह मार्ग के समस्त क्लेशों से मुक्त होकर आया हुआ पुरुष अपने गृह का त्याग नहीं करना चाहता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च कृतार्थो भवतीत्याह । धौतात्मा निष्पापः । मुक्ताः सर्वे रागद्वेषादयः परिक्लेशा येन । पान्थः प्रवासादागतः स्वस्य गृहं यथा न मुञ्जति तद्वत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इसके पहले यह जो कहा गया है कि उसके पश्चात् वह कृतार्थ हो जाता है। उसी की धौतात्मा • इत्यादि श्लोक से कहा गया है। धौतात्मा पद का अर्थ है निष्पाप। जिसने रागद्वेष इत्यादि समस्त क्लेशों का परित्याग कर दिया है। प्रवास से आया हुआ पुरुष जिस तरह अपने गृह का परित्याग नहीं करना चाहता है, उसी तरह रागद्वेष आदि सभी क्लेशों से रहित निष्पाप पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का परित्याग नहीं करता है।।६।। यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः। यद्घ्या हेतुना वा भवन्तो जानते यथा।।७।।

अन्वयः हे ब्रह्मन् अधातुमतः अस्य देहारम्भः धातुभिः यद्भवित यदृच्छया वा हेतुना वा यथा भवन्तः जानते ।।७।। अनुवाद हे भगवन् ! (शुकदेवजी) इस आत्मा का पञ्चभूतों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसके शरीर का निर्माण धातुओं से ही होता है । यह स्वभाव से ही होता है, अथवा किसी कारण से होता इस बात को आप मुझे अच्छी तरह से बतलाइये ।।७।।

तदेवं श्रवणौत्सुक्यमाविष्कृत्य संदिग्धानर्थान्यृच्छिति । अधातुमतः धातवो महाभूतानि तत्संबन्धशून्यस्यास्य लौकिकस्यात्मनो जीवस्य धातुभिर्देहारम्भ इति यत् । एतिकम् । यदृच्छया निर्निमित्तं हेतुना वा कर्मादिना भवन्तो यथावज्जानते । अतः कथयन्त्विति शेषः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए, जिन विषयों में सन्देह है, उन सबों के विषय में राजा पूछते हैं। जिस तरह संसारी जीव का महाभूतों से सम्बन्ध नहीं है, फिर भी उसके शरीर का निर्माण महाभूतों से ही होता है, ऐसा बिना किसी कारण के ही होता है या किसी कारणवशात् होता है। इस बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं। अतएव उसको आप मुझे बतलाइये।।७।।

आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम्। यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥८॥

अन्वयः— यदुदरात् लोकसंस्थान लक्षणं पद्मं आसीत् अयं पुरुषो वै यावान् इयतावयवैः पृथक् तावान् असौ, संस्थावयववानिव प्रोक्तः ॥८॥

अनुवाद — आपने यह कहा है कि जिससे लोकों का निर्माण हुआ है वह कमल भी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है। यह जीव जिस तरह अपने सीमित अवयवों से युक्त होता है उसी तरह से ईश्वर भी अपने सीमित अवयवों से युक्त हैं। ऐसी स्थिति में जीव और ईश्वर में कौन सा भेद हैं।।८।।

भावार्थ दीपिका

यश्चासाविश्वरः सोऽप्येतत्तुल्यदेहवान्त्रोक्तः, अतस्तस्य को विशेष ? इत्याशयेन पृच्छति-आसीदिति सार्धेन । लोकानां संस्थानं रचना तदेव लक्षणं स्वरूपं यस्य तत्त्रैलोक्यात्मकं पद्मं यस्योदरादासीत् । असाविश्वर इयत्तायुक्तैः स्वपरिमितैरवयवैरयं लौकिकः पुरुषो यावान् यत्संख्याकावयवयुक्तस्तावान् प्रोक्तः संस्थावानवयववानिव च प्रोक्तः । अतः को विशेषस्तस्येति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले शुकदेवजी कह चुके हैं कि जीव के ही समान ईश्वर भी अङ्गों से युक्त शरीर वाले हैं। अतएव जीव और ईश्वर में कौन सा भेद है? इसी अभिप्राय से राजा परीक्षित् आसीत् इत्यादि डेढ श्लोक से पूछते हैं कि जिससे लोकों की रचना हुयी है, वह त्रैलोक्यात्मक पद्म भगवान् के नाभि सरोवर से उत्पन्न हुआ है। जिस तरह यह संसारी जीव अपने सीमित अङ्गों से युक्त होता है, उसी तरह ईश्वर भी अपने सीमित अङ्गों से युक्त होते हैं। ईश्वर के अङ्ग भी मनुष्य के ही अङ्गों के समान हैं। अतएव ईश्वर की मनुष्यों से कौन सी भिन्नता है।।८।। अज: सृजित भूतानि भूतात्मा यदनुप्रहात्। दृदृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्धव: ।।९।।

अन्वयः -- यदनुग्रहात् नाभिपद्म समुद्भव भूतात्मा अजः भूतानि सृजति, येन तद्रूपं ददृशे ।।९।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न तथा व्यष्टि जीवों के नियन्ता ब्रह्मा भूतों की सृष्टि करते हैं तथा जिन श्रीभगवान् की कृपा के कारण परमात्मा के रूप का साक्षात्कार उन्होंने किया। उसे आप मुझे बतलायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अवश्यं च विशेषो वाच्य इत्याह । अजो ब्रह्मा भूतानां व्यष्ट्युपाधीनामात्मा नियन्ता, समष्ट्युपाधित्वात् । येन चानुगृह्वता तस्य रूपं दृदृशे दृष्टवान् । एतच्च तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः । सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः। इत्यादिनोक्तमनूद्यते । अग्रे तु स्पष्टं भविष्यति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जीव और ईश्वर में जो भेद है उसको आप अवश्य मुझे बतलाइये । ब्रह्माजी व्यष्टि उपाधि से युक्त जीवों के नियामक हैं, क्योंकि वे समष्टि उपाधि से युक्त हैं । जिस परमात्मा के द्वारा अनुगृहीत होकर उन्होंने परमात्मा के रूप का साक्षात्कार किया ।

एतच्च० इत्यादि यह शुकदेवजी ने ब्रह्माजी के इस कथन का अनुवाद किया है तस्यापि० इत्यादि अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा तथा जगत् नियामक, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा के सृज्य जगत् की सृष्टि उनके ही द्वारा प्रेरित होकर करने का मैं काम करता हूँ । यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायेगी ॥९॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्धवाप्ययः । मुक्त्वात्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥१०॥

अन्वयः - विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः सर्वगुहाशयः मायेशः पुरुषः आत्मा मायां मुक्त्वा यत्र शेते तदब्रूहि ॥१०॥

अनुवाद जिसमें सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय होता हैं सर्वान्तर्यामी माया के स्वामी परम पुरुष अपनी माया का त्याग करके जहाँ सोते हैं उसे आप बतलाइये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरमाह- स चापीति । यत्र शेते येन रूपेणावितष्ठत । विश्वस्य स्थित्यादयो यस्मात् । एवमादिप्रश्नानां 'तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुम्' इति सर्वान्ते क्रियया संबन्धः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् दूसरा प्रश्न पूछते हैं प्रलय काल में परमात्मा जहाँ सोते हैं, जिससे विश्व की सृष्टि इत्यादि होती है, इस तरह सभी प्रश्नों के अन्त में क्रिया पद को जोड़ना चाहिए ॥१०॥

पुरुषावयवैलोंकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः । लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥११॥

अन्वयः— पुरुषावयवैः सपालाः पूर्वकिल्पताः, इति शुश्रुम सपालैः लोकैः अमुष्याः अवयवाः किल्पताः इत्यपि शुश्रुम ।।११।।

अनुवाद आपने यह कहा है कि उस पुरुष के अवयवों से लोकों की कल्पना की गयी है और लोकपालों सिहत लोकों की उस विराट् पुरुष के अङ्गों से कल्पना की गयी है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरमाह । पुरुषस्यावयवैः पूर्वं किल्पताः यस्येहावयवैलीकान्कल्पयन्ति' इत्यादौ । 'लोकैश्चामुच्यावयवा' इति पातालमेतस्य हि पादमूलम्' इत्यादौ च त्वन्मुखाच्छुतवन्तो वयम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

राजा अगला यह प्रश्न पूछते हैं कि अपने यह कहा है कि जिस पुरुष के अवयवों से मुनिगण लोकों की कल्पना करते हैं। आपने यह भी कहा है कि इस पुरुष के पैर का तलवा ही पाताल है। यह कहने का अभिप्राय क्या हैं ?।।११।।

यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते । भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥१२॥

अन्वयः— यावान् कल्पः विकल्प वा तद्वद, यथा भूतभव्यभवत् शब्दः कालः अनुमीयते तद् वद । यत् सतः आयुर्मानं तद् वद ।।१२।।

अनुवाद - जितने भी कल्प अथवा उसके अवान्तर भेद होते हैं, उसे बतलायें । जैसे भूत भविष्यत् और

वर्तमान शब्द का काल विषय बनता है, उसे बतलायें, तथा स्थूल शरीर के अभिमानी जो देवता, मनुष्य तथा पितृगणों की आयु का जितना प्रमाण है उसे आप बतलायें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एवं संदेहिवपर्ययाभ्यां पृष्टम्, इदानीमज्ञातान्बहूनर्थान्पृच्छित । यावानित्यादिना । कल्पो महान् । विकल्पोऽवान्तरः । भूतादिः शब्दो यस्मात्, यस्य वाचक इति वा । सतः स्थूलदेहाभिमानिनो मनुष्यपितृदेवादेरायुषः प्रमाणम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने इस तरह संदेह तथा विपर्यय ज्ञान के द्वारा बहुत सी बातों को पूछा अब वे बहुत से अज्ञात विषयों को यावान् कल्पो॰ इत्यादि श्लोक से पूछते हैं। महान् कल्प और विकल्प अर्थात् उसके अवान्तर भेदों को आप बतलायें तथा जिस तरह से काल भूत भविष्यत् इत्यादि शब्दों का वाच्य होता है, उसे आप मुझे बतलायें। तथा स्थूल देह के अभिमानी, देवता पितृगण और मनुष्यों की आयु का प्रमाण मुझे आप बतलायें।।१२।।

कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यिप । यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥१३॥

अन्वयः— हे द्विजसत्तम ! कालस्य या अण्वी वृहती अपि गतिः लक्ष्यते तां वद, यावत्यः यादृशीः कर्मगतयः ताः वद ॥१३॥

अनुवाद हे द्विजश्रेष्ठ ! काल की जो सूक्ष्म आदि तथा स्थूल वर्ष आदि गति हैं, उसको आप मुझे बतलायें तथा कर्मों की जितनी तथा जिस प्रकार की गतियाँ होती हैं, उन सबों को आप मुझे बतलायें ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनुमानप्रकारः पृष्टो विशेषं पृच्छति-कालस्येति । अनुगतिः प्रवृत्तिः । कर्मगतयः कर्मप्राप्याणि स्थानानि । यादृशीः यादृश्यः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले काल के अनुमान के प्रकार के विषय में पूछा गया है, अब कालविशेष के विषय में राजा परीक्षित् प्रश्न करते हैं, काल की जो सूक्ष्म तथा स्थूल जो दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती है, उसे आप बतलायें तथा काल द्वारा प्राप्त किए जाने वाले स्थानों तथा कर्मों के प्रकार को आप मुझे बतलायें ।।१३।।

यस्मिन्कर्मसमवायो यथा येनोपगृह्यते । गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥

अन्वयः गुणानां परिणाम् अभीप्सतां गुणिनां, कर्मसमवायः यस्मिन् यथा येन उपगृह्यते तद् वद ।।१४।।

अनुवाद— सत्त्व आदि गुणों का जो देवादि शरीर की प्राप्ति रूपी परिणाम होता है, उसको प्राप्त करना चाहने वाले गुणिनां गुणी जीवों में पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह जिस गुण का परिणाम होने पर जिस प्रकार से तथा जिसको प्राप्त होता है, उसके आप मुझे बतलायें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

गुणानां सत्त्वादीनां परिणामं देवादिरूपिमच्छतां गुणिनां जीवानां मध्ये यस्मिन्परिणामे कर्मणां पुण्यपापानां समावायः समुदायः । केन कर्मसमुदायेन कथं कृतेन कोऽधिकारी देवादिभावं प्राप्नोतीत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

सत्त्वादि गुणों के परिणाम स्वरूप देवादि शरीर को प्राप्त करने के इच्छुक जीवों में जिस गुण का परिणाम होने पर पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह, किसी कर्म समुदाय को जिस प्रकार से करने पर जीव देवादि शरीरों को प्राप्त करता है, इसको आप मुझे बतलाइये ॥१४॥ भूपातालककुब्ब्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् । सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदौकसाम् ॥१५॥

अन्वयः भूपातालककुब् व्योम ग्रह नक्षत्र भूभृताम्, सरित् समुद्रद्वीपानां एतदौकसाम् संभवः कथं भवतीति शेषः ॥१५॥ अनुवाद पृथिवी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप की तथा उनमें रहने वाले जीवों की उत्पत्ति जैसे होती है, उसे आप मुझे बतलाइये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भूपातालादीनां संभवः । एतान्योकांसि येषां प्राणिनां तेषां च संभवः । यथेति सर्वत्रानुषङ्गः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी, पाताल आदि की तथा इन लोकों आदि में रहने वाले जीवों की उत्पत्ति को आप मुझे बतलायें ॥१५॥ प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः । महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥१६॥

अन्वयः वाह्यऽभ्यन्तरभेदतः अण्डकोशस्य प्रमाणम् महताम् अनुचिरतम् वर्णाश्रम विनिश्चयः च वद ।।१६।। अनुवाद भीतर और बाहर दोनों प्रकार के भेद पूर्वक, ब्रह्माण्ड के प्रमाण को, महापुरुषों के चिरित्र को तथा वर्णों एवं आश्रमों के भेदों तथा उनके धर्मों को आप मुझे बतलाएँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

वर्णानामाश्रमाणां च विनिश्चयस्तत्तत्स्वभावैर्निर्धारः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने तीन बातों को पूछा है। १. ब्रह्माण्डों का परिमाण, २. महापुरुषों का चरित्र और ३. वर्णों एवं आश्रमों का निर्धारण ॥१६॥

अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरे: । युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥१७॥

अन्वयः— युगानि, युगमानं च, युगे युगे यश्च धर्मः, हरेः यत्, आश्चर्यतमं अवतारानुचरितम् ॥१७॥

अनुवाद— युगों के भेद, उनके परिमाण, प्रत्येक युगों के अलग-अलग धर्म तथा श्रीहरि के जो अत्यन्त आश्चर्यमय अवतार हुए हैं, उन सबों के चरितों को आप बतलाएँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

युगे युगे प्रतियुगं यो धर्मो यच्च हरेरवतारानुचरितम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में युगों के भेद, उनके धर्म और श्रीहरि के अवतारों के आश्चर्यकारी चरित्रों को राजा परीक्षित् ने पूछा है ॥१७॥

नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः । श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥१८॥

अन्वयः — नृणाम्, साधारणः धर्मः, यादृशः सिवशेषश्च, श्रेणीनां धर्मः, राजर्षिणाम् कृच्छ्रेषु जीवताम् धर्मः कः ।।१८।। अनुवाद — मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार साधारण और विशेष धर्म कौन हैं ? व्यावसायिक लोगों के धर्म, राजर्षियों के धर्म, तथा विपत्ति ग्रस्त मनुष्यों के धर्म को आप मुझे बतलाइये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

सविशेषो वर्णाश्रमनिबन्धनः । श्रेणीनां तत्तद्यवसायोपजीविनां व्यवहारिनयमलक्षणो धर्मः । राजर्षीणां प्रजापालनाधिकारिणाम्। कृच्छ्रेष्वापत्सु जीवतां सर्वेषाम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने मनुष्यों के साधारण धर्म, वर्णी एवं आश्रमों के धर्म, व्यवसायियों के धर्म, राजर्षियों के धर्म और आपद् धर्म के विषय में प्रश्न किया है ॥१८॥

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् । पुरुषाराधनविधियोगस्याध्यात्मिकस्य च ॥१९॥

अन्वयः— तत्त्वानां परिसंख्यानं, लक्षणम्, हेतुलक्षणम्, पुरुषारानिविधः, आध्यात्मिकस्य योगस्य च विधिः कः ।।१९।। अनुवाद— तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण, परम पुरुष परमात्मा की आराधन विधि और अध्यात्म योग विधि को आप मुझे बतलायें ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां तत्त्वानां प्रकृत्यादीनां परिसंख्यानं संख्या । लक्षणं स्वरूपम् । हेतुतो लक्षणम् । तत्तत्कार्यहेतुत्वेन च लक्षणिमत्यर्थः। पुरुषाराधनस्य विधिर्देवपूजाप्रकारः । अष्टाङ्गयोगस्य च विधिः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति आदि तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण, परमात्माराधन के प्रकार तथा अष्टाङ्ग योग की विधि के विषय में राजा ने इस श्लोक में पूछा है ॥१९॥

योगेश्चरैश्चर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् । वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥

अन्वयः योगेश्वरैश्वर्यगतिः योगिनां लिङ्गभङ्गः वेदोपवेद धर्माणाम्, इतिहास पुराणयोः ।।२०।।

अनुवाद योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य, उन लोगों को प्राप्त होने वाली गति तथा योगियों के लिङ्ग शरीर के भङ्ग होने के प्रकार, वेदों, उपवेदों, धर्मशास्त्रों इतिहासों और पुराणों के स्वरूप को आप बतलायें ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

योगेश्वराणामैश्वर्येणाणिमादिनाऽर्चिरादिगतिः । लिङ्गशरीरस्य भङ्गः प्रलयः । वेदा ऋग्वेदादयः, उपवेदा आयुर्वेदादयः, धर्माः धर्मशास्त्राणि तेषाम्, इतिहासपुराणयोश्च गतिः स्वरूपम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले अणिमा आदि ऐश्वर्यों के स्वरूप क्या हैं ? उनसे प्राप्त होने वाली अर्चिरादि गितयों का स्वरूप क्या है ? योगियों के लिङ्ग शरीर के प्रलय का प्रकार क्या है ? ऋग्वेद इत्यादि वेदों, आयुर्वेद इत्यादि उपवेदों तथा धर्मशास्त्रों का स्वरूप तथा तात्पर्य क्या हैं ? इतिहासों और पुराणों के स्वरूप और तात्पर्य क्या हैं ? इसे आप मुझे बतलाइये ॥२०॥

संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः । इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥२१॥

अन्वयः सर्वभूतानां संप्लवः, विक्रमः प्रति संक्रमः इष्टापूर्तस्य, काम्यानां, त्रिवर्गस्य च यो विधिः तंब्रूहि ।।२१।। अनुवाद आप मुझे सभी प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, इष्टापूर्तकर्म, काम्यकर्म तथा धर्म अर्थ और काम इन सबों के साधनों की विधि मुझे बतलायें ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

संप्लवो।ऽवान्तरप्रलयः । यद्वा सम्यक् प्लवनमुद्भवः, विक्रमः स्थितिः, प्रतिसंक्रमो महाप्रलयः, इष्टं वैदिकं कर्म, पूर्तस्मार्त वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते इति तत्र च काम्यानामग्निहोत्रादीनां विधिः। त्रिवर्गस्य धर्मार्थ कामस्य विधिरविरोधप्रकारः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा ने पूछा कि आप मुझे सभी प्राणियों को अवान्तर प्रलय को बतलायें अथवा सम्लव अर्थात् उत्पत्ति विक्रम अर्थात् स्थिति तथा प्रतिसंक्रम अर्थात् महाप्रलय काल को बतलायें । ईष्ट अर्थात् वैदिक कर्म तथा पूर्त तालाब, बाबली आदि के निर्माण आदि स्मार्त कर्मों को बतलायें । कहा भी गया है वापीकूपतडागादि इत्यादि अर्थात् बावली, कूप, तलाब, देव मन्दिरों का निर्माण, अन्न दान कराना, बगीचा लगाना, इन सबों को पूर्त कर्म कहते हैं ।

काम्य अग्निहोत्र आदि की विधि, तथा त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन सबों का जिस प्रकार से विरोध न हो उस विधि को आप मुझे बतलायें ॥२१॥

यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः । आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥२२॥

अन्वयः— यः च अनुशायिनां सर्ग, पाखण्डस्य च यथा संभवः आत्मनः बन्धमोक्षौ स्वरूपतः व्यवस्थानं च ब्रूहि ।।२२।। अनुवाद— प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों की उत्पत्ति कैसे होती हैं ? पाखण्ड की उत्पत्ति कैसे होती है, आत्मा के बन्ध और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? तथा वह अपने स्वरूप में कैसे स्थित होता हैं ?।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अनुशायिनां लीनोपाधीनां जीवानाम् । आत्मनो जीवस्य । व्यवस्थानं बन्धमोक्षातिरिक्तस्वरूपेणावस्थानम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों को अनुशायी जीव कहते हैं, उन जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है ? पाखण्डों की उत्पत्ति कैसे होती है ? जीवात्मा का बन्ध और मोक्ष कैसे होता है ? और जीव अपने स्वरूप में कैसे स्थित हो जाता है ?॥२२॥

यथात्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया । विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥२३॥

अन्वयः — आत्मतन्त्रः भगवान् आत्ममायया यथा विक्रीडित, यथा वा मायाम् विसृज्य साक्षिवद् उदास्ते तद् ब्रूहि ॥२३॥ अनुवाद — श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं वे जिस तरह अपनी माया से क्रीडा करते हैं तथा माया को छोड़कर जिस तरह साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

उदास्ते प्रलये ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् शुकदेवजी से पूछते हैं कि श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं। वे सृष्टिकाल में अपनी ही माया के साथ क्रीडा करते हैं, और प्रलयकाल में उसका परित्याग करके साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, यह सब जिस प्रकार से होता है उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः । तत्त्वतोऽत्रर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥२४॥

अन्वयः हे महामुने भगवन् ! एतत् पृच्छते प्रपन्नाय मे सर्वं अनुपूर्वशः तत्त्वतः उदाहर्तुम् अर्हसि ।।२४।। अनुवाद हे महामुने भगवन् ! मैं आपका शरणागत हूँ, इन सारी बातों को पूछने वाले मुझको आप तात्त्विक

रूप से बतलायें ॥२४॥

च शब्दादपृष्टमपि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

एतत् च में जो चकार है उसका अभिप्राय है कि जिन बातों को मैं नहीं भी पूछ पाया हूँ उन सबों को भी आप मुझे तात्त्विक रूप से बतलाएँ ॥२४॥

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथात्मभूः । परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥२५॥

अन्वयः अत्र हि भवान् आत्मभू परमेष्ठी यथा प्रमाणम् परे च पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् अनुतिष्ठन्ति ।।२५।।

अनुवाद— इस विषय में आप तो स्वयं ब्रह्माजी के ही समान परम प्रमाण हैं, दूसरे लोग तो अपने पूर्व पुरुषों की परम्परा से कही गयी ही बातों का अनुष्ठान करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रमाणं सम्यक् ज्ञाता । यतस्तव ब्रह्मनारदव्यासक्रमेण संप्रदायोऽस्तीति सामान्यन्यायेनाह- परे चेति । यद्वा त्वदन्ये प्रायशो गतानुगतिका एव न तत्त्वविद इत्याह- परे चेति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् कहते हैं कि जिन बातों को मैंने पूछा है, उन बातों को आप अच्छी तरह से जानते हैं, क्योंकि आप का सम्प्रदाय तो ब्रह्मा, नारद और व्यासजी की परम्परा का है। सामान्यत: दूसरे जितने भी ज्ञाता हैं, वे गतानुगतिक ही हैं वे तात्विक रूप से उसे नहीं जानते हैं।।२५।।

न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी । पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ॥२६॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् अच्युतपीयूष पिबतः मे अमी असवः कुपितात् द्विजात् अन्यत्र अनशनाद न परायन्ति ।।२६।। अनुवाद हे ब्रह्मन्, ! भगवान् अच्युत के लीलामृत का पान करने वाले ये मेरे प्राण क्रुद्ध ब्राह्मण के शाप के अतिरिक्त अनशन (उपवास) के कारण नहीं निकल सकते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ननु तवानशनद्विजकोपाभ्यां व्याकुलस्य कुतः श्रवणं तत्राह-नेति । न परायन्ति नापगच्छन्ति । न व्याकुलीभवन्तीत्यर्थः। अच्युतकीर्तिपीयूषम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अनशन के कारण तथा ब्राह्मण के कोप के कारण तुम्हारे तो प्राण व्याकुल हैं, तुम इन सारी बातों का श्रवण कैसे कर सकते हों ? तो इसका उत्तर है कि मेरे प्राण व्याकुल नहीं हैं, क्योंकि मैं तो भगवान् अच्युत की लीला रूपी अमृत का पान कर रहा हूँ । उसी से मेरे प्राण तृप्त हैं ॥२६॥

सूत उवाच

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः । ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥२७॥

अन्वयः - विष्णुरातेन राज्ञा सत्पतेः कथायाम् इति उपामन्त्रितः सः ब्रह्मरातः भृशं प्रीतः ।।२७।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— राजा परीक्षित् के द्वारा संतों की सभा में श्रीभगवान् की कथा कहने के लिए इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उपामन्त्रितः पृष्टः । संश्वासौ पतिश्च तस्य ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने उपर्युक्त प्रकार से शुकदेवजी से प्रार्थना की कि वे सन्तों के स्वामी अथवा संसार के सर्वोत्तम स्वामी श्रीभगवान् की कथा इस सभा में सुनाएँ तो यह सुनकर शुकदेवजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ॥२७॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥

अन्वयः - ब्रह्मकल्प उपागते ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तम् ब्रह्मसंमितम् भागवतं नाम पुराणं प्राह ।।२८।। अनुवाद - ब्रह्म कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी को श्रीभगवान् ने जिस वेदतुल्य भागवत पुराण को सुनाया था उसी को उन्होंने सुनाया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकल्पे सृष्ट्युपक्रमकल्पे । भागवताख्यानेनैव प्रश्नानामुत्तरं दातुमुपक्रान्तवानित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ब्रह्मकल्प था उसमें श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को जो भागवत पुराण सुनाया था, वह वेद के समान था, उसी को उन्होंने राजा परीक्षित् को भी सुनाया। अर्थात् भागवत श्रावण के माध्यम से ही राजा परीक्षित् के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया।।२८।।

यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति । आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥२९॥

इति श्रीमन्द्रागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रश्नविधिर्नामाष्ट्रमोऽध्याय: ॥८॥

अन्वयः— पाण्डूनामृषभः परीक्षित् यद् यद् अनुपृच्छिति तत् सर्वम् आनुपूर्व्येण आख्यातुम् उपचक्रमे ।।२९।। अनुवाद— पाण्डु के वंश में अग्रगण्य राजा परीक्षित् ने जो कुछ भी पूछा था उन सारे प्रश्नों का उत्तर श्रीशुकदेवजी ने क्रमशः देना प्रारम्भ किया ।।२९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्य के प्रश्न विधि नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

पाण्डूनामृषभः श्रेष्ठः । आनुपूर्व्येणेति प्रस्तावक्रमोऽत्र विवक्षितो न प्रश्नकमः ॥२९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽयायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् महाराज पाण्डु के वंश में श्रेष्ठ थे। उन्होंने जिन प्रश्नों को शुकदेवजी से पूछा था उन सबों का उन्होंने प्रस्ताव क्रम से उत्तर देना प्रारम्भ किया।।२९॥

इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के द्वितीयस्कन्य की भावार्यदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।८।।



नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा भगवद्धाम का दर्शन और भगवान् के द्वारा उनको चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश

श्रीशुक उवाच

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः । न घटेतार्थसंबन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्चसा ॥१॥

अन्वयः— राजन् अनुभवात्मनः परस्य अर्थ संबन्धः आत्ममायाम् ऋते स्वप्नद्रष्टुः इव अञ्जसा न घटेत ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद - राजन् अनुभवस्वरूप आत्मा का अपने से भिन्न विषयों से अपनी माया के बिना संबन्ध उसी तरह से नहीं हो सकता है जिस तरह स्वप्न द्रष्टा के बिना स्वाप्न पदार्थों से सम्बन्ध नहीं होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

राजप्रश्नोत्तरं वक्ष्यन्ब्रह्मणे हरिणोदितम् । कथयामास नवमे शुको भागवतं पुनः ।।१।। तत्र यत्तावदुक्तं यदधातुमतः इत्यनेन जीवस्य कथं देहसंबन्ध इति तत्रोत्तरमाह । आत्मनो हरेर्मायामन्तरेणानुभवरूपस्यात्मनोर्थेन दृश्येन देहादिना संबन्धोऽञ्जसा तत्त्वतो न घटेत । । अत्र हेतुः-परस्येति । स्वप्रद्रष्टुर्यथा स्वप्रदेहसंबन्धो न घटते तद्वत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्नों का उत्तर देने की इच्छा से शुकदेवजी ने श्रीहरि के द्वारा ब्रह्माजी को उपदिष्ट भागवत को नवें अध्याय में कहा हैं ॥१॥

तत्र यत्तावदुक्तं • इत्यादि राजा परीक्षित् ने आठवें अध्याय के छठे श्लोक में यदधातुमतः इत्यादि श्लोक से जीव का देह से कैसे सम्बन्ध होता है यह प्रश्न किया है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शुकदेवजी ने कहा कि श्रीहरि की माया के बिना ज्ञानस्वरूप आत्मा का दृश्य देहादि के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता है यह उसी तरह से होता है जिस तरह द्रष्टा के बिना स्वाप्न पदार्थों का सम्बन्ध नहीं होता है ॥१॥

बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया । रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥२॥

अन्वयः बहुरूपया मायया बहुरूप इव आभाति । अस्याः गुणेषु रममाण मम अहम् इति मन्यते ।।२।।

अनुवाद अनेक रूपों वाली माया के कारण वह अनेक रूपों वाला प्रतीत होता है। जब आत्मा माया के गुणों में रम जाता है तो वह मेरा और मैं इस रूप से मानने लगता है।।२।।

भावार्थ दीपिका

संसारोऽपि माययैवेत्याह । बहुरूपो बालयुवादिरूपो देवनरादिरूपश्चाभाति । गुणेषु देहादिषु ।।२।।

भाव प्रकाशिका

संसार भी माया के ही कारण है। माया के कारण ही वह अपने को देवता, मनुष्य, पशु इत्यादि मानने लगता है, तथा बाल युवा आदि मानने लगता है। गुणशब्द से यहाँ देहादि कहे गये हैं। जब आत्मा शरीर इत्यादि में रमण करने लगता है तो वह जानता है कि यह मेरा है और यह मैं हूँ ॥२॥

यर्हि बाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः । रमेत गतसंमोहस्त्यक्तोदास्ते तदोभयम् ॥३॥

अन्वयः— यर्हि वाव काल माययोः परस्मिन् स्वे महिम्नि रमेत तदा उभयं त्यक्त्वा गत सम्मोहः उदास्ते ।।३।।

अनुवाद— जब यह आत्मा प्रकृति और पुरुष इन दोनों से परे अपनी महिमा में रमण करने लग जाता है तो वह पूर्ण रूप से उन दोनों से उदासीन हो जाता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अतएव भक्तियोगेन तित्ररासे सित मोक्षोऽपि घटत इत्याह-यहींति । वावशब्द एवार्थे । स्व एव मिहिम्न यदा रमेत । तदेवाह । कालमाययोः पुरुषप्रकृत्योः परिस्मन् । तदोभयमहं ममेति च त्यक्त्वा उदास्ते पूर्णरूपेणावितष्ठते । तदुक्तम् 'यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते । अनर्थोपशमं साक्षाद्धक्तियोगमधोक्षजे। लोकस्याजानतो विद्वांश्चके सात्त्वतसंहिताम् ।।' इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भक्तियोग के द्वारा माया का निरास कर देने पर मोक्ष भी हो जाता है, इस बात को **यहिं वाव इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। **वाव** पद निश्चयार्थक है। जब वह आत्मा अपने में ही रमण करने लगता है तो इसी बात को बतलाते हुए वे कहते हैं। जब वह काल तथा माया अर्थात् प्रकृति और पुरुष से परे अपने में रमण करने लगता है तो वह अहन्त्व और ममत्व इन दोनों को त्याग कर उदासीन हो जाता है अर्थात् वह पूर्ण रूप से अवस्थित हो जाता है।

तदुक्तम् इत्यादि जब उस माया से जीव मोहित हो जाता है तो वह अपने को त्रिगुणात्मक मानने लगता है यद्यपि जीव मायातीत है फिर भी अनर्थों को प्राप्त करता है। जब साक्षात् परमात्मा में भिक्तयोग होता है तों सम्पूर्ण अनर्थों का नाश हो जाता है। लोक इस बात को नहीं जानता है इसी बात को बतलाने के लिए व्यासजी ने सात्त्वतसंहिता श्रीमद्भागवत का प्रणयन किया ॥३॥

आत्मतत्त्वविशुध्यर्थं यदाह भगवानृतम् । ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥४॥

अन्वयः— अव्यलीक व्रतादृत: ब्रह्मणे रूपं दर्शयन् भगवान् आत्मतत्त्विशुद्ध्यर्थम् यत् ऋतम् आह ।।४।। अनुवाद— ब्रह्माजी की निष्पकपट तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उनको जो अपना रूप दिखाया और आत्मतत्त्व की शुद्धि के लिए परमसत्य का उपदेश किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं परमेश्वरस्यापि देहीसंबन्धिवशेषात्कथं तद्भक्त्या मोक्षः स्यादिति आसीद्यदुदरात्पद्भं इत्यादिना तत्राह । आत्मनो तत्त्विवशुद्यर्थं तद्भवत्येव । किं तत् । यत्तपआदिना भजनं भगवान्ब्रह्मणे आह । किं कुर्वन । ऋतं सत्यं चिद्घनं दर्शयन् । दर्शने हेतु:-अव्यलीकेन व्रतेन तपसा आदृतः सेवितः सन् । अयं भावः-जीवस्याविद्यया मिथ्यारूपदेहसंबन्धः, ईश्वरस्य तु योगमायया चिद्घनलीलाविग्रहाविर्भाव इति महान्विशेषः । अतस्तद्भजनान्मोक्षोपपत्तिरिति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि जब जीव के ही समान परमात्मा भी देह के सम्बन्ध से युक्त हैं तो फिर उनकी भिक्त करने से मुक्ति कैसे सम्भव है ? इस बात को आसीद् यदुदरात् आठवें अध्याय के सातवें श्लोक में जो कहा गया है । उसके उत्तर में कहा गया है कि जीव के आत्मतत्त्व की विशुद्धि के लिए भिक्त से तत्त्वज्ञान होता हैं। इसी को तप आदि से भगवान् का भजन ब्रह्माजी ने की और ब्रह्माजी को श्रीभगवान् ने अपने सत्य ज्ञानस्वरूप रूप को दिखाकर आत्मोपदेश किया । परमात्मा द्वारा ब्रह्माजी को अपने रूप का दर्शन कराने का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि ब्रह्माजी ने निष्कपट तपस्या के द्वारा परमात्मा की सेवा की ।

अयंभाव: कहने का अभिप्राय है कि जीव की अविद्या के द्वारा मिथ्या रूप देह का सम्बन्ध होता है ?

किन्तु ईश्वर का योगमाया के द्वारा ज्ञान स्वरूप लीला विग्रह का आविर्भाव होता है । इस तरह जीव और ईश्वर में महान् भेद है । अतएव परमात्मा का भजन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।४।।

स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्णयमास्थाय सिसृक्षयैक्षत । तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥५॥

अन्वयः— स आदिदेवः जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यम् आस्थाय सृसृक्षया ऐक्षत, परन्तु प्रपञ्च निर्माण विधिः यया भवेत् तां सम्मतां दृशम् न अध्यगच्छत् ॥५॥

अनुवाद - त्रैलोक्य के परम गुरु ब्रह्माजी अपने कमलासन पर बैठकर प्रपञ्च की सृष्टि करने की इच्छा से विचार करने लगे, किन्तु जिसके द्वारा प्रपञ्च का निर्माण किया जा सकता है, उस ज्ञान को वे नहीं प्राप्त कर सके ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्भजनादेव तत्त्वज्ञानमित्येतत्प्रपञ्चयिष्यन् ब्रह्मणोऽपि तत्त्वज्ञानं तत्प्रसादादेवेति दर्शयितुमितिहासमाह-स इत्यादिना। परो गुरुर्भिक्तिरहस्योपदेष्टा । स्विधष्ययं पद्ममास्थायाधिष्ठाय । तस्याधिष्ठानान्वेषणाय पूर्वं जले निमग्नः परावृत्य, स्विधष्यये स्थित्वेत्यर्थः। ऐक्षत तत्कथं स्रष्टव्यमित्यालोचितवान् । तां दृशं प्रज्ञामत्र सृष्टिविषये संमतामव्यभिचारिणीम् । विधिः प्रकारः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के भजन से तत्त्वज्ञान की प्राप्त होती है, इस बात को विस्तार से बतलाने के लिए तथा ब्रह्माजी को भी तत्त्वज्ञान परमात्मा की कृपा से ही होता है इस बात को बतलाने के लिए उन्होंने इतिहास को स आदि देव: इत्यादि श्लोक से कहा । परो गुरु: कहकर भिक्त के रहस्य का उपदेश करने वाला कहा गया है । स्वधिष्यय अर्थात् कमलासन पर बैठकर अपने अधिष्ठान का अन्वेषण करने के लिए ब्रह्माजी पहले तो जल में प्रवेश किए किन्तु पता नहीं पा सकने के कारण वे लौटकर अपने आसन पर बैठकर विचार किए कि प्रपञ्च की सृष्टि कैसे किया जाय ? किन्तु जिस दृष्टि के द्वारा ही प्रपञ्च की सृष्टि हो सकती है उसको वे नहीं जान पाये । विधि शब्द प्रकार का वाचक है ॥५॥

स चिन्तयन्द्व्यक्षरमेकदाम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः । स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किचनानां नृप यद्धनं विदुः ॥६॥

अन्वयः चिन्तयन् स विभुः एकदा अभ्भिस द्विगदितम् वचः उपाशृणोत् यत् स्पर्शेषु षोडशं 'त' एकविंश प इति, तप इत्यर्थः । हे नृप ! यत् निष्किञ्चनानानां धनं विदुः ।।६।।

अनुवाद एक बार चिन्तन करते हुए ब्रह्माजी ने अपने सिन्नकट में जल में दो बार उच्चरित वाणी को सुना । जो स्पर्श वर्णों में सोलहवाँ त तथा इक्कीसवां प वर्ण से युक्त तप शब्द था उसका तप, तप, इस तरह से दो बार सुना । उस तप को ही अकिञ्चन पुरुषों का धन बतलाया गया है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

सृष्टिं चिन्तयन् कदाचित् द्वयक्षरं वचोऽम्भसि उपाशृणोत् उप समीपे श्रुतवान् । ते अक्षरे दर्शयित । कादयो मावसानाः स्पर्शाः' तेषु यत्षोडशं तकारो यच्चैकविंशं पकारः । वचसो निर्देशार्थं तदर्थमाह । हे नृप, निष्किचनानां त्यक्तधनानां धनं यद्विदुः, येन तपोधना इति प्रसिद्धा, तच्च द्विगीदितं तप तपेति । लोण्मध्यपुरुषैकवचनम् । तस्य वीप्सां सादरविधिरूपामशृणोदित्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के विषय में विचार करते हुए ब्रह्माजी एक बार दो अक्षरों वाली वाणी को जल में अपने सिन्नकट में ही सुने। उन दोनों अक्षरों को बतलाते हुए कहते हैं- स्पर्शेषु इत्यादि स्पर्श वर्णों में सोलहवाँ त और इक्कीसवाँ प ये दो वर्ण वे थे। उस वाणी का निर्देश करने के लिए उसका अर्थ बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा राजन् उस तप को ही अकिश्चन पुरुषों का धन बतलाया गया है। तपोधन कहा गया है। उस वाणी को तप, तप अर्थात् तप करो तप करो इस तरह से दो बार सुना। तप शब्द लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एक वचन का रूप हैं। उसको विधि रूप से ब्रह्माजी ने दो बार सुना।।६।।

निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः । स्वधिष्णयमास्थाय विमृश्य तिद्धतं तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥७॥

अन्वयः— निशम्य, तद्वक्तदिदृक्षया दिश: विलोक्य अन्यत् अपश्यमानः स्वधिष्ण्यम् आस्थाय तद्भितं विमृश्य उपादिष्ट इव तपसि मन आदधे ॥७॥

अनुवाद — उस वाणी को सुनकर उसके वक्ता को देखने की इच्छा से ब्रह्माजी ने दिशाओं में देखा; किन्तु वे किसी को नहीं देखे। उसके पश्चात् अपने आसन पर बैठकर तपस्या को ही अपना कल्याणकारी सोचकर वे तप में ही अपने मन को लगा दिए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवं निशम्य तस्य वचसो वक्तुर्दिदृक्षया ततः प्रचलितः सन् दिशो विलोक्य पुनः स्विधष्ययमास्थाय केनिचत्प्रत्यक्षं नियुक्त इव तच्चात्मनो हितं तपिस मनो धृतवानित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सुनकर उस वाणी के वक्ता को देखने की इच्छासे वहाँ से उठकर दिशाओं में देखकर फिर ब्रह्माजी अपने आसन पर बैठ गये। किसी के द्वारा साक्षात्रियुक्त हुए के समान, उसी को अपना कल्याणकारी मानकर अपने मन को वे तपस्या में लगा दिए ॥७॥

दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः । अतप्यत स्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥८॥

अन्वयः— तपतां तपीयान् समाहितः अमोघ दर्शनः जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः अखिललोकतापनं तपः दिव्यं सहस्राग्ब्दं अतप्यत ।।८।।

अनुवाद— तपस्या करने वालों में सबसे श्रेष्ठ तपस्वी अमोघ ज्ञान वाले ब्रह्माजी ने अपने श्वास को जित लिया ज्ञानेन्द्रियों कमेंन्द्रियों और मन को वश में करके सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ तपस्या को देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त किए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च स ब्रह्माऽखिलानां लोकानां तापनं प्रकाशकं तपोऽतप्यत स्म कृतवान् । तप तपेत्येतस्य वचोऽर्थे । अमोघं दर्शनं यस्य । जितोऽनिल आत्मा मनश्च येन । विजितान्युभयेन्द्रियाणि ज्ञानकर्मात्मकानि येन । तपतां तपश्चरतां मध्ये तपीयानितशयेन तपस्वी ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ तप को किया । उनका ज्ञान अमोघ है । उन्होंने अपने श्वास कमेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और मन सबको उस समय अपने वश में कर लिया था । वे सभी तपस्वियों में श्रेष्ठ हैं । ऐसे ब्रह्मा जी ने देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त तपस्या की ॥८॥

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः संदर्शयामास परं न यत्परम् । व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥९॥

अन्वयः— सभाजितः भगवान् तस्मै व्येपेतसंक्लेश विमोहसाध्वसं, स्व दृष्टवद्भिः विवुधैरभिष्टुतम् यत्परं परं न एतादृशं लोकं संदर्शयामास ॥९॥

अनुवाद ब्रह्माजी की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीगियान ने उनको क्लेश, मोह तथा भय से रिहत तथा जिस देवता ने उसका दर्शन किया है, उसके द्वारा उनकी स्तुति की जाती है। जिससे श्रेष्ठ कोई भी दूसरा लोक नहीं हैं इस प्रकार के अपने लोक को उनको दिखाया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै ब्रह्मणे स्वलोकं वैकुण्ठाख्यम् । परं श्रेष्ठम् । न यत्परं यतः परमुत्कृष्टमन्यन्नास्ति । तमेव लोकमनुवर्णयति पञ्चिभः। व्यपेताः संक्लेशादयो यस्मात् । स्वदृष्टवद्भिः सत्पुण्यवद्भिः । यद्वा स्वस्य दृष्टं दर्शनमस्ति येषाम् । आत्मविद्भिरित्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मजी की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उनको अपने वैकुण्ठ नामक श्रेष्ठ लोक का दर्शन कराया। वह वैकुण्ठ सबसे श्रेष्ठ लोक है, उससे बढ़कर कोई भी लोक नहीं है । उसी लोक का वर्णन पाञ्च श्लोकों से किया गया है । वह लोक सभी प्रकार के क्लेशों आदि से रहित है । जिन पुण्यवान् पुरुषों के द्वारा वह लोक देखा गया है अथवा जिन आत्मज्ञ पुरुषों के द्वारा वह लोक देखा जाता है, उन सबों के द्वारा वह लोक अभिष्ठुत है ॥९॥

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः । न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥१०॥

अन्वयः यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं न, न च रजस्तममोध्यां मिश्रं सत्त्वं, न काल विक्रमः । न च यत्र माया, अपरे किमुत । यत्र सुरासुरार्चिताः हरेः अनुव्रताः सन्ति ॥१०॥

अनुवाद उस लोक में रजोगुण तथा तमोगुण की सत्ता नहीं है। वहाँ रजोगुण एवं तमोगुण से मिश्रित भी सत्त्वगुण नहीं है। वहाँ शुद्ध सत्त्वगुण है। वहाँ काल का विनाश रूपी पराक्रम भी नहीं चलता है। वहाँ पर माया भी नहीं है तो फिर माया जन्य राग, लोभ इत्यादि वहाँ कैसे हो सकते हैं ? वहाँ पर देवता और दैत्यों से पूजित भगवत् पार्षदों का ही निवास है।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तयोस्ताभ्यां मिश्रं सत्त्वं च न प्रवर्तते, किंतु शुद्धमेव सत्त्वम् । कालविक्रमो नाशः । अपरे रागलोभादयो न सन्तीति किमु वक्तव्यम् । अनुव्रताः पार्षदाः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उस वैकुण्ठ लोक में रजोगुण एवं तमोगुण की सत्ता नहीं है तथा वहाँ उन दोनों गुणो से मिश्रित सत्त्वगुण भी नहीं है। वहाँ तो केवल शुद्धसत्त्व है। वहाँ काल का पराक्रम रूपी नाश भी नहीं होता है। जब वहाँ माया ही नहीं है तो माया जन्य राग लोभ इत्यादि कैसे होंगे। वहाँ तो देवताओं और दैत्यों से पूजित श्रीभगवान् के पार्षदों का ही निवास है।।१०।।

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्ताः सुरुचः सुपेशसः । सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः ॥११॥ अन्वयः— सर्वे श्यामाऽवदाता शतपत्रलोचना, पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः, सुपेशसः चतुर्बाहवः उन्मिषन्मणिप्रवेक निष्काभरणाः सुत्रर्चसः प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत् कुण्डल मौलिमालिनः ।।११।।

अनुवाद — श्रीभगवान् के सभी पार्षदों का शरीर उज्ज्वल कान्ति से युक्त श्याम वर्ण का है। उनके कमल दल के समान मनोहर नेत्र हैं, उनसबों का पीत वर्ण का वस्त्र हैं, उनकी सुन्दर कान्ति है तथा वे अत्यन्त कोमल हैं। सुकुमार हैं। सबके सब चार भुजाओं वाले हैं। वे मणि जटित सुवर्ण की कान्तिमय आभूषणों को धारण किए रहते हैं उनकी शोभा प्रवाल, वैदूर्य तथा कमलनाल तन्तु के समान है। उनके कुण्डल, मुकुट और मालायें चमकती रहती हैं।।११।।

भावार्थ दीपिका

श्यामश्च ते अवदाता उज्ज्वलाश्च, पद्मनेत्राः पीताम्बराः, सुरूचोऽतिकमनीयाः, सुपेशसोऽतिसुकुमाराः । उन्मिषन्त इव प्रभावन्तो मणिप्रवेका मण्युत्तमा येषु तानि निष्काणि पदकान्याभरणानि च येषां ते । सुवर्चसोऽतितेजस्विनः, प्रवालादिवद्वर्चो वर्णो येषां ते, परितः स्फुरन्ति कुण्डलानि मौलयो मालाश्च सन्ति येषां ते ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् के पार्षदों की अनेक विशषतायें बतलायी गयी हैं। वे उज्ज्वल कान्ति से युक्त श्याम वर्ण के हैं। उनके कमल के समान नेत्र हैं। सबके सब पीताम्बर धारण किए रहते हैं वे देखने में अत्यन्त मनोहर लगते हैं तथा सुपेश अर्थात् अत्यन्त सुकुमार हैं। चमकती हुयी उत्तममणियों से जटित उनके सुवर्ण निर्मित आभूषण हैं। वे सुवर्चस अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी है। उनकी शोभा मूंगा वैदूर्य तथा मणालतन्तु के समान है। उनके कुण्डल, मुकुट तथा मालयें चमकती रहती हैं।।११।।

भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानाविलिभिर्महात्मनाम् । विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्राविलिभिर्यथा नभः ॥१२॥

अन्वयः— प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिः नभः यथा महात्मनाम् भ्राजिष्णुभिः लसद् विमानावलिभिः विद्योतमानः विराजते ।।१२।।

अनुवाद जिस प्रकार आकाश बिजली सिहत बादलों से सुशोभित होता है, वैसे ही वह लोक मनोहर कामिनियों की कान्ति से युक्त महापुरुषों के तेजोमय विमानों से चारो ओर सुशोभित होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पार्षदाननुवर्ण्य पुनरपि लोकमनुवर्णयति । भ्राजिष्णुभिर्देदीप्यमानाभिः प्रमदोत्तमानां दिवः कान्तयस्ताभिर्विद्योतमानः । सह विद्युद्धिर्वर्तमानाः सविद्युतस्ताभिरभ्रावलिभिः । तत्र विद्युत इव स्त्रिय, अभ्रपङ्कय इव विमानानि, नभ इव लोकः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

पार्षदों के वर्णन के पश्चात् शुकदेवजी पुनः उस लोक का वर्णन करते हैं। भिजिष्णुभिः इत्यादि देदीप्यमान कामिनियों की कान्ति से सुशोभित बिजलियों से युक्त बादलों से जैसे आकाश सुशोभित होता है उसी तरह महापुरुषों के विमानों से वह लोक सर्वत्र सुशोभित होता है। विमानों में विद्युत् के समान कामिनियाँ हैं। मेघपंक्ति के समान विमान हैं और आकाश के समान वैकुण्ठ लोक है।।१२।।

श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः । प्रेङ्कं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥१३॥

अन्वयः — यत्र रूपिणी श्री: उरुगायपादयो: विभूतिभि: बहुधा मानं करोति या पेह्नुं श्रिता प्रियकर्मगायती कुसुमाकरा नुगै: विगीयमाना भवति ।।१३।। अनुवाद उस वैकुण्ठ लोक में सुन्दर रूप धारण करके लक्ष्मीजी श्रीभगवान् के चरणों की अनेक प्रकार से सेवा करती हैं। जब झूले पर बैठकर अपने प्रियतम की लीलाओं का गायन करती हैं तो उनके सौगन्ध्य से उन्मत्त बने भौरे उनके चारो ओर मंडराते हुए उनके ही गुणों का गायन करने लगते हैं।।१३।।

भावार्थ दीपिका

श्रीः सम्पत् । रूपिणी मूर्तिमती । मानं पूजाम् । विभूतिभिर्नानाबिभवैः प्रेङ्खमान्दोलं संश्रिता । कुसुमाकरो वसन्तस्तस्यानुगा भ्रमरास्तैर्विविधं गीयमाना । स्वयं तु प्रियस्य हरेः कर्म गायन्तीव भवति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

लक्ष्मीजी सुन्दर शरीर धारण करके अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों से श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करती हैं। जब वे दोला पर बैठकर श्रीभगवान् के गुणों का गायन करती हैं, उस समय उनके सौन्दर्य तथा सौगन्ध्य से उन्मत्त बने भौरे मानों उनके ही गुणों का गायन करने लगते हैं।।१३।।

ददर्श तत्राखिलसात्त्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् । सुनन्दनन्दप्रबलाईणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥१४॥

अन्वयः — तत्र अखिलसात्त्वतां पतिम्, श्रियः पतिम्, यज्ञपतिं, जगत्पतिम् सुनन्द नन्द प्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ददर्श ।।१४।।

अनुवाद ब्रह्माजी ने उस लोक में समस्त भक्तों के रक्षक, लक्ष्मीजी के पति, यज्ञपति तथा जगत् के स्वामी तथा सुनन्द, नन्द, प्रबल तथा अर्हण आदि अपने प्रमुख पार्षदों द्वारा सेवित श्रीभगवान् का दर्शन किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

य एवंभूतो लोकस्तत्र तस्मिन् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार का जो श्रीभगवान् का वैकुण्ठ लोक है, उसमें उन्होंने श्रीभगवान् का दर्शन किया । वे ही भगवान् भागवतों, लक्ष्मीजी, यज्ञों तथा जगत् के स्वामी हैं । सुनन्द, नन्द प्रबल तथा अर्हण आदि मुख्य पार्षद उनकी सेवा करते रहते हैं ॥१४॥

भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् । किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥१५॥

अन्वयः— भृत्यप्रसादाभिमुखम्, दृगासवं, प्रसन्नहासारुणलोचनानम्, किरीटिनं, कुण्डलिनं, चतुर्भुजं पीताम्बरम् वक्षसि श्रिया लक्षितम् ददर्श ।।१५।।

अनुवाद अपने भक्तों पर कृपा करने वाले, असव के समान देखने वालों को प्रसन्न कर देने वाले, नेत्रों से युक्त, मन्दमुस्कान से युक्त लाल नेत्रों और सुन्दर मुखवाले शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल धारण किए हुए चार भुजाओं से युक्त पीताम्बर धारण किए हुए, वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी के द्योतक श्रीवत्सचिन्ह से सुशोभित श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भृत्यानां प्रसादेऽभिमुखम्, दृगेव आसव इव द्रष्टृणां हर्षकरी यस्य तम्, प्रसन्नहासमरुणलोचनं चाननं यस्य, वक्षसि स्थितया च श्रिया लक्षितम् । अलंकृतमित्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अपने भक्तों पर सदा कृपा करने के कारण अनुकूल श्रीभगवान् के नेत्र उस आसव के समान हैं जिसकों देखने वाले प्रहर्षित हो जाते हैं, मधुर मुस्कान से युक्त श्रीभगवान् के नेत्र और मुखमण्डल लाल है। उनके वक्षःस्थल लक्ष्मीजी के द्योतक श्रीवत्सचिह्न से अलंकृत है। इस प्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥१५॥

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः । युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन्रममाणमीश्वरम् ॥१६॥

अन्वयः— अध्यर्हणीयासनम् आस्थितम् परम् चतुषोडशपश्चशक्तिभिः वृतम् । स्वैः भगैः युक्तम्, इतरत्र च अघुवैः स्वएव धामन् रममाणम् ईश्वरम् ददर्श ।।१६।।

अनुवाद श्रेष्ठ तथा मूल्यवान सिंहासन पर बैठे हुए सर्वश्रेष्ठ तत्त्व स्वरूप प्रकृति, पुरुष, महान् तथा अहंकार इन चारों, ग्यारह इन्द्रियों तथा पाँचमहाभूत, पञ्चतन्मात्राओं इन सभी शक्तियों से घिरे हुए, योगियों को भी आभास रूप से प्राप्त होने वाले तथा अपने स्वाभाविक ऐश्वर्यों से युक्त अपने स्वरूप रूपी धाम में रमण करने वाले सबों के नियामक श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अध्यर्हणीयं वरिष्ठं सिंहासनम् । चतस्रः प्रकृतिपुरुषमहदहंकाररूपाः, षोडश एकादशेन्द्रियपञ्चमहाभूताख्याः पञ्चतन्मात्ररूपा याः शक्तयस्ताभिर्वृतम् । स्वैर्भगैः स्वाभाविकैरैश्चर्यादिभिः इतरत्र योगिष्वध्नुवैरागन्तुकैः । साधारणैरित्यर्थः । एवं सत्यपि स्व एव धामन् स्वस्वरूप एवं रममाणम् । अतएवेश्वरम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने देखा कि श्रीभगवान् एक बहुमूल्य तथा श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हैं, वे प्रकृति, पुरुष, महान् तथा अहङ्कार रूप चार शक्तियों, ग्यारह इन्द्रियों तथा पाञ्च महाभूत रूप सोलह शक्तियों तथा पाँच तन्मात्राओं रूप शक्तियों से युक्त हैं, जो योगियों को आगन्तुक रूप से ही प्राप्त होते हैं, ऐसे अपने ऐश्वर्यों से युक्त तथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले एवं सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥१६॥

तद्दर्शनाह्वादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः । ननाम पदाम्बुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥१७॥

अन्वयः— तद् दर्शनाह्वाद परिप्लुतान्तरः हृष्यत् तनुः, प्रेमभराश्रुलोचनः विश्वसृक् यत्पारमहंस्येन पथा अधिगम्यते तत् अस्य पदाम्बुज ननाम् ।।१७।।

अनुवाद - श्रीभगवान् के दर्शन से उत्पन्न आह्नाद से ब्रह्माजी का अन्त:करण परिपूर्ण हो गया, शरीर रोमाञ्चित हो गया, प्रेमातिरेक के कारण नेत्रों में आँसू भर गये। इस प्रकार के ब्रह्माजी ने पारमहंस्य मार्ग से प्राप्त होने वाले श्रीभगवान् के चरणकमलों में प्रणाम किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य दर्शनेन य आह्वादस्तेन परिप्लुतं व्याप्तमान्तरमन्तःकरणं यस्य । हृष्यन्ती रोमाञ्चिता तनुर्यस्य । प्रेमभरेणाश्रृणि लोचनेषु यस्य । विश्वसृक् ब्रह्मा । पारमहंस्येन पथा ज्ञानमार्गेण ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दर्शन से उत्पन्न आह्नाद से ब्रह्माजी का अन्तःकरण परिपूर्ण हो गया उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया और उनकी आंखों में प्रेम के आँसू भर गये। इस प्रकार के ब्रह्माजी ने ज्ञानमार्ग से प्राप्त होने वाले श्रीभगवान् के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥१७॥

तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् । बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥१८॥

अन्वयः— तदा प्रियमाणं समुपस्थितं प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणं तं प्रीतमनाः करे स्पर्शन् प्रियः ईषत् स्मितशोचिषा गिरा प्रियं बभाषे ।।१८।।

अनुवाद प्रसन्न तथा समुपस्थित उस समय प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए आज्ञा देने योग्य ब्रह्माजी का प्रसन्नता पूर्वक हाथ पकड़कर श्रीभगवान् ने मन्दमुस्कान की शोभा से युक्त प्रिय वाणी में कहा ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तं ब्रह्माणं भगवान् बभाषे । प्रजाविसर्गे कार्ये निजशासनार्हणं स्वनियोगार्हम् । प्रजाविसर्गे समुपस्थितमिति वाऽन्वयः। ईषत्स्मितेन शोचिर्दीप्तिः शोभा यस्यास्तया गिरा ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टिकाल के आ जाने पर सृष्टि का कार्य करने की आज्ञा देने योग्य, ब्रह्माजी को श्रीभगवान् ने मन्दमुसकान की शोभा से युक्त वाणी से कहा ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच त्वयाहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया । चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥१९॥

अन्वयः— हे वेदगर्भ ! सिसृक्षया भृतेन तपसा त्वया अहं सम्यक् तोषितः कूटयोगिनाम् अहं दुस्तोषः ।।१९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद हे वेदगर्भ ब्रह्मन् ! जगत् की सृष्टि करने के इच्छा से तुम्हारे द्वारा की गयी तपस्या से मैं अच्छी तरह से प्रसन्न हूँ मन में कपट रखकर तपस्या करने वाले मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

सिसृक्षया हेतुना चिरं संभृतेन तपसाऽहं सम्यक्तोषितः । दुस्तोषस्तोषयितुमशक्यः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से की गयी तपस्या के कारण मैं अच्छी तरह से संतुष्ट हो गया हूँ । कपट पूर्वक की जाने वाली तपस्या के द्वारा कोई भी मुझको सन्तुष्ट नहीं कर सकता है ।

वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् । ब्रह्मञ्छ्रेयःपरिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥२०॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् ते भद्रम् ! वरेशं मां अभिवञ्छितम् वरं वरय । पुंसः परिश्रामः मद् दर्शनावधिः ।।२०।।

अनुवाद— ब्रह्माजी आपका कल्याण हो । मैं सभी वरदान देने वालों का स्वामी हूँ । तुम अपने मनोनुकूल वरदान माँग लो । पुरुषों के द्वारा किए जाने वाले परिश्रम का पर्यवसान मेरे दर्शनकाल पर्यन्त ही होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मा इति माम् । श्रेयसां फलानां परिश्रामः परिश्रमः साधनप्रयासः मम दर्शनमविधर्यस्य स तथा । अतोऽधिकं तु पुनः फलं नास्तीत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

मा शब्द का अर्थ यहाँ माम् है अर्थात् मुझको कल्याण प्राप्ति रूपी फल की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले साधन रूपी प्रयास तब तक ही करना पड़ता है जब तक कि मेरा दर्शन न हो जाय । दर्शन से बढ़कर दूसरा कोई फल नहीं है ॥२०॥

मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् । यदुपश्रुत्य रहिस चकर्थ परमं तपः ॥२१॥

अन्वयः — लोकावलोकनम् अयं मम मनीषितानुभावः । यत् रहसि उपश्रुत्य परमं तपः चकर्थः ।।२१।।

अनुवाद— यह मेरे लोक का दर्शन मेरी इच्छा का ही प्रभाव है। क्योंकि आपने एकान्त में मेरी तप, इस वाणी को सुनकर घोर तपस्या की है।।२१।।

भावार्थ दीपिका

एतच्च मत्कृपयैव त्वया प्राप्तमित्याह । मनीषितमिच्छा तुभ्यमिदं दातव्यमिति या ममेच्छा तस्यानुभावोऽयम् । कोऽसौ तमाह । मम लोक स्यावलोकनं यत् । न चेदं मयैव तपोबलेन प्राप्तमिति स्वातन्त्र्यं मन्यस्व तत्प्रवृत्तेरिप मत्कृतत्वादित्याह। रहिस तप तपेति यद्वच उपश्रुत्य परमं तपश्चकर्थ कृतवानिस ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

आपने जो मेरे लोक का दर्शन किया है, वह भी मेरी कृपा से ही किया है। मैंने चाहा कि मैं आपको दर्शन दूँ। मेरी उस इच्छा का ही प्रभाव है कि आपने मेरे लोक का दर्शन किया। आपको नहीं मानना चाहिए कि तपस्या रूपी मेरे स्वतन्त्र प्रयास से यह भगवल्लोक का दर्शन हुआ है। आपको तपस्या करने में मैंने ही लगाया है। क्योंकि एकान्त में तप करो, तप करो मेरी इस वाणी को सुनकर ही आपने यह घोर तपस्या की है।।२१।। प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्विय कर्मिवमोहिते। तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ।।२२॥

अन्वयः हे अनध ! तव कर्मविमोहिते त्विय मया प्रत्यादिष्टम् । तपः मे हृदयम् अहं साक्षात् तपसः आत्मा ।।२२।। अनुवाद सृष्टि के प्रारम्भ में आप यह सोचकर किं कर्तव्य विमूढ हो गये थे । उस समय मैंने ही आपको तपस्या करने की आज्ञा प्रदान की थी । तपस्या मेरा हृदय है और मैं साक्षात् तपस्या की आत्मा हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तदिप त्वां प्रति मयैवादिष्टमुपदिष्टम् । कदा । तत्र तदा सृष्ट्यारम्भे त्विय कर्मणि कार्येऽर्थे विमोहिते सित । किंच । तपो नाम ममैव शक्तिरित्याह । तपो मे हृदयमन्तरङ्गा शक्तिः, आत्मा स्वरूपम् । 'यस्य ज्ञानमयं तपः' इति श्रुतेः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के प्रारम्भ में जब आप अपने कर्तव्य के विषय में किंकर्तव्य विमूढ थे, उस ासमय मैंने ही आपको तपस्या करने का आदेश दिया था; क्योंकि तप तो मेरा हृदय है अर्थात् अन्तरङ्गशक्ति हैं और मैं तपस्या की साक्षात् आत्मा हूँ ॥२२॥

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः । विभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥२३॥

अन्वयः - अहम् तपसा एव इदं सृजािम, पुनः तपसा ग्रसािम, तपसा विश्वं विभिर्मि तपः मे दुश्चरं वीर्यम् ।।२३।। अनुवाद - मैं तपस्या के द्वारा इस जगत् की सृष्टि करता हूँ तपस्या के द्वारा ही इसका संहार करता हूँ तथा तपस्या के ही द्वारा मैं इसको धारण किए रहता हूँ । तपस्या ही मेरी दुर्लंघ्य शक्ति है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ग्रसामि संहरामि । विभर्मि पालयामि । वीर्यं शक्तिः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को बतलाया कि मैं तपस्या के ही द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता हूँ संहार करता हूँ और जगत् का पालन करता हूँ । तपस्या मेरी दुर्लंघ्य शक्ति है ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् । वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥२४॥

अन्वयः सर्वभूतानाम् गुहाम् अवस्थितः अध्यक्षः भगवन् अप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन ही चिकीर्षितम् वेद ।।२४।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— सबों के अन्त:करण रूपी गुफा में साक्षी रूप में अवस्थित तथा सबों के अधिष्ठित करने वाले भगवान् आप अपने अप्रतिहत ज्ञान के द्वारा मेरे अभिप्रेत अर्थ को जानते ही हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अध्यक्षोऽधिष्ठाता । गुहां गुहायां बुद्धाववस्थितः सन्यद्यपि वेद तथापीत्युत्तरेणान्वयः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा कि आप तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। सबों की बुद्धि नामक अन्त:करण में साक्षी रूप से विद्यमान रहते हैं। आप सर्वज्ञ हैं अतएव अपने अप्रतिहत ज्ञान के द्वारा जानते ही हैं कि मैं क्या करना चाहता हैं फिर भी ॥२४॥

तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् । परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥२५॥

अन्वयः तथापि हे नाथ नाथमानस्य नाथितम् नाथय । यथा ते त्वरूपिणः परावरे रूपे जानीयाम् ।।२५।।

अनुवाद - फिर भी याचना करने वाले मेरी इस प्रार्थना को आप स्वीकार करें कि आपकी कृपा से यद्यपि आप अरूप हैं फिर भी मैं आपके सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के रूपों को जान सकूँ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

नाथमानस्य याचमानस्योपतप्यमानस्येति वा । हे नाथ, नाथय आशंसय प्रयच्छ । नाथितं याचितम् । **नाथृ नाघृ** या**ञ्चोपतापैश्चर्याशीःषु'** । नाथितमेवाह । परं सूक्ष्मवरं स्थूलं च ते रूपं यथा जानीयाम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं फिर भी याचना करने वाले मेरी इस याचना को सनाथित करें। नाथित का अर्थ याचित है। नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशी:षु इस धातु पाठ के अनुसार नाथित का अर्थ याचित है। अपनी प्रार्थित वस्तु को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने कहा कि आप ऐसी कृपा करें कि मैं आपके सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों रूपों को जान सकूँ। यद्यपि आप रूपहीन हैं।।२५॥

यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम्। विलुम्पन्विसृजन् गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना॥२६॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते । तथा तद्विषयां घेहि मनीषां मयि माघव ॥२७॥

अन्वयः— यथा आत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् विलुम्पन्, विसृजन्, गृह्णन् आत्मना आत्मानं विभृत् उर्णुते उर्णनाभिः यथा अमोघ सङ्कल्पः कीडसि, हे माधव तथा तद् विषयां मनीषां मयि घेहि ।।२६-२७।।

अनुवाद — जिस प्रकार अपनी माया को अपनाकर आप इस अनेक प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न विश्व का संहार कर देते हैं, पुन: उसकी सृष्टि भी कर देते हैं, तथा उसका पालन भी करते हैं। आप अपने आपको अनेक रूपों में बना देते हैं और अमोघ सङ्कल्प होने के कारण आप उसी तरह से क्रीडा करते हैं जिस तरह से मकड़ी अपने मुख से जाल को निकाल कर उसमें क्रीड़ा करती है और अन्त में उसको निगल भी जाती है। आप मुझको ऐसी बुद्धि प्रदान करें कि मैं आपके इस मर्म को जान सकूँ ॥२६-२७॥

यथा च त्वं क्रीडिस तथा तद्विषयां मनीषां मिय धेहीत्युत्तरेणान्वयः । नानाशक्त्युपबृंहितं विश्वं विलुम्पन्संहरन् । विविधं सृजन्विभ्रत्पालयत्रात्मना स्वयमेवात्मानं ब्रह्मादिरूपं गृह्णन् क्रीडिस । ऊर्णुते तन्तुभिरात्मानमाच्छादयति ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

आप जिस तरह से क्रीडा करते हैं, उस क्रीडा विषयिणी बुद्धि को आप मुझे प्रदान करें, इस तरह से सत्ताइसवें शलोक से इसका सम्बन्ध है। नाना। इत्यादि आप अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त इस विश्व का संहार करते हैं। अनेक प्रकार से इसकी सृष्टि करते हैं तथा इसका पालन भी आप करते हैं। आप स्वयं हि ब्रह्मा इत्यादि का रूप धारण करके क्रीडा करते हैं। जिस तरह मकड़ी अपने से ही जालों का निर्माण करके उसमें क्रीडा करती हैं उसी तरह से आप भी क्रीड़ा करते हैं।।२७॥

भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतिन्द्रतः । नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं यदनुप्रहात् ॥२८॥

अन्वयः— भगवच्छिक्षितम् अहं अतन्द्रितः करवाणि यदनुग्रहात् इह प्रजासर्गं इहमानः न वध्येयम् ।।२८।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके द्वारा अनुशिष्ट होकर मैं निरालस होकर आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ इस सृष्टि को करता हुआ भी मैं आपकी कृपा से इस जगत् के कर्तृत्व रूपी अभिमान में बद्ध न होऊँ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तत्कि सृष्टेरुद्विग्र एव तत्त्वज्ञानं प्रार्थयसे नेत्याह । भगवता त्वया शिक्षितमनुशिष्टमतिन्द्रतोऽनलसः सन् करिष्यामि । तर्हि किमनेन तत्त्वज्ञानेन तत्राह । यस्मादेवंभूतात्तवानुग्रहात्प्रजासर्गमीहमानः कुर्वत्रप्यहंकारादिभिर्वद्धो न भवेयमिति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि इस सृष्टि से उद्विग्न होकर ही तत्त्वज्ञान को प्राप्त करना चाहते हो क्या ? तो ऐसी बात नहीं है। आपके द्वारा उपदिष्ट होकर मैं बिना किसी आलस्य के आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ। अब प्रश्न होता है कि इस तत्त्वज्ञान से आपको कौन सा लाभ है ? तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा आपके इस प्रकार के अनुग्रह के द्वारा मैं इन प्रजाओं की सृष्टि करता हुआ भी कर्तृत्वाभिमान के कारण अहङ्कार आदि से बद्ध न होऊँ यही चाहता हूँ।।२८।।

यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् । अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥२९॥

अन्वयः— भो ईश सख्यु इव ते सखा कृतः, प्रजाविसर्गे ते परिकर्मणि अविक्लवः स्थितः जनम् विभजामि, अजमानिनः मे समुन्नद्धमदो मा भूत् इतिशेषः ।।२९।।

अनुवाद हे प्रभो ! आपने मित्र के समान मेरे हाथ को पकड़कर मुझे अपना मित्र बनाया है । प्रजाओं की सृष्टि रूपी आपकी सेवा में सावधानी पूर्वक लगा हुआ मैं जब पूर्व सृष्टि के गुणों तथा कर्मों के अनुसार जीवों का विभाग करने लगूँ उस समय मुझे अपने को अज मानकर कहीं उत्कट स्वातन्त्र्याभिमान न पैदा हो जाय एतदर्थ ही मैं तत्त्वज्ञान को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अवश्यं च मदो भविता सतु कंचित्कालं मा भूदिति प्रार्थयते- यावदिति । भो ईश, ते त्वया लौकिकस्य सख्युः सखेवाहं कृतः करस्पर्शनादिना ममत्वेन संमानितः सन् प्रजासर्गरूपे तव परिकर्मणि सेवायां स्थितोऽविक्लवोऽव्याकुल एव यावज्जनं विभजाम्युत्तममध्यमादिभेदेने सृजामि तावत्त्वत्संमानादहमजः स्वतन्त्र इति मानिनो मे समुन्नद्ध उत्कटो मदो मा भूत् । यद्वा मदो मा समुन्नद्ध मा समुन्नद्धाताम् । उद्रिक्तो न भवेदित्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस सृष्टि का कार्य करने लगने पर मुझको अभिमान हो सकता है। वह मद मुझको न हो इसी बात की मैं प्रार्थना कर रहा हूँ। इसी बात को यावत्॰ इत्यादि श्लोक से ब्रह्माजी ने कहा है। ब्रह्माजी ने कहा हे भगवन् आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, फिर भी एक लौकिक मित्र के समान आपने मेरे हाथ का स्पर्श करके मुझे अपना मित्र बना दिया है। अर्थात् आपने ममत्व पूर्वक मेरा सम्मान किया हैं। आपकी सेवा रूपी प्रजाओं की सृष्टि में सावधानी पूर्वक लगे हुए हम जब पूर्वजन्म के कर्मीं तथा गुणों के अनुसार जीवों का विभाग करू; उस समय मुझे यह सोचकर अभिमान उत्पन्न न हो जाय कि मैं तो परमात्मा के द्वारा सम्मानित हूँ। अतएव मैं भी अज हूँ अतएव स्वतंत्र हूँ। इस तरह से सोचकर मुझमें उत्कट मद न उत्पन्न होए। अथवा अभिमान मुझको मदमत्त न बना दे। अर्थात् मुझमें मद उद्रिक्त न हो जाय।।२९।।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥३०॥

अन्वयः— मे परं गुह्यं विज्ञानसमन्वितं यत् ज्ञानं तत् मया साङ्गं सरहस्यं गदितं गृहाण ।।३०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद अनुभव भक्ति तथा साधनों से युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूप का ज्ञान में तुम्हें बतला रहा हूँ उसे तुम ग्रहण करो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानं शास्त्रोत्थम् । विज्ञानमनुभवः । रहस्यं भक्तिः । सुगोप्यमपि वक्ष्यामीत्यादिनिर्देशात् तस्याङ्गं साधनम् ।।३०।।

• भाव प्रकाशिका

शास्त्र जन्य ज्ञान, अनुभव तथा भक्ति एवं साधनों से युक्त अत्यन्त गोपनीय भी अपने स्वरूप का ज्ञान मैं तुमको बतलाता हूँ उसे सुनो ॥३०॥

यावानाहं यथाभावो यदूपगुणकर्मकः । तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुप्रहात् ॥३१॥

अन्वयः -- अहं यावान् यथाभावः यद्रूपगुणकर्मकः, तथैव मदनुग्रहात् ते तत्त्वविज्ञानम् अस्तु ।।३१।।

अनुवाद— मैं स्वरूपत: जितना विस्तृत हूँ, मेरी जैसी सत्ता है, मेरे जितने रूप, गुण और कर्म हैं उन सबों को तुम मेरी कृपा से उसी प्रकार से जानो ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वहर्शनेप्यसमर्थोऽहं कथं ज्ञानाधिकारी स्यां तत्राह-यावानिति । यावान्स्वरूपतः । यथाभावो यादृक्सत्तावान् । यानि रूपाणि गुणाः कर्माणि च यस्य ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि यदि तुम यह कहो कि मैं तो आपका दर्शन ही करने में असमर्थ हूँ अतएव मैं ज्ञान का अधिकारी कैसे हो सकता हूँ ? तो श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरे स्वरूप तथा सत्ता के प्रकार को तुम मेरी कृपा के ही कारण यथार्थ रूप से इन सबों के साथ ही मेरे गुणों, रूपों तथा कर्मों को ठीक-ठीक जान लोंगे।।३१॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यदेतच्च योऽविशष्ट्येत सोऽस्म्यहम् ॥३२॥

अन्वयः— अग्रे अहमेवासम् अन्यत् यत् सदसत् परम् अहं तदा आसमेव अहं पश्चात् एतच्च यत् तदिप अहमेव, यः आविशिष्येत सः अहमेव अस्मि ॥३२॥



अनुवाद — सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था। जो कुछ भी स्थूल प्रपञ्च हैं और जो सूक्ष्म प्रपञ्च हैं, यह सब कुछ भी नहीं था। इन सबों से परे स्थूल तथा सूक्ष्म प्रपञ्च का कारणभूत जो प्रकृति है, वह भी नहीं थी। क्योंकि यह प्रधान शब्द वाच्य प्रकृति भी उस समय मुझमें ही लीन थी। सृष्टि से पूर्व मैं ही केवल था। सृष्टि के पश्चात् भी मैं हूँ और यह जो विश्व है वह भी मैं ही हूँ। सृष्टि काल के अन्त में प्रलय जब हो जायेगा उस समय भी मैं ही रहूँगा।।३२॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव सम्यगुपदिशन् यावानित्यस्यार्थं स्फुटयित- अहमिति । अहमेवाग्रे सृष्टेः पूर्वमासं स्थितः,नान्यित्किचित्, यत्सत्स्थूलमसत्सूक्ष्मं परं तयोः कारणं प्रधानम् । तस्याप्यन्तर्मुखतया तदा मय्येव लीनत्वात् । अहं च तदा आसमेव केवलं न चान्यदकरवम् । पश्चात्सृष्टेरनन्तरमप्यहमेवास्मि । यदेतिद्वश्चं तदप्यहमिस्म । प्रलये योऽविशष्येत सोऽप्यहमेव । अनेन चानाद्यनन्तत्वादिद्वतीयत्वाच्च परिपूर्णोऽहमित्युक्तं भवित ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में वर्णित अर्थ का ही अच्छी तरह से उपदेश करते हुए श्रीभगवान् **यावान् अहम्** का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं, कि सृष्टि से पहले मैं ही था, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था। यह जो कुछ भी स्थूल तथा सूक्ष्म प्रपञ्च है, वह तथा इस प्रपञ्च का कारणभूत प्रधान शब्द वाच्य प्रकृति भी नहीं थी। **यत्** सदसत्परम् इस पद के सत् शब्द से स्थूल प्रपञ्च को कहा गया है असत् शब्द से सूक्ष्म प्रपञ्च को कहा गया है। तथा परम शब्द से स्थूल तथा सूक्ष्म प्रपञ्च के कारणभूत प्रधान को कहा गया है। श्रीभगवान् ने बतलाया कि प्रकृति भी अन्तर्मुख होने के कारण उस समय मुझ में ही लीन थी।

आसम् पद के द्वारा श्रीभगवान् ने कहा कि सृष्टि से पूर्व मैं ही केवल था किसी दूसरी वस्तु की सृष्टि मैंने नहीं की थी। पश्चादहम् पद के द्वारा श्रीभगवान् ने कहा कि सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही हूँ। यह कहकर भगवान् ने सूचित किया कि संसार में जैसा कि देखा जाता है कि अङ्कुर के उत्पन्न हो जाने पर उसका कारण भूत बीज विनष्ट हो जाता है किन्तु जगत् रूपी कार्य के हो जाने पर भी मैं कार्य जगत् से पृथक कारण रूप से विद्यमान ही रहता हूँ।

यदेतच्च पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि यह जो दृश्य जगत् है वह भी मैं ही हूँ। तथा योऽविशिष्येत इस पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि प्रलय के हो जाने पर मैं ही बचा रहता हूँ। इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान् ने अपने को अनादि अनन्त तथा अद्वितीय बतलाकर यह कहा कि सम्पूर्ण जगत् में मैं ही परिपूर्ण हूँ।।३२।।

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मिन । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तम: ॥३३॥

अन्वयः ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत आत्मिन च न प्रतीयेत, तत, आत्मनो मायां विद्यात् यथामासः यथा तमः ।।३३।। अनुवाद विषय के नहीं रहने पर भी जो कुछ भी अनिर्वचनीय वस्तु अधिष्ठानभूत मुझमें प्रतीत होती है, तथा जिसके कारण सत् वस्तु की प्रतीति नहीं होती है, वह मेरी माया है। उदाहरण के लिए असत् भी द्विचन्द्र आदि की प्रतीति होती है और सत् भी राहु की प्रतीति नहीं होती है।

भावार्थ दीपिका

यथात्ममायायोगेनेत्यनेन मायाया अपि पृष्टत्वाद्वक्ष्यमाणोपयोगित्वाच्च मायां निरूपयति । ऋते अर्थं विनापि वास्तवमर्थं यद्यतः किमप्यनिरुक्तमात्मन्यधिष्ठाने प्रतीयेत सदिप च न प्रतीयेत, तत् आत्मनो मम मायां विद्यात् । यथा आभासो द्विचन्द्रादिरित्यर्थं बिना प्रतीतौ दृष्टान्तः । यथा तम इति सतोऽप्रतीतौ । तमो राहुर्यथा ग्रहमण्डले स्थितोऽपि न दृश्यते तथा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

बशात्ममायायोगेन इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से माया के स्वरूप के विषय में जिज्ञासा की है। किन्न श्रीभगवान् को अपने स्वरूप का उपदेश करना अभिप्रेत है। उस स्वरूप का निरूपण करने के लिए उपयोगी होने के कारण, भगवान् 'ऋतेऽर्थम् इत्यादि श्लोक के द्वारा माया के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं। जिसके कारण वस्तु के नहीं रहने पर भी उस सदसदिनविचनीय वस्तु की अधिष्ठान में प्रतीति होती है, और विद्यमान वस्तु की भी प्रतीति नहीं होती, उसी को मेरी माया जाननी चाहिए। इसका उदाहरण उपन्यस्त करते हुए श्रीभगवान् कहते है यथाभासो यथा तमः जैसे दो चन्द्र नहीं होते हैं किन्तु अज्ञानी व्यक्ति को दो चन्द्रों की प्रतीति होती है, यह अविद्यमान वस्तु की प्रतीति का उदाहरण है। रस्सी में भी सर्प की जो प्रतीति होती है, वह भी अविद्यमान वस्तु की प्रतीति का उदाहरण है। इसी तरह यथा तमः के तमस् शब्द के द्वारा राहु को कहा गया है। राहु का एक नाम तम है। जिस तरह से यद्यपि ग्रहमण्डल के अन्तर्गत राहु रहता है फिर भी उसकी प्रतीति नहीं होती है।

इसी तरह सम्पूर्ण प्रपञ्च जो प्रतीत हो रहा है वह बह्मव्यतिरिक्त होने के कारण मिथ्या है। फिर भी अविद्या के कारण सम्पूर्ण भ्रमों के अधिष्ठानभूत ब्रह्म में उसकी प्रतीति होती है। और सभी प्रतीतियों में अधिष्ठान रूप से ब्रह्म के रहने पर भी उसकी प्रतीति नहीं होती है। १३३॥।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३४॥

अन्वय: यथा महान्ति भूतानि उच्चावचेषु भूतेषु अनुप्रविष्टानि अप्रविष्टानि तथा तेषु अहमिप प्रविष्ट: अप्रविष्टश्च।।३४।। अनुवाद जैसे पञ्चभूतों से बने प्राणियों के छोटे-बड़े शरीरों में ये पाञ्चों महाभूत प्रविष्ट भी हैं और अप्रविष्ट भी हैं; क्योंकि वे शरीर उन पञ्चमहाभूतों से ही आरब्ध है। तथा वे उन सबों में पहले से ही कारण रूप से विद्यमान रहने के कारण अप्रविष्ट भी हैं, इसी तरह से उन प्राणियों के शरीर की दृष्टि से उन सबों के भीतर मैं आत्मा रूप से प्रविष्ट भी हूँ और आत्मदृष्टि से मुझसे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं होने के कारण उन सबों में मैं प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यथाभाव इत्येतत्स्पष्टयित । यथा महाभूतानि भौतिकेष्वनु सृष्टेरनन्तरं प्रविष्टानि तेषूपलभ्यमानत्वात् । अप्रविष्टानि च प्रागेव कारणतया तेषु विद्यमानत्वात् । तथा तेषु भूतभौतिकेष्वहं न च तेष्वहम् । एवंभूता मम सत्तेत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने इकतीसवें श्लोक में यथाभाव शब्द से अपनी सत्ता के प्रकार का जो निर्देश किया है उसी को स्पष्ट करते हुए वे कहते है जिस तरह सृष्टि के पश्चात् सभी भौतिक पदार्थों में महाभूत प्रविष्ट हैं, क्योंकि उन सभी पदार्थों में महाभूतों की उपलब्धि होती है। तथा पहले से ही उन सभी भौतिक पदार्थों में कारण रूप से विद्यमान होने के कारण अप्रविष्ट भी हैं, उसी तरह मैं भी सभी भूतों तथा भौतिक पदार्थों के भीतर आत्मा रूप से प्रविष्ट भी हूँ तथा स्वेतर समस्त वस्तुओं के कारण रूप से उन सबों में पहले से ही विद्यमान रहने के कारण उनमें अप्रविष्ट भी हूँ; इसी प्रकार की मेरी सत्ता है।।३४॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥

अन्वय: अन्वय व्यतिरेकाभ्यां तत्विज्ञासुना एतावदेव जिज्ञास्यं यत् सर्वत्र सर्वदा स्यात् ।।३५।। अनुवाद जिज्ञासु व्यक्ति को चाहिए कि वह अन्वय और व्यतिरेक रूपी साधन के द्वारा जिसकी सत्ता सर्वत्र तथा सर्वदा रहे वही आत्मा है। यह ब्रह्म है। यह ब्रह्म है इस प्रकार की अन्वय की पद्धित से तथा यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है इस व्यतिरेक निषेध की दृष्टि से, तथा सर्वस्वरूप तथा सर्वातीत रूपसे आत्मा (परमात्मा) ही सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान हैं, इस तरह से जानना ही अन्वय और व्यतिरेक विधि हैं। उस आत्मतत्त्व को जानने का साधन अन्वय और व्यतिरेक विधि ही है। ३५॥

भावार्थ दीपिका

साधनमाह । आत्मनस्तत्त्विजज्ञासुना एतावत्त्वमेव जिज्ञास्यं विचार्यम् । तदेवाह । अन्वयः कार्येषु कारणत्वेनानुवृत्तिः। कारणावस्थायां च तेभ्यो व्यतिरेकः । तथा जाग्रदाद्यवस्थासु तत्तत्साक्षितयान्वयः । व्यतिरेकश्च समाध्यादौ । एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा च तदेवात्मेति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

आत्मतत्त्व के ज्ञान के साधन का निर्देश करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं **एतावदेव इत्यादि** आत्मतत्त्व के जिज्ञासु व्यक्ति को इस बात का विचार अन्वय और व्यतिरेक विधि से करना चाहिए। सभी कार्य पदार्थों में कारण रूप से आत्मा की प्रतीति होना यही अन्वयविधि है। तथा कारणावस्था में आत्मतत्त्व उन सभी कार्यों से पृथक् ही रहता है।

तथा जा ग्राह्माद्यवस्थासु० इत्यादि इसी तरह जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इत्यादि सभी अवस्थाओं में परमात्मा साक्षी रूप से विद्यमान रहते हैं, यही परमात्मा का सर्वत्र तथा सर्वदा अन्वय है। तथा समाधि आदि की अवस्था में इन सबों से उनकी (परमात्मा) की प्रतीति होती है इसी को व्यतिरेक कहते है। इस तरह से अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा जिसकी सर्वत्र और सर्वदा स्थिति बनी रहती है, वहीं आत्मा है।

इस अन्वय और व्यतिरेक को स्पष्ट करते हुए तत्त्वदीपिकाकार कहते हैं जब कार्य उत्पन्न होते हैं उस समय उन सबों में ईश्वर की उपादान रूप से उसी तरह अनुगत प्रतीति होती है। जिस तरह कुण्डल इत्यादि कार्यों में सुवर्ण की अनुगत प्रतीति होती है। जिस समय अविकृत कारण रूप से परमात्मा विद्यमान रहते हैं उस समय सभी कार्यों का अभाव होने के कारण परमात्मा का अविकृत सुवर्ण के समान उन सबों से व्यतिरेक होता है।।३५॥

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना । भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥३६॥

अन्वयः— परमेण समाधिना एतन्मतं समातिष्ठ कल्पविकल्पेषु भवान् कर्हिचित् न विमुह्मति ।।३६।।

अनुवाद— ब्रह्माजी आप अपनी अविचल समाधि के द्वारा मेरे इस सिद्धान्त में पूर्ण रूप से निष्ठा कर लें। ऐसा करने से प्रत्येक कल्पों में सृष्टि करते रहने पर भी कभी आप में कर्तृत्वाभिमान का उद्रेक नहीं होगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यत्प्रार्थितं 'नेहमानः प्रजासर्गम्' इति तत्प्रसादीकरोति । एतन्मतं सम्यगनुतिष्ठ । समाधिना चित्तैकाग्र्येण । कल्पेषु ये विकल्पा विविधाः सृष्टयस्तेषु विमोहं कर्तृत्वाभिनिवेशं न यास्यतीति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हुए कहा था कि आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि सृष्टि की रचना करते हुए मुझको कभी कर्तृत्वाभिमान न उत्पन्न हो । उसी को वरदान रूप से प्रदान करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं एतन्मतम् इत्यादि अर्थात् आप अपनी अविचल समाधि के द्वारा मेरे इस सिद्धान्त में ही निष्ठित हो जायँ । ऐसा करने से सभी कल्पों में अनेक प्रकार की सृष्टियों को करते हुए आपको कभी भी अपने में कर्तृत्वाभिमान रूप स्वातन्त्र्य बुद्धि का उद्रेक नहीं होगा ॥३६॥

श्रीशुक उवाच

संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् । पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरूणद्धरिः ॥३७॥

अन्वयः जनानां परमेष्ठिनम् एवं सम्प्रदिश्य अजनः हिरः तस्य पश्यतः तद् आत्मनः रूपम् न्यरूणत् ।।३७।। अनुवाद प्रजाओं के परमाधिपित ब्रह्माजी को इस प्रकार से उपदेश देकर श्रीभगवान् उनके सामने से अपने उस रूप को छिपा लिए ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवं संप्रदिश्योपदिश्य । जनानां परमेष्ठिनं परमे आधिपत्ये स्थितं ब्रह्माणम् आत्मनस्तद्रूपं न्यरुणदन्तर्हितवान् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी सभी प्रजाओं के परमाधिपति हैं। उनको श्रीहरि ने उपर्युक्त प्रकार से उपदेश दिया और उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी की आँखां के सामने से अपने उस रूप को अन्तर्हित कर लिया ॥३७॥

अन्तहितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्चलिः । सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥३८॥

अन्वयः -- अन्तहितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः सर्वभूतमयः इदं विश्वं पूर्ववत् ससर्ज ।।३८।।

अनुवाद जिन श्रीभगवान् ने अपने रूप को ब्रह्माजी की आँखों से ओझल कर लिया था उन श्रीहरि को ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूर्वकल्प में विद्यमान सृष्टि के समान ही उन्होंने जगत् की सृष्टि की ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अन्तर्हित इन्द्रियार्थः प्रत्यक्षरूपं येन तस्मै बद्धाञ्जलिः सन् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने अपने जिस रूप को ब्रह्माजी को दिखाया था उस रूप को छिपा लिया । यह देखकर ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सभी भूतों की समष्टि रूप ब्रह्माजी ने पूर्वकल्प के अनुसार ही जगत् की सृष्टि की ॥३८॥

प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् । भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥३९॥

अन्वयः— एकदा प्रजापितः धर्मपितः प्रजानाम् भद्रम् अन्विच्छन् स्वार्थकाम्यया यमान् नियमान् अन्वितिष्ठत् ।।३९।। अनुवाद— एक बार धर्मपित ब्रह्माजी सभी प्रजाओं का कल्याण हो अपने इसी स्वार्थ को प्राप्त करने की इच्छा से यमों और नियमों का पालन किए ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तदनन्तरं पूर्वोक्तो ब्रह्मनारदसंवादः प्रवृत्त इत्याह- प्रजापतिरिति पञ्चभिः । प्रजानां भद्रमन्विच्छन्विमृशन् । सैव स्वार्थे काम्या स्वप्रयोजनेच्छा तया यमनियमानन्वतिष्ठत् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा ब्रह्माजी को उपर्युक्त प्रकार से आत्मोपदेश करने के पश्चात् ही ब्रह्मनारदसंवाद प्रवृत्त हुआ इस बात को बतलाने के लिए प्रजापति॰ इत्यादि पाञ्च श्लोकों को शुकदेवजी ने कहा है । ब्रह्माजी की यही इच्छा थी कि प्रजाओं का कल्याण हो । अपने इसी स्वार्थ की सिद्धि के लिए ब्रह्माजी ने यमों तथा नियमों का पालन किया ॥३९॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः । शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥४०॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः । महाभागवतो राजन्यितरं पर्यतोषयत्॥४९॥

अन्वयः— राजन् रिक्थादानाम् प्रियतमः महाभागवतः महामुनिः नारदः मायेशस्य विष्णोः मायां विविदिषन् शीलेन, प्रश्रयेण, दमेन च तम् पितरम् पर्यतोषयत् ।।४०-४१।।

अनुवाद हे राजन् ! उस समय उनके पुत्रों में सबसे प्रिय भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ महामुनि नारदजी माया के स्वामी भगवान् विष्णु की माया के स्वरूप को जानने की इच्छा से संयम, नियम तथा दम से अनुगत होकर ब्रह्माजी की सेवा किए और उनकी सेवा से ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

रिक्थादानां पुत्राणां मध्ये प्रियतमस्तं पितरं सेवमानः शीलादिना परितोषयामासेत्युत्तरेणान्वयः । किमिच्छन्विष्णोर्मायाँ विविदिषन् ।।४०-४१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के पुत्रों में नारदजी ब्रह्माजी को सर्वाधिक प्रिय थे। उन्होंने शील इत्यादि का पालन करते हुए ब्रह्माजी की सेवा की। नारदजी ब्रह्माजी से भगवान् विष्णु की माया के स्वरूप को जानना चाहते थे। नारदजी की सेवा से ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये।।४०-४१।।

तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् । देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥४२॥

अन्वयः — लोकानां प्रपितामहं पितरं तुष्टं निशाम्य देवर्षिः यान् भवान् माम् अनुपृच्छित (तान्) परिपप्रच्छ ।।४२।। अनुवाद — राजन् परीक्षित् लोकपितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न देखकर नारदजी उनसे उन्हीं प्रश्नों को पूछे जिन प्रश्नों को आप मुझसे पूछते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

निशाम्य दृष्ट्वा ज्ञात्वेत्यर्थः । मा माम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी कहते हैं कि अपने पिता ब्रह्मजी को सन्तुष्ट देखकर नारदजी ने उनसे उन्हीं प्रश्नों का पूछा जिन प्रश्नों को आप मुझसे पूछते हैं ॥४२॥

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् । प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥

अन्वयः— तस्मै पुत्राय प्रीतः भूतकृत् भगवता प्रोक्तम् दश लक्षणम् इदं भागवतं पुराणं प्राह ।।४३।।

अनुवाद— अपने पुत्र नारदजी से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट दश लक्षणों से युक्त इस भागवत पुराण का उपदेश दिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

भगवता चतुःश्लोक्या संक्षेपेण प्रोक्तं विस्तरेण प्राह । दश लक्षणानि लक्षणीया अर्था विद्यन्ते यस्मिस्तत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जिस चतुश्श्लोकी भागवत का संक्षेप में ब्रह्माजी को उपदेश दिया था उसी को दश अर्थी से युक्त भागवत पुराण का विस्तार से ब्रह्माजी ने उपदेश दिया ॥४३॥

नारदः प्राह मुनबे सरस्वत्यास्तटे नृप । ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥४४॥

अन्वयः— हे नृप ! नारदः सरस्वत्याः तटे परमं ब्रह्म घ्यायते अमिततेजस मुनये व्यासाय प्राह ।।४४।।

अनुवाद - राजन् ! जब निःसीम तेजस्वी मेरे पिता व्यासजी सरस्वती नदी के तट पर बैठकर परंब्रह्म का ध्यान कर रहे थे उस समय नारदजी श्रीमद्भागवत का उनको उपदेश दिए ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तत्संप्रदायतो भागवतं मया ज्ञातमित्याशयेनाह- नारद इति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मैंने इस भागवत पुराण को सम्प्रदाय की परम्परा से जाना है, इस बात को बतलाने के लिए शुकदेवजी ने नारदः इत्यादि श्लोक को कहा है। सर्वप्रथम श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को इसका उपदेश दिया। ब्रह्माजी ने नारदजी को और नारदजी ने मेरे पिता व्यास महर्षि को इसका उपदेश दिया और मैंने अपने पिता व्यासजी से इस पुराण को सुना है। यहाँ इस भागवत पुराण का सम्प्रदाय है। ॥४४॥

यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् । यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वय: यद् उत अहं त्वया पृष्ट: वैराजात् पुरुषात् इदम् यथा आसीत् तत् अन्यान् च प्रश्नान् कृत्स्नशः उपाख्यास्य ।।४५।।

अनुवाद — आपने मुझसे यह जो पूछा है कि वैराज पुरुष से उत्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् कैसा है ? तथा आपके दूसरे जो प्रश्न है । उन सबों का उत्तर मैं पूर्ण रूप से दूँगा ॥४५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्य के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

भागवतव्याख्यानेनैव त्वत्प्रश्नानामुत्तरं दास्यामीत्याह-यदुतेति । 'पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः' इत्यादिना वैराजात्पुरुषादिदं विश्वं कथमासीदिति यदहं त्वया पृष्टः तद्यथावदुपाख्यास्यामि शृण्विति ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदुत इस श्लोक के द्वारा शुकदेवजी ने कहा है कि श्रीमद्भागवत की व्याख्या के माध्यम से ही मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा। आपने यह जो पूछा है कि पुरुषावयवै: इत्यादि अर्थात् वैराज पुरुष के अङ्गों से ही लोकपालों के साथ पूर्वकल्पित इस जगत् की उत्पत्ति कैसे हुयी उसी का वर्णन मैं कर रहा हूँ उसे आप सुनिये ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।९।।



दसवाँ अध्याय

भागवत के दस लक्षण (भागवत के प्रतिपाद्य दश विषयों का निरूपण)

श्रीशुक उवाच

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः । मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥१॥

अन्वयः अत्र सर्गः विसर्गः, स्थानम् पोपणम्, ऊतयः मन्वन्तरईशानुकथा, निरोधः मुक्तिः आश्रयः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद इस श्रीमद्भागवत महापुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मृक्ति तथा आश्रय इन दश विषयों का वर्णन हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततो भागवतव्याख्याद्वारैव दशमे स्फुटम् । राजप्रश्नोत्तरं वक्तुमारेभे बादरायणिः ।।१।। दशलक्षणं पुराणं प्राहेत्युक्तं तानि दश लक्षानि दर्शयति-अत्रेति । मन्वन्तराणि ईशानुकथाक्षेति द्वन्द्वः । सर्गादयोऽत्र दशार्था लक्ष्यन्ते ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् श्रीमद्भागवत पुराण की व्याख्या के द्वारा ही दशवें तत्त्व के वर्णन में राजा परीक्षित् के प्रश्नों का उत्तर बतलाने के लिए श्रीशुकदेवजी ने कहना प्रारम्भ किया ॥१॥

नवें अध्याय में शुदेवजी ने कहा है कि दश लक्षणों (प्रतिपाद्य) विषयों वाले श्रीमद् भागवत पुराण का ब्रह्माजी ने नारदजी को उपदेश दिया । इसी का वर्णन अत्र सर्गः इत्यादि श्लोक से किया गया है । मन्वन्तरेशानुकथा पद में मन्वन्तरों और ईशानुकथा इस अर्थ में समाहार द्वन्द्वसमास है । इस महापुराण में सर्ग इत्यादि विषयों का वर्णन है ॥१॥

दशमस्य विशुद्ध्यर्थ नवानामिह लक्षणम् । वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्चसा ॥२॥

अन्वयः इह महात्मानः दशमस्य विशुद्ध्यर्थम् नवानाम् लक्षणम् इति श्रुतेनार्थेन च अञ्जसा वर्णयन्ति ॥२॥

अनुवाद— उपर्युक्त दश तत्त्वों में से दशवे आश्रयतत्त्व का ठीक-ठीक वर्णन करने के लिए शेष नव विषयों का वर्णन किया गया । इस अर्थ का प्रतिपादन महापुरुष श्रुतियों के आलोक में किया करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमर्थभेदाच्छास्रभेदः स्यात्तत्राह । दशमस्याश्रयस्य विशुद्धर्थं तत्त्वज्ञानार्थं नवानां लक्षणं स्वरूपम् । एकस्यैव प्राधान्यात्रायं दोष इत्यर्थः । नन्वत्र नैवं प्रतीयतेऽत आह । श्रुतेन श्रुत्यैव स्तुत्यादिस्थानेष्वञ्जसा साक्षाद्वर्णयन्ति । अर्थेन तात्पर्यवृत्त्या च तत्तदाख्यानेषु ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि अर्थों की भिन्नता के कारण शास्त्र का भेद होगा तो ऐसी बात नहीं है। उपुर्युक्त दस अर्थों में जो अन्तिम दसवाँ आश्रयतत्त्व है उसी के तत्त्वज्ञान के लिए अविशष्ट नव विषयों का यहाँ निरूपण किया गया है। इन दशो विषयों में से केवल दसवाँ ही तत्त्व प्रधान है अतएव यहाँ शास्त्र भेद की सम्भावना नहीं हो सकती है।

नन्वत्र नैवं **इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि यहाँ एक तत्त्व की प्रधानता प्रतीत नहीं होती है तो इस पर

कहते हैं श्रुतेनार्थेन **इत्यादि** स्तुतियों आदि के स्थान में श्रुति के द्वारा तथा विभिन्न आख्यानों में तात्पर्या वृत्ति के द्वारा भी इस अर्थ का वर्णन महात्माओं ने साक्षात् किया है। अञ्जसा पद का अर्थ सक्षात् है।।२।।

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः । ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥३॥

अन्वयः— भूतमात्रेन्द्रियां जन्म सर्गः उदाहृतः । गुणवैषम्यात् यत् पौरुषः विराट् रूपेण जन्म तत् विसर्गः ।।३।।

अनुवाद परमात्मा से प्रेरित होकर जो गुणों में वैषम्य रूपी क्षोभ उत्पन्न होता है और उसके कारण पञ्चमहाभूतों, तन्मात्राओं, इन्द्रियों अहंकार और महत् तत्त्व की उत्पत्ति को ही सर्ग कहते हैं । गुणों की विषमता के कारण ब्रह्म का जो विराट् के रूप में जन्म होता है उसे विसर्ग कहते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

सर्गादीनां प्रत्येकं लक्षणमाह। भूतान्याकाशादीनि, मात्राणि च शब्दादीनि, इन्द्रियाणि च, धीशब्देन महदहंकारौ । गुणानां वैषम्यात्परिणामाद्ब्रह्मणः परमेश्वरात्कर्तुर्भूतादीनां यद्विराड्रूपेण स्वरूपतश्च जन्म स सर्गः । विसर्गमाह । पुरुषो वैराजस्तत्कृतः पौरुषश्चराचरसर्गो विसर्ग इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से सर्ग इत्यादि प्रत्येक विषयों का लक्षण बतलाना प्रारम्भ करते हैं । सृष्टिकाल के आ जाने पर परमात्मा के द्वारा प्रेरित होकर प्रकृति के गुणों सत्त्वादि में जो वैषम्य उत्पन्न होता है, और उसके कारण पञ्चमहााभूतों, पञ्चतन्मात्राओं, इन्द्रियों, महान् तथा अहङ्कार की उत्पत्ति होती है, उसे ही सर्ग शब्द से कहा जाता है ।

गुणों की विषमता के कारण भूतों आदि का जो विराद् रूप से स्वरूपत: जन्म होता है, उसी को विसर्ग कहते हैं। पुरुष शब्द से वैराज को कहा गया है। उसके कारण पुरुष का चराचर के रूप में जो जन्म होता है उसको विसर्ग कहते हैं।।३।।

स्थितिवैंकुण्ठविजयः पोषणं तदनुप्रहः । मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥४॥

अन्वयः— वैकुण्ठविजयः स्थितिः, तदनुग्रहः पोषणम्, सद्धर्मः मन्वन्तराणि, कर्मवासनाः ऊतयः ।।४।।

अनुवाद निरन्तर नाशाभिमुख सृष्टि को एकमर्यादा में स्थिर रखने से ईश्वर की जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है उसी को स्थित (स्थान) कहते हैं। अपने भक्तों पर अनुग्रह करके उनका पालन करने को ही पोषण कहते हैं। परमात्मा के द्वारा अनुगृहीत मन्वतरों के स्वामियों के द्वारा पालन किए जाने वाले सद्धर्म को मन्वनतर कहते हैं। कर्मों की वासना को ऊति कहते हैं।।।।

भावार्थ दीपिका

वैकुण्ठस्य भगवतो विजयः सृष्टानां तत्तन्मर्यादापालनेनोत्कर्षः । स्थितिः स्थानम् । स्वभक्तेषु तस्यानुग्रहः पोषणम् । तदनुगृहीतानां सतां मन्वन्तराधिपतीनां धर्मः सर्द्धर्मः । कर्मणां वासनाः वेञ् तन्तुसंताने । ऊयन्ते कर्मभिः संतन्यन्त इत्यूतयः। यद्वा वृद्धर्थात्संश्लेषार्थाद्वाऽवतेर्धातोरिदं रूपम् । ऊयन्ते कर्मभिवृद्ध्यन्ते संश्लिष्यन्त इति वा ऊतय इत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सृष्ट पदार्थों को एक मर्यादा में जो भगवान स्थिर रखते हैं, यह उनका उत्कर्ष रूप विजय है उसी को स्थिति या स्थान कहते हैं। परमात्मा अपने भक्तों पर जो अनुग्रह करते हैं, उसी को पोषण कहते हैं। परमात्मा के द्वारा अनुगृहीत मन्वन्तरों के स्वामी जो मनुगण होते हैं, उनके द्वारा पालन किए जाने वाले सद्धर्म को ही मन्वन्तर कहते हैं। कर्मों की वासना की ऊति कहते हैं।

ऊति शब्द वेञ्: तन्तुसन्ताने धातु से व्युत्पन्न है। कर्मों के द्वारा जिसका विस्तार होता है, उसी को ऊति कहते हैं। यह ऊति शब्द का विग्रहार्थ है। अथवा: वृद्धयर्थक या संश्लेशार्थक अव रक्षणे धातु से ऊति शब्द व्युत्पन्न होता है। ऊयन्ते० इत्यादि कर्मों के द्वारा जिनकी वृद्धि होती है, अथवा संश्लेष होता है उन सबों को ऊति कहते हैं।।४।।

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् । पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥५॥ अन्वयः— नानाख्यानोपबृंहिताः हरेः अवतारानुचरितम् अस्यानुवर्तिनाम् पुंसां ईशकथाः प्रोक्ताः ।

अनुवाद— अनेक प्रकार के आख्यानों से युक्त श्रीहरि के विभिन्न अवतारों की कथा उनके भक्तों की गाथाएँ ही ईश कथा हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

हरेरवतारानुचरितमस्यानुवर्तिनां च सत्कथा ईशानुकथाः प्रोक्ता इत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अवतारों तथा श्रीभगवान् के भक्तों की जो कथा है उसे ही ईश कथा कहते हैं ॥५॥
निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः । मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥६॥

अन्वयः— आत्मनः शक्तिभिः सह अनुशयनम् निरोधः । अन्यथारूपं हित्वा स्वरूपेण व्यवस्थितिः मुक्तिः ।।६।।

अनुवाद — जब श्रीभगवान् योगनिन्द्र को स्वीकार करके शयन करते हैं, उस समय अपनी शक्तियों (उपाधियों) के साथ जीवों के उनमें लीन हो जाने को ही निरोध कहते हैं। अविद्या किल्पत कर्तृत्वादि का परित्याग करके जीवों का अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थित हो जाने को मुक्ति कहते हैं।।६।।

भावार्थ दीपिका

निरोधमाह । अस्यात्मनो जीवस्य हरेर्योगनिद्रामनु पश्चाच्छक्तिभिश्चोपाधिभिः सह शयनं लयो निरोधः । अन्यथारूपमविद्ययाऽध्स्तं कर्तृत्वादि हित्वा स्वरूपेण ब्रह्मतया व्यवस्थितिर्मुक्तिः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जब श्रीहरि योगनिद्रा को स्वीकार करके शयन कर जाते हैं उस समय जीव का अपनी उपाधियों के साथ परमात्मा में लीन हो जाने का ही निरोध कहते हैं। अविद्या के कारण जिनका आत्मा में अध्यास हो गया है उन कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि को परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाने को ही मुक्ति कहते हैं।।६।।

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते । स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥७॥

अन्वयः --- आभासश्च निरोधश्च यतः अध्यवसीयते स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मा इति शब्द्यते ॥७॥

अनुवाद जिसके द्वारा आभास तथा निरोध प्रकाशित होते हैं, वे आश्रय तत्त्व हैं। उनको ही परंब्रह्म और परमात्मा कहते हैं।।७।।

भावार्थ दीपिका

आभासः सृष्टिर्निरोधो लयश्च यतो भवत्यध्यवसीयते प्रकाशते च स परं ब्रह्मेति परमात्मेति प्रसिद्ध आश्रयः कथ्यते ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि को आभास कहते हैं तथा लय को निरोध कहते हैं। ये दोनों जिनसे होते है। अर्थात् प्रकाशित होते हैं, उन्हीं को परंब्रह्म और परमात्मा शब्द से अभिहित किया जाता है वे ही आश्रय नामक तत्त्व हैं ॥७॥

बोऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः । यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥८॥

अन्वयः अयम् आध्यात्मिकः पुरुषः स असौ एवाधिदैविकः यः तत्र उभयविच्छेदः पुरुषः हि आधिभौतिकः ।।८।। अनुवाद यह जो नेत्र आदि इन्द्रियों का अभिमानी द्रष्टा जीव है वही इन्द्रियों आदि के अधिष्ठातृ देवता सूर्य आदि के रूप में है । नेत्र गोलक आदि से युक्त जो देह है वही उन दोनों का विभाजक है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

आश्रयस्वरूपमपरोक्षानुभवेन स्पष्टं दर्शयितुमध्यात्मादिविभागमाह । योऽयमाध्यात्मिकः पुरुषश्चक्षुरादिकरणाभिमानी द्रष्टा जीवः स एवाधिदैविकश्चक्षुराद्यधिष्ठाता सूर्योदिः । तत्रैकस्मिन्नेवोभयो द्विरूपो विच्छेदो यस्मात्स आधिभौतिकश्चक्षुर्गोलकाद्युपलिक्षतो दृश्यो देहः पुरुष इति पुरुषस्य जीवस्योपाधिः । 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः' इत्यादिश्रुतेः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

आश्रय के स्वरूप को प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए इस श्लोक में अध्यात्म इत्यादि के भेद को बतलाते हैं। यह जो चक्षुरिन्द्रिय इत्यादि इन्द्रियों का अभिमानी आध्यात्मिकपुरुष द्रष्टा जीव है। वहीं आधिदैविक चक्षुरादि का अधिष्ठाता सूर्य इत्यादि रूप से विद्यमान है। इस तरह एक ही जीवात्मा में जिसके कारण दो रूपों का विभाग होता है वहीं आधिभौतिक चक्षुगोलक इत्यादि के द्वारा उपलक्षित होने वाला दृश्य देह वाला पुरुष है। यह जीव की उपाधि है। श्रुति भी कहती है स वा एष पुरुषोऽनरसमय: अर्थात् वह जीवात्मा ही अनन्मय तथा रसमय है।।८।।

एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे । त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय: ॥९॥

अन्वयः यदा एकतराभावे एकम् नोपलभामहे, त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय: ।।९।।

अनुवाद— चूकि इन तीनों में से एक का भी अभाव होने पर दूसरे दो की उपलब्धि नहीं होती है । इन तीनों को जो जानता है वह परमात्मा ही सबों का अधिष्ठान आश्रय है । अपना आश्रय वह स्वयम् ही है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

एकमेकतराभाव इत्येतेषामन्योन्यसापेक्षसिद्धित्वेनानात्मत्वं दर्शयित । तथािह । दृश्यं बिना तत्प्रतीत्यनुमेयं करणं न सिध्यित, नापि द्रष्टा, नच तद्विना करणप्रवृत्त्यनुमेयस्तदिधष्ठाता सूर्यादिः, नच तं बिना कारणं प्रवर्तते, नच तद्विना दृश्यमित्येवमेकतरस्याभावे एकं नोपलभामहे । तत्र तदा तित्रतयमालोचनात्मकेन प्रत्ययेन यो वेद साक्षितया पश्यित स परमात्मा आश्रयः । तेषामपि परस्परमाश्रयत्वमस्त्येवेति तद्यवच्छेदार्थं विशेषणम् । स्वाश्रयोऽनन्याश्रयः स चासावन्येषामाश्रयश्चेति। तथाच भगवान्वक्ष्यित-दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यित यः स्वतः खे । आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयानुभूत्याखिलसिद्धसिद्धः' इति । एतेनैव व्यभिचारित्वात्तेषां मायामयत्वमप्युक्तम् । अत एव 'पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकिल्पताः । लोकैरमुष्यावयवाः सपालैः' इत्यनेनोक्तो विरोधोऽपि परिहतः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

एकमेकतरामेभावे० इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि इन तीनों की परस्परापेक्ष सिद्धि होने के कारण इन तीनों में से कोई भी आत्मा नहीं है (क्योंकि दृश्य के बिना उसके अनुमेयत्व की सिद्धि नहीं हो सकती है और न द्रष्टा की सिद्धि हो सकती है और न तो उसके बिना करणों की प्रवृत्ति का अनुमान किया जा सकता है। इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता सूर्य आदि हैं। करण के बिना कारण की भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। और कारण के बिना दृश्य की प्रतीति नहीं हो सकती है। इस तरह से स्पष्ट है कि एक के बिना उससे भिन्न दो जो हैं उनकी उपलब्धि नहीं होती है। उन तीनों को जो आलोचनात्मक ज्ञान के द्वारा जनता है। अर्थात् साक्षी रूप से देखता है, वही परमात्मा है। वही आश्रय है।

यदि कहें कि आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा अधिभौतिक भी परस्पर में एक दूसर के आश्रय होते ही हैं, तो उन सबों से परमात्मा की भिन्नता बतलाने के लिए स्वाश्रयाश्रय: यह विशेषण दिया गया है। अर्थात् उन सबों में भी एक दूसरे के आश्रय बनते हैं किन्तु परमात्मा तो अपना आश्रय स्वयम् है। उसका आश्रय कोई दूसरा नहीं है।

ग्यारहवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय में भगवान् कहेंगे भी दृग्रस्पमार्कम् इत्यादि जैसे नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है, उसका विषय अधिभूत है, नेत्र गोलक में स्थित सूर्य देवता का अंश अधिदैव है। ये परस्पर एक दूसरे के आश्रय से सिद्ध होते हैं। इसीलिए अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीनों परस्पर में सापेक्ष हैं। किन्तु आकाश मण्डल में रहने वाला सूर्य मण्डल इन तीनों की अपेक्षा से रहित है, क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है। इसी तरह आत्मा परमात्मा भी उपर्युक्त तीनों भेदों का मूल कारण, उनका साक्षी औरउनसे परे हैं। वही अपने प्रकाश से समस्त सिद्ध पदार्थों की मूलसिद्धि है। उसी के द्वारा सबों का प्रकाश होता है। जिस तरह चक्षु के तीन भेद बताये गये हैं। उसी तरह त्वक, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका और चित्त आदि के भी तीन-तीन भेद होते हैं। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

अतएव॰ इत्यादि इसलिए यह जो कहा गया है कि उस विराट पुरुष के अवयवों से लोकपालों सहित लोकों की कल्पना की गयी है और लोकपालों सहित लोकों के द्वारा इस विराट पुरुष के अङ्गों की कल्पना की गयी है, इस कथन में होने वाले विरोध का भी परिहार हो जाता है ॥९॥

पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः । आत्मनोऽयमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥१०॥

अन्वयः— यदा असौ पुरुषः अण्डं विनिर्भिद्य सः विनिर्गतः । शुचिः सः आत्मनः अयनम् अन्विच्छन् शुचीः अपः अस्राक्षीत् ।

अनुवाद जब वह विराट् पुरुष ब्रह्माण्ड को फोड़कर उससे बाहर निकला तो वह अपने रहने का स्थान खोजने लगा । स्वभावत: शुद्ध उसने शुद्ध जलों (गर्भोंदक) की सृष्टि की ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

उक्तमेवाध्यात्मादिविभागं प्रपञ्चयन् **यदुताहं त्वा पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् । यथासीत्तदुपाख्यास्ये '** इति यत्प्रतिज्ञातं तदुत्पत्तिप्रकारमाह-पुरुष इत्यादिना । पुरुषो वैराजोऽण्डं विनिर्भिद्य पृथक्कृत्य विनिर्गतः, पृथक् स्थित इत्यर्थः । अयनं स्थानमन्विच्छन्विमृशन् । यतः शुचीः शुद्धा आपोगर्भोदकसंज्ञा अस्राक्षीत्ससर्ज ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अध्यात्म आदि विभागों का वर्णन करते हुए **पुरुषोण्डम्० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। इस स्कन्ध के नवें अध्याय में जो शुकदेवजी ने कहा है कि आप के द्वारा पूछे जाने पर मैंने यह जो कहा है कि वैराज पुरुष से ही इस जगत् की उत्पत्ति हुयी है, उस प्रतिज्ञा के अनुसार उसकी उत्पत्ति का प्रकार बतलाते हैं।

वैराजपुरुष उस ब्रह्माण्ड को फोड़कर उससे बाहर निकला वह अपने रहने के स्थान का विचार करते हुए स्वभावत: पवित्र गर्भोदक नामक शुद्ध जल की उसने सृष्टि की ॥१०॥

तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् । तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥११॥

अन्वयः— तासु स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् अवात्सीत् तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ।।११।। अनुवादः— उन अपने ही द्वारा सृष्ट जलों के भीतर वह विराट् पुरुष एक हजार वर्षों तक रहा । उस विराट् पुरुष रूप नर उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नार पड़ा और उस जल के भीतर निवास करने के कारण उस पुरुष का नाम नारायण पड़ा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अप्सु वासं नारायणनामनिरुक्त्या स्पष्टायित । तेन अप्सु वासेन । यद्यस्मात्पुरुषो नरस्तस्मादुद्धवो यासां ता नारा आपोऽयनमस्येति नारायण इत्यर्थ: । तदुक्तम्- 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः' इति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

नारायण इस नाम की निरुक्ति जल में निवास रूप है, इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए शुकदेवजी कहते हैं, तेन अर्थात् जलों के भीतर निवास करने के कारण । क्योंकि पुरुष शब्द वाच्य नर है । उस नर से जिन सबों की उत्पत्ति हुयी उन जलों का नाम नारा है । वे नारा शब्द वाच्य जल ही जिनके आश्रय हैं । उन वैराज पुरुष का नाम नारायण है ।

तदुक्तम् आपो नारा॰ इत्यादि कहा भी गया है कि जलों को नारा कहा गया । जल पुरुष शब्द वाच्य नर से उत्पन्न है । सर्वप्रथम वे नारा शब्द वाच्य जल ही उसके आश्रय बने अतएव उस वैराज पुरुष का नाम नारायण है ॥११॥

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च । यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥१२॥

अन्वयः - यदनुग्रहतः द्रव्यं, कर्म च कालश्च, स्वभावः, जीव एव च सन्ति यदुपेक्षया न सन्ति ।।१२।।

अनुवाद— भगवान् नारायण की ही कृपा से द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव तथा जीव हैं और उनके द्वारा उपेक्षा कर दिए जाने पर किसी की भी सत्ता नहीं रहती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रभावमाह । द्रव्यमुपादानम् । कर्मादीनि निमित्तानि । जीवो भोक्ता । यस्यानुग्रहात्सिन्ति, कार्यक्षमा भवन्तीत्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण के प्रभाव को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा भगवान् नारायण के ही अनुग्रह से उपादान भूत द्रव्य निमित्त स्वरूप कर्म आदि तथा उन सबों के भोक्ता जीव ये सबके सब कार्य करने में समर्थ बने रहते हैं ॥१२॥

एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः । वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजित्रधा ॥१३॥

अन्वयः योगतल्पात् समुत्थितः देवः एकः नानात्न्वम् अन्विच्छ हिरण्मयं वीर्यं त्रिधा व्यस्जत् ।।१३।।

अनुवाद— योगनिद्रा से जगने के पश्चात् भगवान् नारायण ने एक से अनेक होने की इच्छा की और अपनी माया के द्वारा उन्होंने अपने हिरण्यमयवीर्य जो ब्रह्माण्ड का बीज स्वरूप है उसको तीन भागों में विभक्त कर दिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

योग एव तस्य शय्या तस्मात् । वीर्यं गर्भरूपं देहम् । हिरण्मयमिव प्रकाशबहुलम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

योग रूप शय्या से जगने के बाद भगवान् ने एक से अनेक होने की इच्छा से वीर्य अर्थात् गर्भ रूपी देह को जो सुवर्ण के समान प्रकाश बहुल था, उसको तीन भागों में विभक्त कर दिया । इस श्लोक में गर्भ शब्द से चतुर्दश भुवनात्मक समिष्ट देह को कहा गया है। मनु ने कहा भी है- अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपास्त्रत्। तदण्डमभवदौमं सहस्रार्कसमाद्युति ।। अर्थात् भगवान् नारायण ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की और जल में ही उन्होंने अपने वीर्य का आधान किया वह वीर्य हजारों सूर्य के समान देदीप्यमान सुवर्णमय ब्रह्माण्ड बन गया ॥१३॥ अधिदेवमथाध्यात्ममिधभूतिमिति प्रभुः । अथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥१४॥

अन्वयः अधिदैवम् अथ अध्यात्मम् अधिभूतम् इति प्रभुः एकं पौरुषंवीयं यथा त्रिघा अभिद्यत तच्छ्णु ।।१४।। अनुवाद समर्थ श्रीभगवान् ने अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत इन तीन भागों में एक ही पुरुष को जैसे विभक्त किया उसे आप सुनें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैष प्रपञ्चः अथेत्यादिना ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी उपर्युक्त विभाग का विस्तार किया गया है ॥१४॥

अन्तः शरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः । ओजः सहोबलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥१५॥

अन्वयः— अन्तः शरीरे विचेष्टतः पुरुषस्य आकाशात् ओजः सहः बलं जज्ञे ततः महानसुः प्राणः ॥१५॥

अनुवाद— शरीर के भीतर अनेक प्रकार की चेष्टा करने के कारण उसमें विद्यमान आकाश से इन्द्रियबल, मनोबल और शरीर बल की उत्पत्ति हुयी इन सबों से इन सबों के राजा प्राण की उत्पत्ति हुयी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तः शरीरे य आकाशस्तस्मात्क्रियाशक्त्या तत्र विविधं चेष्टमानस्य सतः । ओज इन्द्रियशक्तिः । सहो मनः शक्तिः। बलं देहशक्तिः । ततः शक्त्यात्मकात्सूक्ष्माद्रूपात्प्राणः सूत्राख्यः । महान्मुख्यः । असुः प्राणः सर्वेषाम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

शरीर के भीतर विद्यमान जो आकाश था उसमें अनेक प्रकार की चेष्टाओं को करने वाले पुरुष से ओज अर्थात् इन्द्रियशक्ति सह अर्थात् मन:शक्ति और बल अर्थात् देहशक्ति की उत्पत्ति हुयी ।

ततः शक्त्यात्मकात् इत्यादि उसके पश्चात् शक्ति स्वरूप सूक्ष्म रूप से सूत्र शब्द वाच्य प्राण की उत्पत्ति हुयी । उन सबों में मुख्य प्राण ही है ॥१५॥

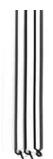
अनु प्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्वजन्तुषु । अपानन्तमपानन्ति नरदेविमवानुगाः ॥१६॥

अन्वयः -- नरदेवम् अनुगा इव सर्वजन्तुषु यं प्राणान्तं प्राणाः अनुप्राणन्ति अपानन्तम् अपानन्ति ।।१६।।

अनुवाद— जिस तरह राजा के भृत्य राजा के पीछे-पीछे चलते हैं उसी तरह सभी प्राणियों के शरीर में प्राण के प्रबल रहने पर सभी इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं और प्राण जब मन्द हो जाता है तो इन्द्रियाँ भी मन्द पड़ जाती हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

महत्त्वं दर्शयति । प्राणा इन्द्रियाणि यं प्राणन्तं चेष्टां कुर्वन्तमनु पश्चात् प्राणन्ति चेष्टां कुर्वन्ति । अपानन्तं चेष्टां त्यजन्तमनु अपानन्ति चेष्टां त्यजन्ति । राजानमनु भृत्या इव ।।१६।।





भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्राण की मुख्यता का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने कहा कि शरीर के भीतर जब प्राण चेष्टाएँ करता रहता है तो सारी इन्द्रियाँ भी चेष्टा करती रहती हैं। जब प्राण चेष्टा करना छोड़ देता है तो इन्द्रियाँ भी चेष्टा करना छोड़ देती हैं। यह ठीक उसी तरह से होता है जिस तरह से लोक में भृत्य जो हैं वे अपने स्वामी का अनुकरण करते हैं।।१६।।

प्राणेन क्षिपता क्षुतृडन्तरा जायते प्रभोः । पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥१७॥

अन्वय:— क्षिपता प्राणेन प्रभो: अन्तःक्षुत् तृड् आजायते स्म पिपासतः जक्षतश्च प्राक् मुखं निरभिद्यत ।।१७।।

अनुवाद— प्राणों की गति तीब्र होने पर विराट् पुरुष को भूख तथा प्यास का अनुभव हुआ । खाने-पीने की इच्छा होने पर सर्वप्रथम, उनके शरीर में मुख उत्पन्न हुआ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

क्षिपता चालयता निमित्तेन क्षुत्तृडादिकम् । प्रभोरिति विराड्जीवाभेदेनोपासनार्थमुक्तम् । आजायतेस्म । ततो जक्षतः, भक्षयितुमिच्छत इत्यर्थः । प्राक् प्रथमम् । निरभिद्यत विभक्तमभूत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जब वह प्राण अपनी प्राणन किया रूप व्यवहार करने लगा तो उस विराट् पुरुष को भूख तथा प्यास अदि की अनुभूति हुयी। प्रभो: पद के द्वारा विराट् तथा जीवों में अभेद का प्रतिपादन उपासना के लिए किया गया है। आजायते स्म का अर्थ है उत्पन्न हुआ । जक्षतः का अर्थ है खाने की इच्छा होने पर सर्वप्रथम उसके शरीर में मुख प्रकट हुआ ॥१७॥

मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते । ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥१८॥

अन्वयः मुखतः तालु निर्भिन्नं तत्र जिह्वा उपजायते । ततः नानारसः जज्ञे यः जिह्वया अधिगम्यते ।।१८।।

अनुवाद— मुख से तालु निकला और तालु से रसनेन्द्रिय निकली उसके पश्चात् अनेक प्रकार के रस उत्पन्न हुए और जिन सबों का ग्रहण रसनेन्द्रिय करती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ताल्विधष्ठानम्, जिह्वेन्द्रियम्, नानारसो विषय:, वरुणश्च देवता ज्ञातव्या । एवं सर्वत्राधिष्ठानमिन्द्रियं देवता विषय इत्येतच्चतुष्टयमनुक्तमप्यूह्मम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

तालु ही अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है अनेक प्रकार के रस विषय हैं और वरुण ही रसनेन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता हैं। इसतरह से सर्वत्र नहीं कहने पर भी अधिष्ठान, इन्द्रिय, देवता तथा विषय इन चारों को जानना चाहिए ॥१८॥

विवक्षोर्मुखतो भूम्रो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः । जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥

अन्वयः - विवक्षोः भूम्नः मुखतः बह्निः वाक् तयोः व्याहतं, तस्य जले वै सुचिरं निरोधः समजायत ।।१९।।

अनुवाद जब विराट् पुरुष की बोलने की इच्छा हुयी तो उनके मुख से वागिन्द्रिय, उसके अधिष्ठतृ देवता अग्नि और दोनों का उच्चारण ये तीनों प्रकट हुए । उसके पश्चात् वे बहुत समय तक जल में ही रुके रहे ॥१९॥

विवक्षोर्वक्तुमिच्छोः मुखत एव । विहर्देवता, वागिन्द्रियम्, व्याहृतं भाषणम् । तयोरितीन्द्रियदेवताधीनत्वं कर्मणो दर्शयति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष की बोलने की इचछा होने पर उनके मुख से ही अग्नि देवता, वागिन्द्रिय, और उन दोनों का उच्चारण व्यवहार इन तीनों की उत्पत्ति हुयी। क्योंकि इन्द्रिय तथा इन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता के अधीन वाणी का व्यापार होता है। इस बात को इस श्लोक के द्वारा बतलाया गया है ॥१९॥

नासिके निरिभद्येतां दोधूयित नभस्वित । तत्र वायुर्गन्यवहो घ्राणो निस जिघृक्षतः ॥२०॥

अन्वयः— नभस्वित दोधूयित नासिके निरिभद्येताम् । तत्र जिघृक्षतः निस गन्धवहो वायुः घ्राणः ।।२०।।

अनुवाद— जब श्वास का वेग बढ गया तो उस पुरुष की दोनों नाकें, उत्पन्न हो गयीं । जब उनको सूंघने की इच्छा हुयी तो उनकी नाक में घ्राणेन्द्रिय प्रवेश कर गयी और उनकी नाक से ही गन्ध वहन करने वाले वायु देवता प्रकट हुए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नभस्वित प्राणवायौ दोधूयित दोधूयमानेऽत्यन्तं प्रचलित सित । तत्र नासिकायां वायु**र्देवता गन्धं वहतीति तथा । अनेन** गन्धो विषयो दर्शित: । घ्राण इन्द्रियम् । जिघृक्षतो गन्धं ग्रहीतुमिच्छत: ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

जब उस पुरुष की प्राण वायु अत्यधिक चलने लगी तो उसकी नाक निकल आयी । उसी से गन्ध का वहन करने वाले वायु देवता प्रकट हुए । इस तरह घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध को बतलाया गया है । नाक से ही घ्राणेन्द्रिय की भी उत्पत्ति हुयी । जिघृक्षतः का अर्थ है सूंघने की इच्छा होने पर ।।२०।।

यदात्मिन निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः । निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥२१॥

अन्वयः यदा निरालोकम्, आत्मिन, आत्मानं च दिदृक्षतः तस्य अक्षिणी हि भिन्ने ज्योतिश्चक्षुर्गुण ग्रहः ।।२१।। अनुवाद पहले विराट् पुरुष के शरीर में प्रकाश नहीं था। किन्तु जब उसकी अपने शरीर को तथा अन्य वस्तुओं को भी देखने की इच्छा हुयी तो उसके शरीर में दोनों आँखें निकल आयीं। उसके पश्चात् उससे सूर्य, चक्षुरिन्द्रय और उनके गुण रूप का ग्रहण भी प्रकट हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

निरालोकं प्रकाशशून्यमासीदिति शेषः । निर्मिक्षकिमितिवदव्ययीभावः । तदा आत्मानं देहं चकारादन्यच्च वस्तु दिदृक्षतः। अक्षिणी स्थानम्, ज्योतिरादित्यो देवता, चक्षुरिन्द्रियम्, ततो गुणस्य रूपस्य ग्रहो ग्रहणम् । अनेक रूपं विषयो दर्शितः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

प्रकाश से रहित आत्मा के होने पर उस विराट् पुरुष ने अपने शरीर तथा दूसरी वस्तुओं को जब देखना चाहा, उस समय उसके शरीर में दोनों आँखें निकल आयीं। उसके पश्चात् उन आखों में ज्योति: शब्द वाच्य चक्षुरिन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता सूर्य, चक्षुरिन्द्रय और चक्षुरिन्द्रिय के विषय रूप ये तीनों प्रकट हो गये।।२१॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्ति झिघृक्षतः। कणौं च निरिभद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणब्रहः ॥२२॥

अन्वयः - ऋषिभिः बोध्यमानस्य तदा आत्मनः जिघृक्षतः कर्णौ निर्भिद्येताम् दिशः, श्रोत्रं गुणग्रहः ।।२२।।

अनुवाद वेद नामक ऋषियों द्वारा जगाये जाने पर उनको सुनने की इच्छा हुयी तो उनके दोनों कान श्रोत्रेन्द्रिय, उनकी अधिष्ठातृ देवता दिशाएँ प्रकट हुयीं । उसी से शब्द नामक गुण का ग्रहण होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिभिर्वेदैर्वोध्यमानस्य । तदात्मनः प्रबोधनं ग्रहीतुमिच्छतः । ततो गुणग्रहः शब्दस्य ग्रहणम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जब वेद नामक ऋषियों ने उस विराट् पुरुष की स्तुति की उस समय उस विराट् पुरुष को उस प्रबोधन को जानने की इच्छा हुयी। उसी समय उसके उस शरीर से दोनों कान प्रकट हो गये और उसके पश्चात् श्रवणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता दिशाएं श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्द प्रकट हुए उसी से शब्द का ग्रहण होता है ॥२२॥

वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम्। जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां लोम महीरुहाः॥ तत्र चान्तर्बिहर्वातस्त्वचालब्यगुणो वृतः ॥२३॥

अन्वयः— वस्तुनः मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् जिघृक्षतः त्वक् निर्भिन्ना, तस्यां लोममहिरुहाः, तत्र च अन्तः बिहः वातः त्वचावृतः लब्धगुणः ॥२३॥

अनुवाद उस विराट् पुरुष ने वस्तुओं की कोमलता, कठिनता, हलकापन, भारीपन उष्णता और शीतलता को जब जानना चाहा तो उसके शरीर में चर्म पैदा हो गया। पृथिवी में से जैसे वृक्ष निकलते हैं, उसी तरह से उसके शरीर से रोएँ प्रकट हो गये और उसके भीतर बाहर रहने वाली वायु भी प्रकट हुयी। उसके पश्चात् त्विगिन्द्रिय भी प्रकट हुयी उससे विराट् पुरुष को स्पर्श का ज्ञान होने लगा।।२३।।

भावार्थ दीपिका

मृदुत्वं च काठिन्यं च लघुत्वं च गुरुत्वं च आ उष्णत्वमीषदुष्णत्वं च शीततां चेत्यर्थः । यद्यप्यत्युष्णत्वमपीन्द्रियविषय एव तथापि तस्य जिघृक्षाभावादोष्णत्वमित्युक्तम् । गुर्वुष्णेति पाठे यणादेशरछान्दसः । वस्तुन एतान् धर्मान् जिघृक्षतस्त्वङ् निर्मिन्ना । त्विगिन्द्रियाधिष्ठानं चर्म जातिमत्यर्थः । तस्यां रोमाणीन्द्रियं, महीरुहाश्च देवता जाताः । वस्तुनि हस्तेनातोलिते लघुत्वगुरुत्वयोर्ज्ञानात्तयोरिप त्विगिन्द्रियविषयत्विमिति पौराणिकाः । तत्र त्वच्यन्तर्बिष्ठ वातो वृत आवृत्य स्थितः । कर्तिर निष्ठा। कथंभूतः । त्वचा लब्धो गुणः स्पर्शो येन । अयमर्थः-त्विगिन्द्रियमेव बहिः कण्डूतिसिहतं स्पर्शं गृह्वल्लोमशब्देनोच्यते, तत्र वातो देवता । तथाच तृतीये वक्ष्यित 'त्वचमस्य विनिर्धिन्नां विविशुर्धिष्णयमोषधीः । अंशोन लोमिभः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ।। निर्धिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालाऽनिलोऽविशत् । प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते 'इति । तत्र चर्मोपलिक्षता त्विगत्यर्थः । प्राणेनांशेनित, प्राणावायुव्याप्तेन त्विगिन्द्रयेणेत्यर्थः । वहवृचश्रुतौ त्वेक एवांशो निर्दिष्टः 'त्वङ् निरिभद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयः' इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

मृदुकाठिन्यलघु गुर्वोष्णशीतताम् इस समस्त पद का विग्रह है मृदुत्वं च काठिन्यं च लघुत्वं च गुरुत्वं च आउष्णत्वम् ईषदुष्णत्वम् च शीततां च । अर्थात् कोमलता, कठिनता, हलकापन, भारीपन तथा शीतता इन सबों को जब जानने की इच्छा विराट् पुरुष की हुयी। यद्यपि उष्णता भी त्विगिन्द्रिय का विषय है फिर भी उसको जानने की इच्छा नहीं होने के कारण शुकदेवजी ने आउष्णत्व ओष्णत्व कहा । गुर्वृष्ण में यणादेश छान्दस (वैदिक) है । वस्तु के इन धर्मों को जानने की इच्छा होने पर विराट् पुरुष के शरीर में चर्म उत्पन्न हुआ । चर्म (चमड़ा) त्विगिन्द्रिय का अधिष्ठान है । उस चर्म में ही रोम, त्विगिन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृ देवता वृक्ष उत्पन्न हुए ।

वस्तुनि० इत्यादि जब वस्तु को हाथ से उठाया जाता है तो उस वस्तु के हलकापन भारीपन का ज्ञान होता है, अतएव पौराणिकों का मानना है कि हल्कापन उस चर्म के भीतर और बाहर भी वायु उसको आवृत करके स्थित हो गया । वृत: पद में कर्ता के अर्थ में निष्ठार्थं प्रत्यय हुआ है । उसी के द्वारा त्विगिन्द्रिय के गुण स्पर्श का ज्ञान होता है ।

अथमर्थ: इत्यादि कहने का अभिप्राय है कि त्विगिन्द्रिय ही बाहर कण्डूति (खुजलाने) के साथ स्पर्श का ग्रहण करता है। उसी को रोम शब्द से कहा जाता है। त्विगिन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता वायु है। भीतर और बाहर स्पर्श का ज्ञान कराने वाला वह त्वक् शब्द से अभिहित किया जाता है। त्विगिन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता वायु हैं।

तीसरे स्कन्थ के छठे अध्याय के अठारहवें और सोलहवें श्लोक में कहंगे भी **त्वचमस्य इत्यादि** अर्थात् विराट् शरीर का चर्म उत्पन्न हुआ उसमें अपने अंश रोमों के साथ ओषधियाँ स्थित हुयी। उन रोमों के ही द्वारा मनुष्य खुजली आदि का अनुभव करता है।

और निर्भिन्नातस्य • इत्यादि श्लोक में कहा गया है कि उस विराट् शरीर में त्वचा उत्पन्न हुयी उसमें अपने अंश त्विगिन्द्रिय के साथ वायु स्थित हुआ । उस त्विगिन्द्रिय से ही जीव स्पर्श का अनुभव करता है । इस श्लोक में चर्माणि पद से त्विगिन्द्रिय को उपलक्षित किया गया है । प्राणेनांशेन पद का अर्थ है प्राणवायु से व्याप्त त्विगिन्द्रिय के द्वारा वह्व्चश्रुतौ • इत्यादि ऋग्वेदीय ऐतरोयोपनिषत् में तो एक ही अंश का निर्देश किया गया है । वहाँ कहा गया है कि विराट् पुरुष से चर्म निकला, चर्म से रोएँ निकले तथा रोमों से ओषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रकट हुयीं ॥२३॥

हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया । तयोस्तु बलिमन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥२४॥

अन्वयः नानाकर्मचिकीर्षया तस्य हस्तौ रुरुहतुः तयोस्तु बलम्, इन्द्रश्च, उभयाश्रयम् आदानम् ।।२४।।

अनुवाद — जब विराट् पुरुष को अनेक प्रकार के कर्मों को करने की इच्छा हुयी तो उनके दोनों हाथ निकल आये उन हाथों में ग्रहण करने की शक्ति पाणीन्द्रिय और उनके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र प्रकट हुए और उन दोनों के आश्रय से होने वाला ग्रहण रूप कर्म भी प्रकट हुआ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

रुरुहतुर्निर्भित्रौ । बलिमिन्द्रियम्, इन्द्रो देवता, तदुभयाश्रयमादानं कर्म ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

रुरुतुः पद का अर्थ है निकल आये । बल शब्द पाणीन्द्रिय का बोधक है । पाणीन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता इन्द्र हैं तथा उन दोनों के अधीन किया जाने वाला आदान (ग्रहण) कर्म भी उसी से प्रकट हुआ ॥२४॥

गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् । पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥२५॥

अन्वयः अभिकामिकाम् गतिं जिगीषतः पादौरुरुहाते । पद्भ्यां स्वयं यज्ञः नृभिः कर्मभिः हव्यं क्रियते ।।२५।। अनुवाद जब विराट् पुरुष को अपने अभीष्ट स्थान में जाने की इच्छा हुयी तो उनके शरीर में दोनों पैर निकल आये । उन दोनों चरणों के साथ ही पादेन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता के रूप में यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु स्थित हो गये । उनमें ही चलना रूप कर्म प्रकट हुआ । मनुष्य पादेन्द्रिय से ही चलकर यज्ञ सामग्री (हव्य) को एकत्रित करते हैं ॥२५॥

अभिकामिकामभीष्टां हितामित्यर्थः । पद्भ्यां सह यज्ञो विष्णुरेव स्वयं तदिधष्ठात् रूपेण स्थितः । कर्मभिरिति गत्याख्या कर्मशक्तिरिन्द्रियमुक्तम् । हव्यं क्रियत इति गतिप्राप्यं यज्ञार्थं द्रव्यं विषय इत्युक्तम् । नृभिरिति व्यष्टिजीवेष्वपीयमेव रीतिरिति दर्शयन्नराधिकारित्वं यज्ञादीनां दर्शयति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अभिकामिक पद का अर्थ है अभीष्ट । विराट् पुरुष को अपने अभीष्ट अर्थात् हितकर स्थान पर जाने की इच्छा हुयी तो उनके शरीर से दोनों पैर निकल गये । पैरों के साथ यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु पैरों के अधिष्ठातृ देवता हो गये । कर्मिभ: पद के द्वारा गमन नामक कर्म शक्ति सम्पन्न पादेन्द्रिय को कहा गया है । पैरों से ही चलकर यज्ञ सामग्री हव्य को मनुष्य एकत्रित करते हैं । इसके द्वारा पादेन्द्रिय के विषय को बतलाया गया है । नृभि: पद का अभिप्राय है कि व्यष्टि जीवों की भी यही रीति है । इस बात को बतलाते हुए मनुष्यों को यज्ञों आदि का अधिकारी बतलाया गया है ॥२५॥

निरभिद्यत शिश्रो वै प्रजानन्दामृतार्थिनः । उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥२६॥

अन्वयः प्रजानन्दामृतार्थिनः वै शिश्नः निरभिद्यत उपस्थः तदुभयाश्रयम् कामानां प्रियम् आसीत् ।।२६।।

अनुवाद जब उस विराट् पुरुष को सन्तान, आनन्द तथा स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा हुयी तो उसके शरीर में लिङ्ग निकल आया। उससे उपस्थेन्द्रिय तथा उसके अधिष्ठाता प्रजापति देवता तथा दोनों के अधीन रहने वाले काम सुख का आविर्भाव हुआ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रजा अपत्यमानन्दोरितरमृतं स्वर्गीद तदर्थिनः शिश्नोऽधिष्ठानमुपस्थिमिन्द्रियम् प्रजापितश्चासीदिति ज्ञेयम् । तदुभयाश्रयं कामानां संबन्धि प्रियं सुखम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रजासन्तान को कहते हैं, आनन्द शब्द से रित कही गयी हैं, और अमृत शब्द से स्वर्गादि के कहा गया है। विराट् पुरुष को इन सबों को प्राप्त करने की जब इच्छा हुयी तो उसके शरीर से लिङ्ग निकल आया। उसी से उपस्थेन्द्रिय, उपस्थेन्द्रिय की अधिष्ठातृ देवता प्रजापित और इन दोनों के आश्रित कामसुख उत्पन्न हुआ।।२६॥

उत्सिमृक्षोर्घातुमलं निरिभद्यत वै गुदम् । ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥२७॥

अन्वयः— धातुमलम् उत्सिसृक्षोः वै गुदम् निरिभद्यत । ततः पायुः ततो उत्सर्ग उभयाश्रयः ।।२७।।

अनुवाद— जब विराट् पुरुष को धातुमल का त्याग करने की इच्छा हुयी तो उसके शरीर में गुद अर्थात् पाय्विन्द्रय का अधिष्ठान निकल आया। उसके पश्चात् पाय्विन्द्रिय उसके अधिष्ठता मित्र देवता तथा दोनों का उत्सर्ग भी प्रकट हुआ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

घातुमलं भुक्तान्नादीनामसारांशं त्यक्तुमिच्छोः । गुदपायुमित्रोत्सर्गा अधिष्ठानेन्द्रिय देवताविषयाः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

खये-पिये हुए अन्न आदि के सारहीन भाग को धातुमल कहते हैं । जब विराट् पुरुष को मल त्याग करने की इच्छा हुयी तो उसके शरीर में गुद (मलद्वार) प्रकट हो गया । उसी में पायु इन्द्रिय, मिन्न देवता तथा इन दोनों के अधीन तथा मल परित्याग ये तीनों प्रकट हुए । मल परित्याग करना ही पायु इन्द्रिय का विषय है ॥२७॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः । तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्तवमुभयाश्रयम् ॥२८॥

अन्वयः— पुर्याः पुरः आसिसृप्सोः नाभिद्वारम् निरिभद्यतं तत्र अपानः ततः मृत्युः उभयाश्रयम् पृथक्त्वम् ॥२८॥ अनुवाद — जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की इच्छा हुयी तो नाभिद्वार प्रकट हुआ । उससे अपान और उससे मृत्यु देवता प्रकट हुए । उन दोनों के अधीन ही प्राण तथा अपान का पार्थक्य (मृत्यु) होता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

पुर्या देहात्पुरो देहान्तराणि आसिसृप्सोः सर्वतो गन्तुमिच्छोः । नाभिद्वारं निरिभद्यतेत्यनुषङ्गः । अपानतोऽपगच्छतः । पृथक्तवं मरणम् । नाभ्यादीन्यधिष्ठानादीनि । नाभ्यां हि प्राणापानयोर्बन्धविश्लेषे मृत्युरिति प्रसिद्धम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पुर्या यह पुरी शब्द की पञ्चमी एक वचन का रूप है। विराद् पुरुष की जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की इच्छा हुयी तो उसके शरीर में नाभिद्वार प्रकट हो गया। अपान से किए जाने वाले उसके अपान और मृत्यु देवता तथा उन दोनों के अधीन होने वाली मृत्यु के अधिष्ठान हैं। यह प्रसिद्धि है कि जब नाभि में प्राण तथा अपान का विश्लेष होता है तो मृत्यु होती है। १२८।।

आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः । नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये॥२९॥

अन्वयः --- अन्नपानामाम् आदित्सोः कुक्ष्यन्त्रनाडयः नद्यः समुद्राश्च तयोः तदाश्रये तुष्टिः पुष्टिः ।।२९।।

अनुवाद— उस विराट् पुरुष को जब अन्न और जल ग्रहण करने की इच्छा हुयी तब उसकी कुक्षि (कोंख) आँतें और नाडियाँ प्रकट हुयीं। उसी के साथ कुक्षि के देवता समुद्र नादियों के देवता नदियाँ तथा उनके आश्रित विषय तुष्टि और पुष्टि उत्पन्न हुयीं।।२९॥

भावार्थ दीपिका

अन्नपानानामादित्सोः संग्रहेच्छोः कुक्षिश्चात्राणि च नाड्यश्चासन् । तत्र कुक्षिरिधष्ठानम् । अन्त्राण्यन्नसंग्रहे करणिमिन्द्रियस्थानीयम्। नाड्यस्तु पानं ग्रहे । तयोर्नाड्यग्रवर्गयोः क्रमेण नद्यः समुद्राश्च देवते । तुष्टिरुद्रभरणं, पृष्टिस्तु रसपिरणामतः स्थौल्यम् । तदाश्रये तदुभयनिमित्ते । तत्रात्रसंग्रहेच्छोः कुक्ष्यन्त्रसमुद्रतुष्ट्य इति चतुष्टयम् । पेयसंग्रहेच्छोः कुक्षिनाडीनदीपुष्टय इति विवेकः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

विराट् पुरुष के अन्न तथा जल आदि के ग्रहण करने की इच्छा होने पर उसकी कुक्षि, आँते और नाडियां उत्पन्न हुयीं। कुक्षि ही अधिष्ठान है। अन्न का संग्रह करने में आँते इन्द्रिय स्थानी हैं। पेय पदार्थों के संग्रह करने में नाड़ियाँ इन्द्रिय स्थानी हैं। नाडियों के देवता निदयाँ है और आँतों के देवता समुद्र हैं। पेट भरने को तुष्टि कहते हैं और रसों के पिरणाम से जो शरीर में स्थूलता आती है उसी को पुष्टि कहते हैं। अन्न प्राप्त करने की इच्छा वाले विराट् पुरुष की कुक्षि, आँत तथा समुद्र तथा तुष्टि ये चारो उत्पन्न हुए और पेय प्राप्त करने की इच्छा वाले विराट् पुरुष के कुक्षि नाडी नदी और पुष्टि उत्पन्न हुए ॥२९॥

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरिभद्यत । ततो मनस्ततश्चन्द्रः संकल्पः काम एव च ॥३०॥

अन्वयः --- आत्ममायां निदिध्यासोः हृदयम् निरिभद्यत ततो मनः ततः चन्द्रः संकल्पः काम एव च ।।३०।।

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की जब अपनी माया पर विचार करने की इच्छा हुयी तो उसके हृदय की उत्पत्ति हुयी। उससे मन रूपी इन्द्रिय मन से मन के देवता चन्द्रमा और मन के विषय काम और संकल्प प्रकट हुए ।।३०।।

निदिध्यासोर्नितरां चिन्तयितुमिच्छो । कामोऽभिलाषः । हृदय'मनश्चन्द्रसंकल्पा अधिष्ठानादयः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जब उस विराट् पुरुष की अपनी माया पर विचार करने की इच्छा हुयी तो उसका हृदय उत्पन्न हो गया। काम शब्द से अभिलाषा कहा गया है। हृदय मन चन्द्रमा और संकृत्प ये चिन्तन के क्रमशः अधिष्ठान, इन्द्रिय अधिष्ठातृदेवता और विषय हैं॥३०॥

त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमञ्जास्थिघातवः । भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो त्र्योमाम्बुवायुभिः ॥३१॥

अन्वय:— त्वक् चर्ममांस रुधिर मेदो मज्जास्थिधातवः सप्त भूम्यप्तेजोमयाः । व्योमाम्बुवायुभिः प्राणः ।।३१।। अनुवाद— विराट् पुरुष के शरीर में पृथिवी, जल और तेज से त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा और अस्थि ये सात धातुएँ उत्पन्न हुयीं । इसी तरह आकाश, जल और वायु के द्वारा प्राण की उत्पत्ति हुयी ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमधिदैवादिभेदं विभज्योक्त्वा तदंशभूतानां धात्वादीनां स्वरूपमाह-त्विगिति द्वाभ्याम् । त्वक् स्थूलम् । चर्म तदुपिर स्थितं सूक्ष्मम् । त्वगादयोऽस्थ्यन्ता द्वन्द्वैकवद्भावेन निर्दिष्टाः सप्त ये धातवस्ते भूभ्यप्तेजोमयाः । तेषां च पाञ्चभौतिकत्वेऽपि वाय्वाकाशयोराहारादिरूपेण संबर्धकत्वाभावादेवमुक्तम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से अधिदैव आदि का विभाग करके उनके अंश भूत धातु आदि के स्वरूप को शुकदेवजी ने त्वक् इत्यादि दो श्लोकों से बतलाया है। स्थूल चर्म को त्वक् कहते हैं और उसके ऊपर रहने वाले सूक्ष्म चर्म को चर्म कहते हैं। त्वक् से लेकर अस्थि पर्यन्त सातो धातुओं का एकवद् भाव द्वन्द्व समास के द्वारा श्लोक में निर्देश किया गया है। ये सातो धातुएँ पृथिवी, जल और तेज से उत्पन्न हुयी हैं। इन सबों में पाँच भौतिक होने पर भी वायु और आकाश ये दोनों उन सबों के आहार रूप से संबर्द्धक नहीं हैं इसीलिए इन सबों को पृथिवी जल एवं तेजोमय कहा गया है।।३१।।

गुणात्मकानीन्द्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः । मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३२॥

अन्वयः - इन्द्रियाणि गुणात्मकानि गुणाः भूतादि प्रभवाः मनः सर्व विकारात्मा बुद्धिः विज्ञानरूपिणी ।।३२।।

अनुवाद— श्रोत्र आदि सभी इन्द्रियाँ शब्द आदि विषयों का ग्रहण करती हैं । ये सभी गुण (विषय) भूतादि अहंकार से उत्पन्न हैं । मन सभी विकारों का उत्पत्तिस्थान हैं और बुद्धि समस्त विषयों का ज्ञान कराती है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

गुणात्मकानि गुणेषु शब्दादिष्वातमा येषाम्, विषयाभिमुखस्वभावानीत्यर्थः । गुणाः शब्दादयः । भूतादिरहंकारस्ततः प्रकर्षेण भवन्तीति तथा । अहंकारकिल्पतशोभनस्वभावाः, नतु वस्तुतस्तथेत्यर्थः । अत्र हेतुः – यतो मन एव सर्वविकाराणामात्मा स्वरूपम् । तामसेष्वेव विषयेषु संकल्पविकल्पमात्रं करोति, नतु हेयोपादेयविवेकम् । बुद्धिस्तु तथाभूतार्थविज्ञानरूपिणी नतु परमार्थग्राहिणीति वैराग्यार्थमुक्तम् । अनेनैव बुद्धिमनसोः स्वरूपं चोक्तम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

गुणेषु शब्दादिषु आत्मा येषां तानि यह गुणात्मकानि पद का विग्रह है। अर्थात् इन्द्रियाँ विषयाभिमुख स्वभाव वाली हैं। शब्द इत्यादि सभी गुण भूतादि संज्ञक तामस अहङ्कार से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अहङ्कार किल्पत सुन्दर स्वभाव वाली इन्द्रियाँ होती हैं। किन्तु वे वास्तविक रूप से वैसी नहीं हैं। उसका कारण है कि मन सभी विकारों का उत्पत्ति स्थान है। मन से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा शोक इत्यादि उत्पन्न होते हैं। यह मन तामस विषयों का संकल्प तथा विकल्प करने का काम करता है। यह हेय तथा उपादेय का विवेक नहीं करता है। उसी प्रकार के विषयों की ज्ञान स्वरूपिणी बुद्धि है। वह भी परमार्थ का ग्रहण नहीं करती है। इन सारी बातों को शुकदेवजी ने वैराग्य को उत्पन्न करने के लिए कहा है। इसी प्रतिपादन के द्वारा उन्होंने बुद्धि और मन के भी स्वरूप को कह दिया है।।३२॥

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहतं मया । मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बिहरावृतम् ॥३३॥

अन्वयः मया ते एतत् भगवतः मह्मादिभिः अष्टभिः आवरणैः बिहः आवृतम् स्थूलं रूपं व्याहृतम् ॥३३॥ अनुवाद मैंने आपको श्रीभगवान् के उस स्थूल रूप को बतलाया है जो बाहर से पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश, महत्तत्त्व, अहङ्कार और प्रकृति से घिरा है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एतदिति । प्रकृत्या सहाष्टभिः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा परमात्मा के विराट् शरीर के वर्णन का उपसंहार किया गया है । यह प्रकृति आदि आठ आवरणों से आवृत है ॥३३॥

अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् । अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥३४॥

अन्वयः— अतः परम, सूक्ष्मतमम् अव्यक्तं, निर्विशेषणम्, अनादिमध्यनिधनम्, नित्यं वाङ्मनसः परम् रूपं वर्तत इति शेषः ।।३४।।

अनुवाद परमात्मा के इस स्थूल रूप से भिन्न उनका अत्यन्त सूक्ष्म रूप है, वह अव्यक्त, निर्विशेष, आदि, मध्य और अन्त से रहित एवं नित्य है । वहाँ तक वाणी एवं मन की पहुँच नहीं है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

स्थूलमुक्त्वा सूक्ष्मं समष्टिलिङ्गशरीरमाह । अतःपरमस्य कारणभूतं सूक्ष्ममतीन्द्रियम् । यतोऽव्यक्तम् । तत्कुतः । यतो निर्विशेषणम् । अनादिमध्यनिधनमुत्पत्तिस्थितिलयशून्यम् । नित्यं सदैकरूपम्, अपक्षयादिशून्यम्त्यिर्थः । अत्र व वाक् मनश्चेति द्वन्द्वैक्यम् । तस्मात्परम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के स्थूल रूप का वर्णन करने के पश्चात् उनके सूक्ष्म रूप का वर्णन करते हैं जिसकी समष्टि को लिङ्ग शरीर कहते हैं। वह शरीर इस स्थूल शरीर का कारण स्वरूप है। वह सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय है। क्योंकि वह शरीर अव्यक्त है। उसकी अव्यक्तता निर्विशेष होने के कारण है। वह उत्पत्ति स्थिति और संहार से रहित है। वह सदा एक समान बना रहता है अतएव नित्य है। अर्थात् उसमें कभी भी अपक्षय आदि विकार नहीं होते हैं। वह कभी वाणी और मन का विषय भी नहीं बनता है।।३४।।

अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते । उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥३५॥

अन्वयः— मया ते अनुवर्णितं अमुनी भगवद्रूपे मायासृष्टे विपश्चितः उमे अपि न गृह्णन्ति ।।३५।।

अनुवाद मैंने आपको माया के जिन दो रूपों का वर्णन सुनाया है वे दोनों भगवान् की माया के द्वारा सृष्ट हैं, अतएव ज्ञानीपुरुष उन दोनों को नहीं स्वीकार करते हैं ॥३५॥

उपासनार्थं भगवत्यारोपितं रूपद्वयमपवदित-अमुनी इति । न गृह्बन्ति वस्तुतो नाङ्गीकुर्वन्ति । यतो मायासृष्टे ।।३५।। भाव प्रकाशिका

उपासना के लिए परमात्मा में आरोपित उन दोनों रूपों की निन्दा अमुनी इत्यादि श्लोक के द्वारा करते हैं। न गृह्धन्ति का अर्थ है वास्तविक रूप से नहीं स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे दोनों रूप माया के द्वारा सृष्ट हैं ॥३५॥ स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपष्ट्वक् । नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माऽकर्मक: पर: ॥३६॥

अन्वयः - ब्रह्मरूपघृक् स भगवान् वाच्य वाचकतया नाम रूप क्रिया धत्ते, सकर्मक अकर्मक पर: ।।३६।।

अनुवाद श्रीभगवान् वस्तुतः निष्क्रिय हैं फिर भी वे अपनी शक्ति से सिक्रिय हो जाते हैं, वे ब्रह्म का या विराट् रूप धारण करके वाच्य एवं वाचक रूप से शब्द एवं अर्थ रूप से प्रकट होते हैं, तथा अनेकों नाम रूप एवं क्रियाओं को धारण करते हैं। वे अपनी माया के द्वारा सकर्मक अर्थात् सव्यापार होते हैं किन्तु वास्तविक रूप से वे अकर्मक अर्थात् निर्व्यापार ही हैं।।३६॥

भावार्थ दीपिका

'यद्गूपगुणकर्मकः' इति यदुक्तं भगवता ब्रह्माणं प्रति तत्प्रपञ्चयितुं ब्रह्मादिरूपाणि तत्कर्माणि चाह- स इत्यादिना इत्यंभावेनेत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । स भगवान् ब्रह्मरूपधृक् सन् वाच्यवाचकतया नामानि वाच्यतया रूपाणि क्रियाश्च धत्ते, सृजतीत्यर्थः । मायया सकर्मा सव्यापारः सन् वस्तुतस्त्वकर्मकः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

नवे अध्याय के इकतीसवें श्लोक में भगवान् ने यदूपगुणकर्मकः' इत्यादि श्लोक से जो ब्रह्माजी से कहा है, उसी को विस्तार से बतलाने के लिए शुकदेवजी ने बतलाया कि ब्रह्माजी इत्यादि का जो रूप है, वह भी परमात्मा का ही कर्म है। इस बात को शुकदेवजी ने सवाच्य० इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा है। इस तरह से इसके पहले के ग्रन्थ से कहा गया है। वे ही भगवान् ब्रह्मा का रूप धारण करके वाचक रूप से नामों तथा वाच्य रूप से रूपों (शरीरों) तथा क्रियाओं की सृष्टि करते हैं। वे ही भगवान् अपनी शक्ति माया के द्वारा सव्यापार होते हैं और वास्तविक रूप से तो वे अकर्मक अर्थात् निर्व्यपार ही हैं।।३६।।

प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्यृथक् । सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याघ्रासुरगुह्यकान् ॥३७॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किपुरुषोरगान्। मातृ रक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥३८॥ कूष्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान् ग्रहानपि । खगान्मृगान्पशून्वृक्षान् गिरीन्नृप सरीसृपान् ॥३९॥

अन्वयः— नृप ! प्रजापतीन्, मनून् देवान्, ऋषीन्, पितृगणान्सिद्धचारण, गन्धर्वान्, विद्याध्रसुरगुह्यकान् किन्नराप्सरसः, नागान्, सर्पान्, , किम्पुरुषोरगान्, मातृः रक्षः पिशाचान् च प्रेतभूतविनायकान्, कुष्माण्डोन्मादवेतालान् यातुधानान् ग्रहान्, अपि खगान्, मृगान्, पशून वृक्षान्, गिरीन्, सरीसृपान्, इमानि सर्वाणि रूपाणि परमात्मैव पृथक्-पृथक् धत्ते ।।३७-३९।।

अनुवाद राजन् परीक्षित् प्रजापित, मनु, देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष, िकन्नर, अप्सराएँ, नाग, सर्प, िकम्पुरुष, उरग, मातृकाएँ, राक्षस, पिशाच प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, तथा सरीसृप इत्यादि जितने भी संसार में नाम रूप हैं, वे सब के सब श्रीभगवान् के ही हैं ॥३७-३९॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-प्रजापतीनिति सार्धैस्त्रिभिः । द्वितीयान्तानां धत्त इत्यनेनान्वयः । तत्र प्रजापत्यादीनि नामानि तत्तद्वाच्यानि रूपाणि तत्तत्कर्माणि च ज्ञेयानि पृथक् तत्तदवान्तरभेदेन । गिरीनित्यस्यानन्तरं नृपेति संबोधनम् ।।३७–३९।।

भाव प्रकाशिका

छत्तीसवें श्लोक में यह जो कहा गया है कि परमात्मा अपनी माया के द्वारा विविध नामों और रूपों को धारण करते हैं। उसी का विस्तार से वर्णन करते हुए इन तीनों श्लोकों में परमात्मो के अनेक रूपों को शुकदेवजी ने बतलाया है। प्रजापितन् शब्द के द्वारा मरीचि, अत्रि इत्यादि दश प्रजापितयों को कहा गया है। इन श्लोकों में सभी द्वितीयान्त पदों का छत्तीसवें श्लोक के धत्ते पद से अन्वय है। उनमें प्रजापित इत्यादि नामों उनके वाच्य भूत रूपों तथा उनक विभिन्न कर्मों को भी परमात्मा के ही नाम रूप और क्रियाओं को जानना चाहिए। पृथक् पद का अर्थ अवान्तर भेद से है। १३७-३९।।

द्विविधाचतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः । कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥४०॥

अन्वयः अन्ये ये द्विविधाः चतुर्विधाः जलस्थलनभौकसः इमाः कुशलाकुशलाः मिश्राः कर्मणां गतयः तु ।।४०।। अनुवाद संसार में दूसरे जो चर एवं अचर के भेद से दो प्रकार के तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्धिज्ज के भेद से चार प्रकार के जीव हैं वे सबके सब पुण्य, पाप तथा पुण्य पाप मिश्रित कर्मों के फल हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

द्विविधाः स्थावरजङ्गमरूपेण चतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जरूपेण । जलस्थलनभांस्योकांसि येषां तानिप धत्त इति पूर्वेणान्वयः । यच्च राज्ञा पृष्टं यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम' इति तस्यापि प्रसङ्गादनेनैवोत्तरमाह । कुशलाः उत्तमाः, अकुशला नीचाः । मिश्रा इति पदान्तरम् । मिश्रा मध्यमाः । कर्मणां पुण्यपापिमश्राणां गतयः फलानि ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

स्थावर एवं जङ्गम के भेद से दो प्रकार के भेद हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज के भेद से चार प्रकार के भेद हैं। उनमें भी जल निवासी, स्थलनिवासी तथा आकाशचारी इत्यादि जीवों के जो भेद हैं उन रूपों को भी भगवान् ही धारण करते हैं।

यच्चराज्ञापृष्टं **इत्यादि** राजा परीक्षित् ने यह जो पूछा है कि कर्मों की जितनी गतियाँ होती हैं और जिस प्रकार की होती हैं उन सबों को आप मुझे बतलायें इस प्रश्न का भी उत्तर इसी के द्वारा प्रसङ्गवशात् हो गया। तीन प्रकार के कर्म होते है कुशल अर्थात् उत्तम या पुण्य रूप, अकुशल नीच या पाप रूप तथा मिश्र पुण्य पाप मिश्रित अर्थात् मध्यम कोटि की गति इन कर्मों के फल हैं कर्मों से ही इन सभी योनियों की प्राप्ति होती है ॥४०॥

सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः। तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यन्ते गतयस्त्रिद्या ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥४१।

अन्वयः— राजन् ! सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः । यदा एकैकतरः स्वभावः अन्याभ्याम् उपहन्यते तत्रापि एकैकशः गतयः त्रिधा भिद्यन्ते ।।४१।।

अनुवाद — देवता सत्त्वगुण प्रधान होते हैं, मनुष्य रजोगुण प्रधान होते हैं और नारकी जीव तमोगुण प्रधान होते हैं। इन तीनों का भी जब एक गुण अपने से भिन्न दो गुणों को अभिभूत करके उद्रिक्त हो जाता है तो इन जीवों के तीन-तीन भेद और हो जाते हैं। ।४१।।

भावार्थ दीपिका

सत्त्वादिभेदेन कर्मगतिवैचित्र्यं प्रपञ्चयति–सत्त्वमिति सार्धेन । सत्त्वादयस्तिस्रो गतयः । सुरादिशब्दा ऋष्यादीनामुपलक्षणार्थाः। अन्याभ्यां गुणाभ्यां स्वभावो गुणः उपहन्यतेऽनुविध्यते ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

सत्त्वगुण आदि तीन गुणों के भेद से कमों की गतियों की भिन्नता इस श्लोक में बतलायी जा रही है। सत्त्वगुण आदि के भेद से तीन प्रकार की गतियाँ होती है। देव, मनुष्य तथा नारकीय। सुरादि शब्द ऋषियों का भी उपलक्षक है। अपने से भिन्न दो गुणों के साथ किसी एक गुण का स्वभाव मिश्रित हो जाता है तो उपर्युक्त तीनों प्रकार की गतियाँ भी तीन-तीन प्रकार की हो जाती है। जैसे मनुष्य ही सात्त्विक, राजस एवं तामस के भेद से तीन प्रकार के देखे जाते हैं।।४१।।

स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक् । पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मिभः ॥४२॥

अन्वयः— स एव जगद् धाता भगवान् धर्मरूपधृक् इदं तिर्यङ्नरसुरात्मिभः विश्वं स्थापयन पुष्णाति ।।४२।। अनुवाद— वे ही भगवान् जगत् के धारण पोषण के लिए धर्ममय भगवान् विष्णु का रूप धारण करके, देवता मनुष्य, पशु-पक्षी आदि के रूपों को प्रायः ग्रहण करके इस सम्पूर्ण विश्व का पालन-पोषण करते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मरूपेण स्रष्टृत्वमुक्त्वा विष्णुरूपेण पालकत्वमाह । स एव भगवांस्तिर्यगाद्यवतारैरिदं विश्वं स्थापयन् पालयन् धर्मरूपेण पुष्णाति भोगै: संवर्धयति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ब्रह्मा रूप से जगत् की सृष्टि करते हैं, यह कहने के बाद यह बतला रहे हैं कि वे ही विष्णु रूप से पालन करते हैं। वे ही भगवान्! तिर्यक् इत्यादि अवतारों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हुए धर्म रूप से पोषण करते हैं और भोगों के द्वारा विश्व का संवर्धन करते हैं। 1871।

ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्पृष्टमिद्मात्मनः। सन्नियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः॥४३॥

अन्वयः— ततः कालेन आत्मन इदं यत् सृष्टम् तत् कालाग्नि रुद्रात्मा अनिल धनानीकमिव सन्नियच्छिति ।।४३।। अनुवाद— उसके पश्चात् प्रलय काल के आने पर वे ही भगवान् अपने से ही सृष्ट सम्पूर्ण जगत् को उसी तरह से अपने में लीन कर लेते हैं जिस तरह वायु मेघ समूह को अपने में लीन कर लेती हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

रुद्ररूपेण संहर्तृत्वमाह-तत इति । आत्मनः सकाशाद्यदिदं सृष्टं तत्सन्नियच्छति संहरति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

तत इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् ही रुद्र का रूप धारण करके जगत् का संहार कर देते हैं इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस जगत् की परमात्मा स्वयं सृष्टि करते हैं उसका वे ही प्रलय काल की बेला में संहार कर देते हैं ॥४३॥

इत्यंभावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः । नेत्यंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः ॥४४॥

अन्वयः भगवत्तमः भगवान् इत्थं भावेन कथितः परं सूरयः इत्थं भावेन द्रष्टुम् नार्हन्ति ।।४४।।

अनुवाद - राजन् ! महात्माओं ने इसी प्रकार से अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् का वर्णन किया है । किन्तु ज्ञानी जन तो परमात्मा को इस रूप से स्नष्टा पालक एवं संहर्ता के रूप में उनका दर्शन नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे इससे परे भी हैं ॥४४॥

कर्तृत्वाद्यपवादेन दशमस्य शुद्धिमाह । इत्थंभावेन स्नष्टृत्वादिरूपेण 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: संभूत:' 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादिश्रुत्या कथित: । सूरयस्तु परं केवलमेवंरूपेणैव द्रष्टुं नार्हन्ति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्तृत्वादि के बाध के द्वारा दशम आश्रय तत्त्व की शुद्धि को बतलाते हैं। परमात्मा के सष्टृत्व इत्यादि का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ कहती हैं तस्माद् वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः।' निश्चित रूप से उस आत्मा से यह आकाश उत्पन्न हुआ। दूसरी श्रुति कहती है— सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय। अर्थात् उस परमात्मा ने कामना किया कि मैं अनेक हो जाऊँ तदर्थ अनेक रूपों से अवर्ताण होऊँ। किन्तु ज्ञानी पुरुष परमात्मा को केवल स्त्रष्टा इत्यादि के रूप में ही नहीं देख सकते हैं।।४४॥

नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते । कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत् ॥४५॥

अन्वयः — अस्य जन्मादौ कर्मणि परस्य कर्तृत्वं न अनुविधीयते कर्तृत्वप्रतिषेघार्थं मायया हि तत् आरोपितम् । १४५।। अनुवाद — सृष्टि की रचना आदि कर्मों का निरूपण करके परमात्मा से कर्म या कर्तापन का सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है, क्योंकि कर्तृत्व आदि तो माया से आरोपित हैं। वह कर्तृत्व का निषेध करने के लिए हैं। १४५।।

भावार्थ दीपिका

तत्कम् । यतः अस्य विश्वस्य जन्मादौ कर्मणि परस्येश्वरस्येत्थंभावः कर्तृत्वं नास्ति । श्रुत्यापि तात्पर्येण न प्रतिपाद्यते। किंत्वनुविधीयतेऽनूद्यते । किमर्थम्, कर्तृत्वप्रतिषेधार्थम् । हि यतो माययारोपितं प्रकाशितम् । तथाच श्रुतिः 'निष्कलं निष्कियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्', 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्याद्या ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि किस कारण से ईश्वर का जगत् के जन्मादि में कर्तृत्व नहीं है ? श्रुति भी ईश्वर के कर्तृत्व का तात्पर्यतः प्रतिपादन नहीं करती है अपितु वह ईश्वर के जगत् कर्तृत्व का अनुवाद करती है। यदि कहें कि अनुवाद करने का कारण क्या है ? तो इसका उत्तर है कि श्रुति ईश्वर के जगत् कर्तृत्व का अनुवाद उसका निषेध करने के लिए करती है। क्योंकि जगत् कर्तृत्व आदि तो ईश्वर में माया के द्वारा आरोपित हैं। ईश्वर के अकर्तृत्व का प्रतिपादन करती हुयी श्रुति कहती हैं— निष्कलं निष्क्रिय शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।' अर्थात् वे परमात्मा कलारहित, क्रियारहित, षडूर्मिरहित, अन्वयरहित तथा माया के संबन्ध से माया के द्वारा आरोपित हैं। इस अर्थ का प्रतिपादन करती हुयी श्रुति कहती हैं— 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' अर्थात् अपनी माया नामक शक्ति के कारण ईश्वर अनेक रूप वाला हो जाता है।।४५॥

अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः । विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥४६॥

अन्वयः अयं तु मया ब्रह्मणः कल्पः सिवकल्पः उदाहतः यत्र साधारणः विधिः सर्गाः प्रकृतवैकृताः ।।४६।। अनुवाद यह मैंने ब्रह्माजी के कल्प अर्थात् महाकल्प तथा सर्वकल्प अर्थात् अवान्तर कल्पों का वर्णन किया है। इन सभी प्रकार के कल्पों में सृष्टि का क्रम एक समान होता है। अन्तर केवल इतना ही होता हैं कि महाकल्प के प्रारम्भ में प्रकृति से क्रमशः महत् तत्त्व आदि की उत्पत्ति होती है और दूसरे कल्पों में प्राकृत सृष्टि पहले से ही ज्यों के त्यों रहती है चराचर प्राणियों की वैकृत सृष्टि नवीन रूप से होती है।।४६।।

भावार्थ दीपिका

उक्तमर्थमुपसंहरति-अयं त्विति । ब्रह्मणः संबन्धी कल्पो महाकल्पो विकल्पोऽवान्तरस्तत्सिहत उदाहरणत्वेन संक्षेपत

उक्तः । कथंभूतः यत्र महाकल्पे प्राकृता महदादिसर्गा अवान्तरकल्पे च वैकृताः । स्थावरा विसर्गा इत्ययं विधिः प्रकारोऽन्यैर्महाकल्पादिभिः साधारणः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अयं तु इस श्लोक के द्वारा अवान्तर कल्पों के साथ ब्रह्माजी के महाकल्प का उदाहरण रूप से संक्षेप में वर्णन किया गया है। अब प्रश्न होता है कि इन दोनों कल्पों का स्वरूप कैसा है ? तो इसका उत्तर है कि महाकल्प में प्राकृत महत् तत्त्व आदि की उत्पत्ति से सृष्टि प्रारम्भ होती है और अवान्तर कल्पों में वैकृत चराचर की सृष्टि से सृष्टि प्रारम्भ होती है। अर्थात् स्थावरविसर्ग होते हैं। अन्य सारी विधियाँ दोनों प्रकार के कल्पों में एक समान होती हैं।।४६॥

परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणवित्रहम् । यथा पुरस्ताद्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥४७॥

अन्वयः— कालस्य परिमाणं कल्प लक्षणं विग्रहम् यथा तत् पुरस्ताद् व्याख्यास्ये, अथो पद्मं कल्पं शृणु ।।४७।। अनुवाद— राजन् काल का परिमाण, कल्प, कल्प के अन्तर्गत होने वाले मन्वन्तर ये सब जैसे होते हैं उन सबों का वर्णन मैं आगे चलकर करूँगा, इस समय आप सावधानी पूर्वक पाद्मकल्प का वर्णन सुने ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

वक्ष्यमाणां विस्तरं प्रतिजानीते । परिमाणं स्थूलं सूक्ष्मं च कल्पस्य लक्षणिमयानेवंरूप इति तद्विग्रहमवान्तरकल्पं मन्वन्तरादिरूपं विभागं च यथाविद्विस्तरेण पुरस्तात्तृतीयस्कन्धे व्याख्यास्यामि । तत्र पादां कल्पमथो इति कार्त्स्येन व्याख्यायमानं शृणु ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

जिसका वर्णन विस्तार से करना है, उसको बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं । काल के स्थूल तथा सूक्ष्म परिमाण । काल का कल्प रूपी शरीर अर्थात् कल्प कितना बड़ा होता है उसके भीतर होने वाले अवान्तर कल्प जो मन्वन्तर आदिरूप विभागों वाले होते हैं उन सबों का वर्णन मैं आगे अर्थात् इस तीसरे स्कन्ध में करूगाँ ॥४७॥

शौनक उवाच

यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः । चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बन्धून्सुदुस्त्यजान् ॥४८॥

अन्वयः — हे सूत ! भवान् नः यद् आह भागवतोत्तमः क्षता सुदुस्त्यजान् बन्धून् त्यक्त्वा भुवः तीर्थानि चचार ।।४८।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद हे सूतजी ! आपने यह जो कहा है कि भागवतों में श्रेष्ठ विदुर जी जिन सबों को त्यागना बड़ा किठन है, उन आपने बान्धवों का परित्याग करके पृथिवी पर विद्यमान तीर्थों में विचरण किए ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

यदर्थं सृष्ट्यादिनिरूपणं तदेव साक्षाच्छ्रोतुकामः कथान्तरं पृच्छिति-यदाहेति । क्षत्ता विदुरः । भुवः संबन्धीनि तीर्थानि। यद्वा भुवः क्षेत्राणि चेति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

जिसके लिए सृष्टि का निरूपण किया गया है उसी को साक्षात् सुनने की इच्छा से शौनक महर्षि दूसरी कथा को **यदाह० इत्यादि** श्लोक द्वारा पूछते हैं। विदूरजी जिन पृथिवी के तीर्थों अथवा पृथिवी के क्षेत्रों में विचरण किए उनको आप मुझे बतलायें। १४८।।

कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः । यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥४९॥

अन्वयः तस्य कौषारवेः अध्यात्मसंश्रितः संवादः कुत्र यद्वा पृष्टः सः भगवान् तस्मै किम् तत्त्वमुवाच ह ।।४९।। अनुवाद विदुरजी की मैत्रेय महर्षि के साथ अध्यात्मविषयक संवाद कहाँ पर हुआ ? अथवा विदुरजी द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने विदुरजी को किस तत्त्व का उपदेश दिया ।।४९॥

भावार्थ दीपिका

कौषारवेमैंत्रेयस्य तस्य क्षतुश्चाध्यात्मज्ञानसंश्रितः संवादः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

शौनक महर्षि ने पूछा कि विदुरजी का मैत्रेय महर्षि के साथ अध्यात्मज्ञान विषयक संवाद कहाँ पर हुआ ॥४९॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् । बन्धुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥५०॥

अन्वयः हे सौम्य नः विदुरस्य तिददं विचेष्टितं बन्धुत्यागिनिमत्तं, तथैव पुनः आगतवान् तत् ब्रूहि ॥५०॥ अनुवाद हे सौम्य ! स्वभाव वाले सूतजी हमलोगों को विदुर के चिरत्र को, उनके अपने बान्धवों के पिरत्याग के कारण को तथा वे पुनः जिस कारण से लौटकर हस्तिनापुर में आये उसको आप हमलोगों को बतलायें ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

पुनरागतवान् तत्र च निमित्तं ब्रूहि ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी जिस कारण से लौटकर फिर हस्तिनापुर में आ गये उसे आप बतलायें ॥५०॥

सूत उवाच

राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः । तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणेऽष्टादशसाहस्रसंहितायां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्याय: ॥१०॥

द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥२॥

अन्वयः— राज्ञा परीक्षिता पृष्टः महामुनिः यदवोचत् तत् राज्ञः प्रश्नानुसारतः वः अभिधास्ये शृणुत ॥५०॥ अनुवाद— राजा परीक्षित् के द्वारा पूछे जाने पर महामुनि शुकदेवजी ने जो उत्तर दिया राजा के प्रश्नों के अनुसार ही मैं आप लोगों को सुनाता हूँ उसे आप लोग सुनें ॥५०॥

इस तरह से श्रीमद्भागवतमहापुराण नामक पारमहंस्य संहिता के द्वितीय स्कन्य के पुरुषसंस्थानुवर्णन नामक दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीघराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

दूसरा स्कन्ध समाप्त हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

राज्ञा पृष्ट इति । अयमर्थः-यद्ययं पृच्छथ इदमेव राजापि शुकं पृष्टवान् । शुकोऽपि विदुरमैत्रेयसंवादं पुरस्कृत्य ये पूर्वं राज्ञा कृताः प्रश्नास्तदनुसारेण सर्वं पुराणार्थमवोचत् । तदेवाहं वोऽभिधास्यामि तथैव शृणुतेति । श्रीमद्भागवतं येन स्वब्रह्ममुखतो मितम् । ब्रह्मनारदयोः प्रोक्तं तं वन्दे गुरुमीश्वरम् ।।१।। यत्सूत्रयन्त्रितं विश्वं नरीनर्ति जगत्त्रयम् । सन्तस्तमेव पृच्छन्तु यदत्र स्खिलितं मम ।।२।। द्वितीयस्कन्धसंबन्धिपदभावार्थदीपिका । उद्दीप्यतामियं सद्भिर्यथा स्यात्तत्त्वदीपिका ।।३।। ईक्षन्तामिच्छया

सन्तः क्षमन्तां मम साहसम् । मया हि स्वीयबोधाय कृतमेतत्र सर्वतः ।।४।। इति श्रीमद्भागवतटीकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां द्वितीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सूतजी ने कहा कि आप लोग जो मुझसे पूछे रहे हैं वही प्रश्न राजा ने भी शुकदेवजी से पूछा था। शुकदेवजी भी विदुरमैत्रेयसंवाद को ही दृष्टिपथ में रखकर राजा परीक्षित् ने पहले जिन प्रश्नों को किया था उसके ही अनुसार सम्पूर्ण पुराण के अर्थ का वर्णन किया है। उसी का मैं आपलोगों को सुनाऊँगा। उसे ही आप लोग सुनें।।५१।।

श्रीमद्भागवत् इत्यादि जिन श्रीभगवान् ने अपने मुख से ब्रह्माजी को तथा ब्रह्माजी ने नारदजी को श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया उन परम गुरु श्रीभगवान् की मैं वन्दना करता हूँ ।।११।।

यत्सूत्रयन्त्रितं **इत्यादि** जिन श्रीभगवान् की माया रूपी सूत्र में बन्धकर यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य नाच रहा है, उन्हीं श्रीभगवान् से सन्त पुरुष हमारी उन गलतियों के विषय में पूछें जिन गलतियों को मैंने इस व्याख्या में की है ॥२॥

द्वितीयस्कन्थसंबन्धि इत्यादि श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध के पदों को प्रकाशित करने वाली यह जो भवार्थदीपिका है, इसको सज्जन पुरुष ऐसे प्रकाशित करें कि यह तत्त्वों को प्रकाशित करने वाली तत्त्वदीपिका बन जाय ॥३॥

ईक्षन्तामिच्छया इत्यादि- सन्त पुरुष अपनी इच्छा क अनुसार इसका अवलोकन करें और मेरे इस श्रीमद्भागवत की व्याख्या रूपी साहसिक कार्य को करने के लिए मुझे क्षमा करें। इस व्याख्या का प्रणयन मैंने अपने ज्ञान के लिए किया है, सबों को ज्ञान प्रदान करने के लिए नहीं किया है।।४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण की श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत भावार्थदीपिका नामक टीका के अन्तर्गत द्वितीयस्कन्य के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण का दूसरा स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ।।२।।



